आवश्यक

१—सभी ग्राहकों से निवेदन है कि विशेषांक के ऊपर के रेपर को सभाल कर रखें या उस पर लिखा ग्राहक नम्बर तथा पोस्ट आफिस का नम्बर इस विशेषांक के टाइटिल के पृष्ठ २ पर नोट करले।

२—भविष्य मे पत्र व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नम्बर पत्र मे अवश्य लिख दिया करें।

३—कोई भी अङ्क मिलने पर देख लिया करें कि उसमे पहिले मास का अङ्क मिला है या नही। न मिला हो तो पोस्ट आफिस मे तलाश करें और उसके उत्तर के साथ हमको लिखे। पोस्ट व्यय के लिये १० न पै का टिकट साथ भेजें।

४—धन्वन्तरि के नवीन ग्राहक बनाने का अवश्य प्रयत्न करे।

५—ध्यान रहे, यह विशेषांक फरवरी+मार्च २ माह का अङ्क है।
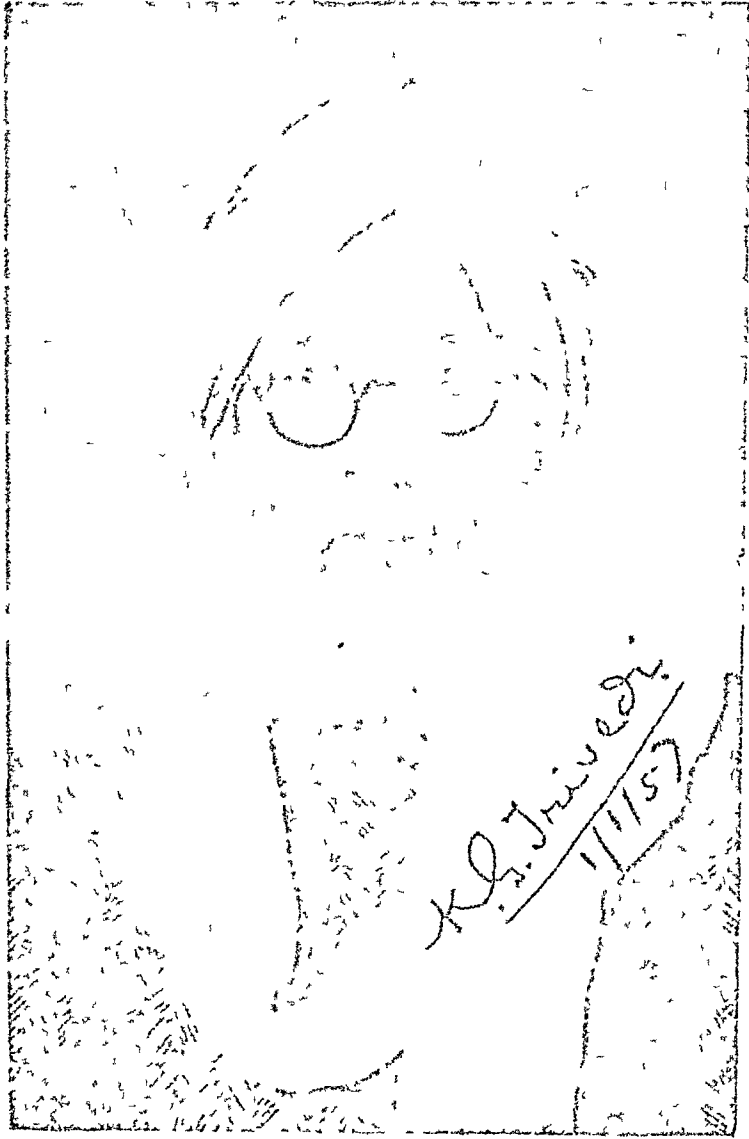
विशेष सम्पादक

वनौषधि-विशेषांक के चित्र प्रबन्धक

एवं पृष्ठ ३१४ से आगे के लेखक
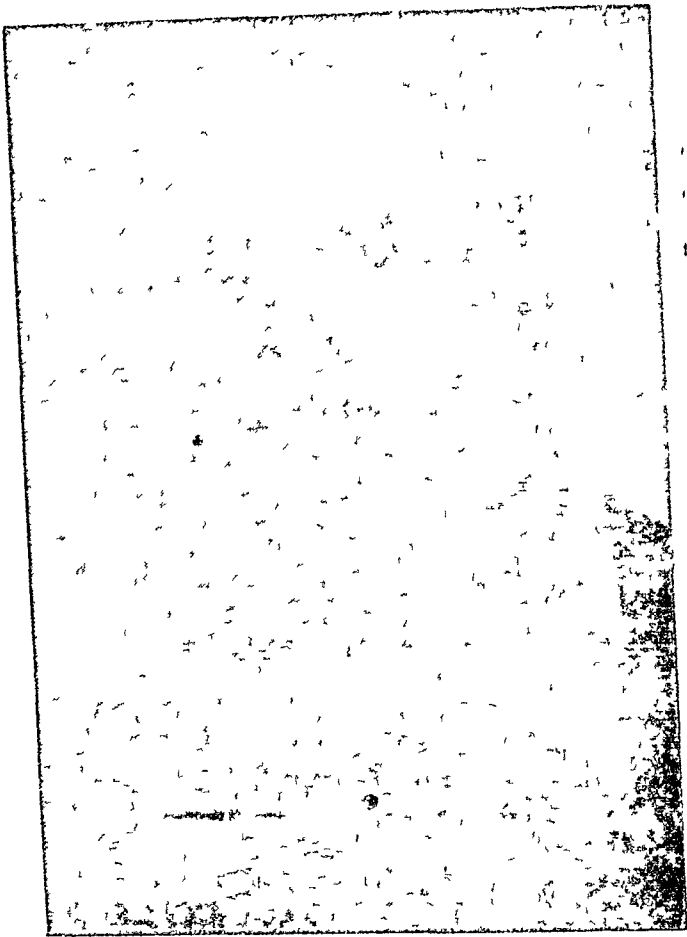
वैद्याचार्य श्री उदयलाल जी महात्मा H M D S

रस एव वनौषधि अन्वेषक

श्री महावीर चिकित्सालय, देवगढ़ (राजस्थान)

प्रकाशकीय निवेदन

धन्वन्तरि के पाठक बनौषधि–विशेषांक के चार भाग पहिले प्राप्त कर चुके है उसी का पाचवा भाग आपके हाथो समर्पित करते हुए हमको प्रसन्नता है। आशा है वनौषधि–विषयक शेष साहित्य आगामी छठे भाग मे पूरा हो सकेगा। इस साहित्य के पूर्ण होने पर यह साहित्य आयुर्वेद चिकित्सको के लिए अनमोल निधि प्रमाणित होगी यह हमारी निश्चित धारणा हे।

इस बार भी पूर्ण प्रयत्न करने पर हम विशेपाक समय पर प्रकाशित करने मे असमर्थ रहे है। इस बार विशेषाक पहिले से २ हजार अधिक छापा गया है लेकिन नवीन ग्राहक जिस गति से बन रहे है उसको देखते हुए यह विशेषाक वर्ष के अन्त से पूर्व ही समाप्त होजाना निश्चय जान पडता है अस्तु, वैद्य समाज से निवेदन हे कि जो भी इस उत्तम साहित्य को प्राप्त करना चाहे वे शीघ्र ग्राहक बनकर विशेपाक प्राप्त कर ले।

बनौषधि–विशेषाक का प्रथम भाग तीसरी वार छापा गया हे, द्वितीय भाग भी दुवारा छापा जारहा है। तीसरे भाग की भी थोडी प्रतिया शेप है। इन विशेपाको की बढती हुई माग इस साहित्य की महान उपयोगिता का ज्वलन्त प्रमाण है। चारो भागो का विवरण टाइटिल के चौथे पृष्ठ पर दिया गया है। जिनके पास जो भाग न हो उनको वह भाग तुरन्त मगा लेना चाहिए।

पचम भाग का २/३ भाग स्वर्गीय श्री प० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी का लिखा हुआ है। शेष भाग को श्री महात्मा उदयलाल जी ने लिखा है। यह कैसा हे इसका निर्णय पाठक करें तथा अपने विचार हमको सूचित करे। जो विद्वान आगामी भाग को अधिक विस्तृत तथा उपयोगी लिखने की क्षमता रखते हो व तुरन्त हमसे पत्र–व्यवहार करने की कृपा करे।

बनौषधि विशेषांक (पांचवे भाग) की

विषयानुक्रमणिका

वनौषधि विशेषांक (पांचवे भाग) की

चित्र-सूची

वर्ष १९७० में
'धन्वन्तरि' मुफ्त मगावें
धन्वन्तरि के जो भी ग्राहक
(१) १ अप्रैल १९६९ से ३० नवम्बर १९६९ तक
(२) धन्वन्तरि कार्यालय द्वारा निर्मित औपधिया
(३) धन्वन्तरि कार्यालय विजयगट (अलीगढ) से
(४) १ बार मे १४१ रु० की
या २ बार मे १७१) की
या ३ बार मे २०१) की
मगा लेंगे, उनको वर्ष १९७० मे धन्वन्तरि मुफ्त दिया जायगा।
●नियमो को भलीप्रकार समझ लीजियेगा।
१—वर्ष १९६९ मे जो 'धन्वन्तरि' के ग्राहक है वही सज्जन उपर्युक्त विज्ञप्ति के अनुसार औषधिया मगाकर वर्ष १९७० मे धन्वन्तरि मुफ्त प्राप्त कर सकेंगे।
२—जो सज्जन "धन्वन्तरि" के ग्राहक नही वन सके है और १ मार्च १९६९ के वाद औषधिया मगाकर उपर्युक्त नियम की पूर्ति करदी है तो वे ३० नवम्बर १९६९ से पहिले ही वर्ष १९६९ के लिये धन्वन्तरि ग्राहक वनकर वर्ष १९७० मे धन्वन्तरि मुफ्त प्राप्त कर सकेगे।
३—इसके पृष्ठ पर एक तालिका छपी है उसे भरकर १५ दिसम्वर १९६९ से पहले पहले जव भी नियमो की पूर्ति होजाय कार्यालय को भेजना आवश्यक होगा। तालिका मिलने पर उसकी जाच करके नियमो की पूर्ति हो गई है तो आपका पता वर्ष १९७० के नि शुल्क ग्राहको मे लिखकर आपको सूचना दी जायगी।
४—१ अप्रैल १९६९ के पहले के या ३० नवम्बर १९६९ के वाद के विलो पर यह रियायत कदापि नही दी जायगी।
५—जो सज्जन इसके पृष्ठ पर छपी तालिका भर कर १५ दिसम्वर १९६९ से पहले पहले भेज देंगे उनको ही [उक्त नियमो की पूर्ति होने पर] वर्ष १९७० मे धन्वन्तरि मुफ्त दिया जा सकेगा। अस्तु तालिका [फार्म] भरकर भेजना न भूलें।

ता लि का

जो १५ दिसम्बर १९६९ से पहिले-पहिले भेजनी होगी

श्री व्यवस्थापक—
धन्वन्तरि कार्यालय
विजयगढ जिला अलीगढ

आपकी विज्ञप्ति के अनुसार मैं—
१ बार मे १४१ ०० की
२ बार मे १७१ ०० की
३ बार मे २०१ ०० की

तीनो मे मे जो दो अनाव-श्यक हो उन्हे काट दीजियेगा

औषधिया मगा चुका हू जिसका विवरण नीचे लिखा है। अपने यहा जाच करके मेरा पता वर्ष १९७० के नि शुल्क ग्राहक रजिस्टर मे लिख लें और ग्राहक सख्या की सूचना दें।

	बिल	दिनाक बिल	औषधियो का मूल्य	वी० पी० छुडाने की तारीख	विवरण
प्रथम बार					
द्वितीय बार					
तृतीय बार					

मेरा पूरा पता .. ..
... .
.. ... .

ग्रा० सख्या . ...

धन्वन्तरि

के

तीन अनमोल तथा अत्युपयोगी विशेषांक

हर चिकित्सक को, हर आयुर्वेद प्रेमी को तथा हर स्वास्थ्य प्रेमी को इन विशेषांको को अवश्य संग्रह करना चाहिये ।

पुरुषरोगांक—इस विशेपाक मे पुरुषो के विशेष रोग—वीर्य रोग, नामर्दी, स्वप्नदोष, शीघ्र पतन, शुक्रतारल्य, प्रमेह, मधुमेह, उपदश, पूयमेह, अण्डकोष वृद्धि, आदि-आदि का विस्तृत सचित्र वर्णन, विस्तृत एव सफल आयुर्वेदिक चिकित्सा दी है । साथ ही सभी पुरुषरोगो की एलोपैथिक, प्राकृतिक तथा होमियोपैथिक चिकित्सा भी दी गई है । इस विशेषाक को पाठको तथा वैद्यो ने धन्वन्तरि के पूर्व प्रकाशित सभी विशेषाको से अधिक पसद किया है । इसकी थोडी प्रतिया शेष है । मूल्य ८.५० कमीशन कम करके ६.३७ होगा । समाप्त होने पर द्वितीय सस्करण का मूल्य बढ जायगा ।

नारी रोगांक—इस विशेपाक मे सम्पूर्ण स्त्री रोगो—नारी जननेन्द्रिय रचना, आर्तव, ऋतुकालचर्या, स्त्री-रोग परीक्षा, आर्तव विकृति, प्रदर रोग, योपापस्मार, योनिव्यापद, बन्धत्व, गर्भपात एव गर्भश्राव पुसवन एव गर्भ विकास, गर्भावस्था के रोग, प्रसूत ज्वर, मक्कल शूल, अर्बुद, रक्तगुल्म गर्भाशय शोथ, योनिकण्डू, सोम रोग, स्तन रचना एव स्तन रोग, उपदश-फिरङ्ग, स्त्रियो के लिये व्यायाम, इच्छित सन्तान आदि-आदि २९ प्रकरणो मे विस्तृत विवरण, सफल चिकित्सा विधि तथा अनुभूत प्रयोगो का उपयोगी सग्रह प्रकाशित किया गया है । प्रथम सस्करण उसी वर्ष समाप्त हो गया था । द्वितीय सस्करण भी समाप्त होने वाला है । मूल्य १०.०० कमीशन कम करके ७.५०

शिशु रोगांक—इस विशेपाक मे सम्पूर्ण बाल रोगो—शिशु एव उसका गर्भाशय स्थित जीवन, प्रसवोपरात शिशु परिचर्या, नवजात शिशु पोषण, शिशु पोपण, शिशुरोग परीक्षा, बालग्रह, दन्तोद्भेद क्रम, पाचन विकार, अस्थि विकार, बालशोष [सूखा], कर्ण रोग, बालको की खासी, कृमिरोग, गुद्रोग रोहिणी [डिफ्थेरिया], शीर्षाम्बु, गले के रोग, मौक्तिक [मोतीझला], मसूरिका, शीतला, लघु मसूरिका [खसरा] पित्ती उछलना, फिरग, मिट्टीखाना और उससे होने वाले रोग, प्रशीताद [स्कर्वी], हकलाना, तुतलाना, यकृत्-प्लीहा वृद्धि, शैशवीय अङ्गघात, बाल-न्यूमोनिया, नेत्ररोग आदि ३५ प्रकरणो मे विस्तृत वर्णन सफल चिकित्सा विधि तथा उत्तमोत्तम सरल प्रयोग सग्रह दिये है । प्रथम सस्करण थोडा ही शेष है । मू० ८.५० कमीशन कम करके ६.३७

तीनो विशेपाको का मूल्य कमीशन कम करके २७.२५ होता है लेकिन तीनो विशेषाको को एक साथ मगाने पर रियायती मूल्य १८.५० होगा । पोष्टव्यय तीनो विशेषाको पर ३.२५ पृथक् । कुल २१.७५ मनियार्डर से भेजकर तीनो विशेषाक प्राप्त करले ।

नोट—धन्वन्तरि के अन्य प्राप्य विशेपाको का विवरण इस विशेपाक के अन्त मे लगी सूची मे देखलें ।

पता—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ अलीगढ़

कल का संसार

आज का जागरूक मस्तिष्क ऐसे स्वाधीन राज्यों की कल्पना नहीं करता, जो आपस में ही लड़ते हों, बल्कि वह स्वाधीन राज्यों के एक ऐसे संघ की चाहत रखता है, जिसमें सभी राज्य एक दूसरे पर निर्भर हों। यह सपना पूरा होने में, हो सकता है, एक बड़ा अरसा लग जाये। मैं अपने देश के लिये ऐसी कोई बड़ी बात नहीं कहना चाहता। लेकिन, मैं इतना कहना कोई अनुचित नहीं समझता कि हमें केवल स्वतन्त्रता के बजाय अन्तर्राष्ट्रीय निर्भरता के लिये ज्यादा तैयार रहना चाहिये।

महात्मा गांधी

MAHATMA GANDHI
BIRTH CENTENARY
OCT 2 1968 TO
FEB 22 1970
महात्मा गांधी
जन्म शताब्दी
अक्तूबर 2 1968 से
फरवरी 22 1970

डा० कोकचा के हिन्दी के अनुपम ग्रन्थ रत्न

१—एलोपैथिक इंजेक्शन चिकित्सा नवनीत चार्टस तथा एलोपैथिक इंजेक्शन विश्वकोष

इस विश्वकोष मे ● आधुनिक शल्य विज्ञान, ● डाक्टरी शालाक्य तन्त्र, ● एलोपैथिक कौमार भृत्य, ● प्रसूति विज्ञान (मिडवाइफरी), ● प्रारम्भिक सहायता (फर्स्ट एड), ● होम नर्सिंग (रोगी-सेवा विज्ञान), ● कम्पाउण्डरी शिक्षा, ● एलोपैथिक मैटेरिया मेडिका, ● एनाटोमी-फिजियालोजी (शरीर रचना विज्ञान, शरीर क्रिया विज्ञान), ● ड्रेसिंग कला (मरहम-पट्टी करने की सचित्र विधियां तथा ड्रेसिंग मे काम आने वाले कई दर्जन योग), ● प्रेक्टिस आफ मेडिसन (चिकित्सा विज्ञान), ● विष विज्ञान ● काम विज्ञान (काम शास्त्र तथा परिवार नियोजन) आदि वैज्ञानिक विषयो का नये ढग मे चार्टों और चित्रो के रूप मे सरल हिन्दी मे वर्णन किया गया है।

● यदि आप इन्जेक्शन लगाना और बनाना सीखना चाहते है तो इसके बहुमूल्य चित्रो की सहायता से आप घर बैठे इंजेक्शन लगाना और बनाना सीख जायेगे। यदि आप इंजेक्शन लगाते है तो इसके ज्ञान से आपको कई सौ नये नये इंजेक्शनों का विशेष ज्ञान हो सकेगा। ● इसके अलावा इसमे नये-पुराने, सब प्रकार के, चार सौ रोगो की अपटूडेट इंजेक्शनो द्वारा सफल चिकित्सा का चार्टों के रूप मे वर्णन किया गया है।

● नाना प्रकार के इंजेक्शनो के लगाने से होने वाले विषैले विकारो को किस प्रकार दूर किया जा सकता है। यह बात किसी भी पुस्तक मे नही है। डा० "कोकचा" ने हिन्दी मे पहली बार इस चीज पर खुलकर लिखा है। सात सौ के लगभग चार्टो और चित्रो से सजी, बडे आकार की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल ८ रुपये, डाक खर्च अलग।

२. महर्षि वात्स्यायन के पथ वयस्कों के नाम, कामसूत्र नवनीत चार्टस, कामविज्ञान विश्वकोष

● इस पुस्तक के तीन खण्ड है। तीनों खण्डो मे कई दर्जन अध्याय तथा भाग है।

● "पहले खण्ड" मे महर्षि वात्स्यायन के कई दर्जन पत्र है। इन पत्रो मे यौन विज्ञान (काम शास्त्र) की सैकडो गूढ समस्याओं, यौवन के रहस्यो और पेचीदा बातो को, खुलासा और खूब खोलकर समझाया गया है।

● पुस्तक के तीसरे खण्ड मे, सृष्टि के शुरु से लेकर १९६६ तक की हुई "काम विज्ञान" की एशिया अफ्रीका और यूरोप मे हुए एक हजार से ऊपर वैज्ञानिक खोजों का पूर्ण विवरण दिया गया है। विज्ञान के प्रकाश मे पुराने कोकशास्त्र की गलत बातो का और हजारों-लाखो सालो से चली आ रही गलतफहमियो को दूर किया है।

● "पुरुषों" और "स्त्रियों" को सताने वाले सब प्रकार के गुप्त रोगो का परिचय, निदान तथा उनका आयुर्वेदिक, यूनानी, प्राकृतिक चिकित्सा और एलोपैथिक का आधुनिक पेटेण्ट इलाज चार्टों के रूप मे दिया गया है।

कई सौ चार्टो तथा दुर्लभ चित्रो वाली सजिल्द पुस्तक-रत्न का मूल्य केवल ८.०० । डाक खर्च अलग।

३. एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा नवनीत चार्टस तथा एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा विश्वकोष

● सन् १९६६ मे दूसरी बार छपे नये सस्करण मे पुरानी और बन्द हो जाने वाली दवाइयो को निकाल कर नई-नई पेटेण्ट औषधियो को बढा दिया है। पेटेण्ट औषधियो और इन्जेक्शनो के मूल्यो को भी बताया है। किस रोग की कौन सी दवा सबसे सस्ती और कौन सी दवा सबसे महगी है। इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

● इसके १९६५ मे छपे पहले सस्करण मे पाच सौ के लगभग चार्टस थे। अब १९६६ के नये सस्करण मे आठ सौ के लगभग चित्र तथा चार्ट है। पुस्तक का आकार, लम्बाई-चौडाई आदि भी ज्यादा कर दी है। पहिले सस्करण मे रोगो की केवल पेटेण्ट चिकित्सा दी थी। अब इसमे कई सौ रोगो का पहिले परिचय और निदान दिया है, बाद मे उनकी चार्टो के रूप मे पेटेण्ट चिकित्सा दी है। हिन्दी तो क्या? ससार की किसी भी भाषा मे ऐसी अनोखी पुस्तक नही छपी है। आठ सौ के लगभग चित्रो तथा चार्टो से सजी पुस्तक रत्न का मूल्य केवल आठ रुपये। डाक खर्च अलग।

४. अनुभव के मोती, डाक्टरो के अनुभव तथा अनुभव विश्वकोष

● इसमे पहिले प्रत्येक रोग का परिचय, कारण लक्षण, और निदान आदि चार्टो के रूप मे खूब खुलासा करके, विश्वविख्यात डाक्टरो के हजारो बार के अनुभूत, सरल से सरल योग (डाक्टरी चुटकुले) दिये गए है। ये एलो-

पैथिक चुटकुले सस्ते है, बनाने मे बिलकुल सरल है साथ ही रोगो को दूर करने मे भी सफल सिद्ध हुए है ।

ब्रिटिश फार्माकोपिया लन्दन, पजाब होस्पीटल फार्माकोपिया, दिल्ली 'डिस्पैन्सरीज फार्माकोपिया, आदि के सैकडो उपयोगी नुस्खो का पूरा पूरा हाल तथा एशिया, अफ्रीका और यूरोप की सैकडो सरकारी डिस्पैन्सरियो मे रात-दिन काम मे आने वाले सब प्रकार के कई सौ योगो के नुस्खे, उनके बनाने की विधिया, मात्राये, सेवन विधिया तथा विशेष गुणो आदि का बिल्कुल नए ढग से वर्णन किया है ।

सैकडो चार्टो-चित्रो से सजी, ६७२ पृष्ठो की सजिल्द पुस्तक का मू०केवल छ रुपया डाक खर्चअलग ।

५. निदान नवनीत चार्टस तथा निदान विश्वकोष

इस "निदान विश्वकोष" मे रोगो के शब्द-कोष, प्रत्येक रोग का सही निदान, रोग का परिचय, रोग के कारण, रोग के लक्षण, रोग की पहचान, रोग परिणाम, आजकल का निदान करने की नई-नई विधिया, निदान सम्बन्धी अब तक के हुए नये-नये आविष्कार, रोगो के सम्बन्ध मे आयुर्वेद के ऋषियो, यूनानी के हकीमो तथा एलोपैथिक डाक्टरो की अलग अलग अमूल्य रायें, अवैज्ञानिक पुस्तको की बहुत सी बेबुनियाद तथा गलत बातो का खण्डन, निदान-सम्बन्धी सैकडो प्रश्नो के चार्टो के रूप मे उत्तर और विश्वविख्यात हजारो डाक्टरो के निदान-सम्बन्धी जीवन भर के बहुमूल्य अनुभवो तथा खोजो का विस्तृत वर्णन, बिल्कुल नये ढङ्ग मे चार्टो एव चित्रो के रूप मे किया गया है ।

कई सौ चित्रो, चार्टो और कोषो से सजे आठ सौ के लगभग पृष्ठो से भरपूर हिन्दी के सर्वप्रथम इस विशाल निदान विश्वकोष का मूल्य केवल आठ रुपया । डाक खर्च अलग ।

६. कामविज्ञान विश्वकोष (आधुनिक काम विज्ञान)

इसमे काम विज्ञान की प्रत्येक शाखा का एशिया, अफ्रीका और यूरोप मे हुई अगस्त १९६७ तक का हजारो नई-नई खोजो का पूरा-पूरा हाल दिया है । "पुरुषो तथा स्त्रियो" के समस्त गुप्त रोगो का नए ढङ्ग से वर्णन है । कई सौ चित्रो, चार्टो तथा तालिकाओ से सजी पुस्तक का मूल्य केवल आठ रुपये ।

७. स्त्री रोग चिकित्सा नवनीत चार्ट्स, स्त्रीरोग विश्वकोष (बाल रोग परिशिष्ट सहित)

इसमे स्त्रियो को सताने वाले सब प्रकार के रोगो का निदान आदि देकर उनकी 'एलोपैथिक', आयुर्वेदिक, यूनानी तथा प्राकृतिक चिकित्सा आदि का चार्टो के रूप मे नए ढङ्ग से विवरण दिया है । मूल्य केवल २ ५०

८. काम सूत्र नवनीत चार्ट्स (सोलह परिशिष्टों सहित)

इसमे वात्सायन की ससार प्रसिद्ध सस्कृत की पुस्तक "कामसूत्र" का सार चित्रो तथा चार्टो के रूप मे दिया गया है । सोलह परिशिष्टो मे "काम विज्ञान' के विचित्र अङ्गो के सम्बन्ध मे विश्वविख्यात वैज्ञानिको के नए-नए विचार तथा कई सौ खोजे दी है । मूल्य ५ ००

९. परिवार नियोजन –सुख का आयोजन

इसमे परिवार नियोजन के प्रत्येक पहलू को चित्रो, चार्टो तथा तलिकाओ द्वारा स्पष्ट किया है । लगभग दो सौ चित्रो, चार्टो, तालिकाओ तथा सारिणियो मे सजा पुस्तक का मूल्य ६ ०० । डाक खर्च अलग ।

१०- पुरुष रोग चिकित्सा नवनीत चार्ट्स तथा पुरुष गुप्त रोग विश्वकोष

इसमे पुरुषो के होने वाले सब प्रकार के गुप्त रोगो का निदान आदि देकर उनकी एलोपैथिक, आयुर्वेदिक, यूनानी तथा प्राकृतिक चिकित्सा का चार्टो के रूप मे नए ढङ्ग से वर्णन किया है । मूल्य २.५०

गुप्त रोग चिकित्सा नवनीत चार्टस तथा गुप्तरोग विश्वकोष (बालरोग परिशिष्ट सहित)

इस पुस्तक मे पुरुषो तथा स्त्रियो के सब प्रकार के रोगो का अपटुडेट एलोपैथिक, आयुर्वेदिक यूनानी, प्राकृतिक चिकित्सा तथा बिजली से इलाज आदि नए ढङ्ग से दिया है, मूल्य केवल ३ ०० ।

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़, (अलीगढ़)

१—सर्वरक्षा मंत्रौषधिसार संग्रह

इस पुस्तक मे हर प्रकार के झारने के असली कठस्थ मंत्र है तथा अनेक रोगो पर आजमाये हुये औषधियो के पाठ है। मत्र जैसे-सर्प, बिच्छू, जहर, बुखार, बाता, चोरा पेट दर्द, पेट के रोग,, घाव, माथा, आख के दर्द व फुल्ला दात के दर्द, थनैला, गाहा आदि झारने के असली मत्र है विषपर हाथ चलाने, थाली साटने, गाडउ बाधने का मत्र है और इन रोगो पर आजमाये हुए औषधियो के पाठ है और भूत प्रेतादि झारने का मंत्र है तथा लोटा घुमाने, चोरी गये हुये पर कटोरा चलाने का मत्र, नोह पर चोरी गये माल का पता लगाने के अनेको प्रकार के मत्र हैं। खाउ बाधने, लाठी बाधने, देह बाधने, अग्निबान शीतल करने अग्नि बुझाने का मंत्र और हनुमान देव को प्रकट करने के तीन महा मंत्र है, पीरसाहेब को हाजिर करने का मंत्र, फल आदि भगाने का मत्र, बथान खूटने, खुरहिया, छरका, कान्ह, फोड़ा, आदि झारने के मत्र है। सब रोग झारने का असली श्रीराम रक्षा मंत्र भी है। पुस्तक के आदि से यात्रा बनाने और सगुण निकालने का विचार भी है। कहा तक लिखा जाय पुस्तक मगाकर स्वयम् देखिये। मूल्य केवल ६ ८७ न. पै है।

२—सर्पादि विष मंत्रौषधि सार संग्रह

इस पुस्तक मे जगम विषधारी जन्तुओ जैसे-सर्प बिच्छू, कनगोजर, बिम्हनी, भौरा, सियार, कुत्ता, चूहा, बेग (मेढ़क) आदि विषधरो के विष झारने का असली कठस्थ मत्र है। ये मत्र अच्छे-अच्छे मन्तरियो से कठस्थ मत्रो को लिखाकर शुद्धता पूर्वक छपवाया गया है और आजमाये हुए औषधियो के अनेक पाठ दिये गये है जिससे इसके सभी मत्र और दवा चलनसार है। इस पुस्तक की एक-एक प्रति प्रत्येक मनुष्य को रखना चाहिये सर्प और बिच्छू कहा नही है ? इससे एक न एक दिन सभी को जरूरत पड़ जाती है। इसके सभी [illegible] दूसरो को भी दिखाया कीजिये जो आपका [illegible] उपकार होगा जिससे आप महान् पुण्य के भागी होंगे, संसार में आपका यश और कीर्ति होगी। मूल्य ५ ७५ है।

३—सर्व विष मंत्रौषधि सार संग्रह

इस पुस्तक मे स्थावर विष जैसे [illegible], अफीम, सखिया, धतूरा, थूहर, कनेर आदि के विष झारने के मत्र और औषधियो के अनेक पाठ दिये है। सर्पादि विष मंत्रौषधिसार सग्रह और सर्व विष मन्त्रौषधिसार संग्रह" ये दोनो पुस्तक रखने से दोनो प्रकार के विषो के जानकार हो जायेंगे। मूल्य ३ ७५

४—ग्रन्थ उसरा रोग

गाय, बैल, भैंस आदि जानवर रखने वाले मनुष्यों के लिये यह ग्रथ बहुत उपयोगी है क्योकि इस ग्रन्थ में जानवरो के होने वाली बीमारियो के झारने का मन्त्र और आजमाये हुए औषधियो के अनेक पाठ दिये गये हैं। मन्त्र मे बथान खूटने, बिगाडे हुये गाय भैंस को झारने का मन्त्र व सर्प बिच्छू, घाव, जानवरो के उगहा बीमारी झारने का मन्त्र है व श्री रामरक्षा, शीतलाष्टक स्तुति आदि अनेको प्रकार के मन्त्र है। मूल्य १ ५०

५—हनुमत्पाठ

इस छोटी सी पुस्तक मे हनुमान जी के प्रगट करने के तीन महा मन्त्र है व श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदास जी के बनाये हनुमान चालीसा, बजरंगबान-संकटमोचन है। हरिदास जी का रचा हुआ हनुमत्सन्ध्या वन्दन पाठ है। जैसे-तुम शत्रुसंघारन असुरविदारन जन के तारनहारो जी। हनुमान जी का प्रात कालीन भजन और अनेको स्तुतिया भाषानुवाद है अन्त मे आरती लिखकर समाप्त की गई है। आरती जैसे—आरती कीजै हनुमान लला की दुष्टदलन रघुनाथ लला के हो। मूल्य १ ०० रु.

६ बावन जंजीरा

बावन जंजीरा रामरक्षा मन्त्र के समान अनेक प्रकार की व्याधियों के झारने के काम में आता है। इससे झारने से बिच्छू, सर्प, टकना-अफीम आदि के विष उतर जाते हैं तथा उन्माद, मृगी वाले को झारने से आराम हो जाता है। इसके सिद्ध करने की विधि भी लिखी गई है। भूत-प्रेत, पिशाच आदि झारने से भाग जाते हैं। देह बाधने, भूत भगाने विकटमार्ग में बाघ, हुडार, सियार, कुत्ता, भालू, बिलार, चोर, सर्प, बिच्छू आदि से बचने और दाढ दर्द कीड़ा और कुत्ते के विष झारने के भी जजीरे हैं और विष झारने के बिरहुली मन्त्र, बवासीर में खून बन्द करने के लिये पानी पढने, धन के घाव झारने के तथा और भी अनेकों प्रकार के जजीरे हैं। सगुणनिकालने का वशावली सगुनौती विचार है जिसमे भी अपना मनोरथ होने या न होने का शुभाशुभफल देख सकते हैं। अक्षर सुन्दर साफ छपा हुआ है। म० १ ५० पैसे है।

७ सगुनौती

इस पुस्तक मे सगुण निकालने के अनेकों चक्र बने हुए हैं। दूब, चक्र मे धर दीजिये जो होने वाला होगा निकल आवेगा। कौडी का पाशा या चन्दन के चौपहल मे अ, ब ज द लिख दीजिये और पाटिये जो अक्षर आवे लिखकर सगुण देख लीजिये जो शुभ और अशुभ फल होने को होगा निकल आवेगा यात्रा बनाने मे योगनी और चन्द्रमा का विचार है। रास्ता चलने मे गीदड बिलार, कुत्ता, सर्प इनके किस तरफ चले जाने से यात्रा मे हानि नही होगी उसका विचार है और मकान सम्बन्धी बहुत सी बाते लिखी गई है जो पढने से पता लगेगा। मूल्य ५ ७५ पै

८ प्रातः कालीन भजन संग्रह

भोर के समय जिस प्रातःकालीन भजनों को गाते सुनते है वही भजन इस पुस्तक मे है जैसे—प्राण से प्रिय राम जी हमरो। मैं न जिअब बिनु राम जननी। शरण गहो सिया राम के सिया जी। जागु अब भये भोर बन्दे। जाहु जी वसदेव गोकुला। देखहु जी एक बाला योगी मेरे द्वार पर आया है। भजन विवाह के समय का मगल-राजा जनक जी कठिन प्रण कैलन अब सिया रहलै कुमार सोहर-सभवा लगाये राजा दशरथ चेरिया अरज करै जी। आरती-आरती कीजै श्रीरामचन्द्र जी की हरिहर। जसुमति आरती उतारै हे आजु गोकुल गृह पाहुना। इसी प्रकार अनेकों प्रकार के भजन, मगल-सोहर, आरती और भगवान की स्तुतिया है जिनके मानस हृदय मे भगवान की भक्ति निवास करती है वे इस पुस्तक को मगा कर भगवान का गुणानुवाद गावे। मूल्य २ ५० पै

९ श्री रामरक्षादिक मन्त्र (दूसरी आवृति)	० ५०
१० गजल (उर्दू अक्षरो मे छपी हुई)	० ७५
११ कबीर स्तोत्र शब्द सग्रह	४ ७५
१२ कबीर अराधना रीति	३ ७५
१३ निर्भय ज्ञान	२ ७५
१४ ग्रन्थ साखी	१ ७५
१५ कबीर गोरख गुष्टी	१ २५

नोट—जो सज्जन एक साथ सभी पुस्तके मगायेगे उन्हे १ रुपये मे १० पैसे कमीशन बाद कर भेजी जायगी।

बिना एडवास के पुस्तकें नही भेजी जायगी। सभी पुस्तको के मगाने वाले को १० ०० एडवास भेजना होगा। कम पुस्तक मगाने वाले ३ ०० भेजें।

पता—पद्म पुस्तकालय, मु. पो. नौआवां,
भाया-अस्थावां, जिला-पटना (बिहार)
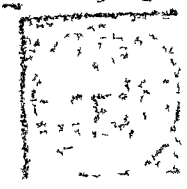
धत्तेभरं कुसुमपत्र फलावलीनां घर्मव्यथां वहति शीतभवां रुजं च।
यो देहमपर्चयति चाप्य सुखस्य हेतोस्तस्मै वदान्यगुरये तरवे नमस्ते ॥

—भवभूति

भाग २८ | वनौषधि–विशेषांक (पांचवां भाग) | फरवरी
अङ्क २-३ | | १९६९

वनौषधि–प्रार्थना
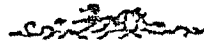
अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम्।
धन्या महीरुहा येभ्यो निराशा यान्ति नार्थिन ॥

जो किसी भी याचक को निराश नही करते, तथा सबके जीवनमे काम आते है, ऐसे परमार्थी वृक्षो का जन्म ससार मे सार्थक, श्रेष्ठ तथा धन्य है।

नाशयित्री बलासस्यार्शस उपचितामसि।
अथो शतस्य यक्ष्माणा पाकारोरसि नाशिनी ॥ —यजु० १२।९७

हे औषधे! तू कफ रोग एव बढे हुये अर्श रोग की नाशक है। इसी प्रकार शोथ, राजयक्ष्मा आदि अन्य विविध प्रकार के रोगो को तू दूर करती है। अर्थात् वनौषधियो मे अनेक दुसाध्य एव कठिन रोगो के नाश करने वाली शक्ति है।

शत वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वोरुहः।
अधा शत क्रत्वो यूयमिमं मे अगदकृत ॥ —यजु० ११।७६

हे मात तुम्हारे सैकडो उत्पत्ति स्थान है, और हजारो अकुर है। अत सैकडो कार्यो को पूर्ण करने वाली हे वनौषधे! तुम मेरे इस शरीर को नीरोग्य करो।

वनौषधि—प्रशस्ति
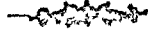
औषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वाइव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥

—शतपथ ब्रा० १-३-८

हे औषधियो ! आप रोगियो पर प्रसन्न हो । आप पुष्पो व फलो वाली हो । अश्व के समान रोगो को जीतने हुए पुरुषो को नीरोग करने वाली हो ।

अश्वथो वटवृक्ष चन्दनतरुः मन्दार कल्पद्रुमो ।
जम्बू निम्ब कदम्ब आम्र सरला वृक्षाश्चयेक्षीरिणा ॥
सर्वे ते फल संयुक्ता प्रतिदिनं विभ्राजन राजते ।
रम्यं चैत्ररथं सुनन्दन वनं कुर्वन्तो नो मङ्गलम् ॥

—सुभाषित रत्न

पीपल, बरगद, चन्दन, मदार, कल्पवृक्ष, जामुन, नीम, कदम्ब, आम, साल सभी दूध वाले वृक्ष जो प्रतिदिन फलो से लदे हुए इस वन मे शोभायमान हे हमारा कल्याण करें ।

दिव्यौषधीनां बहवः प्रभेदा वृन्दारकाणामिव विस्फुरन्ति,
ज्ञात्वेति सन्देहमपास्य धीरैः संभावनीया विविध प्रभावाः ॥

—शार्ङ्गधर

जैसे देवताओ के अनेक भेद प्रभेद है, तैसे ही दिव्यौषधियो की अनेक जाति उपजतिया ह। इस प्रकार की विविधता को देखकर चिकित्सक सदेह मे पड जाता है । उसे धैर्य पूर्वक औषधियो के गुण, कर्म, प्रभावादि का ज्ञान कर नि सदेह होकर चिकित्सा कार्य का सम्पादन करना चाहिये ।

ओऽम् ! मधुमतीरोषधीर्द्याव आपो, मधुमन्नो भवत्वन्तरिक्षम् ।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम ॥

—अथर्ववेद कांड २०, सूक्त १४३

हमारे लिये औषधिया रसो से परिपूर्ण तथा गुणवती हो । सूर्य, चन्द्र एव नक्षत्र आदि से युक्त द्युलोक तथा जल एव जलीय पदार्थ मधुमय हो । अन्तरिक्ष और उससे प्राप्त होने वाले पदार्थ हमारे लिये मधुमय हो । हमारा क्षेत्रो का पालक कृषक वर्ग मधुर अन्न आदि पदार्थो से सम्पन्न होकर हमारे लिये सुखदायी हो । हम परस्पर द्वेष और हिसा भाव से मुक्त होकर सभी शुभ कार्यो मे सहयोगी एव सहायक हो ।

बरना (Crataeva Religiosa)

वटादिवर्ग एवं अपने वरुणकुल × (Capparidaceae) के प्रमुख, इस बडे १५-३० फुट ऊचे वृक्ष की शाखायें फैली हुई, अनेक एव शुभ्रवर्ण के रेखाकृति चिह्न युक्त, छाल- चिकनी, धूसर वर्ण की, आधी इञ्च मोटी, अनुप्रस्थ (बेडे) दिशा मे चीरो से युक्त, पत्र शाखाओ के निम्न भाग पर २-४ इञ्च लम्बी डण्डियो पर, बेल पत्र जैसे त्रिदल युक्त लगभग २-६ इञ्च लम्बे, १½ इञ्च चौडे, बर्छी के आकार के, पत्रवृन्त—एरण्ड के वृन्त जैसे लम्बे, पत्रक अण्डाकार, उदर भाग मे हरे, पृष्ठ भाग में श्वेताभ, तीक्ष्णाग्र युक्त मसलने पर एक प्रकार की तीक्ष्ण गन्ध युक्त,पुष्प—वसत ऋतु मे नीलाभश्वेत २-३ इञ्च लम्बे (श्वेत गुलतुर्रा जैसे) सुगन्धित, फल नीबू, जैसे १½ इञ्च व्यास के, पकने पर लाल रङ्ग के हो जाने वाले, भीतर की मज्जा पीताभ, बीज-मज्जा में लिपटे हुए, छोटे, चिकने, टेढे मेढे, पिङ्गल वर्ण के होते है । वृक्ष का काष्ठ भाग पीताभ श्वेत, साधारण कडा होता है ।

इसके वृक्ष भारत मे प्राय सर्वत्र विशेषत मध्य भारत, बङ्गाल, आसाम, मालाबार, कर्नाटक आदि मे स्वयजात अधिक पाये जाते हैं । दक्षिण मे जलीय स्थानो मे अधिक होते है ।

नोट--१-इसके पत्र, पुष्प, व कच्चे फलो का स्वाद तिक्त (कडुआ) होता है । फल पकने पर किंचित मधुर हो जाते हे । महाराष्ट्र की ओर ग्रीष्म ऋतु में इसके नूतन कोमल पत्रो का तथा फूलो का शाक बनाया जाता है । इनमे कडुआपन अधिक होने से प्याज मिलाया जाता है ।

२- सुश्रुत के वरुणादि, वाताश्मरी, कफाश्मरी नामक गणो मे इसकी प्रधानता है ।

३- कोई कोई चिरईगोडा बूटी को ही भ्रमवश बरुन (बरना) मानते हैं । चिरईगोटा का प्रकरण भाग ३ मे देखिये ।

४- बाजारो मे देखा गया है कि पंसारी लोग इसके स्थान मे बेल के पत्र और छाल दे देते है या असली बरना मे बेल पत्रादि मिलाकर देते हे । अत परीक्षा कर के लेना चाहिये । इसके पत्रो को मसलने से तीक्ष्ण, तीव्र असहनीय गन्ध आती है तथा स्वाद मे कडुआपन जीभ मे कुछ झनझनाहट पैदा करने वाली तीक्ष्णता । छाल आदि का वर्णन ऊपर कहा गया है । तदनुसार
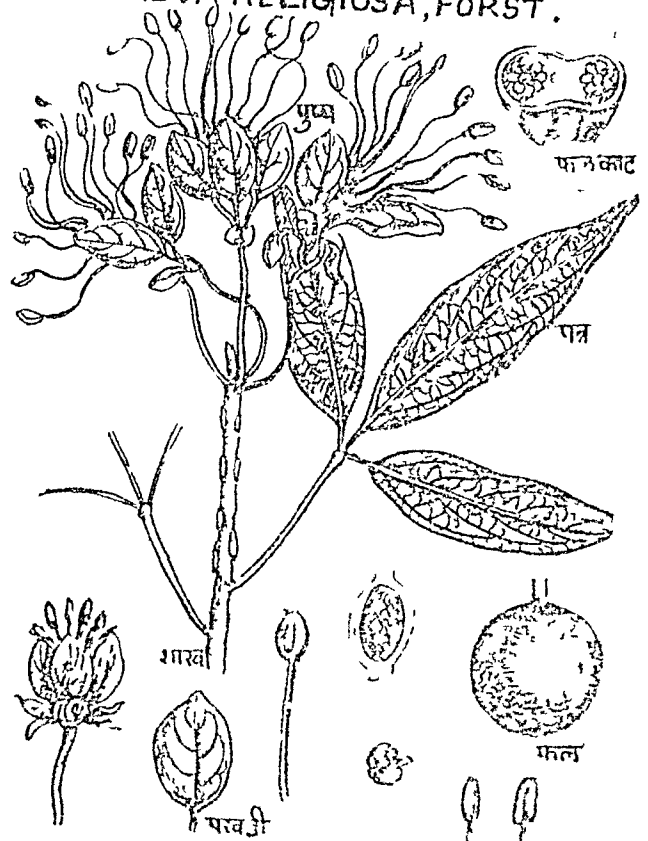
× इस कुल के वृक्ष के पत्र एकाकी या सयुक्त, एकान्तर द्विबीजपर्ण, विभक्त दल पुष्प बाह्य कोश के तथा आभ्यन्तर कोश के दल ४-४, स्त्री केशर नलिका बहुत छोटी अध स्थ बीज कोश युक्त होते है ।

परीक्षण करके ही इसे लेना उपयुक्त होता है अन्यथा कोई लाभ नही होता ।

नाम—

स —वरुण, वरण, कुमारक, अश्मरिघ्न, तिक्तशाक

हि —वरना, बरुणा, विदासी, बिलिअाना इ ।

म —वायवरना हाडवर्णा । गु —वरनो, कागडाकेरी

व —वरुण, तिक्तोशाक । अ —थ्री लीव्हड केपर (Thiee leaved caper), होली गार्लिक पियर (Holy garlic pear) ।

ले०—क्रेटेव्हा रिलिजिओसा क्रेटेव्हानुरवाला (Crataeva Nurwala) ।क्रे०राक्सबर्घी (C Roxburghii)

रासायनिक संगठन—

इसकी छाल मे एक साबुन जैसा सेपोनिन (Saponin) सत्व पाया जाता है । छाल के अर्क या टिंचर से तेल का दुग्धीकरण (Emulsion) होता है ।

प्रयोज्याङ्ग—छाल, मूल, पत्र, फल, पुष्प ।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, मधुर, कषाय, कटुविपाक, उष्णवीर्य, प्रभाव मे भेदन है । दीपन, अनुलोमन, कफवात शामक, पित्तवर्धक, कटुपौष्टिक, पित्तसारक, रक्तशोधक, मूत्रल, अश्मरी भेदक तथा अग्निमाद्य, शूल, गुल्म, वातविकार, यकृत एव प्लीहा विकार, कृमि, ज्वरादि मे प्रयुक्त होता है ।

छाल—दीपन, पाचन, बल्य, मृदुविरेचक व अश्मरीघ्न है । इसकी छाल की क्रिया मूत्राशय पर विशेष रूप से होती है । अश्मरी, बस्तिशूल, मूत्रकृच्छ्रादि पर यह पुनर्नवा, गोखरू, अपामार्ग, जवाखार, मुलैठी आदि मूत्रल द्रव्यों के साथ दी जाती है । ज्वर तथा त्वचा के कुछ साधारण विकारो पर भी यह उपयोगी है । यह वमन निवारक एव जठराग्नि के प्रदाह को दूर करती है। गण्डमाला मे इसका क्वाथ शहद मिलाकर देते है और इसका लेप भी करते है । शोथ या विद्रधि मे इसे पुनर्नवा के साथ देते है । मूल की छाल विशेष मूत्रल होने से यह अकेली ही या गोखरू, काली सारिवा आदि द्रव्यो के साथ शोथ, अश्मरी आदि मूत्र विकारो मे दी जाती है ।

उक्त विकारो मे तथा अन्य विकारो मे छाल का क्वाथ इस प्रकार बनाया जाता है—१० तो छाल को जौकुट कर एक सेर जल मे पका, ५० तोला तक शेष रहने पर, छानकर, ठण्डा कर उसमें एक तोला शहद मिला २-३ बार पाच से दस तोला की मात्रा मे देते है। यह परिवर्तित ज्वर नाशक व बल्य भी है। इस क्वाथ को व्रणशोथ, विद्रधि, गण्डमाला, वातरक्त आदि मे भी देते हैं तथा छाल का लेप भी करते है ।

अश्मरी, वस्तिशूल पर—

अश्मरी पर—इसकी जड का चूर्ण ३ मा० की मात्रा मे घृत के साथ देकर ऊपर से इसी चूर्ण का उक्त विधि से बनाये हुये क्वाथ को पिलाते रहने से अश्मरी गल कर निकल जाती है । अश्मरीजन्य-शूल भी दूर होता है। १-१ घण्टे पर ३-४ बार देने से अश्मरी का भेदन होकर शूल शमन होता है । अथवा इसकी छाल के साथ गोखरू व काली सारिवा समभाग मिला ४-४ तो० का क्वाथ कर ३-४ बार पिलावें । —गा० औ० र०

वातज अश्मरी हो तो—छाल के साथ सोठ, गोखरू समभाग मिला क्वाथ कर २½ से ५ तो०की मात्रा मे थोडा जवाखार १मा० और १तोला गुड मिलाकर सेवन करावे। जीर्ण वातज अश्मरी नष्ट होती है । अथवा—वृहद्वरुणादिक्वाथ- प्रयोग देखिये आगे विशिष्ट योगो मे । भै र ।

अथवा लघुवरुणादिक्वाथ—इसकी छाल के साथ पाषाणभेद, गोखरू, कुलथीबीज समभाग के क्वाथ मे जवाखार १ मा मिलाकर सेवन करें । यह अश्मरी भेदक है ।

अथवा— इसकी छाल का क्षार (क्षार-विधि आगे विशिष्ट योगो मे देखिये) १ भाग मे जवाखार ½ भाग,तथा गुड ½ भाग एकत्र मिलाकर इन सबको ¼ भाग घृत में मिलाकर रख लें । मात्रा १ तो उष्णजल के साथ सेवन से कष्टसाध्य अश्मरी भी नष्ट हो जाती है । -ब से ।

अथवा- छाल के क्वाथ मे केवल गुड १ तो० मिला-कर या क्वाथ मे छाल के ३ मा चूर्णको मिलाकर पीने से भी अश्मरी निकल जाती है। तथा वस्तिशूल नष्ट होता है —ग नि, भै र.। कफज अश्मरी हो तो इस क्वाथ मे जवाखार मिलायें।

अथवा छाल की राख को पानी मे घोलकर कई बार छान कर रख दें। फिर ऊपर का स्वच्छ जल नितार कर उसमे इसी की छाल का महीन चूर्ण और जवखार मिलाकर पकावे। जब शुष्क चूर्ण हो जाय तो उसे निकाल कर गुड के साथ सेवन से घोरतर पत्थर जैसी कड़ी एव पीडादायक अश्मरी और अग्निमाद्य का नाश होता है। —वा से

नोट—ध्यान रहे उक्त प्रयोग वातज या कफज अश्मरी पर ही किये जाते है पित्तज अश्मरी पर नही। कारण वरना स्वय पित्त प्रदायक है। आगे विशिष्ट योगो मे 'वरुणादि घृत का योग देखे।

(२) गण्डमाला या गलगण्ड, विद्रधि, अण्डवृद्धि, शोथ युक्त वेदना तथा जलोदर व व्यग पर—

इसकी छाल तथा कचनार दोनो की एकत्र छाल के क्वाथ मे शहद मिलाकर प्रात साय ३-४ महीने तक पिलाने और इसकी छाल का लेप करते रहने से रक्त शोधन होकर गलगण्ड (Goitre) तथा नूतन गण्डमाला दूर हो जाती है। इससे चिरकालीन गण्डमाला मे भी लाभ होता है। —गा औ र

विद्रधि पर—विद्रधि की अपक्वावस्था में इसके मूल या मूल की छाल का क्वाथ लाभदायक है।

कफज विद्रधि हो तो—छाल के साथ त्रिफला, सेंह-जना की छाल और दशमूल मिला क्वाथ बनाकर उसके साथ शुद्ध गूगल का सेवन प्रशस्त होता है।

अन्तर्विद्रधि—छाल के क्वाथ मे कसीस, सेंधानमक, शिलाजीत और हीग का चूर्ण मिलाकर सेवन से प्रवृद्ध अपक्व अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है।—ग० नि०, यो० र०

नोट—अन्तर्विद्रधि, गुल्म, मेद आदि पर विशिष्ट योगो मे वरुणादि क्वाथ देखिये।

अण्डवृद्धि पर—छाल के साथ वन्दा, दशमूल और शतावर समभाग लेकर क्वाथ बनावे। सेवन से विशेषत वातज अण्डवृद्धि मे लाभ होता है। —हा. सं

शोथ पर—आभ्यन्तरिक दाह एव पूययुक्त शोथ (यह भी अन्तर्विद्रधि है) इसकी छाल ५ भाग और पुन-र्नवा मूल २ भाग जौकुट कर अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर १½ से २½तो या ५तो तक की मात्रा मे पिलाते है। इससे अण्डकोष के शोथ पर भी लाभ होता है। —नाडकर्णी

साधारण दर्द और शोथ या वेदनायुक्त शोथ पर—जड की छाल का रस निकालकर समानभाग मीठे तेल (तिल या अलसी तैल) मे मिलाकर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर रखलें। इसके मलने से लाभ होता है। —डा महाराव महेन्द्रसिंह वैद्य, मेरठ

जलोदर पर—इसकी जड की छाल, गोखरू और सोठ एकत्र मिला क्वाथ कर, उसमे शहद व जल मिला कर सेवन कराते है।

व्यङ्ग तथा नीलिका पर—इसकी छाल को बकरी के मूत्र में पीसकर (कोई बकरी के दूध में पीसते हैं) लेप करने से व्यङ्ग (चेहरे की झाई) दूर हो जाती है। —भा. प्र.

देह के अन्य भाग पर उत्पन्न व्यङ्ग (नीलिका) पर भी यह प्रयोग लाभदायक है।

(३) वातव्याधि, आमवात, कासश्वास, ज्वर मे—चित्तभ्रम होने पर--वात व्याधि -(वरुणादि स्वेद) इसकी छाल के साथ दोनो प्रकार की एरण्डी की छाल, मुण्डी (गोरखमुडी), सेंहजना की छाल, शतावर, गोखरू और सरसो एकत्र मिलाकर किये हुये क्वाथ की भाप (वाष्प) या बफारा देने से वात व्याधि नष्ट होती है। —ग नि

वात वेदना मे—जड की छाल के साथ सेहजने की छाल को काजी में पीसकर लेप करते हैं।

आमवात (गठिया) पर—जड की छाल (या छाया शुष्क ताजे पत्तो) का चूर्ण ३ या ४ माशे का मात्रा में घृत के साथ देते है। अथवा ताजे पत्रो का रस इस घृत के साथ देते हैं। जीर्ण आमवात मे भी शीघ्र लाभ होता है

कास पर—इसकी ताजी छाल २ तोला कूट कर १ सेर जल मे पकावे। २० तोला जल शेष रहने पर उसमे १ माशा सेंधानमक या २ तोला खाड मिलाकर प्रात साय पिलाने से हर प्रकार की खासी दूर होजाती है।

—डा० महाराव महेन्द्रसिंह जी वैद्य मेरठ।

ज्वर मे भ्रम (चक्कर आना) की विशेषता हो तो छाल को पीसकर सिर पर बाधने से बधन स्थान मे दाह होकर भ्रम के दूर होजाता है। रोगी शुद्धि पर आने के बाद बधन को खोलकर, उस स्थान को शीतल जल से धोकर वहा तैल का लेप करे, जिससे छाला न होवे।

—सकलित।

पत्र प्रयोग—

(४) अर्श—आन्त्रशोथ, आमवात, प्लीहावृद्धि तथा स्त्री रोग पर—अर्श—इसके पत्तो के क्वाथ मे अर्श वाले रोगी को बैठाने से (उसकी कमर तक क्वाथ का जल आजावे इस प्रकार बैठाना) अर्श जन्य तीव्र वेदना शीघ्र शमन होती है।

आन्त्र शोथ पर—इसके पत्रो के साथ पुनर्नवा (विष-खपरा) के पत्र समभाग १-१ तोला लेकर कूटकर ४० तोला जल मे पकावें। १० तोला शेष रहने पर छानकर पिलाने से आतो की सूजन दूर होती है—

—डा० महाराव महेन्द्रसिंह जी वैद्य, मेरठ।

आमवात (गठिया, सधिवात) पर—पत्र स्वरस १/२ से ३ तोला तक लेकर उसमे नारियल का तेल (कोई नारियल का दूध लेते हैं) और घृत (दोनो १ तोला) मिलाकर सेवन कराते, तथा एक कपडे की पोटली मे पत्रो को तथा छाल को बाधकर सेंक करते हैं।

प्लीहा वृद्धि पर—ताजे कोमल पत्रो को हाथो से मसलकर रस निकाल कर प्लीहा स्थान पर—नित्य मर्दन करते रहने से कुछ दिनो मे वृद्धि दूर हो जाती है।

—सकलित।

स्त्री रोग—शरीर के जिस स्थान पर केशादि को नष्ट करने वाले किकिम नाम के कृमि विशेष हो तथा तज्जन्य त्वचा का नष्ट हो जाना ददोरे उठना, खुजली आदि की विशेषता हो, तो प्रथम रोग स्थान पर गाय का गोबर मलकर जल के साथ पीसे हुए इसके पत्रो को खूब मलने से स्त्रियो का यह किकिम रोग शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

—भा० भै० र०।

योनिकण्डु—प्रथम खुजली वाले स्थान को गोबरी मे घिसे, या गाय के ताजे गोबर से मल कर इसके पत्रो का स्वरस लगाने से योनि की खुजली दूर हो जाती है। इस प्रयोग से उस स्थान की त्वचा मे दाह होने लगे तो थोडा घृत या नारियल का तेल लगावें।

(५) कास, श्वास, निमोनिया तथा भ्रम विकार पर—इसके पत्रो की राख मे दो गुना शहद मिलाकर, १ तोला की मात्रा मे चटाने से हर प्रकार का कास व श्वास दूर हो जाता है। अथवा—

इसके पत्रो तथा लकडी को जलाकर राख बना कपड छानकर समभाग खाड मिलालें। ६-६ माशा की मात्रा मे प्रातःसाय गरम जल से देने से हर प्रकार की खासी दूर होती है।

निमोनिया (वातकफोल्बण सन्निपात ज्वर, श्वसनक ज्वर) इसके २ तोला हरे ताजे पत्रो को या १२ माशा शुष्क पत्रो को ४० तोला जल मे मिलाकर पकावे। १० तोला शेष रहने पर नीचे उतार छानकर उसमें २ रत्ती सेंधानमक मिला पिलावे। इसी प्रकार दिन मे ३ बार पिलाने से लाभ होता है। साथ ही साथ—इसके ताजे पत्रो को कूटकर निकाले हुए १ सेर रस मे ४० तोला मीठा तेल मिलाकर पकाकर तेल मात्र शेष रहने पर छान कर शीशी मे रख लें। निमोनिया रोगी की छाती पर इस तेल को मलकर ऊपर से रुई को गरम कर बाध दिया करें।

—डा० महाराव महेन्द्रसिंह वैद्य, मेरठ।

भ्रम विकार (वातजन्य भ्रम) पर—पत्रो को महीन पीसकर मस्तक पर वस्त्र को चौघडी कर वेष्टन देकर, बीच मे पीसे हुए पत्रो के कल्क को रख बाध देवें। जब तक मस्तक मे वात का विकार होगा दाह या जलन प्रतीत नही होगी, वातविकार के दूर होते ही दाह होने लगेगी, तब वेष्टन को तथा कल्क को हटा कर उस स्थान पर नारियल का तेल चुपड देवें।

—व० गु०।

(६) कर्ण रोग, नासिका का विकार, हाथ पैरों की दाह व मेदा रोग पर—कर्ण रोग—(पूतिकर्ण, कान मे दुर्गन्ध युक्त एव पूय युक्त व्रण होने पर)—(तेल) इसके पत्रों के साथ आक, कैथ, आम और जामुन के पत्र समभाग १-१ सेर लेकर एकत्र कूट कर ४० सेर जल मे पकावे। १० सेर शेष रहने पर छान लें। इसमे उक्त पाचों प्रकार के पत्र ५ ५ तोला लेकर पीसकर कल्क बना कर डाल दे तथा २½ सेर तेल मिला मन्दआग पर पकावे तेल मात्र शेष रहने पर छान कर रख ले। इसे कान मे डालने से कान से पूय स्राव होना आदि बन्द हो जाता है।

—वृ० मा०

नासिका विकार—नाक की हड्डी मे क्षत हुआ हो, उसमें सडान पैदा हुई हो तो इसके पत्रों की बीडी बना या चिलम मे रखकर धूम्रपान कर, धूम्र को नाक के रास्ते से निकालते रहने से (लगभग १४ दिन में) क्षत भर जाता है, कृमि नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार का इसका धूम्रपान मस्तिष्कान्तर्गत व्रण में भी लाभकारी है।

हाथ पैरों की जलन (दाह) एव सूजन पर—पत्रों को बाघने या घिसने से जलन शीघ्र ही दूर हो जाती है। सूजन हो तो पत्रों को पीसकर गरमकर लेप करते हैं।

मेद रोग (स्थूलता) पर—इसके ताजे पत्रों तथा कोमल जडो के महीन टुकड़े कर, नारियल का दूध और घृत मिला, साग जैसा पकाकर खाते रहने से, अथवा केवल पत्रों का शाक प्रतिदिन नियमपूर्वक दो महीने तक खाते रहने से मुटापा दूर हो जाता है। —नाडकर्णी।

त्वचा पर छाला या फफोला उठाने के लिए—इसके ताजे पत्र को सिरके के साथ या नीबू रस के साथ या गरम पानी के साथ पीसकर त्वचा पर जहा छाला उठाना हो पुल्टिस जैसा गाढा लेप करने से प्रथम ५ से १५ मिनटों मे त्वचा लाल हो जाती है, और थोडी देर तक लेप को रखने से छाला उठ आता है। —नाडकर्णी।

इसी प्रकार इसकी छाल के लेप से भी फफोला उठाया जा सकता है।

फल—सारक, गुरु, मधुर, उष्ण वीर्य, मधुर, विपाकी वातहर, कफघ्न, यकृत प्लीहा वृद्धि, आमवात आदि में उपयोगी है।

(७) श्वास कास पर—इसके ताजे फलो को कूट कर, रस निकाल उसमे समभाग खाड मिलाकर आग पर शहद के समान शर्बत बना लेवे। मात्रा—६ मा. शर्बत मे ५ तोला गरम जल मिला प्रात तथा इसी प्रकार साय पिलाने से श्वास कास मे लाभ होता है। यदि यह शर्बत दिन मे ३ बार १० तोला जल मे मिलाकर यक्ष्मा (टी बी) मे दिया जावे, तो उसमे भी लाभ होता है। —डा० महाराव महेन्द्रसिंह वैद्य, मेरठ

(८) व्रणो पर—कच्चे फलो की पुल्टिस बनाकर बाधने से शीघ्र ही व्रण पाक होता है।

पुष्प—इसके पुष्प सकोचक तथा रक्तदोष नाशक है।

गोद—बरना के वृक्ष से जो गोद निकलता है वह विष विकार एव रक्त दोष नाशक है। नेत्रो मे यदि भूल से किसी विष के लग जाने से दाह तथा अश्रुस्राव आदि लक्षण हो, तो गोद को जल मे घिसकर आजने से लाभ होता है। —गा औ र १

नोट—मात्रा—छाल का क्वाथ २ से १० तोला तक। पत्र स्वरस ½ से २½ तो० तक। छाल या पत्तों का चूर्ण ३-४ माशा। क्षार १ माशा (घृत के साथ)। भस्म ३-६ माशा तक।

विशिष्ट योग—

वरुणादि क्वाथ—बरने की छाल, अगस्ति या (मौलश्री) पुष्प, बेल की छाल, अपामार्ग, चित्रक मूल, दोनो प्रकार की अरणी की छाल, दोनो सहेजने की छाल, छोटी व बडी कटेरी, तीनो (श्वेत, पीली व नीली) कटसरैया (पियावासा), मूर्वा, मेढासिंगी, चिरायता, काकडासिंगी, कुन्दरु, करज और शतावर (ये सब वरुणादिगण के द्रव्य है) समभाग का क्वाथ कफ, मेद, गुल्म, शिरशूल और अन्तर्विद्रधि नाशक है। —शा स।

नोट—यह क्वाथ उदर की विद्रधि पर उत्तम कार्य करता है। इसमे चित्रक के स्थान मे हमने पुनर्नवा मूल लेकर नित्य २½ तोला जौकुट किये हुए चूर्ण का ४० तो

जल में अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर आधा-आधा २ बार १-१ चम्मच शहद मिला कर सेवन कराया है। इससे लगभग २१ दिन मे उदर की शोथसहित विद्रधि नष्ट हो गयी, तथा शरीर का ज्वरांश भी दूर हो गया। फुफ्फुस की अन्तर्विद्रधि मे भी इससे लाभ होते देखा गया है। —सम्पादक।

वरुणादि क्वाथ न०२ (बृहद्वरुणादि क्वाथ)—वरुण छाल, सोठ, गोखरु बीज, मूसली, कुलथी बीज, तथा कुशादि पञ्च तृण मूल (कुश, कास, दर्भ, मू ज व ऊख की जड) और पाषाण भेद इनके एकत्र जौकुट किये हुए २ तोला चूर्ण को ३२ तोला जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर, छानकर उसमे खाड १ तोला और जवाखार १ माशा मिलाकर सेवन कराने से अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र तथा इन रोगो से उत्पन्न वस्तिशूल, और मूत्र के समय होने वाला शिश्नशूल नष्ट होता है। यह क्वाथ अश्मरी को फोडकर निकाल देता है। —भै र.।

(२) वरुण फाण्ट—इसके ताजे शुष्क पत्र चूर्ण १ भाग मे १० भाग उबलता हुआ जल मिलाकर ढक देवें। ठडा होने पर छान लेवे। यह फाण्ट कडवा एव सुगन्धित होता है। मात्रा—५ से १० तोला। यकृत्प्लीहा वृद्धि में तथा अजीर्ण में दिन मे २-३ बार सेवन से अपचन, आध्मान दूर होता और वमन बन्द होती है। अन्तर्विद्रधि में उक्त प्रकार से ही इसकी जड या जड की छाल का फाण्ट बनाकर दिन में ३ बार पिलाने से विशेषत अपक्व विद्रधि दूर हो जाती है।

(३) अर्क वरुण—(यक्ष्मा नाशक) छाया शुष्क इसकी छाल व पत्र ४ सेर, गिलोय २½ सेर, बनफशा पुष्प १½ सेर, साहतरा, चिरायता व गाजवा पुष्प ½—½ सेर, मुलहठी ४५ तोला, खूबकला १५तोला, इन सबको कूटकर एकत्र मिलाकर ३ भाग कर लेवे। प्रथम इसमे से १ भाग को ३० सेर जल मे रात्रि को भिगो, प्रात भबके से ३० बोतल अर्क खीच ले। फिर इस अर्क मे उक्त दूसरा भाग रात्रि के समय भिगो प्रात २० बोतल अर्क खीच लें। अब इस अर्क में उसी प्रकार तीसरा भाग मिला प्रातः १५ बोतल अर्क निकाल कर सुरक्षित रखें। प्रतिदिन मे ४ बार ५-५ तोला अर्क पिलाने से १५ दिन मे यक्ष्मा (T. B) दूर हो जाती है।

अर्क न०२—इसके पत्र १ सेर तथा जड की छाल, मुण्डी, चिरायता व सत्यानाशी मूल आधा आधा सेर लेकर कूटकर रात्रि को ३० सेर जल मे भिगो प्रात ३० बोतल अर्क खीच लेवे। ५-६ तोला अर्क दिन मे ३ बार पिलाने से सर्व प्रकार के रक्त दोष, विबन्ध, कठमाला आदि रोग नष्ट हो जाते है।

—श्री डा महाराव महेन्द्रसिंह जी
भारप, वैद्य H M D S
खारी कुआ, मेरठ शहर

(४) वरुणासव—इसके पत्र ५ सेर लेकर एक मन जल में भिगोकर प्रात भबके द्वारा ४० बोतल अर्क निकाल कर उसमे इसके हरे ताजे पत्र व फल १-१ सेर बनफशा ½ सेर, कॅकडा नहरी ५ तोला तथा बागपत्र, वासा पुष्प, धाय पुष्प २०-२० तोला, चीनी २ सेर मुनक्का आधा सेर, शहद २ सेर सबको एकत्र मिलाकर एक चीनी मिट्टी के बडे पात्र मे भर कर मुख बन्दकर रख दे। ३० दिन बाद खोलकर, छानकर बोतलो मे भर रख दें।

मात्रा—२ २ तोला दिन मे तीन बार सम भाग जल मिलाकर सेवन से हर प्रकार की खासी, ज्वर, दवारा आदि रोग नष्ट हो जाते है।

—डा० महाराव महेन्द्रसिंह वैद्य मेरठ

नोट—आसवारिष्ट के अन्य योगो के लिये हमारा बृहदासवारिष्ट संग्रह ग्रन्थ देखिये।

(५) वरुणादि घृत—बरने की छाल ५ सेर को जौ कुट कर १२ सेर ६४ तो०जल मे पकाये। चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर उसमें बरने की छाल, केले की जड, तृण पचमूल (कुस, कास, शर, दर्भ व ईख इन पाचो की जडें) गिलोय, शिलाजीत खीरे के बीज, बास की जड, तिलक्षार, पलाश क्षार और जूही की जड १-१ तोला सबको पीस कर बनाया हुआ कल्क मिलाकर १ सेर घृत मे मन्दाग्नि पर पकायें। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर रख लेवे। इसे देश तथा काल आदि की विवेचनापूर्वक

आधा से १ तोला तक की मात्रा मे सेवन कराने से अश्मरी, शर्करा, मुत्रकृच्छ्रादि रोग नष्ट होते है । इसे सेवन करने के वाद उसके पचजाने पर अन्य किसी पदार्थ के खाने से पूर्व मस्तु (दही के घन भाग का अलग करने पर जो पतला पानी सा भाग निकलता है उसे मस्तु या दही का तोड कहते है) के साथ पुराना गुड खाना चाहिये । —भै र ।

घृत न० २—वरुणादि गण के द्रव्य तथा गूगल, इलायची, रेणुका, कूठ नागरमोथा, कालीमिरच, चित्रक व दवदारु समभाग मिश्रित १ सेर लेकर सवका कल्क वना कर ७ मेर वकरी के दूध मे यह कल्क तथा इन्ही उक्त सव द्रव्यो का क्वाथ मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत कफज अश्मरी को नष्ट करता है। मात्रा– ६ से ८ वूद । —भै र

घृत न०३—वरुणादि गण के कल्क और क्वाथ के साथ सिद्ध किया हुआ घृत, प्रात भोजन के समय और रात्रि के समय (अथवा दिन मे ३ वार) आधा से १ तो तक की मात्रा मे सेवन से अन्तर्विद्रधि, शिरोवेदना, अग्निमाद्य और पाच प्रकार के गुल्म नष्ट होते है।—भै र

(६) वरुणादि तैल—वरने की छाल, पत्र, पुष्प व जड तथा गोखरु एकत्र ७ सेर जौकुट कर ६४ सेर जल में पकावे । १६ सेर शेष रहने पर छान कर इसे ४ सेर तिल तेल में मिला, मन्द आग पर पकावें । तेल मात्र शेष रहने पर छान लेवें । इस तेल का प्रयोग वस्ति [आस्थापन] द्वारा करने में शर्करा, अश्मरी शूल व मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है । —भै र

(७) वरुणक गुडपाक—उत्तम स्थान मे उत्पन्न, कृमियो से न खाये हुए, तरुण एव स्निग्धता युक्त वरना वृक्ष की छाल, शुभ दिन, शुभ मुहूर्त मे लाकर जौकुट कर २० सेर जल मे पकावे । ५ सेर जल शेष रहने पर, छान कर उसमे ५ सेर गुड मिलाकर पकावे । गाढी चासनी हो जाने पर उसमे सोठ, ककडी के वीज, गोखरू, पिप्पली पाषाणभेद, दूर्वा, पेठे के वीज, खीरे के बीज, कमलगट्टे, धनिया, वथुआ के बीज (अभाव मे वथुआ का मूल), सेंहजने की छाल, मुनक्का, छोटी इलायची, शिलाजीत, हरड व वायविडङ्ग प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोला मिलाकर पाक जमा देवे या मोदक वना ले । १ तोला से ५ तोला तक की यथोचित मात्रा मे प्रतिदिन पथ्यपूर्वक सेवन से समस्त दोषजन्य अश्मरी शीघ्र ही निकल जाती है ।—भा प्र.

नोट—पाकों के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे (वृहत्पाक सग्रह) ग्रन्थ मे देखिये ।

(८) वरुणादि लोह—वरना की छाल तथा आमला ७ ७ तोला, धाय के पुष्प ४ तोला हरड २ तोला, पृश्निपर्णी (पिठवन मूल), लोह भस्म, अभ्रक भस्म १-१ तो० सबके चूर्ण को एकत्र खरल कर रखे । मात्रा–१ से २ माशा । इसके सेवन से मूत्राघात, दारुण मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी प्रमेह, विषम ज्वर आदि नष्ट होते, तथा वल, वीर्य, पुष्टि एव आयु की वृद्धि होती है ।

नोट—श्लेष्मिक मूत्रकृच्छ्र तथा विड्विघातज मूत्रकृच्छ्र में यह विशेष लाभदायक है । —भै र ।

(९) क्षार वरुण—वरना की शाखाओ को या पत्र और छाल को जलाकर राख होने पर उसे जल मे घोल कर ३ दिन रखा रहने दे । फिर ऊपर से जल निथार कर कढाई मे पकावे । जलांश के दूर हो जाने पर कढाई में लगे हुये क्षार को शीशी मे रख लें । यह क्षार १ माशा की मात्रा मे घृत के साथ सेवन से वस्ति की अश्मरी, वस्ति शूल, जलोदर, प्लीहोदर, मूत्र विकार तथा गर्भाशय के विकारो पर विशेष लाभदायक है ।

नोट—उक्त राख को इसके ही छाल के क्वाथ मे उबाले । जलाश सूख जाने पर उतार कर क्षार को खुरच कर शीशी मे भर ले । इस प्रकार का वनाया हुआ क्षार भी उत्तम होता है । —गा औ. र

वरखेन-देखो-नेत्रान्तर । वरमाला-देखो बरमूला । बरमी-देखो-जलनीम तथा तालीसपत्र मे ।

बरमूला (बरमाला) (Callicarpa Arborea)

निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) के इस ३०–४० फुट ऊंचे वृक्ष की छाल किंचित धूसरवर्ण की, भीतर का काष्ठभाग धूसर व विशेष मजबूत नहीं होता। पत्र डिम्बाकृति १२ इंच लम्बे ६ इंच चौड़े, सूक्ष्म रोम युक्त- ८-१२ सिराओं से युक्त, पुष्प हल्के बैंगनी रंग के, ४ पखुडी वाले, विशेष गन्धयुक्त, पुष्पदण्ड १-२ इञ्च लम्बा ३-४ शाखायुक्त फल--गोल $\frac{1}{10}$ इञ्च व्यास के कृष्णाभ बैंगनी रंग का होता है। प्राय ग्रीष्मकाल मे पुष्प व वर्षा के अन्त में फल आते है।

इसके वृक्ष छोटा नागपुर, बिहार, उत्तर बंगाल तथा गंगा के उत्तरी मैदानी प्रदेशो मे एवं कुमाऊं से सिक्किम तक की पहाड़ियो पर खसिया और बरमा मे विशेष देखे जाते है।

नोट—यह प्रियंगु, गन्ध प्रियंगु का ही एक भेद प्रतीत होता है। बरमूला और बरसोलो नामक अन्य पौधो का वर्णन इसी प्रकरण मे आगे देखिये।

नाम—

हिं०—बरमूला, बरमाला। म०-घिवाला, गेहुला।
गु०-घिउला। बं० बरमाला, खोजा, मकची।
लै०—केलिकार्पा आर्बोरिया।

गुण धर्म व प्रयोग--

छाल विशेष सुगंधित कड़ुवी, पौष्टिक, वात पित्त-प्रशमन, आध्मान व चर्मरोग नाशक है।

उक्त विकारो पर प्राय इसकी छाल के क्वाथ का ही विशेष प्रयोग किया जाता है।
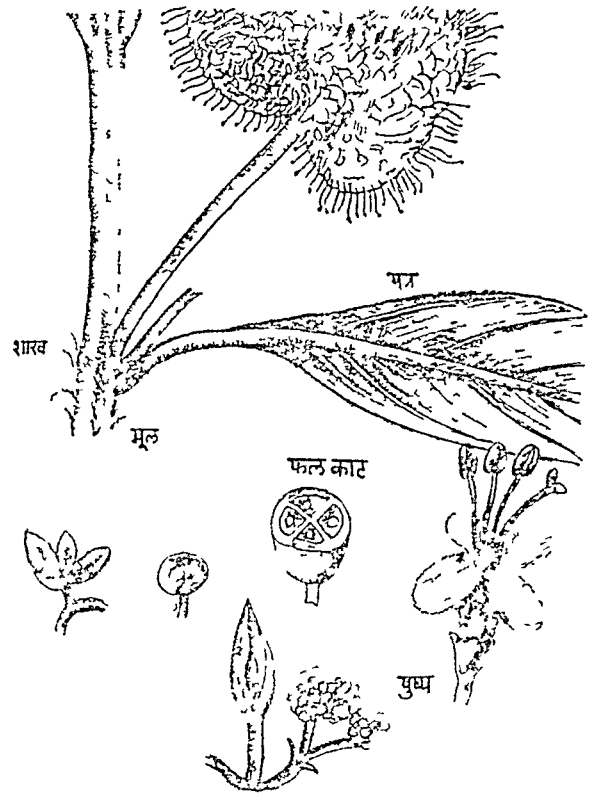
नोट—बरमूला – वनौषधि अनुसंधान योजना (केन्द्रीय-स्वास्थ्य मंत्रालय, गुरुकुल कांगड़ी) के नियोजक श्री वैद्य मायाराम उनियाल आयुर्वेदाचार्य A,M B S अपने एक लेख मे इस बूटी का लेटिन नाम Mega Carpea Polyandra (Benth) देते हुये लिखते है, कि [illegible] के [illegible] (Cruciferae) की [illegible] १ से २ फुट लम्बी, १ से ३ इञ्च तक मोटी, काण्ड २ ८ फुट तक लम्बा, पत्र १ फुट लम्बे कुछ कटे हुये दन्तुरदार, मसलने पर सरसो के पत्तो जैसे गन्धयुक्त, पुष्प श्वेताभ पीतवर्ण के प्याली की आकृति के होते है। पुष्प प्राय जून-जौलाई मे खिलते है। खिलने पर उग्र सुगन्ध आती है।

इसके पौधे हिमालय मे प्राय १२ से १४ हजार फुट की ऊंचाई पर टिहरी गढवाल मे पवाली काटा से ताली वाले मार्ग पर—खुले घास के मैदान में उपलब्ध है। मैंने गंगी पवाली आदि सीमान्त प्रदेश मे रहने वाले ग्रामीण व्यक्तियो को इस बूटी का उपयोग करते देखा है, जिसके परिणाम लाभदायक सिद्ध हुए है।

प्रयोज्याङ्ग—मूल, पत्र।

मूल का प्रयोग विशेषत ज्वरो मे मुख्यरूप से विषम ज्वर एव प्लीहा वृद्धि पर इस प्रकार किया जाता है—मूल ३ या ४ छटाक की मात्रा मे लेकर जल से साफ कर कूट कर उसमे ४ से ८ छटाक तक जल तथा सेंधानमक, जीरा, कालीमिरच सोठ ६-६ माशा मिलाकर मन्द आग पर पका लेते हैं। ७ दिन के प्रयोग से रोगी पूर्ण स्वस्थ हो जाता हे।

इसकी पत्तिया का शाक—विवन्ध नाशक है, यह शाक पथ्य रूप में रोगियो को देते है। इससे उदरगत विकारो मे काफी लाभ होता है। अत इन प्रयोगो के आधार पर इस बूटी मे--दीपन, सारक, ज्वरघ्न आदि गुण विद्यमान हैं। —धन्वन्तरि से।

औषधीर्नामरूपाभ्या जानतेह्यजपावने ।
अविपाश्चैव गोपाश्चये चान्येवनवासिन ॥
च० सू० अ० १-११८

चरक सहिता की इस उक्ति के अनुसार औषधियो के नाम, रूप, गुण आदि को जगलो मे रहने वाले गोपगण तथा वनवासियो से जाना जा सकता है। इसी आधार पर 'बरमूला' नाम की औषधि का पता टेहरी गढवाल के लोगो मे प्रचलित है। परन्तु सहिता ग्रन्थो, एव आयुर्वेदिक निघण्टुओ मे इस नाम की औषधि का वर्णन देखने मे नही मिला है। यहा तक कि विख्यात पाश्चात्य द्रव्यगुण शास्त्रो मे भी इस बनौषधि का कोई वर्णन नही मिलता है। मैने गगी पवाली आदि सीमान्त प्रदेश मे रहने वाले ग्रामीण व्यक्तियो को इस औषधि का उपयोग करते देखा है जिसके परिणाम लाभदायक सिद्ध हुए है।

परिचय——

यह हिमालय मे होने वाला एक पौधा है जो कि प्राय. १२ हजार से १४ हजार फुट की ऊचाई पर पाया जाता हे। वनस्पति शास्त्र के आधार पर यह राजिकादि वर्ग (क्रुसीफेरी) की वनस्पति है जिसका मूल १ से १॥ फुट लम्बा और १ से ६ इञ्च तक मोटा होता है। काण्ड २ से ४ फुट तक लम्बा होता हे। पत्र एक फुट लम्बे कुछ कटे हुए दन्तुरदार होते हे और मसलने पर

सरसो के पत्तो की तरह सुगन्ध आती है। तथा इन पत्तियो की रचना क्रमानुसार होती है। पुष्प पीले कुछ सफेदी लिए होते है। ये पुष्प प्रत्येक पुष्पकाण्ड या (वृन्त) से मिले हुए रहते है। तथा इनकी आकृति प्याले के समान होती है। ये पुष्प प्राय जून जौलाई मे खिलते है। खिलने पर इनमे उग्र सुगन्धि आती है।

उत्पत्ति स्थान——

टिहरी गढवाल मे पबाली काटा से ताली वाले मार्ग पर खुले घास के मैदान मे करीब १२ हजार फीट की ऊचाई पर उपलब्ध है।

ग्राह्य अङ्ग—मूल, पत्र

मूल का आमयिक प्रयोग——

बरमूला मूल विशेषत ज्वरो मे प्रयोग किया जाता हे। ग्रामवासी इस बनौषधि का मुख्यरूप से विषम ज्वर एव प्लीहा वृद्धि मे प्रयोग करते है। किम्बदन्ती के आधार पर औषध निर्माण विधि इस प्रकार से है—

जल से साफ किये हुए वरमूला मूल की ३ या ४ छटाक की मात्रा लेकर उसे कूट लेते हे, तदुपरान्त उसमे ४ छटाक तक्र, ८ छटाक जल मिला देते है। फिर इस मिश्रण मे सेधा नमक, जीरा, काली मिर्च एव सोठ प्रत्येक ६ माशा की मात्रा मे मिला लेते हे। इसके पश्चात् इसको मन्द अग्नि पर पका लेते हैं और शीतल करके दिन मे तीन वार रोगी को देते है। इस प्रकार से दिन मे तीन वार एक सप्ताह तक प्रयोग करने से रोगी को पूर्ण आराम मिल जाता है। इसकी पत्तियो का शाक पथ्य के रूप मे रोगियो को देते है। जिससे उदरगत विकारो मे काफी लाभ मिलता है। एव पत्तियो का शाक बिबन्ध को दूर करने मे भी लाभदायक होता है अत इन प्रयोगो के आधार पर इस पौधे मे सारक, दीपन, ज्वरघ्न आदि गुण विद्यमान हे।

ग्रामीण लोग पशुओं के हित मे इसे अचूक औषध समझते है। पशुओ के लू लगने पर अथवा वाह्य चर्म के लाल पड जाने पर इसके मूल को शीतल जल मे भिगो कर देने से लाभ होता है।

सम्भवत आयुर्वेद शास्त्र मे इसका वर्णन आया हो किन्तु काल के प्रभाव से एव दुष्प्राप्य होने के कारण इस ओषधि का प्रचलन न हो सका हो, जो कि धीरे-धीरे अज्ञात सी बन गई हो तथापि किम्वदन्ती के आधार पर यह औषध विषमादि ज्वरो पर अच्छा कार्य कर सकती है जिससे कि मानव-वर्ग का कल्याण हो सकता है।

अत पाठक वर्ग इस ओषध का अध्ययन कर अपने चिकित्सा क्षेत्र मे इससे लाभ उठाने का विशेषत प्रयत्न कर सकेंगे।

—श्री वैद्य मायाराम उनियाल
आयुर्वेदाचार्य, ए० एम० बी० एस०
वनोषध अनुसधान योजना,
केन्द्रीय स्वास्थ्य मत्रालय,
गुरुकुल कागडी (हरिद्वार) यू० पी०

वरमोली—

उक्त बूटी के समान ही एक और वरमोली है। इसका सक्षिप्त वर्णन करते हुए श्री वैद्य सत्यप्रसाद 'निर्भीक' शास्त्री जी ने 'सचित्रायुर्वेद' मे लिखा है कि यह क्षुप जातीय वनस्पति, हिमालय मे ८ ९ हजार फुटकी ऊचाई पर होती है। बर्फ पिघलने के बाद उगती है तथा वर्षारम्भ मे इसकी जड परिपक्वावस्था को प्राप्त होती है। जड कनखजूर नामक कीडे के जैसी होती है, जिस पर छल्ले से होते हे, तथा प्रत्येक छल्ले पर जोड होती है। जड के ऊपर डण्ठल निकलते है, जो २-३ इन्च तक छोटी नहर की तरह आलवाल ऊचे उठे हुय होतीहै। यह अग्रभाग मे बारीक होती है, जिस पर इतस्तत पत्र नीम पत्र जैसे निकलते हैं। पुष्प श्वेत आते है। यह स्वाद मे बिलकुल खीरा की भाति लगती है।

यह गुण मे शीतवीर्य, योगवाही, मूत्रल भी खूब है। स्वाद मे राई औरखीरे की तरह ही है। इससे ज्ञात होता है कि खाने मे यह उष्ण भी होगी। यथा सम्भव राई के गुणो से युक्त हे। वाह्य लेप पर शीत तथा योगवाही होने से उष्ण वस्तुओ के साथ उष्ण और शीत द्रव्यो के साथ शीत है। इसका लेप शिर शूल नाशक है।

बरसिगी—देखे—वरसिगी। वरहता—देखे—बराहता। वरागोम—देखे—भागरा मे।

बरारा (Periploca Aphylla)

अर्क कुल (Asclepiadaceae) के इस बहुशाखी सीधे खडे हुए झाडीदार क्षुप के पत्र प्राय नही होते, यदि कही होते भी है तो वे ½ इन्च से भी कम लम्बे।

पुष्प—बडे आकार के, चिकने, सुगंधित होते है। इस बूटी के प्रत्येक अङ्ग मे दूधिया रस भरा हुआ होता है।

यह पजाब के मैदानो मे अधिक पाया जाता है।

नाम—

हिन्दी, पजाबी—बरारा, बारीं, बरीं। सिन्धी, मराठी—बुरेई। ले०—पेरिप्लोका एफिला

गुण धर्म व प्रयोग—

इसका दूधिया रस शोथ व ग्रन्थि नाशक है। इसका लेप किया जाता हे। छाल का क्वाथ विरेचक है।

बरासल पान (Flemingia congesta)

शिम्बी कुल (Leguminosae) के इस छोटी जाति के सीधे खडे हुए क्षुप के पत्र त्रिदल (३-३ एक साथ) गहरे हरे, चमकीले, पुष्प--छोटे बेंगनी रग के, फली--छोटी, प्रत्येक मे १-१ गोल काला बीज होता है।

वर्षाकाल के बाद इसके क्षुप पहाडी प्रदेशो मे विशेष पैदा होते है।

नाम–

हि०—बरासलपान कुसुर, सुत्ता। म०—दोदोला। ब०–बरासलपान, भालिया। ले–कान्जेस्टा। फ्लेमिंजिया।

गुण धर्म व प्रयोग—

यह व्रण, शोथ नाशक है। इसकी जडो को या पचाग को कूट, पीसकर, कुछ गरम कर लेप किया जाता है।

बराहंता (Tragia Involucrata)

एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के ६-७ फुट ऊचे इस लतारूप क्षुप के पत्र डिम्बाकृति, २-४ इन्च लम्बे, कुछ काले रग के, अग्रभाग में क्रमश नुकीले, किनारे, दन्तुर, दोनो ओर श्वेत सूक्ष्म रोमयुक्त, पत्रवृन्त $\frac{1}{4}$-$\frac{1}{2}$ इच लम्बा होता है। पुष्प तुर्रेदार, ऊपर से कुछ पीले रग के अनेक पुष्प १-४ इन्च लम्बे पुष्पदण्ड पर आते है। फल - बहुत छोटे-छोटे गोल से २-२ फल एकत्र, रोमश होते हैं।

नोट–इस क्षुप के विशेषत पत्रो का अङ्गस्पर्श होने से शरीर के उस अग पर बहुत जलनयुक्त खुजली होती है तथा वह भाग लाल हो जाता है।

यह विच्छू जैसा डक मारने वाला, वेदनोत्पादक क्षुप प्राय भारत में सर्वत्र जगली प्रदेशो में, वर्षा काल मे पैदा हुआ पाया जाता है। यह हिमालय प्रदेशो में बहुत होता है। ध्यान रहे, बिच्छुवा या बिच्छू बूटी इससे भिन्न है।

नाम–

स०--वृश्चिकाली, विरूपा, धूमपुष्पा। हि०–वराहता, वरहता। म –खाज कोलती, काचकुरी। गु –मोटी खाजवणीनी वेल। ब०—विच्छूटी। ले०—ट्रेजिया इनव्होलुक्रेटा, ट्रेजिया केन्नाबिना (Tragia Cannnabina)

गुणधर्म व प्रयोग–

स्वेदल, धातुपरिवर्तक, मूत्रल है। साधारण ज्वर पर जिसमे हाथ पैरो मे ठडक व ऐंठन होती है, इसकी जड का क्वाथ ५ से १० तोला तक की मात्रा में दिया जाता है। यह प्रयोग फुफ्फुस शोथ (ब्राकाइटिस) मे भी साधारणत उपयोगी है।

नारू पर—इसकी जड को जल मे पीसकर लेप करने से नारू का कीडा बाहर निकलता है। वह जैसे जैसे

निकले तैसे तैसे उसे रुई की मोटी बत्ती पर लपेटते है और लेप को लगाते जाते है । इस प्रकार दूसरे दिन तक वह सब बाहर निकल आता है। —व गु

खाज, उकवत या छाजन पर जड को तुलसी के रस मे पीस कर लगाते हे।

उपदश—इसका क्वाथ दिन मे २ बार, २½ तोला तक की मात्रा मे देते रहने से उपदश के व्रण और दाग दूर होते हैं।

गज पर—उसके फलो को थोडे जल के साथ सिर पर घिसते हे, या लेप करते है।

बिच्छू के दश पर भी यह उपयोगी है।

बरियारा—देखें—खरैटी।

बरू (Andropogan Holepensis)

यवकुल (Gramineae) के इस एक जाति के घास के पौधे ज्वार के पौधे जैसे किन्तु उसकी अपेक्षा पतली डडी वाले, पत्ते व बीज भी ज्वार के पत्र व बीज जैसे होते है।

सफेद और काले भेद से इसकी दो जातिया है। सफेद जाति का बरू इधर विशेष पाया जाता है। इसके पौधे नदी या जलाशय के किनारे अधिक पैदा होते है। एक बार जिस स्थान पर यह पैदा हो जाता है, वहा इसका खूब विस्तार हो जाता हे।

देहातो मे तथा शहरो में भी पहले इसी के काण्डो की लिखने की कलमे बनाई जाती थी। अब तो इनका स्थान होल्डरो ने ले लिया है किन्तु अब भी कई स्थानो में इनका प्रचलन है।

इसके प्रवृद्ध पौधो के पत्ते घोडो तथा बैलो के लिए एक उत्तम रसीला चारा है किंतु छोटे या तरुणावस्था के पौधे कुछ विषाक्त होते है।

नाम--

स०--वीरकाण्डक। हि—बरूबोरू,वारहम। म -बोरू। व०--कलमूचा। ले०--एण्ड्रोपोगान होलेपेसिस, सोरघम होलेपेंसे (Sorghum Holcpense) व अमेरिकन जानसन ग्रास (American Johnson grass)

गुणधर्म--

शीतल, मधुर, रुचिकर, बल्य, वृष्य, तथा पित्त, दाह, श्रम, शोषादि नाशक है। इसके बीज शांतिदायक व मूत्रल है।

बरोला (Holigarna Longifolia)

आम्रकुल (Anacardiaceae) के इस आम के वृक्ष जैसे ऊचे वृक्ष की छाल मुलायम, पत्र-लम्बे, चमकीले तथा पुष्प—श्वेत वर्ण व मजरियो में आते हैं।

इस वृक्ष के काण्ड से एक प्रकार का काला रालदार कडवा तथा विषाक्त रस झरा करता है।

नाम——

हि व.—बरोला। म —मुदविबो, हुलूगिरी, हालुगिरी। ले —होलीगेरना लागिफोलिया।

गुण धर्म——

इस वृक्ष का निर्यास या रस प्रभावशाली चर्मदाहक हैं। इसके लगाने से शरीर के ऊपर छाला उठ आता है।

बलसां (Balsamodendron opobalsamum)

गुग्गुल कुल (Burseraceae) के इस बडे कटकयुक्त वृक्ष के प्रत्येक काटे के निम्न भाग मे मेहदी पत्र जैसे किन्तु कुछ छोटे पत्र लगते हैं। पुष्प—पत्रो के मध्य भाग मे आते है। फल—फालसे जैसे किंतु कुछ चिपटे कच्ची दशा

वल्सा

BALSEMODENDRON OPOBALSAMUM KUNTH

मे हरे, पकने पर लाल होते है। प्रत्येक फल में १ से २ बीज काली मिर्च जैसे किन्तु कुछ बडे, किंचित लम्बे, ऊपर से पीताभ कृष्ण रक्त वर्ण के भीतर श्वेत मज्जा युक्त, स्वाद में कडवे होते है।

वृक्ष की लकडी सुगंधित, वजनदार, कुछ लाल रंग की होती है। वृक्ष मे चीरा देने से एक प्रकार का सुगंधित रक्ताभ पीत वर्ण का लशदार तेल निकलता है। स्वाद में यह तेल कडुवा, किंचित चरपरा होता है। इसके फल या बीजो मे मनोहर नारपीन जैसी गंध आती है।

इसके वृक्ष विशेषत अरब, इजिप्ट आदि देशो के जगलो मे पैदा होते है।

इसके तैल, फल (बीज) और काष्ठ का आयात भारत मे अरब आदि देशो से होता है। यूनानी प्रयोगो मे यह बहुत काम आता है।

नाम—

वलसा, वलसू (यह वृक्ष का नाम है)। अं.—बालसम ट्री (Balsam tiee)। ले—बाल्सेमोडेड्रा आपोवलसेमम। इसके तैल को रोगने बलसा। अंग्रेजी मे—बाम आफ मेक्का (Balm of mecca), बालसम (Balsam) कहते हैं।

तेल मे--एक उडनशील तैल ३० प्रतिशत, कडी राल ६४ प्रतिशत, मुलायम राल ४ प्रतिशत तथा कडवा सत्व ४ प्रतिशत पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—तैल, लकडी और फल (बीज)।

गुण धर्म व प्रयोग—

तैल—उष्ण, स्निग्ध, कफ नि सारक, वाजीकरण, मस्तिष्क बलदायक तथा सुजाक, शोथ व्रण आदि के लिये विशेष उपयोगी है। अर्धांगवात, अर्दित, अपतानक, आक्षेपक, वातरोग (Tetanus), अपस्मार आदि वात कफज विकारो एव कास, श्वास, जुखाम, वृद्धो की जीर्ण कास, फुफ्फुस के व्रण तथा औपसर्गिक पूयमेह, श्वेत प्रदर आदि पूयस्रावी व्रण आदि पर अत्यधिक प्रयुक्त होता है।

मात्रा—१ से १½ माशा तक। गर्भिणी के लिए हानिकर है। हानि निवारक—कद्दू व कद्दू का तेल। प्रतिनिधि चदन का तैल है।

लकडी (वलसा वृक्ष की लकडी) को ऊद या चोव वलसा कहते है। यह उष्ण, रूक्ष, वल्य, कफ नि सारक, मस्तिष्क एव आमाशय सशोधक, गर्भअपरा नि सारक, तथा अपस्मार, भ्रम, मूर्च्छा जैसे मस्तिष्क विकृति जन्य रोग, कफज कास, कृच्छ्रश्वास आदि मे प्रयुक्त होती है। मात्रा—२-३ माशा। यह आत्र के लिये हानिकर है। हानि निवारक कतीरा है। प्रतिनिधि—इसी वलसा का फल है।

फल या बीज—उष्ण, रूक्ष, दीपन, कफ नि सारक, मस्तिष्क सशोधक, वाजीकर, आर्त्तवजनन है। तथा मस्तिष्कविकार, अजीर्ण, कोष्ठबद्धता, जीर्ण कास, श्वास, अतिसार, प्रमेह, धातुस्राव, रुद्धार्तव आदि में प्रयुक्त होता

मात्रा—३ से ५ माशा तक। यह मूत्राशय (वस्ति) के लिये हानिकर है। हानि निवारक कतीरा तथा प्रतिनिधि इसी वलसा की लकडी है।

इसकी लकडी या फल (बीज) के १ भाग मे २० भाग जल मिलाकर बनाया हुआ क्वाथ कई रोगो में दिया जाता है।

जीर्ण कास, श्वास, अतिसार, प्रवाहिका पर—फलो का बबूल के गोद के साथ प्रयोग करते है।

विकृत या दुष्ट व्रणो, जखम तथा रक्तस्रावी व्रण पर फल (बीज) की पुलटिस बनाकर बाधते हैं।

वल्लर—देखे—वाकला

वलाया (Cadaba Trifoliata)

वरुण (बरना) कुल (Capparidaceae) के इस बहुशाखी, बडे (या लतारूप) क्षुप की छाल मुलायम धूसर या भूरे रग की, पत्र—३ ८ से ७.५ सें. मी तक लम्बे, पुष्प—छोटे-छोटे गुच्छो मे पीताभ श्वेत वर्ण के, फल या फली—हरी, चिकनी, मुलायम, बीज—वृक्काकार बहुत छोटे होते है।

नोट—यह कोधव (Cadaba Indica) का ही एक भेद विशेष है। जहा कोधव की उत्पत्ति होती है, उसी स्थान में यह भी पाया जाता है। कोधव का प्रकरण भाग २ मे देखें।

नाम—

वलाया (यह सरकृत नाम है), ले —केडेवा ट्रिफोलिएटा।

गुण धर्म व प्रयोग--

जड व पत्र--विरेचक, ऋतुस्राव नियामक, कृमि एव शोथ नाशक है। वालको के अजीर्ण वडो की सविपीडा सधिवात, स्त्रियो के रुद्धार्त्तव, कष्टार्त्तव में उपयोगी हैं।

रुद्धार्त्तव, नष्टार्त्तव तथा कष्टार्त्तव मे पत्तो के क्वाथ मे रेंडीतेल व हल्दी का चूर्ण मिलाकर देने से विशेप लाभ होता है।

उपदश, गण्डमाला तथा सधिवात (गठिया) मे शोथनाशार्थ एव रेचनार्थ-पत्रो के क्वाथ में हरड व सोठ अथवा सनायपत्र व एप्सम साल्ट मिलाकर देते हैं।

गठिया एव सधिवात पर इसके पत्तो के साथ जिगनी के पत्रो को पीसकर पुल्टिस बनाकर वाधते या गरम लेप करते हैं।

व्रणो पर इसके पत्तो की पुल्टिस वाधने से शीघ्र ही व्रण का परिपाक होता है।

पत्तो का उपयोग औपधीय तेलो के वनाने में भी किया जाता है। —नाडकर्णी

वलूत- (Quercus Incana)

मायाफल कुल (cupuliferae) के इस सदैव हरे भरे रहने वाले पहाडी वृक्ष की छाल गहरी वादामी रग की, पत्र ३-६ इन्च लम्बे एव २ इन्च चौडे आयताकार लवाग्र दन्तुर कडे। फल—कुछ वृक्षो के फल गोल १ इन्च से कुछ कम लम्बे, पकने पर बादामी रग के इसे शाह वलूत और कुछ के फल लम्बोत्तरे होते है। इसे 'वलूनुल मलिक' कहते हैं। फल के बाह्य छिलके के नीचे गूदे मे चिपटा हुआ जोवारीक छिलका होता है, उसे 'जुफ्त वलूत' कहते हैं। इसका फल ही 'वलूत' कहलाता है।

इसके वृक्ष विशेपत शीत प्रदेशो मे पैदा होते हैं। भारत मे इसके जो वृक्ष हिमालय मे सिंधु नदी के किनारे से लेकर नैपाल तक पाये जाते है उनके फलो को सीता सुपारी, शिला सुपारी, गज, वाज, मारू, शिधार आदि नामो से पुकारते है। गुणधर्म मे बाहरी प्रदेशो के तथा भारत के वलूत मे कोई विशेष अन्तर नही है।

नोट—एक 'वलूती' नाम की बूटी भी होती है।

बलूत
QUERCUS INCANA ROXB

उसका वर्णन इसी प्रकरण के अन्त के नोट मे देखिये।

नोट–मोरु नामक प्रस्तुत प्रसग के बलूत की एक उपजाति (Quercus Dilatata) होती है । इसकी पत्तियो पर बने हुये कृमिग्रह (galls) स्वाद मे मधुर होने से ये खाये जाते हैं।

इसी की एक ईरानी उपजाति (Quercus Infectoria) होती है जिससे माजूफल की उत्पत्ति होती है। आगे माजूफल का प्रकरण देखे।

नाम–

हिं–बलूत, बान, बाफ, बज, सीता सुपारी है। अं.–कुमाऊ ओक (Kumaon Oak), ग्रे ओक (Grey-oak)। ले–क्वेर्कस इन्केना। इसकी लकडी मे टेनिन पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—फल, फल का गूदा, व फल के भीतर की बारीक छाल।

गुण धर्म व प्रयोग--

शीत, रूक्ष, सकोचक, मूत्रल, दीपन, रक्तस्तभन, तथा सुजाक, मदाग्नि, श्वास,उन्माद, शुक्रमेह, श्वेत-प्रदर, अतिसार, प्रवाहिका, आत्रव्रण, रक्तस्राव आदि मे प्रयुक्त किया जाता है।

फूलो को उपयोग मे लाने के पूर्व जमीन मे कुछ समय के लिये गाड कर फिर निकाल कर धो लेने से इनका कडुआ विकारी तत्व नष्ट हो जाता है।

श्वेत प्रदर में इसे पीसकर फलवर्ती बना गर्भाशय में धारण कराते हे तथा खिलाते भी है।

बहुमूत्र या बून्द बून्द मूत्र का आना, हस्तिमेह,शय्या मूत्र आदि मूत्र विकारो में बलूत २ भाग के साथ कुदर १ भाग पीसकर जैतून तेल मे मिला सेवन कराते है। अथवा इसे नागरमोथा आदि उपयुक्त द्रव्यो के साथ पीस कर चूर्ण रूप मे सेवन कराते है।

मुखपाक तथा शिश्न या अण्डकोष के व्रणो पर इसे जलाकर महीन चूर्ण कर छिडकते है। तात्कालिक हुये जखम पर इसे बुरकने से वह शीघ्र ही सूख जाता है। इसी प्रकार शरीर के किसी भी भाग मे होने वाले रक्त-स्राव या द्रव प्रवाह को बन्द करने के लिये इसे बुरकते या इसका लेप लगाते हे। इसके उक्त चूर्ण को जल मे घोल कर पिलाते भी है। इसे पिलाने से रक्तष्ठीवन, आंत्र व्रण, जीर्णातिसार, प्रवाहिका मे भी लाभ होता है या उसका क्वाथ बनाकर पिलाते है।

गुदभ्रश मे रोगी को इसके क्वाथ मे बिठाते तथा इसका चूर्ण छिडकते हे।

आत्र वृद्धि मे इसका लेप करते हैं।

इसे पुरानी शराब के साथ पीसकर बालो पर लगाने से वे काले होजाते हे तथा उनका झडना बन्द होता है।

नोट—मात्रा--चूर्ण २-३ माशे। क्वाथ ६ माशे। अधिक सेवन से यह कण्ठ के लिये हानिकर हैं, सिर दर्द पेटफूलना, वात बढना, आत्र मे सुद्दे होना आदि विकार भी होते हे। हानि निवारक—मिश्रजवीन, शक्कर या

माउ है। इनका प्रतिनिधि गुलनार है।

नोट—वनती-इस बूटी के पत्र लहसुन के पत्र जैसे, हरिनाभ कृष्ण वर्ण के अत्यधिक गोमज, पुष्प गोल पीत वर्ण के, तेज गन्धयुक्त होते है।

इसकी जड व पत्र उष्ण व रूक्ष है। पत्तो को पीस कर शहद मे मिलाकर जड व पत्तो पर लगाने से उनका पीव निकलकर वे साफ हो जाते है। अर्श मे पत्रो को भूभल में दबाकर बाधने से बहुत लाभ होता है। पागल कुत्ते के दश स्थान पर इसे नमक के साथ पीस कर लगाने से लाभ होता है— —व च

वसक—देखें—वासक।

वसत (Hypericum Perforatum)

वसन्त कुल (Hypericaceae) की यह एक वर्ष जीवी बूटी समशीतोष्ण पश्चिमी हिमालय में कुमायू से काश्मीर तक ६ से ९ हजार फुट की ऊचाई तक पैदा होती है।

नाम—

हि-वसत, डेन्लु, बालसत। अ-हायपेरिकन Hyperieen ले हायपेरिकन परफोरेटम।

गुण धर्म तथा प्रयोग—

तिक्त, सुगन्धित, सकोचक, शोधक, मूत्रल, ऋतु स्राव नियामक, रेचक, कृमिनाशक, अर्श, व्रण आदि मे उपयोगी है।

इसके पत्र तीक्ष्ण, तिक्त, अग्निवर्धक, मृदुविरेचक, कृमिघ्न, अर्श, कर्णपीडा, अतिसार, गुदभ्रश, योनिभ्रश तथा बिच्छू के विष में भी उपयोगी है। इसकी छाल मूत्रल तथा मूत्र के विकारो और अर्श के लिए लाभदायक है।

बाह्य प्रयोग मे त्वचा के लिए यह उत्तेजक है। इसके फूलो मे एक उड़नशील तैल, लालरग की राल तथा लालरग का पदार्थ होता है। विकारो पर बहुत सफलता के साथ प्रयुक्त किया जाता है। (नाड़कर्णी, व० च०)
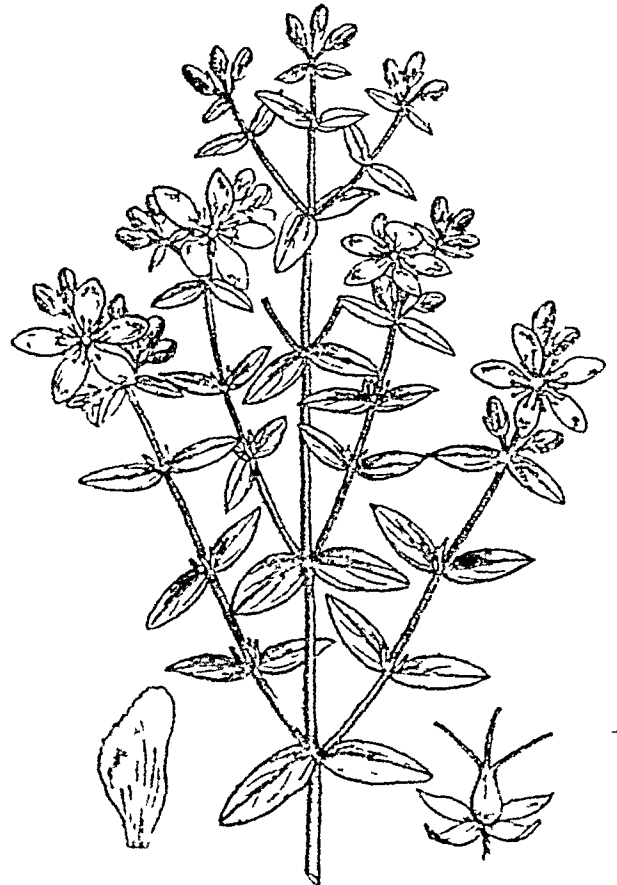
वसन्त
HYPERICUM PERFORATUM LINN

बसट्रा (Callicarpa Lanata)

निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) के इस ऊंचे वृक्ष की शाखाये गोलाकार, मोटी, रोमश, छाल—भूरी, खुरदरी, फटी हुई सी, पत्र—६-६ इञ्च लम्बे, ३-४ इञ्च चौडे, डिम्बाकृति, घने रोमश, डंठ की ओर गोल, अग्रभाग मे नुकीले, पृष्ठभाग मे चमकीले हरे, अध भाग मे श्वेत या पीले वर्ण के रोमाच्छादित, पत्रवृन्त—२ इञ्च, गोल, रोमश, पुष्प— कुछ नलिकाकार गुच्छो मे फीके लाल रग के, पुष्प-वृन्त बहुत छोटा, फल—गुच्छो मे, चमकीले काले रग के, गोल ⅛ इञ्च व्यास के होते है। शीत काल मे फूल व फल आते है।

बसट्रा (बं मासान्दारी)
CALLICARPA LANATA LINN

इसके वृक्ष दक्षिण मे- कोकण, पश्चिमी-घाट, बम्बई, मद्रास व सीलोन मे विशेष पैदा होते है।

नाम—

हिन्दी - बसट्रा। म०—पोडी, कारीवाटी, इसपर। बं०—मसन्दारी, मसन्दार। ले०—केलिकार्पा लेनेटा, केलि केना (Callicarpa Cana), केलि टोमेन्टोसा (C. Tomentosa,), केलि. वालिचियाना (C Wallichiana।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र छाल व मूल।

गुण धर्म व प्रयोग—

शीतल, स्निग्ध, मृदुकर, दाहनाशक, यकृदुत्तेजक है।

मूल तथा छाल का क्वाथ ज्वर की शांति, पित्त प्रकोप, यकृदावरोध, शीतपित्त एव चर्मरोगो पर दिया जाता है। १ भाग मूल या छाल के चूर्ण का २० भाग जल के साथ यह क्वाथ सिद्ध कर ६ मासा या १ तोला तक की मात्रा मे देते हैं।

मुख पाक या मुख के व्रण या छालो पर उक्त क्वाथ के, अथवा इसके पत्तो को दूध मे उबाल कर उसके कुरले कराते है।

बस्तिपाज़ (Artemisia Stechmaniana)

भृगराज कुल (Compositae) के खुराशानी, अजवायन की जाति के सोया के क्षुप जैसे ऊंचे, कटकयुक्त इस क्षुप की शाखाये एक बित्ता लम्बी, मूल या जड के समीप से निकली हुई अग्रभाग मे खुरदरी घुडी से युक्त, पत्र—छोटे छोटे, खुरदरे, पुष्प—श्वेत व नीले, बीज—अजवायन के बीज जैसे, किन्तु स्वाद मे तिक्त व चरपरे, कुछ सुगन्धयुक्त होते हैं।

इसके क्षुप खुरासान व तुर्किस्तान के प्रदेशो के विस्तृत उत्कृष्ट भूभाग मे अधिक होते है। उधर से ही इसके बीज आदि का आगात इधर होता है।

नाम--

यूनानी व हिन्दी-दम्तियाज, दिरमना तुर्की, शीहतुर्की इ । ले —आर्टिमिसिया स्टेकमेनिएना ।

गुण धर्म व प्रयोग--

उष्ण, रूक्ष, लेखन, शोथ विलयन, विरेचक, मूत्र व आर्तव प्रवर्तक, कफ नि सारक, जीर्ण ज्वर नाशक, उदर कृमि नाशक, व्रण को शुष्क करने वाला है।

वातज शोथ पर इसका लेप करते है। गज पर—इसे जलाकर जैतून तेल मे मिलाकर लगाते हैं। बाल शीघ्र उग आते हैं। आमाशय की शोथ, [illegible] तथा उदर कृमि नाश [illegible] इसका क्वाथ [illegible] है।

आर्तवप्रवर्तन [illegible]—उपयुक्त द्रव्यो के साथ इसका क्वाथ देते है।

दात व मसूड़ो को सुदृढ करने के लिये—इसकी बारीक टहनी या शाखा से दातोन करते है।

नोट—मात्रा—१-३ माशा [illegible] आमाशय तथा मस्तिष्क के लिए हानिकर है। [illegible] निवारक स्मी मस्तगी या तुरन्ज है। प्रतिनिधि [illegible] तथा गुलाब है। —यूनानी द्रव्य गुण

वर्मोटा—देखे थडूगा

बहमन-सुफेद (Centaurea Behen)

भृगराज कुल (Compositae) के भागरा जैसे क्षुपो की यह जडें है। ये क्षुप भारत मे पैदा न होने से इनकी शुष्क जडें—पर्शिया, ईरान, सीरिया, अरमानिया आदि देशो से यहा आती है। ये भूरे रग की जडें बाहर से सफेदी लिये हुए या श्वेताभ भूरे रग की, खुरदरी, अत्यन्त झुर्रीदार, पेंचदार तथा अग्रभाग मे अनेक गोल रेखाओ से अकित होती है। काटने पर भीतर से श्वेत स्पज जैसी, जल मे भिगोने पर फूलकर लुआबदार हो जाती है। स्वाद फीका, किंचित तिक्त तथा लुआबदार होता है।

जो जडें कुछ वजनदार व कडी होती है वे तथा खुरासान से आनेवाली खुरासानी एव अरमीनिया से आने वाली अरमनी जडें विशेष उत्तम होती है।

नाम-

हि—बहमन सफेद। अ—व्हाईट बिहीन (White Behen)। व्हाईट ह्रापटिक (White Rhapontic) ले.—सेंटारिया बिहीन ।

रासायनिक संघठन--

इसमें बेहमिन (Bahemin) नामक (एक चमकदार सार (रवेदार) पाया जाता है।
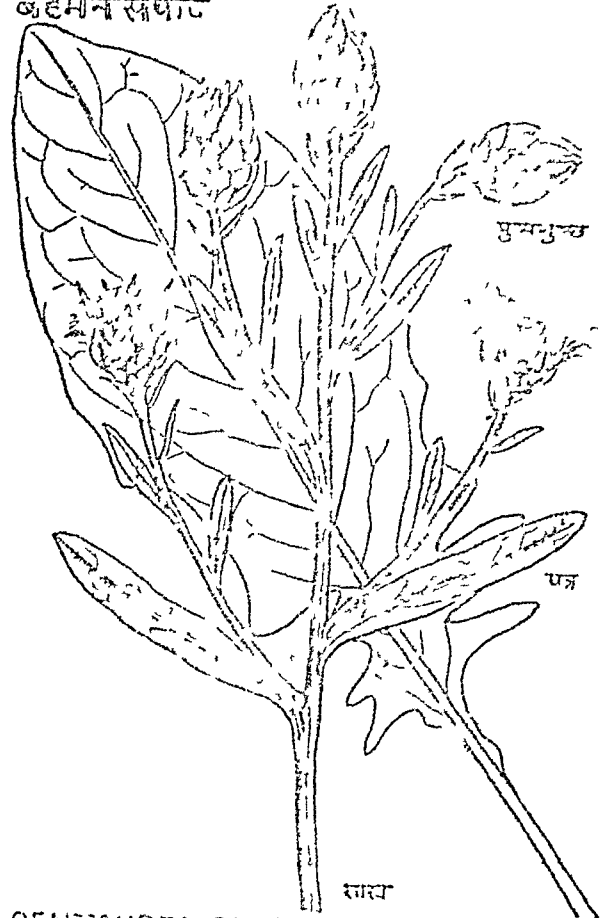
CENTAUREA BEHEN LINN
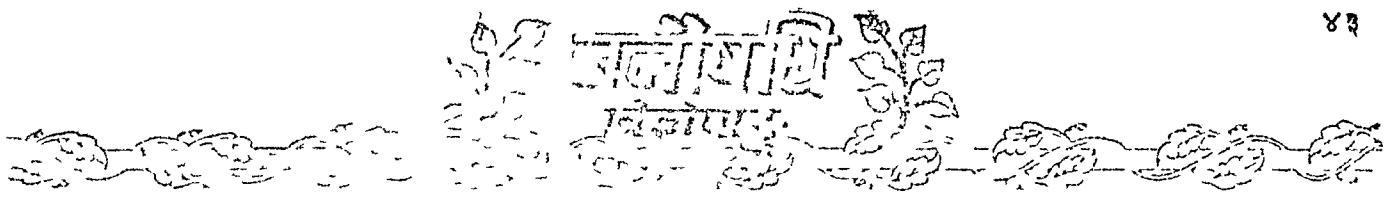
गुण धर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष आदि प्राय सब गुण धर्म व प्रयोग बहमन लाल जैसे ही है। यह कामोद्दीपक तथा कर्नल चोपरा के मतानुसार पाडु रोग व अश्मरी के विकारो पर विशेष प्रयुक्त होता है।

नोट—मात्रा—६ माशा। यह पित्त या उष्ण प्रकृति वालो के लिए हानिकर है। हानि निवारक उन्नाव, कतीरा तोदरी या मूसली मुफेद है। प्रतिनिधि—तोदरी या बहमन लाल है।

बहमन लाल (Salvia Haematodes)

तुलसी कुल (Labiatae) के तुलसी के पौधो जैसे पौधो की ये जडे है। इनकी शुष्क जडें जो बाजारो मे बिकती है। वे शुष्क छोटी लाल गाजर जैसी सुन्दरी, झुर्रीदार सफेद बहमन की अपेक्षा अधिक कडी, वजनदार, कुछ टेढी सी तथा टूटने मे सख्त व कुछ सुगन्धयुक्त होती हैं। ये बाहर से कृष्णाभ रक्तवर्ण की व भीतर हलके लाल रग की होती है। स्वाद मे कुछ कसैली, मधुर एव लुआबदार होती है।

यह पर्शिया तथा भारतवर्ष मे भी अधिक पैदा होती है।

नाम—

हि.—बहमन लाल। अ.-रेड बहमन (Red Bahman), ब्लड वेन्ड सेज(Blood vened sage), रेड हेपाटिक (Red rhpontic)। ले—सल्विया हीमोटोड्स।

रासायनिक सगठन—इसमे वसा, टेनिक एसिड, बहमीन नामक एक तिक्त चमकदार क्षारोद (अल्कलायड) आदि द्रव्य पाये जाते है।

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष, वाजीकर, वृष्य, शुक्रवर्धक, हृदयोत्तेजक है। प्राय सर्व प्रकार की धातुविकृति, प्रमेह, नपुसकता या वीर्यक्षय व्याधियो मे इसका अकेले या उपयुक्त अन्य द्रव्यो के साथ बहुत प्रयोग किया जाता है। प्राय इसका चूर्ण मिश्री मिलाकर दूध के साथ या इसके माजून का सेवन कराया जाता है। हृदय दौर्बल्य को दूर करने मे तथा हौलदिल, हृच्छूल एव हृदय के कपाटो की विकृति मे इसके सेवन से विशेष लाभ होता है। यह शरीर मे वसा जातीय अश का अधिक सचयकर दुर्बल को भी सबल एव स्थूल बनाता है। वृक्क तथा बस्ति के विकारो मे तथा अश्मरी और रक्त की दूषित स्थिति मे इसका प्रयोग लाभदायक कहा जाता है।

नोट—मात्रा-६ मा तक। यह प्लीहा तथा उष्णप्रकृति वालो के लिये हानिकर है। हानि निवारक-उन्नाव व अनीसून है। प्रतिनिधि, मूसली, तोदरी या सफेद बहमन।

बहरोजा—देखो गन्धा बिरोजा, चीड मे। बहुफली—देखो औधफली तथा चेच (छोटी)।

बहेड़ा (Terminalia Belerica)

हरीतकी वर्ग एव हरीतकी कुल (Combrataceae) के १५ से १०० फुट (इससे भी कही २ ऊचे) इस वृक्ष का काण्ड—लम्बा, सीधा, गोल ८ से ३० फुट व्यासका शाखा—प्राय ६-१० फुट (कही २ इससे भी अधिक) लम्बी, छाल-½ इन्च मोटी खुरदरी, पत्र-विषमवर्ती, छोटी-छोटी टहनियो पर अधिक सघन, वट या महुये के पत्र जैसे ३ ६ इन्च लम्बे, अण्डाकार कुछ चौडे, पत्रक—ताम्रवर्ण के दुर्गन्धयुक्त, पुष्प—३-६ इन्च लम्बी सीको पर नन्हे नन्हे, पीताभ पुष्पो की मजरिया आती है।

फल—गोल १ इन्च लबे धूसर वर्ण के, बीज युक्त होते है।

पतझड से पुराने पत्ते गिरने पर जबकि नवीन पत्र

आते है, प्राय उसी समय (माघ, फागुन मे) पुष्प आते है, तथा शीत काल के प्रारम्भ मे फल लग जाते हैं और अगहन, पूस तक पक जाते है।

गोंद —इसके वृक्ष से बबूल की गोंद जैसी गोंद निकलती है। किन्तु यह गोंद विशेष उपयोग मे नही आती। यह स्वाद रहित होती है। इसे जगली लोग खाते हैं। यह जल मे भिगोने से फूलती तो है, किन्तु घुलती नही। अन्य गोंदो के साथ मिलाकर यह बेची जाती है। आग मे जलाने से यह जलती है। इसके गुण धर्म के विषय मे कहा जाता है कि यह शातिदायक तथा विरेचक है।

इसके वृक्ष भारत व बर्मा मे विशेषत पहाडी जगली प्रदेशो मे अधिक पाये जाते है। चूने युक्त भूमि मे यह वृक्ष अधिक फूलता व फलता है।

नोट १–छोटे और बडे फल के भेद से इसकी दो जातिया है। छोटी जाति के फल गोलाकार ½ से ¾ इच व्यासके तथा बडी जाति के फल अडाकार एव अपेक्षाकृत दूने बडे, वजन मे दो तोला तक होते है। बडे फलो मे टेनिन की मात्रा अधिक होने से विशेष गुणदायी है।

२–यह चरक के विरेचनीगण, ज्वरहर तथा सुश्रुत के त्रिफला, मुस्तादिगणो मे लिया गया है। यह त्रिफला का एक अग होने से त्रिफलादि घृत, त्रिफलादि गूगल, अरिष्टादि मे लिया जाता है।

३—बाजार के बहेडे प्राय सछिद्र, कीडो से खाये हुए, या बहुत पुराने जिनके भीतर का गूदा भूरा या काला हो गया है ऐसे फल बेकार होते है। वे चिकित्सोपयोगी नही होते। चिकित्सा के लिए ऐसे फल लेने चाहिये जो कीडो से खाये हुये न हो, नवीन हो, आकार में बडे तथा रग मे उज्ज्वल, हरिताभ पीत वर्ण के गूदे वाले हो। प्राय नवम्बर से फरवरी-मार्च तक इसके फल परिपक्व होते हैं। और बाजार मे ग्रीष्मारभ मे ही ताजे फल आने लगते हैं। इसके पश्चात ये सुखाकर तथा गूदा अलग कर बेचे जाते है। सबसे उत्तम तो यह है कि जहां इसके वृक्ष हो वहा उक्त समय में जाकर फलों को वृक्षों पर से उतार कर शुष्क कर ठण्डे स्थान पर रखें या बोरियो, कनस्तरो मे बन्दकर रख लेवे।

नाम

स०-बिभीतक (विगत रोग भयमस्मात्। बिभ्यति रोगा अस्मात वा जिनके सेवन से रोग भय दूर हो जाता है या जिससे रोग भयभीत होते हैं।) कर्ष फल (जिसका फल १ से २ तोले वजन का हो), अक्ष (इसके फल अक्ष अर्थात जुआ खेलने में प्रयुक्त होते हैं) कलिद्रुम (जुआ मे प्रयुक्त होने से यह कलि-कलह का वृक्ष कहाता है अथवा■), भूतवास (काल रूप भूत का घर) इ।

■ अथवा-राजा नल के सारथी बाहुक के शरीर मे छिपा हुआ कलि जब शाप के अन्त मे प्रकट हुआ, तब नल के शाप के भय से वह बहेडे के वृक्ष मे छिप गया, तथा उसे ही अपना घर बना लिया। अत यह वृक्ष कलिद्रुम या कलियुगालय कहाता है।
—महाभारत बनपर्व

हि'—बहेडा, वहेरा, भैरा, विरहा, गुरला इ० म०—बहेडा, बाटिङ्ग । गु०—बहेडो, बवेडा । बं०—वहेडा, भेरच । अ –वेड्डानट्स (Bedd nuts), वेलिरिक मिरावोलन्स (Beliric myrobalans) । ले.–टर्मेनेलिया वेलेरिका ।

रासायनिक सगठन—फलो मे गेलोटेनिक एसिड (Gallo tannic acid) १७ प्रतिशत, कुछ रजक द्रव्य, व राल तथा बीजो मे एक हरिताभ पीतवर्ण का तैल २५ प्रतिशत पाया जाता है। तेल दो प्रकार का एक पतला पीतवर्ण का और दूसरा श्वेत घृत जैसा गाढा होता है। यह घृत के स्थान मे खाया भी जाता है ।

प्रयोज्याङ्ग—फल, बीजो की गिरी, तेल व वृक्ष की छाल ।

गुण, धर्म व प्रयोग

लघु, रूक्ष, कपाय, मधुर, उष्ण वीर्य ■ मधुर विपाक त्रिदोप, विशेपत कफ पित्त शामक, दीपन, अनुलोमन, रक्त स्तम्भन, वेदना स्थापक, धातुवर्धक, कफघ्न, केशवर्धक, चक्षुष्य, शोथ (श्वास नलिका के तथा अन्य शोथो) को दूर करने वाला तथा अग्निमाद्य, आध्मान तृषा, वमन, अर्श, कृमि रोग, पलित, प्रतिश्याय, कास, श्वास, स्वरभेद, रक्तष्ठीवन, सामान्य दौर्वल्य, नेत्र रोग नासारोग, रक्त दोप आदि मे उपयोगी है ।

वहेडे का मुख्य कार्य विशेषत रस, रक्त, मास और मेद धातुओ पर होता है। इसका अर्धपक्व फल-रेचक है, यह विवन्ध पर दिया जाता है। पक्व शुष्क फल की छाल ग्राही, सकोचक, कफ नाशक तथा कठ एव श्वास-नलिका पर विशेप कार्यकारी है। इसे अतिसार व प्रवाहिका में देते है।

(१) प्रतिश्याय, कास, श्वास, स्वरभग मे—इसकी छाल के टुकडे को मुख मे रखकर चूसते रहने से कफ सरलता से निकल कर लाभ होता है ।

(२) सद्योव्रण मे इसके चूर्ण को बुरकने से रक्तस्राव रुक जाता है ।

(३) नेत्राभिष्यन्द में–इसका लेप नेत्रो पर लगाते है। वेदनायुक्त विकारो पर भी इसका लेप किया जाता है। आन्त्रवृद्धि पर भी इस लेप से शीघ्र लाभ होता है ।

(४) नपु सकता पर—छिलको के चूर्ण ६ माशा मे समभाग गुड मिलाकर प्रतिदिन सेवन से कामोद्दीपन होता है ।

(५) भिलावे के विष प्रकोप पर–फल के गूदे को जल मे पीसकर लेप करते, अथवा–इसके गूदे के साथ मुलैठी, नागरमोथा और चदन को जल में पीसकर लेप करते हैं ।

(६) भ्रम या चक्कर पर—फल के छिकके के जौ-कुट चूर्ण ६ माशा मे समभाग जवासा चूर्ण मिला, क्वाथ पकाकर उसमे घृत मिलाकर पिलाते है ।

(७) कास श्वास पर—फल का छिलका ५ तोला, लवंग, अनार का छिलका, कत्था प्रत्येक २½ तोला, कालीमिर्च १ तोला और कपूर ६ माशा, सबको कूट पीस कर रख लेवें। इसमें से ६ माशा लेकर एक पत्थर या काच की प्याली में शहद २ तोला व अदरख का रस ६ माशा मिलाकर ७ बार मे थोडा थोडा चाटने से खासी शीघ्र ही दूर होती है । —स्वानुभूत ।

अथवा—अच्छे पक्व शुष्क फलो के ऊपर घृत चुपड कर ऊपर से गेहू का आटा जल में सानकर चारो ओर मोटा-मोटा लेप कर, धीमी आच पर पकावे। ऊपर का आटा रोटी जैसा पक जाने पर निकाल कर, फलो के छाल के टुकडे कर रखें। १-१ टुकडा मुख में धारण कर चूसते रहने से खासी शीघ्र दूर होती है। यह श्वास को भी दूर करता है ।

■ इस विपय मे मतभेद है–सुश्रुत सू स्था ४४ मे इसे अनुष्ण (न शीत न उष्ण) तथा ४६ अ मे उष्ण लिखते है। धन्वन्तरि चक्रपाणि, राजवल्लभ, नरहरि व हेमाद्रि इसे उष्ण कहते हैं। वाग्भट ने इसे शीत लिखा है। अरुणदत्त ने भी शीत वीर्य माना है । मालूम होता है इस मतभेद के समीकरण के लिये ही भावमिश्र, मदनपाल और केयदेव ने इसके विषय मे लिखा है कि यह स्पर्श मे तो शीत है किन्तु वीर्य में उष्ण है ।

नोट—गेहू के आटे के स्थान मे गाय का गोबर उक्त घृत से चुपडे हुए फलो पर लपेट कर कण्डो की मन्दाग्नि में दवा दे। अच्छी तरह स्वेदित हो जाने पर निकाल कर उनकी ऊपरी छाल को उतार रखें। इसका टुकडा चूसने से भी वही लाभ होता है। —शार्गधर

इस स्वेदित छाल का चूर्ण बनाकर २ माशा तक की मात्रा में मधु से चटाने से श्वास व काली खासी भी दूर होती है। दिन मे ३ बार चटावें। —स्वानुभूत।

अथवा—फलो की छाल को घृत में भूनकर चूर्ण बना उसे अडूसा के पत्रो के रस में (७२ घटे) खरल कर उसका गोला बनाकर, आक के पत्तो में लपेट कर उसपर आधा अगुल मोटा मिट्टी का लेप कर शुष्क कर कण्डो की मन्दाग्नि में रख दें। ऊपर की मिट्टी का लेप जब लाल हो जाय, तब गोले को निकाल कर, ठडा कर ऊपर की मिट्टी दूर कर भीतर से वहेड़े के गोले को निकाल कर पीस कर रखें। इसमें से थोडा-थोडा चूर्ण मुख में रखकर चूसने से खासी अवश्य नष्ट होती है। —हा स।

अथवा—फल की छाल का चूर्ण २ भाग तथा पिप्पली का चूर्ण १ भाग एकत्र मिलाकर रखे। २-३ माशा की मात्रा में शहद के साथ चाटने से भी खासी दूर होती है।

केवल छाल का चूर्ण ३ माशा तक की मात्रा मे शहद के साथ मिलाकर भोजन के बाद सेवन से कास व श्वास मे लाभ होता है। —रा भा

अथवा—फल की छाल के साथ अतीस, नागरमोथा, पिप्पली, भारगी व सोठ समभाग का चूर्ण कर ३ माशा तक की मात्रा में मधु या उष्ण जल के साथ दिन मे २ बार नियम से पथ्यपूर्वक सेवन से कास, श्वास तथा अपतत्रक मे भी शीघ्र लाभ होता है। —ग नि.

नोट—इस योग को वासारिष्ट के साथ देने से श्वास व फुफ्फुस विकार नष्ट होते हैं।

अथवा—फल की छाल के चूर्ण को समभाग बकरे के मूत्र मे पकावें। गाढा हो जाने पर, उतार चिकने पात्र मे भर रखें। ३ माशा तक की मात्रा मे शहद के साथ चाटने से कास, श्वास तथा प्रवृद्ध कफ का नाश होता है। —व से, वै जी, यो र

नोट—उक्त योग को इस प्रकार भी बनाते हैं—छाल के महीन चूर्ण मे समभाग बकरे का मूत्र मिलाकर, वहेडे की लकडी के डडे से खूब खरल करें। शुष्क हो जाने पर पुन उतना ही बकरे का मूत्र मिलाकर घोटे। इस प्रकार ७ भावनायें देकर छायाशुष्क कर, महीन पीस शीशी मे रखलें। मात्रा-१ से ३ माशा तक शहद के साथ ४-४ घटे से दिन मे ३-४ बार देने से क्षयज कास, कुक्कुर कास मे तुरन्त लाभ होता है। खासी के लिए यह एक सर्वोत्तम योग है। निमोनियाँ की खासी एव फुफ्फुस प्रदाह मे-उक्त चूर्ण १ माशा, अभ्रक भस्म निश्चन्द्र शतपुटी ½ या १ रत्ती, मृगशृङ्ग भस्म २ रत्ती, तथा मुलैठी चूर्ण ४ रत्ती (यह १ मात्रा है) के मिश्रण को १ बार मे मधु या उष्ण जल से देवें। प्रति ३ घटे के अन्तर से ३ बार में देने से निश्चय ही सफलता प्राप्त होती है।

—धन्वन्तरि के गुप्त सिद्ध प्रयोगाक भाग २ से।

अथवा कास, श्वास पर—फल का शुष्क गूदा और अनार का छिल्का ३-३ ग्राम, काली मिर्च ६ दाने तथा सेधा नमक १½ ग्राम एकत्र पीस कर ३ मात्रायें बना, दिन मे ३ बार उष्ण जल से देवें, शीघ्र लाभ होता है। या उत्तम स्वच्छ फलो के छिलको को दूने गोदुग्ध मे भिगोकर २४ घण्टे बाद दूध से निकाल, भली प्रकार सुखाकर, महीन चूर्ण कर १ से २ ग्राम तक की मात्रा मे मधु या उष्ण जल से देने से अनेक प्रकार की खासी, श्वास, दमा मे लाभदायक है। चिकने गरिष्ठ एव शीत गुण वाले पदार्थ न लेवें। पीने के लिये गुनगुने जल का प्रयोग करें। हठीली खासी भी नष्ट हो जायगी।

—श्री वैद्य चुन्नीलाल भारद्वाज,
१७६, खारी कुआ, मेरठ शहर

अथवा फल का छिलका २० तोला तवे पर रख धीमी आच पर सेंक महीन चूर्ण कर उसमे १ तोला नौसादर (तवे पर सेका हुआ) का चूर्ण मिला, खरल कर, १-२ माशा की मात्रा मे शहद के साथ प्रात साय चाटने से पुरानी खासी व श्वास नष्ट होता है।

श्वास पर—फलों का छिलका १ सेर लेकर ३ सेर जल में पकावें। २ सेर जल शेष रहने पर छानकर उस जल को एकत्र मिट्टी की हाडी में भरकर पुन. आग पर चढा उसमे शुद्ध नीला थोथा १ माशा, अड़सा का क्षार, अपामार्ग का क्षार व नागकेशर प्रत्येक १½ तोला एकत्र मिला पोटली में बांधकर हाडी मे लटका देवें (दोला यंत्र की तरह पाक करें।) मटकी का सब जल शुष्क हो जाने पर पोटली को बाहर निकाल सुखाकर पीसकर शीशी मे सुरक्षित रखें।

ग्लूकोज या बताशे में ½ रत्ती पिपरमैंट घोटकर उसमे उक्त क्षार ४ रत्ती मिला प्रात साय चटाने से श्वास दमा रोग ७ दिन मे अवश्य ठीक हो जावेगा

—गुप्त प्रयोग (आ० चिकित्सक)

तमक श्वास (कफादिक श्वास रोग) पर—फलो का छिल्का १ सेर का महीन चूर्ण बना लेवे। फिर बबूल वृक्ष की अन्तर छाल, अपामार्ग पञ्चाग, कटेरी पञ्चाग १-१ सेर व भिलावा २० तो० लेकर जौकुट कर १५ सेर जल में पकावे। साढे तीन सेर क्वाथ शेष रहने पर छानकर पुन पकावे। गाढा होने लगे तब उक्त बहेडे का चूर्ण मिलाकर गाय या भैंस के घृत मे अच्छी तरह सेंक कर उसमे कुटे हुये तिल आध सेर तथा समान भाग बूरा (शक्कर) मिला २॥ तोला के लड्डू बना लें। यह लड्डू बलानुसार गरम दूध मे सेवन करावें। आशातीत लाभ होगा। अनुभूत है।

—आचार्य सच्चिदानन्द जी दाधीच (रसायन)

(८) कण्ठ के विकार, स्वरभंग, तथा अत्यधिक लालास्राव पर—कंठशोथ या गल शोथ पर—फल का छिलका, अनार का छिलका, जवाखार और पिप्पली, समभाग एकत्र चूर्ण कर, गुड मिलाकर बेर जैसी गोलियां बनाकर चूसते रहने से लाभ होता है।

कंठ से व्रण हो तो आग मे भूने हुए फल के छिलके को मुखमें रखकर धीरे-धीरे चूसते रहने से लाभ होता है।

स्वरभंग या गले का बैठजाना—फल का गूदा, काजी, पिप्पली और सेंधानमक,इनके अत्यन्त महीन चूर्ण को काजी म मिलाकर चाटने से या मक्खन में मिलाकर चाटने से लाभ होता है।

लालास्राव—मुख से अधिक लार के बहने या कफ स्राव होने पर—फल के गूदे (वा छाल) का चूर्ण १½ मासे मे समभाग शक्कर मिला मुख में रखते है।

कफस्राव होता हो तो भूने हुए १ फल के छिलके का आधा भाग दिन के भोजन के बाद एक लगे हुए पान के बीडे मे रखकर तथा इसी प्रकार शेष आधा भाग शाम के बाद खाने से कुछ दिनो मे कफ स्राव होना दूर हो जाता है। साथ ही बल की भी वृद्धि होगी।

(९) अतिसार, नाभी टलना तथा पाडु रोग पर—

अतिसार पर—फलों को जलाकर, उसकी भस्म मे सेंधानमक मिलाकर सेवन करने से प्रवृद्ध तीव्र अतिसार भी दूर हो जाता है। मात्रा ३ माशा दिन मे २-३ बार।

—वं० से०

नोट—इसका प्रयोग इस प्रकार करें—फलो की भस्म १ तोला मे सेंधानमकचूर्ण ३ माशा मिलाकर इसकी ४ मात्राये बना, ४-४ घटे से १-१ मात्रा अनार के रस से या बेल के शर्बत के साथ या केवल जल से देवे। उत्तम सरल लाभकारी प्रयोग है।

नाभी टलने पर (आन्त्र की गिडली उचित स्थान पर न रहने को नाभि टलना कहते हैं)—बहेडे का क्वाथ १-१ घण्टे के अन्तर मे ३-४ बार पिलाने से नाभि उचित स्थान पर स्थिर हो जाती है तथा तज्जन्य अतिसार भी बन्द होता है।

—गा औ र

पाडु रोग पर—(विभीतकाद्यो वटक)—बहेडा (फल की छाल), मण्डूर भस्म, सोठ और तिलका चूर्ण समभाग मे सबके बराबर पुराना गुड मिलाकर (६-६ माशा के) मोदक बना लेवें। १-१ मोदक प्रात साय तक्र के साथ सेवन से भयकर पाडु भी नष्ट हो जाता है। —ग नि

नोट—पाडु रोग पर 'विभीतकाख्य लवण' का प्रयोग आगे विशिष्ट योगों मे देखिये।

(१०) ज्वर पर--विषम ज्वर हो तो बहेडा, अमलतास, कुटकी, त्रिफला और हल्दी का क्वाथ सेवन कराने से तृषा, दाह व विषमज्वर मे लाभ होता है। --ग. नि.

पित्तकफज ज्वर मे—वहेडा और जवासे के क्वाथ मे थोडा घृत मिलाकर पिलाते हैं। इससे आखो के आगे अधेरा आना, भ्रम (चक्कर) आदि विकार भी दूर हो जाते हे।

वात कफज ज्वर में—इसका चूर्ण ४ मा की मात्रा मे दिन मे तीन बार शहद के साथ चटाते है।

(११) हृदय के विकार तथा नेत्र विकार पर—

वहेडा तथा असगन्ध के समभाग चूर्ण में पुराना गुड मिलाकर (३–४ माशा की मात्रा मे) पकाये हुए सुखोष्ण जल के साथ सेवन से हृदयगत दूपित वात एव तज्जन्य हृदय के विकार नष्ट हो जाते हैं। —ग. स

नेत्र विकारो पर—(विभीतकादि घृत) वहेडा, हरड, आमला, परवल, नीम की छाल और अडूसा समभाग एकत्र जोकुट कर २ सेर चूर्ण को १६ सेर जल मे पका, ४ सेर जल शेष रहने पर छान लेवे तथा उसमें उक्त ६ द्रव्यो को एकत्र ६ तोला ८ माशा लेकर जल के साथ पीसकर वनाये गए कल्क को और १ सेर गोघृत (अभाव मे भैस का घृत) मिलाकर पकावें। घृत मात्र शेप रहने पर छानकर रख ले।

१ या २ तोला घृत को प्रात साय गोदुग्ध के साथ सेवन से समस्त नेत्र रोग नष्ट होते है। —यो र

तिमिर नाशक-(विभीतकादि तैल) उक्त घृत के प्रयोग के ६ द्रव्य समभाग मिश्रित १३ तोला ४ माशा का कल्क कर अरहर के ८ सेर क्वाथ (क्वाथार्थ अरहर ४ सेर जोकुट कर ३२ सेर जल मे चतुर्थांश क्वाथ करें) तथा २ सेर तिल तैल मे एकत्र मिला तैल सिद्ध कर लेवें। इस तेलके सेवन तथा सिर पर मालिस व नेत्रो मे लगाने से तिमिर रोग (द्रष्टिगत द्वितीयपटल मे दोपज दृष्टिमाद्य Amaurosis) नष्ट होता है। —ग. स

नेत्र पाक पर—उक्त प्रयोगो के ६ द्रव्यो के क्वाथ मे शुद्ध गूगल मिलाकर सेवन से शोथ एव शूलयुक्त नेत्र पाक (Ophthalmia) मे लाभ होता हे। —वृ मा

(१२) कर्णस्राव तथा केशपात पर—

कान मे पूय का वहना—वहेडा, वच, कूट तथा मैनसिल का चूर्ण २–२ तोला तथा तिल तेल १ सेर और जल ४ सेर एकत्र मिलाकर पकावें। तेल मात्र शेप रहने पर छान कर रख लें। इसे कान मे डालते रहने से शीघ्र ही (विशेपत बालको का) पूति कर्ण रोग दूर होता है। —ग से।

इस तैल से अन्य कर्ण रोगो मे भी शीघ्र लाभ होता है।

केश पात—सिर के वाल झडते हो तो वहेडे के चूर्ण को जल मे भिगोकर सिर पर मर्दन करे १५ मिनट बाद जल से धोकर साफ कर भृगराज तैल (भागरे का तैल) प्रतिदिन प्रात लगा लिया करे शीघ्र ही वालो का झडना बन्द हो जाता है।

(१३) ग्रन्थि, विसर्प तथा वदगाठ पर—ग्रन्थि विसर्प [कफ वातज विसर्प (Erysipclas) इसमे शरीर पर छोटी मोटी अनेक गाठें निकलती है। गाठो मे वेदना होती तथा मोह, भ्रम, व्याकुलता, अग्निमाद्य, कास, श्वास अतिसार, कठशोप, वमन किसी को हिक्कादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। नव्य मतानुसार यह कीटाणुजन्य माना गया है। [पर वहेडे के चूर्ण का मोटा लेप करे या पुल्टिस नाधे, व ऊपर से सेंक करें लाभ होता है। साथ साथ उदर सेवनार्थ हरड व चिरायते का क्वाथ या अन्य औपधि भी देनी चाहिये। —गा औ र.।

वद की गाठ पर—फल के छिलको को रेडी तैल मे भून कर तेज सिरके में पीसकर लेप करते रहने से २-३ दिनो मे गाठ बैठ जाती है। —यूनानी प्रयोग

बीजो की गिरी या मज्जा—लघु, कपाय, मधुर, उष्ण वीर्य, कटु विपाक, प्रभाव में मादक तथा कफ वात नाशक, तृषा, वमन, कास, श्वास, हिक्का, वेदना, शोथादि में उपयोगी है। इसका मद या नशा साधारण अफीम के समान होता है, इसकी नशा की वेहोशी मे ऐसा मालूम देता है मानो गहरी नीद मे सो रहा हो। यह सद्योमारक नही है, अधिक मीगी या गिरी खाने से वामक है एव जो कुछ विष प्रभाव होता है, वह भी उक्त प्रकार का साधारण नशा होता हैं। न्याय वैद्यक में क्वचित ही इससे बालको की मृत्यु के उदाहरण मिलते है।

यह गिरी नासिका तथा नेत्र के विकारो को नष्ट

करने वाली, कृमि नाशक, केशो के लिये परम हितकर है। अनिद्रा मे इसका प्रयोग करते है। गिरी का लेप शोथ, दाह, वेदना तथा खुजली पर भी करते है।

(१४) वमन, तृषा तथा पित्त ज्वर पर—

वमन पर—इसकी गिरी मुनक्का व छोटी इलायची १०-१० ग्राम तथा पोदीना सत्व १½ ग्राम एकत्र थोडे जल के साथ खरल कर ½ ग्राम भार की गोलिया बना कर ताजे जल के साथ (१-२ गोली) देवें।

—श्री वैद्य चुन्नीलाल जी भारद्वाज

अथवा—इसकी १ से ३ गिरी तक शहद में घिसकर दिन में २-३ बार चटावें।

तृषा पर—इसकी ३ या ५ गिरी १-२ तोला जल में ३-३ घटे से। पीस कर पिलावें।

पित्त ज्वर की व्याकुलता निवारणार्थ—गिरी को जल या ठडे दूध के साथ चटनी जैसा पीस कर शरीर पर लगाने से दाह, व्याकुलता एव अधिक उत्ताप की शाति होती है।

(१५) नेत्र के विकारो पर—इसकी गिरी २ भाग, आमले की गुठली की गिरी ३ भाग और हरड की गुठली की गिरी १ भाग, सबको गुलाब जल के साथ खरल कर वटी बना लेवें। इसे प्रात सायं में आजने से नेत्रस्राव, तिमिर, वातज एवं रक्तज नेत्र पीडा, दृष्टिमाद्य आदि शीघ्र ही दूर होते है। —भा प्र

तिमिर पर—इसकी गिरी, काली मिर्च, आवले का गूदा, नीला थोथा (फुलाया हुआ) और मुलैठी को जल से पीसकर वर्ती बना छायाशुष्क कर रक्खें। इसे नेत्र मे आजने से शीघ्र लाभ होता है। —बा० भ०

पिराजपटल रोग पर—इसकी गिरी, शखनाभि और सेधा नमक समभाग का महीन चूर्ण कर, उसे काजी मे घोट कर और समभाग गुड में मिला बत्तिया बना ले। इसे आख मे आजने से लाभ होता है। —हा०स०

आखो का फूला—गिरी को स्त्री दुग्ध मे या शहद में प्रतिदिन रात के समय आजने से लाभ होता है—भै र

नेत्राभिष्यन्द (आख आना) पर—गिरी को बकरी के दूध मे घिसकर प्रात सायं लगाते है।

(१६) अश्मरी आदि मूत्र विकार तथा शोथ, ग्रन्थि आदि पर—इसकी गिरी तथा खरेंटी मूल, गोखुरु, कौच के बीज, तालमखाना, चावल, देवदारु, तथा चित्रक सम भाग मिश्रित जोकुट कर, उसमे से २ तोला लेकर शीतल जल के साथ पीसकर, कल्क बना मधु के साथ सेवन से सभी प्रकार के मूत्र दोषो की शुद्धि एव अश्मरी का नाश होता है —सु० उ० अ० ५८

अथवा इसकी गिरी को जवाखार के साथ पीसकर जल के साथ पिलाते है तथा ऊपर से ताजा जल अधिक मात्रा मे पिलाते हैं। उससे भी मूत्राश्मरी एव वृक्काश्मरी मे लाभ होता है।

शोथ ग्रन्थि आदि पर—इसकी गिरी को थोडे जल के साथ पीसकर सर्व प्रकार की शोथ, पीडा, दाह एव ग्रथि पर लेप करने से लाभ होता है। ग्रन्थि पर लगाने के लिए लेप या कल्क को कुछ गरम कर लेवें।

अग्निदग्ध स्थान पर भी उक्त प्रकार का लेप दाह को शात करता है।

नोट—बहेडे की गुठली की गिरी के स्थान में आमले की गुठली की गिरी ले सकते है। दोनो के गुण, धर्म एक समान ही हैं —भा प्र.

बीज गिरी का तेल—इसके गुण, धर्म उपर्युक्त गिरी के अनुसार ही है। यह गुरु, स्वादु, शीतल, वीर्य वर्धक कातिवर्धक, कफजनक, वातपित्तनाशक, अग्निमाद्य, चर्म-श्वेतकुष्ठ, पालित्य (केशो का पकना, श्वेत होना,) शोथ, दाह, खुजली नाशक तथा केश्य (केशो को पुष्ट करने वाला) है।

(१८) केशो को हितकारी—इस तेल को केशो मे लगाने से उनका झडना या टूटना, बन्द होता तथा केश श्याम, काले, सघन एव सुदीर्घ होते है। नियमित प्रतिदिन लगाते रहने से केश अकाल मे ही श्वेत नही हो पाते है।

(१९) आमवात पर—वेदनायुक्त अङ्गो पर इस तेल के मर्दन से वेदनायुक्त शोथ नष्ट हो जाता है।

—श्री वैद्य चुन्नीलाल जी भारद्वाज

खुजली आदि चर्म रोगो पर तथा श्वेतकुष्ठ पर भी यह लगाया जाता है।

छाल—वृक्ष की छाल—रक्तल्पता पाडु रोगो, अतिसार श्वेतकुष्ठ आदि मे उपयोगी है।

(१९) अतिसार मे—छाल के महीन चूर्ण मे लौग का चूर्ण मिलाकर १ से २ मा० की मात्रा में दिन मे २ बार चटाते है।

(२०) श्वेतकुष्ठ तथा पुण्डरीक कुष्ठ पर—वृक्ष की छाल तथा काकोदुम्बर (कठगूलर) की जड की छाल समभाग जौकुट कर २½ तोला चूर्ण को २० तोला जल मे १२ घन्टे भिगोकर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उसमे १ तोला पुराना गुड मिला बावची बीज के चूर्ण का १२ रत्ती प्रक्षेप देकर नियमित, पथ्यापथ्य के पालनपूर्वक सेवन करने से श्वेत कुष्ठ एव पुण्डरीक कुष्ठ (यह महाकुष्ठ का एक भेद है।) दोनो मे लाभ होता है—भै र

नोट—मात्रा—फल (गूदे सहित शुष्क फल के छिलके का) चूर्ण १ से ६ माशे तक। ध्यान रहे प्रयोगो मे जहा जहा फल का छिलका लिखा है, वहा वह गूदे सहित ही लिया जाता है। क्वाथ ३ से ५ तोला तक। तैल ३-५ बूद-इनका अधिक सेवन आन्त्र एव गुदा के लिए हानिकर है। हानि निवारक शक्कर तथा शहद है। इसके प्रतिनिधि आवला, काली हरड तथा मेहदी की कली है।

विशिष्ट योग--

(१) विभीतकासव (सीधु)—वहेडे के क्वाथ मे गुड और धाय के फूलो को मिला, कुछ दिन रखते है। बाद मे जो सीधु (आसव) तैयार होता है वह पाण्डुरोग नाशक, व्रणो के लिये हितकर सग्राही कषाय, मधुर, पित्त नाशक तथा रक्त प्रसादन है। —सु सू अ ४५।

(२) विभीतकाख्य लवण—(माण्डूर लवण)—मण्डूर को बहेडे की अग्नि मे तपा-तपा कर आग के समान लाल कर बार-बार गोमूत्र मे बुझावे। उसका चूर्ण हो जाने पर उसमे समभाग सेंधानमक व सबसे चौगुना गोमूत्र मिला, सबको मटकी मे भर मुख मुद्रा कर चूल्हे पर चढा, नीचे बहेडे की लकडी की आग लगावे। समस्त गोमूत्र जल जाने पर अग्नि देना बन्द कर, स्वाग शीतल हो जाने पर मटकी मे से औषध को निकाल पीसकर रख लेवे। मात्रा १ से ३ माशा तक तक्र या शहद के साथ सेवन से पाडु नष्ट होता है। पाण्डु रोग के लिए यह सर्वोत्तम प्रयोग है। —रसराजसुन्दर से।

(३) मुरब्बा बहेडा—इसके फलो मे ८ गुना जल मिला, कलईदार पात्र मे भर आग पर पकावें। जब जल लगभग आधा रह जावे तब बहेडो को अलग निकाल कर उस जल मे मिश्री मिला गाढी चाशनी का पाक करें तथा उस पाक मे उक्त पकाये हुये बहेडो को और थोडा पिप्पली चूर्ण मिला, उत्तम चिकनी मटकी या अमृतवान मे भर रखें। यह मुरब्बा जितना जूना होगा उतना ही विशेष गुणदायक होगा। कास (खासी) के रोगी के लिये यह अधिक लाभकारी है। —व गु।

बाभा—देखे—बलूत। बाव ककोडा—देखें—ककोडा बाझ। बाझ खेखसा—देखें—ककोडा बाझ।
बादरा—देखे बनकगनी।

बांदा बड़ा [Lorenthus Longiflorus]

गुडूच्यादिवर्ग एव अपने ही बन्दाक कुल* (Loranthaceae) के प्रमुख इस आम, बबूल, महुआ आदि के वृक्षो पर पराश्रयी रूप से उत्पन्न होने वाले पौधे की शाखाये विविध आकार की, कोई सीधी खडी हुई ३-५ फुट लम्बी, किसी की शाखाये नीचे को लटकने वाली होती है। ये शाखाये चिकनी, पतली, धूसरवर्ण की, छाल-छाल भूरी मुलायम, पत्र—जिस पेड पर यह पैदा होता है, प्राय उसी पेड के पत्तो के आकार प्रकार के किन्तु

---

* इस कुल के पौधो के पत्र-प्राय: अभिमुख, अखड, मासल, उपपत्र रहित, पुष्प—पुष्पाभ्यन्तर कोष के दल विभक्त या सयुक्त, पुकेशर ४-८ लग्न स्थ बीजकोष, फल मासल, एक या अनेक बीजयुक्त होते है तथा इस कुल के पौधे पराश्रयी होते हैं।

बान्दा बडा
LORANTHUS LONGIFLORUS DESR
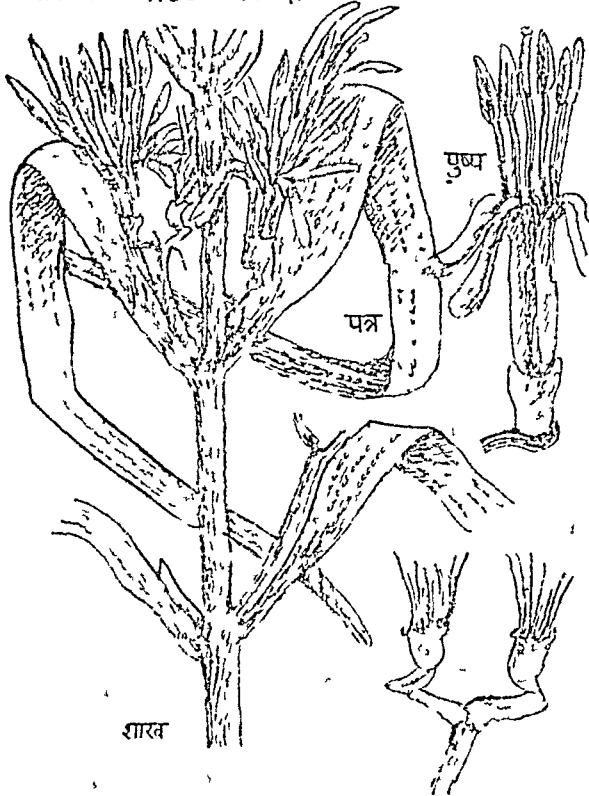
प्रस्तुत प्रसग के बडे वादे के पत्र मोटे, चिकने प्राय ३ से १० इन्च तक लम्वे, ½ से ५ इन्च तक चौडे ऊपर की ओर सकडे, चिमडे अण्डाकार, प्राय लसोडे के पत्र जैसे किन्तु अधिक लम्वे व कम चौडे, पत्र वृन्त—½ १ इंच लम्वे कडे होते है। पुष्प—कृष्णाभ लाल, नीले या श्वेत रग के १-२ इन्च लम्वे, सपर्ण कोप नलाकार १ से ४ इन्च लम्बी कलगी पर वाह्यकोप की नली गोल ऊपर का भाग कप (प्याले) के आकार का, छोटे-छोटे ५ दात वाला आभ्यान्तर कोप पीछे की ओर विदीर्ण सा पुकेशर फल कुछ गुलावी रग के छोटे छोटे खिरनी जैसे--½ इन्च लम्वे, अण्डाकृति, लसदार, एक बीजयुक्त होते है।

नोट—ये वादा कहाने वाले पौधे प्राय वृक्षो के उन ढाल आदि स्थानो पर पैदा हो जाते है, जहा खोखलापन या गढा हो गया हो, तथा उसमें कुछ मिट्टी या गर्द भर गई हो पक्षी के वहा बीट कर देने से पौधा ऊग आता है। कुछ दिनो तक उसी मिट्टी आदि में आश्रय प्राप्त कर वह फिर उस पेड की शाखा आदि का आश्रय कर उसी के रस से अपना पोषण करना प्रारम्भ कर देता है तथा जिस पेड पर यह होता है उसी पेड के नाम से पुकारा जाता है—आम का वादा, बबूल, वड आदि का बान्दा कहाता है। यह जिस पेड पर हो जाता है, वह पेड फलोत्पत्ति मे असमर्थ होकर प्राय शीघ्र ही सूख जाता है। अत पेड की रक्षा के लिये पेड के जिस स्थान पर यह पैदा होता है। उस स्थान को या भाग को साव धानी से काट दिया जाता है।

ये वान्दा नाम के पौधे—हिमालय के समशीतोष्ण एवं उष्ण प्रदेशो मे ३ से ७ हजार फुट की ऊचाई तक तथा उत्तर प्रदेश, गुजरात, काठियावाड, कच्छ, विहार, पजाब, मद्रास, आसाम आदि में तथा प्राय सर्वत्र ही पाये जाते है।

नोट—इसकी अनेक जातिया है—छोटा बान्दा (Loranthus Globusus), किसमिस काबुली (Viscum Album) आदि मुख्य-मुख्य ५-६ जातियो का वर्णन आगे के प्रकरणो मे क्रमश नम्बरवार देखिये।

चरक के मूत्रविरेचनीय, हिक्का निग्रहण, शुक्रजनन मे तथा सुश्रुत के वीरतर्वादिगणो मे एव चुच्चु, यूथिकादि शाको के साथ भी इसकी गणना की गई है और कहा है कि इसका शाक वातनाशक होता है—सु सू अ ४६ और अश्मरी, गर्भरक्षा, आमपाचनादि प्रयोगो में यह लिया गया है।

रास्ना कुल (Orchidaceae) के वगदेशीय रास्ना (Vanda Roxburghii) को भी पराश्रयी होने से बान्दा कहा जाता है। रास्ना का प्रकरण यथास्थान देखिये।

नाम--

स —वन्दाक, वन्दा, वृक्षादनी (वृक्षो को खाने वाला), वृक्षरुहा इ । हिन्दी—वादा (वडा), वन्दा, परगाछा, अमुट, पाडा इ । म —वाडगुग, वांदोर्ते । गु —वादो । व —मान्दा वडा । अ —पारासाईट आफ दी ट्री (Parasite of the tree)। ले —लारेन्थस लाँगिफ्लोरस, डेंड्राफ्थी फेलकेटा (Dendrophthoe Falcata)
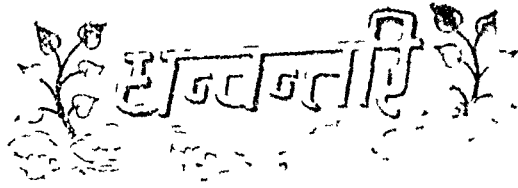
प्रयोज्याङ्ग—पत्र, पुष्प, फल, पचाङ्ग।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कषाय, तिक्त, मधुर कटु विपाक, शीत-वीर्य, त्रिदोष शामक, सग्राही, स्तम्भन, हृद्य, दीपन, कफघ्न, वीर्यवर्धक, रसायन, रक्तशोधक, नाडीबलदायक, मूत्रल, आक्षेपशामक, गर्भस्थापक, मस्तिष्क सशोधक, व्रणरोपण, वशीकरण को सिद्ध करने वाला, तथा उन्माद, अपस्मार, प्रवाहिका, अतिसार, रक्तातिसार, हृद्रोग, रक्त-विकार, शोथ, कास, श्वास, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मासिक धर्म सम्बन्धी कष्ट, विषविकार, भूतबाधा आदि मे उप-योगी है।

जिस जाति के वृक्ष पर यह होता है प्राय. उसी के गुण धर्म इसमे पाये जाते है।

डा० देसाई के मतानुसार इसकेपत्र व पुष्पों को पीस गरम कर शोथ तथा मन्द रक्तगुल्म पर बाधने से शोथ दूर होता है।

हृद्रोग जन्य श्वास, क्षयरोग जन्य श्वास तथा कफ के साथ होने वाले रक्तस्राव, अपस्मार, उन्माद और आशुकारी दाह (फुफ्फुस प्रदाह) शोथ आदि रोगो पर इसके पुष्पो का प्रयोग किया जाता है। इन रोगो मे पुष्पो की क्रिया प्रथम रक्तवाहिनी एव हृदय पर होकर, उनके द्वारा लाभ पहुचता है। ज्वर मे भ्रम होने पर यह औषधि दी जाती है।

हृद्रोग मे—हिक्का और मूत्र की जलन इसके सेवन से कम होते हैं।

शोथ, व्रण व क्षत मे इसका लेप करते है। बालको के मुखपाक मे—इसके पत्रो को महीन पीसकर बुरकते हैं। रगड, रक्तातिसार तथा रक्त निष्ठीवन मे पत्तो को जल मे पीस छानकर पिलाते है।

(१) रक्त निष्ठीवन तथा कफ के साथ रक्त आने पर व श्वास पर—इसके पत्तो को गिलेअरमनी (यह लाल रग की एक प्रकार की नरम, चिकनी, किंचित सुगधित, स्वाद मे फीकी मिट्टी है, यह जिह्वा पर चिपक जाती है। यह ईरान की ओर से इधर आती है। इसके अभाव मे सोना गेरू लेते हे) के साथ पीसकर पिलाते है।

श्वास पर—नीम का बादा, पत्र सहित कूटकर चिलम मे रख धूम्रपान करने से १४ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

(२) कर्ण शूल पर—इसके पत्तो को केले के पत्र मे लपेटकर भूभल मे सेककर, हाथो मे मसलकर रस निचोड, उसमें थोडा शहद मिला कान में डालने से कान के भीतर की फुसी तथा शूल दोनो का निवारण हो जाता है। कान को शीतल जल व वायु न लगने देवें तथा रात्रि के समय १०-२० मिनट हल्का सेंक कर कपडा बाध देवें। —गा. औ र.।

(३) अतिसार पर—बेर, आम, जामुन या बबूल के वृक्ष पर होने वाले बादे के पत्तो का रस १ से ३ तोला तक दिन में ३ बार सेवन कराते है। अतिसार में लाभ होता है।

(४) विषम ज्वर पर—बेल वृक्ष के बादे के चूर्ण को तक्र, या घृत के साथ सेवन से विषमज्वर के कष्ट साध्य विकार भी नष्ट हो जाते हैं। —भा भै. र।

अथवा—कनेर या अन्य जहरीले वृक्ष पर के बादे का चूर्ण तक्र, घृत, दही के घोल, मठे या हीग के साथ दिन में २-३ बार देने से लाभ होता है। यह भ्रम, मन्द प्रलाप आदि को भी दूर करता है। —गा. औ र

साधारण ज्वर पर—बडे पत्तो वाले बादे को जल के साथ पीसकर निकाले हुए रस को पिलावे। —व गु

(५) गर्भ धारणार्थ—गूलर (या बड) वृक्ष पर के बादे को कूट पीसकर निकाले हुए रस की १०-२० बून्दें, स्त्री को मासिक धर्म से शुद्ध होने पर चौथे दिन से नित्य प्रात ३ दिन तक बकरी के दूध के साथ पिलावें। —वै० म०

अथवा—बेर, अनार या बबूल के वृक्ष पर के बांदे को गाय के दूध के साथ पीसकर मासिक धर्म के बाद १३ दिन तक पिलाने से गर्भाशय शुद्ध होकर, गर्भधारण के योग्य हो जाता है। —व. च।

अथवा—पलाश वृक्ष के ऊपर का बादा रोहिणी-नक्षत्र मे लाकर, योनि में रखने से स्त्री गर्भधारण मे समर्थ होती है।

(६) भग्नास्थि सधान के लिए—कहा जाता है कि इसके ताजे पत्रो को या पचाग को कूट पीसकर निकाला हुआ रस पिलाने से टूटी हुई हड्डी जुड जाती है।

(७) नेत्र विकार पर तथा वशीकरणार्थ—सिरस वृक्ष का वादा घिसकर उसके रस को स्त्री के दूध मे मिला, नेत्रो मे डालने से समस्त नेत्र रोग दूर होते है।

वशीकरणार्थ—सिरस के ही वृक्ष का वादा, अश्विनी नक्षत्र मे लाकर जल के साथ घोटकर पीवें तो जिसको चाहे वही दृष्टिमात्र से वश मे हो जाय। —सकलित।

पुष्प के गुणधर्म--उपर्युक्तानुसार ही हैं। ये हृद्विकार जन्य श्वास, हिक्का, क्षय जन्य श्वास, फुफ्फुस शोथ, रक्त-पित्त, कफ के साथ रक्तस्राव होना, अपस्मार, उन्माद, मूत्रदाह, नूतन शोथ आदि मे उपयोगी है।

फल—कास तथा अतिसार पर—फलो का अंजीर के साथ क्वाथ बनाकर पिलावे।

मूल—

शीतला (मसूरिका, चेचक) पर—सहिजना के वृक्ष पर के वादे की जड़ को लाकर उस पर कपड़मिट्टी कर, गरम राख (भूभल) मे दबाकर उसके गरम हो जाने पर २-४ वूद रस निचोड़ कर उसमें गूलर के पत्तो पर की छोटी-छोटी ग्रथियो को (या पत्र रस के ही) रस को और गोरोचन $\frac{1}{2}$ रत्ती तथा शहद मिलाकर चटाने से चेचक का जोर कम हो जाता है। ध्यान रहे इस प्रयोग को जिस दिन चेचक का ज्वर चढता है, उसी दिन नही देना चाहिए। अन्यथा इस योग की जितनी बूदें दी जावेंगी उससे तीन गुना अधिक चेचक के व्रण शरीर पर उठेंगे। —व गु

बिच्छू के विष पर—मूल को जल मे घिसकर, गरम कर लेप करते है।

नोट—मात्रा—चूर्ण २ से ५ माशा। पत्ररस ३ तो. तक।

अधिक मात्रा मे—विबन्ध कारक है। निवारणार्थ—काली मिर्च तथा शहद।

तन्त्र ग्रन्थो मे वादा के तान्त्रिक प्रयोग वशीकरण, भूतबाधा आदि पर विस्तार से वर्णित हैं। अर्श, रक्तार्श, रक्तातिसार के निवारणार्थ कहा जाता है कि रविवार के दिन सूर्योदय के पूर्व इसकी शाखा को तोडकर, उसके मध्य भाग मे रोगी अपने हाथो से ७ लाल धागे बाधकर रख ले। उसे लाभ हो जावेगा। इत्यादि कई प्रयोग तान्त्रिक ग्रन्थो मे देखिये।

लिसोडा (बडा) वृक्ष का वादा धनिष्ठा नक्षत्र में लाकर सोने चादी के जेवरो मे रख देने से वे सदैव बढते एव स्थिर रहते है। इसी बादे को दूध या जल मे घोटकर पीने से वात गुल्म दूर होता है। खाने तथा लगाने से श्वेत कुष्ठ मे लाभ होता है। —सकलित

वांदा [छोटा] नं. २

(Loranthus Globusus)

उक्त कुल के ही इस पराश्रयी सूक्ष्म रोमश, अनेक शाखा युक्त पौधे के पत्र उक्त वादा नं १ के पत्र जैसे,
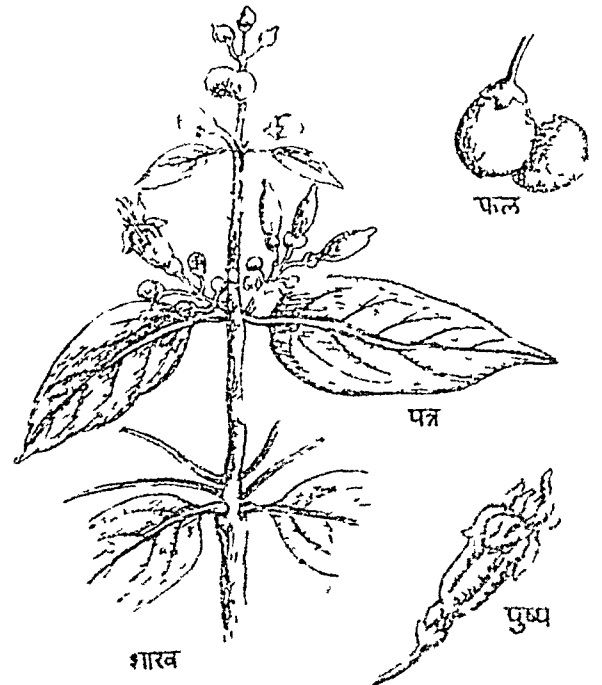
किन्तु छोटे, पुष्प—हरिताभ पीत वर्ण के, सूक्ष्म लोमयुक्त पुष्पदण्ड [illegible] इन्च लम्बा, पुष्प नलिका लम्बी, चिपटी लाल वर्ण की, फल गोलाकार होते हैं।

दिसम्बर से मार्च तक पुष्प तथा मार्च से एप्रिल मास तक फल आते हैं।

यह बांदा [illegible] बंगाल तथा खासिया आदि पहाडी प्रदेशों मे पैदा होता है।

नाम–

हि व बगला–बादा छोटा। ले.—लोरेंथस ग्लोबुसस मेक्रोमोलेम—कोचिन चिनेंसिस (Macrosblem Coch in chinensis Lour)।

गुण धर्म व प्रयोग,-

उक्त बादा नंम्बर १ के जैसे ही।

बांदा नं. ३ [चुल्लू का बांदा] (Viscum Album)

उक्त बांदाक कुल (Loranthaceae) के इस परा-श्रयी क्षुप का काण्ड अनेक शाखायुक्त, नलिकाकार २-३ फुट व्यास का पीला, हरा, शाखायें द्विविभक्त या चक्राकार क्रम से निकली हुई, पत्र-अभिमुख १-२ इन्च लम्बे, ½ इन्च चौड़े, आयताकार या अनेक आकार के मोटे फीके हरे निम्न भाग में ३-५ शिराओ से युक्त वृन्तरहित, पुष्प—प्रति गुच्छों मे ३-५ पुष्प, फल—साधारण गोल ½ इन्च से कुछ अधिक व्यास के, श्वेत, चिकने, पारदर्शक ताजी दशा मे हरे, सूखने पर कृष्णाभ भूरे रग के, खश-खस जैसे १ बीज युक्त होते हैं।

पंजाब की ओर पुष्प मार्च से मई तक आते है। तथा फल पाक नवम्बर मास मे होता है।

यह हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशो मे काश्मीर से नेपाल तक ३ से ७ हजार फुट की ऊंचाई पर तथा पंजाब व मद्रास के ऊपर भागो में और पश्चिमी प्रदेशो मे अट-लांटिक तक पाया जाता है। अफगानिस्थान व ईरान में अधिक होता है। भारत में इसके शुष्क फल प्राय ईरान और अफगानिस्थान से ही आते हैं।

नोट—यह बांदा शहतूत, सेव, नासपाती, अखरोट, बादाम आदि [illegible] कुल (rosaceae) के वृक्षों पर पैदा होता है। [illegible] वृक्ष के बांदे का फल उत्तम समझा जाता है।

[illegible] नाम से व्यव-हार किया जाता है।

[illegible] आदि मे आए हुए [illegible] मिश काबुली नाम से बिकते हैं सूखे फल मटर जितने बडे नरम, झुर्रीदार, भूरे रग के मिलते है। इनके भीतर एक खशखश जैसा बीज तथा एक अत्यन्त ही चिपचिपा पदार्थ होता है।

बान्दा नं ३
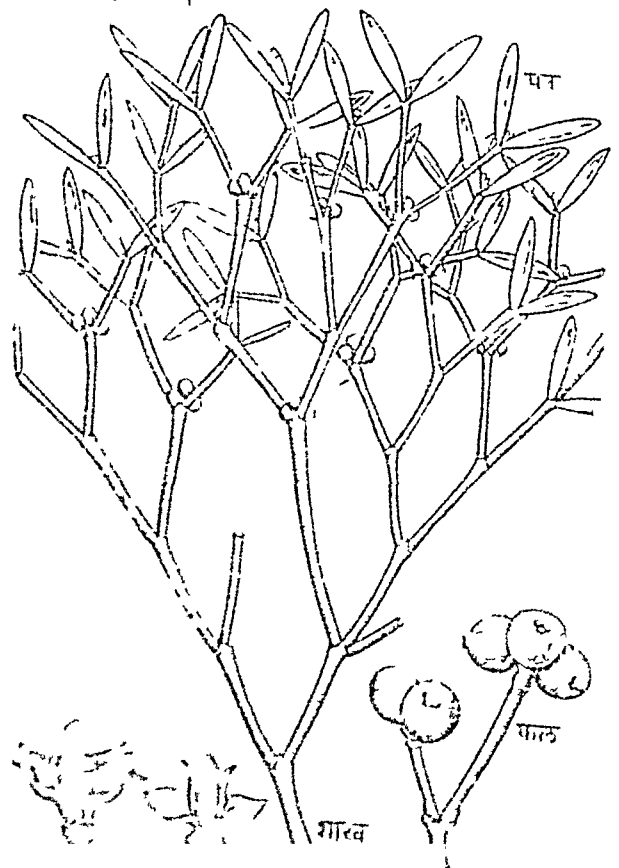
"औषधि के लिये उत्तम फल वह है जो ताजा चिकना और गोल हो, तोडने पर रंग कालापन लिये नीला निकले, तथा बाहर का रग कुछ कुछ हरा, काला, नीला हो, ऊपर खुरदरा न हो और उस पर मूली की तरह कोई चीज न हो"। —यूनानी द्रव्य गुण।

नाम—

सं—सुवर्ण वन्दाक मौक्तिक फल।

हि.—वादा (चूल्लू का), किशमिश कावुली, बन, गदर जिज, भिभा, गवल, रीनी इ। म. गु व—वादा

अ—मिस्टलेटो (Mistletoe) । ले.—विस्कम एल्वम।

रासायनिक सगठन—

फल मे विस्कीन (Viscin) नामक एक वहुत ही चिपचिपा द्रव्य होता है।

प्रयोज्याङ्ग—फल।

गुण धर्म व प्रयोग—

उष्ण, रूक्ष, मधुर, कुछ अम्ल, सारक, पौष्टिक, कामोत्तेजक, हृद्य, मूत्रल, कफघ्न, व्रणरोपक तथा हृद्रोग, जलोदर, शोथ, पित्त प्रकोप, यकृत प्लीहा वृद्धि, अपस्मार, कटिपीडा, गुल्म, अर्श, शारीरिक दौर्वल्य, मानसिक श्रम, व्रण, कर्णपूयादि मे व्यवहृत होता है।

डा० देसाई के मतानुसार—"अति प्राचीन काल से इस किशमिश कावुली नामक वादे का उपयोग सब राष्ट्र करते हैं। इसकी क्रिया डिजिटेलिस के समान रक्ताभिसरण पर होती है। सूक्ष्म केशिकाओ का सकोच होता है हृदय को बल प्राप्त होता है। मूत्र अधिक आता है तथा जलोदर दूर होता है। यह औषधि इतनी उत्तम है कि इसे डिजिटेलिस का प्रतिनिधि माना जाता है।

गर्भाशय पर इसकी क्रिया अर्गट के समान ही नही प्रत्युत उसकी अपेक्षा उत्तम प्रकार की एव प्रवल होती है अर्थात् इसके सेवन से गर्भाशय का संकोच जैसा व जितना चाहिए वैसा ही अत्युत्तम होता है। इसे सगर्भावस्था मे देने से गर्भपात हो जाता है। इसमें सारक गुण अधिक है यह शोथहर है।

अपस्मार आदि वातनाडियो के आक्षपयुक्त रोगो मे यह अति गुणदायक है। अत्यार्त्तव तथा प्रसव के पश्चात होने वाले अतिरिक्त स्राव पर इसका पीपलामूल के साथ फाण्ट वनाकर पिलाना विशेष लाभदायक है। गुल्म रोग मे इसका फाण्ट एरण्ड तैल व सौठ मिलाकर दिया जाता है। इससे शौच द्वारा दूषित पित्त निकल जाता है। कटिशूल शमन होता अर्श रोग दूर होता तथा उदर की सब क्रिया का सुधार होता है। प्लीहा वृद्धि मे भी यह लाभ दायक है।

व्रणशोथ पर फलो को पीसकर पुल्टिस बाधते हैं। प्रारम्भ मे ही पुल्टिस के बाधने से शोथ दूर हो जाता है। देर से वाधने से शोथ शीघ्र पक जाता है। अग्नि दग्ध व्रण, शोथ युक्त व्रण तथा व्यूची (उकवत् और छाजन) पर फलो का लेप किया जाता है।

कर्ण पूय—कान फूट कर पूय स्राव व वेदना होने पर फल के रस में थोडी अफीम घिसकर कान मे डालते है।

यूनानी मतानुसार—दूसरे दर्जे मे गरम, पहले दर्जे मे खुश्क, दोषो को पतला करने वाला, सूजन को बिखारने वाला ज्ञानेन्द्रियो को वलदायक, शरीर की सर्दी दूर करने वाला है। इसके उपयोग की एक साधारण विधि यह है कि इसे रात्रि के समय गरम जल मे भिगो दें। प्रात छिलके व वीजो को दूर कर अखरोट या एरड की गिरी के साथ पीसकर शहद मे मिलाकर देते है। यदि सूखा ही उपयोग करना हो तो तिल के तैल मे मिलाकर देवें। इससे कफ और सौदा का उत्सर्ग, अवरोधो का उद्घाटन तथा गृध्रसी भगदर एव सर्दी के रोगो मे लाभ होता है। शीतल शोथ पर इसका लेप करने से वह विखर जाती है। यह कफज शीत पित्त और उदर्द में भी लाभ करता है, दूषित पुराने फोडो एवं व्रणो को नरम करता है।

इसके साथ समभाग गोंद, कुदुर‡, और राल मिला

‡ कुदुर—यह १ से ३ गज ऊंचे [कटीले वृक्ष का गोंद है जो कुछ कडवा होता है। ये दक्षिण अरब, सोकोतरा, [Socotra] व अफ्रीका आदि पश्चिमी देशो मे पैदा होते है। लेटिन में [Boswellia floribunda] व अंग्रेजी मे

कर कैरती (मलहम) बनाकर लगाने से संधियो की जकडन (संधियो का कडापन) एव तज्जन्य वेदना दूर होती है।

इसके लेप से समस्त वातज एव कफज शोथ पककर फूट जाते हैं। इससे मुँह की झाई दूर हो जाती है। सडे गले नखो पर इसे हडताल और चीड के तैल (कतरान या जिफ्त) के साथ लगाने से वे उखड जाते हैं। फिर इसे चूना, अगूर का रस व शहद के साथ लगाने से नख नवीन निकल आते है, तथा उनमें शक्ति आती है।

सिर के गज और फुंसियो पर इसे मेंहदी के साथ लगाते हैं। गुलरोगन में मिलाकर लगाने से यह बालो को बढाता है।

इसे चूने के पानी मे पकाकर या चूना मे मिलाकर लगाने से प्लीहा शोथ दूर होता है, और अन्य अङ्गोपर लगाने से उनके भीतर के पतले व गाढे द्रवो को खींचकर उन्हे नष्ट कर देता है।

इसके अधिक खा लेने से भ्रम, अङ्ग गौरव तथा उदर में मरोड व ऐंठन होने लगती है। ऐसा होने पर जल व शहद मिलाकर वमन करावें और बस्ति का प्रयोग करें। इसके उपरान्त सिकजबीन पिलावें।

मात्रा—४½ माशा तक, कफज विकारो में ३½ मा. तक।

यह हृदय के लिये हानिकर है। हानि निवारक, गाजवा खीरा, ककडी के बीज या बिल्लीलोटन है।

—यू. द्र. वि०

विशिष्ट योग—

(१) अर्क (आसव या टिंचर) बादा—इसके पके फलो को ८ गुनी शराब मे मिला, बोतल मे भर रखे। ७ दिन के पश्चात् छान लेवें। मात्रा–२ से ३० बूंद। हृद्रोग, जलोदर, गर्भाशय के विकार, प्लीहा, यकृत के विकार आदि मे उपयोगी है। यह अर्क शक्तिवर्धक, अपस्मार आदि के आक्षेपो का निवारक, निद्राकारक तथा शीघ्र प्रसवकारक है। यह वामक तथा रेचक भी है।

(२) क्वाथ बादा—इसके फलो मे (१ भाग मे १० भाग) जल मिलाकर बनाया गया क्वाथ मात्रा १¼ तोला से ५ तोला तक देने से भी उक्त विकारो मे लाभ होता है। —नाडकर्णी

बांदा नं ४ [जुड़ा हुआ बांदा] (Viscum Articulatum)

चपटे खण्डों से जुडकर बने हुए काण्डवाला (इसके भागों को तोड कर फिर दूसरे भाग के साथ लगाने पर लग जाता है) अनेक शाखायुक्त, [illegible] पत्र रहित पराश्रयी क्षुप का तना चिपटा, जुडी हुई संधियो वाला, कई संधियो पर इसके लटकते हुए गुच्छे ६ इन्च से ३ फुट तक लम्बे पर्व ½ से १ इन्च चौडे, १ से २ इन्च लम्बे दोनो सिरो पर [illegible], [illegible] अवस्था मे हलके [illegible] रंग का, शुष्क होने पर पीला भूरा होता है।

पुष्प—[illegible] मे [illegible] हरित वर्ण के [illegible], [illegible] पुष्प, [illegible] स्थान पर [illegible] फल—लगभग ⅛ इन्च व्यास का, गोल, रस भरा पकने पर पीला होता है।

बिहार की ओर इसके पुष्प दिसम्बर जनवरी तथा पंजाब की ओर जून से अक्टूबर तक आते है।

यह बादा हिमालय, आसाम, खासिया, मध्य-प्रदेश के दक्षिणी भाग, पश्चिमी घाट, पंजाब, बिहार व उत्तर प्रदेश में अधिक पाया जाता है। यह प्राय जामुन- रीठा, सीसम, धामन आदि वृक्षो पर विशेष पैदा होता है।

नाम—

स —वन्दाक, पुन्नगी, कामिनी, नील वल्ली इ ।

हि —बादा जुडा हुआ, पूदु, बुदू। म गु व –बादा बोडो बादो।

ले —व्हिस्कम आर्टि क्युलेटम । व्हिस्कम ऐन्ग्युलेटम (V Angulatum) ।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, कटु, मधुर, शीत वीर्य, ग्राही, रसायन, कामोत्तेजक, वात कफ नाशक तथा रक्त विकार, यकृद्विकार, अपस्मार व व्रण मे प्रयुक्त होता है ।

सधिपीडा प्रधान ज्वर पर, पित्त विकार, सग्रहणी पर इसका फाण्ट दिया जाता है । तथा अन्य विकारो पर भी फाण्ट ही दिया जाता है । व्रणो पर इसका लेप करते है ।

बांदा नं. ५ [चिमड़े पान वाला] (Viscum Orientale)

इस सघन शाखायुक्त पराश्रयी ग्रथियुक्त क्षुप के काण्ड ग्रथि स्थान मे मोटे व चिपटे, पत्र अभिमुख अति चिमडे कुछ लम्बे, अण्डाकार, ऊपर के भाग मे सकडे १½-२ इञ्च लम्बे, अति सूक्ष्म वृन्त युक्त (लगभग वृन्त रहित) ३-५ सिराओ से युक्त होते हैं ।

पुष्प—गुच्छो मे ½-¾ इञ्च लम्बे हरे या पीले रग के नर मादा पुष्प मिश्रित, फल गोल या अण्डाकार कुछ चौडे से ¼ इञ्च लम्बे हरे रग के रस भरे होते हे ।

इसमे पुष्प प्राय सदैव बारहो मास रहते है विशेपत वसतऋतु मे अधिक आते हैं ।

यह बगाल, बिहार व मद्रास की ओर अधिक पाये जाते है ।

नाम—

हि —बादा (चिमडे पान वाला), कोल ।

ले —व्हिस्कम ओरिएन्टेल ।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसके गुण धर्म उसी पेड के गुण धर्मानुसार होते हैं जिस पर यह पैदा होता हे । इसका प्रयोग अनेक भिन्न-भिन्न रोगो पर किया जाता है ।

बांदा नं. ६ [बांदा चिपकने वाला] (Viscum Angulatum)

इस पराश्रयी पत्ररहित चिपकने वाले क्षुप की लता सदृश शाखाएं दो प्रशाखायुक्त नीचे की ओर लटकने वाली २–३ फुट लम्बी अगुली जैसी मोटी, पर्व युक्त, कुडकीली पर्व ½ से ३ इच लम्बे, पीताभ हरित वर्ण के, पर्व या सधि के स्थान की ग्रथि अधिक पीली होती है । इसके सधि स्थान से एक प्रकार का चिपकने वाला चिपचिपा रस टपकता हे । यह गन्ध में उग्र तथा स्वाद मे चरपरा सा मधुर होता है । पत्र—नही होते । पुष्प—प्रतिसूक्ष्म नर मादा पुष्प पृथक पृथक, फल—बहुत छोटा, रसभरा, गोल हरिताभ पीत वर्ण का, १ अतिसूक्ष्म बीजयुक्त होता हे ।

इसमे पुष्प प्राय दिसम्बर जनवरी मास मे आते हैं।

यह बादा विशेषत तेदू, शीशम, रीठा, धामन, जामुन आदि वृक्षो पर, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार आदि प्रान्तो मे पाया जाता है ।

गुण धर्म व प्रयोग—

मधुर, चरपरा, शीतवीर्य, ग्राही व पित्त नाशक हे ।

इसका प्रयोग महाराष्ट्र व गुजरात मे विशेप किया जाता है । अतिसार तथा सग्रहणी मे इसका फाण्ट या क्वाथ दिया जाता है ।

नोट—बादा न० ७ (कुचले का मलगा) (Viscum Monoicum) । इसका वर्णन "कुचले का मलगा" के प्रकरण में भाग २ मे देखिये ।

बांस (Bambusa Arundinacea)

गुडूच्यादि वर्ग एव यवकुल (Graminae) के इस सीधे, समूहबद्ध, कटकयुक्त २०-५० फुट ऊचे गुल्म का काड सयुक्त, गोल ६-७ इञ्च व्यास के मोटे, थोडी-थोडी दूर (लगभग २० इञ्च की दूरी पर) अनेक पोले या ठोस पर्वयुक्त, काण्डाच्छादन-चर्मसदृश, भिन्न-भिन्न आकार के, शाखायें-बहुत कम, पत्र गुच्छो मे ७ इञ्च लम्बे, भालाकार, अग्रभाग मे नुकीले, निम्न भाग में प्राय गोलाकार होते हैं।

पुष्प—लम्बे, अनेक शाखा-प्रशाखायुक्त दण्ड पर पुष्प श्वेत लाल वर्ण के एक लिङ्गी, फल—$\frac{1}{3}$ इञ्च लम्ब-गोल, देखने मे यव जैसे होने से ये 'वशयव' कहे जाते है।

वास भारत में प्राय सर्वत्र मध्य भारत, दक्षिण भारत, बगाल, उत्तर पश्चिम भारत में पैदा होता है। आसाम तथा ब्रह्मदेश मे अधिक होता है, तथा जावा, सुमात्रा आदि द्वीपो मे भी प्रचुरता से होता है। इन देशो मे वास की विना काटे वाली तथा अन्यान्य कई जातिया पैदा होती हैं। जगलो मे तो यह स्वय पैदा होता है, किंतु कई स्थानो के शहरो में यह वोया भी जाता है, इसके हरे काण्ड के टुकडो को पर्व सहित रोपण करने से समय पाकर उनमे से कई वास पैदा हो जाते हैं।

नोट न० १—वास प्राय स्वय भी २० या ३० वर्षो की आयु मे फूलता व फलता है। यह जब पुष्पित होता है, तब देखने में सुन्दर प्रतीत होता है, किंतु इसका पुष्पित होना देश, जाति तथा उसके अधिकारी के लिये अशुभ सूचक माना जाता है। यह प्राय ग्रीष्म ऋतु मे फूलता व फलता है। वर्षा ऋतु मे वादलो की तेज गर्जना से वास के पर्वो में दरारे पड जाती है। मादा वास पोला होता है तथा नर वास ठोस होता है।

नोट न० २—वास की कई जातिया ऐसी हैं जिनमे पुष्प उनके जीवन काल मे एक ही वार आते है तथा फिर वे थोडे ही समय मे समूल नष्ट हो जाते है। कुछ जातियो मे पुष्प प्रति ३ [illegible] मे आया करते है तथा बहुत थोडी जाति के वास ऐसे भी है, जिनमें प्रतिवर्ष आते रहते हैं।

आगे वेल्थ आफ इण्डिया (wealth of India) ग्रन्थ के लेखक लिखते हैं, कि वास की जातिया (Species) ५५० है। इनमें १३६ जाति भारत मे, ३९ ब्रह्मदेश मे, २९ अडमान मे, ९ जापान में, ३० फिलिपाइन में तथा शेष मे कुछ न्यूगिनी में, कुछ दक्षिण अफ्रीका और कुछ क्विन्स लेण्ड में पैदा होती है। ठोस वास में एक जाति Dendrocalamus (वेत के सदृश) नाम की है (इसका वर्णन नीचे के नोट न० ३ में देखिये)। विशेषत वास सीधे ही बढते है, किन्तु कोई कोई जाति के बास लता के समान दूसरे वृक्ष पर चढ जाते हैं। कुछ जातिया क्षुप मे छोटी एव काष्ठरहित कोमल होती है। पहाडो पर एक प्रकार के पतले तथा लम्बे पर्व वाले ऐसे भी छिद्र युक्त वास होते हैं जिनसे वशी बनाई जाती है। इसे कीचक वेणु (कीचक
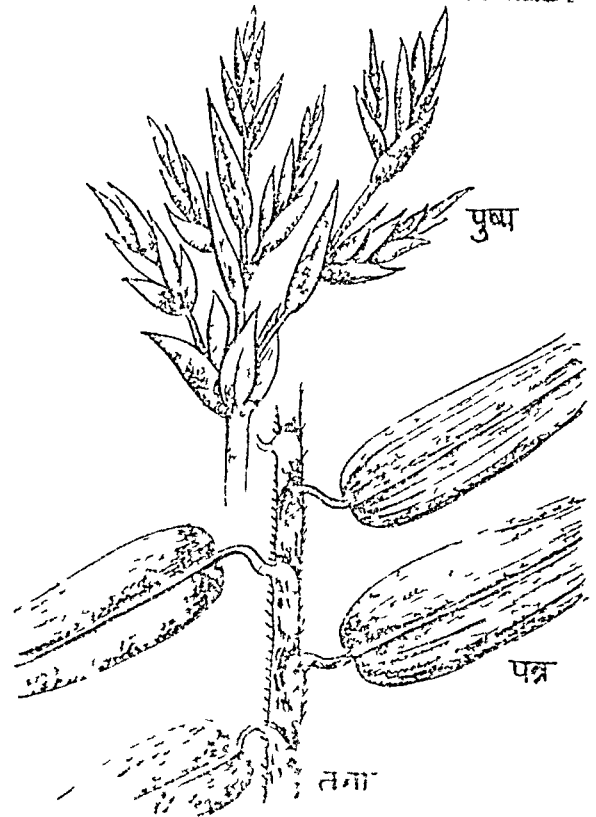
वास) कहते है।

नोट न० ३–ठोस, नरवास (Dendrocalamus Strictus)—इस नर जाति के वास के वेंत सदृश, अति सीधे, सकडे, देखने मे अति सुन्दर, पतनशील, सघन, गुच्छमय, दृढ काडयुक्त गुल्म के काण्ड २॥ से ६ फुट ऊचे, गोल, १ से ३ इच व्यास के, ठोस या छोटे विल युक्त होते हैं (इसकी ही एक जाति के काड की ऊचाई २० से १२० फुट तक होती है। Dendrocalamus Giganteus इसका लेटिन नाम है) ये काड नीले हरे रंग के पुराने हो जाने पर हल्के हरे या पीले रग के हो जाते हैं। पत्र–१-२ इच लम्बे (शुष्क देश में) आर्द्र देश में १० इच तक लम्बे, ½ से १½ इच तक चौडे, कई सयुक्त शिरायुक्त। पुष्प—लम्बी शाखा प्रशाखा युक्त मिश्र मजरी मे सघन पुष्प मजरी १ इच व्यास की कुछ पीत वर्ण की होती है। फल—⅓ इच लम्बे अण्डाकार, भूरे रग के चमकीले होते हैं। पुष्प व फल ग्रीष्म ऋतु में आते हैं। इस वास की लाठिया बहुत अच्छी वनती है।

इस वास के गुल्म विहार, छोटा नागपुर तथा उडीसा मे अधिक पाये जाते हैं।

बांस
DENDROCALAMUS STRICTUS NEES.

नाम--

हि०—नर वास, कठवासी, वास कवान इ। म०—नगोठ वेलू। व०—काराइल वास। अ०—मेल वाम्बू (Male bamboo)। ले०–डेन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिक्टस।

गुणधर्म व प्रयोग--

प्रस्तुत प्रसग के वास के जैसे ही है। इसके पर्व की ग्रन्थि के समीप का भीतरी कोमल भाग स्निग्धकर तथा ज्वरनाशक है। इसके पत्र विशेष सकोचक है। गर्भाशय सकोचनार्थ पत्रो का विशेष प्रयोग किया जाता है।

नोट न०४ —वशलोचन—मादा जाति के जो मोटे पीले एव पहाडी वास होते है, जिन्हे नजला वास कहते है, उनके भीतर का जो श्वेत रस सूखकर ककर जैसा हो जाता है, उसे ही वशलोचन कहते हैं। वासो का जगल जब काटा जाता है, जिस वास की पोरी मे यह होता है उस वास के उठाने धरते समय इसके रवे भीतर खडकने से पता चल जाता है कि इस वास की पोरी में वशलोचन है, उसे चीर कर निकाल लेते है। यह असली वशलोचन बहुत प्राचीन काल में भारत के ही वासो मे प्राप्त किया जाता था। कहा जाता है कि स्वाति नक्षत्र की जल की बूदें जिस मादा जाति के वास के भीतर प्रविष्ट हो जाती हैं, उसमे वशलोचन निर्माण होजाता है। अभी भी भारत के उत्तर पूर्व के तथा दक्षिण भारत के पहाडी अरण्य प्रदेशो में, इस प्रकार के वशलोचनोत्पादक निम्न जातिया पाई जाती हैं—(१) प्रस्तुत प्रसग का (Bambusa Arundinacea, Retz (Dym) (२) Arundo Bambos Linn. (Roxb) (३) Bambusa Bambas Druce (Chopra)। ये तीन जातिया दक्षिण भारत मे प्रचुर एव आसाम व बगाल मे साधारण सहजोद्भव हैं, किन्तु गगा के मैदान से लेकर सिंधु तक सहजोद्भव नहीं है। बगाल की ओर इसीकी एक जाति विशेष Babusa
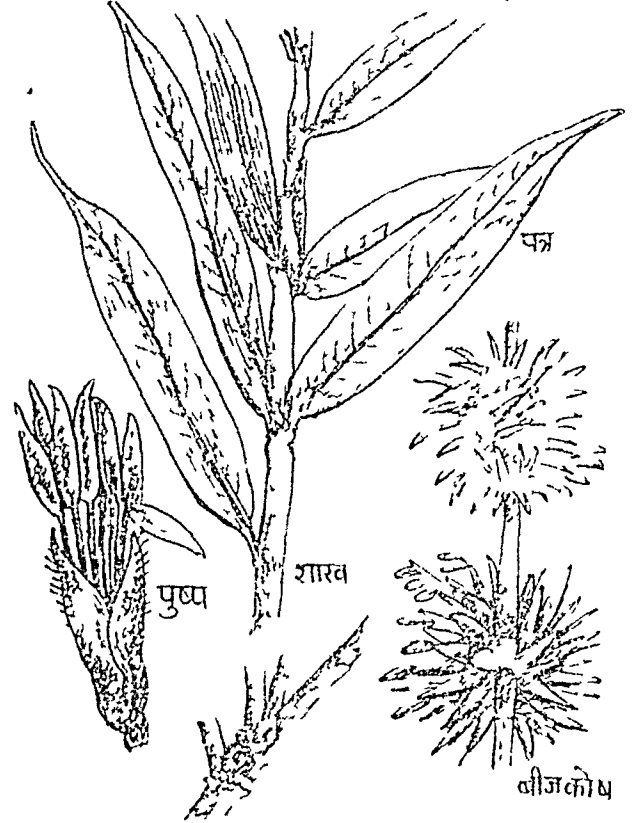
beceifera (Roxb) है जिसमे काटे नही होते ।

उक्त ३-४ वास की जातिया ही आजकल फल एव वशलोचनोत्पादक पायी जाती है। इससे प्रतीत होता है, कि चरक एव सुश्रुत के समय मे जबकि भारत मे विशेषत विन्ध्याचल के दक्षिण भाग मे अरण्य की विपुलता थी, दक्षिण का भाग अरण्यमय ही था, तब इस वास की ये जातिया भी प्रचुर परिमाण मे पैदा होती होगी। इसीसे तो चरक सहिता (अगद तन्त्र मे-गध हस्ति महागधहस्ति आदि अगदो में एव अन्य क्षय,कासादि प्रयोगो मे भी) सुश्रुत सहिता के अगद तन्त्र में वशत्वगादि मे वशलोचन, वशत्वग, इन नामो से इसका उल्लेख किया है। हमारे कथन का यह प्रयोजन नही है कि उस समय भारत में बाहर के सिगापुर, जावा, सुमात्रादि पूर्व द्वीप समूहो से इसका आयात नही होता था। अवश्य होता होगा, क्योकि उस समय का भारत आधुनिक भारत जैसा सकुचित नही था। पता चलता है कि ईस्वी सन् की १२ वी सदी तक बम्बई प्रान्त के ठाणा नामक बन्दरगाह मे इसका अत्यधिक आयात होता था। तथा वही से यह अदन आदि विदेशी बन्दरगाहो को भेजा जाता था।

अमेरिका मे Guaduas नामक बास की एक जाति है, जिससे वसलोचन प्राप्त होता है। किंतु इस वशलोचन मे भारतीय वशलोचन की अपेक्षा कम प्रमाण मे सेलिसिलिक एसिड होता है।

उक्त असली वशलोचन के स्वरूप के विषय मे राज निघटुकार ने लिखा है कि यह—शुक्रा, श्वेता, पिगा (अर्थात्-स्निग्ध अपारदर्शक, चमकीला श्वेत), रोचनिका (गोरोचन जैसी पीली छटावाला) होता है। यह इसके रङ्ग की हुलिया पोलकी नामक रत्न (एक कीमत दूधिया पत्थर opal) से मिलती जुलती सी है। बाजारू वशलोचन के स्निग्धश्वेत (शुक्रा) वर्ण मे नीली छटा की विशेषता होती है, किंतु रोचना पिगा छटा उसमे नही दीखती जिसका दीखना आवश्यक है। प्रतीत होता है कि असली वशलोचन पर दाह सस्कार के कारण यह उसकी आवश्यक छटा बाजारू वशलोचन मे लुप्त हो जाती है। मालूम होता है कि राज निघण्टुकार के समय मे यह परमोपयुक्त द्रव्य विना अग्निसस्कार के मूल स्वरूप मे ही प्राप्त होता एव उपयोग मे लाया जाता था।

वास के कुल का यह एक नैसर्गिक गुण है कि प्रायः ग्रीष्मकाल में परस्पर की रगड से इसके समूहबद्ध वृक्षो में आग लगकर वे जल जाते है। इस प्रकार से जले हुए बासो में आग से भुलसे या दग्ध हुए वशलोचन के ककड प्राप्त होते हैं। उन पर एक विशिष्ट प्रकार की उष्णता देकर वे स्वच्छ किये जाते है। तथा इस प्रकार की उष्णता से सस्कारित वशलोचन बाजारो में विक्रियार्थ आता है। साराश यह कि स्वाभाविक मूल स्वरूप के वशलोचन की प्राप्ति कठिन है।

वशलोचन पर हुए अनुसधानो का जो महत्वपूर्ण विवरण आयुर्वेद—विज्ञान में प्रकाशित हुआ था, उसका सक्षिप्त साराश इस प्रकार है, कि जिस रूप मे यह बास की पोरी से निकलता है उसी रूप में इसका आजकल उपयोग नही होता,क्योकि यह देखने में मिट्टी का रग जैसा बहुत भद्दा सा लगता है। अत यह विद्युत की भट्टियो मे भूना जाताहे। भूनते समय यह चटखता एव तीव्राग्नि के प्रभाव से फूलकर खिल उठता एव उत्तम श्वेत नील वर्ण का हो जाता है।

नकली वशलोचन—यह अमृतसर में बहुत बनता है। इसके लिये सोडियम सिलीकेट और अमोनियम सल्फेट इन दोनो को अलग-अलग जल मे घोलकर फिर उन्हे मिला देते है। दोनो के मिश्रण से उसमे रासायनिक परिवर्तन होता तथा जल मे घुला सिलीकेट धीरे-धीरे नीचे की तलैटी मे एकत्रित होता है। वह कार्य बडे-बडे सीमेंट के हौजो मे किया जाता है। जब वह सिलीकेट का यौगिक जम कर नीचे बैठ जाता है, तब उसे १०-१२ बार जल से धोकर सुखा लेते है। सूखने पर यह असली वशलोचन के समान हो जाता है। साधारण व्यक्ति क्या बडे-बडे समझदार व्यक्ति भी असली और नकली का अन्तर नही कर सकते।

असली और नकली की सहज-सरल परीक्षा इस प्रकार की जा सकती है कि वसलोचन को आग में डाल देने से यदि उसमे विकृति आ जाय, उसकी आभा प्रभा

नष्ट हो जाय तो उसे नकली जानना चाहिये । यदि वह जैसा का तैसा ही बना रहे, उसमे कोई विकृति न आये तो उसे असली जाने । नकली को लकडी या पत्थर पर घिसने मे उस पर रेखा उभर आती है या निशान पड जाते हैं। हाथ की चुटकी मे लेकर जोर देने से टूटता है, तथा मुख मे रखने से गल जाता है । इसमे पानी को सोखने की शक्ति नही है । असली पानी को सोखता है और पारदर्शक हो जाता है। नकली पानी मे घुल जाता है ।

नाम--

स०—वंश, वेणु, त्वक्सार (दृढत्वचा वाला), तृणध्वज (तृण जाति मे श्रेष्ठ या ऊचा), शतपर्वा (अनेक पर्वो वाला), यव फल इ । हि.—वास, नल, मगर । म.–बांबू, कडक, वेणु, माणगा, चिवा इ । गु.–वास,वेडो वासा, तीनकोर । बं० बाश । अ —बाम्बू (Bamboo) ले —बम्बुसा अरुण्डिनेसिया, बाबूसा स्पिनोसा [Bamboosa Spinosa), बाबूसा ओरिएण्टालिस (B Orientalls) इ. ।

रासायनिक संगठन–

पोले वास मे–राख ३ ३%, सिलिका १.८% उष्णजल मे द्रवणीय द्रव्य ६%,गोद प्रधान द्रव्य १६ ६%, केन्द्र प्रधान काष्ठोज युक्त द्रव्य ३० १%, और काष्ठोज [Cellulose] ५७ ६ % होता है ।

ठोस वास मे राख २ १%, सिलिका १ ८%, पेण्टोसन (कार्बोहाइड्रेट) १६ ६%, लिग्निन ३२ २% और काष्ठोज ६० ८%, होते है ।

पर्व सधि मे—जलीय सत्व ६ ८%, वसा व सिक्थ १.४%,अपक्व द्रव्य २५%, लिग्निन १७ ६%, काष्ठोज ४६ १%, व राख ४ ५ % होती है ।

वास के अकुरो मे—सायनोजेनेटिक ग्लुकोसाईड [Cyanogenetic glucoside] जो पचन होने पर विषाक्त वायु उत्पन्न करता,है या पाचन काल मे ०३% हायड्रोसायनिक एसिड [Hydrocyanic acid] व २३% लोहबानाम्ल उत्पन्न करता है। अकुर के रस की परीक्षा करने पर लगभग ० ३०% हायड्रोसायनिक एसिड और मुक्त लोहबानाम्ल १६% प्राप्त हुआ है, ऐसा घोष और चोपरा ने लिखा है ।

वास के फल या चावल में—जल ११ प्रतिशत, श्वेत सार ७३ प्रतिशत, पोषक द्रव्य ११ ८ प्रतिशत, तैल द्रव्य ० ६%, रेसे १.७% और राख १ २% प्राप्त होती है।

वास की जलाई हुई राख से—सिलिका २८%, चूना ४%, मग्नेसिया ६%, पोटाशियम ३४%, सोडियम १२%, क्लोरिन २%, गंधक १०% रहता है । कुछ लोग इसके क्षार को तथा असली वंसलोचन को गरमकर पानी मे डालते हैं, और सूखने पर वंस लोचन के स्थान पर बेचते है ।

वंशलोचन मे—सिलिका (Silica) ९०%, लोहे का पेरोक्साइड या मडूर (Peroxide of Iron) ३०% पोटाश (Potash),चूना, अल्युमोनिया (Alumınia)तथा कुछ वानस्पतिक पदार्थ जैसे कोलिन (Cholin), बिटेन (Betain), न्युक्लिएस (Nuclease),यूरिएस (Urease) प्रभूजिन एव कार्बोज के पाचक किण्व तथा स्नेह विलेयक किण्व (Proteolytic diastatic and emulsifying enzymes) तथा कुछ सायनोजेनेटिक ग्लुकोसाइड (Cyanogenetic glucoside) आदि पदार्थ पाये जाते है ।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, अङ्कुर वीज, मूल, गाठ (पर्व), छाल, पुष्प, राख व वंसलोचन ।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, मधुर कषाय, शीत वीर्य, मधुर विपाक, सारक, वस्तिशोधक, छेदन, कफहर तथा पित्त, दाह, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, रक्त विकार, कुष्ठ, व्रण, शोथ आदि पर प्रयुक्त होता है ।

यूनानी मत से—शीत व रूक्ष जला हुआ वास उष्ण व रूक्ष होता है । वास–लेखन व मूत्रार्तवजनन है । इसकी जड और छाल को जलाकर सिरके मे मिला गज के स्थान पर लगाने से बाल फिर जमने लग जाते है । इससे दद्रु (दाद) मे भी लाभ होता है । इसे जला कर दातो पर मलने से दात साफ होते है । इसकी राख को मञ्जनो में मिलाकर दातो पर मलते हैं । वास को सिरके

के साथ पीसकर कमर व कूल्हो पर लगाने से शूल दूर होता है। बास को पानी में जोश देकर पीने से रुका हुआ मासिक धर्म व पेशाब जारी हो जाता है। इसके हरे पत्तो को पानी मे खूब मल छान कर पीने से मुह से खून का आना बन्द हो जाता है। पत्तो को जलाकर सूखी तथा तर खुजली पर लेप करने से लाभ होता है। पत्तो का अर्क शहद के साथ पीने से खासी मे लाभ होता है। बास और उसके पत्तो पर जो एक प्रकार की चिकनाहट जम जाती है उसको आख मे लगाने से जाला कट जाता है। प्रसूति के बाद प्रसूता के गर्भाशय मे जो गन्दगी शेष रह जाती है वह इसके पत्रो का क्वाथ पीने से बिल्कुल साफ हो जाती है।

पोला बास—अग्नि दीपक, अजीर्ण नाशक, रोचक, पाचक, हृद शूल, गुल्म आदि नाशक है।

पत्र—आर्त्तवजनन, गर्भाशय सकोचक, कास, कटि-वेदना, अर्श, पित्त प्रकोप, सुजाक व ज्वर शामक है। नेत्रो को धोने मे उपयोगी हैं कोमल पत्तो का प्रयोग कफ मे खून जाना, कुष्ठ, ज्वर तथा बालको के सूत्र कृमि आदि के निवारणार्थ किया जाता है। रजोरोध, कष्टार्त्तव, तथा प्रसवोत्तर गर्भाशय शोधनार्थ कोमल पत्रो का क्वाथ दिया जाता है। गाय भैस आदि पशुओ को प्रसूति के बाद इसके पत्रो को खिलाने से उनके गर्भाशय की गन्दगी साफ होकर गर्भाशय अपनी असली हालत पर आ जाता है।

(१) प्रसूति के बाद गर्भाशय की शुद्धि (जेर या झिल्ली निकालने) के लिये—इसकी १० पत्तियो को २० तोला जल में पकावें। ५ तोला जल शेष रहने पर छानकर उसमें १ तोला गुड मिलाकर गरम-गरम (सुहाता हुआ) पिला देने से जेर, झिल्ली निकल कर पीडा भी दूर हो जाती है। —भा० गृ० चि०

(२) सद्य प्रसवार्थ एव मूढ गर्भ निष्कासनार्थ—प्रसवावस्था के समय, जब गर्भाशय का मुख खुलजावें (अर्थात् जब उसमें से गन्दा बदबूदार पानी निकलने लगे, तथा दूरी मे पी वी करने से दो अगुल छिद्र--Two finger h le होकर भीतर के जीवित या मृत बच्चे का सिर दिखलाई देवे) तब निर्धूम कोयलो की आग पर फुलाए हुए सुहागा के चूर्ण ४ माशा को बास के पत्र के क्वाथ १० तोला मे मिला कर पिला देने से शीघ्र ही प्रसव हो जाता है। यदि एक बार के पिलाने से कुछ भी असर न हो तो आध घण्टे बाद दूसरी खुराक पिलावें। यह २-३ खुराक तक दिया जा सकता है। अवश्य लाभ होता है।

—वैद्य श्री जी० बी० पन्त शास्त्री आयुर्वेदाचार्य

(३) प्रमेह, सुजाक, बहुमूत्र तथा अर्श पर—शीत प्रमेह (यह लफ्ज प्रमेह का एक भेद है) हो तो इसके पत्तो को छायाशुष्क कर ½ तोला और अनन्तमूल की जड १ तोला दोनो को जौकुट कर २७ तोला जल मे अष्टमाश क्वाथ कर (क्वाथ के पकते समय उसमे १ तोला मिश्री मिला देवे) छान कर पिलावें। इस प्रकार प्रात साय पिलाने से लाभ होता है। —व० गु०

पुराने जीर्ण सुजाक पर—उक्त पत्तो को व अनन्तमूल को समभाग ६-६ माशा लेकर क्वाथ करें। चतुर्थांश शेष रहने पर उसमे ३-४ माशा शक्कर (या मिश्री) मिला सेवन करावे। इस प्रकार ७ या १४ दिन या अधिक समय तक पिलाने से लीन विष जलकर सुजाक दूर हो जाता है। —गा० औ० र०

बहुमूत्र पर—पत्तो का फाण्ट दिन मे जल के स्थान पर पिलाते रहने से आमाशय व मूत्र सस्थान मे आई हुई उग्रता तथा दाह, तृषा शमन होकर यह रोग दूर हो जाता है।

बहुमूत्र पर—२½ तोला पत्तो को २० तोले जल मे पकावे। चतुर्थांश से कुछ कम (४ तोला तक) शेष रहने पर छानकर उसमे ½ तोला शहद मिलाकर पिलाने से भी अवश्य लाभ होता है। —सकलित

अर्श पर—पत्तो के क्वाथ मे अर्श रोगी को बैठाने से अर्श की वेदना शात होती है। —गा० औ० र०

(४) पारे के विष पर—दूषित या अशुद्ध पारद से निर्मित रस कपूर आदि के सेवन से जो पारे का दुष्परिणाम (मुख, आमाशय मे दाह, उदरशूल, अतिसार, लालाप्रसेक, रक्तपित्त, रक्तमेह, मूत्राघात, प्रलाप, संन्यास एव अन्त में मृत्यु होना) होता है उसके निवारणार्थ इसके पत्तो के रस में शक्कर मिलाकर पिलाते हैं।

नोट—इसके कोमल पत्तो का या अकुरों का जो अचार, कढी या साग बनाई जाती है वह अजीर्णजन्य क्षुधा तथा पचन क्रिया की वृद्धि एव सुधार करती हे।

—नाडकर्णी।

किन्तु ध्यान रहे पत्राकुरो को अच्छी तरह उबाल कर ही अचार, साग या कढी बनाई जाती है अन्यथा वह विपाक्त हो जाती है। इसका अचार लवणयुक्त जल मे इसे कतर कर डालकर काजी या सिरके के रूप मे बनाया जाता है। इस सिरके का उपयोग मास मछली के साथ उपयोगी होता है। क्षुधा बढती व पाचन भी ठीक होता है।

अकुर—लघु (अन्य मत से गुरु), रूक्ष, कटु (चरपरा), अम्ल, कसैला, सारक, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, (अन्य मत से शीत वीर्य),दीपन, पाचन, कफहर, विदाही, वातपित्त प्रकोपक, (कफवात प्रकोपक--सुश्रुत), कृमिघ्न, शोथहर है।

अग्निमांद्य, अजीर्ण तथा कृमिरोग पर अकुर का अन्य सुगन्धित द्रव्यो के साथ क्वाथ बनाकर सेवन कराते हैं।

(५) व्रणशोथ, व्रण एव कृमियुक्त दुष्ट व्रण तथा नारू पर—व्रण शोथ तथा साधारण व्रण पर अकुरो को पीसकर लेप करते है।

कृमियुक्त दुष्टव्रणो पर प्रथम इन अकुरो के रस को टपकाकर फिर उनका पुल्टिस बनाकर बाध देने से कीडे नष्ट होकर व्रण ठीक हो जाता है। —नाडकर्णी

नोट—इसके कोमल अकुर (जिसका अचार डाला जाता है ऊपर न०४ के नोटमे देखिए) का स्वरस हायड्रोसायनिक एसिड तथा पोटासियम साइनेट जैसे विषैले द्रव्यो से भी अधिक विपाक्त एव कृमिनाशक है। अत नारू तथा अन्य कृमि रोगो पर इसका प्रयोग बहुत सफल हो सकता है। नारू पर कोमल अकुरो की पुल्टिस बनाकर बाधने से नारू नष्ट हो जाता है। —व० च०

बीज (चावल)—वास के चावल कसैले, मधुर, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, सारक (किंतु उष्णवीर्य होने से मूत्र रोधक कोई इसे मूत्र शोधक मानते है) रूक्ष, गल्य, वातपित्त कारक, कफहर, पित्तवर्धक, लेखन ,विषघ्न है।

मेदोरोग, मूत्र विकार, प्रमेह तथा विषो मे इन चावलो को भात की तरह पकाकर खिलाते है। सुश्रुत ने इन की आहार वर्ग में गणना की है। महा कुष्ठ पर इसका प्रयोग किया है।

मूल—कफ पित्त नाशक, वर्ण्य, रक्तशोधक, मूत्रल कुष्ठघ्न, विषघ्न, लेखन, मूत्रार्त्तव प्रवर्त्तक तथा मूत्रविकार, नाशक है।

विस्फोटक व्याधियो मे (चेचक आदि eruptive infections) बहुत उपयोगी है। दाद पर भी लाभदायक है। कुष्ठादि रक्तविकारो में इसका लेप किया जाता है। कफ पित्त के विकार, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध, रसविकारो में इसका क्वाथ दिया जाता है।

(६) चेचक दागो पर तथा मुख सौन्दर्य वर्धनार्थ- इसको ही पीसकर या अन्य औषधि के साथ पीसकर लेप करते है।

दाद पर इसे जलाकर लगाते हैं।

(७) खालित्य या गज पर—इसकी जलाई हुई जड तथा छाल की राख में सम भाग हल्दी का चूर्ण मिला थोडे जल के साथ पीस कर सिर पर लगाने से वालो की जडे मजबूत होती है। गिरे हुये वालो के स्थान में नये वाल पुन जम जाते हैं। —यूनानी

(८) आमाशय एव यकृत की उष्णता शाति के लिए जड को जलाकर उसकी राख को जल मे घोलकर थोडी देर रख कर उसका नितरा हुआ जल पिलाने से उष्णता की शाति होती हे। मूत्र खुलकर आता हे। —यूनानी

(९) सिर की गज तथा दाद पर—जड की राख को चमेली के तेल मे मिलाकर लगाने से लाभ होता है।

—यूनानी

(१०) कुत्ते के विष पर—कुत्ते के काटने पर इसकी जड को दूध में पीस कर पिलाने से उत्तान (उभरा हुआ) विष जल जाना तथा लीन विष पचन हो जाता है। अथवा—

इसकी जड और अङ्कोल को गोदुग्ध मे घिस कर प्रतिदिन प्रात १५ दिन पिलाने से लीन विष जल जाता
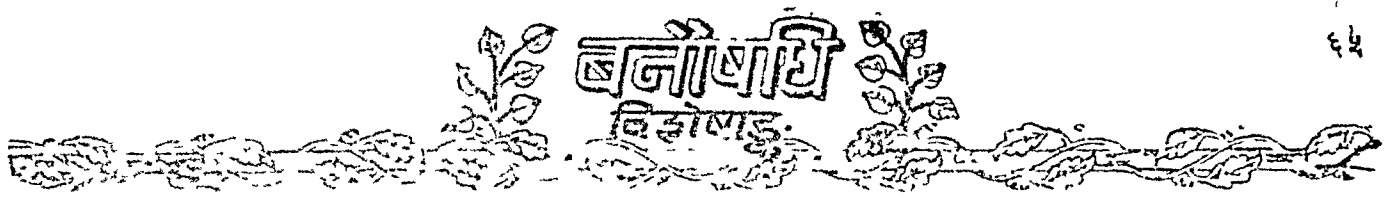
तुलसी, लाख, कपास के बीज (बिनौला) मसूर, जौ का आटा, अतीस, (कुछ वैद्य अतीस नहीं लेते), वच, ब्राह्मी और हुलहुल इनमें से जितनी चीजें प्राप्त हो, उन्हें सम भाग लेकर कूटकर उसमें घृत मिलाकर मसूरिका (चेचक) के प्रारम्भ में इसकी धूप (धूनी) देने से मसूरिका शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। —डा मे

राख—

(१९) मूत्रावरोध तथा जखम से रक्तस्राव होने पर—

बांस की राख (१-२ मा) में समभाग शक्कर या मिश्री मिलाकर चावल के धोवन के साथ पिलाने से मूत्र-शुद्धि होती है।

जखम से रक्तस्राव होता हो तो बांस के कोयलों को पीसकर जखम पर बुरकने से बहता हुआ खून बन्द हो कर जखम भर जाता है। उससे सूजन भी बिखर जाती है। —यूनानी

पुष्प—

(२०) कर्णशूल या बाधिर्य पर—बांस के फूलों के रस की बून्दें टपकाते रहने से लाभ होता है।

वंशलोचन----

कषाय, मधुर,शीतवीर्य, मधुर विपाक, वातपित्तशामक बृंहण, तृष्णानिग्रहण, ग्राही, मूत्रल, हृद्य, रक्तस्तंभन एवं शोषक, कफनिःसारक श्वासहर, बल्य, कामोद्दीपक, उत्तेजक, उद्वेष्टन निरोधी, तथा कास, श्वास, यक्ष्मा, तृषा, वमन, अतिसार, मन्दाग्नि, हृद्रोग, रक्त विकार, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ, कामला, क्षयज्वर, सामान्य-दौर्बल्य आदि पर प्रयुक्त होता है।

वंशलोचन की उत्तमता उसके सेलिसिलिक एसिड पर निर्भर है। जिसमें जितना अधिक यह एसिड होता है, वह उतना ही उत्तम होता है। इसके प्रयोग से श्वसन-संस्थान की श्लैष्मिक कला को पुष्टि मिलती तथा कफ की मात्रा कम होती है। इस कार्य के लिये,इसके योग से बना हुआ सितोपलादि चूर्ण का व्यवहार विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है। (इसका प्रयोग आगे विशिष्ट योगों मे देखिये) —डा वा ग देसाई

यूनानी मतानुसार - यह दूसरे दर्जे में शीत और तीसरे में रूक्ष है। मतान्तर से तीसरे दर्जे में शीत व रूक्ष है। यह कब्ज करने वाला, हृदय को आनन्द देने वाला, आमाशय की उष्णता निवारक, तीव्र शीतजनन है। पैत्तिक हृत्स्पदन, मूर्च्छा एवं बेचैनी के लिए गुणकारी है। पित्तज वमन का निवारक एवं उष्ण यकृत और आमाशय के लिए लाभप्रद है। यह पित्तज अतिसार को तथा शुक्रमेह को, अनैच्छिक वीर्य स्राव को बन्द करता है। मुखपाक, मुख व्रण तथा मुख की फुंसियों में अकेले गुलाब अर्क के साथ इसका सेवन और अवचूर्णन गुणकारी है। अधिक प्यास को दूर करने के लिए इसे १ तोला एक पोटली में बांध कर जल में डाल देवें, तथा उस जल में से थोड़ा-थोड़ा जल पिलाते रहने से तृषा कम हो जाती है। मिट्टी खाने वाले बच्चों को इसकी ककरी हाथ में देने से मिट्टी खाने की आदत छूट जाती है। दांतों की पुष्टि के लिए इसे मंजनों में डालते हैं।—यूनानी द्रव्यगुण

साधारण विष विकार—में इसे शहद के साथ बार-बार चटाते हैं। मुख के छालों पर इसे शहद में मिला लेप करते हैं।

श्वेत प्रदर में—१ मा वंसलोचन को २ या ३ मा. चूर्ण के साथ मिला पके केले के साथ खिलाते हैं।

(२१) कास, श्वास, जीर्ण ज्वर, तथा उरःक्षत पर--इसका चूर्ण १ मा के साथ पिप्पली चूर्ण ३ रत्ती मिलाकर (यह १ मात्रा है) शहद के साथ चटाने से श्वास व कास में लाभ होता है।

साधारण शुष्क कास में—इसे १० से २० रत्ती तक की मात्रा में शहद के साथ चटाते रहने से लाभ होता है। बालकों के शुष्क कास व श्वास में भी लाभकारी है।

जीर्ण ज्वर पर—इसके साथ गिलोय सत्व समभाग ४-४ रत्ती तथा छोटी पिप्पली चूर्ण २ रत्ती मिलाकर (यह १ मात्रा है) शहद के साथ दिन में ३ बार देते रहने से अग्निमांद्य एवं दाहयुक्त जीर्ण ज्वर दूर हो जाता है।

उरःक्षत पर—इसकी मात्रा ४ रत्ती, दिन में ३ बार घृत व शहद के साथ देते रहने से क्षत शुद्ध होकर

—गा औ र

भर जाते हैं।

अथवा—सितोपलादि चूर्ण के साथ प्रवालभस्म १ से २ रत्ती तक मिलाकर घृत व शहद के साथ सेवन कराने से विशेष लाभ होता है।

(२२) सुजाक, मूत्रदाह, तथा प्रमेह पर—

सुजाक पर—वंशलोचन के साथ शीतल मिर्च (कबाब चीनी या शीतल चीनी) नागकेशर व छोटी इलायची के बीज समभाग महीन चूर्ण कर ले। १½ से ३ माशा की मात्रा मे चूर्ण को ६ बूंद चन्दन का तैल मिलाकर देवे। इस प्रकार प्रात साय ३ दिन तक देने से मूत्र वेदना दूर होती तथा नये सुजाक का दमन हो जाता है।

नोट- रोगी को पथ्य मे रोटी, घृत, शक्कर, बहुत थोडी दाल देवे नमक कम देवे, दूध न पीवे। यह रोग बढ जाने पर शिलाजीत प्रधान या अन्य औषधि लम्बे समय तक देकर रोग के विष को नष्ट कर देना आवश्यक है। अन्यथा जीवन भर रोग की जड रह जावेगी। —गा औ र

मूत्र दाह पर—उक्त प्रयोग लाभकारी है, उसमे चन्दन तैल न मिलाते हुए केवल मिश्री मिले हुए दूध के साथ उक्त मात्रा मे ही सेवन कराने से, अथवा केवल वंशलोचन को गोखरू के अर्क के साथ, या गोखरू के पत्तो के स्वरस के साथ सेवन कराने से भी मूत्र की जलन दूर होकर मूत्र साफ आने लगता है। अथवा—इसके चूर्ण को गोखरू व मिश्री चूर्ण मिला कच्चे दूध की लस्सी के साथ देवे। सर्व प्रकार के प्रमेहो पर— उक्त सुजाक या पूय मेह का प्रयोग प्राय सर्व प्रमेहो पर लाभदायक है। उस प्रयोग के ४ द्रव्यो के खूब महीन किये हुए चूर्ण में उत्तम चन्दन का तैल अच्छी तरह मिलाकर छोटी सुपारी जैसी गोलिया बना रखे। नित्य प्रात साय एक-एक गोली को लगभग ४ तोला ठंड जल मे घोलकर उसमे ६ माशा मिश्री का चूर्ण मिला सेवन करावे। इसके सेवन से प्रथम दिन ही मूत्र दाह, जलन आदि विकार दूर होते हे तथा ७ दिन मे दुस्तर प्रमेह नष्ट हो जाता है। पथ्य मे गेहूं की रोटी अरहर की दाल, घृत और शक्कर केवल इतने ही पदार्थ लेवे। —व गु।

(२३) पैत्तिक विकार रक्तपित्त, शारीरिक अति उष्णता तथा ज्वर पर—

पैत्तिक विकारो पर—वंशलोचन १४ मा०, ककडी बीज की गिरी, चिलगोजा की गिरी, बबूल का गोंद और बडी इलायची के बीज प्रत्येक २४½ मा०, निशास्ता, कतीरा ७-७ माशा और खांड १७½ मा० सबको कूट छान कर बादाम तेल मे मिश्रित कर शहद के पाक मे मिला अवलेह बना लेवें। मात्रा १ से २ तोला तक सेवन से पित्त की उग्रता कम होती है। उरस्थल एवं फुफ्फुस के व्रण तथा पित्तज कास में लाभदायक है। इस प्रयोग को मिहूक तवासीर कहते हैं —यू चि सा

रक्तपित्त पर—वंशलोचन के २ माशा चूर्ण को अडूसा के स्वरस १ तोला मे मिला सेवन कराते हैं। अथवा इसके चूर्ण को शहद और मिश्री के साथ सेवन करावे।

मुख पाक पर—इसे छोटी इलायची बीज, श्वेत कत्था व गेरू सममाग महीन चूर्ण कर थोडा२ मुख में डालते रहे तथा साथ ही ४ तो गुलाब फूल के गुलकन्द में लगभग २ से ३ माशा तक वंशलोचन मिला प्रात व रात्रि मे सेवन करे।

शरीर की उष्णता कम करने के लिये—४ रत्ती वंशलोचन को २ रत्ती प्रवाल पिष्टी या सत्व गिलोय या मुक्तापिष्टी के साथ प्रतिदिन गोदुग्ध से सेवन करावें। इस प्रयोग से उष्ण प्रकृति वालो के स्वप्नदोष, अनैच्छिक वीर्यस्राव, कृशता आदि मे भी लाभ होता है।—सकलित

ज्वर पर (विषम ज्वर)—हुम्मा बुखार—वंशलोचन २ तोला कुनैन सल्फ (Quinine sulphas), गिलोय सत ६-६ माशा तथा गोंद बबूल ३ मा० कूट-पीस-छान कर थोडे जल मे घोटकर मूंग जैसी गोलिया बना लेवे। ज्वर आने से पूर्व १-१ गोली प्रात मध्याह्न व सायंकाल सेवन से विषम ज्वर दूर होता है। विरेचन के बाद प्रयोग करने से अधिक लाभप्रद है। —यू० चि० सा०

(२४) क्षय (राजयक्ष्मा) तथा वीर्य वृद्धि के लिए।

क्षय पर—वंशलोचन को स्वर्ण भस्म, अभ्रक भस्म तथा

मृगश्रृंगभस्म के साथ (यथोचित प्रमाण एवं अनुपान के साथ) कई मास तक देना चाहिये। इससे प्राय क्षय रोगियो की प्रथमावस्था मे लाभ होते देखा गया है ।

वीर्य वृद्धि के लिये— वशलोचन को १ माशा की मात्रा मे प्रतिदिन सेवन करे । अथवा इसे प्रवाल पिष्टी, अभ्रक भस्म, स्वर्णवङ्ग, शिलाजीत आदि औषधियो मे मिलाकर सेवन करना विशेष लाभप्रद है ।

(२५) गर्भवती स्त्रियो के लिये—गर्भस्राव या गर्भपात की आशका हो तो वन्शलोचन १ मा० और असली असली पत्थर का जीव (कल्बुल हज्र) १ रत्ती दोनो को पृथक पीसकर मिला दें ।(यह एक मात्रा है) ऐसी २-३ मात्रायें दिन मे आवश्यकतानुसार प्रयोग करे । यह गर्भपात एव स्राव के लिए अमोघ प्रयोग है ।

सुन्दर, सुदृढ पुत्र प्राप्ति के लिए—गर्भवती को वशलोचन, कमलगट्टे की गिरी (मध्य का हरा भाग निकाल दें ।)दोनो समभाग महीन चूर्ण कर उसमें दो गुनी मिश्री मिला रखें । २ से ३ मा० तक गौ के ताजे दूध से (दूध इच्छानुसार लें) दिन मे दो बार सेवन करें । इस योग से सुखपूर्वक प्रसव होकर पुत्र की प्राप्ति होती है । इस से स्तनो मे दुग्धाभाव वा स्तनो का शैथिल्य भी दूर होता है । —यू चि स

गर्भवती स्त्रियो को प्राय मिट्टी, राख, कोयला हानिकारक वस्तुओ के खाने की आदत पड जाती है जिससे उनके स्वास्थ्य एव गर्भस्थ बालक को भी नुकसान पहुंचता है। ऐसी दशा मे उसको वन्शलोचन प्रतिदिन थोडा२ खाते रहने से उसके स्वास्थ्य मे सुधार होता तथा गर्भस्थबालक भी पुष्ट होता है ।

(२६) दन्त विकार, नेत्र विकार तथा अग्नि दग्ध पर—

दन्तमञ्जन—वन्शलोचन, छोटी इलायची के बीज व रूमामस्तङ्गी समभाग महीन पीस कर रख लें । नित्य प्रात साय इसे दातो पर मलने से दातो का मैल एव दन्त विकारो को दूर कर वे मोती के समान चमकने लगते हैं ।

नेत्र विकारों पर—वशलोचन १२ भाग, छोटी इलायची बीज १० भाग, आवला ६ भाग, कालीमिर्च ४ भाग, छोटी पिप्पली २ भाग तथा इन सबसे आधा भाग शुद्ध सुरमा सबको महीन पीस छानकर रखें। इस सुर्मे को प्रतिदिन नेत्रो मे लगाने से नेत्र के सर्व विकार दूर होते हैं । —सकलित ।

अग्निदग्ध पर—वशलोचन, पाकर (या पीपल) की छाल, लाल चन्दन, गेरू और गिलोय समभाग का चूर्ण कर घृत (गौघृत) मे मिलाकर लेप करने से अग्निदग्ध व्रण नष्ट होते है । —शा० स० ।

नोट—मात्रा—पत्र अकुर, छाल आदि का क्वाथ २½ से १० तोला तक । चूर्ण ३ माशा से १ तोला तक ।

अधिक मात्रा मे—फुफ्फुस के लिये हानिकर है । हानिनिवारक—कतीरा और फिंदक की गिरी (फिंदक का प्रकरण पीछे देखें) है ।

वशलोचन–१ से ३ माशा तक। इसका अधिक सेवन वाजीकरण शक्ति तथा फुफ्फुसो के लिये हानिकारक है । हानिनिवारक—शहद, मस्तगी, उन्नाव, एलुवा, केसर आदि है ।

इसके प्रतिनिधि—कुलफा और रायतुङ्ग (सुमाक) है ।

विशिष्ट योग—

(१) रज शोधक क्वाथ–इसके कोमलपत्र, सोया बीज, अमलतास का गूदा, वाय विडग, कलाजी, मूली बीज, हसराज, अजमोद, मजीठ, अपामार्ग मूल, तोदरी सुर्ख, हरमल और इन्द्रायण मूल प्रत्येक १-१तोला, चित्रक मूल की छाल ८ माशा, कपास मूल की छाल व गाजर के बीज २-२ तोला सबका जौकूट चूर्णकर उसमे से २ तोले चूर्ण ४० तोला जल मे शाम का मिट्टी के पात्र मे भिगो प्रात पकावे । १० तोला शेष रहने पर छानकर आधा क्वाथ प्रात १ तोला गुड व महायोगराज गूगल १ मात्रा के साथ लेवें । शेष क्वाथ इसी प्रकार शाम को लेवे । जिस दिन मासिक धर्म हो उसी दिन से प्रारभ कर ४ दिन तक सेवन से मासिकधर्म के सर्व विकार—अनियमितरूप से होना, कष्ट के साथ होना आदि दूर हो जाते

है। ऋतुस्राव खुलकर साफ होता है। गर्भाशय के सब विकार दूर होंगे, जमा हुआ दूषित रक्त मासिकधर्म के साथ निकल जाता एवं गर्भाशय सन्तानोत्पत्ति के योग्य हो जाता है। —व० च०।

(२) रज प्रवर्तक क्वाथ—आम की गाठ (पोर्वा), अथवा कोमल पत्र, अमलतास की फली की छाल, कपास मूल, गाजर बीज, मूली बीज, काले तिल, गोखरू, इन्द्रायन मूल, कचरी बीज, सौंफ की जड समभाग जौकुट कर १ तोला चूर्ण को ३२ तोला जल मे चतुर्थांश क्वाथकर छान कर उसमे १ तोला पुराना गुड मिला प्रात पिलावे। ७ दिन पिलाने से बहुत समय का रुका हुआ मासिकधर्म पुन शुरू हो जाता है। ध्यान रहे, यह क्वाथ बहुत उग्र है। कोमल प्रकृति वाली स्त्री को या गर्भवती को नही देना चाहिए। —गा० औ० र०

(३) सितोपलादि चूर्ण—मिश्री मे आधा वशलोचन, उससे अर्ध भाग पिप्पली, उससे अर्ध भाग छोटी इलायची बीज तथा उससे आधी दालचीनी, इनका महीन चूर्ण करलें। यह आयुर्वेद का सुप्रसिद्ध सितोपलादि चूर्ण है। इसका मुख्य कार्यकारी एव प्रभावशाली द्रव्य वशलोचन है। यह जितना ही उत्तम तथा प्रमाणिक होगा, उतना ही यह योग उत्तम कार्यकारी होगा। इसकी उत्कृष्टता एव निकृष्टता वशलोचन पर ही निर्भर है। इसके प्रत्येक द्रव्य को अलग अलग कूट पीसकर कपडछन करना चाहिए। कपडछन किए हुए वशलोचन को ६ घटे तक खरल कर सुरक्षित रखें।

इसकी मात्रा २ मे ८ माशा दिन मे २ बार घृत व शहद के साथ देवें। कफप्रधान विकारो मे शहद दूना मिलावे। वात व पित्त प्रधान रोगो मे शहद घी से आधा लेवें। प्रथम घृत मिलाकर फिर शहद मिलाना चाहिए। जिस रोगी में कफ सरलता से निकलता हो, उसमे इसे केवल शहद के साथ देवें। यह कास, श्वास, क्षय, हाथ पावों की जलन, मुख से रक्त पडना, अरुचि, अग्निमाद्य, पसली का दर्द, जीर्ण ज्वर, धातुगत ज्वर, बालकों की कमजोरी, नेत्रों की उष्णता, कठ की जलन आदि मे विशेष लाभकारी है। राजयक्ष्मा मे भी यह लाभकारी है। चरक ने राजयक्ष्मा चिकित्सा मे इसकी योजना की है।

—च० चि० अ० ८

गर्भवती स्त्री को लगातार ४–६ मास तक इसके सेवन से गर्भ को पोषक तत्व प्राप्त होकर वह पुष्ट एवं तेजस्वी होकर जन्म लेता है। यह प्रयोग पुरुष, स्त्री, बालक एव वृद्ध सबके लिए हितकारी है। यदि इस प्रयोग मे (यह कुल २७ तो हो तो उसमे) गिलोय सत ४ तो और प्रवाल भस्म २ तोला मिला देने से यह और भी प्रभावशाली होकर बल, काति एव ओज की वृद्धि करता है।

सितोपलादि चूर्ण १ तोला, भैंस का शुद्ध घृत १ तोले दोनो को काच या मिट्टी के पात्र मे रख उस पर गाय या भैंस का धारोष्ण दूध दोहकर पीलें। प्रात. दो मास तक सेवन से अपार शक्ति का सचार होता है।

नोट—तालीसादि चूर्ण मे भी वशलोचन प्रभावकारी है। इसका प्रयोग इस ग्रन्थ के भाग ३ मे तालीस पत्र न० १ के प्रकरण मे देखिये।

बृहत सितोपलादि चूर्ण मे सितोपलादि के उक्त ५ द्रव्यो के अतिरिक्त मुलैठी, बनफसा के फूल, गावजवां और तालीस पत्र ये चार द्रव्य वशलोचन से अर्ध अर्ध भाग लिए जाते हैं। मिश्री १६ तोला वशलोचन ८ तोला, मुलैठी, गुल बनफशा, गाजवा, तालीसपत्र ४-४ तोला, छोटी इलायची २ तो० और दालचीनी १ तोला)। मात्रा व अनुपान यथोचित या सितोपलादि के जैसे ही देते है। इसके गुणधर्म भी उसी प्रकार हैं। फुफ्फुस, सन्निपात (निमोनिया) मे विशेष लाभकारी है। कफ को आर्द्र कर, ढीलाकर शीघ्र ही बाहर निकाल देने की भी इसमे विशेषता है। वह श्वासवाहिनियो की श्लेष्मक कला के क्षोभ को शीघ्र ही दूर करता है, जिससे शुष्क कास सहित ज्वर सरलतापूर्वक शमन हो जाता है। प्रतमक श्वास मे भी लाभकारी है।

(४) वशलोचन प्रधान—प्रमेहान्तक, पूयमेहान्तक [सुजाक नाशक] तथा कफविकारादि नाशक वटी के प्रयोग—

प्रमेहान्तक वटी—वशलोचन, शुद्ध शिलाजीत, रूमी-

मस्तगी, कुन्दर गोंद, जवात्रवीची, इलायची व हल्दी समभाग महीन चूर्ण कर चन्दन तैल के साथ घोटकर मटर जैसी गोलिया बना लेवे। २ गोली तक जल के साथ सेवन से प्रमेह, मूत्रनली का शोथ, मूत्रावरोध, मूत्र के मार्ग से पूय निकलना, वेदना आदि नष्ट होते हे।

—आयु० नि० माला।

सुजाक नाशक वटी या चूर्ण का प्रयोग ऊपर वशलोचन विषयक प्रयोग न. २२ मे देखिये।

कफ विकारादि नाशक वटी—वशलोचन, शुद्ध सखिया, छोटी इलायची और जावपत्री समभाग चूर्ण कर अर्क गुलाब मे २ दिन खरलकर ज्वार के दाने जैसी गोलिया बना लेवें। १ गोली दूध के साथ सेवन से कफ विकार, प्रतिश्याय, श्वास, जीर्ण ज्वर, वमन, एव वात विकारो मे विशेष लाभप्रद है। कफ को पिघलाकर बाहर निकाल देती, उसकी उत्पत्ति कम करती, हृदय को बल देती तथा निर्बलता दूर करती है। यह जीर्ण वात प्रकोपज व्याधि मे शीघ्र फलप्रद है।

(५) जीर्णज्वरांतक पाक—वशलोचन ८ तो., श्वेत जीरा, मुलैठी, प्रवाल भस्म, छोटी इलायची बीज और गिलोय-सत २-२ तोला, पिप्पली, श्वेतचदन का बुरादा ४-४ तोला सबका महीन चूर्ण कर उत्तम मिश्री ४० तो. की चाशनी मे मिलाकर पाक जमा दे। ४ माशा से १ तोला तक शहद के साथ प्रात साय सेवन से जीर्ण ज्वर, निर्बलता, खासी आदि दूर होती है।

नोट—शेष उत्तमोत्तम पाको के प्रयोग हमारे बृहद्-पाक संग्रह मे देखिये।

बाइकल—देखे—बेकल। बाहशी—देखें—बेदसादा

बाइसा गूगल (Balsamodendron Pubescens)

गुग्गुल कुल (Burseraceae) के इसके वृक्ष छोटे कदके, सुगन्धित, कटीले, गूगल के वृक्ष जैसे ही पत्रादि से युक्त होते है। गूगल का सचित्र प्रकरण भाग २ मे देखे।

इसके निर्यास को ही भैसा गूगल (महिषाक्ष) कहते हैं। बम्बई की ओर बाईसा गूगल तथा लेटिन मे 'बालसमोडेण्ड्रान पुबेसेंस' कहते है।

इसके गुण धर्मादि प्राय गूगल जैसे ही हैं। यह देहली मे होने वाले विशेष जाति के व्रणो (Delhi boils) पर उपयोगी है।

बाकला (Phaseolus vulgaris)

शिम्बीकुल के अपराजिता उपकुल (Papilioneceae) के सेम या वल्लर की जाति के इसके लता रूप पौधे होते हैं। इसकी फली ३-४ अ गुल लम्बी गोल सूक्ष्म रोमाच्छादित होती है। पत्र, पुष्प सेम या मटर के पत्र पुष्प जैसे होते हैं। प्रत्येक फली के भीतर बीज सेम या मटर के बीज जैसे किन्तु कुछ बड़े, शीर्ष भाग पर अर्ध चन्द्राकार काले रग के चिन्ह से युक्त होते है।

यह साग सब्जी के बागो या खेतो मे साग के लिए प्राय सर्वत्र बोया जाता है। इसका मूल स्थान पर्शिया तथा फ्रास देश है। भारत में उत्तर-प्रदेश के पहाडी स्थानो मे इसकी अधिक उत्पत्ति होती है। इसके बीज या फली को बाकला कहते हैं।

नोट—फली तथा बीजो के श्वेत, पीले, लाल और काले रंग के भेद से यह ४ प्रकार का होता है। इसका श्वेत भेद ही प्राय. खाने तथा औषधि कार्य मे विशेष आता है। इसका ही एक भेद बडा बाकला (Vicia Faba) होता है। इस के बीज अपेक्षाकृत बडे और चौडे होते ह। इसे अ ग्रेजी मे ब्राड बीन (Broad bean) कहते हैं। इसके अ कुर या जड को जल में पीसकर छान कर पिलाने से शराबी का नशा उतर जाता है, वह होश में आ जाता है।

नाम—

हि—वाकला, विलायती सेम, वल्लर, वावरी।

म—श्रावण घेवडा। अ—कॉमन फ्रेंच या किडनी वीन (common French or Kidney bean)।

ले—फेजियोलस व्हल्गेरिस।

रासायनिक सगठन—इसमे गधक तथा फास्फर युक्त प्रोटीड (Proteides) अधिक प्रमाण मे होने से यह आहार के लिए विशेष उपयुक्त हे। इसमे स्टार्च एव शर्करा (ग्लुकोज) अल्प प्रमाण मे पाए जाते है। इसके अतिरिक्त ताजी अवस्था मे जलीय अ श ६५%, तथा शुष्क दशा में ईथर एक्स्ट्रेक्ट (Ether extract), २% अल्बुमिनाइड्स २३ ७५% (जिसमें नाइट्रोजन ३.८% होता है), घुलनशील कार्वोहायड्रेट्स (carbohydrates) ४०. २५%, काष्ठीय ततु २२%, और राख (क्षार) १२% पाये जाते हे। —नाडकर्णी

वाकला

PHASEOLUS VULGARIS LINN

प्रयोज्याङ्ग—ताजी फली, हरे या सूखे बीज।

गुण धर्म व प्रयोग—

ताजी फली शीत व स्निग्ध, सूखी फली-शीत व रूक्ष, गुरु, विष्टभी, वातकारक, कफ नि सारक, शोथहर और लेखन है। बीज की दाल के दो भागो के मध्य भाग मे एक छोटी, कड़वी वस्तु होती है, जो उष्ण व रूक्ष है।

इसकी ताजी फलिया अकेली या मास के साथ पकाकर खाने से पुष्टि प्राप्त होती है। सूखे या ताजे बीजो की भी साग बनाते है। शुष्क बीजो का छिलका दूर कर दाल बनाई जाती है।

(१) कफोत्सगार्थ—बीजो की गिरी को उपयुक्त औषधि के साथ सेवन कराते है।

(२) व्रण शोथ पर—इसे पीसकर लेप या पुल्टिस बना कर बांधते है। यह फोडो को तर, स्निग्ध रखने वाली पुल्टिस होती है।

(३) इसके चूर्ण को उवटन जैसा बनाकर लगाने से शरीर का रग निखरता हे, चेहरे की झाई आदि दूर होती हैं।

(४) विना छिले हुए वाकले को सिरके मे पकाकर खाने से वमन अतिसार मे लाभ होता हे। छिले हुये को सिरके के साथ खाने से गुर्दो की शुद्धि होती है।

(५) कामशक्ति के वर्धनार्थ इसे सोठ के साथ सेवन कराते हैं।

(६) मासिक धर्म प्रवर्त्तनार्थ—इसका क्वाथ पिलाते हैं। इससे गर्भाशय की शुद्धि होती है। यह क्वाथ जीर्णातिसार तथा आत्र के व्रणो पर भी लाभकारी है।

(७) सिर पर चोट लगने से शोथ हो तो इसे जौ आदि के साथ पीसकर लेप करते है।

(८) कर्ण शोथ पर—इसके चूर्ण को गेहू का आटा व मेथी दाना के चूर्ण मे मिला, शहद के साथ लेप करते हैं।

(९) स्त्रियों के स्तनो मे—दूध के जमाव से या चोट लगने से सूजन हो, तो इसे शराव या सिरके के साथ पका कर पुल्टिस वना कर वाधने से लाभ होता है।

(१०) कठमाला पर—इसे जौ के आटे व फिटकरी के साथ पीस कर जैतून के पुराने तैल मे मिलाकर लेप करते है।

(११) अग्निदग्ध पर—इसके छिलके और ताजे पत्तो को पीसकर लेप करने से वहुत फायदा होता है।

(१२) चेचक वा फोडे फुसियो के काले दागो पर इसके हरे पौधो को जलाकर, उसकी राख को उन दागो पर मलते रहने से दाग दूर हो जाते हैं।

(१३) अण्डकोप के शोथ और वद गाठ पर—इसके चूर्ण को जीरे के साथ शराव मे पकाकर लेप करते है।

(१४) पागल कुत्ते के काटे हुए स्थान पर—इसे शराव मे पका कर लगाते है।

(१५) अस्थि सन्धानार्थ—कहा जाता है कि इसके कोमल ताजे वीजो को कूट निचोड़कर रस निकाल २½ तोले की मात्रा मे पिलाने से टूटी हुई हड्डी जुड जाती है अथवा इसके पत्तो को गिले अरमनी के साथ पीस छान कर पिलावे।

(१६) कास पर—वीजो को अन्जीर के साथ पकाकर खावें या इसको पिलावें। इससे कफ मे खून आना भी वन्द हो जाता है, तथा अतिसार मे भी लाभ होता है।

नोट—मात्रा औषधि के लिए ३-५ माशा। आहार के लिए जितना भी पचा सके।

अधिक मात्रा मे इसे खाने से उदर मे अफरा, सुस्ती, हृदय की धडकन मे वृद्धि, शरीर मे तर व शुष्क खुजली पैदा होती है। खराव स्वप्न दिखलाई देने लगते है। स्मरणशक्ति कमजोर हो जाती है। रज और गम पैदा करता है। इसके ऊपर का छिलका मुख मे छाले पैदा करता है। कठ मे खुश्की होकर सूजन पैदा होती है। अत इसका अधिक सेवन कभी नही करना चाहिए।

इसके हानि निवारक सोठ, जीरा,काली मिर्च,पोदीना, सुहाग, वादाम का तैल है।

इसे छील कर पका कर खाने से आध्मान नही होता।

प्रतिनिधि—लोबिया या उडद है।

वाकली—देखे—धव।

वाकेरी मूल (Caesalpinia Digyna)

शिम्बीकुल के पूतिकरज उपकुल [Caesclpiniaceae] के वडे झाडीदार,कटीले (बैंगनी या धूसर वर्ण के काटो से युक्त), कटकरज के क्षुप जैसे इस ३-४ फुट ऊचे क्षुप की शाखयें चिकनी, रोमश, पत्र—६–८ इञ्च लम्बी सीको पर पत्र-६-१० इञ्च तक लम्बे प्रत्येक सीक पर ९-१२ सख्या में, पुष्प—१ इञ्ची, पीले तथा लाल वर्ण के गोलाकार, रोमाश, तुर्रो मे, फली-लम्बाकार १½-२ इञ्च लम्बी,मोटी, रोमश तथा २-४ वीज युक्त होती है।

पुष्प—जुलाई से अक्टूबर तक या वर्षाऋतु मे आते है उस क्षुप के मूल प्रदेश मे जो गाठ या कद होता है, उसे ही वाकेरी मूल कहते है। औषधि मे विशेषत इसी का प्रयोग होता है।

नोट—इस वूटी के क्षुप भारत मे दक्षिण के पश्चिमी एव पूर्वी घाटो मे—कोकण प्रान्त के सहयाद्री पर्वत के तल भागो मे तथा उत्तर वगाल आसाम, हिमालय के पूर्वी भागो मे, बर्मा व सीलोन मे विशेष पैदा होते है।

नोट—इस क्षुप की जडे जमीन मे बहुत नीचे गहरी एव विस्तारपूर्वक वडे-वडे पत्थर एव चट्टानो में धसी हुई होती है। इसकी छाल या मूल मे विशेप गुण नही, किन्तु अन्दर से अन्दर गहरी गई हुई जड के अन्तिम छोर में शकरकन्द जैसा या उससे भी कही-कही बडा जो कन्द होता है वह अप्रतिम गुणकारी है। यह महाराष्ट्र मे
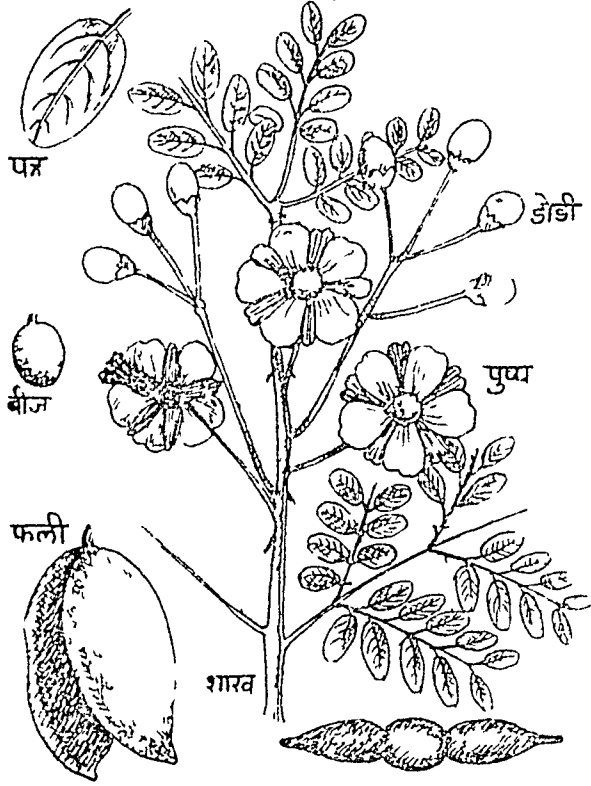
'वाकेरी भातें' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है तथा इसका प्रयोग भी वहा विशेष प्रचलित है।

उक्त कन्द वडी कठिनाई से जमीन के अन्दर १०० फुट से भी अधिक गहरा खोदने पर प्राप्त होता है। कभी-कभी अत्यधिक वर्षा के कारण पहाडो के किनारो पर दरारे हो जाने से ये कन्द नीचे की तलेटी म स्वय वाहर निकल पडते है, तब वडे परिश्रम से नीचे जाकर दरारो के बीच से खोदकर इन्हे निकालना पडता है। प्राय इसी प्रकार ये प्राप्त भी होती हे अन्यथा खोदकर इन्हें प्राप्त करना दु साध्य कार्य हे। इन कन्दो को लाकर दूध मे पकाकर एव अच्छी तरह सुखाकर सुरक्षित रखा जाता है।

ये कन्द वजन में वहुत हल्के, सरलता से टूटने वाले किन्तु चिमडे मे, स्वादु मे कडवे होते है। बाजारो मे इसके नाम से जो कद प्राप्त होता है वह प्राय पेठे की या अन्य क्षुपो की जडें, या इसी क्षुप की ऊपर की जडें होती हैं। अत इसे अच्छी तरह समझ बूझ कर लेना चाहिये।

काई इसे ही विधारा मानते हैं। वास्तव मे विधारा इसमे भिन्न है। विधारा का प्रकरण देखिये।

नाम—

स०—वृत करञ्ज, अश्मभेदी। हि०—वाकेरीमूल म०-वाकेरीचे भाते, वडभाते, गड गगन। गु० वाकेरीनुमूल। ब—अमल कूचि। ले०—सिसालपिनिया डिगिना। सिसाल ओलियो स्पर्मा (Caesalpinia Oleosperma)

रासायनिक संगठन—

इसमे महत्वपूर्ण सकोचक तत्व (टेनिन) की विशेषता देखी जाती है।

प्रयोज्याग—कन्दमूल। कन्दो को दूध में पकाकर एव शुष्क कर सुरक्षित रखने मे कई वर्षो तक खराब या गुण हीन नही होते।

गुण धर्म व प्रयोग—

कटु (चरपरा) उष्णवीर्य, साभक, बल्य, वातशामक, शोधक, चर्म विकार एव कीटाणुनाशक, व्रणरोपक है। अधिक मात्रा मे लेने से कुछ मदकारक है।

उक्त एव नीचे के गुण, धर्म प्राय आधुनिक मतानुसार डा० देसाई के है। इसका उपयोग रक्त शोधन एव व्रण रोपण रूप से महाराष्ट्र मे भगन्दर, नाडी व्रण (नासूर), शैय्यावण आदि पर बहुत किया जाता है। यह जीर्ण रोगो को भी दूर करता है। उदर सेवन तथा वाह्य लेप रूप से उसका व्यवहार किया जाता है। ब्रह्मदेश मे ज्वर पर इसे जल मे घिस कर पिलाते है।

इसका असर अति मन्दगति से होता है। प्रथम सप्ताह मे इसका कुछ भी असर नही प्रतीत होता। फिर दूसरे सप्ताह से दीपन, पाचन, उदर शोधन, रक्त प्रसादन, स्फूर्ति आदि गुणो की प्रतीति होने लगती है। जीर्ण रोगो मे १-२ मास तक या इससे भी अधिक समय तक इसका सेवन करना पडता है। कफ प्रधान जीर्ण श्वास, कण्ठ माला, जीर्ण फिरङ्ग, उपदश, जीर्ण सुजाक, अर्बुद, कर्कस्फोट (कारबंकल), नाडी व्रण, दुष्ट व्रण, मधुमेह, गर्भा

क्षयप्रदाह आदि रोगो मे गुजरात, महाराष्ट्र मे इसका प्रयोग हो रहा है। किस स्थिति में कितना लाभ पहुचता है ? यह अभी तक निश्चित नही हुआ है तथापि यह उत्तम निर्दोष औषधि है, इस विषय मे कुछ भी सदेह नही है।

[१] भगन्दर व्रणो पर—हमे विशेष अनुसधान एव अनुभव से ज्ञात हुआ है कि यह शरीर के किसी भी प्रकार के व्रणो को शीघ्र या विलम्ब से ठीक कर देता है। जिस पर कई वार शस्त्र क्रिया हो चुकी हो, डाक्टर लोग निराश हो गये हो, ऐसा भगन्दर इसके सेवन से (लगभग १ वर्ष तक सेवन करने से) समूल नष्ट हो जाता है।

इसके कन्द को दूध में पीसकर दिन मे दो बार पिलावें तथा विकृत स्थान पर नीम पत्र, वच, हीग और घृत की धूनी देवे। नमक से पूर्ण परहेज करावें। यही उपचार नाडीव्रण, अर्श तथा गण्डमाला पर भी लाभदायक है। गण्डमाला पर इसका लेप भी किया जाता है। साथ ही साथ अस्थिक्षय (Bone tuberculosis) हो तो इसका चूर्ण १।। माशा तक प्रात साय दिन मे २ बार, समभाग शक्कर तथा यथेच्छ मक्खन मिलाकर चटावे और ऊपर से पकाया हुआ सुखोष्ण दुग्ध पिलावे ३-४ महीने तक।

प्रमेह पिडका (कार्वन्कल–carbuncle) हो तो इसे महीन कूटपीस कर चकती सी बना पिडका पर वाध देवे।

[२] मासार्वुद या कैंसर पर—इसका चूर्ण ८ से १२ रत्ती तक दिन मे २-३ वार, दूध मिश्री के साथ सेवन करावे तथा उसी का लेप (चूर्ण को या इसके कन्द को दूध या जल में मिला या घिसकर लेप) करते रहे और ऊपर से नागफनी थूहर का पत्ता गरम कर वाध दिया करे। अथवा कटकरज (लताकरज) के पत्तो को पीसकर गरम कर वाधा करे। यह लेपादि वाह्योपचार तभी हो सकता है जबकि अर्वुद शरीर के ऊपर हो, भीतर के अर्वुद पर उक्त प्रकार मे इस बूटी के चूर्ण का सेवन कराना एव दिन मे दो बार लताकरज-पत्र का स्वरस मात्रा १ से २ तोला तक पिलाना हितकर होता है। रोग को नमक व मिर्च से सख्त परहेज कराना चाहिए। जहां तक हो सके मधुर रस प्रधान ही अन्न या आहार का सेवन करावे। विशेषत घी, दूध व गेहू के बने हुए पदार्थो का ही सेवन लाभकारी होता है।

[३] पाडु, जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा तथा उपदश आदि गरमी के विकारो पर—इसके कन्द को ताजे गोदुग्ध में घिस कर उसमें शुद्ध ताजा घृत मिश्री व श्वेत जीरे का सूक्ष्म चूर्ण यथोचित मात्रा मे मिला दिन मे दो वार सेवन करावे। इस प्रकार ३ माह तक के प्रयोग से उक्त सर्व विकार दूर होकर शुद्ध रक्त की वृद्धि हो जाती है। काति एव वल की परिपूर्णता होती है।

फिरङ्गोपदश मे—शरीरान्तर्गत रक्तवाहनियो के बिलकुल नाजुक होकर जहा तहा फूट जाने का भय है। तथा इनके फूटजाने पर अन्दर का रक्तस्राव हृदय, मस्तिष्क आदि मर्म स्थानो पर होने से तत्काल मृत्यु की सम्भावना है। ऐसी दशा मे रक्त वाहनियो की विकृति, इस बूटी के कुछ दिनो के सेवन से नष्ट होकर अर्धाङ्गवात, हृदयस्तम्भ आदि भयकर उपद्रव नही होने पाते।

पथ्य मे रोगी को पुराना गेहू, जौ, चावल तथा मूग, अरहर या मसूर की दाल का यूष, परवल, चौलाई, बेंगन, प्याज, लहसन, कुन्दर, आमला, तक्र, घृत, मक्खन, अनार, सेव आदि पदार्थ देवे। धूम्रपान, वमन, मल मूत्रादि के वेगो का धारण, मैथुन, मटर, हीग, उडद ताम्बूल, सरसो, मद्य, अम्ल पदार्थ, बिरुद्धान्न, गुरुपाकी एव विदाही आहार विहार का त्याग करे।

[४] उपदशजन्य शरीर के चट्टे आदि विकारो पर—इसके चूर्ण के साथ कपूर भेंडी की जड का चूर्ण मिलाकर पिघलाये हुए गाय के मक्खन मे मिला, दिन मे ४-५ बार लेप करते रहने से तथा इसे ताजे गोदुग्ध मे पीस छानकर पिलाने से चट्टे, बदग्रथि आदि उपदशजन्य विकार दूर हो जाते है। —व० गु

[५] रक्त पित्त पर—इसके कन्द को शीत जल या गोदुग्ध के साथ पीस छानकर उसमे मिश्री मिलाकर सेवन कराने से शीघ्र ही ऊर्ध्व एव अधो मार्ग से होने वाला रक्त

स्राव बन्द हो जाता है।

रक्तमेह का एक रोगी हमारे पास आया। मूत्रमार्ग से रक्तस्राव की शिकायत करने लगा। वह पहले अनेक बार गर्मी के विकारो से त्रस्त रहा, अन्त मे यह शिकायत हुई कि मूत्र मार्ग से बूद-बूद रक्त सतत टपकना शुरू हो गया। कई डाक्टरो की चिकित्सा वह करा चुका। रोग लगभग ३ वर्ष का पुराना हो गया। उसे इसी बूटी का सेवन दूध के साथ दो माह तक कराया गया। रोग समूल नष्ट हो गया। —सम्पादक

(६) मूत्र सम्बन्धी विकारो पर—जगलनी जडीबूटी नामक गुजराती ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि मूत्र कम उतरना, रुक-रुक कर उतरना, मूत्र होते समय जलन होना, लाल पीला अथवा धातु मिश्रित मूत्र का आना, मूत्र मे फास्फोरस का जाना, स्वप्नदोष का होना इत्यादि रोगो मे यह बूटी बहुत लाभदायक सिद्ध हुई है। इसके अतिरिक्त रक्तार्श, नाक व मुख मार्ग से होने वाला रक्तस्राव, शरीर की अन्तर्दाह, हलका ज्वर, सूखी या गीली खुजली, प्रदर, व्रण, नासूर, भगन्दर, उपदश, अस्थि व्रण, कठमाला एव क्षय जैसे भयकर रोगो पर भी यह लाभ पहुचाती है।

उक्त सब विकारो के लिए यह बूटी प्रात साय प्रति बार ३ माशा तक लेकर जल के साथ घिसकर उसमे ५ तोला गोदुग्ध या ५ तोला ठण्डा पानी मिलाकर पिलावें। साधारण रोगो मे इसका ४६ दिन का सेवन पर्याप्त होता है। किन्तु क्षय या भगन्दर जैसे रोगो मे इसे ६ महीने से १ वर्ष तक लगातार सेवन करना आवश्यक है। जिन रोगो मे गर्मी का प्रभाव अधिक हो उनमे इसके उक्त प्रयोग मे थोडा घृत शक्कर और जीरे का चूर्ण भी मिला देना चाहिए। कण्ठमाला, व्रण, घाव इत्यादि वाह्य रोगो मे इस औषधि को पिलाने के साथ साथ इसका वाह्य लेप भी करना चाहिए।

नोट—मात्रा—कन्द १५-३० रत्ती तक, दूध या जल मे घिसकर या चूर्ण रूप मे।

अधिक मात्रा मे यह वेहोशी या मदकारक है। इसका निवारक दूध, घृत, मक्खन तथा श्वेत जीरा है।

वागधूप—देखें—माडेधूप

वागनेला (Tradescantia Axillaris linn.)

तालमूली या स्याह मूसली कुल (Amaryllidaceae or commelinaceae) के इस वर्षायु क्षुप के पौधे, स्याह मूसली के पौधो जैसे भारत के मैदानी प्रदेशो मे विशेष पाए जाते है। ये खेतो मे भी वोए जाते हे।

नाम—

हि —वागनेला, सोलतराज, इत्साक।

ले —ट्रेडेस्कान्टिया एक्जिलेरिस, सायनोटिस एक्जिलेरिस (Cyanotis Axillaris)।

रासायनिक सगठन—इसके बीजो मे कुछ वसा, श्वेत सार (Albuminoids) १६%, कार्वोहायड्रेटस (cardo hydrates) २४%, सेल्युलोज (cellulose) ६% तथा राख या क्षार लगभग ६% पाया जाता है।

प्रयोग—इसका उपयोग कान की भीतरी झिल्ली की सूजन (Tympanitis) पर विशेष किया जाता है। इसे तेल मे पकाकर कान मे तेल टपकाने तथा इसका वफारा देते है।

साधारण जलोदर या आध्मान पर—इस पौधे के रस मे तेल मिलाकर मर्दन या लेप करते है।

बाघचुरा (Pisonia Aculeata Linn)

पुनर्नवा कुल (Nyctaginaceae) के इस लतारूप कटीले, वहुशाखी क्षुप की छाल किंचित धूसर वर्ण की पतली नूतन छाल कोमल कटकावृत, भीतरी काण्ठभाग भी धूसर वर्ण का कोमल होता है।

पत्र—अखण्ड १-३ इञ्च लम्बे, लगभग १-१½ इञ्च चौडे, अग्रभाग मे मोटे, सूक्ष्म रोमश, पत्र वृन्त ¼-½ इञ्च लम्बे। पुष्प—कोमल एव कटका वृन्तपुष्प, दण्डो पर हरिताभ श्वेत वर्ण के छोटे-छोटे पुष्प सघन एव नर मादा पुष्प सयुक्त, फल—⅓-½ इञ्च लम्बे पाच शिराओ से युक्त होते है। शीत ऋतु के अन्त मे फूल व फल आते है। इसके क्षुप भारत के दक्षिण में कोकणादि प्रान्तो मे गजाम से गोदावरी तक तथा वगाल, उडीसा आदि के जगलो मे भी विशेष होते है।

नाम—

हि.—बाघचुरा। उडिया—हाति अकुस।

व—बाघ आचडा। ले—पिसोनिया एक्युलिआटा।

प्रयोग—

प्रदाहयुक्त शोथ और गठिया की वेदना मधि पीडा पर इसके पत्ते व छाल का उपयोग किया जाता है। फुफ्फुस की शिरा जो हृदय से फेफडो मे रक्त ले जाती है तत्सम्बन्धी विकारो पर इस पौधे के रसमे काली मिर्च तथा अन्य उपयुक्त द्रव्यो को मिलाकर देते हैं।

बाघनखी—देखो—व्याघ्रनखी।

बाजरा (Pennisetam Typhoideum)

यवकुल (Gramineae) के इसके पौधे ज्वार के पौधो जैसे किंतु एकदम सीधे वढने वाले डडिया पतली होती हैं। इसमें एक लम्बा सिट्टा या भुट्टा लगता है जिस के चारो ओर छोटे-छोटे गोल दाने लगते हैं। इन दानो को बाजरा कहते हैं। इसकी खेती भारत के उत्तर प्रदेश तथा पजाव, राजस्थान, (कच्छ) गुजरात, बम्बई प्रान्तो मे विशेष होती है।

नोट—इसके कई भेद हे जैसे गुजरात या नाडियाद का देशी बाजरा, भावनगरी, जवलपुरी, माधोदी, औध, दक्खिन, पूना, सिन्धु, अफ्रीकन बाजरा आदि। मारवाड तथा कच्छ भुज का बाजरा सर्वोत्कृष्ट माना जाता है।

सिंधु, पञ्जाब, बम्बई तथा दक्खिन (deccan) में और उत्तर प्रदेश के भी कई स्थानो में मजदूर वर्ग के लोगो का यह एक खाद्य अन्न है। वडे लोग भी प्राय शीतकाल में इसकी रोटी खिचडी चूर्मा आदि शौक से खाते हैं। ज्वार की अपेक्षा यह विशेष पथ्यकर माना जाता है, किन्तु उष्ण है। इसके हरे ताजे भुट्टो को भूनकर दाने निकालकर भी खाते है।

पञ्जाब की ओर इसकी एक नई किस्म निकाली गई है जिसके वाल या भुट्टो पर काटे होते है। काटो के
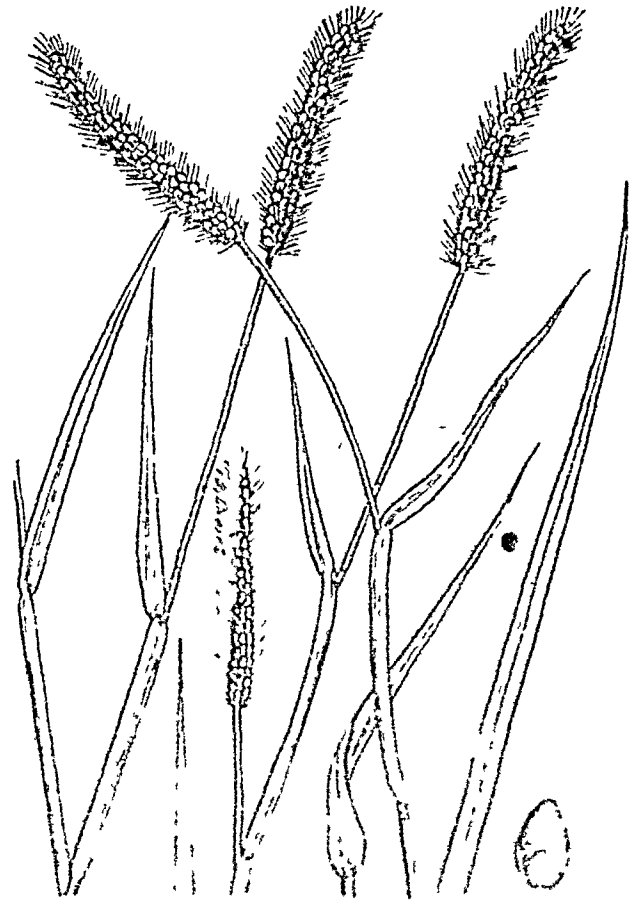
बाजरा

PENNISETUM SPICATUM KOERNE SCHULT
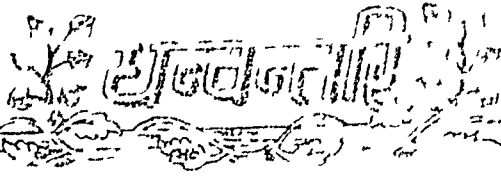
कारण पखेरू, चिड़िया आदि फसल को नुकसान नही पहुचाती । इस किस्म का नाम एस० ५३० (S 530) है । इसकी बुआई जुलाई मास के दूसरे सप्ताह मे की जाती है इसकी फसल ३ महीनो मे तैयार हो जाती है ।

आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थो मे तथा निघण्टुओ मे भी इसका उल्लेख हमे नही प्राप्त हुआ । मालूम होता है यह धान्य प्राचीन काल मे विशेष प्रचलित नही था ।

नाम–

स –वर्जरी, नालिका आदि । हि –बाजरा, बजरी, लहरी, जोवरिया, कासजोनार, गहुमाइ. । म.–बाजरी, सजगुरा । गु –बाजरो, मेज्जी । ब.–बाजरा, धारिया । अङ्ग.—बुलरुश क्याटटेल स्पाइक्ड या पर्ल मिल्लेट । [Bullrush, cattail, spiked or pearl millet] ले –पेन्निसेटम टायफोडियम, पेन्निसिपकेटम [Pennisetum spicutam]

रासायनिक संगठन--

इसके दानो में ईथर, एक्सट्रेक्ट ०.४ प्रतिशत, अल्यूमिनाइड्स (जिसमे नाइट्रोजन ०२१ प्रतिशत) १३ प्रतिशत, पचनीय कार्बोहाइड्रेट्स [Digestible carbohydrates] २०० प्रतिशत, लगभग १० प्रतिशत प्रोटीड्स (proteids) तथा ७० प्रतिशत स्टार्च, काष्ठतन्तु १५ ८ प्रतिशत तथा राख या क्षार २५ प्रतिशत पाया जाता है । —नाडकर्णी

गुण धर्म व प्रयोग---

गुरु, रूक्ष, उष्ण, दीपन, ग्राही, विष्टभी, वात, पित्त कारक,हृद्य, साधारण पुष्टिकारक, कातिवर्धक, स्त्रियो की कामवासनावर्धक व ऋतुधर्म प्रवर्त्तक है ।

पित्त एव वातजन्य वमन पर इसका हरीरा (यूष) बनाकर पिलाते है ।

शोथ, आध्मान, अर्श पीडा, उदरशूल, वातज सिरदर्द पर इसे पोटलियो मे बाधकर तवे पर बार-बार गरम कर सेकते है । इसके राख मे बहुमूत्र के रोगी को भी लाभ होता है ।

उपदश पर—इसके आटे मे नमक मिला, टिकिया बनाकर बाधते हे ।

पागल कुत्ते के विष पर—इसके दानो को आक के दूध मे फुला फुला कर तीन बार सुखाकर, कसोदी के पत्र रस मे घोटकर चने जैसी गोलिया बनालें । प्रात साय १-१ गोली अदरख के रस व शहद मे मिला खिलावें । ऊपर से गरम दूध पिलावे । २१ दिन बराबर पथ्यपूर्वक सेवन से विष दूर हो जाता है । सेवन काल मे घृत व दूध का सेवन आवश्यक है अन्यथा गरमी विशेष होगी । अथवा — भा. गृ चि

खेत में जाकर बाजरे के सिट्टो के कोमल फूल जैसे रोमो को सग्रहित कर रखें । इन्हे १ मा० की मात्रा मे गुड के साथ मिला खिलाने से ७ दिन मे विष नष्ट हो जाता है । —व गु.

नोट—भोजन के रूप मे जितना पच सके उतना ही इसका सेवन हितकर होता है । अधिक प्रमाण मे या सदैव इसके खाने से उदर आध्मान, कब्जी, फुपफुस विकृति, वृक्काश्मरी, रक्त मे रूक्षता आदि हानिया होती है । गर्भवती स्त्री का गर्भपात होना सभव है । हानिनिवारक–घृत दुग्धादि स्निग्ध द्रव्य, एव कचरी की बेल की कोपल है । इसका प्रतिनिधि कगनी (काकुन) है ।

इसकी रोटी, खिचडी आदि खाते समय उसमे घृत गुड या शक्कर आदि मिला कर खायें । इसके हरे पत्ते आदि तथा शुष्क कडब ज्वार के पत्र जैसी जानवरो के लिये पुष्टिदायक नही है ।

बाण पुष्प (Barleria Prionitis)

पुष्प वर्ग एव वासाकुल [Acanthaceae] की पीले पुष्प वाली कटसरैया का ही यह एक भेद विशेष प्रतीत होता है । [इसका सचित्र विवरण इस ग्रन्थ के भाग ३ मे कटसरैया न० १ के प्रकरण मे देखिये ।]

नोट—गौडादि देशो मे यह बाणपुष्प नाम से प्रसिद्ध है । "बाणपुष्प इति गौड़ादौ प्रसिद्ध" —भा० प्र०
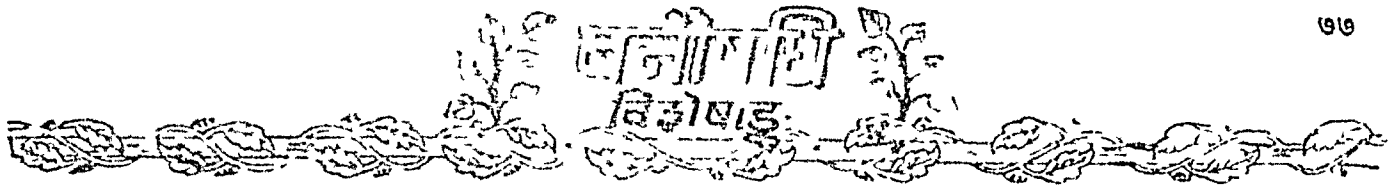
अम्लाटन, अम्लान, अम्लातक, कुरण्टक, वर्ण पुष्प महासह ये उसके संस्कृत नाम हैं।

गुण धर्म मे यह—कषाय, तिक्त रस युक्त, उष्ण, स्निग्ध एव स्वादिष्ट होता है। —भा प्र

इसके प्रयोगादि कटसरैया न०१ के समान ही किये जा सकते है।

सभव है इसके काटे कटसरैया के काटो की अपेक्षा बडे तथा बाण जैसे तीक्ष्ण होने से इसे बाण पुष्प कहते हो।

बादर—देखे तालीसपत्र। बादरज बोया—देखें बिल्लीलोटन। बादवर्द—देखे बादावर्द।

बादसाह शालप [Allium macleani]

रसोन कुल (Liliaceae) का यह कन्द विशेष आकार में लहसुन जैसा कुछ कलौंछ लिये हुए भूरे रङ्ग का ऊपर के पृष्ठ भाग पर उभरी हुई खडी रेखाओ से युक्त होता है। यह वाष्प क्रिया मे शुष्क किया हुआ पर्शिया से इधर आता है तथा बाजारो में निम्न नाम से प्राप्त होता है। यूनानी मे इसका विशेष प्रचलन है। यह शुष्क कन्द जल में बहुत देर तक रखने से फूल जाता है। यह सालम मिश्री का एक कडुवा भेद है।

नाम--

हिन्दी, यूनानी—बादशाह सालप। अं.—रायल-सालेप [Royal salep]। ले —एलियम मेक्लीनी।

गुण धर्म--

इसे सालम मिश्री के स्थान मे प्रयोग किया जाता है। किन्तु यह उतना प्रभावशाली एवं सौम्य नही होता।

बादाम कोही (बादाम कश्मीरी)—देखें फिंदक।

बादाम [मीठा] (Prunus Amygdalus)

फलादिवर्ग एव तरुणी कुल (Rosaceae) के इस सुप्रसिद्ध फल के वृक्ष मध्यम प्रमाण के, छाल लालिमायुक्त श्याम वर्ण की, पत्र—कुछ लम्बे भालाकार लम्बे वृन्त मे जुड़े हुए मध्य भाग मे चौडे, मध्य भाग के दोनो ओर पतले, किनारे दन्तुर या अखण्ड, कोमल नसोंवाले कोमल कच्चे पत्तों का वर्ण हलका हरा, किन्तु पूर्ण बढे हुए पत्र कुछ श्वेताभ, पुष्प फैला-हुआ चौडी पाच पखुडियो से युक्त लाल छीटेदार श्वेत पर्ण का अन्दर कुछ पीत वर्ण का होता है। फल—प्रारंभिक कच्ची दशा मे जब सबसे ऊपर भी आवरण मखमली रोमश एवं कोमल होता है तब भीतर की आवरण युक्त गिरी या बीज स्वाद में किंचित कसैलो अम्ल होती है। कुछ पकने पर ऊपर का उक्त आवरण कुछ कटा होकर भीतर की गिरी कोमल एव अम्लता युक्त मधुर होती है। पश्चात् भीतर की गिरी के कुछ कडी होकर स्निग्ध मधुर हो जाने पर उसके ऊपर का सलग्न पतला छिलका किंचित लालिमायुक्त भूरे रग का और उसका आवरण फीका पीले रग का कडा तथा मोटा होता है। खूब परिपक्व हो जाने पर सबसे ऊपर का उक्त आवरणीय भाग शुष्क होकर स्वय भीतर के कडे आवरणीय भाग (जो फीके पीले या खाकी रङ्ग का बाह्य भाग मे छोटे-छोटे छिद्रयुक्त सा होता है) से पृथक होकर झड जाता है, साथ ही ये भीतर के आवरण युक्त बीज भी नीचे झड जाते हैं। जिनको अच्छी तरह बटोर लिया जाता है। जो कुछ ऊपर पेड पर लटके हुए रहते हैं। उन्हे भी तोडकर रख लिया जाता है। इनमे जिनका आवरण विशेष कडा नहीं होता, चुटकी से मसलते ही अलग हो जाता है। उन्हे कागजी बादाम कहते है। ये प्राय बागो मे उपयुक्त वैज्ञानिक पद्धति से लगाये गये पेडो के फल है। इन कागजी बादमो की गिरी मोटी, वजनदार, विशेष स्निग्ध एव स्वादिष्ट होती है।
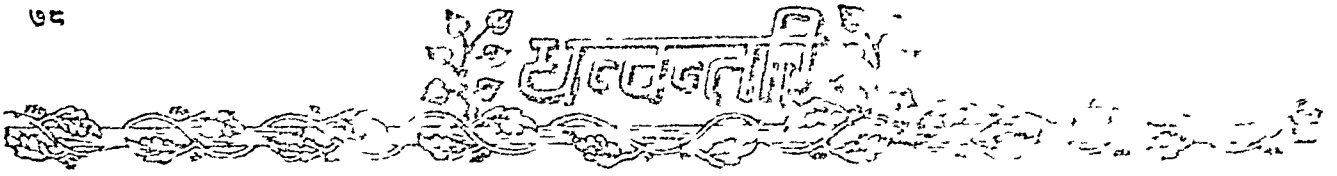
जिनका आवरण बहुत कडा होता है, सरलता से अलग नही होता, उन्हे ठर्रा बादाम कहते है। ऐसे कडे आवरण वाले बादामो के वृक्ष प्राय जगली या पहाडी होते हैं। इनके भीतर की गिरी मोटी, वजनदार एव स्निग्ध नही होती। कागजी या ठर्रा दोनो बादामो की गिरी के ऊपर जो मलगन सुर्ख जरद या कालापन युक्त रग का पतला छिलका होता है, उसका स्वाद कसैला तथा गुणधर्म में विशेष ग्राही (कब्ज करने वाला) होता है।

उक्त मीठे बादामो के वृक्ष विशेषत पश्चिमी एशिया के काबुल, (अफगानिस्तान) टर्की आदि देशो मे तथा यूरोप में भी अधिक होते है। उधर से ही इसके फल यहा आते है। भारत के शीतल प्रदेशो मे विशेषत काश्मीर, पंजाब तथा दक्षिण के पश्चिमी तट पर भी ये पैदा किये जाते हैं। किन्तु ये उतने उत्तम, स्निग्ध एव पौष्टिक नही होते। ये देशी बादाम प्राय कडे आवरण वाले ठर्रा बादाम होते हे। आगे के प्रकरण मे बादाम देशी देखिये। बादाम जगली का भी वर्णन आगे के प्रकरण मे देखिये।

नोट—बादाम 'कोही' या बादाम काश्मीरी पीछे फिंदक के प्रकरण मे देखिए।

कटु बादाम—प्रस्तुत प्रसग के बादाम का ही एक भेद कडुवा-बादाम होता है। इसे लेटिन में (Amygdala Amarars) कहते हैं। इसके पेड मीठे बादाम के पेड जैसे ही किंतु कद में छोटे, पत्र भी छोटे एव रक्ताभ, पुष्प श्वेताभ लाल, फल मीठे बादाम के फल जैसे ही किन्तु कुछ छोटे तथा चौडे, और स्वाद मे अत्यन्त कडुवे होते है। इनमे भी जो जगली या पहाडी होते हैं वे और भी बहुत कडुवे एव अप्रिय होते हैं।

ये पेड पशिया, अफगानिस्तान, स्याम, मोरक्को, सिसली, फ्रास आदि मे अधिक होते है।

मीठे बादाम को तो जल मे भिगोने या रगडने से किसी प्रकार की गन्ध नही निकलती, किंतु कडवे बादाम की उस क्रिया मे विशेष प्रकार की गन्ध आती है तथा वह उग्र विषाक्त हो जाता है। इसे खाने पर पेट मे जल के सयोग से प्रूसिक एसिड (Prussic Acid) नामक विष उत्पन्न हो जाता है। इस विष की प्रतिक्रिया उदर

बादाम मीठी

PRUNUS AMYGDALUS BATSCH.
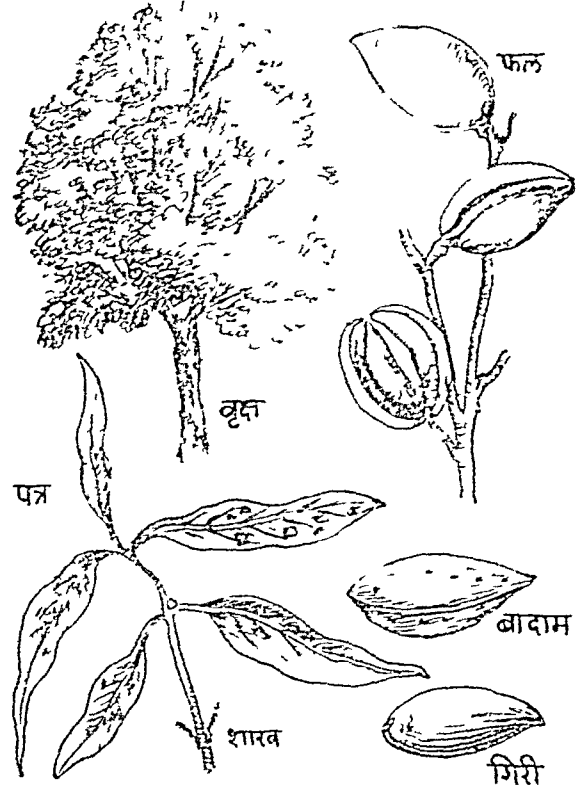
मे वही होती है जो हाइड्रोसायनिक एसिड (Hydrocyanic acid) नामक प्रबल विष की होती है, जिससे मृत्यु भी हो सकती है। अत इस विष के लक्षण (चक्कर आना, मुख व कठ मे जलन, पेशियो मे अत्यधिक शैथिल्य, चलने मे असमर्थ, नेत्र खुले, विस्फारित, मूर्च्छा, हनुस्तम्भ आदि) प्रकट होते ही रोगी के मुख पर जल के छीटे, शिर व मेरुदण्ड पर शीत जल की धारा छोडना, एमोनिया स्प्रिट का सेवन, एमोनिया सुघाना, वमन कराना, स्टमक पम्प से पेट धोकर साफ करना आदि उपचार करने चाहिए।

यथा सभव इन कडवे बादामो से सावधान रहना चाहिए। ये मीठे बादामो के साथ प्राय मिले हुए होते है। अत. प्रथम ऐसे बादामो को पृथक करके ही औषधि या खाने के काम मे लाना चाहिए। कड़वे बादाम का लेप शोथ, दाद, कुष्ठ, कृमि, कण्डू (खुजली) विशेषत.

योनिकण्डू, मस्तक शूल पुराने व्रण, गीली खुजली आदि पर लाभदायक है। इसे पीसकर सिरके में मिलाकर लगाने से छाजन, खुजली तथा शरीर के काले दागों पर लाभ होता है। इसे पीसकर वत्ती बनाकर योनि मार्ग में रखने से मासिक धर्म जारी हो जाता है। पागल कुत्ते के विष में इसे ४३ माशा की मात्रा में देते है, तथा इसका लेप भी करते है। युवान पिडिका या मुहासो पर इसकी गिरी और समुद्रफेन समभाग महीन पीसकर उबटन की तरह मुख पर रात्रि के समय मलकर प्रात गरम पानी से धोते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है।

कडुवे बादाम मे स्थिर तैल ४५% एमिगडेलिन [Amygdalın] ३% (यही तत्व जल के सयोग से प्राय विष रूप मे परिणत होता है), प्रोटीड (proteids) २५%, इमलशिन शर्करा [Emulson sugar] ३%, पिच्छिल द्रव्य [Mucılage] ३%, राख या क्षार ३ से ५% तथा हायड्रोसायनिक एसिड होता है।

यह तैल मृदुविरेचक, कृमिनाशक तथा जखम को अच्छा करने वाला, गुदा, यकृत एव प्लीहा की वेदना को दूर करने वाला, जीर्ण (चिरकालीन) प्रमेह, कर्णशूल, गले की वेदना तथा चर्म रोगों मे उपयोगी होता है। यह शोथ, वृक्क शूल, गर्भाशय का शोथ व योषापस्मार मे भी लाभकारी है। पाददारी, पैरो मे फटने वाली बिवाई पर इसे लगाने से लाभ होता है। कर्णनाद तथा कर्णशूल मे इस तैल को गरम कर २-२ बूदे कान मे डालने से लाभ होता है। जू के नाशार्थ इसे सिर पर लगाते है।

नोट—प्रस्तुत प्रसग के मीठे बादाम का ही एक भेद एमिगडेलस काम्म्युनिस [Amygdalus communıs] है। इसके पेड पत्र आदि भी वैसे ही होते है। इसके पेड मद्रास की ओर पाये जाते है। इसकी जड मूत्रल तथा धातु परिवर्तक [Alteratıve] है। हिन्दी वा बगला में बादाम तथा मद्रास की ओर बादाम कोट्टाई कहते हैं।

नोट—आयुर्वेदीय प्राचीन ग्रन्थो मे मीठे या कडवे भेद से बादाम का कोई गुणभेद पूर्वक उल्लेख नही मिलता। चरक के सू० स्थान अ० २७ मे तथा सुश्रुत के सू० स्था अ० ४६ मे फलो के प्रसग मे अखरोट, पिस्ता आदि अन्य मेवो के साथ केवल वाताभ नाम से इसका उल्लेख है।

नाम—

स—वाताद (मधुर), वाताभ, वातवैरी, नेत्रोपम फल (फल व गिरी का आकार नेत्र जैसा होने से)। हि०—बादाम (मीठा)। म० गु०—बादाम। बं०—बिलायती बादाम। अ०—[Sweet almond] (स्वीट-आलमण्ड)। ले०—प्रुनस एमिगडेलस।

रासायनिक सगठन—

इसमे स्थिर तैल ५६%, एक इमल्शिन (Emulsın) नामक जलविलेय किण्वतत्व, पिच्छिल द्रव्य ३%, प्रोटीड [Proteıds] २५%, तथा राख या क्षार ३ से ५% होती है। राख में पोटाशियम, कैल्शियम व मैगनीशियम फास्फेट होते है।

सारांश—इसमे पोषक तत्व २४ भाग, स्निग्धता या चिकनाई ५४ भाग, कार्बोज १० भाग, खनिज द्रव्य ३¾ भाग, जलीय अश ७½ भाग, विटामिन ए० बी० साधारण प्रमाण मे, तथा 'सी' विटामिन अभी अनिश्चित है।

प्रयोज्याग—बीज की गिरी, गिरी का तैल, ऊपर का छिलका तथा तेल की खली।

नोट—जहा तक प्राप्त हो सके प्रयोगार्थ 'कागजी बादाम' ही लेना ठीक होता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, मधुर, उष्णवीर्य, मधुर विपाक, वातहर, कफ पित्तवर्धक, दीपन, स्नेहन, लेखन, अनुलोमन, मृदुरेचक, कफनिस्सारक, मूत्रल, शुक्रजनन, बल्य, बृहण, वाजीकर, स्तन्यजनन, आर्तवजनन, नाडीसस्थान के लिए बल्य है। वातव्याधि, मस्तिष्क दौर्बल्य, नाडी दौर्बल्य, अग्निमाद्य, कोष्ठगतवात, जीर्ण विबन्ध, वातजन्य कास, मूत्रकृच्छ, श्वेतप्रदर, कष्टार्तव आदि मे प्रयुक्त होता है।

डा० देसाई के मतानुसार—इस मीठे बादाम मे चावल के भीतर रहे हुए श्वेतसार (स्टार्च) जैसा सत्व न होने से मधुमेह के रोगी को इसकी खीर (बिना शक्कर मिली) दी जाती है। इस खीर को बनाने के पूर्व गिरी को रात

भर गरम जल मे भिगो रखना चाहिए। प्रात छिलके दूर कर उपयोग मे लावे। ऐसा करने मे उसमे पाचन क्रिया को उत्तेजक एव सहायक एक प्रकार का नया सत्व पैदा होता है। इस खीर को अधिक नही पकाना चाहिए। अन्यथा नूतन पाचक सत्व का नाश होना सभव है। रसायन के लिये उक्त प्रकार से भिगोई हुई बादाम, असगन्ध, पिप्पली, घृत, दूध व मिश्री मिलाकर बनाई हुई खीर उत्तम होती है। यह खीर निस्तेज मुख वाली स्त्री के कमर के दर्द पर अच्छी लाभदायक होती है। इसके सेवन से स्तनो मे दुग्धवृद्धि तथा श्वेतप्रदर मे लाभ होता हे।

ध्यान रहे यदि यकृत के निर्बल होने से पित्तस्राव कम होता हो तो उक्त खीर मे घी मिलाना ठीक नही। अन्यथा मूत्र पीला व उष्ण होवेगा तथा खीर का यथायोग्य पाचन नही होगा।

श्वासोच्छ्वास सस्थान, मूत्र सस्थान तथा प्रजनन सस्थान के रोगो पर बादाम को अन्य प्रयोजक एव उपयुक्त द्रव्यो के साथ पीसकर देते है।

बादाम को पीस कर उसका द्रव बना, पिपरमेंट के साथ कफ एव कास के निवारणार्थ दिया जाता हे। मृदु-विरेचनार्थ एव आत्र शूल पर बादाम के साथ अजीर का प्रयोग किया जाता है।

यूनानी मतानुसार—यह गरमी और सरदी मे समशीतोष्ण हे। यह शरीर मे नया खून और वीर्य पैदा करता एव पुराने को शुद्ध व साफ करता है। पुराने वीर्य की गरमी व दोष दूर करता है। इसका शीत निर्यास शक्कर के साथ सूखी खासी को आराम करता तथा कफ के साथ आने वाले खून को बन्द करता है। मूत्रनली की सूजन एव सुजाक मे भी इसे देते हैं।

इसका हरीरा बनाकर सेवन से मस्तिष्क बलवान एव तर तथा शरीर पुष्ट होता हे। शुक्र जनन एव बाजीकरणार्थ इसे बाजीकर माजूनो मे डालते हे। खासी मे प्रयुक्त करने से यह उर-कठ मे मार्दव पैदा कर, कफ को सुगमतापूर्वक निकाल देता है। चेहरे का रग निखारने के लिए इसे उबटनो में डालते हे। बादाम को भूनकर खाने से मेदे की सुस्ती एव शैथिल्य दूर होता हे।

वृक्ष से तोडी हुई अपरिपक्व कच्ची बादाम-दारक, गुरु, पित्तजनक तथा वात पित्त व कफ के प्रकोप को नष्ट करती है।

पकी हुई—मधुर, स्निग्ध, पौष्टिक, गुरु, कफकारक तथा पित्त व वातपित्त की नाशक है। भूनी हुई—मधुर, स्निग्ध, धातुवर्धक, पौष्टिक, कफकारक एव वात पित्त को दूर करती है। —निघटुरत्नाकर।

[१] मस्तिष्क के विकारो पर—बादाम ५ नग रात भर भिगोये हुए प्रात ऊपरी छिलका दूर कर मीगी के साथ थोडी शीतलचीनी (कबावचीनी), २ ३ इलायची सम्पूर्ण छिलका सहित खूब महीन पीस कर उसमे ताजा घी १॥ तोला, मिश्री १ तोला और आधा तोला शहद मिलाकर सेवन करें। इस प्रकार प्रात साय ७ दिन सेवन से मस्तिष्क बलवान तथा धातु की वृद्धि होती है।

मस्तिष्क की शून्यता एव कमजोरी के लिये ५-६ बादामो की गिरी छीलकर निर्धूम कोयलो की आच मे भूनकर मिश्री के साथ चबाकर खावे। १ घटा बाद मक्खन २ तोला और १ तोला मिश्री मिलाकर खावे। तथा मस्तक और सिर पर दिन मे ३ बार मीठे बादाम का तेल मला करे। —अ तन।

मस्तिष्क की पुष्टि के लिए प्रात काल सेवनीय नाश्ता—इसकी गिरी ७ नग तथा १ उत्तम छुहारे को रात्रि के समय कोरी मिट्टी की हाडी मे जल के साथ भिगोकर, प्रात बादामो को छील तथा छुहारे की गुठली दूर कर उनके साथ ४ छोटी इलायची के बीज निकाल कर खूब पीसकर उसमे मिश्री तथा गाय का घी ५-५ तोला मिला प्रात सेवन किया करे। ७ दिन के बाद उक्त प्रत्येक वस्तु की मात्रा दो गुनी कर दें तो अति उत्तम हे। १४ या २१ दिन के सेवन से अत्यधिक लाभ होता हे। सिर मे चक्कर आना, मस्तक की तथा हृदय की दुर्बलता आदि विकार दूर हो जाते हे। इस योग से कामला, पाडु रोग मे भी लाभ होता है।

ध्यान रहे—इस योग को प्रात ही लेवे, तथा इसके पच जाने पर दोपहर मे सात्विक भोजन करे। जिसका आमाशय दुर्बल हो उसे प्रथम अर्ध मात्रा मे सेवन करना
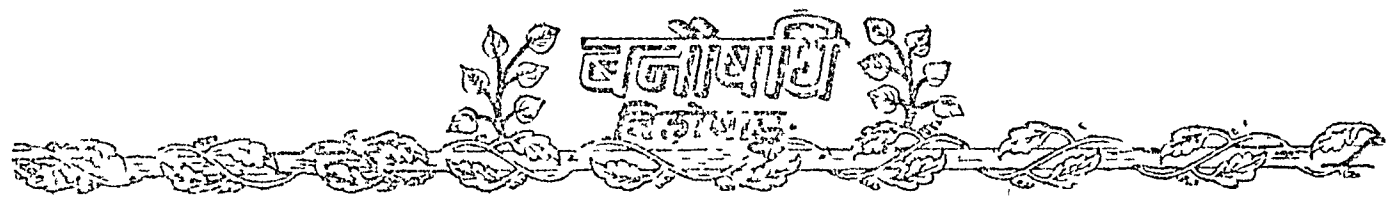
चाहिये फिर धीरे धीरे मात्रा बढावे । जिसकी जठराग्नि तीव्र हो वह इसके सेवन के बाद दूध भी पी सकता है, इससे और भी शीघ्र लाभ होगा ।

अथवा—सौंफ व मिश्री ६-६ माशे के चूर्ण के साथ इसकी गिरी ७ नग महीन कतर कर मिला देवें । तथा रात्रि को सोते समय गरम दूध के साथ प्रतिदिन सेवन करें । किंतु इसके ऊपर जल नहीं पीवे । इससे मस्तिष्क की अशक्ति दूर होती तथा नेत्र ज्योति की विशेष परिवृद्धि होती है । दृष्टिमाद्य दूर होता है ।

—ह मौ मुहम्मद अब्दुल्ला साहब ।

मस्तिष्क शक्तिवर्धक तथा कास, प्रतिश्याय आदि निवारक योग—बादाम की तथा कद्दू बीज की गिरी छिलका रहित, सौंफ, धनिया व खसखस प्रत्येक ५ तोला, छोटी इलायची बीज २ तोला तथा मिश्री २ तोला सबका महीन चूर्ण कर उसमे चादी भस्म ६ माशा खूब अच्छी तरह खरल कर शीशी मे भर कर रखे । ३ से ६ माशा तक की मात्रा मे दूध के साथ सेवन से स्मरणशक्ति एव मस्तिष्क शक्ति बढती है तथा प्रतिश्याय, शुष्क कास व मस्तिष्कगतरूक्षता दूर होती है । इस प्रयोग को यूनानी मे 'अकसीर हाफिजा' कहते हैं । —यू० चि० सा०

अथवा—बादाम गिरी (छिलके रहित) १० से २० नग, गेहू का सत्व (निशास्ता) १ से २ तोला तक और खसखस १ तोला तक तीनों को जल के साथ घोट छानकर धीमी आच पर पका कर अवलेह जैसा बना, खाड मिला कर सेवन करें । मस्तिष्क के लिए बलकारी तथा कास प्रतिश्याय व नजला में लाभकारी है। —सकलित ।

बादाम गिरी छिलका रहित १ से शुरू कर प्रतिदिन प्रात १० गिरी तक खूब चबाते हुए खावे। फिर १० दिन के बाद १-१ गिरी कम करते हुए १ पर आजाये। इस प्रकार इसके सेवन से भी मस्तिष्क की बल वृद्धि होती है ।

नोट—आगे विशिष्ट योगो मे—दूध बादाम, खमीरा बादाम, हरीरा बादाम, बादाम पाक आदि के प्रयोग देखें ।

उन्माद पर—यह मस्तिष्क विकृति का भयकर परिणाम है। इसकी शाति के लिए—प्रात साय इसकी १० गिरिया को जल में फुलाकर छिलका दूर कर पीसकर पिट्ठी बना, गाय के २० तोला दूध मे पकावे । पकाते समय उसमे मिश्री २ तोला और छोटी इलायची ३ नग को भी कूटकर मिला देवे । पक जाने पर उतार कर छानकर ठडा कर रोगी को खिलाये । इससे निद्रा की कमी दूर होती है, मस्तिष्क विकृति दूर होकर उन्माद रोग मे बडा लाभ होता है, शारीरिक शक्ति भी घटने नही पाती ।

मस्तक शूल पर—इसकी गिरी के साथ थोडी केसर को गाय के घृत मे खरलकर नस्य देवे । अथवा गिरी को रात भर भिगोकर प्रात छिलका दूर कर गिरी को पीस, दूध मे खीर की तरह पकाकर, शक्कर मिला, ३ दिन खावे । तथा मस्तक पर गिरी के साथ कपूर को दूध मे घिसकर लेप करें ।

(२) सर्वाङ्गीण पुष्टि के लिये, तथा स्वप्नदोष व प्रमेह एव मूत्र दाह पर—बादाम गिरी ३ नग लेकर रात्रि के समय १० तोला तक गरम जल में भिगोकर प्रात छिलका दूर कर खूब महीन पीसकर पिट्ठी बना लें या सिल पर थोडे दूध के साथ घिसकर चन्दन जेसा बनाकर उसमे गुलकन्द १ से २ तोला तक तथा १-२ मा असगन्ध का महीन चूर्ण मिला इस मिश्रण को खाकर ऊपर से पकाया हुआ दूध १० से २० तोला तक पीवें, इस सरल प्रयोग के सेवन से शरीर एव मन की सर्वाङ्गीण वृद्धि अर्थात् पच ज्ञानेन्द्रिय एव पच कर्मेन्द्रिय सहित मन के नित्य के अविश्रान्त पारस्परिक कार्यो मे सहकार्यता प्राप्त होती है । —वैद्य म पु नानल बम्बई

स्वप्न दोष पर—भिगोकर छिलका दूर की हुई इसकी गिरी १ नग को मिश्री ३ माशा के साथ पीसकर उसमे उत्तम गिलोय का सत और ताजे मक्खन का निकाला हुआ घृत ३-३ माशा तथा शहद ६ माशा इन सब को एकत्र मिला, प्रात साय चाटने से बहुत शीघ्र ही स्वप्नदोष (स्वप्न मे वीर्य स्खलन होना) दूर हो जाता है ।

—आदर्श गार्हस्थ्य जीवन से ।

पूय प्रमेह (सुजाक) तथा मूत्र दाह पर – इसकी गिरी ७ नग छिलकारहित लेकर उसके साथ असली श्वेत

चन्दन का बुरादा ३ माशा दोनो को खूब महीन पीसकर मिश्री मिलाकर दिन मे ३ बार जल के साथ लेने से अथवा उक्त ७ नग गिरी को खूब महीन पीसकर उसमे श्वेत चन्दन की लकडी का जल के साथ घिसकर निकाला चन्दन ६ माशे तक मिलाकर और थोडी मिश्री मिला दिन मे इसी प्रकार तैयार कर ३ बार सयम एव पथ्यापथ्य पालन पूर्वक सेवन से असाध्य एव कष्टसाध्य पूयमेह शीघ्र दूर होता है। मूत्र की जलन भी शात हो जाती है। अथवा छिलके रहित गिरी ७ नग और छोटी इलायची ७ नग के बीज दोनो को खूब महीन पीसकर ४० तोला जल मे छानकर मिश्री मिला दिन मे ३ बार पिलाने से मूत्र दाह एव नवीन सुजाक शीघ्र ही दूर हो जाता है।

—सकलित

(३) अशक्ति तथा वाजीकरणार्थ और वालको की वल वृद्धि के लिये—छिलकारहित वादाम की गिरी १० नग महीन पीसकर पिट्ठी कर, उवलते हुये ५० तोला दूध मे डाल दें। २-३ उवाल आ जाने पर उतार कर उसमे इच्छानुसार मिश्री या खाड तथा दालचीनी का महीन चूर्ण २ माशा मिला दें। खाड या मिश्री के स्थान मे शहद २ तोला मिलाना और भी लाभदायक है। इसे १०-१५ दिन भी यदि सेवन कर लिया जाय तो वर्षों की अशक्ति दूर हो जाती है। मस्तिष्क के लिये भी लाभ कारी है।

वाजीकरणार्थ—इसकी गिरी के साथ सोठ, भुने हुये चने, काली मिरच और मिश्री (यथोचित प्रमाण मे) साथ खूब चबाकर खाने तथा ऊपर से दूध पी लेने से वाजीकरण शक्ति मे अच्छी वृद्धि होती है।

वालको की वल वृद्धि के लिये—वादाम गिरी, किशमिश, छुहारा (गुठली निकाला हुआ), नारियल की गिरी प्रत्येक १० तोला, भूने हुये छिले चने ४० तो० और शक्कर ८० तोला सवको कूटकर चूर्ण कर रक्खे। प्रात २॥ से ५ तोला तक वालको को खिलाने से वलवृद्धि होकर शरीर पुष्ट होता है।

(४) दृष्टिमाद्य नेत्र विकारो पर—

दृष्टिमाद्य पर—इसकी गिरी और सौंफ ताजी उत्तम साफ की हुई १०-१० तोला लेकर प्रथम सौंफ का महीन चूर्ण कर उसमें गिरी को खूब महीन कतर कर तथा उक्त चूर्ण के साथ खरल कर एक जीव करदें। उसमें मिश्री २० तोला चूर्ण कर मिलाकर शीशी में रख लें। १-१ तोला चूर्ण रात्रि के समय मुख में डालकर धीरे धीरे खाकर सो जावे। इस पर जल या दूध कुछ भी न पीवे। यदि प्यास लगे तो ४-५ घण्टे वाद जल पीवें। ४० दिन के सेवन से दृष्टिदौर्वल्य दूर हो जाता है।

अथवा रात्रि को सोते समय इसकी ७ गिरी को १ तोला मिश्री के साथ खाते रहने से भी दृष्टि तीव्र होजाती है।

नेत्राभिष्यन्द पर—आख आई हो तो इसकी ७ गिरी को महीन पीसकर उसमे घृत और मिश्री २-२ तो० मिला प्रात साय सेवन करें। इससे आखें नही आतीं, तथा आई हो तो शीघ्र अच्छी हो जाती हैं तथा आखो के आगे आने वाला अधेरा, नेत्रो का उष्णताजन्य विकार एव मस्तिष्क की उष्णता शात हो जाती है। कम से कम ७ दिन सेवन करें। इससे शुष्क कास में भी लाभ होता है। वालको के लिए विशेष हितकारी है।

नेत्रस्राव पर—आखो से पानी वहता हो तो इसकी गिरी प्रतिदिन ३ से ७ तक चवाकर खाते रहने से लाभ होता है।

(५) कास, श्वास तथा हकलाना (तुतलाना) पर—

कासहर वटी—इसकी गिरी २५ नग, मुनक्का ३ तोला मुलैठी चूर्ण ६ माशा, छोटी पिप्पली ४ नग, काकडासिगी शकर तेंगाल ■ वशलोचन, छोटी इलायची, गोद वबूल,

---

■ यह तेगाल या तीगाल नामक वडी मक्खी या लखोरी की तरह एक कीट विशेष का घर है जो वह अपनी लाला (थूक) से बनाता है। यह घर नवीन दशा मे मधुर होता है। यह घर भीतर से खोखला होता है। जूना हो जाने पर इसकी मधुरता कम हो जाती है। इसके विषमाकार मटियाले श्वेत टुकडे होते है। इसे ही शकर तीगाल कहते हैं। यह यूनानी प्रयोगो मे कई स्थानों मे लिया जाता है।

गोद कतीर, व सुहागा (भूना हुआ) ३-३ माशा एकत्र घोट पीसकर अद्रक रस मे खरल कर चने जैसी गोलिया बना लेवें। १ से ४ गोली चूसते रहने से प्रत्येक प्रकार की खासी मे उत्तम लाभ होता है। —यू चि सा

अथवा—इसकी गिरी (छिलका रहित), मीठे कद्दू के बीज प्रत्येक २५ माशा, बबूल गोद, कतीरा, निशास्ता (गेहू का सत, मुलैठी का सत (रुब्बे सूस) प्रत्येक ३५ माशा, खाड ७० माशा, सबको कूटकर पीसकर, बादाम तैल से मिश्रित कर एव यथावश्यक अर्क गुलाब मिलाकर अवलेह बनालें। ४ से ६ माशा तक प्रात साय चटाने से शुष्क कास तथा कठ और स्वरयत्र का प्रदाह एवं खरखरापन दूर होता है। इस प्रयोग को लहूक बादाम कहते हैं।

—यू० चि० सा०।

अथवा—इसकी गिरी, मुलैठी का महीन चूर्ण और मुनक्का (बीज निकाले हुए) समभाग एकत्र खरल में थोडे जल के साथ खूब खरल कर चने जैसी गोलिया बनाले। १-१ गोली दिन मे ४-५ बार मुख मे रखकर चूसते रहे। सर्व प्रकार की खासी दूर होती है।

अथवा–इसकी १० गिरी लेकर मुलैठी सत और कालीमिर्च चूर्ण २-२ तोला एकत्र जल या शहद के साथ खरल कर गोलिया बनाकर चूसने से भी लाभ होता है।

अथवा–इसकी गिरी ८ नग, उत्तम मिश्री और गाय का मक्खन २-२ तोला एकत्र घोटकर प्रात चटावें। और शाम को मलाई खिलावें। शुष्क कास शीघ्र ही दूर होती है। मुख से रक्त निकलता हो तो वह भी बन्द हो जाता है। कफज कास पर, 'माजून बादाम' विशिष्ट योगो मे देखिये।

हकलाने या तुतलाहट पर–इसकी गिरी (छीली हुई) ५ तोला के साथ दालचीनी व लौंग १-१ तोला का चूर्ण और पिस्ते की गिरी २ तोला खूब महीन पीसकर उसमे चादी के वर्क १ तोला व केशर ६ माशा इन दोनो को १५ तो० शहद मे खरल कर मिलादें। पुन खरल कर सबको एक दिल कर काच या चीनी मिट्टी के पात्र मे सुरक्षित रखे। प्रात साय या एक ही समय ४ से ६ माशा तक चाटकर ऊपर से गरम दूध पीवे। बालको को १ से २½ माशा तक देवे। शारीरिक शक्ति एव दिल के लिए भी यह लाभदायक है। —(सकलित)

(६) कोष्ठबद्धता, शरीर शुद्धि, अस्थिसन्धान, स्तनशोथ, कम्पवात, प्लेग की बेहोशी, भिलावे का फदकना, क्षुधा तृषा का निरोध और ज्वर उतारने के लिए।

कोष्ठ बद्धता पर—इसकी छिली हुई गिरी २१ दानो के साथ शुद्ध जायफल १ तोला को शीशी मे मजबूत डाट लगा ४ दिन तक किसी गरम कमरे मे या आलमारी मे बन्द कर रक्खें। पश्चात् निकाल कर कही पर भी शीशी को रखें। इसमे से १ से ३ गिरी को खाने से दस्त साफ होता है, कब्जी दूर होती है। यह एक उत्तम दस्तावर प्रयोग है। —सकलित।

शरीर शुद्धि के लिये इसकी गिरी १० तोला, दूर्वा (दूब) घास १ तोला, कालीमिर्च के १० दाने तथा छोटी इलायची ५ दाने सबको सिलपर भांग की तरह घोटकर १ गिलास जल मे छानकर रुचि के अनुसार शक्कर मिला दिन मे ३ बजे पी लिया करें। एक वर्ष तक निरतर पीने से शरीर निर्मल हो जाता है।

अस्थिसन्धानार्थ--बादाम कतरे हुए तथा पिस्ता कतरा हुआ ५ ५ तोला, गागेरुकी (गगेरन बडी) की जड की छाल १५ तोला, देशी खाड ३५ तोला तथा घृत ६० तोला (छाल का महीन चूर्ण कर) सबको एकत्र मिला १८ मोदक बनालें। प्रात साय १-१ मोदक खाकर ऊपर से दूध पीवे। यदि आवश्यकता हो, तो उदर शुद्धि औषधि प्रारभ करने के पूर्व एरड तैल द्वारा कराले। १८ दिन तक दुग्धाहार करें ९ दिन के भीतर ही अस्थिसधान हो जाता है।

भग्नास्थि पर—चपडा, गधा बिरोजा, राल, उसारे रेवन्द समान भाग लेकर मेथिलेटेड स्प्रिट मे घुला कर लेप करे तथा ऊपर से आवश्यकतानुसार बास की खपचिया बाध कर भग्न स्थान को समतल रखें।

—स्व० कविराज श्री प्रतापसिंह जी।

स्तनशोथ पर—बच्चे के सर मार देने से या दूध के रुक जाने से या अन्य किसी कारण से स्त्री के स्तनपर जो शोथ हो जाता है, जिसे भाषा मे कही-कही थनेला कहते हैं। यदि इस सूजन मे पीड़ा हो तथा कुछ दाह भी हो,

किन्तु भीतर पीप न पडी हो, तो—इसकी गिरी के साथ समभाग किशमिश और मुनक्का एकत्र थोडे पानी के साथ खूब महीन पीसकर थोडा गरम कर, सुखोष्ण लेप दिन मे ३ बार करे। २-३ दिन मे लाभ हो जाता है।

कम्पवात पर—इसकी १-२ गिरी को जल मे भिगोकर छिलका दूर कर चन्दन घिसने के पत्थर पर थोडे जल के साथ पूर्णतया घिसकर उसमे समभाग शहद मिला चाटते रहने से १ महीने में पूर्ण लाभ होता है।

प्लेग (ग्रन्थिक सन्निपात) की वेहोशी पर—

इसकी गिरी (छिलका दूर की हुई) १ तोला को पीसकर कल्क या लुगदी बना उसके साथ केशर व कपूर १-१ माशा को भी थोडे जल के साथ पीस ४ तोला घृत मिला, मन्द आच पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर, इसकी मालिश (शिर व मस्तक पर) करने तथा इसकी नस्य देने से मूर्च्छा, व वेहोशी दूर हो जाती है।

भिलावे का फदकना—शरीर पर भिलावे के तेल या उसके धूम्र के स्पर्श से जो सूजन, खुजली आदि उपद्रव होते है उसपर इसकी गिरी को घिसकर लगाने से लाभ होता है।

क्षुधा व तृषा के निषेधार्थ—छिली हुई इसकी गिरी और गोद कतीरा दोनो समभाग पीसकर ईसबगोल के लुआब के साथ घोटकर १-१ तोला की गोलिया,बना लेवें। १-१ गोली खा लेने से भूख व प्यास का निरोध होता है।

ज्वर उतारने के लिये—गिरी के ऊपर के छिलके को खूब महीन पीसकर जल मे मिला, हाथ व पैरो के बीसो नाखूनो पर लेप कर देने से कभी-कभी कोई ज्वर शीघ्र ही १५ मिनटो मे उतर जाता है। प्रत्येक ज्वर पर यह क्रिया लागू नही होती किंतु कोई हानि भी नही होती।

—सकलित

तैल—

मीठे (विशेषत. कागजी) वादामो मे जो ५६% स्थिर तैल पाया जाता है वह गुणधर्म मे—लघु, मधुर, पित्त वात शामक, शीतवीर्य, कामोद्दीपक, मृदु विरेचक, मस्तिष्क के लिये शाति एव पुष्टि प्रद, शूलनाशक, कफवर्धक, वातहर, निद्राकारक, आन्तरिक दाहशामक, वीर्य स्राव निवारक तथा शुष्क कास, मूर्च्छा, यकृद्विकार आदि मे प्रयुक्त होता है। ७ से १६ माशा की मात्रा मे यह विरेचक होता है। ५० तोला से २ सेर तक की मात्रा मे इसका एनिमा देने से आतो मे सख्त चिपके हुए मुद्दो को निकालता है।

—यूनानी।

विरेचक औषधियो के साथ इसे देने से उनका तीव्र प्रतिक्रियात्मक दोष शात हो जाता है। सन्निपात तथा निमोनिया और योषापस्मार मे भी यह विशेष लाभकारी है। जीर्ण मलावरोध तथा क्षय पीडित रोगी को प्रतिदिन ४ से ६ माशा तक यह तैल दूध के साथ सेवन कराया जाता है। क्षय रोगी की छाती पर इसकी मालिश भी कराई जाती है।

नोट—ध्यान रहे वाजारो मे प्राय विशुद्ध वादाम तेल नही मिलता। अत औषधि कार्यार्थ एव वाह्याभ्यन्तर प्रयोजनार्थ किसी खास विश्वस्त फार्मेसी का ही तैल लेना चाहिये। अथवा निम्न विधि से स्वय इसे निकाल लेना ही ठीक होता है—

वादाम की गिरियो को (इसमे कडुवे वादाम की एक गिरी न हो) आवश्यकतानुसार लेकर मजवूत कूडी मे डाल कर खूब महीन घोटने से जब मक्खन जसा कोमल हो जावे तव थोड़ी खाड मिलाकर गरम जल के छींटे दे-दे कर घोटते जावे। घोटते-घोटते तेल विल्कुल पृथक हो जावेगा। इसे लुगदी सहित महीन मोटे वस्त्र मे रख कर निचोड लेवे। जो लुगदी, छँछ या खली वस्त्र मे रह जावे, उसे भी खूब घोटकर निचोड लेवे।

अथवा—गिरी को पीसकर थोडी सी मिश्री मिला कर ताम्र पात्र मे रख थोडा गरम करलें और पात्र को टेढा कर हाथ से निचोडें। तेल अलग हो जावेगा।

अथवा—तेल निकालने की मशीन मे या कोल्हू मे अपने सामने इसका तेल निकलवा लेवे। यह गिरी के वजन से आधे से कुछ कम निकलता है।

यह तेल स्वच्छ गधहीन तथा हल्का पीत वर्ण का होता है। इसमे रुचिकारक गिरी का स्वाद होता है। हवा मे खुला रहने से यह विगड जाता है, अरुचिकारक

गन्ध आने लगती है तथा इसका विशिष्ट गुरुत्व भी नष्ट जाता है।
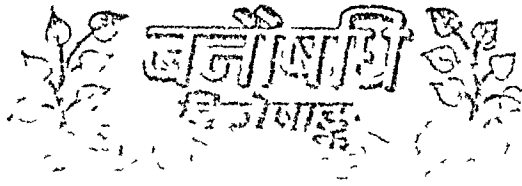
[७] कोष्ठबद्धता (कब्ज) पर—रात्रि के समय गरम दूध के साथ इसका शुद्ध तेल ३ माशा की मात्रा में सेवन करना प्रारम्भ करें तथा प्रतिदिन थोड़ा थोड़ा बढ़ाते हुए ६ माशा तक बढ़ायें। कुछ दिनों में ही जीर्ण कब्ज का विकार बिलकुल दूर हो जावेगा। यदि इस प्रकार दूध के साथ तेल पीने से हिचकिचाहट हो तो इसके ६ माशा तेल को २॥ तोला गुलाबजल (जिसमें गोंद बबूल ३ माशा महीन कर मिलाया गया हो) में मिश्रित कर खूब उलट पलट करने से जो दूध की भांति श्वेत मिश्रण तैयार होगा उसे दो बार में पिलायें। यह मिश्रण प्रतिदिन बनाना उचित है। क्योंकि कुछ घंटों के बाद यह खराब हो जाता है। —ह मो मुहम्मद अब्दुल्ला साहब

[८] कर्णनाद, कर्ण पीडा, सिर दर्द तथा कटिवेदना पर—यदि कान में कोई फोड़ा, फुन्सी या घाव के न होने हुए भी केवल वात या शीतजन्य पीड़ा हो या कान से साय-साय आवाज प्रतीत होती हो (कर्णनाद) तो इस तेल को गरम कर कुछ बूंदें सुखोष्ण कान में डालने से पीडा तथा नाद का होना बन्द हो जाता है।

सिर दर्द पर—वह तेल २ माशा के साथ केशर १ माशा मिलाकर दिन में ३-४ बार सुंघाने से शीघ्र ही प्रत्येक प्रकार का सिर शूल नष्ट हो जाता है।

कटिवेदना—वात या पित्त अथवा वात पित्त जन्य कमर के दर्द पर—इसके तेल की मालिश कुछ दिन निरंतर करने से वेदना दूर होकर कमर भी सीधी हो जाती है। साथ ही बादाम की गिरी को पीसकर दूध के साथ सेवन करते रहने से शीघ्र ही लाभ होता है।

[९] कास एवं कण्ठ के विकार, मूत्रकृच्छ्र व अश्मरी पर—कासादि कंठ विकारों पर—इसके तेल को गोंद कतीरा का महीन चूर्ण और शहद के साथ चाटते रहने से शुष्ककास दूर होती है तथा गले की खरखराहट दूर होकर कंठ साफ हो जाता है।

मूत्रकृच्छ्र या मूत्रावरोध पर—इसके तेल में थोड़ी शक्कर मिलाकर पकाये हुए दूध की लस्सी के साथ पिलाना लाभप्रद है।

मूत्राशय में—शोथ जन्य विकार हो तो तेल को गो-दुग्ध में मिलाकर पिलावें।

मूत्राशय की अश्मरी पर—प्रतिदिन प्रात.सायं तेल की ३ माशा की मात्रा गाय के दूध के साथ पिलाने से लाभ होता है।

[१०] स्त्री रोगों पर—अविकसित स्तन वाली स्त्री जिसके स्तन बिलकुल छोटे हों शरीर के अन्य अङ्गों के साथ ही साथ बढ़ते न हों तो इसके तेल की नित्य नियमित रूप से मालिश करते रहने से वे विकसित एवं परिपुष्ट हो जाते हैं।

सगर्भा स्त्री की अशक्ति पर—अयोग्य आहार विहार एवं पोषक खाद्य के अभाव के कारण प्राय गर्भवती स्त्री अशक्त एवं निर्बल हो जाती है जिससे गर्भ के बालक की भी परिपुष्टि नहीं होती। ऐसी अवस्था में किसी भी विटामिनों की अपेक्षा केवल इसके तेल को ३ माशा की मात्रा में शहद के साथ या दूध के साथ प्रतिदिन लेते रहने से पूर्ण लाभ होजाता है।

यदि गर्भवती स्त्री को प्रतिदिन प्रात उक्त प्रकार से ९ वें मास के प्रारम्भ काल से लेकर प्रसवकाल तक तेल की ३ से लेकर ६ माशा तक की मात्रा दूध या अन्य किसी यथोचित अनुपान के साथ पिलाया करें तो प्रसव सुखपूर्वक हो जाता है। कोई कष्ट विशेष की प्रतीति नहीं होती।

तैल की खली—

तेल की खली—बादाम की गिरी का तेल निकाल लेने के बाद जो खली रहती है वह बेकार जानकर प्राय फेंक दी जाती है। वास्तव में यह भी बहुत गुणकारी है। मधुमेह रोगी के लिये गेहूं की रोटी के स्थान में खली को अच्छी तरह पीसकर दूध के साथ गूंथ कर रोटियां बना कर खिलाने से बहुत लाभ होता है। —नाडकर्णी

[११] युवान पिडिका, मुंह के दाग, धब्बों पर—खली १० तोला, रीठे के छिलके का चूर्ण ४तोला, चावलों का आटा २ तोला तथा लोबान ३ माशा इन सबको एकत्र मिला एवं सुगन्धित करने के लिये थोड़ा इतर हिना मिला कर शीशी में रख लो। रात्रि तथा प्रात इस मिश्रण में

मे थोडा निकाल कर उसमें थोडा जल मिला लेही सा बनाकर चेहरे पर लगायें, और २-४ घण्टे बाद गुनगुने जल से धो डालें।

(१२) सिर से भूसी निकलने पर—प्राय जिनके सिर पर केश बहुत बढ जाते है तथा उनकी रक्षा ठीक प्रकार से नही की जाती है तो सिर में से त्वचा के बहुत छोटे२ पतले टुकडे निकलने लग जाते है। ऐसी दशा मे—खली ५ तोला को रात्रि के समय जल में भिगोकर प्रात स्नान करते समय प्रथम इसको सिर मे भलीभाति मलमल कर लगावें। फिर गरम पानी से धो डालें। इसी प्रकार १०-१५ दिन करने से यह विकार दूर हो जाता है।

(१३) वीर्य स्तम्भनार्थ तथा दूध की कमी पर—खली और मावा [खोया] प्रत्येक २० तोला, छोटी इलायची के बीज २ तो०, केशर १ माशा तथा शहद ४० तो पाक की विधि से इनका पाक बना लेवे। यह स्वादिष्ट एव गुणदायक पाक वीर्य स्तम्भनार्थ एवं पुष्टि के लिये उपयोगी है।

गाय या भैस दूध कम देती हो तो इस खली को खिलाने से दुग्ध अधिक देने लगती है।

—कवि० श्री प्रभुदयाल जी ओझा

नोट—कई इस खली का ही शर्बत बनाकर शर्बत बादाम के नाम से लोगो को ठगते हैं। वे इस खली को ठडे जल मे ५-६ घण्टे भिगोकर मलकर छानकर खाड मिलाकर चाशनी तैयार कर लेते हैं। वैसे तो यह शर्बत तरी पहुचाता है। किन्तु यह असली शर्बत बादाम नही है। शर्बत बादाम का प्रयोग आगे विशिष्ट योगो मे देखिए।

छिलका—

बादामो को फोडने के बाद जिन कडे छिलकोको हम व्यर्थ जानकर प्राय फेंक दिया करते है। उनका तेल खुजली, दाद आदि चर्म विकारो के लिए विशेष लाभदायक होता है तथा उनका कोयला दंत विकार नाशक है।

छिलको से तेल निकालने की विधि—

(१४) लगभग ४० तोला। छिलको को जौकुट कर एक कलईदार पात्र मे रख, पात्र के मध्य भाग में एक छोटी सी [illegible] रखकर उसपर चीनी मिट्टी की या कलईदार पीतल की प्याली रख [illegible] पात्र के मुख पर जल से भरा [illegible] (...[illegible]...) दूसरा पात्र अच्छी तरह जमाकर रख दें। [illegible] को गूंधे हुए आटे से इस प्रकार बन्द कर दें कि भीतर की भाप बाहर न जा सके। फिर धीरे से उठा कर पात्र को चूल्हे पर रख धीमी [illegible] आंच [illegible] घण्टे तक देवें। ऊपर के पात्र का जल यदि बहुत गरम हो जाये तो उसे निकाल कर ठंडा जल भर कर नीचे की आग बन्द कर दें। जब जल बिलकुल ठंडा हो जाए तब धीरे धीरे जल वाले पात्र को नीचे के पात्र से पृथक कर भीतर देखें। भीतर की प्याली में अत्यन्त लाल रंग का तेल जो मिले उसे निकाल कर शीशी में भर लेवें।

इसे फुरेरी के द्वारा दाद, खुजली, छाजन आदि पर खुजलाकर प्रात. साय लगाया करें। इस तेल के लगाने से श्वेत कुष्ठ के दाग भी दूर होते हैं। सूखी खुजली पर इस १ भाग तेल मे २ भाग नारियल का तेल मिलाकर लगाया करें। इससे गीली खुजली भी दूर होती है।

—सकलित

(१५) दन्त विकारो पर—छिलको को जलाने पर उसका धुआ निकल जाने के बाद किसी पात्र से ढक देने पर जो कोयला होजाता है उसे १० तोला पीसकर उसमे माजूफल, छोटी इलायची, लौग, फिटकरी का फूला तथा कपूरकचरी का महीन चूर्ण १-१ तोला मिला, अच्छी तरह खरल कर मञ्जन रूप से उपयोग करने से दात स्वच्छ होते तथा मसूढे बलवान बनते हैं। —गा० औ० र०

अथवा— छिलको के १ भाग कोयलो के साथ आधा-आधा भाग काली मिरच और सेंधा नमक मिला, खूब कूट पीसकर छानकर रखलें।

नोट—उक्त मञ्जनो के प्रात साय प्रयोग से मसूढो से रक्त स्राव होना, दातो का हिलना, पीडा, मसूढो का फूलना आदि विकार दूर जाते है।

नाल छेदन के उपद्रवो की शाति के लिये—बालक पैदा होने पर जब नाल काटा जाता है तब बादाम के

छिलके का कोयला और उत्तम कस्तूरी सम भाग एकत्र महीन पीसकर कटे हुये नाल पर अच्छी तरह बुरक देने से नाभि पाक तथा डिब्बा व सरदी के रोग होने का भय बहुत कम रहता है। —सकलित

गोद—मीठे बादाम के पेडो से जो गोद निकलता है, वह गोद कतीरा के समान उपयोगी है। यह गोद उष्ण, तर, विवन्धकारक है तथा कण्ठ पीडा, पुरानी खासी, राजयक्ष्मा, कफ मे रक्त आना, अश्मरी आदि विकारो पर लाभकारी है।

नोट—मात्रा–बीज–गिरी ७ से ११ दाने।

यह गुरु एव चिरपाकी होने से अधिक मात्रा मे जिसे मन्दाग्नि या कब्जी का विकार हो उसके लिए हानिकारक है। हानिनिवारक मस्तङ्गी और मिश्री हैं। इसके प्रतिनिधि अखरोट और चिलगोजा है।

तेल की मात्रा–३ से६ माशा तक। विरेचनार्थ ७ माशा से २ तोला तक।

विशिष्ट योग —

(१) पाक बादाम—बादाम की गिरी ४० तोला को गरम जल मे १ घण्टा भिगो, छिलका दूर कर पीस कर २० तोला घृत मे सेक लेवे, साथ ही १० तोला खोवे को भी घृत मे सेक कर बिहीदाने ४ तोला, कमल गट्टे की गिरी [भीतर की पत्ती निकाली हुई] २ तो० छोटी इलायची, दालचीनी, नागकेशर व तेजपात १-१ तो लौंग, वन्शलोचन, जायफल, जावित्री व केशर ६-६ माशा इनका चूर्ण बनाकर उक्त बादाम गिरी और खोये के साथ मिलाकर १½ सेर शक्कर की चाशनी में पाक जमा देवें या ४-४ तोला के मोदक बना लेवे। प्रतिदिन प्रात विशेषत शीतकाल मे १ मोदक या ४ तोला की मात्रा मे पाक का सेवन कर ऊपर से दूध पीवे। यह पुष्टिकारक, बलवर्धक है। ज्वर पश्चात की निर्बलता को दूर करने के लिए भी यह सेवन किया जाता है।

नोट—उक्त पाक के अतिरिक्त लगभग १० बादाम पाको के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे वृ० पाक सग्रह मे देखिए।

(२) चूर्ण बादाम—छिलकारहित बादाम की २० तोले गिरी को अच्छी तरह छायाशुष्क कर कूटकर चूर्ण कर उसमे बबूल के गोद का २½ तोला चूर्ण तथा १० तोला मिश्री का चूर्ण या शक्कर मिला, खूब घोटकर रख ले। इसे १ तोला की मात्रा में खाकर ऊपर से दूध पीवे। इससे हृदय की कमजोरी, मस्तिष्क की उन्मत्तता तथा मानसिक उदासी दूर होती है। दूध में मुनक्का डाल कर पकाकर पीने से शौच खुल कर साफ हो जाता है। डाक्टर लोग पलविस एमगाडेली कम्पोजिट्स या कम्पौण्ड पोडर आफ एण्डस के नाम से इसका व्यवहार किया करते है। —अ० तन्त्र।

(३) अवलेह (तुर्री) बादाम—बादाम गिरी ५ या ७ नग रात्रि को जल में भिगो दे। दूसरे पात्र में १ तोला खसखस भिगोकर प्रात गिरी का छिलका अलग कर खसखस को धोकर दोनो के साथ ही मे छोटी इलायची ४-५, नारियल की गिरी, किसमिस, चिराजी १-१ तोला, मुनक्का १२ नग तथा गुलाब के फूल (शुष्क) ३ माशा इन सबको पीसकर, घृत दो तोला को खूब गरम कर उसमे इस पिसे हुए मिश्रण को छौक दें। तथा मिश्री २½ तोला और ५ तोला दूध भी उसमे मिला देवें। इस द्रव अवलेह को बादाम की तुर्री कहते है। यह मृदु विरेचक, स्निग्धकारक, पौष्टिक है। सिर मे चक्कर, दिमाग की कमजोरी, माथा गरम रहना, नाडी की उग्रता आदि में लाभदायक है। —अ० तन्त्र

(४) पौष्टिकासव–इसकी गिरी आधा सेर, मुनक्का, छुहारा १-१ सेर तथा धाय के फूल, महुए के फूल, सतावरी, असगध प्रत्येक २० तोला एव दालचीनी, जायफल, तेजपात, इलायची, लौंग, धनिया, जटामासी व नागरमोथा २ तोला, केशर, पिप्पली, खस १-१ तोला, खैरसार ३ तोला सबका चूर्ण कर सन्धान पात्र में डालकर, उसमे जल १५ सेर, शक्कर ५ सेर और शहद १½ सेर मिला मुख सन्धान कर ४० दिन सुरक्षित रखने के बाद छानकर या भवके द्वारा अर्क खीच कर बोतलो मे भर लेवे।

इस आसवार्क की मात्रा १-२ तोला नियमित रूप से कुछ दिन सेवन करने से बल की वृद्धि, मन की प्रस-

न्नता, शरीर मे स्फूर्ति होती है। रक्त का सञ्चार सुचारु रूप से होने लगता है। पीते ही तत्काल बल मालूम होता है, चेहरा कान्तियुक्त व तेजस्वी होजाता है।

नोट—अन्यान्य आसवारिष्टो के प्रयोग हमारे वृ० आसवारिष्ट सग्रह मे देखिए।

(५) कामरत्न मुक्तापाक–(नपुन्सकता नाशक) बादाम गिरी (छिलका रहित) २० तोला को पीसकर १½ सेर गोदुग्ध में औटाकर आध सेर गौ घृत मे भूनलेवें। फिर वन्शलोचन व छोटी इलायची के दाने ११ तोला, मोती, वर्क सुवर्ण, कस्तूरी ३-३ माशा, अम्बर एक माशा और केशर ३ माशा इन सबको अर्क वेदमुश्क (वेदमुश्क का प्रकरण आगे देखिए) २० तोला मे घोटकर २ सेर मिश्री की चाशनी मे उक्त सबको मिलाकर पाक जमा देवे। ६-६ माशा प्रात साय सेवन कर ऊपर से मिश्री मिला हुआ गोदुग्ध पान करे। वीर्य वृद्धि होकर नपुन्सकता शीघ्र ही दूर होती है।

(६) कायाकल्प पाक—(बलवीर्य वृद्धिकारक) गिरी २० तोला को जल मे भिगोकर, छिलका दूर कर उसके साथ अण्डी की गिरी २० तोला दुग्ध मे पीसकर पिट्ठी बनाकर सवासेर दूध में मिला मन्दाग्नि पर पका खोवा जैसा गाढा हो जाने पर उसे १० तोला गोघृत मे भून लेवे। पश्चात् असगध, विधारा ५-५ तोला तथा सतावरी, कौंचबीज, गोखुरू, खिरैंटी, वन्शलोचन, नागकेशर, दालचीनी, इलायची, शुद्ध शिलाजीत, बङ्गभस्म, प्रवाल भस्म, मकरध्वज प्रत्येक का चूर्ण १-१ तोला उक्त भुने हुए खोवे मे मिला दें। पश्चात् मिश्री सवासेर की चाशनी मे अच्छी तरह मिलाकर पाक जमा दे या मोदक बना लें। प्रात साय ६-६ माशा की मात्रा मे १ तोला खाड मिले हुए २० तोला गोदुग्ध या बकरी के दूध के साथ सेवन करे। यह पाक शरीर मे सातो धातुओ की वृद्धि कर दस्त साफ लाता, रक्त वृद्धि करता, मदाग्नि को दूर कर शक्ति का सचार करता है। इसे कम से कम २० दिन तथा स्थाई लाभार्थ ४० दिन सेवन करें।

(७) रतिवल्लभ रसायन पाक—वीर्यवर्धक, स्तम्भक)—इसकी गिरी २० तोला, सालममिश्री ८ तोला श्वेत मूसली व कौंच बीज ४-४ तोला, सोठ २ तोला, अकरकरा, जावित्री, दालचीनी १-१ तोला, तुलसी के बीज व रूमीमस्तगी ६-६ माशा इन सबको यथाविधि कूट पीस कर यथोचित घी व शक्कर के योग मे (घी आधा सेर व शक्कर १॥ सेर) उत्तम प्रकार पाक सिद्ध करलें। प्रात साय १॥ या २ तोला की मात्रा मे दूध के साथ सेवन से धातु पुष्टि एव वीर्य स्तम्भन होता है।

(८) वाजीकरण पाक—इसकी गिरी आधा सेर, बडी इलायची, जायफल, दालचीनी, सालम मिश्री प्रत्येक १६ तोला, त्रिफला १० तोला तथा तालमखाना, शतावरी, शकाकुल मिश्री, दोनो बहमन, बीजबन्द, कौंच बीज, मोचरस, पिस्ता, गोखरू, छोटी इलायची, कद्दू बीज की गिरी, तरबूज की गिरी व भाग के बीज प्रत्येक ७ तोला और बन्शलोचन १८ माशा इन सबका महीन चूर्ण कर ३ सेर मिश्री की चाशनी मे पाक जमा दें या मोदक बना ले। प्रात साय १ तोला की मात्रा मे दूध के साथ सेवन से प्रमेह, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन आदि विकार दूर होते है। यह उत्तम वाजीकरण योग है। कब्ज नही करता।

नोट—पाको के उक्त प्रयोग हमने अपने बृहत्पाक सग्रह ग्रन्थ से पाठको के लाभार्थ यहा उद्धृत किये है। अन्यान्य उत्तम पाको के योग उसी ग्रथ मे देखिये। यह केवल नमूना मात्र है।

(९) बादाम-पेय—इसकी गिरी ५ तोला को ३-४ घटे जल मे भिगो, छिलका दूर कर पीस लो। थोडा थोडा परिश्रुतजल (बाष्प जल) मिलाते जावें। अन्त मे एक पतले कपडे मे छानकर १॥ से २॥ तोला की मात्रा मे इसे पीने से अन्नवह नलिका एव मूत्रयन्त्र की उग्रता दूर होती है। कष्टदायक पुरानी खासी मे कास नाशक अन्य औषधि के अनुपान मे इसका उपयोग करें। डाक्टर लोग पिश्च्यूरा एमिगडेली या एमण्ड मिक्स्चर नाम से इसका प्रयोग करते है।

—अ तत्र

अथवा—इसकी गिरी कम से कम ५ या अधिक से अधिक १० नग लेकर उष्ण जल मे भिगो छिलका दूरकर लकडी या चिकने पत्थर की कूडी मे या खरल मे खूब

भलीभांति पीसकर मलाई जैसी होजाने पर उसमे आधा तोला शक्कर, १ छोटी इलायची के बीज तथा किंचित केशर मिलाकर अच्छी तरह घोटकर उसमे १० से २० तोला तक दूध मिलाकर स्वाद लेते हुए धीरे धीरे पीयें। उष्ण काल में इसमे बरफ युक्त ठडा दूध और शीत ऋतु मे गरम दूध मिला दे। उक्त योग मे इलायची तथा केशर मिलाना अपनी इच्छा पर निर्भर है। जिसके रक्त मे या कोष्ठ मे उष्णता हो, वे उक्त योग मे केवल दूध और जल १०-१० तोला का मिश्रण मिलाकर पान करे। मस्तिष्क की तरावट के लिये इस पेय मे ताजी ब्राह्मी के पत्र २-४ नग मिलाकर पीसकर पान करें। यह प्रयोग नित्य प्रात अथवा तीसरे प्रहर मे ४-५ बजे लेवें। ग्रीष्म काल मे प्रात साय दो बार ले सकते है। इस प्रयोग का वास्तविक गुण तो इसके पीसने पर निर्भर है यह जितना ही अधिक घिसा या खरल किया जावेगा उतने ही शीघ्रता से शरीर मे शोषित होकर मस्तिष्क को शात रखेगा। उत्तम निद्रा आयेगी, कोष्ठ की सफाई होगी, मूत्र की गरमी दूर होगी, रक्त शुद्ध होगा। क्षुधा वृद्धि होगी।

—आरोग्य सिन्धु

(१०) शर्बत बादाम—इसकी गिरी (छिलका रहित) ५ से १० तोला तक, श्वेत चन्दन का बुरादा १ से ३ या ४ तोला तक तथा छोटी इलायची के दाने आधा से एक तोला तक लेकर सबको आधा सेर मे एक सेर तक गुलाब जल मे घोट छानकर मिश्री ६० तोला से १॥ सेर तक मिला शर्बत की चाशनी तैयार करले। इसे 'शर्बत बादाम सदली' कहते है। मात्रा ५ तोला तक इच्छानुसार जल मिलाकर दिन मे २ बार सेवन से हाथ, पैर एव आमाशय की जलन, तृषाधिक्य, दिमाग की कमजोरी, शुष्क कास, हृदय-दौर्बल्य एव धड़कन आदि विकारो मे विशेष लाभकारी है। पित्त नाशक है।

शर्बत न० २—इसकी गिरी (छिलकारहित) १० तोला को खूब महीन पीसकर १६ गुने जल मे छानकर उसमे ६० तोला खाड मिला मन्द आच पर शर्बत की १½ तारी चासनी तैयार कर ले। मात्रा—५ तोला को १० या १५ तोला जल मे मिला सेवन करे। यह दिल, दिमाग तथा यकृत को लाभकारी है। खुश्की व प्यास को कम करता है।

(११) खमीरा बादाम[1]—इसकी छिलकारहित १० तोला गिरी को गोदुग्ध २० तोला मे अच्छी तरह पीस व ½ सेर मिश्री मिला, कलईदार पात्र मे मन्द आच पर पकावे। गाढा हो जाने पर, नीचे उतार किसी साफ चौडे पात्र मे डालकर खूब अच्छी तरह घोटकर श्वेत रग का अच्छी तरह गाढा हो जाने पर उसमे १५ नग चादी के वर्क तथा १ तोला छोटी इलायची के बीज महीन पीसकर मिला देवे। ठण्डा हो जाने पर चीनी मिट्टी के पात्र या डिब्बे मे भर सुरक्षित रक्खें। मात्रा २ से ४ तोला तक प्रात लेने से मस्तिष्क की निर्बलता दूर होकर स्मरणशक्ति बढती है। थकावट दूर होती एव चित्त प्रसन्न रहता है।

—सकलित

(१२) हरीरा बादाम—छिली हुई गिरी २० नग, खशखश १ तोला और गेंहू का आटा २ तोला इन सबको जल मे घोट छानकर उसमे घृत मिलाकर पकावे। साधारण पतला गाढा हो जाने पर, नीचे उतारकर खाड़ मिलाकर घूट-घूट थोडा थोडा पीवें या चाटें। इससे मस्तिष्क मे तरावट आती है तथा खासी, जुखाम, नजला आदि मे भी लाभकारी है। यह शरीर को मोटा, ताजा, फुर्तीला बनाता है।

(१३) सीरा बादाम—इसकी छिली हुई १० गिरियो के साथ, छोटी इलायची १० दाने, सौफ २ माशा तथा

---

[1] यह एक प्रकार का शर्बत का घन पाक है। शर्बत का पाक पतला होता है, और खमीरे का पाक घनकर के घोट दिया जाता है जिससे यह श्वेत रग प्राय होजाता है। शर्बत का पाक पतला होने से उसके खराब होने की सम्भावना रहती है। किंतु यह घन पाक होने से अधिक समय तक बिगडता नही, तथा रग और स्वाद मे भी शर्बत की अपेक्षा उत्तम होता है।

मुनक्का ५ दाने सब को जल के साथ अच्छी तरह घोट छानकर उसमे केवडे की सुगन्धी तथा मिश्री मिलाकर पीवे। इससे मस्तिष्क शक्तिशाली होता, प्यास एव गर्मी की शाति होती है।

दूध बादाम—इसकी १० गिरी को, रात्रि के समय जल मिला, कोरी मटकी में भिगो, प्रात छिलका दूर कर थोडे दूध के साथ खूब घोटें। मक्खन जैसा कोमल होजाने पर ½ सेर गाय का दूध मिला, मन्द आच पर पकावें २–३ उबाल आ जाने पर उतार कर थोडी मिश्री मिलाकर दो पात्रों में खूब भली भाति धार बाधकर लोट पोट करें। खूब झाग उठने पर ठण्डा होने पर पीवें। इस प्रयोग मे मिश्री के स्थान मे दूध के ठण्डा हो जाने पर कोई कोई इच्छानुसार छोटी मक्खी का उत्तम शहद मिलाते है। यह पीने मे अति स्वादिष्ट एव कोमल से कोमल प्रकृति वालो के लिये भी सेवनीय है। इस से देह के समस्त अवयवो को बल मिलता है। शीतकाल मे दालचीनी का महीन चूर्ण १ से २ माशा तक फाक कर ऊपर से यह दूध पीने से बहुत शीघ्र चमत्कारी लाभ होता है।

यह दूध दिमागी शक्ति एव स्मरण शक्ति को बढाता है। काम करते समय दिमाग मे थकावट नही प्रतीत होती है। शरीर मोटा ताजा, तथा फुर्तीला होता है।

नोट—बादाम से एक ऐसा दूध प्रस्तुत होता है जो गोदुग्ध के समान गुणकारी होता है। गिरी को आध घटे तक जल मे भिगोकर हाथ से रगडकर छिलको को दूरकर पीसकर जल मे मिला वस्त्र से छान लेवे। यह देखने व गुण में गोदुग्ध जैसा ही होता है। इसका शर्बत आदि कई प्रकार से व्यवहार किया जाता है। इस बादाम के दूध को थोडा गरम कर उसमे थोडा दही का जामन देने से वह दही के जैसा ही जम जाता है। तथा बहुत स्वादिष्ट एव पुष्टिकर होता है।

(१५) घृत बादाम—इसकी छिलकारहित गिरी, नारियल की गिरी ५ ५ तोला, खसखस व चारो मगज ७-७ तोला, खरबूजे की गिरी ६ माशा, चिरौंजी ६ माशा तथा पिस्ता ६ तोला इन सबको कूट पीस कर रख ले। फिर घृत १ सेर को आग पर लाल हो जाने तक गर्म करे तथा उक्त मिश्रण को उसमें डाल दें। जब घृत की लाली कुछ कुछ कालिमायुक्त हो जावे, तब नीचे उतार कर, छानकर रख लेवे। इस घृत को १ तोला तक की मात्रा में गर्म दूध मे मिला सेवन करने तथा प्रात. नाक सिर और तलुवो पर मालिश करने से मस्तिष्क की निर्बलता, खुश्की एव पीडा आदि विकार दूर होते तथा नेत्र ज्योति बढती है। अधिक मानसिक कार्य करने वालो के लिये यह उत्कृष्ट पौष्टिक, बलवर्द्धक योग है। उक्त घृत को छानने के बाद जो छूछ निकले उसमे भुना हुआ आटा व खाड मिलाकर पजीरी बना ले। प्रात नाश्ते के लिये उत्तम है।

—सकलित।

(१६) हलुवा बादाम—इसकी छिली हुई गिरी २० तोला, चिलगोजा की गिरी, मीठे कद्दू की गिरी, खसखस व चिरोजी प्रत्येक ५ तोला सबको पीसकर १½ सेर शक्कर की चाशनी मे मिलाकर पश्चात् थोडी इत्र गुलाब की बूदें मिला परात मे फैलाकर २० तोला खाड उसके ऊपर बुरकाकर टुकडे करके रख लेवे। मात्रा २-३ तोला गरम दूध के साथ लेवे। दिल दिमाग के लिए बलवर्धक है। वीर्यप्रद वाजीकरण है, शरीर को दृढ बनाता है।

हलुवा न० १—छिलकारहित १० तोला गिरी को महीन पीसकर २० तोला मिश्री की चासनी मे डालकर उसमे ५ तोला गरम घृत मिलाकर चलावें। फिर नीचे उतार कर उसमें १-२ रत्ती इलायची पीसकर मिला दें। यदि चादी के २-४ वर्क भी उसमें डाल दिये जावें तो और भी उत्तम है। इसके शीत काल में अपने बलानुसार सेवन से बल वीर्य की वृद्धि होती है। —सकलित

(१७) माजून बादाम—इसकी गिरी के साथ फिन्दक की गिरी, चिलगोजा, अखरोट, कद्दू, काहू इनकी गिरी, अफीम, भाग प्रत्येक ६ माशा, जायफल, जावित्री ४-४ माशा, कस्तूरी व अम्बर ६ ६ रत्ती सबको विधिवत कूट छानकर, दूनी खाड की चाशनी मे मिलाकर रखें।

२ रत्ती से १ माशा तक की मात्रा मे रात्रि के समय शयन के समय से १ घण्टा पूर्व सेवन करें। वीर्य-स्तम्भक है, प्रमेह को दूर करता है।

माजून न० २—इसकी गिरी ३५ माशा चिल गोजा

की गिरी १०½ माशा, पिस्ता १७½ माशा तथा खाड ७ तोला ६ माशा कूट छानकर यथाविधि माजून तैयार कर लेवे। मात्रा—६ माशा से १ तोला तक। कफज कास मे उत्तम है। —यू० चि० सा०।

[१८] मुरब्बा बादाम—इसकी गिरी आवश्यकतानुसार लेकर चूने के जल मे १-२ दिन भिगो रखें। फिर साफ जल से धोकर कपडे से भलीभाति साफ पोंछ कर जल मिश्रित शहद मे डालकर आग पर उबालकर नीचे उतार, ३ दिन के बाद उत्तम शहद मे डालकर हल्का सा जोश देकर, ठडा कर काच की बरनी मे रख दे। मात्रा १ तोला। यह दिल दिमाग को शक्तिप्रद एव मानसिक श्रम करने वालो को विशेष गुणकारी है। यह खासी और फुफ्फुस एव कठ की खरखराहट मे लाभप्रद है।

—यू० चि० सा०।

[१९] हब्बा [बटी] बादाम—मीठे बादाम की गिरी छिली हुई, कडुवे बादाम की गिरी [छिली तथा भुनी हुई], अलसी बीज, चिलगोजाबीज २-२ तोला, अफीम आलूबुखारा की गोद [अथवा बबूल का गोद] ईरसा और मुलैठी का सत [रुब्बेसूस] १-१ तोला तथा मिश्री २ तोला सबको कूटपीसकर सौंफ के पत्र स्वरस मे खरल कर चने जैसी गोलिया बनाले।

२ गोली को अर्क गावजबा १२ तोला, शरबत खसखस २ तोला के साथ प्रयोग करे। खासी के समय १ गोली मुख मे रखकर चूसे। यह फुफ्फुस व्रण, जीर्ण कास, स्वरभेद मे लाभप्रद है। कफ नि सारक है।—यू० चि० सा

[२०] उबटन-बादाम—इसकी गिरी २०तोला, मजीठ, हल्दी, छडीला, और बालछड प्रत्येक १½ तोला इन सब का चूर्ण कर रखे। इसे आवश्यकतानुसार जल मे मिला उबटन जैसा बना शरीर तथा चेहरे पर मर्दन कर गरम जल से स्नान करते रहने से शरीर एव चेहरे की काति का निखार होता है। — सकलित।

बादाम देशी (Terminalia Catappa)

हरीतकी कुल (Combretaceae) के ४० से ८० फुट तक ऊचे, सुन्दर इसके वृक्षो की शाखाये चारो ओर को फैली हुई, पत्र—६ से ८ या १२ इञ्च तक लम्बे, २-६ इञ्च चौडे अग्रभाग विस्तृत गोल, निम्न भाग नुकीला, नूतन मुलायम, पत्र रोमश, दोनो ओर चमकीले पीताभ हरित वर्ण के जूने हो जाने पर लाल रग के शीतकाल में पतनशील, पत्र वृन्त—¼-¾ इञ्च लम्बा दोनोओर रस ग्रथियो से युक्त, पुष्प—४ से ८ इञ्च लम्बी कलगी पर पीताभ हरितवर्ण के छोटे-छोटे गोल चक्राकार ५ या ६ पखुडियो वाले धूसर रग के, फल—१-२ इञ्च लम्बे, डिम्बाकृति, कडे, चिपटे दोनो किनारो पर कुछ उभार युक्त, पकने पर गहरे, हरे, उज्ज्वल बैगनी आभा युक्त अथवा बैगनी लाल या श्वेत पीले वर्ण के हो जाते है। भीतर की गिरी छोटी, कही-कही बडी भी होती है। ग्रीष्म काल मे पुष्प तथा शीत काल मे फल आते हैं।

इसके वृक्ष साधारणत भारत मे और ब्रह्मदेश मे सर्वत्र लगाये जाते है, तथा नैसर्गिक भी पैदा होते है। बगाल के प्राय कतिपय स्थानो मे रास्तो के किनारे ये वृक्ष लगाये हुए देखे जाते है।

नोट—कई लोग इसे ही जगली बादाम कहते है। किन्तु वास्तव मे जगली बादाम इससे भिन्न है। आगे 'बादाम-जगली' का प्रकरण देखिये।

नाम—

हि—देशी बादाम, हिन्द बादाम। म०- बगाली बादाम, हिरानी बादाम, नट बादाम, देशी बादाम। गु०—बदाम नीली, देशी बदाम। ब०—बादाम। अ०—इण्डियन आलमण्ड [Indian Almond]। ले०—टर्मिनेलियाकेटेपा।

रासायनिक संगठन—

पत्र और छाल मे टेनिन, तथा छाल की राख में
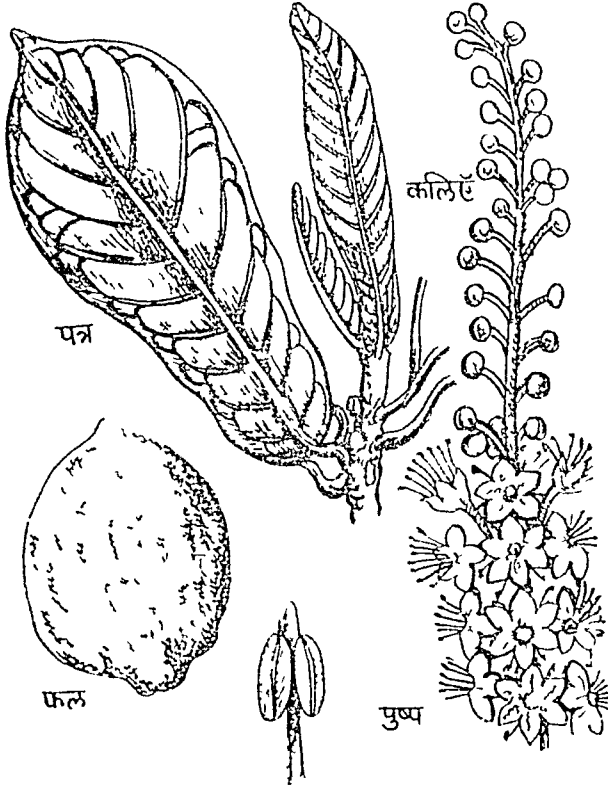
पोटाश और टेनिन की विशेषता होती है । उसकी गिरी मे स्थायी तैल ५०% तक पाया जाता है । वह हल्के पीले रग का, गध रहित उक्त प्रकरणोक्त मीठे बादाम के तेल जैसा ही गुणधर्म युक्त, स्वाद मे उससे भी अच्छा होता है । तथा बहुत दिनो तक खराव नही होता । इस तैल मे स्टिरीन (Steerine) और ओलीन (Oleine) नामक तत्व पाये जाते है ।

प्रयोज्याङ्ग—पत्र, छाल, गिरी और तैल ।

गुणधर्म व प्रयोग—

छाल-ग्राही, सकोचक, मूत्रल व हृद्य है । छाल का क्वाथ सुजाक व प्रदर मे लाभकारी है । इस क्वाथ मे व्रणो को धोने से वे शीघ्र भर जाते है । इसके कुल्ले करने से मुख के छाले दूर होते है । कही-कही जड की छाल अतिसार तथा प्रवाहिका रोग मे सकोचक द्रव्य की तरह उपयोग मे लायी जाती है । छाल से एक प्रकार का काला रग निकलता है, जिसका उपयोग कही-कही दातो को रगने मे किया जाता हे ।

इसके कोमल पत्तो के रस के द्वारा एक मलहम तैयार किया जाता है, जो गीली खुजली, कुष्ठ आदि चर्म-विकारो मे उपयोगी होता हे । पत्र रसका आभ्यतरिक सेवन सिर दर्द तथा उदर शूल मे किया जाता है ।

फल की गिरी कुछ मीठी, कसैली, शीतवीर्य, सग्राही कामोत्तेजक पित्तनाशक, फुफ्फुस शोथ (ब्राकाइटीज) निवारक है । शेष गुणधर्म मीठे बादाम के जैसे ही किंतु इसमे पौष्टिकता अपेक्षाकृत न्यून होती है ।

गिरी का तैल पौष्टिक है । इसकी मालिश से शरीर की काति बढती तथा केशो की मजबूती होती है । शेष गुणधर्म मीठे बादाम के तैल के समान है ।

बादाम जंगली (Canarium Commune)

गुग्गुल कुल (Burseraceae) के जावा, तथा मलाया आर्चिपिलेगो देश के ये छोटी जाति के जगली बादाम के वृक्ष भारत के दक्षिणी प्रान्तो मे विशेष लगाये जाते है । जावा देश मे इसे बादामी कहते हैं ।

नाम—

हि०—जगली बादाम । बादाम बर्वटी । म०—जगली बदाम । अ ०—जावा आमण्ड ट्री [Java almond tree] ले —केनेरियम काम्युन ।

रासायनिक संगठन—

इसके फल एव तैल मे बेइन [Brein] नामक तत्व ६०%, एक एमिरिन [Amyrin] नामक राल जैसा पदार्थ २५%, तथा ब्रिआईडिन (Bryoidin) व एलेमिक एसिड [Elemic acid] पाये जाते है । इसके प्रभावशाली उडनशील तैल मे एनेथाल [Anethal] नामक तत्व होता हे । यत्रो से दबाकर निकाला गया इसका स्थायी तैल आधा जमा हुआ सा होता है जो खानेमे स्वादिष्टहोता है ।
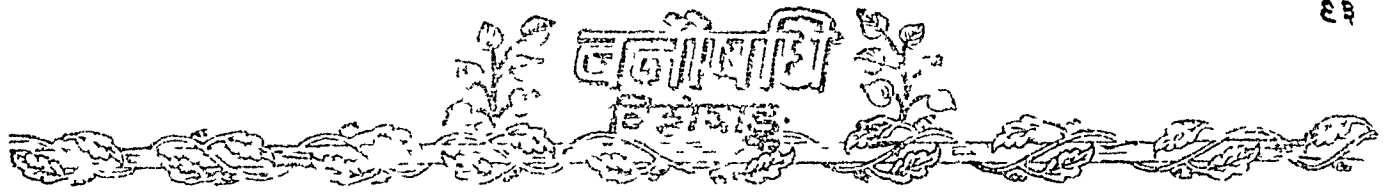
गुणधर्म व प्रयोग–

फल की गिरी मृदुकर, उत्तेजक, मृदुरेचक व कफ निःसारक है।

तैल–मधुर, रोचक, मृदुकर है। यह खाने के कई पदार्थो के बनाने मे उपयोगी है तथा पूयुक्त व्रण, सुजाक आदि मे भी इसका प्रयोग किया जाता है।

इस वृक्ष की छाल से जो एक प्रकार का स्वच्छ निर्मल तैल विपुल प्रमाण मे, टर्पेन्टाईन जैसी चरपरी गध वाला निकलता है, वह जमाने पर मक्खन जैसा हो जाता है। इसका मलहम बनाकर शिथिल व्रणो पर लगाते हैं।

इस वृक्ष की जड का कन्द उत्तेजक, स्वेदल तथा रक्तस्राव निवारक है। इसका विशेष आभ्यन्तर प्रयोग जीर्ण फुफ्फुस शोथ, यकृत विकार, पीलिया, मस्तक शूल, तथा मूत्राशय के शोथ मे किया जाता है। इसका बाह्य प्रयोग राई की पुल्टिस के साथ यकृत विकार स्नायुशूल तथा सधि वात मे किया जाता है।

इसके वृक्ष का गोंद उत्तेजक, दाहक, त्वचा पर छाले या फफोले उठाने वाला होता है। इस गोद का मलहम या लेप बनाकर शिथिल जीर्ण व्रणो पर लगाया जाता है।

बादावर्द (Volutarella Divaricata)

भृगराज कुल (compositae) कटकयुक्त गोखरू के क्षुप जैसा किंतु श्वेत वर्ण का यह ब्रह्मदण्डी नामक वनौषधि का ही एक भेद विशेष है। ब्रह्म दण्डी का क्षुप खडा हुआ होता है किन्तु इसका क्षुप बहुशाखी, भूमिपर प्रसरणशील, सर्वाङ्ग सूक्ष्म रोमश, शाखा-चौपहली या गोल पतली, रेखायुक्त, खोखली, श्वेत वर्ण की सर्पाकार मुडी हुई, पत्र—ब्रह्मदण्डी के पत्र जैसे किन्तु रोमश, पुष्प—गुच्छो मे नीलाभ श्वेत वर्ण के ब्रह्मदण्डी के पुष्प जैसे किंतु कटक युक्त, फल–गुच्छो मे, गोखरु जैसे कटीले किंतु भीतर एक रुई जैसे पदार्थ से युक्त, जो फल के टूटने पर रुई जैसा ही हवा मे उडता है। बीज–कुसुम या कुटज के बीज जैसे, किंतु कुछ गोल तथा स्वाद मे कडवे होते हे।

इसके क्षुप मैसूर तथा दक्षिण भारत के कई प्रान्तो मे और उत्तर पश्चिम हिमाचल प्रदेशो में ३ हजार फुट की ऊचाई पर विशेष पाये जाते हैं। मुस्लिम काल से ही इसका इधर आयात पर्शिया आदि देशो से हो रहा है बाजारो मे इस क्षुप के शुष्क टुकडे बादावर्द नाम से बिकते है।

यह यूनानी वैद्यक की एक खास औषधि है।

नाम–

सं–भूदण्डी। हि–बादावर्द, गुले बदवर्द, सकाई,

बादावर्द
CARDUS NUTANS LINN

कछारि, टिसो। गु॰—भोयदन्डी। अ—व्याक थिसल (Bank Thistle)। ले—वाल्युटेरेला डायवरिकेटा, कारडुसस रामोसम (Gurduus Ramosus) ट्रायकोलेप्सिस प्रोकम्बेन्स (Tricholepsis procumbens)।

रासायनिक संगठन—

इसमे एक क्षाराभ एक हरिताभ उडन शीलतैल, एक अम्ल राल, वसादि पदार्थ पाये जाते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—पचाङ्ग, बीज।

गुण धर्म व प्रयोग--

पौष्टिक, मृदुरेचक, रक्तस्तम्भन, वेदनास्थापक, निरोध निवारक, किंचित् पिच्छिल, ज्वरघ्न (विशेपत कफज जीर्ण ज्वर मे उपयोगी), रक्तष्ठीवन, यकृच्छूल, यकृदावरोध जीर्णातिसारादि मे प्रयुक्त होता है।

बादावर्द

VOLUTARELLA DIVARICATTA BENTH.

यूनानी मतानुसार यह पहले दर्जे मे सर्द व खुश्क है। इसके गुणधर्म धमासे के गुणधर्म से मिलते जुलते है। यह सूजन को बिखेरता, रक्तस्राव को बन्द करता है। यह थोडा काबिज भी है। इसकी जड का लेप कफ की सूजन को बिखेर देता है। इसके ९ माशा बीजो को खाने से धर्नुवात, खासी व कमर का दर्द दूर होता है। इसकी जड और पत्ती के क्वाथ के सेवन से अर्धाङ्ग मे लाभ होता है तथा इस क्वाथ के कुल्ले करने से दातो का दर्द व मसूढो की सूजन मिटती है। इस क्वाथ के पीने से कफ के साथ खून आना बन्द हो जाता है। यह आमाशय एवं यकृत की कमजोरी को दूर कर मल की गठानो को दस्त की राह निकाल देता है। इसके पत्तो का शराब मे क्वाथ करके पीने से निमोनिया और गृध्रसी मे लाभ होता है। आमाशय के विकार से होने वाला अतिसार इसकी जड व पत्तो के सेवन से दूर हो जाता है। रुका हुआ पेशाव तथा मासिक धर्म भी इससे खुल जाता है। इसके निरतर सेवन से पथरी गल जाती है। जलोदर व पीलिया मे भी यह मुफीद है। कफ के पुराने ज्वर को दूर करने की इसमे विशेप शक्ति है। यदि आमाशय मे कमजोरी आजावे अथवा आमाशय मे गर्मी पैदा होकर ज्वर आजाय तो ऐसे ज्वर के निकालने मे बादावर्द एक उत्तम वस्तु है। साप और विच्छू के विष पर इसको चवाकर लगाने से लाभ होता है। —व० च०

इसके पौधो को घर मे रखने से सर्पादि विषैले जन्तु भाग जाते है। बिच्छू के दश पर इसके बीजो का लेप करते हैं।

नोट—मात्रा—पत्र चूर्ण ४॥ से ५॥ माशा तक। पत्र रस ३॥ माशा तक। जड १७॥ माशा तक। बीज ९ माशा तक। अधिक मात्रा मे यह फुपफुस और मस्तिष्क के लिए हानिकर है।

हानिनिवारक—अफसतीन और तुख्म काहू।

प्रतिनिधि—शाहतरा (पित्तपापडा) व धमासा या चिरायता है।

बादियान खताई (Illicium Verum)

चम्पक कुल (Magnoliaceae) के सदैव हरे भरे रहने वाले, प्राय सर्वाङ्ग मे सौंफ(अनीसून) जैसी सुगन्ध-युक्त तथा स्वाद वाले इस छोटे झाड़ीदार वृक्ष के पत्र-अखण्ड, निर्मल, चिह्नयुक्त, पुष्प—एकाकी या गुच्छो मे पीले रङ्ग के, फल या डोडी—इस वृक्ष पर ६ वर्ष बाद दबी हुई सी काले रग की डोडिया आती है। प्रत्येक फल या डोडी मे ७—८ परदे होते है। ये फल स्वाद मे मधुर व तीक्ष्ण होते है। फल के परदो के भीतर इसके बीज दबे हुए, गोल, कुछ कटे किनारे के, तारो की आकृति के चमकदार, लाल या पीले रग के कडे छिलकेदार होते है। फल तथा बीजो मे सौफ जैसी हल्की सुगन्ध आती है। स्वाद मे भी ये सौफ के समान होने से इसे बादियान खताई कहते हैं। सौफ का फारसी नाम बादियान है।

इसका मूल निवासस्थान कोचीन-चायना (चीन देश का दक्षिणी भाग) व टार्गकिंग तथा जापान है। उधर से ही इसके फलो का आयात होता है। इस जाति के ये वृक्ष जिनके फलो से व्यापारोपयोगी एव व्यवहारोपयोगी तेल की प्राप्ति होती है, इधर पैदा नही होते। एक जाति का बादियान खताई जिसका Illicium Griffithii लेटिन नाम है इधर मद्रास की ओर बोया तो जाता है किंतु उक्त प्रकार के तेल की दृष्टि से वह निरर्थक है।

नाम—

हि०—बादियान खताई, अनासफल। म , गु ,—बादियान, अनसफल। ब —अनसफल। अ —स्टार एनिसी (Star Anise)। ले.—इलिसियम व्हेरम, इलिसियम एनिसेटम (Illicium Anisatum)।

रासायनिक संगठन—

बाष्पयंत्र द्वारा इसके ताजे बीजो से १॥-२॥%तथा शुष्क बीजो से ८.९ % (या लगभग ४ से ५ %) एक सुगंधित उडनशील तेल तथा शर्करा, एक तिक्त पदार्थ तथा न्यूनाधिक प्रमाण मे टेनिन पाया जाता है। इसके तेल मे उत्तेजक कफघ्न द्रव्य सेपोनिन (Saponin) नामक होता है।
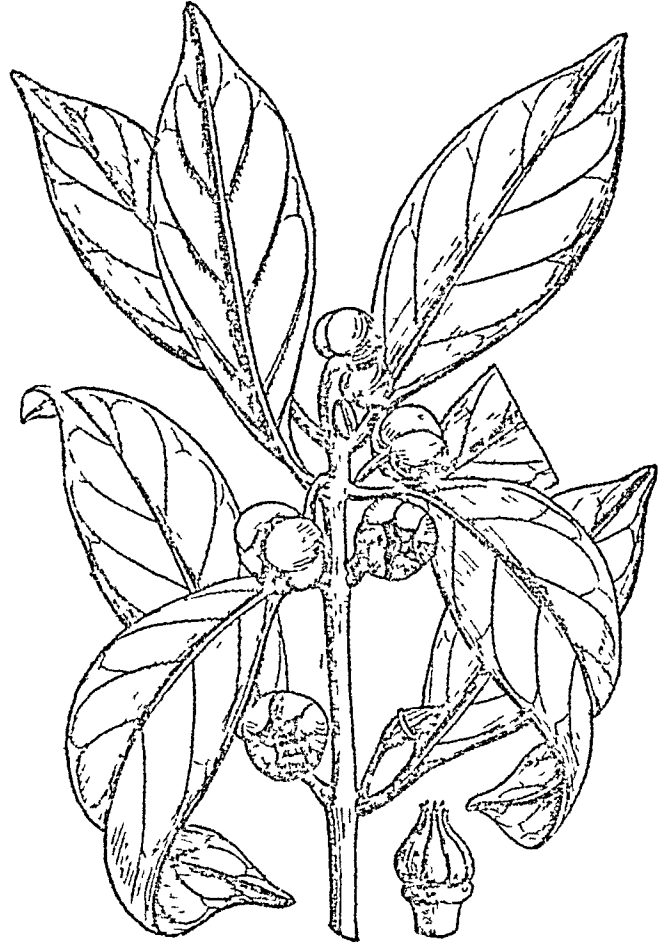
बादियान खताई
ILLICIUM VERUM HOOK

प्रयोज्यांग—फल व तेल।

गुण धर्म व प्रयोग—

फल- मधुर, दीपन, पाचन, उत्तेजक, शूलहर, उदर-वातहर, कफघ्न, मूत्रल, सारक है तथा अपचन, अग्निमांद्य, ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, आध्मान, जुकाम, खासी आदि विकारो मे उपयोगी है। यह बडी मात्रा मे वामक तथा मूर्च्छाकारक है। शाकाहारी लोगो के अजीर्ण व कुपचन मे फलो का चूर्ण लाभकारी है।

पाचन संस्थान पर यह विशेष प्रभावकारी है। आमाशय एव पक्वाशय के कार्य को इससे पर्याप्त उत्ते-

जना प्राप्त होती है। अग्निमांद्य, अजीर्ण तथा अन्नद्रव एवं परिणामशूल को यह शांत करता है। आध्मान, विबन्ध तथा अन्य अवरोधजन्य व्याधियों में इसका फांट विशेष लाभकारी होता है। इसके प्रयोग से वृक्कों को भी उत्तेजना प्राप्त होती है तथा मूत्र में भी सफाई आती है।

यह बालकों के लिये भी हितावह है, आध्मान, अतिसार, प्रवाहिका तथा नूतन प्रतिश्याय में दिया जाता है। कफ कास पीडितों को यह फल हितकारक है।

इसका फांट ही प्रायः उक्त सब विकारों पर दिया जाता है। बालकों के लिए इसकी मात्रा ४ माशा तक है। चाय के साथ इसका फांट मेदोरोग, मरोडयुक्त आंत्र विकार तथा आध्मान में देते हैं। चाय में फलों का चूर्ण मिलाकर पिलाने से मूत्रल असर होता है।

तेल—इसका तैल कृमिघ्न एवं कफघ्न है। अन्य ओषधियों के साथ दिया जाता है। बालकों के उदर शूल निवारणार्थ उदर पर इसकी मालिश की जाती है। गठिया, गठिवात तथा कर्ण पीडा पर तेल की मालिश से लाभ होता है।

अर्द्धांगवात तथा अर्दित पर—बादियान खताई ६ माशा, सौंफ की जड १ तोला, सोया बीज व अजवायन ३-३ माशा, जटामांसी ४ माशा, व कासनी की जड़ १ तोला इन सबको कूट पीसकर गुलकंद २ तोला मिलाकर ३० तोला जल में क्वाथ कर यथायोग्य मात्रा में सेवन करावें।
—ख. नुलगुर्बा

नोट—मात्रा—२ से ८ रत्ती, भुने हुये बीज अधिक से अधिक ५ माशा तक। तेल आधा से २ या ३ बूंद बताशे में या कफघ्न क्वाथ में।

अधिक मात्रा में यह मांसपेशी, स्नायुमण्डल तथा मस्तिष्क के लिए हानिकर है, सिर शूलकारक है।

हानि निवारणार्थ—इसे भून लेने से इसका हानिकारक दोष दूर हो जाता है।

इसका प्रतिनिधि—जावित्री है।

बान—देखें—बलूत। बाबुई तुलसी—देखें—तुलसी।

बाबूना (Matricaria Chamomilla)

भृङ्गराज कुल (Compositae) के इस लगभग ३ फुट ऊंचे क्षुप की अनेक उपशाखायें पतली, कोमल, हरित वर्ण की, पत्र-छोटे, कुछ लम्बे, मृदुरोमश, पतले, पुष्प-सेवती के पुष्प जैसे चक्रदार, एकहरी या दोहरी घुंडियों के आकार के पीताभ श्वेत, तीक्ष्ण सुगंधयुक्त, मनोरम, स्वाद में तिक्त होते हैं। पुष्प में ही इसके बीज होते हैं।

इसके क्षुप भारत के उत्तरीय प्रदेशों में विशेषतः गंगा के उत्तरीय मैदानी प्रदेशों में तथा यूरोप व पर्शिया में विशेष स्वयमेव पैदा होते हैं, बोये भी जाते हैं।

नोट—भारतीय बाबूना के पुष्प विशेषतः एकहरी घुंडीयुक्त होते हैं। यूरोप में दोहरे श्वेत पुष्पों वाला होता है तथा अब इसी विदेशी बाबूना का ही अधिक प्रचलन हो गया है। बडे-बडे नगरों के बाजारों में प्रायः यही अधिक बिकता है। इसे लेटिन में अन्थेमिस नोबिलिस (Anthemis Nobilis) कहते हैं। यह दोहरे पुष्पों वाला बाबूना अब पंजाब की ओर बोये जाने लगा है। इसके पुष्पों से कुछ कपूर जैसी गंध आने से अंग्रेजी में इसे क्याम्फर प्लांट (Camphorplant) भी कहते हैं।

इजिप्ट देश में श्वेत पुष्पों वाला एक बड़ी जाति का बाबूना होता है। इसे 'कस्फाश' कहते हैं।

'बाबूना गाव' या 'बाबूनए गावचश्म' इसी जाति के हैं। इनका वर्णन आगे के प्रकरण में देखिये।

नाम—

हि. म. गु.—बाबूना सोना मोती। अ.—केमोमाईल फ्लावर (Chamomile flower), केमोमाइल (Camomile)। ले.—मेट्रिकेरिया केमोमिला, अन्थेमिस नोबिलिस (Anthemis Nobilis)।

रासायनिक संगठन—

इसके पुष्प में—एक कुछ नीले रंग का प्रभावशाली उडनशील तेल तथा एजुलीन (Azulene), कुछ ग्लुकोसाईड, एन्थेमीन (Anthemene) १ %, एन्थेमिनिक एसिड, एक तिक्त सत्व, टेनिन, राल आदि पदार्थ, और

बाबूना

MATRICARIA CHAMOMILLA LINN.
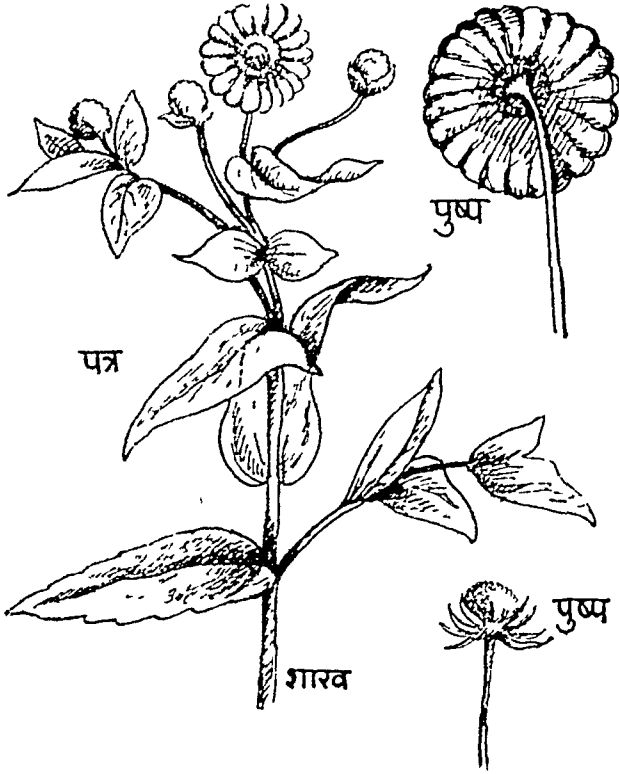
तैल में विशेषत एजेलिक (Angelic) व टिग्लिक (Tiglic) नामक सत्व, अल्कोहल एन्थेमाल (Alcohol anthemol) एवं एन्थेमीन आदि पाये जाते है।

प्रयोज्याग—पुष्प, तैल और जड।

गुण धर्म व प्रयोग--

पुष्प—तीक्ष्ण, उत्तम सुगन्धित, दीपन, पौष्टिक, मूत्रल, आर्तव प्रवर्तक, ससर्गज व्याधिनाशक, दूषित कृमिनाशक, दुर्गन्धहर, दाहयुक्त शोथनाशक, आक्षेप निवारक, आमाशय शैथिल्य नाशक, उत्तेजक, रक्त शोधक, कामोद्दीपक, स्वेदल, शातिदायक तथा मस्तिष्क-शूल, सुजाक, छाती का दर्द, गीली खुजली, नेत्र विकार, अश्मरी, उदरशूल, पीलिया, शुष्क कास, शोथ, मेद रोग, शारीरिक दौर्बल्य, योषापस्मार, अग्निमाद्य, विषम ज्वर, कर्ण रोग, स्नायुशूल, बालको के आक्षेपयुक्त विकार आदि मे प्रयुक्त होता है।

यह मल, पित्त, मूत्र, लाला, पाचक रस तथा कफ आदि शरीर के उत्सर्जक स्रावो को बढाता है, जिससे शरीर का सचित दोष इन्ही स्रावो के साथ निकल जाता है। स्वेदावरोध मूत्राघात, विबन्ध, शुष्क कास एव आन्तरिक अवरोध की स्थिति मे इसके सेवन से लाभ होता है अपरा के निर्हरण के लिये इसके क्वाथ का सेवन कराया जाता है। वृक्कशूल तथा अश्मरी मे भी यह उपयोगी है, अश्मरी को तोडकर निकाल देता है। अवरोधजन्य कामला मे इसका सेवन करने से नियमित रूप से पित्त का उद्रेक हो कर रक्तगत पित्त की अधिकता नष्ट हो जाती है। नेत्रो मे अजन करने से अनन्तवात तथा दृष्टि विकारो को शात करता एव दृष्टिशक्ति की वृद्धि करता है। उदर रोगो मे वातानुलोमन कार्यार्थ इसका उपयोग किया जाता है मस्तिष्क एव स्नायु विकारो मे इसका कुछ समय तक सेवन करते रहने से पर्याप्त सुधार हो जाता है।

—श्री गगासहाय पाडेय ए एम एस आयुर्वेदाचार्य।

फूलो के फाण्ट मे खाद्य पदार्थों को प्रक्षालित कर रखने से वे बिगडते नही है।

(१) शोथ तथा शरीर के किसी भाग के कडेपन के विलीनार्थ इसे उपयुक्त द्रव्यो के साथ लेप बनाकर लगाया जाता है।

शरीर के भीतरी अङ्गो की शोथ निवारणार्थ इसके पुष्प, मुण्डी, पोदीना शुष्क १–१ तोला तथा मकोय शुष्क २ तोला सबको जौकुट कर ८ गुना जल मे क्वाथ करे। $\frac{1}{3}$ शेष रहने पर छानकर उसमें ३० तोला खाड मिला पकावे। शर्बत की चाशनी होने पर उतार कर शीशी में भर रखे। यह शर्बत बाबूना २ से ४ तोला की मात्रा में सेवन से भीतरी अगो का शोथ को नष्ट करता है।

—यू चि सा

(२) शीत जन्य शिर शूल तथा शरीर की जकडन पर इसका लेप करते है।

(३) नेत्र पीडा मे इसके क्वाथ से नेत्रो का प्रक्षालन करते है। नेत्र के कोने में नामूर हो तो इसे पीसकर लेप करते तथा इसके चूर्ण को उसपर बुरकते हैं।

(४) बधिरता तथा नजला पर—इसे सिरके के साथ औटाकर उसकी वाष्प को कान के भीतर पहुचाते रहने मे नवीन बहरापन दूर होता है।

नजला (प्रेसक या दुष्ट प्रतिश्याय) में—इसे जल में जोश देकर इसके धुवे को ऊपर मस्तिष्क तक पहुचाने से लाभ होता है।

(५) अश्मरी तथा मोच एव शोथ पर—इसके चूर्ण को ३½ माशा की मात्रा मे जल के साथ सेवन कराने से अश्मरी टूट फूट कर निकल जाती है।

मोच तथा शोथ पर इसके क्वाथ का सेंक करते है।

(६) सुखपूर्वक प्रसवार्थ तथा मूत्र आर्तव प्रवर्तनार्थ—इसके क्वाथको टब में भरकर उसमे कटिस्नान कराने से सरलता से प्रसव हो जाता है। अपरादि दूषित रक्त सरलता मे निकलकर गर्भाशय की शुद्धि हो जाती है मूत्रार्तव का प्रवर्तन भी यथास्थित होने लगता है।

जड–इसकी जड फूलो की अपेक्षा अधिक प्रभावकारी है। उक्त प्रयोगो मे फूलो के स्थान मे जड का उपयोग करने से विशेष लाभ होता है।

तैल–इसका तैल (वाष्प यत्र द्वारा निकाला हुआ) उष्ण, रूक्ष, कामोद्दीपक, वेदनास्थापक, वातजन्य शूल नाशक तथा आक्षेपनिवारक हैं।

इस तैल की मालिश–शीतजन्य शोथ, चोट, मोच, कटि शूल, सधिवात, गठिया, गृध्रसी, अण्डकोष की सूजन, कफ जन्य ज्वर आदि मे लाभ होता है। शरीर के अङ्ग पुष्ट होते हैं। इसके शुद्ध तैल के अभाव मे निम्न विधि से तिल तैल द्वारा बनाया हुआ तैल भी उक्त विकारो मे लाभदायक है।

(७) शोथ, पीडा तथा कर्णशूल आदि विकारो पर–

इसके ताजे पुष्प १२ तोला को तिल तैल ४० तोला मे डालकर पात्र का मुख बन्द कर धूप मे रख दे, ४० दिन बाद छानकर काम मे लावे। यदि शीघ्र तैयार करना हो तो पुष्पो को रात्रि के समय जल मे भिगो दें। प्रातः पकावे, चतुर्थांश शेष रहने पर उसमे तिल तैल मिलाकर पुन पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर उतार कर ठण्डा हो जाने के बाद छानकर काम में लावे।

यह तेल शोथनाशक, पीडाशामक तथा कर्णशूल में लाभप्रद है। इसे कुछ गरम कर २-४ बूदे कान में डालते रहने से कान का दर्द दूर होता है। कुछ दिनो तक इस प्रकार कान मे डालते रहने से बधिरता भी दूर होती है।
—यू० चि० सा०

(८) कामशक्ति वर्धनार्थ—इसके विशुद्ध तैल की २–४ बूदें बताशो मे डालकर प्रतिदिन सेवन से कुछ दिनो में यथेष्ट लाभ होता है।

नोट–मात्रा–पुष्प की मात्रा १ से ५ माशा तक। जड की मात्रा १ से ३ माशा तक। घनसत्व १ से ५ रत्ती। प्रवाही सत्व ३० से ६० बूद। तैल १ से ३ बूद।

इसका अधिक सेवन सिर, कठ तथा शरीर के भीतरी अङ्गो के लिये हानिकर है। हानि निवारक शहद, शर्बत अनार, नीलोफर, कमल कन्द है।

प्रतिनिधि—बिरजासिफ और नाखूना है। तैल का हानि निवारक रोगन नीलोफर है। तैल का प्रतिनिधि मालकागनी का तेल है।

बाबूना गाव (Cotula Anthemoides)

यह उक्त प्रकरणोक्त बाबूना का ही एक भेद विशेष है। इसका फूल गोल तथा पीले रग का, आकार प्रकार मे बाबूना के फूल जैसा ही होता है, किन्तु कुछ बडा व अधिक सगधित होता है। इसके आसपास छोटी व श्वेत वर्ण की पत्तिया होती हैं।

नाम—

हि उर्दू–बाबूना गाव, बाबूना। ले–कोटूला एन्थेमोइड्स

गुण धर्म व प्रयोग–

उष्ण, रूक्ष, इसके गुणधर्मादि बाबूना के जैसे ही है। यह कफ व वात के दोषो को दस्त की राह निकाल देता है।

अर्धाङ्ग वात पर—फूलो को चौगुने जैतून या तिल के तैल में डालकर ४० दिन तक धूप मे रखकर छानकर मालिश करते रहने से लाभ होता है। इस तैल की मालिश से रोमछिद्र खुलकर पसीना आने लगता है।

अनिद्रा, उन्माद तथा अपस्मार (मिरगी) पर—इसके फूलो के साथ, छिले हुए जौ और जल को मिलाकर पकाकर ठडा कर उस जल मे खसखस का तैल मिलाकर रोगी के सिर पर धार बाधकर धीरे-धीरे छोडते रहने से अच्छी नीद आने लगती है। उन्माद तथा अपस्मार मे भी

ताजे पुष्पो को पीसकर लेप करने से लिंगेन्द्रिय, अण्डकोष,जाघ तथा कामशक्ति को बहुत ताकत मिलती है।

इसे दूध के साथ सेवन से वीर्य पुष्ट होता एव शक्ति बढती है।

मात्रा—३ से ६ माशा तक। इसका अधिक सेवन गुर्दा, मसाना, प्लीहा और आमाशय, तथा मस्तिष्क शक्ति के लिये हानिकर है, स्मरणशक्ति कमजोर होती है।

हानि निवारक— गुर्दा व मसाने की हानि पर धनिया, प्लीहा व आमाशय की हानि पर अनीसून व धनिया, मस्तिष्क की हानि पर गुल नीलोफर देवे। —यूनानी ग्रथ से

बावून ए गावचश्म—यह भी उक्त बावूना का एक भेद है। इसके क्षुप बावूना के क्षुप जैसे ही होते हैं। इसके पुष्प बावूना के पुष्प जैसे ही, किन्तु श्वेत तथा मध्य भाग मे पीले, गाय की आख जैसे होने से इसे बावून ए गाव चश्म कहते हैं। गध में अप्रिय, स्वाद में तिक्त होते है।

इसके क्षुप शीतल प्रदेशो में आबादी के समीप खेती की जाने वाली भूमि में पैदा होते है। बगीचो में सुन्दरता के लिये इसे लगाते है।

बाबूना गाव
COTULA ANTHEMOIDES LINN.

इससे लाभ होता है।

इसके फूलो का चूर्ण ६ माशा तक जल के साथ ३० दिन तक सेवन से अपस्मार मे विशेष लाभ होता है। अथवा—इसी प्रकार इसके ७ माशे फूलो को प्रतिदिन २५ रोज तक शराब के साथ सेवन से भी लाभ होता है। इसके सेवन से अर्द्धाङ्गवात (लकवा) मे भी लाभ होता है।

नोट—इसका सेवन शराब के साथ करने से मूत्राशय और आमाशय मे सञ्चित दूषित रक्त निकल जाता है तथा मूत्र खुलकर होने लगता है।

इसके फूलो को पीसकर बत्ती बना योनि मे रखने से मासिक धर्म की रुकावट दूर होती है, तथा ऋतुस्राव खुल कर होने लगता है। गर्भाशय की गाठ मिट जाती हैं।

नाम—

फा—बावून ए गाव चश्म। यू—फर्तानियून। उकहवान। अ.—फेदरफ्यू [Fetherfew]। लें०—मेट्रिकेरिया पार्थिनियम [Matricaria Parthenium]।

इसकी केवल पुष्पित शाखाये औषध में ली जाती हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

दूसरे दर्जे में गरम व खुश्क, प्रमाथी, वातानुलोमन, स्वेदल, शोथ नाशक, मूत्रल तथा आर्तवप्रवर्त्तक है। जलोदर, अग्निमाद्य, आध्मान, वस्ति में सचित रक्त को पिघलाने एव सूजन उतारने के लिए इसका प्रयोग करते हैं। श्वास कास में इसका अवलेह बनाकर चटाते है। मूत्रार्त्तव प्रवर्त्तनार्थ इसके क्वाथ का उपयोग करते है। गर्भाशय या जरायु के कडेपन को दूर करने के लिए इसके क्वाथ से कटिस्नान कराते है।

मात्रा—२ से ५ माशा तक। अधिक मात्रा मे यह शिर शूल जनक एवं व्याकुलताकारक है। हानिनिवारक बाबूना है। —यू० द्र० वि०।

बामबहाटी—देखें—भारंगी में। बायखुंबा—देखें—कटभी व कुंभी।

बाय बिडंग [नं. १] (Embelia Ribes)

हरीतक्यादि वर्ग एव अपने कुल■ [Myrsinaceae] के प्रमुख इस बडी लता एव गुल्मकार क्षुप के काण्ड साधारणत मनुष्य की जांघ जैसे मोटे, शाखाये खुरदरी, अनेक ग्रथियुक्त, छाल ⅕ इन्ची चमकीली, भीतरी काष्ठ धूसर वर्ण का छिद्रयुक्त शाखाओ की टहनिया समीपवर्त्ती वृक्षो का सहारा लेकर उनपर लपटती हुई बढती है। पत्र—अण्डाकार, तीक्ष्णाग्र, २-५ इन्च तक लम्बे ऊपरी भाग मे कुछ चमकीले, निम्न भाग मे चदनिया रग के दोनो ओर सूक्ष्म रोमश, पुष्प—किंचित् हरिताभ श्वेत वर्ण के छोटे छोटे ⅛ इन्ची ५ पखुडीयुक्त टहनियो के अग्रिम भाग मे श्वेत, कोमल लोमावृत, पुकेशर ५, फल—चौथाई इन्च तक गोलाकार पकने पर लालवर्ण के किन्तु शुष्क दशा में काले रग के कुछ झुर्रीदार हो जाते है। फलो में डण्ठल के साथ पाच पट्टो का पुष्प पात्र लगा रहता है, जो अग्रिम भाग में नोकीला होता है। फल के भीतर लाल रंग के आवरण से युक्त १-१ बीज निकलता हैजो स्वाद में चरपरा एव गरम मसाले के समान सुगन्धित होता है। उक्त बीजो के ऊपर जो लाल रग का आवरण होता है उसे ही भ्रमवश कई लोग कबीला (कमीला) मानते है। वास्तव में कमीला उससे भिन्न है। नीचे नोट न० ३ को देखे। बसन्त ऋतु मे पुष्प आते है तथा वर्षा में फल पकते है।

इसके क्षुप मध्य हिमालय से लेकर भारत के पहाडी प्रदेशो में पूर्व एव उत्तर बङ्गाल तथा सिलोन से सिङ्गापुर तक विशेष पाये जाते है।

नोट—(१) चरक के कृमिघ्न, कुष्ठघ्न, तृप्तिघ्न, शिरोविरेचन गणो में एव अनेक प्रयोगो मे तथा सुश्रुत के सुरसादि पिप्पल्यादि गणो मे एव अनेक प्रयोगो मे व रासायनिक करो मे यह लिया गया है।

(२) इसका एक भेद विशेष एम्बेलिया रोबुस्टा (Embelia Robusta) है। इसका वर्णन आगे बायविडङ्ग न० २ के प्रकरण मे देखिए।

(३) ध्यान रहे बायविडङ्ग के ताजे फलो को तोडने पर जो लाल रग का एक प्रकार का आवरण सा होता है उसे कमीला मानना उचित नही है। विडङ्ग यह कमीला का फल नही है। ये दोनो एकदम भिन्न भिन्न है। कमीला का तो मध्यमाकार का वृक्ष होता है तथा बिडङ्ग का वृक्ष नही होता है। इन दोनो का स्पष्टीकरण हम कमीला के सचित्र प्रकरण (भाग २) मे
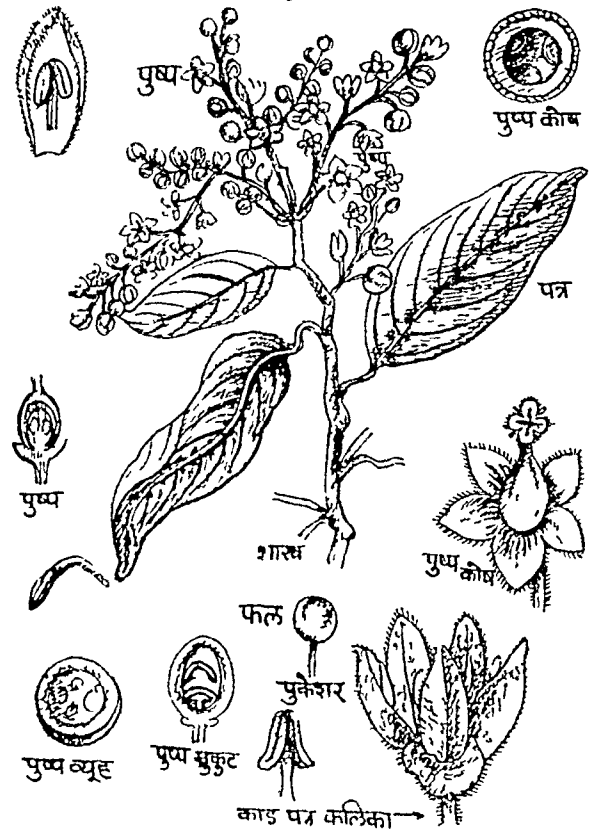
■ इस कुल के क्षुप के पत्र एकान्तर, सादे, पुष्प के वाह्यकोष तथा आभ्यन्तरकोष के दल ४-४, फल-मासल होते है।

कर आये हैं।

(४) विडङ्ग और डीकामाली (नाडीरिङ्ग) इन दोनो को कुछ वैद्यगण एक ही मानते हैं। किन्तु ये एक ही वस्तु नही हैं। यद्यपि दोनो के गुणो मे समानता है। किन्तु शास्त्रो मे तथा व्यवहार मे भी जैसे विडङ्ग का कृमिघ्न गुण स्पष्ट देखने मे आता है वैसा डीकामाली का नही। बिडङ्ग बिशेषत. भीतरी कृमियो का नाशक है तथा डीकामाली विशेषत बाहरी कृमियो को मारने वाली है। भाग ३ मे डीकामाली का प्रकरण देखिए।

(५) बिडग 'त्रिमद' का एक खास द्रव्य है। बायबिडग, नागरमोथा और चित्रक इन तीनो के समूह को त्रिमद शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार कहा जाता है। "बिडगमुस्त चित्रैश्च त्रिमद. परिकीर्तित " –(भै०र०)

नाम–

स०—विडग, कृमिघ्न, चित्रतण्डुल (फलो के भीतर के बीज पर श्वेत चिन्ह होने से) इ०।

हि०—बायबिडग, भाभिरग, राहिणो, बाविरग इ०। म०—वार्वाडग, कारकुनी। अ०—वावडीग। गु०—बिडंग। अ—बाब्रेंग (Babreng)। ले०—एम्बेलियारिबर, एम्बे ग्लेण्डुलीफेरा (Embelia Glandulifera), एम्बे इण्डिका (Embelia Indica)।

सगठन—इसके फलो मे विडगाम्ल एम्बेलिक एसिड (Embelic acid) या एम्बेलिन (Embelin) नामक एक सुनहरे पीले रग का रवेदार पदार्थ २ ५% पाया जाता है। जो मद्यसार, ईथर, क्लोरोफार्म तथा बेंजीन मे घुलनशील और जल मे अघुलनशील है। इसके अतिरिक्त अल्प मात्रा मे एक क्रिस्टेम्बिन (Christembine) नामक क्षाराभ तथा एक उड़नशील तेल, एक स्थिर तेल, रजक द्रव्य, टेनिन एव राल सदृश पदार्थ पाये जाते हैं।

प्रयोज्याग—फल, पत्र तथा जड की छाल।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, रूक्ष, तीक्ष्ण, कटु, उष्णवीर्य कटुविपाक, कफवातशामक, दीपन, पाचन, रोचक, अनुलोमन, रक्तशोधक, श्रेष्ठकृमिघ्न, मूत्रल (मूत्र की अम्लता वर्धक) जन्तुघ्न कुष्ठघ्न, शिरोविरेचन, वर्ण्य, मस्तिष्क एव नाडियो के लिये बल्य, तथा मन्दाग्नि, अरुचि, भ्रांति, आध्मान, शूल, उदररोग, प्लीहा, अजीर्ण, कास, श्वास, हृद्रोग, आम, मलस्तभ, मेदरोग, प्रमेह, विषविकार आदि मे उपयोगी है।

इसकी क्रिया अन्नवह स्रोतो पर प्रभावशाली होती है। यह अपने कटुरस एव उष्णवीर्य द्वारा अग्नि को प्रदीप्त करता एव आहार को पचाता है। साथ ही साथ यह रस, रक्त, मास व मूत्र स्थानो की अग्नि को भी बढाता है एव इसके इसी क्रिया द्वारा आन्त्रान्तर्गत कृमियो का नाश किया जाता है। सटोनिन द्वारा जैसे गोल कृमियो का बहिर्निष्कासन होता है वैसा इसके द्वारा स्पष्टतया नही होता। इसकी क्रिया कृमियो पर अप्रत्यक्ष रीति से होती है। सटोनिन के द्वारा कृमि निष्क्रिय एव बेहोश हो जाते है तथा सारक औषधि देने पर प्रत्यक्ष मल के साथ बाहर निकले हुए देखे जाते है। वैसे इसके प्रयोग से बाहर निकले हुए नही देखे जाते। तथापि कृमि तथा कृमि विष का नाश करना यह इसका महत्वपूर्ण कार्य है।

कृमियो के साथ ही साथ मल पर भी यह सुधारपूर्ण कार्य करता है। पाचन क्रिया को बढाकर मल को आम रहित कर देता है। एव फिर स्वाभाविक ही मल पर पित्त का पीतवर्ण चढ जाता है। वैसे ही मूत्र की आमावस्था का श्वेत, गदले वर्ण का सुधार होकर उसका पीला वर्ण हो जाता है। रक्त, धातु तथा रजक पित्त मे सुधार हो जाने से मल का रग यथास्थिति सुधर जाता हैं। साथ ही शरीर का वर्ण भी सुधर जाता है।

सुश्रुत ने इसके मानसिक दोषजन्य उपद्रवो की शाति के कार्य की तथा इसके उत्तम रसायन कार्य की विशेष प्रशसा की है।

डा० देसाई के मतानुसार "इसके सेवन से मूत्र का रग लाल होता, तथा उसकी अम्लता बढ़ती है। इसकी क्रिया शरीर की सब ग्रथियो पर एव प्रधान रूप से रस ग्रथि पर होती है। यह शरीर की समस्त जीवन विनिमय

का प्रतिनिधि ही नही, प्रत्युन् उसकी अपेक्षा उत्तम है यह मेलफर्न के समान उदर मे ऐंठन शूलादि नही करता।

(१) कृमि पर—स्फीत, गण्डूपद तथा तन्तु कृमियो के नाशार्थ १ तोला इसका चूर्ण खाली पेट देकर बाद मे जुलाब (विशेषत अण्डी तेल का) देते हैं। कृमि नष्ट होकर मल मार्ग से निकल जाते है। इसके बाद कुछ दिनो तक थोड़ी मात्रा मे इसका चूण इन्द्रयव, पलासबीज नीम की छाल आदि के साथ सेवन कराते है।

स्फीति कृमि [टेपवर्म] पर भी उत्तम कार्य करता है। बच्चो को ४ माशा तक तथा बडो को ८ माशा तक इसका चूण मधु या दही के साथ प्रात खिलाकर ४ घण्टे बाद अण्डी तेल का या कोई अन्य विरेचन देना चाहिये। अथवा प्रथम कोष्ठ शुद्धि के पश्चात रात्रि मे इसका चूर्ण मठे के साथ देकर दूसरे दिन प्रात. विरेचन देवे। इससे मरे हुए कृमि निकल जाते है। इसका कृमिघ्न गुण इसके एम्बेलिक एसिड के कारण है। इसका लवण अमोनियम एम्बेलेट [Ammonium embelate]१½ से ३ रत्ती की मात्रा मे मधु के साथ देने से भी उत्तम लाभ होता है। इसके पूर्व तथा पश्चात अण्डी तेल से विरेचन कराना चाहिये।

अथवा उक्त कृमियो के नाशार्थ इसके चूर्ण को अनार की जड के क्वाथ(१तोला तक क्वाथ)के साथ पिलादे। यह क्वाथ ४-४ घण्टे से पिलावे।

अथवा इसके चूर्ण के साथ सौंठ, मिर्च, पिप्पली का चूर्ण मिलाकर चावलो के माड के साथ पीने से कृमि नष्ट होते तथा अग्नि दीप्त होती है। —व० से०

अथवा इसके चूर्ण के साथ सेंधव नमक, कमीला और हरड का चूर्ण मिला, मठे मे अच्छी तरह घोलकर सेवन करावें। सर्व प्रकार के कृमि नष्ट होते हैं। —चक्रदत्त

अथवा बायबिडग, बड़ी हरड, व आमला प्रत्येक ३५

लती हैं। इसी भौमिक काड से एक वर्षायु अनेक पत्तिया निकलती है, द्विपक्षवत सपत्रक पत्र (Bipinnate compound leaves) होती है। इनमे लगभग ४० युग्मपत्रक तथा पुन प्रत्येक पत्रक में २०-३० युग्म प्रपत्रक (pinnules) होते है, प्रत्येक प्रपत्रक के अधस्तल पर ८-१० तक स्पज जैसी छिद्र युक्त सोरिया (Sori) होती है। पर्णवृन्त भूरे रग के होते है।

यह बनस्पति इगलैण्ड, जर्मनी,अमेरिका,फ्रास आदि देशो मे विशेष पैदा होती है। भारत मे भी यह वनस्पति उद्यानो मे लगाई जाती है। किन्तु भारतीय मेलफर्न आकार मे अपेक्षाकृत छोटा होता है।

इस वनस्पति के पर्णमूल एव भौमिक काडो को सितम्बर-अक्टूबर मास मे उखाड कर, साफकर ग्राह्य भाग को सतर्कता पूर्वक शुष्क कर (जिसमे इसका हरा रग बना रहे) सग्रहीत कर लिया जाता है। बाजार मे इसके बेलनाकार टुकडे मिलते है। ये भूरे काले रग के टुकडे गधहीन, स्वाद मे तिक्त, अरुचिकारक एव उत्क्लेश-कारी होते है। विभिन्न प्रकार के स्फीतकृमि [टेप वर्म] पर घातक क्रिया के लिये यह विशिष्टऔपधि मानी जाती है। साधारण मात्रा मे तो कोई अनिष्ट लक्षण नही प्रकट होते का अधिक मात्रा मे देने से आमाशयान्त्र प्रणाली पर क्षोभक प्रभाव होता है, ऐठन, वमन, मिचली आदि उपद्रव होते है।

कृमिघ्न क्रिया के लिये इसका प्रवाही घनसत्व या प्रवाही सत्व केप्सूल में १ से २ ड्राम तक की मात्रा मे बच्चो के लिये १ घूट की मात्रा मे दिया जाता है। अथवा इसे दूध मे मिलाकर भी देते है। यह प्रयोग प्राय प्रात खाली पेट दिया जाता है। इससे कृमि मरजाते है। उनके निहरणार्थ, औपधि सेवन के २-३ घण्टे बाद एक तीव्र विरेचन (रेंडी तेल नही, मैग सल्फ आदि लवण Saline purgative अधिक उपयुक्त होते है।) देना आवश्यक है। आवश्यकतानुसार १ माह बाद पुन यह प्रयोग किया जाता है। ध्यान रहे वृद्ध, दुर्बल, गर्भवती, रक्ताल्पता एव हृदय, वृक्क तथा यकृत के रोगियो का इसका प्रयोग निषिद्ध है।

अन्य भारतीय नामो के अभाव के कारण इसे मेलफर्न ही कहा जाता है। अग्रेजी मे फर्न कहते है सुन्दर महीन पत्रयुक्त छोटे छोटे पौधो को इस विशिष्ट पौधो मे अलैंगिक प्रजनन होने के कारण ही शायद इसे मेल अर्थात् नर फर्न कहते हैं।

माशा, निशोथ (श्वेत) ८ तोला ६ माशा इन सबका चूर्ण कर उसमें चूर्ण से दुगुनी खाड मिलाकर रखें। मात्रा ७ माशा सेवन से उदर के लम्बे तथा छोटे कृमियो का नाश होता है। —यू०चि०सा०

नोट—कृमिनाशार्थ विडगारिष्ट का प्रयोग आगे विशिष्ट योगो मे देखे। ध्यान रहे कृमिनाशार्थ कोई भी प्रयोग देने के पूर्व गुड आदि कोई मधुर वस्तु रोगी को खिला देना ठीक होता है। इससे अन्त्रगत (आतो की दीवारो मे रहने वाले) कृमि आतो से निकल कर (मधुर वस्तु के समास्वादनार्थ) उसके मल मे चिपट जाते हे। तब विडङ्गादि कृमिनाशक औषधि की तीक्ष्णता एव कृमिघ्नता के कारण व्याकुल होकर कई मर जाते है। पश्चात् विरेचन देने मे यथेष्ठ लाभ होता है।

यूका (जू) तथा लिक्षादि अर्थात् लीखआदि बाह्य कृमियो के नाशार्थ इसके बीजो का पतला कल्क बनाकर लेप करते है या इसके तेल का प्रयोग करते है। आगे विशिष्ट योगो मे विडङ्गादि तेल का प्रयोग देखें।

शिरोगत कृमि पर—बायविडग, सज्जीखार, दन्तीमूल व हीग ५-५ तोला सबको एकत्र थोडे जल के साथ पीसकर कल्क कर उसके साथ २ सेर सरसो तेल और ८ सेर गोमूत्र मिला मद आच पर पकावे। मूत्र के जलजाने पर तेल को छान लेवे। इसकी नस्य लेने से शिरोगत कृमि नष्ट होते हैं। —ग०नि०

कृमिजन्य हृद्रोग पर—विडग और कूठ का चूर्ण गोमूत्र के साथ सेवन करने से निम्न मार्ग से कृमि निकल जाते है —ब से

कृमिदन्त पर— इसके चूर्ण की छोटी पोटली गरम जल मे डुबोकर दातो के नीचे दबाकर रात्रि के समय रखें। प्रात देखे उसमे कृमि निकलेंगे। पीडा कम होगी।

(२) बालरोगो पर—बालको के प्राय सर्व रोगो के लिये बायविडग अच्छी औषधि है। सूखारोग, आध्मान, शूल, कुपचन तथा अग्निमाद्यादि मे नित्य नियमित इसके ५-६ दाने दूध मे उबाल छानकर वही दूध पिलाते रहने से बच्चो का स्वास्थ्य ठीक रहता है, सब विकार दूर हो जाते हैं। यदि इसके साथ अनन्तमूल भी दूध में डाल दिया जाय तो अधिक लाभ होता है।

अथवा—जन्म के पश्चात् १ महीने तक प्रतिदिन इसका १ दाना (चूर्ण कर दूध या शहद से), दूसरे महीने मे प्रतिदिन २ २ दाने, तीसरे मास में ३-३ दाने इस प्रकार क्रमश बढाते हुए देते रहने से बालको को कोई भी रोग सहसा नही होने पाता, यदि हुआ भी तो उस रोग का प्रभाव या अनिष्ट परिणाम नही होता।

इसके चूर्ण को शहद के साथ चटाने से बालको का कृमिजन्य कास एव श्वास रोग दूर होता है। हृदयान्तर्गत असाध्य कृमि नष्ट हो जाते हैं। —ब गु.।

बालको के कुकूणक (क्षीरदोषजन्य बाल वर्त्मगत रोग [Ophthalmia in children] और पोथकी (कुकरे, रोहे, कुथुआ (Trachoma Granulor lids) नामक नेत्र रोग पर—बायविडग, हरताल, शुद्ध मनसिल, दारुहल्दी, लाख और गेरू इनके समभाग मिश्रित चूर्ण को काजी मे घोटें, शुष्क हो जाने पर महीन कर रखें। इसे नेत्रो मे लगाने से लाभ होता है। —व० से०।

(३) अग्निमाद्य, शूल, अरुचि, विष्टभ, गुल्म, प्लीहा उदावर्त्त तथा लोहाजीर्ण पर—

अग्निमाद्य पर—(विडगादि मोदक) बाय विडग के चावल (बीज), त्रिकुट, निशोथ, दतीमूल व चित्रक समभाग मिश्रित महीन चूर्ण को समभाग गुड मे मिला ६-६ माशा के मोदक (गोलिया) बना लेवें। इसे प्रात उष्ण जल के साथ सेवन से अग्नि की वृद्धि होती है। तथा त्रिदोषज परिणाम शूल भी नष्ट होता है।—ग० नि०

अथवा—(पानीय भक्तवटी) बायविडग, व कालीमिर्च का चूर्ण एव अभ्रक भस्म १-१ तोला तथा पारद भस्म ½ तोला सबको एक दिन (१२ घटे) काजी में घोट कर १-१ रत्ती की गोलिया बनालें। इसे काजी के साथ सेवन से अग्नि प्रदीप्त होती है। सात्म्य भोजन करे, विशेष अन्न भोजन न करें। सेवन काल मे माडयुक्त चावल का भात खावे। —च० द०।

शूल पर—आमाशय एव पक्वाशय के वातज शूल मे

इसके १ तोला चूर्ण को रात्रि मे सोते समय, माखन निकाले हुए दूध के साथ सेवन कर प्रात अण्डी का तैल पीने से अथवा इसके चूर्ण को तमाखू के साथ मिलाकर, चिलम मे रख धूम्रपान करने मे भी लाभ होता है।

सर्व प्रकार के शूलो पर—शूलान्तक रस—

वायविडग, लोहभस्म, अभ्रक भस्म २-२ तोला, त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, निसोथ प्रत्येक १-१ तोला तथा कज्जली [पारद गधक की] १ तोला सबके महीन चूर्ण को एकत्र मिला, त्रिफला क्वाथ मे खरल कर ३-३ रत्ती की गोलिया बनाले। १-१ गोली प्रात काजी के साथ सेवन से सब प्रकार के शूलो मे लाभ होता है। अम्लपित्त तथा वमन मे भी लाभकारी हे। —भै० र०

ऊपर अग्निमाद्य पर दिया गया विडगादि मोदक शूलनाशक भी है।

अरुचि पर—इसके चूर्ण को शहद के साथ खरल कर गोलिया (छोटे बेर जैसी) बना लेवे। गोली को मुख मे रखने से चिरकालीन अरुचि भी शीघ्र दूर होती है। —व गु०

विष्टम्भ [कब्जी] या मलबद्धता पर—इसके चूर्ण में समभाग अजवायन का चूर्ण मिला, [मात्रा ४ माशा तक] उष्ण जल के साथ सेवन से लाभ होता है। इससे ग्रहणी रोगान्तर्गत विष्टम्भ भी दूर होता है। —बृ. नि र

गुल्म और प्लीहा पर—[बिडङ्गादि क्षार] वायविडग, चित्रक, सोठ, सेंधानमक और वच एकत्र समभाग लेकर एक भाग घृत से मर्दन कर दो सकोरो मे बन्द कर कपड-मिट्टी कर पुट दे दे। या उक्त घृत मर्दित द्रव्यो को मिट्टी के कपाल में डालकर ऊपर उल्टा सकोरा रख चूल्हे में आग कर जला ले। पश्चात् महीन कर २-३ माशा की मात्रा में दूध के साथ सेवन से गुल्म और प्लीहा का नाश होता है। —च० चि० अ० १३।

इस योग मे घृत प्रत्येक द्रव्य के समभाग ही मिलायें। कोई इसमें जौ का सत्तू भी समभाग मिलाते हैं।

उदावर्त्त—इसमें मलमूत्र व वायु का अवरोध होता हे एव उदर मे शूल होता हे।

द्विरुत्तर चूर्ण—वायविडग १६, सज्जीखार ८, वच ४, कूठ २ और हीग १ तोला लेकर चूर्ण बना लेवे। इसे मद्य के साथ [३ माशा तक] लेने से उदावर्त्त नष्ट होताहै। यह गुल्म को भी दूर करता है। —यो० र०

लोहाजीर्ण पर—लोहे के सेवन से होने वाले विकार रूप अजीर्ण मे इसके चूर्ण को अगस्ति [अगस्तिया, हथिया] के स्वरस के साथ मिलाकर चटाने से लोह जीर्ण से उत्पन्न शूल अवश्य ही शीघ्र शान्त होता है, लोह विकार का शमन होता है। —आयुर्वेद प्रकाश

[४] अतिसार शोथ, पाडु हलीमक, कामला, प्रवाहिका व वमन पर—

अतिसार पर—यदि अतिसार के रोगी की अग्नि-दीप्त हो और दोष अधिक हो, तो उसे वायविडग, त्रिफला व पिप्पली के क्वाथ से विरेचन देवे। विशेषत आमातिसार मे यह प्रयोग किया जाता है। —वृ० नि० र०

यदि शोथयुक्त अतिसार हो तो वायविडग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पाठा, इन्द्र जौ और कालीमिच समभाग का चूर्ण बना लेवे। ३-४ माशा की मात्रा में जल के साथ सेवन करे। यह प्रयोग क्वाथ रूप मे भी देते है। —बृ० नि० र०

रक्तातिसार पर—इसके अधभुने बीज ३ माशे को अर्क गुलाब या मिश्री शर्बत से देवें, शीघ्र लाभ होता हे।

बालको के अतिसार पर—विडग, अजमोद और पिप्पली समभाग का चूर्ण [४ रत्ती की मात्रा मे] उष्ण जल के साथ सेवन कराने से लाभ होता है। —यो०र०

शोथ पर—विडग, दतीमूल, कुटकी, निशोथ, चित्रक, देवदारु, त्रिकुट, पिप्पली व त्रिफला १-१ भाग तथा लोह भस्म सबसे दो गुनी लेकर यथाविधि चूर्ण बनावे। इस विडगादि चूर्ण के ३ रत्ती की मात्रा मे दूध के साथ सेवन से शोथ नष्ट होता है। —यो र

अथवा—विडग, अतीस, देवदारु, सोठ, इन्द्र जौ, वच, और कालीमिर्च समभाग चूर्ण कर [१ तोला की मात्रा में] उष्ण जल के साथ सेवन करें। —व० से०

विडगादि लोह—विडग, त्रिफला और त्रिकुट के प्रत्येक द्रव्यो का चूर्ण १-१ भाग तथा लोह भस्म ७ भाग लेकर सबको

एकत्र खरल कर रखें। इसे [२ ३ रत्ती मात्रा मे] पुराने गुड के साथ ७ दिन सेवन करने से शोथ पाण्डु और हलीमक [वात पित्त जन्य पाडु का वह भेद है जिससे रोगी का वर्ण हरा, नीलाभयुक्त पीला हो जाता है।] रोग नाश होता है।

विडग मज्जा चूर्ण १½ से ३ माशा तक अभ्रक भस्म १ रत्ती मिला, सेवन से सर्व प्रकार की सूजन दूर होती है। विशेषत राजयक्ष्मा के रोगी के पैरों का शोथ भी दूर होता है। —अ यो माला

पाण्डु व कामला पर—[विडगादि लोह] विडग, त्रिफला, त्रिकुट व दारुहल्दी का चूर्ण तथा मण्डूर भस्म और लोह भस्म १-१ भाग लेकर एकत्र खरल करे। मात्रा [१ से १½ माशा] घृत व मधु के साथ सेवन करे। पाडु व कामला मे लाभ होता है। —व० से०।

कामला पर—(विडङ्गाद्यवलेह)–विडग, त्रिफला, नागरमोथा, मुलैठी, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी व चित्रक इनका चूर्ण तथा लोह भस्म १-१ भाग, एकत्र खरलकर गुड और खाड ११-११ भाग लेकर खैर के क्वाथ मे चाशनी बना उसमे उक्त खरल किये हुए चूर्ण को मिला, थोडा पकाकर रख लें। इसे यथोचित मात्रा मे घृत व मधु के साथ सेवन से एक वर्ष का जीर्ण कामला भी नष्ट होता है। यह योग पित्तज शोथ एव पाडु का भी नाशक है।

—ग० नि०

कामला व पित्तज विकारो मे विडग चूर्ण को केवल दूध के साथ भी देते है।

प्रवाहिका पर—फल के ऊपर की छाल या इसके चूर्ण को ३ माशा तक साबूदाना और मक्खन मे मिला कर देते है।

जिस प्रवाहिका मे श्वेत आम जाती हो, अधिक पीडा हो उसमे इसके चूर्ण को जल या मधु के साथ सेवन करावें।

वमन पर -विडग, त्रिफला, व सोठ के समभाग चूर्ण को या विडग, नागरमोथा व सोठ के चूर्ण को मधु के साथ सेवन से कफज वमन शान्त होती है। —ग नि

(५) ज्वर, यक्ष्मा तथा वाजीकरणार्थ - ज्वर, विशेषत जीर्ण कफज ज्वर पर—(विडगघृत)–विडग, सचल (काला नमक), चव्य, चित्रक, त्रिकुट, सेंधानमक और जवाखार ५-५ तोला एकत्र पीसकर उस कल्क का घृत व दूध २-२ सेर और जल ८ सेर मे मिला मन्द आग पर पकावें। घी मात्र शेष रहने पर छानकर रखलें। (१ तोले की मात्रा मे) इसके सेवन से लाभ होता है।

—ग नि

यक्ष्मा पर --विडग चूर्ण, शिलाजीत, लोह भस्म और हरड का चूर्ण समभाग एकत्र खरल करें। (१-३ माशा की मात्रा मे) शहद व मधु के साथ पथ्यपूर्वक सेवन से उग्र राजयक्ष्मा भी दूर होती है। —वृ० मा०

अथवा –विडङ्ग के २५ दाने, लहसुन की १ पुथी, नारियल की गिरी ६ माशा इनको दूध मे पका, मिश्री मिला छानकर पिलाते है। तथा हर पाचवें दिन विडग के २५ व १ पुथी लहसुन की बढाते है। लहसुन ५ पुथी से अधिक नही और विडग के दाने २०० से अधिक न करे। इसी क्रम से घटावे। इससे काम श्वास सहित यक्ष्मा सोपद्रव शात हो जाता है। —अ० यो० मा०

वाजीकरणार्थ रसायन के रूप मे—विडग, त्रिफला, पिप्पली और लोह भस्म समभाग लेकर यथाविधि चूर्ण बना रखें। इसे खाड, घी व मधु के साथ सेवन से वृद्धता एव पलित का नाश होता है। —ग० नि०

(६) प्रतिश्याय, कास, नासा रोग तथा सिर पीडा पर—

प्रतिश्याय पर–विडग, सेधानमक, हीग, गूगल, वच, और मनसिल समभाग का चूर्ण बना, नस्य लेने से लाभ होता है। –व० से०।

कास पर—विडग, सेधा नमक, कूठ, कालीमिर्च, पिप्पली, सोठ, भुनीहीग व शुद्ध मनसिल समभाग चूर्णकर (चौथाई से आधी रत्ती मात्रा मे) मधु व घी के साथ सेवन से कास, हिक्का व श्वास नष्ट होते है।

–च म चि अ १८

नोट—विशिष्ट योगो मे--विडगादि चूर्ण न०३ देखे।

नासा रोग—(नाक के रोग नासाकृमि, नासागत अर्बुद, शोथ, शोष, पिडिका, दाह, नासानाह, पाक आदि)
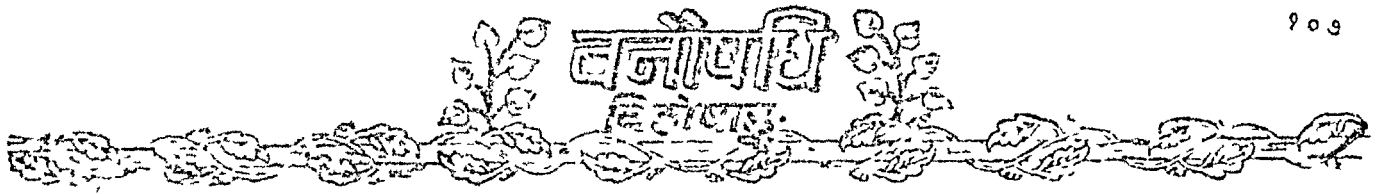
पर—(विडगादि तैल)—विडग, सेधानमक, मुलैठी, देवदारु त्रिकटु प्रत्येक द्रव्य १। तोला लेकर एकत्र थोडे जल के साथ पीसकर कल्क करें तथा दशमूल—उक्त ७ द्रव्यों को २०-२० तोला लेकर जौकुटकर १८ सेर जल में पकावें। ३॥ सेर (चतुर्थांश) शेष रहने पर छानकर उसमें उक्त कल्क व तिल तैल १ सेर ६० तोला मिला कर मंद आग पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रख ले। इसका नस्य लेने से नासिका के विकार दूर होते हैं।
—ग० नि०।

सिर दर्द पर—इसके चूर्ण को गाय के मक्खन के साथ मिलाकर माथे पर लेप करने से लाभ होता है।

यदि अर्धावभेदक (आधा सीसी) आधे सिर का दर्द हो तो विडग और काले तिल समभाग एकत्र पीसकर नस्य लेने से, (अथवा विडग चूर्ण को काले तिल के तैल में मिलाकर नस्य लेने से) लाभ होता है।
—भा प्र तथा व से।

(७) मेदरोग, गण्डमाला, श्लीपद व अर्श पर—
मेदरोग (अत्यन्त मोटापा मेदोवृद्धि (Obesity) पर—(मेदोहर रस)—विडगचूर्ण तथा शुद्ध पारा व गन्धक सम-भागलेकर (पारा गंधक की कज्जली कर उसमें चूर्ण मिलाकर) आक के रस में खरल कर रख लेवें। मात्रा १ से ३ रत्ती तक, शहद के साथ सेवन कर ऊपर से शहद का शर्बत बनाकर पीयें। प्रवृद्ध मेदोरोग नष्ट हो जाता है।
—भा० भै० र०

नोट—इस योग को पथ्य पालनपूर्वक ३ दिन सेवन करे। यदि कुछ लाभ हो तो आगे और कुछ दिनो तक ले।
—सम्पादक

अथवा—विडग, सोंठ, यवक्षार, लोह भस्म, जौ और आंवला समभाग के चूर्ण को ६ रत्ती की मात्रा में शहद के साथ चटाने से स्थूलता नष्ट होती है। पथ्यापथ्य का पालन आवश्यक है।
—भै० र०।

गण्डमाला पर—विडग चूर्ण को शुद्ध गूगल, शुद्ध मैनसिल तथा मृगशृंग भस्म (सब समभाग) को घोटकर रखें (२-३ रत्ती मात्रा) मधु और घी के साथ सेवन करते रहने से धीरे धीरे निश्चित लाभ होता है।
—भा० प्र० नि०

श्लीपद (फील पाव) पर—(विडगादि तैल)—विडग, कालीमिर्च, आक की जड की छाल, सोंठ चित्रक, देवदारु, एलवालुक, पाचो नमक (सेंधा, काला, बिड, सामुद्र व कांच नमक) १ १ तोला सबको एकत्र पीसकर कल्क बनावें। इस कल्क को ६६ तोला (उनाग) तिल तेल में मिला उसमें चार गुना जल मिलाकर मन्द आग पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रखलें। इसके पीने से श्लीपद में लाभ होता है।
—भै० र०

अर्श पर—विडग, तेजपात, नागकेशर, सोंठ, इला यची, नेपाली धनिया (तुम्बरु), धनिया और तिल सम-भाग लेकर क्वाथ करें। इसमें हरड का चूर्ण, गुड तथा घी मिलाकर सेवन से अर्श का नाश होता है। —भै० र०

(७) प्रमेह, कुष्ठ, चर्म विकार तथा व्रण पर—

प्रमेह पर—विडग, हल्दी, मुलैठी, सोंठ व गोखरू समभाग लेकर क्वाथ बनाकर, उसमें मधु मिलाकर सेवन से कफज प्रमेह भी नष्ट होता है।
—यो० र०

अथवा—(विडगादि लौह)—विडग, त्रिफला, नागर-मोथा, पिप्पली, सोंठ, श्वेत जीरा व कालाजीरा प्रत्येक १-१ तोला, तथा लोह भस्म ९ तोला एकत्र खरल कर २ रत्ती की मात्रा में सेवन से प्रमेह एवं सम्पूर्ण मूत्रविकार नष्ट होते हैं।

नोट—लोह भस्म का प्रयोग वृक्क तथा बस्ति के सभी विकारों को शांत करता है। यह योग विशेषकर मूत्र-यंत्र के आभ्यन्तर शोथ को दूर करता है। —भै० र०

कफज प्रमेह हो तो-विडग, शाल वृक्ष की छाल, अर्जुन की छाल, कायफल, कदम्ब वृक्ष की छाल, ताल व असन वृक्ष की छाल समभाग लेकर क्वाथ बनाकर सेवन करावें।
—भै० र

नोट—उक्त ७ द्रव्यों को जौकुटकर २ तोला चूर्ण को ३२ तोला जल में पकावें। चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर प्रात व सायं पिलावें।

कुष्ठ पर—(विडगादि मोदक) विडग, बावची, पिप्पली, वाराहीकन्द, कलिहारी की जड व त्रिफला प्रत्येक द्रव्य समभाग चूर्ण करें सबको एकत्र चूर्ण के समान भाग गुड के साथ घोटकर मोदक (६ ६ माशा के) बना ले। १-१ मोदक जल के साथ सेवन करने से लाभ होता है।
—व० से०

अथवा—विडग, त्रिफला व निशोथ इनका समभाग चूर्ण कर प्रतिदिन प्रात साय गुड के साथ एक मास तक सेवन से सर्व प्रकार के क्षुद्र कुष्ठ नष्ट होते हैं। सतत ६ मास पथ्यापथ्य पूर्वक सेवन से महाकुष्ठो मे भी उपशय दृष्टिगोचर होता है। —आयुर्वेद

विडग पवाड के बीज, कूठ, हल्दी, सेंधानमक व सरसो इन्हे काजी के साथ पीसकर लेप करते रहने से दद्रु व कुष्ठ रोग नष्ट होता है। —भै० र०

चर्म विकारो पर- (विडगादि लेह) विडग चूर्ण, शिलाजीत, शहद घी तथा खैरसार (कत्था) समभाग एकत्र कर, पथ्यपूर्वक सेवन से किटिभ कुष्ठ (कालेदाग, खाजन Psoriasis), श्वेत कुष्ठ तथा दाद का नाश होता है। --वा भ चि अ १८

लेपार्थ—विडग, सेंधा नमक, हरड, बावची, सरसो, हल्दी और करज बीज समभाग महीन चूर्ण कर, गोमूत्र मे मिलाकर लेप करते रहने से दाद आदि चर्मविकार दूर होते है। —च द

व्रणो पर—विडग, त्रिफला तथा त्रिकटु प्रत्येक द्रव्य समभाग चूर्ण कर सबके बराबर शुद्ध गूगल एकत्र मिला, थोडा थोडा घी मिलाते हुए कूटे। सबके अच्छी तरह मिल जाने पर (१ से ३ मासा तक की) गोलिया बना ले। १ से २ गोली तक जल के साथ सेवन से दुष्ट व्रण, अपची, नाडी व्रण, प्रमेह एव कुष्ठादि चर्म विकारो का नाश होता है। —वृ मा

पत्र प्रयोग—वायविडङ्ग के कोमल पत्रो के क्वाथ मे सोठ का चूर्ण मिलाकर कुल्ले करने से गलदाह, गलशोथ, कृच्छ्र श्वास (श्वासोच्छ्वास मे कष्ट होना) तथा मुख पाक (मुख के भीतर के दूषित व्रण) मे लाभ होता है। —नाडकर्णी

छाल प्रयोग—निमोनिया आदि के फुफ्फुस विकारो में इसके वृक्ष की छाल को जल के साथ पीसकर थोडा गरम कर छाती पर बाधने से विशेष लाभ होता है। ऐसे रोगियो को इसकी छाल को चावल की काजी मे पका-छानकर सेवन भी कराते हैं। —नाडकर्णी।

दत शूल मे—इसके वृक्ष की जड की छाल को चबाने एव उसी का मजन करने से लाभ होता है। —वृ० द०

नोट—मात्रा—चूर्ण १ से ४ मासा। क्वाथ-- ३ तोला। प्रवाही सत्व १ से ४ ड्राम।

अधिक मात्रा मे यह आत्र के लिये हानिकर है। हानि निवारक- कतीरा व मस्तगी हैं। प्रतिनिधि कमीला व तुरमुस है।

इसका प्रवाही सत्व या अर्क--उदर रोग, कृमि विकार, वात विकार तथा विबन्ध नाशक है।

ध्यान रहे विडग वमनकारक है, तथा विरेचक भी किन्तु किस मात्रा मे? एक रोगी को पेट के वायु का दबाव होने से हृदय शूल होता था डाक्टरो ने उसको हृदय के भिन्न-भिन्न अवयवो का जीर्णत्व माना था और इसलिए उनके मत से यह असाध्य था। मैंने वायु का कार्य कराने की इच्छा से केवल विडग चूर्ण देना शुरू किया। मात्रा बढाते गये। उसको एक बार मे ½ तोला दिन मे तीन बार केवल जल से देने लगा। ६ दिन तक रोगी को कोई फल नही हुआ। किन्तु सातवे दिन विरेचन शुरू हुआ, ३ बार वमन हुआ तथा कई प्रकार का कफयुक्त विकार बाहर आया। इतने परिमाण मे यह कहां से निकला उसकी कल्पना भी नही हो सकती थी। क्योकि ८ दिन से मूग के पानी के सिवाय आहार मे कुछ भी नही दिया था। बस फिर विडग देना बन्द कर दिया। वमन के बाद तुरन्त ही उसके हृदय का शूल चला गया जो फिर कभी नही हुआ। मुझे यह प्रथम अनुभव हुआ कि मात्रा को न जानने से वही औषध काम नही करती।

—आचार्य श्री बल्लभराम विश्वनाथ वैद्य डीन एव प्रधानाचार्य आ० महाविद्यालय, जामनगर

विडग से जो अमोनियम एम्बेलेट (Ammonium Emb late) नामक क्षार या सत्व प्राप्त किया जाता है। उसकी मात्रा ३ ग्रेन (६ ग्रेन तक) की है। यह टेपवर्म (स्फीत कृमि) नाशक है। इसे १½ से ३ ग्रेन तक की मात्रा मे मधु या मिश्री के शर्बत के साथ देने से विशेष लाभ होता है। ऊपर कृमि के प्रयोग न० १ मे इसका उल्लेख आ चुका है।

विशिष्ट योग—

(१) विडगादि चूर्ण—विडग, पिप्पली, इलायची व दालचीनी १-१ तोला कालीमिर्च ३ तोला, सोठ १६तोला तथा मिश्री सबके बराबर लेकर चूर्ण कर रखें। ३-४ माशा चूर्ण (शहद के साथ) सेवन से कास, श्वास, ज्वर, प्लीहा, पाडु व क्षय का नाश होता है। —र० र०।

चूर्ण न० २—विडग १० भाग, कालानमक ८ भाग, कूठ ६ भाग, वच ४ भाग तथा भुनी हीग २ भाग एकत्र महीन चूर्ण कर लेवें।

मात्रा—२ से ३ माशा तक सुखोष्ण जल के साथ सेवन से आध्मान, विसूचिका,हृद्रोग, गुल्म तथा वात की विलोम गति आदि विकार दूरहोते हैं।

चूर्ण न० ३—विडग, सोठ, रास्ना, पिप्पली, हीग, सेंधानमक, भारंगी व जवाखार सममाग चूर्ण बना लें। इसे घृत के साथ सेवन से कफवातज कास श्वास हिक्का तथा वात व्याधि व मदाग्नि मे लाभ होता है। (मात्रा-४ रत्ती से ८ रत्ती तक)। —च चि अ १६

चूर्ण नं० ४—विडग, त्रिफला व पिप्पली इनके सम-भाग चूर्ण को (यथोचित मात्रा में) मधु के साथ सेवन से कुष्ठ, कृमिरोग, प्रमेह, नाडीव्रण तथा भगन्दर नष्ट होता है। —भै र

नोट— इस योग के चूर्ण मे १-१ भाग मधु व तिल तैल मिला लेने से वह विडगाद्यवलेह कहाता है। इसके(५-६ माशा की मात्रा में)सेवन से उक्त विकार दूर होते हैं। —वा भ उ अ० २७।

चूर्ण न० ५—विडग के चावल, त्रिफला, जवाखार व पिप्पली १ १ भाग तथा निसोथ सबसे आधा लेकर चूर्ण करें। (१ से ३ माशा तक) मधु व घृत के साथ या गुड के साथ सेवन से गुल्म, प्लीहा, कास, हलीमक, अरुचि तथा कफ वातज अनेक रोग नष्ट होते हैं। —वा० भ० कल्प अ २

(२) विडगाद्यवलेह—विडग के चावलो का(ऊपर के छिलके रहित विडग का) चूर्ण तथा पिप्पली के चावलो का चूर्ण प्रत्येक २५६ तोला, मिश्री ४ सेर २४ तोला, गोघृत, तिल तैल व मधु प्रत्येक १२ सेर ६४ तोला सबको एकत्र मिला घृत से चिकने किये हुये पात्र में रख पात्र का मुख बन्द कर उसे राख के ढेर मे दबा दे। यह प्रयोग प्रावृट ऋतु मे बनावें। तथा उक्त पात्र को वर्षा के अन्त तक राख मे ही दबा हुआ खुले स्थान मे रहने दें। वर्षा के बाद शरद में निकाल कर सेवन करें। प्रतिदिन प्रातः कुटी प्रावेशिक विधि से या ऐसे ही साधारण विधि से अपने अग्निबल के अनुसार १ या २ तोला तक की मात्रा मे लेवें। औषध के जीर्ण हो जाने पर शालि या साठी चावल का भात दूध व घृत से खावें। अथवा सात्म्य भोजन अग्निबलानुसार करें। इससे १०० वर्ष की जरारहित आयु प्राप्त होती है। —च. चि अ १
वा भ. (अष्टाग संग्रह अ ४६)

अवलेह न० २— उक्त विडगादि चूर्ण में न० ४ के प्रयोग मे नोट देखें।

(३) विडग तण्डुल रसायन(सर्वोपघात शमनीय)–* विडग चावलो को (विडग को १० मिनट जल में भिगो निकाल कर छायाशुष्क कर ऊखल में कूट ऊपरी भूसे को पछोड कर सार भाग तण्डुलो को) कूटकर चूर्ण करे। उत्तम मुलैठी लेकर उसको ऊपर ऊपर से छीलकर व कूट कर चूर्ण करें। दोनो चूर्णो को समभाग मिला खरल कर सुरक्षित रखें। इसकी मात्रा के विषय मे कोई स्पष्ट उल्लेख नही है। तथापि प्रथम ४ दिन तक ३ मा फिर

---

* महर्षि सुश्रुत ने सर्वश्रेष्ठ कृमिनाशक विडग तथा जीवनी शक्ति की सर्वोत्तम रक्षक मुलैठी इन दोनो के सयोग से इस सर्वोपघात शमनीय प्रयोग का आविष्कार किया है। इसकी प्रस्तावना मे वे लिखते है "शरीरस्योपघाता ये दोपजाम। सास्तथा। उपदिष्टा प्रदेशेपु तेषा वक्ष्यामि वारणम्" अर्थात् वातादि शारीरिक तथा रज एव तम दोषो के द्वारा उत्पन्न होने वाले विकारो को जिनका उल्लेख यथास्थान किया गया है दूर करने का उपाय-बतलाया जाता है। —सु चि अ. २७

प्लीहा वृद्धि, उदरशूल, कृमि, गुल्म, कुष्ठ, कास, श्वास, प्रमेह, क्षय, भगन्दर, जलोदर आदि रोगों में यह योग विशेष लाभदायक है। इस योग के सेवन से वृद्ध भी यथेष्ट आहार विहार करता हुआ तरुण हो जाता है। यह योग शरीर का पोषक है। —भैं० र०।

नोट—जलोदर तथा कुष्ठ में अति कोष्ठबद्धता होने पर ४ मोदक या अधिक देने से भी हानि होने का भय नहीं है। यदि रोगी पथ्य में लवण का सेवन छोड देवें। या किंचित सेंधानमक लेवे तो लाभ शीघ्र होता है। यह योग शाक्य भिक्षु के अर्श निवारणार्थ मणिभद्र नामक यक्षवर ने मिश्रित किया था।

(५) विडंगयुक्त सम शर्करा लोह पाक—विडंग चूर्ण १ तोला, लोह भस्म ४ तोला, गोदुग्ध १६ तोला तथा गोघृत (गोदुग्ध एवं गोघृत के अभाव में भैंस का दुग्ध व घृत लेवें) ८ तोला लेकर प्रथम भस्म, दूध व घृत को एकत्र कलई किये हुए ताम्र पात्र में पकावें। खूब गाढा हो जाने पर (दुग्ध के जल जाने पर) विडंग चूर्ण का प्रक्षेप देकर अच्छी तरह मिश्रित कर, उतार कर, ठंडा हो जाने पर उसमें मधु और मिश्री (या खांड) ४-४ तोला मिला, स्निग्ध पात्र में सुरक्षित रखें। यदि इसे बरफी जैसा जमाना हो तो मिश्री दो गुनी डालकर पाक करें।

मात्रा—६ रत्ती प्रारंभ में देकर रोगी की शक्ति अनुसार क्रमश पूर्ण मात्रा १२ रत्ती तक बढावें। अनुपान में नारियल का जल, या दूध की लस्सी देवें। यह पाक तीव्र रक्तपित्त, अम्लपित्त, उरःक्षत या धातुक्षय का नाश कर कांति व आयु की वृद्धि करता है। वृष्य है।—भैं र

नोट—पाकों के अन्य उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे बृहत्पाक संग्रह ग्रन्थ में देखिये।

(६) विडंग लोह—शुद्ध पारद, शुद्ध गंधक, कालीमिर्च, जायफल, लौंग, पिप्पली, शुद्ध हरताल, सोंठ व वंगभस्म १-१ भाग, लोहभस्म ६ भाग तथा विडंग १८ भाग लेकर प्रथम पारे गंधक की कज्जली कर उसमें अन्य द्रव्यों का महीन चूर्ण मिलाकर खरल कर रखें। (मात्रा २ से ४ या ८ रत्ती तक) इसके सेवन से अर्श, अरुचि, अग्निमांद्य, विसूचिका, शोथ, शूल, ज्वर, हिक्का, कास श्वास, तथा कोष्ठस्थ कृमि नष्ट होते हैं। —भैं र.

(७) विडंगयुक्त लोहभस्म योग—निरुत्थ लोह भस्म को त्रिकुट और विडंग के समान भाग मिश्रित ४ माशा चूर्ण में मिलाकर घृत व मधु के साथ सेवन से जरा, व्याधि व अकाल मृत्यु दूर होती है तथा पुत्र की प्राप्ति होती है। इसके सेवन करने वालों को गर (संयोग जनित विष) जन्य कोई रोग नहीं होने पाता। —भा भैं र।

(८) विडंग तैल—विडंग, गंधक व मनसिल ४-४ तोला (कई 'मनसिल' नहीं लेते। योगरत्नाकर में गंधक नहीं लिया गया है, मनसिल लिया है) एकत्र जल के साथ पीसकर इस कल्क को १ सेर १६ तोला सरसों तैल तथा तैल से चार गुना गोमूत्र मिला मन्द आग पर पकावें, तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रखें। इसे लगाने से जू, लीख हमेशा के लिए नष्ट हो जाते हैं। —भै र

'विडंगादि तैल' का योग भैं० र० में देखिये।

—कृमिरोगाधिकार।

(९) विडंगारिष्ट—विडंग (१ वर्ष का पुराना) २½ सेर तथा त्रिफला २० तोला, कमीला ½ सेर, पीपलामूल, कुडा छाल व इन्द्रजौ २०-२० तोला सबका जौकुट चूर्ण कर ४००० तोला जल में चतुर्थांश क्वाथ कर छान कर सधान पात्र में भर उसमें मधु १००० तोला व धाय के पुष्प १०० तोला तथा दालचीनी, त्रिकटु, तेजपात व बडी इलायची का चूर्ण ५-५ तोला डालकर एक महीने तक बन्द कर रखें। पश्चात् छानकर बोतलों में भर लें। यह उत्तम कृमि विकारनाशक है।

नोट—आसवारिष्ट के अन्य प्रयोग हमारे 'बृहदासवारिष्ट संग्रह' में देखिये।

वायविडंग नं. २ (Embelia Robusta)

उक्त विडंग नं० १ के ही कुल के इसके छोटे-छोटे घने झाडीदार वृक्ष होते हैं। (जलवायु एवं स्थानानुसार इनके आकार प्रकार में अन्तर होता है) शाखायें अनेक बिन्दु युक्त, छाल—[illegible] पत्र—५-७ इन्च चौडे,

नोट—नं० १ इसका एक भेद बाबरंग (Myrsine Africana) है। इसे चपरा, चपरा, गाजोनी, बायबरंग भी कहते हैं। इसके छोटे क्षुप हिमालय में काश्मीर से नेपाल तक पाये जाते हैं। इसका फल तीव्र विरेचक एवं कृमिनाशक है, स्फीत कृमि (टेप वर्म) पर विशेष उपयोगी है। इसके वृक्षों से जो गोंद प्राप्त होता है, वह कफ्टानव, जलोदर, एवं शूल (Colic) पर उपयोगी है।

नोट—२—इसका ही एक अन्य भेद Embelia Tsjeriam Cottan A Dc है। इसे भी बायबिडंग कहा जाता है। इसके पौधे दक्षिण में मलाबार की ओर अधिक पाये जाते हैं। इसकी छाल मुख के दूषित व्रणों पर उपयोगी है।

उक्त दोनो भेदो के फलो के गुणधर्म एवं प्रयोग प्रायः विडंग नं १ के जैसे ही हैं।

प्रस्तुत विडंग नं०२ के नाम, गुणधर्मादि—

नाम —

सं०—विडंग भेद। हि० बायविडंग, गंधा, बवरंग। म०—वावडिंग, वरबटी, आमटी। नेपाली—कलयपोवोटी। अं०—वासल (Basal)। ले०—एम्बेलिया रोबस्टा।

गुणधर्म व प्रयोग—

वातानुलोमक, कोष्ठवात तथा कृमिनाशक, अर्श मे तथा शोथ मे विशेष लाभकारी तथा रसायन है। शेष गुणधर्म विडंग नं०१ जैसे ही हैं।

स्फीत कृमि (टेप वर्म्स) पर—फलो का चूर्ण प्रातः सायं खाली पेट जल के साथ दिया जाता है। छोटे बालको को यह चूर्ण मधु या शक्कर के साथ १ ड्राम से २ ड्राम तक की मात्रा मे दिया जाता है। अर्श पर यह चूर्ण केवल जल के साथ देते है।

गण्डमाला पर—अनन्तमूल के साथ इसका क्वाथ बनाकर सेवन कराते तथा इसे ठण्डे जल मे पीसकर गाठो पर लेप करते हैं।

दन्त शूल पर—इसका चूर्ण थोडी हीग के साथ दात की पोल मे रखने से लाभ होता है तथा इसका मञ्जन मे व्यवहार करते है। इसकी जड की छाल भी इसमे उपयोगी है।

बायविडंग (वरबटी)
EMBELIA ROBUSTA ROXB

लहरदार, कभी कभी सूक्ष्म दन्तुर धार से युक्त कुछ गोल, वृन्त की ओर अण्डाकार, अधः पृष्ठ पर सुरमई रङ्ग (लोहे के जंग जैसा) के प्रायः रोमश, पुष्प—छोटे छोटे हरिताभ श्वेत या हरिताभ कुछ पीत वर्ण के, फल—छोटे-छोटे गोल, किंचित् लम्बाकार, नीरस, लाल रंग के तथा बीज—गोल, आधार पर भीतर की ओर धसे हुए से होते हैं। माघ फाल्गुन मास तक इसके फल पक जाते हैं।

बाजार मे इसके बीज प्रायः कालीमिर्च के साथ मिश्रित पाये जाते है।

इसके वृक्ष हिमालय के पूर्व की ओर के प्रदेशो मे, तथा बंगाल और दक्षिण की ओर सीलोन तक न्यूनाधिक पाये जाते है।

गले की सूजन मुख के छाले एवं व्रण पर—इसके कोमल पत्रो का सोठ के साथ क्वाथ बनाकर मुख मे धारण कराने से लाभ होता है।

निमोनिया तथा फुफ्फुस के विकारो मे—इसकी छाल को चावल के माड़ के साथ उबालकर पिलाते हैं, तथा छाल को पीसकर मक्खन के साथ छाती पर लेप करते है। इसके फलो को पीसकर मक्खन के साथ छाती पर लेप लगाने से फुफ्फुमावरण शोथ मे लाभ होता है। शिर शूल मे भी इसका इसी प्रकार मस्तक पर लेप लगाया जाता है।

रुद्धार्त्तव पर—फलो को जल मे औटाकर पिलाने से स्त्रियो का बन्द आर्तव जारी हो जाता है —सकलित

शेष प्रयोग विडग न०१ के अनुसार ही है।

बायलो [Pterospermum Heyneanum(wall)]

मुचकुन्द कुल (Sterculiaceae) के मध्यम प्रमाण के इस वृक्ष के पत्र एकान्तर या सयुक्त ४–६ इञ्च लम्बे, २-३ इञ्च चौडे, पुष्प मुचकुन्द के पुष्प जैसे, श्वेत एव सुगन्धित होते हैं।

इसके वृक्ष भारत के पूर्वी तट पर, उडीसा आदि प्रान्तो मे तथा पहाडी प्रदेशो मे पाये जाते है।

नाम—

हिन्दी, उडिया भाषा मे—बायलो। ले०—टेरोस्परमम् हेनीनम्।

गुण धर्म व प्रयोग—

वातशामक, शांतिदायक, प्रदरादि नाशक है। श्वेत-प्रदर पर इसके पुष्पो का प्रयोग किया जाता है। मज्जा-तन्तु विकारजन्य या वातजन्य सिर दर्द पर इसके पत्तो के चूर्ण को तम्बाखू की तरह चिलम मे रखकर धूम्रपान करते है।

बायधुर—देखें—रास्ना।

बारक कांटा (Pericamphylus Incanus [nieers])

गुडूची कुल (menispermaceae) की अन्य वृक्षादि के आश्रय से बढने वाली लता रूप यह वनौषधि आकार मे प्राय गिलोय के समान होती है।

यह सिक्किम, खासिया पहाड तथा चिटागाग आदि बगाल की उत्तरी सीमा पर पाई जाती है।

नाम—

हिन्दी-बगला—बारक काटा। नेपाली—लहारा पीपल पाती। ले०—पेरिकेम्फायलस इनकेनस।

रासायनिक संगठन—

इसमे एक निद्रा या मूर्च्छा कारक क्षार पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह विष नाशक है। सर्पो को वश में करने वाले सपेरे लोगो मे, इसकी जड सर्प विष निवारक रूप मे विशेष प्रसिद्ध है।

डा० कनिंघाम का अनुभवपूर्ण कथन है कि सर्प विष का प्रभाव अन्दर तक पहुचने के पूर्व ही यदि इसकी जड के प्रवाही सत्व का इन्जेक्शन दिया जाय तो विष का असर नही होने पाता है। —नाडकर्णी

अन्य विषैले जन्तुओ के दश पर भी जड का लेप करने तथा उसे घोट कर पिलाने से विष का असर दूर हो जाता है। कहा जाता है कि किसी भी मारक विष के साथ इसका रस मिला देने से उसका प्राणघातक प्रभाव नष्ट हो जाता है।

वारतङ्ग नं० १ [Plantago Lanceolata (Linn)]

अश्वगोल कुल ‡ (Plantaginaccae) के बहुवर्षायु इस क्षुप के पत्र शल्याकृति, कंगूरेदार, रोमश एव छोटे वृन्तयुक्त होते हैं। पुष्प छोटे-छोटे कई भागों मे विभक्त डण्डिओ पर आते हैं।

इसके क्षुप हिमालय के पश्चिमी प्रदेशों मे काश्मीर से शिमला तक पाच से सात हजार फुट की ऊचाई तक तथा वजीरी स्थान, बलूची स्थान मे विशेष पाये जाते हैं।

नोट—इसका ही एक भेद लहुरिफ या लहुरिया [P major] है। इसका वर्णन आगे के प्रकरण मे देखिये।

पीछे इस ग्रंथ के भाग १ मे ईसबगोल के प्रकरण में नोट देखें।

नाम

हिन्दी मे—वारतग, वारटग। काश्मीरी—ईसबगुल, गोला। ब०—बारतङ्ग। अं०—रिबवर्ट (ribwort] ले०—प्लेण्टेगो लॅन्सिओलाटा।

वारतग
PLANTAGO LANCEOLATA LINN
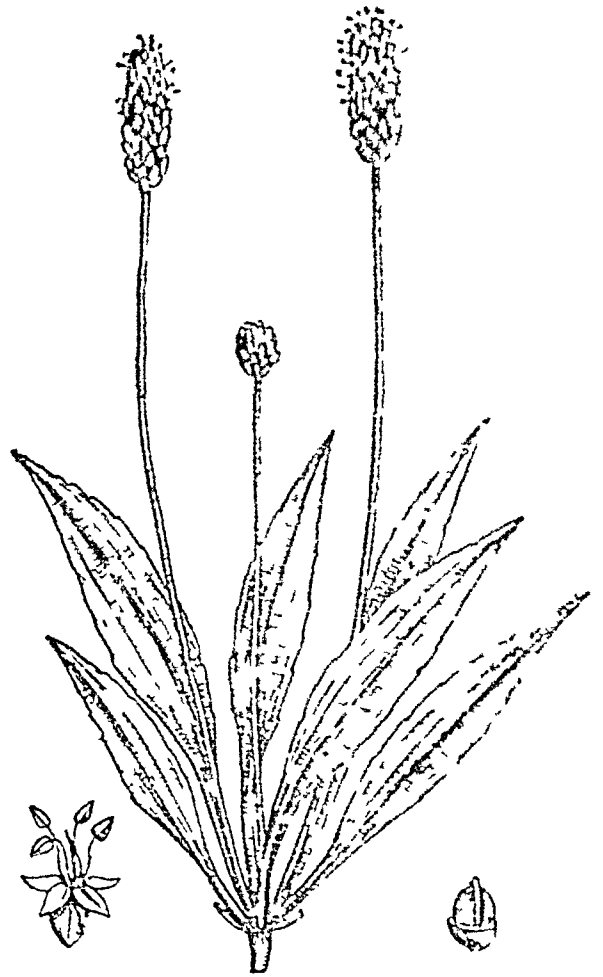
वार तग
PLANTAGO LANCEOLATA LINN

‡ इस (ईसबगोल) कुल के पुष्प के वाह्य व आभ्यान्तर कोष के दिल ४-४, पुकेशर ४, फल विदारी बहु-बीज, जो जल मे डालने से लुआबदार हो जाते हैं।

रासायनिक सगठन—इसके पत्र,बीज या जड मे आंकुबिन (Aucubin) नामक एक ग्लूकोसाईड पाया जाता है।

गुण,धर्म व प्रयोग-

पत्र–वेदनास्थापक, व्रणहर हैं। बीज–विरेचक, शोणितस्थापनीय, रक्तपित्तहर है। जड–ज्वर निवारक है।

पत्रो का ताजा रस या शुष्क पत्रो का लेप या पुल्टिस व्रण, दाह, शोथ युक्त चट्टे या पीडायुक्त फोडो पर प्रयुक्त होती है। जख्मो को धोने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है।

बीजो को विरेचनार्थ शक्कर के साथ देते हैं।

यूनानी मत से—यह शीत व रूक्ष है। पत्र सकोचक होने से रक्तस्राव निवारक हैं। पत्तो के प्रयोग से जीर्ण या नूतन व्रणों का शीघ्र रोपण होता है। व्रण रोपणार्थ इसके जैसी अन्य वस्तु नही है। शरीर के भीतरी अङ्गो से होनेवाले रक्तस्राव के अवरोधार्थ पत्तो का रस पिलाते हैं।

कफ के साथ रक्त या रक्त मिश्रित कफ के आने पर पत्तो का लेप छाती पर किया जाता है। नकसीर या नाक से रक्तस्राव हो तो इसका लेप ललाट (मस्तक) पर करें।

उष्णता या पित्तज कर्णशूल मे ताजे पत्तो का रस कान में टपकाने से लाभ होता है।

पित्तज या उष्णताजन्य गल शोथ पर—पत्र रस के कुल्ले कराते है। पत्तो का रस क्षय मे भी लाभकारी है। बीजो की मगज कामोत्तेजक है।

इसका सत यकृत व वृक्को के लिये बल्य है, तृषा नाशक है। अपचन को दूर करता है। मूत्र एव ऋतुस्राव की जलन को शात करता है, रक्तार्श, पैत्तिक ज्वर, राजयक्ष्मा व सुजाक में लाभदायक है।

इसका पञ्चाग आत्र व्रणो को दूर करता है, शीतपित्त मे भी लाभकारी है।

जड—जड के क्वाथ से कुल्ले करने से मसूढ़ो से रक्त निकलना ब द होता है। आधुनिक मत से जड का चूर्ण वसतकालीन ज्वरनाशक है।

नोट—मात्रा–पत्र रस ४ से ६ तोला तक।

इसका अधिक सेवन, फुफ्फुस व प्लीहा के लिये हानिकर है। हानि निवारक–बनफ्सा, शहद व मस्तङ्गी है।

बारतंग नं० २ (Plantago major)

उक्त बारतग न १ के ही कुल के, किन्तु वर्ष जीवी इसके क्षुप के पत्र १-५ इञ्च लम्बे, भेड की जीभ जैसे, बीज ईसबगोल जैसे, लम्बे छोटे, गोल, भूरे या लालिमायुक्त काले, स्वाद मे फीके, हीकदार होते हैं। औषधि कार्यार्थ रक्ताभ कृष्ण वर्ण के बीज उत्तम माने जाते हैं।

इसके क्षुप भारत के समशीतोष्ण प्रदेशो मे तथा पेशावर, पजाब, काश्मीर से भूटान तक। तिब्बत के पश्चिम भाग मे, आसाम, खासिया पहाड, वर्मा, मलक्का, सिंगापुर, बम्बई, नीलगिरी तथा सूडान के उच्च स्थानो, कोकण, पश्चिमी घाट आदि स्थानो पर पाये जाते है। तथापि इसका आयात भारत में पर्शिया से विशेष होता है।

नाम —

हि —बारतग, लहुरिया, लहुरस, इसफगोल, गुल, करठे म —बारतग। अ —काट। ट्रेक प्लाट (Carter track plant), ग्रेटरप्लांटेन (Greater plantain) वे ब्रेड (Waybread)।

ले —प्लेंटेगो मेजर, प्ले सिलीयम (Plantago psyllium), प्ले एशियाटिका (Plantago Asiatica)।

रासायनिक सगठन—बीज में हरा रजक द्रव्य, राल, मोम, अल्ब्युमिन, पेक्टीन [Pectin], शर्करा एव अति पिच्छिल (लुवाब) द्रव्य होता है।
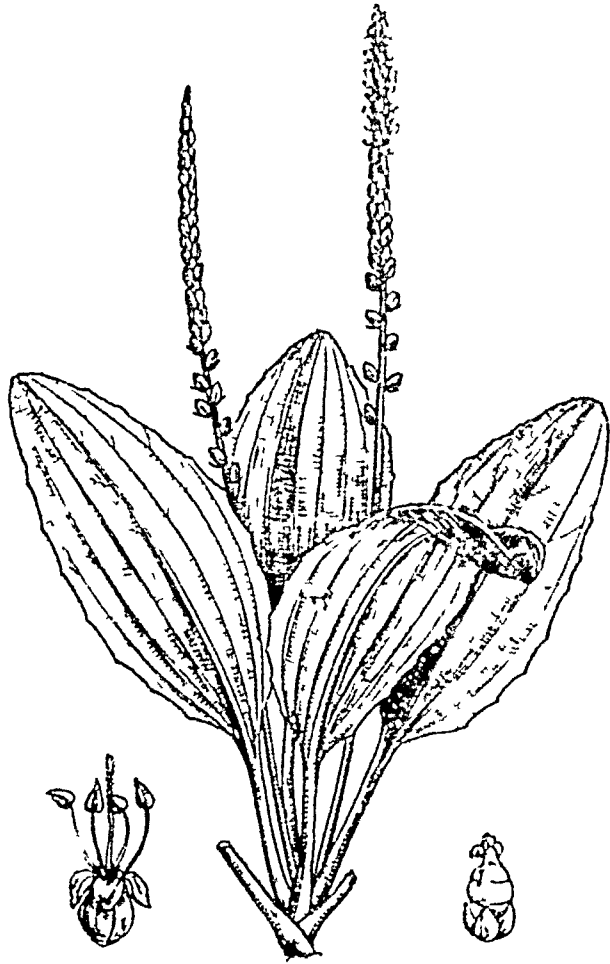
बारतग (लडुरिया)
PLANTAGO MAJOR LINN

गुण धर्म व प्रयोग—

शीत, रूक्ष, सग्राही रक्त स्तंभक, वेदनाहर है। डा० देसाई का कथन है कि उष्णताजन्य अतिसार या आमातिसार में तो ईसबगोल ही विशेप लाभदायक है। किंतु शीतजन्य अतिमार में इसका प्रयोग किया जाता है। इसकी जड व पत्रो का क्वाथ विपम ज्वर में उपयोगी माना जाता है।

यह सन्धिवात तथा आतो की ऐंठन युक्त पीडा पर उपयोगी है। पत्र व जड सकोचक है। भीतर के अगो के रक्तस्राव, रक्तप्रदर आदि निवारणार्थ पत्तो के रस का फाडा हुआ पानी पिलाते है। पत्र विशेपत शीतल धातु परिव-र्तक एवं मूत्रल है।

पत्तो की पुल्टिस व्रण व जख्मो पर बांधते हैं तथा इसके गरम क्वाथ का बफारा देते हैं। पत्तो का रस व्रण या जख्मो के रक्तस्राव को बंद करता है। अतिसार व अर्श में भी यह उपयोगी है। बर्र, ततैयादि के दंश स्थान पर पत्तो को रगड़ने से शान्ति प्राप्त होती है।

कर्णशूल में पत्रो के क्वाथ का बफारा देते तथा पत्र रसका कान मे टपकाते है। कंठ की पीडा तथा [illegible] में पत्र रस या शुष्क पत्रो के क्वाथ के कुल्ले कराते हुए कई प्रकार के उष्ण दाह युक्त शोथो पर वेदना शमनार्थ इसका लेप करते हैं।

जिस क्षय रोग मे कफ के साथ रक्त आता हो उसमे इसका रस विशेष उपयोगी माना जाता है। कहीं-कहीं

बारतग (लहुरिया)
PLANTAGO MAJOR LINN

इसके पत्रो को पीसकर मक्खन के साथ मिला मसूढो की सूजन पर लगाते हैं ।

वीज – इसके वीज उत्तेजक, उष्ण एव पौष्टिक हैं । ईसबगोल के स्थान में इसका उपयोग किया जाता है । ये रक्तातिसार नाशक है । मूत्र विकार तथा अतिसार मे बीजों का हिम (१ भाग मे ५ भाग जल मिलाकर बनाया हुआ) ५ से १० तोला तक की मात्रा मे, इलायची चूर्ण व मिश्री मिलाकर दिया जाता है। इससे आतो की ऐंठन युक्त पीडा भी दूर होती है ।

पेचिश (आमातिसार) तथा प्रवाहिका पर—

बीजो को महीन पीस, छानकर ४ माशा की मात्रा मे पथ्यपूर्वक गाय की छाछ के साथ देवे । भोजन मे केवल दही व खिचडी देवें ।

पूययुक्त पुरानी प्रवाहिका हो तो अकाकिया (बबूल की छाल एव पत्र का घनसार), कागज जला हुआ प्रत्येक ९ माशा, हरताल पीली शुद्ध की हुई १३⅓ माशा सबको वारतग के स्वरस १¼ सेर मे खरल कर टिकिया बनारखें। यदि पीप अल्प प्रमाण मे आ रही हो तो इसे २-३ रत्ती खाकर चावलो का माड (पिच्छ) पीवे । यदि अधिक पूय आती हो तो इसे जल मे घोलकर वस्ति देवें ।

—यू चि सा.

नोट—पत्र रस या पत्तो के स्वरस को फाडकर किया हुआ जल ५-७ तोला तक । वीज ५-७ माशा तक ।

अधिक सेवन फुफ्फुस व प्लीहा के लिए हानिकर है। हानि निवारक—शहद, बनफशा व मस्तगी है ।

प्रतिनिधि—बीज का प्रतिनिधि ईसबगोल है । पत्र के अभाव मे बीज ही लेवें ।

बारहमासी—देखें—सदाफूल ।

बाराही कन्द नं.१ (Dioscorea Bulbifera)

गुडूच्यादि वर्ग, एव वाराहकन्द कुल° (Dioscoriaceae की इस सुहावनी, वामावर्त्त आरोही लता के काड चिकने तथा काड के पत्रकोणो में लगभग १ इञ्च व्यास के कद जैसे दानेदार उभार या ऊची उठी हुई धारिया होती है । लता का वर्ण कोमल दशा मे कुछ लाल सा फिर रक्ताभ पीत हो जाता है । पत्र काड के दोनो ओर अलग अलग क्रम से ताम्बूल (नागर बेल खाने के पान) पत्र जैसे, किन्तु कोमल दशा में लाल रग के, फिर धीरे धीरे हरे, पीले रग के होते है । पत्रोद्गम स्थान से इसके दूसरे कल्ले फूटते हैं जो धीरे धीरे नवीन शाखा रूप में ऊपर को बढने लगते हैं । यह लता प्राय शकरकन्द की लता जैसी होती हैं। भेद इतना ही है शकरकन्द की लता आरोही नही होती । किंतु इसे भी जमीन पर ही फैलने दिया जाय तो इसकी प्रत्येक गाठ पर जड निकलकर कन्दाकार हो जाती है । इसके पत्र प्राय साधारण एकान्तर २-६ इञ्च लम्बे, १॥-४ इञ्च चौडे, पतले, पुच्छाकार लम्बे तथा वृन्त के समीप या पत्राधार पर ताम्बूलाकार, पत्राधार गोल एव ९ शिराओ से युक्त होता है ।

पुष्प—वर्षा ऋतु के अन्तकाल में प्राय पत्र कोणो से निकली हुई मजरियो में, पुष्प छोटे छोटे पीत या श्वेत वर्ण के आते है तथा शरदऋतु के अन्त तक विकसित होते रहते है । विशेषत रात्रि के समय अति मधुर सुगन्ध आती है । कही कही ज्येष्ठमास मे भी पुष्प आते है । इसके नर पुष्पो की मजरियाँ नीचे की ओर लटकी हुई, तथा नारीपुष्पो की मजरिया ४-१० इच लम्बी होती है। फल-तीन पख वाले (पख के जैसे फैले हुए) तथा बीज भी आधार पर पखयुक्त होते है ।

कन्द—विशेष बडा नही होता । यह वृषण (अडकोष) जैसा या शूकर (बाराह) मुख सदृश एक ओर को मोटा एव दूसरी ओर पतला, दृढ सघन लबे लोम

° इस कुल के क्षुप लम्बे प्राय. आरोही लता रूप मे होते हैं, जड-जडी या छोटी स्थूल, कन्दाकार, पत्र-एकान्तर या अभिमुख सामान्य या सयुक्त, पुष्प-छोटे-एक लिंगी, पुकेशर ६, बीजकोश-त्रिकोष्ठीय होता है ।

वाराही कन्द (रतालु)
DIOSCOREA BULBIFERA LINN

युक्त होता है। भीतर श्वेत रग का, ऊपर काले रग का होता है। तोडने या नख से कुरेदने से दूध निकलता है। यह स्वाद मे चरपरा एव कुछ कडुवा तथा नील कमल की सी गन्ध वाला होता है। गुजरात की ओर इसे ही डूकर कन्द कहते है।

यह कन्द हिमालय प्रदेशो मे ५ हजार फुट की ऊचाई तक भारत के कई पर्वतीय जगली प्रदेशो मे और मध्य-भारत व कोकण मे भी पाया जाता है।

नोट न० १–इस कन्द के विषय मे बहुत मतभेद है। तुरार नामक एक कन्द (Dioscorea Bellophylla) इसकी जाति का होता है। इसकी दक्षिणावर्त्त आरोही लता होती है, पत्र-साधारण या करतलाकार सयुक्त होते है। कई लोग इसी को वाराहीकन्द मानते है। [illegible] की ओर [illegible] इसका उपयोग किया जाता है।

भावप्रकाशकार का कथन है कि वाराहीकन्द को ही पश्चिम देश मे 'गृष्टि' कहते है तथा [illegible] लोग 'चर्मकारालुक' कहते है। आनूप (जलप्राय) देश मे यह सूअर के बालो की तरह रोमो से युक्त कन्द वाला होता है। किन्तु ध्यान रहे चर्मकारालु तथा गृष्टि (गेंठी) ये दोनो वाराहीकन्द से भिन्न है।

नोट न० २—चर्मकारालु (चमार आलु) पर भी शूकर के समान रोम होते है किन्तु वाराहीकन्द की अपेक्षा यह बहुत सुलभ है मुगेर, भागलपुर, चम्पारन, दरभगा, पटना, सारन तथा बलिया, गाजीपुर, बनारस, आरा आदि जिलो के जगल, झाडी, बाग के गेन, नागफनी थूहर आदि पतित भूमि मे इसकी हरी हरी बेलें वर्षा काल मे बहुत देखने मे आती है। कई लोग पान के खेतो मे इसको रोपण करते तथा इसके कन्द की शाक बनाकर खाते हैं। इसे प्रान्तीय भाषा मे 'गुवनी' कहते है। इसकी भी लता वाराही कन्द की लता जैसी किन्तु श्वेत वर्ण की, पत्र भी वैसे ही किन्तु छोटे इसके कन्द भी प्राय. वैसे ही होते हैं। तथापि यह वाराहीकन्द की अपेक्षा कुछ हीन गुण वाला माना गया है। शास्त्रकारो ने इसे वाराहीकन्द का प्रतिनिधि माना है।

नोट न० ३—गृष्टि (गेंठी, वारेठाशाक, ऋषिभोजन) स्व कविराज श्री प्रतापसिंह जी ने इसके विषय मे विशेष अन्वेषण पूर्वक प्रकाशित किया कि–"सुश्रुत (चि अ १) के कुष्ठाविकार मे 'महातिक्तक घृत' मे 'गृष्टि' शब्द आया है। टीकाकारो ने इसका कुछ भी स्पष्टीकरण नही किया (किसी किसी ने भ्रम से विदारीकन्द अर्थ लिख दिया है) सुश्रुत के सिवा अन्य सहिताओ के महातिक्तक घृत मे यह गृष्टि नामक द्रव्य नही मिलता। इससे ज्ञात होता है कि सुश्रुत काल मे यह द्रव्य सुपरिचित था, किंतु उसके बाद मे इसका लोप हो गया। निघण्टुकारो ने इसे वाराहीकन्द के परिवार का समझकर उसका वाराहीकन्द ही नामकरण कर दिया। किन्तु जिसे मै गृष्टिका (गेंठी) कहता हू

वह कन्द विना लोम का होता है। बाराहीकन्द जैसा गठा हुआ (रोमश) नही होता। गृष्टिका का फल भी आलू जैसा गोल, रोम रहित, भूरे रग का एव स्पर्श मे चिकना ऊपर की भूरे रग की त्वचा निकाल देने पर नीचे नीले रग की त्वचा प्रकट होती है। इसका फल व कन्द दोनो ही स्वाद मे मधुर व पौष्टिक है। नैनीताल, अलमोडा तथा मसूरी मे इसके फल व कन्द दोनो को उबाल कर शाक के रूप मे पथ्य देते हैं। भोजन मे शाक की जगह भी इसका उपयोग करते है। मुझे विदित हुआ है कि यह अत्यधिक पौष्टिक हे। ऋषिगण इसी कन्द को खाकर पूर्ण भोजन का काम लेते थे। जिस कन्द मे स्टार्च अधिक होता है और फल में उतना ही प्रोटीन अधिक होता है। मद्रास मे एक चीनी बौद्ध वनस्पति विशेषज्ञ ने बताया कि भगवान बुद्ध को भी इसी कन्द व फल का पथ्य दिया गया था।

भारत सरकार ने जो 'दी वेल्थ आफ इन्डिया' नामक पुस्तक प्रकाशित की है उसमे लिखा है कि इसका स्टार्च मक्का तथा चावल के स्टार्च मे पर्याप्त मिलता जुलता है अत प्राचीन ऋषि इसी का उपयोग भोजनार्थ करते थे। इसमे उनकी शारीरिक शक्ति सुदृढ रहती थी।

वाट्स की डिक्शनरी मे इस कन्द के नाम लेटिन मे डायोस्कोरिया व्हर्सिकालर (Dioscorea versicolor woll) प्राकृत भाषाओ में गेंठी, गाजिर,गाजिरा, दोलालु, दुधालु कानरी, गिठी, घाजिन इ।

यह भारत के उत्तर प्रदेश तथा पूर्वीय प्रायद्वीप मोधीर से कुमाऊ नेपाल, आसाम तक एव ब्रोम आदि प्रान्तो में विशेष पाया जाता है, भारत के उत्तर-प्रदेश के मुरादावाद, विजनौर आदि जिलो के जगलो में दुष्काल के समय इसका कन्द आनन्ददायक भोजन का काम देता है। यह कन्द काफी वडा तथा वजन में कई पौण्ड वजन का होता है। जमीन को २ से ६ फुट तक खोदकर यह निकाला जाता हे। शाक आदि बनाने के पूर्व इसकी चरपराहट को दूर करने के लिए यह रात भर राख और पानी में भिगोकर रखा जाता है।

इसी गेंठी (गृष्टि) के विपय मे वनस्पति अन्वेषक वैद्याचार्य श्री उदयलाल महात्मा (देवगढ) जी ने विशेष विवरण अपने पत्र मे हमे लिखकर भेजा है। उसका साराश इस प्रकार है—राजस्थानी में इसे आरेठा शाक आवलियो कन्द कहते है। गुजरात मे पचमहाल तथा राजस्थान मे उदयपुर जिले के अन्तर्गत वडी सादडी तहसील के पास सीतामाता के जगल मे एव केलवाडा तहसील के गावो के जगलो में तथा खेतो पर लगाया हुया यह मिलता है उदयपुर मे शाक सब्जी विक्रेताओ के पास भी इसके कन्द मिलते है।

इसकी लता का आकार प्रकार आदि सब बाराहीकन्द की लता के समान ही है। इसके कन्द पुराने होने पर १ सेर से ३-४ सेर वजन तक होते हैं। कन्द काटने पर भीतर पीला निकलता है। इसके कन्द व फल (फल इसकी लता पर पत्रो के पास अरीठे, आंवले या छोटे आलुओ जैसे गोल लोम रहित रग मे भूरे व चिकने लगते हैं) गढवाल, जौनसार, वावर आदि पर्वतीय प्रदेशो मे और राजस्थान के उदयपुर जिले में खूब खाये जाते है। रोगियो को पथ्य मे दिये जाते हैं। उदयपुर के ग्रामनिवासियो के घरो में शाक एव सुन्दरता के लिए इसकी लता लगी हुई मिलती है।

नवम्बर, दिसम्बर मे इसके क द नैनीताल, रानीखेत, अलमोडा, उदयपुर (राज०) से प्राप्त कर मार्च मास मे इसको गज भर गहरा गर्त खोदकर गाड देते तथा अच्छा गोवर या पत्तियो का खाद देकर गर्त को भर देते है। गर्त के पास ५० फीट लम्बा वास सुदृढ गाड देते है या किसी का सहारा लता को मिल जाय ऐसे स्थान पर इसे गाडते बोते हैं।

बाराहीकन्द और गृष्टिका कन्द मे अन्तर—

(१) बाराहीकन्द की आकृति सूअर के मस्तक जैसी ऊपर सख्त लोमयुक्त होती है तथा गृष्टिका कन्द वृक्काकार, गोल व चिपटा होता हे।

(२) बाराही कन्द काटने पर अन्दर से सफेद, लाल निकलता है किंतु गृष्टिका कन्द अन्दर से पीला।

(३) बाराहीकन्द को उदयपुर जिले के पहाडी प्रदेशो मे कदोलिया कहते हे। तथा गृष्टिकाकन्द को आरेठा की वेल या आवलियो कन्द कहते हे।

(४) वाराहीकन्द और उसका फल स्वाद में कटु होने से उसका शाक नहीं बनता। गृष्टिका रस स्वाद में मधुर होने से स्वादिष्ट शाक बनता है।

च सू अ २७ के श्लोक ११६ में जिन अम्लीका कन्द का गुणधर्म (अम्लीकाया स्मृत कन्दो ग्रहण्यर्शो हितोलघु। नात्युष्ण कफवातघ्नो ग्राहीशस्तो मदात्यये॥) दिया गया है, वही यह गृष्टी या गेंठा शाक है। ऐसी जो लेखक की मान्यता है, वह विचारणीय है। चरक का यह अम्लीका कन्द विवादास्पद है। उक्त स्थान पर टीकाकार चक्रदत्त ने "अम्लीकास्वल्प विटप। प्राय कामरूपादौ भवति" बस इतनी ही गोलमटोल बात कहकर अपना पिण्ड छुड़ाया है। यह स्वल्प विटप, चाहे कन्द प्रधान ही हो, एक छोटा पौधा ही हो सकता है, न कि गृष्टिका की ऐसी विस्तृतलता फिर श्री गंगाधर जी टीकाकार उक्त अम्लीका कन्द के विषय में अति संक्षेप में अम्लार्द्रकस्य कन्द ऐसा लिखते हैं। यह अम्लार्द्रक क्या है? क्या कोई अम्ल अदरक भी होता है? आगे चरक ने विमान स्थान अ. ८ की अम्लस्कन्ध में ४ प्रकार की अम्लिका (आम्रातकाश्मन्तक चांगेरीणा चतुर्विधाना चाम्लिकाना इ) का उल्लेख किया है। उक्त प्रस्तुत प्रसंग की गृष्टिका उन चारों में कोई होना कदापि संभव नहीं। गृष्टिका मधुर है तथा ये सब अम्ल रस प्रधान हैं। अस्तु दक्षिण में तथा मध्यप्रदेश में जिसे मटारु कहते है, वही यह गृष्टिका या गेंठी है।* —सम्पादक

नोट न०४—दूधवा—इसके विषय में रस बूटी विशेषज्ञ श्री लाला रूपलाल जी वैश्य ने प्रकाशित किया है। [illegible] वाराहीकन्द [illegible] है। [illegible] वाराहीकन्द [illegible] कहते है, [illegible], विदार अधिक [illegible] अधिक की ऊँचाई में [illegible] है। [illegible] जाता है, [illegible] विशेष [illegible] छोटे [illegible] देखने में [illegible]। [illegible] भीतर इसका कन्द गोल [illegible] लम्बा होता है, तथा उस पर गोलदार् गांठिया होती है। कन्द के ऊपर जहां जड़ी निकलती है, उसके चारो ओर समान लम्बी मोटी गोलाई गांठिया रहती है। [illegible] फीके लाल रंग के होते है तथा कन्द के ऊपर [illegible] की ओर लाल रंग [illegible] है शेष भाग [illegible] या किंचित् बादामी रङ्ग का होता है। ऊपर का छिलका उतारने पर सफेद दीख पड़ता है।

पहाड़ी लोग इसे दूधवा के नाम से पुकारते है। आयुर्वेद निघण्टुओं में इसका उल्लेख नहीं पाया जाता।

यह मिर्जापुर के आसपास विन्ध्याचल की पहाड़ी पर विशेष पाया है।

इसका प्रधान गुण स्त्रियों के स्तनों में दूध उत्पन्न करने का है। प्रायः इसका कन्द औषधि कार्य में आता है।

---

* यह जंगली और बागी दो प्रकार का होता है। दोनों की लम्बी लता एक समान, पत्र-पान (ताम्बूल) जैसे कुछ पीताभ पुष्प-गुच्छों में आते है। जंगली गेंठी के फल बागी या घरों में पैदा होने वाली गेंठी से छोटे तथा उनमे चिकनापन भी कम होता है। कन्द भी प्राय इसी प्रकार के होते हैं। किन्तु इन जंगली कन्दों में जड़ें अधिक होती हैं। स्वाद में कडवा होता है। बागी गेंठी में किंचित् कडवाहट (जंगली की अपेक्षा बहुत कम) होती है।

यह एक बहुत ही पौष्टिक खाद्य पदार्थ है। इसको फसल के समय तोडकर सुखाया जा सकता है तथा आटे के रूप मे इसका उपयोग किया जा सकता है। इसकी पैदावार भी भारत मे इतनी ज्यादा होती है कि एक ही लता में ३-४ किलो से १० किलो तक फल मिल सकते हैं।

यह पौष्टिक फल चर्मरोग और कुष्ठ मे भी उपयोगी है। यह व्रण, आतशक, अर्श, पेचिश, अतिसार आदि मे भी लाभकर है। मधुमेह के बीमार के लिये यह केवल एक पथ्य ही नहीं एक महान औषधि भी सिद्ध होगी।

— श्री गोविन्द वल्लभ पंत

गीले कन्द की मात्रा ६ से ९ माशा तक तथा सूखे की ३-४ माशा तक है। इसे थोड़े गोदुग्ध में पीसकर १५ दिन या आवश्यकतानुसार २१ दिन तक दोनों समय सेवन कराने से स्तन में दूध खूब उत्पन्न होता है। जिस स्त्री के बालक पैदा होने के बाद काफी दूध उत्पन्न न होता हो उसको सेवन कराना चाहिए कई स्त्रियों पर परीक्षा कर देखा है। इसमें दूध उत्पन्न करने की अव्यर्थ शक्ति है। जिस स्त्री के बच्चा न भी हुआ हो तो भी इसके सेवन कराने से उसके स्तन में दूध उत्पन्न हो जाता है।
—धन्वन्तरि वर्ष १३ अंक ६

नोट न०५—कालिया कन्द (याजकन्द)—इसके विषय में आधुनिक विद्वान वैद्य वर्गों में तथा आमतौर से सामयिक पत्रों में अत्यधिक चर्चा हो रही है कि इस कन्द के खाने से ८-१० दिन के लिए क्षुधा निवृत्ति होती है तथा शक्ति जैसी की तैसी बनी रहती है। और यह बड़ी मुश्किल से प्राप्त होता है।

इस कन्द के विषय में परिश्रमपूर्वक गहराई से अनुसंधान कर श्री वल्लभराम जी वैद्यराज आयुर्वेद भास्कर ने अभी कुछ दिन हुए जो कुछ अपना निर्णय प्रकाशित किया है उसका सारांश इस प्रकार है—

यह कालिया नामक कन्द प्रस्तुत प्रसंग के वाराही कन्द [Dioscorea Bulbifera] का ही एक भेद विशेष है।

छोटा उदयपुर (गुजरात) के जंगल में से तथा कई अन्य स्थानों से मैंने प्राप्त किया है। वहां के लोग इसे याजकन्द, दुष्कालिया कन्द (दुष्काल के समय विशेष उपयोगी होने से) आदि कहते हैं। यद्यपि दुष्काल के समय वहां के लोग इसे उबाल कर खाते हैं व अपनी क्षुधा निवृत्ति करते हैं तथापि उनके द्वारा ऐसा कहीं भी सुनने में नहीं आया कि इसके खाने से कुछ दिनों के लिये क्षुधा नहीं लगती। अतः यह सिद्ध नहीं होता है कि यह कन्द ८-१० दिन के लिये क्षुधा निवारण करता है, यह एक भ्रमपूर्ण प्रचार मात्र है।

यह कन्द दुर्लभ भी नहीं है। गुजरात में बुलसर से गोलवाद व थाना तक तथा डाग की पहाड़ी, सोलवास, छोटा उदयपुर और पालनपुर की पहाड़ी पर यह अत्यधिक प्रचुरता से पैदा होता है।

इसके गुणधर्म तथा उपयोग त्रिपानी कन्द (Dioscorea Triphylla) के जैसे हैं। उसका वर्णन आगे मण्डा के प्रकरण में देखिये।

कुछ विशेषज्ञों का मत है कि इस कन्द के दो भेद हैं। एक भेद तो वह है जिसके खाने से मुख में दाह, चिमचिमाहट, वेदना तथा वमन होता है। अतः इसे जल में खूब उबाल कर खाने में उपयोग किया जाता है। दूसरे भेद वाले कन्द को उबालने की विशेष आवश्यकता नहीं रहती। शारीरिक दुर्बलता में पुष्टि के लिये तथा कामोत्तेजनार्थ व उदर की दाह शमनार्थ भी इसका उपयोग किया जाता है।

वास्तव में प्रस्तुत प्रसंग के वाराही कन्द के कुल की १६० जातियां हैं जिनमें से ८-१० जातियां भारतवर्ष में प्राप्त होती हैं। श्वेतालु, शकरकन्द, काष्ठालु, कमालु, रक्तालु, पिंडालु आदि कन्द इसी कुल के हैं।

नोट ६—वाराही कन्द नं० २ [Tucca Aspera] आगे के प्रकरण में देखिये।

प्रस्तुत प्रसङ्ग के वाराही कन्द के नाम गुण आदि—

नाम—

सं०—वाराही कन्द। हिन्दी—वाराही कन्द, कडवा कन्द, जमीकन्द, वनवासी, करिन्दा इत्यादि। म०-डुक्कर कन्द कडूकारांदा, मिर्वोली कन्द। गु०—डुक्कर कन्द, वणावेग। बङ्ग०—चोन्दोरेचालु। ले०—डायोस्कोरिया बाल्बिफेरा।

रासायनिक संगठन—

इसके कन्द में स्टार्च प्रचुर मात्रा में पाया जाता है तथा लता में एक विषैला ग्लूकोसाइड होता है।

प्रयोज्याङ्ग—

कन्द तथा फल।

गुण, धर्म व प्रयोग—

लघु, स्निग्ध, कटु तिक्त, मधुर, कटु विपाक, उष्ण वीर्य, त्रिदोषहर, दीपन, अनुलोमन, ग्राही, रक्त सदाहक, कृमिघ्न, रक्तशोधक, वृष्य, तथा अग्निमांद्य, शूल, रक्तातिसार, प्रवाहिका, अर्श, रक्तविकार, गण्डमाला, प्रमेह,

आमवात, कुष्ठ, उदरश स्वप्नदोष, दौर्बल्य आदि मे प्रयुक्त होता है।

नोट—जगलो मे पैदा होने वाला बहुत कडुवा होता है। बागी (बागो मे लगाया हुआ) कडुवा नहीं होता।

(१) दुखदाई घाव, फोडे या व्रणो पर इसके शुष्क फलो के चूर्ण को बुरकते हैं या मरहम बनाकर लगाते हैं।

(२) उदरश, अर्श, आमातिसार, रक्तातिसार, उदर-शूल व आत्र मे—इसके चूर्ण को ३-४ माशा की मात्रा मे, थोडा जीरा चूर्ण व शक्कर मिला दूध के साथ सेवन कराते हैं।

नाडी व्रण मे इससे सिद्ध तेल प्रयुक्त करते है।

(३) अर्श पर विशेषत इसकी बागीलता के फलो को भूनकर चूर्ण कर उसमे घी व मिश्री मिलाकर सेवन कराते है।

(४) अतिसार पर—फलो को या कन्द को पीसकर गाढे करक के रूप मे बनाकर उसमे मक्खन मिलाकर देते हैं।

(५) वीर्य दोष निवारणार्थ—तथा वीर्य वृद्धि के लिए एव रसायन योग—

कन्द का चूर्ण व मिश्री चूर्ण समभाग एकत्र मिश्रण कर ६-६ माशा की मात्रा मे प्रात साय लेकर ऊपर गो-दुग्ध धारोष्ण २० तोला तक सेवन से वीर्यदोष दूर होकर पुष्टि होती है।

वीर्य वृद्धि के लिये—कन्द के चूर्ण के साथ समभाग भागरे का चूर्ण एकत्र खरल कर जरा घी मे भून लेवें, फिर उसमे समभाग मिश्री मिलाकर सुरक्षित रख लेवें। ६ माशे से १ तोला तक चूर्ण को दूध के साथ सेवन से वीर्य वृद्धि होती है। —भा० भै० र०

इसके चूर्ण को यथोचित मात्रानुसार शहद मे मिला कर दूध के साथ सेवन करने और दूध भात तथा घी का आहार करने से वृद्ध पुरुष भी युवा के समान हो जाता है। यह एक रसायन योग है— —ग० नि०

अथवा—कन्द का महीन चूर्ण मिलाकर दूध को पकावें, तथा उसका दही जमाकर घी निकाल लें। यथोचित मात्रा मे उस घी से शहद मिलाकर सेवन करें। यह प्रयोग रसायन है। इसे १ मास तक सेवन करना चाहिए। —ग० नि०

नोट—वाजीकरणार्थ योग—आगे विशिष्ट योगो मे देखें

(६) तृतीयक ज्वर में—इसकी माला या जड का टुकडा पचरगी सूत से बाध कर भुजा अथवा गले में बाधते हैं। —व० गु०

नोट—मात्रा-चूर्ण ३-६ माशा।

वाराही कद के स्थान में कटालु (Dioscorea Pentaphylla) का उपयोग किया जाता है। इसका वर्णन भाग २ मे देखिये।

विशिष्ट योग—

(१) वाजीकरण लेह या पाक—वाराहीकद और सिंघाडे का महीन चूर्ण ४-४ तोला लेकर घी मे भून लें। फिर उसमे १ सेर ,६ तोला दूध तथा आवश्यकतानुसार मिश्री मिला, मद आच पर पकावे। गाढा हो जाने पर उसमे लौंग, पिप्पली, अगर व नागकेशर का चूरा १-१ तोला मिलाकर रख लें। पाक करना हो तो उक्त दोनो के चूर्ण को दूध मे पकाने पर खोया जैसा होजाने पर उसमे उक्त ४ द्रव्यो के चूर्ण को अच्छी तरह मिलाकर १ सेर मिश्री की चाशनी में मिलाकर पाक जमा देवें।

१ तोला की मात्रा मे प्रात सेवन करने से शीघ्र कामोत्तेजना होती है। नपुन्सकता दूर होती है।

नोट—उत्तमोत्तम पाको के प्रयोग हमारे 'वृहत्पाक सग्रह' मे देखे।

वाराहीकंद नं. २ (Tacca Aspera)

सूरन कुल (Taccaceae) की इस लता के पत्र पान के जैसे ८-१६ इन्च लम्बे, ४-८ इन्च चौडे अग्रभाग नुकीला पुष्प अवनत, पीताभ,बैंगनी रग के, फल—१½ इन्च के,लम्बाकृति, रोमश। कन्द—लम्बगोल, काले रग
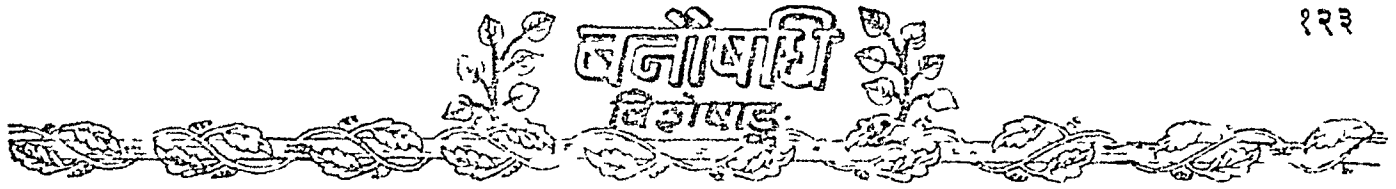
बाराही कन्द
TACCA ASPERA Roxb

के, शूकर के रोम जैसे रोमो से आच्छादित, स्वाद मे विशेषत कच्ची दशा मे बहुत कडवे। भीतर से हलके पीले रग के होते हैं। वर्षा के अन्त मे शरद् काल मे पुष्प तथा बाद मे फल आते हे।

यह बगाल, कोकण, मध्यभारत एव उष्ण भागो के पर्वतो पर अधिक पैदा होता है।

नाम–

स — बाराहीकन्द। हि — बाराहीकन्द, भेवर कन्द, मिरवोलीकद। म — साकराकद, डुक्करकन्द, देवकाडो।

गु — वणावेल, एकलकन्द। व — बाराहीकन्द।
ले—टेक्का एस्पेरा, टेक्का ईन्टेग्रिफोलिया (Tacca Integrifolia) टेक्का लेविस (Tacca lavis)।

रासायनिक संगठन–

इस कन्द मे स्टार्च अधिक होता है।

गुण धर्म व प्रयोग–

कटु तिक्त, उष्णवीर्य, वल्य, पित्तकारक, रसायन, कामोद्दीपक, वीर्य, क्षुधा व कातिवर्धक, स्वर शुद्धिकारक तथा कुष्ठ, प्रमेह, कफवात, कृमि, अर्श, गुल्म, शोथ, मूत्र कृच्छ्रादि मे उपयोगी है।

जीर्ण चर्मरोगों मे इसका शर्वत देते है। इस कन्द का स्टार्च हलका व पौष्टिक है। जीर्ण आमातिसार मे इसकी पेया बनाकर दी जाती है।

मात्रा—चूर्ण ३-६ माशा तक।

बारीक भवरी—देखो—मिरचाई। बालगू—देखो—तुलसी बालगा।
वाल छड—देखो—जटामासी। बालवच—देखो - वच

बालरक्षा (Gnaphalium luteoalbum)

भृङ्गराज कुल [Compositae] के इस छोटे क्षुप के पत्र २ ५--३ ६ सें० मी० लम्बे तथा १ ३–३ सें० मी० चौडे वृन्त रहित होते है। पुष्प—छोटे अग्रभाग पर पीले रग के होते हैं।

ये क्षुप भारत के उष्ण प्रदेशो मे विशेष पैदा होते हैं।

नाम–

हि०—बालरक्षा। अ०—जेरसी कुडवीड (Jersey cudweed)। ले—नेफेलियम ल्युटोएलबम।

गुण धर्म व प्रयोग–

इसके पत्र सकोचक, व्रणपूरक हैं, वायु शुद्धि के लिये पत्तो को घर मे जलाते है, व्रणोपर पत्र चूर्ण बुरकते हैं।

बालसन—देखो—वलसा। बालुज—देखें—वेदसादा।

बालूका साग (Gisekia Pharnaceoides)

झारस कुल (Ficoideae) के इस बहुशाखी क्षुप के पत्र मासल, अग्रड, अण्डाकार लगभग १ इञ्च लम्बे होते है। बीज काले रग के गोल, चिपटे से होते है।

इसके क्षुप पजाब, सिन्धु, दक्षिण महाराष्ट्र व सीलोन मे विशेष पाये जाते है।

नाम–

स०—बालुका, कुष्ठ गन्धी, एलवालुक इत्यादि। हिन्दी—वालुका साग। म०—बालूची भाजी। व०—वालुक। ले०—जिसेकिया फरनेसीओआइडिस।

रासायनिक सगठन–

इसके बीजो में टेनिन सदृश आल्फाजिसेकिया व बेटा जिसेकिया (Alpha Giselia and beta Gisekia) नामक पदार्थ पाये जाते है।

गुण, धर्म व प्रयोग—

कटु, तिक्त, दीपन, कृमिघ्न, कृमिनाशक, मूत्रविरेचक, व्रण रोपक तथा कडू, तथा अग्निमांद्य, हृदरोग, कुष्ठ, शोथ, मूत्रविकार आदि मे उपयोगी है।

इसके पञ्चांग के स्वरस २½ तोला मे समभाग जल मिलाकर प्रात खाली पेट पिलाते है। यह प्रयोग बीचबीच में छोड कर ४ दिन तक किया जाता है। इससे उदर, आत्र के चिपटे कृमि नष्ट होते है।

बावची (Psorala Corylifolia)

गुडूच्यादि वर्ग एव शिम्बीकुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) के इस १ ६ फुट ऊचे वर्षायु क्षुप का काण्ड व शाखायें झुर्रीदार किंचित श्वेत, रोमश, गाठो से आवृत, काण्ड सरल, शाखाएँ दृढ, पत्र-साधारण, लम्बगोल, एकातर, १-३ इञ्च लम्बे, १-२ इञ्च चौडे, कडे, किनारे पर कगूरेदार, दन्तुर, प्राय चिकने या दोनो ओर श्वेतरोमावृत्त, काले रग के कुछ छीटो से युक्त, पत्रवृन्त–लगभग ½-१ इञ्च लम्बा, (शाखा, पत्र प्राय ग्रन्थियो के चिन्ह युक्त) पुष्प—पत्र कोणो से निकले हुये १-३ इञ्च लम्बे पुष्प दण्डो पर बहुत छोटे-छोटे नीलाभ बैगनी पखुडी वाले १ ३० पुष्प गुच्छो मे आते है। फल—एक बीजयुक्त फली के रूप मे चिकने, पुष्प गुच्छ से ही निकलते हैं। कच्ची दशा मे हरे रग की ये फलिया पकने पर काली हो जाती है। बीज—मसूर के दाने जैसे कडे खुरखुरे किन्तु कुछ बडे, काले या गहरे भूरे, गोल, किंचित लम्बे, चपटे, कडे, खुरदरे, किंतु ऊपरी छिलका मुलायम गले होते हे। बीज का फलावरण बीज से सदैव चिपका रहता है। बीज का भीतरी भाग श्वेत, स्वाद मे तिक्त, चरपरा तथा गध, वेल के फल जैसी प्रिय होती है। इन बीजो को ही बावची कहते हैं।

पुष्प शीतकाल मे प्राय अगस्त से दिसम्बर तक तथा पश्चात शीत के अन्त मे फल आते है। उष्ण काल मे पौधे शुष्क हो जाते हे। किन्तु सावधानी से धूप से रक्षा एव जल के सिचन आदि करते रहने से कई वर्ष तक ये पुष्प व फल देते रहते है।

इसके पौधे प्राय समस्त भारत के जगलो, झाडियो, खादरो एव ककरीली भूमि मे तथा खेतो की बाड पर, बङ्गाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, बम्बई आदि मे और सीलोन में भी विशेष पैदा होते है। अमेरिका मे भी इसकी कई उपजातिया पैदा होती हे जिनके गुण धर्म प्राय सबके एक समान हे।

नोट नम्बर १—श्वेत बावची का उल्लेख भी कही कही पाया जाता है। सुश्रुत के चिकित्सा स्थान के मेधायुष्कामीय रसायन शीर्षक अ० २८ मे 'श्वेतावल्गुज' नाम आया है। 'अवल्गुज' कहते है वाकुची (बावची) को। टीकाकार ने श्वेत बावची लिखा है। यह श्वेत बावची क्या है?

धन्वन्तरि के वर्ष १६ के अनुभवाक मे हरद्वार के

श्री पं० शिवचन्द्र जी राजवैद्य ने प्रकाशित किया है कि "सफेद बावची को मुष्क दाना भी कहते है। मुश्कदाने का वर्णन हमने वनौषधि विशेषाङ्क भाग २ मे कस्तूरी दाना के प्रकरण मे दिया है।) यह मरुस्थल, जैसलमेर के गामो मे प्राय आश्विन, कार्तिक मे प्राप्त होती है।" (सम्भवत यह कस्तूरीदाना या सर्व प्रसिद्ध मुश्कदाने [Hibiscus Abemoschus मे कोई भिन्न बूटी है) इस श्वेत बावची के स्वानुभूत प्रयोगो मे राजवैद्य जी लिखते है कि इसे १ सेर लेकर ४ दिन तक गोमूत्र मे भिगो ऊपर का छिलका दूर कर चूर्ण करले। १-१ तोला प्रात साय छोटी मक्खी के शहद मे मिलाकर चटावें तथा ऊपर से आवले के पत्र व नीम पत्र का ४ तोला स्वरस पिलाते रहे। एक मास मे श्वेत कुष्ठ, स्त्री रोग नष्ट होता है, यह ध्यान रहे कि रोगी ५०-६० वर्ष से ऊपर की आयु का न हो यह हमारा स्वानुभूत प्रयोग है।
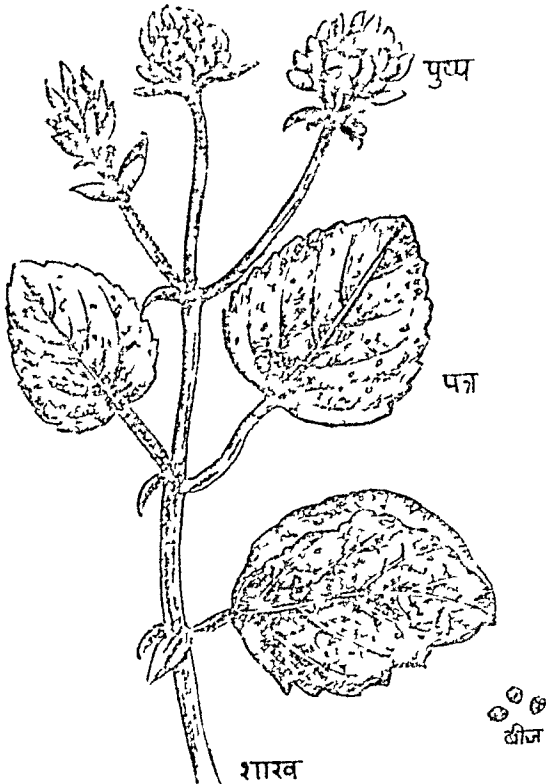
सुश्रुत ने उक्त रासायनिक प्रयोग मे श्वेत और काली दोनो बावची का उल्लेख किया है। वे लिखते है कि—बुद्धि व आयु की कामना वाला व्यक्ति, धूप मे शुष्क किये गये श्वेत बावची के बीजो का महीन चूर्ण कर उसमे गुड मिला घी के घडे मे ७ दिन तक धान के ढेर मे रखें। फिर वमन विरेचन के द्वारा शुद्ध शरीर होकर शक्ति के अनुसार सूर्योदय से पूर्व औषध पिंड (४ तोला तक) सेवन कर ऊपर से उष्ण जल पीवे। कुटि प्रवेश विधि से इसका सेवन करें। औषधि का पाचन होने पर—अपराह्न मे, शीतल जल से स्नान कर शाली व साठी चावलो का मिश्रित दूध के साथ भोजन करें। इस प्रकार ६ मास के सेवन से स्मृतिशाली, मेधावी, निरोगी एव दीर्घायु जीवन की प्राप्ति होती है।

फिर इसी प्रसग मे आगे लिखते है कि कुष्ठी, पाडु रोगी या उदर रोगी को काली (कृष्णया) बावची के बीजो का चूरा गोमूत्र मे घोलकर आधे पल (२ तोला) की मात्रा मे उष काल में पिलावे। दो पहर के बाद लवणरहित आवले के यूष के साथ घी मिला हुआ भात रोगी भोजन करे। इस प्रकार १ मास के सेवन से रोगी निरोग, स्मृतिशाली एव दीर्घायु होता है।

नोट न० २—बावची के लिये जो 'सोमराजी' पर्यायवाची नाम हे वह उपयुक्त है। सोमराजी शब्द से कालीजीरी लेना यह अर्थ का अनर्थ करना है। यद्यपि काली जीरी रक्तशोधक, त्वग्दोषहर, कुष्ठघ्न भी है, तथापि वह सोमराजी या बावची से एकदम भिन्न है। इस विषय मे हमने प्रयोगानुसार, कालीजीरी के प्रकरण मे कुछ विस्तार से लिखा है। भाग २ मे कालीजीरी के प्रकरण मे निम्नांकित टिप्पणी देखिये।

नोट—न ३—चरक के तिक्तस्कन्ध मे इसका उल्लेख है तथा अर्श आदि अनेक रोगो मे इसका प्रयोग है। सुश्रुत के कटुवर्ग मे तथा अनेक रोगो मे इसकी योजना है, इसके अतिरिक्त मेधायुष्कामीय अध्याय २८ मे उक्त नोट न० १ मे कथित इसका रसायन कल्प भी दिया है।

नाम--

स०—बाकुची (वायु शमन करने वाली), कृष्णफला,
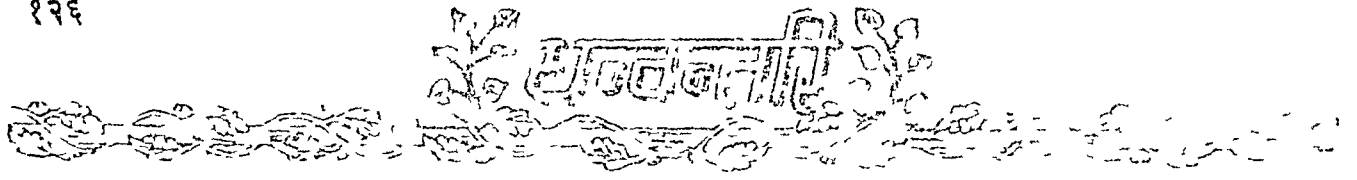
पूतिफली (फल से दुर्गन्ध आने से), कुष्ठघ्नी, सोमराजी, अवलगुज इ०। हि०—बावची, बाकुची। म०—बावची। गु०—बावची। ब०—हाकुच। अ०—एस्कुलेंट फ्लाकुर्टिया (Esculant flacurtia) पर्पल फ्लीबेन (Purple flea bane), मलाया टी (Malaya tea)। ले०—सोरेलिया कोरिलीफोलिया।

रासायनिक संगठन—

इसके बीजो में—एक पीताभ उडनशील तैल १५-२० % तक, एक स्थिर तैल, एव सोरलेन (Psoralen) तथा आइसोसोरलेन (Iso-psoralen) नामक दो रवेदार क्षार तत्व ७½% (इसका कृमिघ्न एवं त्वग्दोषहर गुण इन्ही सार तत्वो के मिश्रण से है) इसे वर्मोनिन (Vermo nine) भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त अलब्युमिन, शर्करा, राल, मैंगनीज आदि भी पाये जाते है। इसका उडनशील तेल सर्वाधिक क्रियाशील है।

प्रयोज्याग—बीज, बीज तैल व पत्र।

शोधन—बीजो को गोमूत्र में या अदरख के रस मे ७ दिन तक भिगोकर शुष्क कर लेने से शुद्धि हो जाती है। विशेषत उदर सेवनार्थ यह उपयोगी है। बाह्य प्रयोगार्थ शोधन की प्राय आवश्यकता नही रहती।

गुण धर्म व प्रयोग--

लघु, रूक्ष, तिक्त कटु, मधुर, कटुविपाक, उष्णवीर्य कफ वात शामक, पित्तवर्धक, दीपन, पाचन, अनुलोमन, कटुपौष्टिक, सौम्य उत्तेजक, यकृदुत्तेजक, विष्टम्भ नाशक, वाजीकरण, कुष्ठघ्न, केश्य, स्वेदल, व्रणशोधन रोपण, तथा नाडी दौर्बल्य, अग्निमांद्य, रक्तपित्त, शोथ, आमदोष, कृमि विशेषत गण्डूपद कृमि, अर्श, हृदय शैथिल्य, कास, दद्रु, प्रमेह, नपुंसकता, श्वेतकुष्ठ, चर्मरोग, जीर्ण ज्वर, पाण्डु आदि में प्रयुक्त होता है।

नव्य मतानुसार—इसका कीटाणुनाशक गुण श्वेत कुष्ठ एव अन्य त्वचा के विकारो में अति उपयोगी सिद्ध हुआ है। श्वेत कुष्ठ मे इसका अन्तर्बाह्य प्रयोग किया जाता है। इसके तैल या बीज के उदर सेवन से इसका स्निग्धाश जो रक्त में प्रविष्ट होता है, वह तदन्तर्गत दूषित मल, विष एव कीटाणु को नष्ट तथा रंजक द्रव्य (Haemoglobin) की वृद्धि करता है। इसके सेवन से त्वचामार्ग से जो तेल द्रव्य बाहर निकलता है वह त्वचा मे उग्रता लाता, रक्ताभिसरण बढाता एवं त्वचाश्रय में स्थित कीटाणुओं को जला देता है। जो अश आत्र में प्रविष्ट होता है, वह स्थानीय पूतिहर (local antiseptic) क्रिया करता है, जिससे रस की शुद्धि एवं रक्तादिधातुओं की भी शुद्धि व बलवृद्धि होती है। यह उक्त ३ प्रकार से त्वचा रोग आदि मे लाभ पहुचाता है। किंतु जीर्ण व्याधि पर दीर्घकाल पर्यन्त इसका उपयोग करना चाहिये वृद्धो की अपेक्षा युवा को विशेष लाभ होता है।

यूनानी मत से—यह दूसरे दर्जे मे उष्ण व रूक्ष है वायु को विखेरती है। अन्तरमल को मृदुकारक, क्षुधा जनक, आमाशय के कीडो को नष्ट करती, श्वेत कुष्ठ स्याह कुष्ठ, खुजली, और रक्त के विकारो को दूर करती है। इन रोगो मे इसका खाना व लगाना दोनो मुफीद है यह कफज्वर नाशक, कृमि रोग को दूर करने वाली मूत्रमार्ग के घाव का शोधन करने वाली है। यदि स्त्री मासिक धर्म से शुद्ध होकर इसके बीजो को तेल में पीस कर योनि मे रख लेवें तो वह बांझ हो जाती है। इसके बीज गाढ़े कफ को पतला करते है। खासी को मिटाते व मसूढो को मजबूत करते है।

(१) श्वेत कुष्ठ तथा अन्य कुष्ठ विकारो पर—प्रथम दिन इसके ५ दानो से प्रारम्भ कर प्रतिदिन १-१ दाना बढाते हुए २१ तक बढावे। फिर १-१ दाना घटावे। इस प्रकार प्रतिदिन प्रात ठंडे जल से दानो को निगल जाया करें। एक मास मे १ आवृत्ति पूरी होती है। आवश्यकतानुसार रोग शमन होने तक २-४ आवृत्ति करें। साथ साथ केवल बावची तैल अथवा बावची और तुवरक (चालमोगरे) का तेल मिलाकर श्वेतकुष्ठ पर लगाते रहे। —श्री प यादव जी त्रिकम जी आचार्य

रोगी को अम्ल, लवण तथा चरपरे पदार्थों का त्याग करना चाहिये। चावल, जौ या गेहू की रोटी को विना खटाई, नमक एव गरममसाला डाले मूग के यूष के साथ खाना चाहिये व मीठे फलो का खावे। अथवा—

इसके बीजो के साथ चौथाई भाग तबकिया हरताल मिला गोमूत्र मे पीसकर श्वेत कुष्ठ पर लेप करे (या विशिष्ट योगो मे दिये हुये श्वित्रारि लेप का प्रयोग करे) तथा इसके बीजो के साथ आवले व खैर छाल समभाग जौकुट कर २-२ तोला चूर्ण का प्रात साय ३२ तोला जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर सेवन करावे । १-२ मास में लाभ हो जाता है ।

अथवा—इसके बीजो को जल के साथ पीस कर मटकी के भीतर लेप कर उसमे दूध भर कर दही जमा लेवें । फिर मथकर मक्खन निकाल कर घृत बनालें । इस घृत का सेवन शहद के साथ प्रतिदिन प्रात करते रहने से २-३ मास मे लाभ हो जाता है ।

(आगे विशिष्टयोगो मे श्वित्रारि योग व वाकुचादि लोह का प्रयोग देखें) ।

अथवा—बीजो का चूर्ण १½ रत्ती का मिश्रण (यह १ मात्रा है) त्रिफला के क्वाथ के साथ, मधु मिलाकर प्रातः साय सेवन करें ।

लगाने के लिए मलहम—बीजो को पत्थर के खरल मे घोटकर किया चूर्ण ½ सेर लेकर मिट्टी के पात्र मे ५ सेर जल के साथ पकावें । चतुर्थांश जल शेष रहने पर छानकर पुन उसी पात्र मे छाने हुए जल में उत्तम मोम १० तोला मिला पकावें । पानी के जल जाने पर मोम मलहम सा हो जावेगा । इसे चीनी या काच के पात्र मे रखें इसे नित्य श्वेत दागों पर लगावे । यदि लगाने से छाले पड जावे तो लगाना बन्द करें । आराम होने पर फिर लगावें । यदि शरीर मे दाग अधिक हो तो धीरे धीरे जब पहले वाले ठीक हो जावे तब दूसरो मे लगावे । अवश्य लाभ होगा । साथ ही निम्न कुष्ठहरासव का भी सेवन करावें—

दारुहल्दी, नीम छाल, गोरखमुण्डी के फूल इनका जौकुट चूर्ण व गुड समभाग लेकर सधान पात्र में ६ गुना जल मिला, मुख मुद्रा कर पृथ्वी में गाड कर ऊपर घोडे की लीद भर देवें । १५ दिन या ३० दिन बाद, निकाल, छानकर बोतल में भर लें । प्रात साय ६-६ माशा पिलावें ।

पथ्य में खटाई, प्याज, लहसुन, मास, मदिरा, लाल मिर्च, तैल व मैथुन का निषेध है ।

—स्व. प० भागीरथ स्वामी रसायन शास्त्री ।

मलहम न० २—इसके ५ तोला बीजो के साथ समभाग सत्यानाशी (स्वर्ण क्षीरी) के ताजे पुष्प और नीम की कोपल लेकर उसमें नीबू के बीज १½ तोला, हाथीदात का बुरादा २½ तोला मिला, सबको एकत्र त्रिफला के क्वाथ मे खूब खरल करे । फिर मिट्टी के पात्र में मन्द आग पर पकावे । लेहीसी बन जाने पर उसमें लोह भस्म १½ तोला तथा आवश्यकतानुसार ग्लिसरीन मिला मलहम बनालें । काच के पात्र मे रखें । रोज रात्रि के समय इसे लगाकर सोवें । प्रातः शौचादि से निवृत्त होकर निम्न तैल की मालिश करें—

आधा सेर तिल तैल में रतन जोत व लाक्षा २० २० तोले का क्वाथ मिला मन्द आग पर पकावे । तैल मात्र शेष रहने पर उसमें बावची बीजो का चूर्ण ५ तोला मिला नीचे उतार कर ठण्डा होने पर मालिश करें तथा धूप में २०-२५ मिनट बैठकर उत्तम किस्म का नीम का साबुन या कार्बोलिक साबुन लगा स्नान करे । मुलायम तौलिये से पोंछे रगडे नहीं । इस प्रकार कुछ दिनो के प्रयोग से सफेद दाग मिट जावेगे ।

पथ्य मे—दूध मे केशर मिलाकर पिलावे, या चना गेहूं आदि की रोटी एवं पत्तियो का शाक खिलावे ।

—श्री प्राणाचार्य सच्चिदानन्द दाधीच

अथवा—(सर्व प्रकार के कुष्ठो पर) बावची व हल्दी २-२ भाग, घर का धुआ १ भाग, तीनो को गोमूत्र में ७२ घटे खरल करें । मलहम जैसा हो जाने पर काच के पात्र मे रखे । इसे दिन में ३ ४ बार लगावे । तथा इसीमें से प्रात ६ माशा की मात्रा को गोमूत्र व चिरायते के क्वाथ २-२ तोला मे मिला पिलावे । भोजन के बाद बृहन्मजिष्ठादि क्वाथ २ तोला तक, समभाग जल मिला ४० दिन तक, पिलावे । पथ्य मे लालमिर्च, मद्य, मास, तैल, गुड, दूध, चावल, उर्द की दाल, चाय न लेवे ।

—श्री प० जगदीशप्रसाद मिश्र शास्त्री

अथवा—बावची को १२ दिन तक गोमूत्र में प्रतिदिन

गोमूत्र बदलते हुए रखे। फिर निकाल, धोकर, छिलका उतार कर शुष्क चूर्ण कर उसमे शुद्ध गधक अर्ध भाग मिला कर रखे दिन मे २-३ बार, ३ माशा तक की मात्रा मे गगा जल के साथ सेवन करे। श्वेत कुष्ठ दूर होता है।

अथवा—बावची चूर्ण और शुद्ध गधक समभाग एकत्र खरल कर रखें। इसमें से १ तोला चूर्ण को ५ तोला जल मे प्रात भिगो कर शाम को ममल छानकर पिलावे। छानने पर जो मिट्टी बचेगी, उसीके बराबर अनार पुष्प मिला पानी या गोमूत्र से पीसकर लेप करे। पथ्यपूर्वक इस प्रयोग से श्वेत कुष्ठ मे अवश्य लाभ होता है—

—श्री रामशरण सिंह आयुर्वेदाचार्य

अथवा—बावची और काबुली अजीर समभाग चूर्ण कर प्रात साय ६-६ माशा गोमूत्र २ तोला के साथ देवे।

पथ्य मे—दूध, दही न देवे। उत्तम घृत मिली हुई चने की रोटी खावे।

अथवा—हाथी की लीद की भस्म १० से २४ तोला लेकर उसको हाथी मूत्र में ही (मूत्र भस्म से ६ गुना हो) मिला कम से कम ७ बार छान कर उसी मूत्र मे मूत्र का दशमाश बावची चूर्ण मिला पकावे। गाढा हो जाने पर उतार कर गुटिका बना लें। इसे घिसकर श्वित्र पर लेप करते रहने से वह स्थान शरीर के समान वर्ण वाला हो जाता है। —भै० र०।

अथवा—शशिलेखावटी-शुद्ध पारद, शुद्ध गधक और अभ्रक भस्म समभाग को बावची बीजो के क्वाथ मे एक दिन खरलकर चने जैसी गोलिया बना ले। मात्रा १ से ४ गोली तक शहद या बावची तैल के साथ कुछ दिन सेवन से श्वेत कुष्ठ नष्ट होता है। पथ्य मे चने की रोटी घृत के साथ बिना नमक और कुछ नही खावें।

अथवा—बावची के साथ समभाग श्वेत मूसली और चित्रक चूर्ण कर पथ्यपूर्वक शहद के साथ सेवन से सर्व कुष्ठो का नाश होता है। क्षुधा व बल की वृद्धि होती है।

अथवा—बावची, लाल चन्दन का बुरादा और भागरा पचाग छायाशुष्क किया हुआ समभाग का महीन चूर्णकर रखें। प्रात साय ४-४ मा० मधु से पथ्यपूर्वक लेवें। श्वेत कुष्ठ मे लाभ होता है। —गुप्तयोग रत्नावली।

यूनानी प्रयोग श्वेत कुष्ठ पर—

इसके बीजो को हल्दी व मूली के बीजो के साथ पीस कर, इतवार की रात मे जमाये हुए गाय के दही के तोड मे मिलाकर लगाने से बहुत फायदा होता है।

इसके बीज १० तोला, गेरू व आमलासार गधक २०-२० तोला सबको बासी जल के साथ ६ प्रहर तक खरल कर गोलिया बना दिन मे धूप तथा रात्रि मे खुली छतपर सुखाकर रख ले। इन्हे पानी मे पीस या घिसकर श्वेत दागो पर लगावे। बहुत लाभ होता है।

नव्य मतानुसार प्रयोग—

१ पौंड बावची के बीजो को साफकर महीन चूर्णकर चूर्ण को ६० न० की चलनी में छानकर जैतून के तैल में या मूगफली के तेल में भिगोकर रात्रि के समय रख देवे प्रात तैल निष्कासन यन्त्र द्वारा तैल निकाल लेवे। यह तेल श्वित्र नाशार्थ विशेष गुणकारी है। इसके इस गुण से प्रभावित होकर आजकल के पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता डाक्टर भी इसका वाह्य और आभ्यन्तरीय प्रयोग करने लगे है। तथा मुक्तकण्ठ मे इसके श्वेतकुष्ठ नाशक गुण की प्रशसा करते हैं।

उक्त प्रकार से निष्कासन यत्र (टिंचर प्रेस) में डाल कर प्रपीडन द्वारा या पेर कर (Expression) तैल को निकालकर ऐकमात्र (शीशी) के मुह पर रुई का फोय रखकर उस पर इस तैल मे पुन इतना जैतून या मूगफली का तैल मिलावे कि तैयार तैल की मात्रा २ पौंड हो जाय। इसे अच्छी तरह बन्द पात्र में ठडी जगह मे रखना चाहिए।

यह तैल लघु, कटु, तिक्त, सर, कटु विपाक एव उष्ण वीर्य है। यह कफवातघ्न, कुष्ठघ्न, व्रण शोधक रोपक, रंजन, त्वचा के विकार-श्वेतकुष्ठ, छाजन, गज आदि का निवारण करता हुआ शरीर का रक्षक है। यह श्वित्रकुष्ठ के सब भेदो पर लाभकारी है। इसी तैल के प्रभाव से एक्टन नामक वैज्ञानिक विद्वान ने श्वेत कुष्ठ की चिकित्सा

पूर्ण प्रात-सायं ३-३ माशा चूर्ण गाय के गरम दूध के साथ सेवन से वीर्य की वृद्धि, पुष्टि, स्तम्भन तथा कामोत्तेजना होती है। —सिद्ध योग संग्रह

अथवा—केवल कन्द के चूर्ण को ही ६ मा तक की मात्रा मे, उत्तम घृत १ तोला मिला, दूध के साथ सेवन से उत्तम बलवृद्धि, व पुष्टि होती है। स्वप्नदोष तथा मस्तिष्क की दुर्बलता भी दूर होती है।

नोट—आग विशिष्ट योगो मे–शुक्रसंजीवनी मोदक, वृष्य गुटिका तथा पाक प्रयोग देखिये।

(२) प्रसूता स्त्री के दुग्ध के लिये, तथा सन्धिशोथ व रक्तार्श पर—

कन्द के चूर्ण मे खाड या मिश्री मिलाकर दूध के साथ सेवन कराने से स्त्री का शरीर पुष्ट होकर, स्तनो मे खूब दूध आता है —वा से।

सन्धिशोथ पर कन्द को जल के साथ पीस कर गरम कर लेप करते है।

रक्तार्श पर—कन्द के चूर्ण के साथ तिल का चूर्ण मिला २ से ६ मा तक की मात्रा मे शहद और दूध के साथ सेवन कराते है।

(३) वाजीकरणार्थ—कन्द के कल्क को गूलर के फल की मात्रा मे (१ तो तक) उष्ण दूध के साथ पीनेसे यथेच्छ कामवृद्धि होती है।

अथवा—कन्द के महीन चूर्ण मे इस कन्द के ही स्वरस की भावना देकर घृत और मधु के साथ सेवन से भी खूब कामोत्तेजना होती है —सु चि, अ २६

वीर्यवृद्धि के लिये–इसके कन्द के साथ गोखरू, मूसली, आमला, सेंधानमक व पिप्पली समभाग का एकत्र चूर्ण कर उसमे चूर्ण के बराबर खाट मिला कर रखें। ६ मा. तक की मात्रा मे, इसे दूध के साथ सेवन करें। —हा म

शेष वाजीकरण के प्रयोग विशिष्ट योगो मे देखिये।

(४) विषमज्वर पर—कन्द का रस, ईख का रस, शहद, घृत व तिल तैल १-१ भाग लेकर ८ भाग गरम किये हुये दूध मे मिलाकर पिलाने से विषमज्वर नष्ट होता है। —च द

(५) प्रमेह, भस्मक रोग, उदरशूल, बहुमूत्र, सिर दर्द दाह तृषा व दन्त रोग पर—

प्रमेह पर—कन्द के रस १० तो मे मिश्री व श्वेत जीरे का चूर्ण २-२ माशा मिलाकर सेवन करावे।

भस्मक रोग पर—(विदारी घृत) कन्द का रस और दूध ४-४ सेर, भैंस का घृत १ सेर तथा जीवनीय गण का कल्क १६ तोला सबको एकत्र मिला मन्द आग पर पकावे घृत मात्र शेष रहने पर छान लवे। २ से ५ तोला तक की मात्रा मे, इस घृत के सेवन से भस्मक रोग मे लाभ होता है। —वा मे.

शूलपर—कन्द के रस के साथ अनार का रस मिला कर उसमें त्रिकुट व सेंधा नमक का चूर्ण मिलाकर पीने से त्रिदोषज शूल शीघ्र ही नष्ट होता है। —भा भै र

बहुमूत्र पर—कन्द के चूर्ण को घृत मे भूनकर उसमे लौंग, इलायची, जायफल, जावित्री, पीपलामूल व दालचीनी का समभाग चूर्ण मिला, सब चूर्ण का चतुर्थांश सोंठ चूर्ण और चूर्ण का १६ वां भाग पिप्पली चूर्ण, मिलावें। फिर उसमे सब चूर्ण के समभाग शक्कर मिला, घृत के साथ घोटकर १ या २ तोला की गोलिया बना रखें। प्रात तथा रात्रि मे सोते समय १-१ गोली सेवन करें। —व० गु०।

सिर दर्द पर—कन्द को पीसकर लेप करने से दर्द दूर होता है। —व० गु०।

दाह व तृषा पर—कन्द के साथ अनारदाना, लोध्र, कैथ और बिजौरे नीबू का गूदा समभाग एकत्र पीसकर सिर पर (तालू पर) लेप करने से विशेषत ज्वर जन्य दाह व तृषा की शांति होती है। —भै र.

दन्त रोग पर—[विदार्यादि तैल] विदारि कन्द, मुलेठी, सिंघाडा व कसेरू २-२ तोला एकत्र जल के साथ पीसकर कल्क करे। इसे २ सेर दूध तथा १६ तोला तिल मे मिला पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लें। इस तैल की नस्य लेने से दन्त रोग नष्ट होता है। —भै० र०

नोट—मात्रा—कन्द चूर्ण ३ से ६ माशा तक।

अत्यधिक मात्रा मे यह वमनकारी है। तथा उष्ण प्रकृति वालो के लिये अहितकर है।

विशिष्ट योग—

(१) शुक्रसजीवनी मोदक—विदारीकन्द का चूर्ण ५६ तोला, सिहोडा (शाखोट) के बीज ८ तोला, धान की खील १६ तोला, मिश्री और दूध ५-५ सेर सबको एकत्र मिलाकर पकावे। अवलेह जैसा गाढा हो जाने पर नीचे उतारकर उसमे जायफल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, कचूर, गठौना, अजवायन, त्रिकुट (सोठ, मिरच, पिप्पली) प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोला मिलाकर मोदक बनावें। १ से २ तोला तक सेवन से बल, वीर्य और तेज की वृद्धि होती है। —भा भै. र.

(२) वाजीकरणार्थ—

विदार्यादि योग—पिप्पली, आमला, मुनक्का व मुलैठी समभाग का चूर्ण कर (एकत्र पीसकर) उसे विदारी कन्द के रस की लगभग ७ भावनायें देकर सुखा लेवें। फिर उसमें सबके बराबर मिश्री मिलाकर सुरक्षित रखें। मात्रा ६ माशा तक शहद और घृत के साथ चाटकर दूध पीने से उत्तम वाजीकरण होता है। —ग नि.

योग नं० २ (वृष्य गुटिका)—गो घृत १ भाग को १०० भाग विदारी कन्द के रस के साथ पकावें। जब थोडा सा रस अवशिष्ट रह जावे तब उतार कर उसमें १०० भाग गोदुग्ध (दुग्ध, घृत से १०० गुना हो) मिला कर पुन: पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर उसमे खाड, वशलोचन का चूर्ण, शहद, तालमखाने का चूर्ण (पाठ मे 'इक्षुरस' शब्द है। ईक्षुरस से ईख का रस तथा तालमखाना भी दोनो का बोध होता है किंतु यहा अब इस मे ईख का रस मिलाने से गुटिका विगड जावेगी अत ताल मखाना ही लेना उपयुक्त है) पिप्पली चूर्ण और कौंच के बीजो का चूर्ण घृत मे चतुर्थांश प्रमाण में मिला गूलर के समान गोलियां बना लेवे। आधुनिक मात्रा इसकी ८ माशे तक पर्याप्त है। इसके सेवन से कामशक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है। —च० चि० अ० २।

योग नं ३ (वृष्य योग)-विदारी कन्द चूर्ण १ प्रस्थ (६४ तोला) खांड १ तुला (५ सेर), गोघृत ५ सेर, पिप्पली चूर्ण ६४ तोला, वंशलोचन चूर्ण १२८ तोला (१ सेर ४८ तोला) ताजा शहद ३ सेर १६ तोला इन सबको एकत्र मिलाकर घी से चिकने किए हुए मिट्टी के पात्र में भरकर रख देवें। अग्नि बलोचित मात्रानुसार (१ से ४ तोला तक) प्रात काल इनके सेवन से यथेष्ट बल वीर्य बढता एवं कामोत्तेजना होती है। —च चि. अ २

(३) विदारीकन्दादि पाक—विदारीकन्द का चूर्ण आधा सेर, श्वेत मूसली, कौंच बीज, शतावर, गोखरू ६-६ तोला, छोटी इलायची, जायफल, वशलोचन २-२ तोला, लौंग एक तोला इनका महीन चूर्ण तथा बादाम गिरी, कतरी हुई चिरौंजी, पिस्ता व कसेरू ४-४ तोला इन सब को एक सेर ताजे खोये मे मिला फिर सबको आधा सेर घृत मे मद आंचपर सेंक कर पाक जमा दें। २ से ४ तोला की मात्रा मे प्रात. साय मिश्री मिलाकर पकाये हुए दूध के साथ लेवें। वीर्य स्राव, अशक्ति, धातुविकार प्रमेह आदि रोग दूर होते है।

नोट—विदारी कद के अन्य उत्तमोत्तम पाको के योग हमारे वृहत्पाक सग्रह ग्रथ मे देखिये।

बिदारीकंद नं० २—क्षीरविदारी (Ipomoea paniculata)

त्रिवृत्कुल (Convolvulaceae) की इस आरोहिणी प्रतानिनी (विस्तृत फैलने वाली) लता की शाखायें कुछ पीतवर्ण की। पत्र—हाथ के पजे जैसे ३–७ इञ्च व्यास के ५–७ भागो मे विभक्त। पुष्प—नलिकाकार, गोल ½ इञ्च व्यास के अग्रभाग मे १½-२¼ इञ्च व्यास के बैगनी रंग के वर्षाकाल मे आते हैं। फल—गुच्छो में गोल छोटे छोटे, चार परत वाले। बीज—फल के भीतर एक प्रकार की पर्तदार रुई से ढके हुए त्रिकोणाकार, अर्ध गोल बीज रहते है। वर्षाकाल में इन्ही बीजो से लता पैदा होती है।

कन्द—आकार प्रकार में शकरकन्द [रतालू] के जैसा वजन में अधिक से अधिक १ सेर तक बाहर से कूष्माण्ड जैसा भूरे रग का खुरदरा सा होता है। काटने पर भीतर श्वेत रग का तथा उसमें से बहुत क्षीर [दूध] निकलता है। इसीसे यह क्षीर विदारी कहाता है स्वाद मे यह कुछ कसैला एव कडुआ सा तथा पिष्टमय होता है। इसकी सुखाई हुई कतरिया वजन में बहुत हल्की तथा उनमें चक्राकार मण्डल दिखलाई देते हैं।

यह लता भारतवर्ष के उष्ण प्रान्तो में विशेषतः बगाल व आसाम से सीलोन तक जगलो मे तथा बागो मे बोयी हुई देखी जाती है। अत्यधिक शुष्क प्रदेशो मे तथा पश्चिम की ओर यह नही पैदा होती।

नोट—बगाल की ओर इसका ही एक भेद ट्राइकोसेन्थस-कार्डेटा (Trichosanthes Cordata) भुई कुम्हडा के नाम से प्राप्त होता है। इसकी लता बहुत दूर तक फैली हुई, काण्ड-सुदृढ एव सघन रोमाच्छादित, बहुशाखायुक्त, पत्र–६-८ इञ्च लम्बे, गोल, पान के आकार के अनीदार, किनारे दन्तुर या कगूरेदार; पत्रवृन्त–२-४ इञ्च लम्बा, मजबूत, पुष्प–४ इञ्च लम्बी सलाका पर, बेंगनी रंग के नलिकाकार पुष्प, एक लिंग विशिष्ट एव पखुडियाँ कटे किनारे वाली, फल—चमकीला, लाल, इन्द्रायन के फल जैसा होता है। कन्द—बडा, पेठे के आकार का, पीताभ, स्वाद मे कटु, तिक्त व कसैला होता है।

इसे हिन्दी मे—भुईं कोहडा, पाताल कोहडा। बगला मे—भुईं कामडा, भू कामड़ा, भारवुवा कहते हैं।

यह उत्तर व पूर्व बगाल में तथा पूर्व हिमालय के तल प्रदेशो मे और आसाम से पेगू तक, एव खासिया पहाड की तराइयो मे नेपाल में अधिक पाया जाता है।

इसके कन्द और पुष्प औषधि कार्य मे आते हैं। कद उत्तम शक्तिवर्धक होता है। बिहार (पटना) की ओर इसके शुष्क फलो का चूर्ण १ रत्ती से २॥ रत्ती तक की मात्रा मे उत्तेजक औषधि के रूप में व्यवहृत होता है। ढाका की ओर इसके शुष्क कन्द का चूर्ण ५ रत्ती की मात्रा मे प्लीहा, यकृत एव उदर के विकारो में दिया जाता है। ताजे कन्द को पीसकर तैल में मिलाकर श्वेत कुष्ठ

पर तथा जखमो पर लगाते हैं। —भारतीय बनौषधि

शेष गुण धर्म प्रस्तुत प्रसग के बिदारी कन्द न० २ के अनुसार ही है।

प्रस्तुत प्रसग के कन्द न० २ के नाम, गुण धर्मादि

नाम—

स०—क्षीर बिदारी, क्षीर बल्ली, पयस्विनी। हिन्दी—बिदारीकन्द, बिलाईकन्द, भुई कुम्हडा। म०—दूध भुई कोहडा, हडधाकादा। गु०—विदारीकंद। ब०—भुईकामडा, बिलाई कन्द। ले०—आयपोमीया पेनिकुलेटा, आयपोमीया डिजिटाटा (Ipomoea Digitata) कानव्हलव्हुलस पेनिकुलेटा (connvolvulus-Paniculata)।

रासायनिक संगठन—

इस कन्द मे पिष्टमय पदार्थ (स्टार्च) अधिक होता

है। इसके अतिरिक्त शर्करा १० % एवं अत्यल्प प्रमाण मे निसोथ में पायी जाने वाली आनुलोमिक (मृदुरेचक) राल होती है।

प्रयोज्याग—कन्द और पुष्प।

गुण धर्म व प्रयोग——

कन्द——कटु, तिक्त, कषाय, मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, अनुलोमक, पित्तसारक, वीर्यवर्धक, कामोद्दीपक, रसायन, बल्य, मूत्रल कफकारक, कांतिवर्धक, स्तन्यजनक, स्वरशोधक, क्षुधावर्धक, पाचन तथा पित्त विकार, रक्तविकार, वातजदाह, प्रमेह आदि मे प्रयुक्त होता है।

यह शरीर के वजन को वढाता है। किसी भी कारण से शिथिलता आयी हो, वजन कम हुआ हो तो इसके चूर्ण को घृत मे भूनकर दूध और शर्करा के साथ मिलाकर सेवन से शीघ्र वजन बढता है। काडलिवर आईल (तैल) की अपेक्षा इससे अधिक उत्तम लाभ होता है। इसके सेवन के समय न किसी प्रकार की घृणा होती है, और न शरीर मे कोई दुर्गन्ध आती है। प्रौढ मनुष्यो के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी है। यकृत एवं प्लीहावृद्धि में इसका चूर्ण देने से पित्तस्राव ठीक होकर शौच साफ होता है। दुग्ध वृद्धि के लिए इसे द्राक्षासव के साथ देते हे।

(१) कृशता निवारणार्थ तथा अनियमित मासिक धर्म पर—धूप शुष्क कर कन्द के महीन चूर्ण को मक्खन और शक्कर के साथ तल कर सेवन करने से कृशता दूर होती है, मेद वढना है तथा इसके ही सेवन से स्त्रियो का अनियमित ऋतुस्राव नियमित यथायोग्य प्रमाण में होने लग जाता है।

(२) स्वप्नदोष तथा मूत्रकृच्छ्र और पित्तज शूल पर——इसके ताजे कन्द के रस में जीरा चूर्ण और शक्कर मिलाकर सेवन मे स्वप्नदोष में लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र पर—इसके कन्द के साथ समभाग गोखरु, मुलैठी व नागकेशर लेकर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उसमें शहद मिलाकर सेवन कराते है।

पित्तजशूल मे—कन्द के रस में मधु मिलाकर पिलाते है।

(३) बालको की निर्बलता पर——निर्बल, कृश तथ जिसकी पाचन क्रिया ठीक न हो ऐसे बालक को कन्द का चूर्ण, गेहू और जो का आटा समभाग एकत्र मिला घी मे भूनकर उसमें घी व मधु विषम भाग तथा दूध थोडी मिश्री मिला हलुवा जैसा पका कर १ या २ तोला की मात्रा मे खिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

अथवा कन्द चूर्ण १ माशा को शहद के साथ चटाते रहने से बच्चो की निर्बलता दूर होती है तथा इसके चूर्ण मे पिप्पली चूर्ण व मधु मिलाकर चटाने से पाचन शक्ति वढती है।

पुष्प——इसके पुष्प-गुरु, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाक, कामोद्दीपक, कफकर, वातवर्धक और पित्तनाशक है।

शुष्क पुष्प का चूर्ण १ से २।। रत्ती की मात्रा मे उत्तेजक औषधि के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है।

नोट——मात्रा,—कन्द चूर्ण, १ से ६ माशा तक।

विशिष्ट योग——

बिदारिकन्दादि क्वाथ——बिदारीकन्द, सरिवन, छोटा गोखरु, सतावरी, अनन्तमूल (सारिवा), पुनर्नवामूल, और वडी कटेरी मूल समभाग जोकुट कर २।। तोला चूर्ण को ४० तोला जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर ५ तोला तक की मात्रा में, दिन मे दो बार, प्रतिदिन पिलाने से ज्वर, कफ विकार तथा फुफ्फुस शोथ युक्त-विकार (ब्राकाइटिस) मे विशेष लाभ होना है। ——नाडकर्णी

विधारा* नं० १ (Rourea Santaloides)

गडुच्यादिवर्ग एवं कोनोरेसी [Conoracee] कुल की इस वडी विस्तारवाली बड़े-बड़े वृक्षो पर चढने वाली, वडी-वडी शाखा प्रशाखा युक्त लता की शाखायें बिलकुल त्रिवृत [निशोथ] की शाखा जैसी, किंचित श्वेत मटमैली

* 'वृद्ध दारक' और 'जीर्णदारु' नाम से इसके दो भेद हैं। प्रस्तुत प्रसंग के विधारा (वृद्धदारक) की लता खूब लम्बी होती है। अत यह दीर्घवल्लरी तथा वृद्धावस्था का नाशक (वृद्धत्व दारक नाशक य स) होने से

होती है । अत कई बार इस विधारा और निशोथ मे भ्रम हो जाता है । तथा बगाल के कई स्थानो के अनजान वैद्यगण त्रिवृत्त [निशोथ] को ही विधारा कहते है । कानपुर की ओर भी निशोथ लता के टुकडे विधारा नाम से बिकते है । काशी बनारस के बाजारो मे प्राय त्रिवृत्त [निशोथ] कुल के ही आइपोमिया पेटालायडी (Ipomoea Petaloidae) नामक लता विशेष के टुकडे विधारा नाम से बेचे जाते है । आगे विधारा न० २ के प्रकरण मे नोट न० ३ देखिये ।

ध्यान रहे निशोथ की लता अधिक से अधिक तीस या चालीस फुट लम्बी होती है, किन्तु प्रस्तुत प्रसग की विधारा की लता १५० से २०० फुट तक लम्बी होती है । दोनो के पत्रो में बहुत कुछ साम्य है । निशोथ के फल कालीमिर्च से कुछ बडे बिलकुल गोल व चिकने होते हैं तथा मूल [जड] महीन और लम्बान मे बहुत थोडी होती है । विधारा की मूल बहुत बडी तथा जमीन मे बहुत ही गहरी गई हुई होती है, जैसे कि दक्षिण में वाकेरी भाजे (अश्मभेदी) की होती है । इसीसे मराठी भाषा मे किसी-किसी ने विधारा को ही 'वाकेरी' नाम दे दिया है । यह मूल देखने मे समुद्रशोष की मूल जैसी ही होती है । तथा दूसरा भेद यह है कि निशोथ अत्यन्त भेदक (दस्तावर) है । विधारा वैसा नही है । पीछे निशोथ का प्रकरण देखें ।

पत्र—विषमवर्ती, दीर्घवर्तुलाकार, अनीदार, गिलोय पत्र या बगलापान जैसे, अधिक सिरा, उपसिरा युक्त, ऊपरी भाग हरा, चिकना, पृष्ठ भाग किंचित श्वेत मखमल जैसा होता है । पत्र को हाथ मे पकडने से बहुत ही मुलायम मालूम देता है । महाराष्ट्र मे कोमल पत्तो की पकोडियां व शाक बनाते हैं ।

पत्र वृन्त या डठल—४-५ इञ्च तक लम्बे, अग्रभाग मे चपटे, बडो एव कुछ काले रग की दो ग्रन्थियुक्त होते है । डठल को तोडने से दूध जैसा द्रव पदार्थ निकलता है। इस प्रकार का दूध समुद्रशोष के पत्र वृन्त से नही निकलता ।

पुष्प—इसकी लता पर पुष्प बारहो महीने गुच्छो में लदे रहते है । डालियो के अन्त में स्थान-स्थान पर पुष्पो का गुच्छा होता है । ये पुष्प कुछ बडे, भीतर से किंचित लाल या गुलाबी रंग के, बाहर से श्वेत वर्ण के, आकार प्रकार में प्राय समुद्रशोष के फल जैसे ही होते है । इनमे एक प्रकार की सुगन्ध भी होती है । पुष्पवृन्त पत्र वृन्त की अपेक्षा कुछ बडे, जिसके आगे छत्राकार फूलो का गुच्छा ऊपर को उठा हुआ होता है तथा उसके अन्दर के कोटर मे पुष्प होते हैं इसीसे इसे अन्तः कोटर पुष्पी भी कहते है । पुष्पो की कलिया बहुत सी निकलती है । जो आकार प्रकार में बडी, गोल, श्वेत रेखायुक्त एव अग्रभाग

वृद्धदारक [दारुक] वृद्ध दारयतीति] कहलाता है । इसकी लता दीर्घकाल तक चिरस्थायी रहने से इसे 'वृद्ध' कहा गया है । लता की आकृति बकरी के आन्त्र सदृश टेढी-मेढी उत्सेध युक्त होने से इसे अजान्त्री या छागलान्त्रिका कहते है । पुष्प बडा एव भीतर के भाग मे कोटर जैसा होने से कोटर पुष्पी कहते है ।

'जीर्णदारु' उक्त वृद्ध दारुक का ही एक भेद विशेष है इसकी लता भी सुदीर्घ ही होती तथा अधिक काल तक रहती है । दोनो मे भेद इतना ही है कि उक्त विधारा प्राय. हर प्रकार की भूमि में होता है, पत्ते बडे अधिक सिरायुक्त होते, फूल कुछ छोटे, कलिया प्राय गोल एव रेखायुक्त, फल शुष्क प्राय होते हैं । तथा यह जीर्णदारु ककरीली, रेतीली एव चिकनी ऐसी मिश्रित भूमि में होता है, पत्ते अपेक्षाकृत कुछ छोटे कम सिरायुक्त व पुष्प कुछ बडे, कलिया छुरी की धार जैसी एव रेखा रहित और फल कोमल होते है । इसका शेष वर्णन ऊपर के नोट न० १ में देखिये ।

आधुनिक मतभेद—अधिकांश मे आधुनिक वैज्ञानिक 'समुद्रशोष' को ही विधारा मानते हैं । तथा दक्षिण मे बम्बई, सूरत आदि के बाजारो मे वरधारा या विधारा के नाम से समुद्रशोष या फाग की मूल या शाखाओ के टुकडे ही प्राय देखने मे आते है । इसका एक मात्र कारण यही है कि समुद्रशोष और विधारा में बहुत कुछ समानता पाई जाती है किंतु दोनो को एक ही मानना निराभ्रम है । आगे विधारा न० २ के प्रकरण मे इसका विस्तृत वर्णन देखिए संक्षेप मे खास पहिचान यह है कि विधारा के ताजे डठल को तोड़ने से उसमें दूध निकलता है समुद्रशोष मे नही निकलता ।

मे बहुत सूक्ष्म या पतली होती है। ये कलिया शीघ्र ही झड जाने वाली होती है।

फल—गोल, निमोडा के फल जैसे ½ से ¾ इन्च तक लम्बे व चिकने प्राय गुच्छो मे लगते हैं। पकने पर नारगी वर्ण के लाल स्वाद में मधुर होते हैं। पके हुए फल किसी खास उपाय के बिना नही टूटते। वैसे वे स्वय टुकडे टुकडे होकर फट जाते है। ये चिरस्थायी होते हैं। इसी से इसे वृद्ध फल भी कहते है। प्रत्येक फल के भीतर एक या दो बीज होते है।

इसकी लता विशेषत चित्रकूट के पास का विंध्य-प्रदेश, बगाल तथा दक्षिण भारत के विशेषत खानदेश, कोकण आदि प्रान्तो से लेकर ट्रावनकोर तक और सीलोन के जगलो में पायी जाती है।

नोट न० १—इसका जो भेद जीर्णदारु है, उसके सस्कृत मे जीर्णा, फंजी, सूक्ष्म पत्रा, सुपुष्पिका, अजरा आदि पर्याय नाम हैं। हिन्दी मे विधारा भेद, काला विधारा तथा बंगला मे विद्धडक कहते हैं। उक्त विधारे का जो शीर्षोक्त लेटिन नाम है वही इसका भी है।

इसकी बहुवर्षायु लता वृक्षो पर चारो ओर से लिपटी हुई, लम्बाई मे उक्त विधारे की अपेक्षा छोटी, कोमल, लता की पसरी हुई शाखायें कुछ कृष्ण वर्ण या जामुन के रग की गोल गोल, छाल-हलके बैंगनी रग की चमकीली होती है। इसकी ताजी छाल या लकडी भी देखने मे ऐसी मालूम देती है कि मानो बहुत वर्षों की पुरानी जीर्ण शीर्ण होगई हो। इसीसे शायद यह 'जीर्णदारु' या जीर्ण वल्कला कहलाती है।

पत्र—इसकी टहनियों की विषमवर्ती सीको पर—पत्ते ३ से ७ तक उक्त विधारा पत्र की अपेक्षा कुछ छोटे, गोलाकार, अनीदार तथा कडे होते हैं। पत्र के मध्य भाग में हलका सब्जरग का रुआ सा होता है। पत्रवृन्त-लम्बा, गोल तथा कुछ रोमश होता है। वृन्त के पास की ग्रन्थिया प्राय उक्त विधारा पत्र वृन्त की ग्रन्थियो जैसी ही होती है। भेद इतना ही है कि ये हरे रग की होती हैं।

पुष्प—चौथाई इन्च के घेरे में (व्यास के), पाच दल वाले, प्राय श्वेत गुलवास या निसोथ के पुष्प जैसे भाद्रपद मास मे आते हैं। कही कही वैशाख से कार्तिक तक इसमें फूल रहते हैं।

फल—समुद्रशोष के फल जैसे ही किंतु आकार में छोटे कोमल, गुठली युक्त होते हैं। फल के पकने पर अन्दर जो बीज निकलते हैं, उन पर कोमल श्वेत पदार्थ का वेष्टन होता है, जो स्वाद में मधुर मालूम देता है। प्रत्येक फल में २ से ४ तक बीज होते हैं।

इस लता के कोमल पत्र या फलों को तोडने पर उन में से दूध निकलता है। वनौषधि अन्वेषक वैद्य हीरामण जगले का कथन है कि दुष्काल के समय गरीब लोग इसके पत्रो पर ही अथवा जीवन निर्वाह करते हैं। अन्य समय मे भी विशेषत आषाढ मास में कोमल पत्रो की पकोडिया बनाई जाती हैं। यह लता खानदेश में सर्वत्र पायी जाती है तथा फाग या फंजिका नाम से प्रख्यात है। निशोथ कुल की फजी या फाग जिसका वर्णन पीछे यथा स्थान किया गया है, उससे मिलती जुलती ही यह लता होती है।

यह लता खडकीली, ककरीली, पथरीली जमीन पर प्राय बम्बई के नीचे पश्चिम घाट में यथा कोकण से ट्रावनकोर तक के प्रदेश में तथा मलाबार व सीलोन में बहुतायत से पाई जाती है।

गुणधर्म मे यह कुछ अल्पवीर्य है*। शेष गुण धर्म प्रस्तुत प्रसग के विधारा जैसे ही मधुर, पिच्छल (लसदार) कफ वातनाशक, बल्य तथा खासी और आम दोष को दूर करने वाला है। रक्त विकारो को दूर करने मे यह सालसापरेला के समान गुणकारी हैं।

नोट न २—चरक मे इसे अधोगुणा तथा अन्त कोटर पुष्पी इन दो पर्यायो से विरेचनार्थ प्रयोग किया गया है तथा इसके उक्त दूसरे भेद 'जीर्णदारु' का प्रयोग 'फजी' नाम से किया गया है। सुश्रुत में वृद्धरुक के लिये 'छगलात्री' नाम दिया गया है, तथा जीर्णदारु को चरक के अनुसार ही फजी नाम दिया गया है।

---

* वृद्धदारु द्वय शैत्य पिच्छिल कफवात हृत।
बल्य कासामदोषघ्न द्वितीय स्वल्प वीर्य कम्॥
—राज निघण्टु

प्रस्तुत प्रसग के विधारा के नाम, गुण धर्मादि—

नाम--

सं०—वृद्धदारुक, आवेगी, दीर्घवल्लरी, वृद्ध (वृद्धा) अजाग्री, छागलान्त्रिका इ । हि०—विधारा, विधापरा, वधारा इ० । म०—वरधारा, म्हैसवेल, म्हातारीचा वेल वाढता देवदार, सावरवेल इ० । गु०—वरधारो । व०—बिताडक, वितरका, विधारका इ० । ले०—रोरिया सेंटेलाइडस । अ० मे भी इसका यही नाम है ।

प्रयोज्याङ्ग—जड या मूल की डंडी ।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु कटु, तिक्त, कषाय, मधुर विपाक, उष्णवीर्य, रसायन, मेधाजनक (बुद्धिवर्धक), स्वर को शुद्ध करने वाला, सारक, दीपक, कातिजनक, कामोद्दीपक, धातुजनक बल्य, रुचिकारक, रसायन, तथा उपदंश, पाडु क्षय, कास, श्वास, प्रमेह, वातरक्त, आमवात, वातविकार, शोथ एवं कफविकार आदि मे प्रयुक्त होता है ।

आधुनिक मतानुसार—इसकी जड का उपयोग कटु पौष्टिक वस्तु की तरह किया जाता है । यह रसायन, बलकारक, तथा वात और फिरङ्ग रोग की अमोघ औषधि मानी गई है । यह सधिवात, स्कर्वी, मधु प्रमेह तथा फुफ्फुस सम्बन्धी शिकायतो में उपयोगी है । व्रण, फोडे, फुसी तथा अन्य चर्म रोगो पर वाह्य उपचार के काम मे ली जाती है ।

यूनानी मतानुसार—उष्ण व रूक्ष है। कफ को दस्तो की राह निकालता, कामशक्ति को बढाता, वातकफ व रक्त दोषो को मिटाता, कब्ज दूर करता है। सुजाक, सूजन, गठिया व गृध्रसी मे लाभदायक है। ३½ माशा की मात्रा में इसे देने से जलोदर मे फायदा होता है। इसमे जो चेप (दूध) होता है, उसके सेवन से रक्त शुद्ध होता है । शरीर सगठन या वीर्य सम्बन्धी खराबी को दूर करने के लिए इसके चूर्ण को दूध के साथ देते है। इसका प्रतिनिधि असगंध है ।

(१) रसायनार्थ—मूल को छायाशुष्क कर, महीन चूर्ण कर सतावरी के रस मे (अथवा क्वाथ मे) भिगोकर धूप मे सुखावे । अच्छी प्रकार सूख जाने पर पुन उसे सतावरी के रस या क्वाथ में घोट कर धूप मे सुखावें। इस प्रकार ७ भावनाये देकर खूब महीन कर काच की शीशी में सुरक्षित रखे ।

प्रथम हलका विरेचन देकर पेट साफ हो जाने पर इसकी मात्रा २ माशा से १ तोला तक गोघृत (६ माशा से २½ तोला) में मिला, नित्य प्रात. साय, रसायन विधि से, एक मास तक या ४० दिन तक सेवन करने से बल वीर्य की वृद्धि होकर बुद्धि, मेधा, स्मरण शक्ति बढेगी तथा बली पलित आदि वृद्धावस्था के विकार दूर होगे । इसके सेवन काल में दूध, भात का भोजन करें । —भै० र० ।

अथवा—इसके चूर्ण को आमला स्वरस की भावनायें देकर घृत के साथ या शहद व घृत के साथ अथवा गोदुग्ध के साथ एक मास तक विधिपूर्वक सेवन से रोगरहित दीर्घायु प्राप्त होती है ।*

अथवा—इसके चूर्ण के साथ समभाग असगन्ध का चूर्ण मिला घृत के पात्र मे रख दें । एक तोला तक की मात्रा मे गोदुग्ध के साथ सेवन करने से विशेष वाजीकरण होता है । कामशक्ति खूब बढती है । यदि इसका सेवन करते हुए ब्रह्मचर्य या संयमपूर्वक रहे तो बली (बालो का झडना या त्वचा मे झुरिया पडना) एवं पलित (बालो का श्वेत होना) रोग नही हो पाते ।

—शार्ङ्गधर ।

अथवा—इसकी जड को वसन्त ऋतु मे उखाड कर धूप में शुष्ककर खूब महीन चूर्ण कर, गोघृत से तरकर घृत पात्र में भरकर मुख बन्द कर अनाज के ढेर मे १५ दिन तक दबाकर रक्खें । पश्चात् निकालकर एक तोला तक की मात्रा मे सेवन कर ऊपर से दूध पीवें । तथा औषध के पच जाने पर घृतयुक्त दूध का आहार करें ।

—ग० नि० ।

---

* 'वाजिवेगो दीर्घप्राण सुरूपो भास्करद्युति. । योलिह्यात्सर्पिषा चूर्णं वृद्धदारुक मूलजम् ॥
लिहन् वा मधुसर्पिर्भ्यां धात्री स्वरस भावितम् । क्षीरेण वा पिबेन्मास शत जीवेदरुक सुखी ॥ (शोढल)

इसके सेवन से वृद्धावस्था में बहुत लाभ होता है। बालकों की कुरूपता दूर होकर उनका स्वर सुधरता, टूटी हुई हड्डी जुड जाती एवं रक्तदोष, अपस्मार, ग्रह, उन्मादादि मे लाभ होता है।

(२) श्लीपद, स्थूलता, आमवात आदि पर—

इसकी मूल ५ तोला तथा सोंठ, कालीमिरच और पिप्पली एक-एक तोला सबका एकत्र कल्क कर उसमे एक सेर घृत और चार सेर काजी मिला, मद आग पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर, छानकर रख लें। मात्रा १-२ तोला तक सेवन करने से श्लीपद व आमवात नष्ट होता है, अग्नि दीप्त होती है।

यदि साथ ही साथ शोथ या शूल, गृध्रसी या पाडु रोग हो, तो उक्त प्रयोग के कल्क मे त्रिफला, पुनर्नवा मूल दारुहलदी व चित्रक एक-एक तोला मिला लेवें। तथा घृत सिद्ध कर लें। यह घृत उक्त सब विकारो को नष्ट कर बल, वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि करता है।

श्लीपद में—केवल इसकी मूल का चूर्ण ही काजी या गोमूत्र के साथ सेवन करते रहने से भी लाभ होता है।

आगे विशिष्ट योगो में 'वृद्ध दारुकादि चूर्ण' का प्रयोग देखें।

दूषित वात विकार, उदर विकार और अर्श पर—

इसके मूल का चूर्ण ७ भाग तथा त्रिफला, पिप्पली, दारुहलदी, सोठ और पुनर्नवा मूल एक-एक भाग, सबका महीन चूर्ण कर, एकत्र अच्छी तरह खरल कर रखें। इसे १ से ६ माशा तक काजी के साथ सेवन से दुष्ट वायु, गुल्म, उदर विकार एवं गर विषादि का नाश होता है। औषध के पच जाने पर यथेच्छ आहार कर सकते हैं।

—ग० नि०

अथवा—उदर विकार पर इसका मूल, छोटी हर्र (बालू मे भूनी हुई), सौंफ, अजवायन, कालीमिरच, सेंधा नमक, श्वेतजीरा, धनिया व आमला समभाग महीन चूर्ण करें। ६ माशा की मात्रा मे प्रात साय जल से लेवें। उदर के सर्व विकारो मे लाभ होता है।

अर्श पर—वृद्धदारुक मोदक—विधारा, शुद्ध भिलावा और सोंठ का चूर्ण एक-एक भाग तथा गुड सबके बराबर लेकर एकत्र घोट कर (३ से ६ माशा तक) मोदक बना लेवें। इसके सेवन से ६ प्रकार का अर्श रोग नष्ट हो जाता है। —शा. स.

(४) वातरोग, उपदश तथा मूत्राशय की दाह पर—

इसके मूल के चूर्ण को, यथोचित मात्रा मे गोदुग्ध, रेंडी तैल या गोमूत्र या मद्य या आरनाल काजी उनमें से किसी भी एक उचित अनुपान के साथ सेवन से नानाप्रकार के वात रोगो का शमन होता है।

सधिवात मे—विधारा २ भाग और शतावरी एक भाग इन दोनो का क्वाथ सेवन कराते हैं। इससे गठिया (आमवात) भी दूर होता है।

ऊरुस्तम्भ पर—विधारा चूर्ण दो भाग और सोंठ चूर्ण एक भाग, दोनो को एकत्र खरल कर लें। एक से चार माशा तक की मात्रा में प्रात साय गरम जल से सेवन करावे। —ग० नि०

उपदश पर—विधारे के चूर्ण को, त्रिफला के क्वाथ के साथ, नित्य प्रात सेवन कराने से लाभ होता है।

मूत्राशय की दाह पर—विधारे का क्वाथ सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। इससे प्रतिश्याय भी दूर होता है।

यदि विधारा और चिरायता समभाग का चूर्ण मात्रा दो तोला तक का ४० तोला जल में अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराया जाय तो पित्त की ऊष्मा शीघ्र शात होती है। तथा कुछ दिन के सेवन से रक्त दोष भी मिट जाता है। —सकलित

(५) स्त्री रोग तथा बाल रोग पर—

श्वेतप्रदर पर—इसकी जड के साथ लोध और समुद्र शोष (आगे के प्रकरण मे वर्णित विधारा न २) की जड समभाग लेकर महीन चूर्ण कर उसमे चूर्ण के बराबर चीनी (शक्कर) मिलाकर रखें। ६ माशा की मात्रा मे गो दुग्ध के साथ सेवन करावे। श्वेत प्रदर मे अति हितकर है। —सि० भै० म० मा०

अथवा—विधारे का चूर्ण और असगध का चूरा ८-८ भाग, बडी इलायची चूरा व कुष्कुटाण्डकपाल चूरा २-२ भाग, वग भस्म १ भाग और मिश्री चूरा ८ भाग सबको एकत्र मिलाकर शीशी मे रखें। प्रात साय ४-६ माशे देकर

है। अत कई लोग इन पौधों की जड़ें लाकर क्लोरोफार्म की तरह बेहोश करने के लिये सुंघाते हैं। तथा जहा यह बिखमा पैदा होती है उसी के समीप एक निर्विषी नामक बूटी भी पैदा होती है। इसकी जड को उक्त बेहोश व्यक्ति की नासिका के आगे रखते ही बेहोशी दूर हो जाती है।

नोट न २—आयुर्वेदीय निघण्टुकारो ने इसे अतीस (अतिविषा) का ही एक भेद माना है। भा. नि. मे जो अतीस के नाम दिये हैं। उनमें 'प्रतिविषाऽरुणा' तथा "अतिविषाऽररा प्रतिविषा बिषा" (कै. नि) और "श्याम कन्दा प्रतिविषा विरूपा घुणवल्लभा (नि. स) आदि से इसी का बोध होता है।

नाम—

प्रतिविषा (विष रहित), श्यामकन्दा, विश्व। हि—बिखमा, बखमा। म०—बखमा। गु०—बखमो। ले०—एकोनाइटम पाल्मेटम।

रासायनिक संगठन—

इसमे पाल्मेटेसीन (Palmatisine) नामक एक रवेदार क्षार तत्व पाया जाता है जो ज्वरघ्न और आमाशय के लिये बल्य है।

प्रयोज्याग—मूल (कन्द)।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, कफवातहर, दीपन, पाचन, सकोचक, कटुपौष्टिक, शूल प्रशमन, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, अग्निमांद्य, अजीर्ण, आध्मान, अतिसार, ग्रहणी, वमन, विसूचिका आदि आमाशय एव आंत्र विकार हर है।

आमवातादि मे इसका लेप करते हैं। शेष सब गुण धर्म व प्रयोग अतीस के समान ही है।

नोट—मात्रा—२ ५ रत्ती (कालीमिच या जायपत्री के साथ) इसका प्रतिनिधि—अतीस है।

बिखारी—देखें—बिखारी। बिखमोगरा—देखें—वेला मे नोट।

बिछुआ—Martynia Diandra [Glox]

तिल कुल (Pedaliaceae) के इसके पौधे लगभग ५ फुट ऊंचे, मुलायम, किन्तु मोटे, स्पर्श करने पर इसका सर्वाङ्ग भीगा हुआ सा चिपचिपा, मृदुरोमश प्रतीत होता है। पत्र—पौधे के काण्ड के दोनो ओर पत्र-विपरीत या अभिमुख ६ ९ इञ्च लम्बे, ताम्बूल (पान) के आकार के दोनों किनारे टेढे मेढे सूक्ष्म, दन्तुर, पृष्ठ भाग प्राय ओसकणो जैसे किंतु चिपचिपे सूक्ष्म बिन्दुओ से आच्छादित, पुष्प-अधोमुखी, गुलाबी या गहरे बैंगनी रंग के, आकार मे तिल पुष्प जैसे, किंतु कुछ दुर्गन्धित, फल—बहुत कडे, हल्के काले रंग के अग्रभाग मे बडिशाकार काटों के रूप मे उभारयुक्त (या काले दो आकडियों वाले बिच्छू के आकार के) होते हैं। वर्षाकाल मे पुष्प तथा वर्षा के अन्त मे फल आते है। फल का आकार बिच्छू जैसा होने तथा बिच्छू के दश पर इसका लेप उपयोगी होने से इसे बिछुआ कहते हैं।

यह पौधा अमेरिका के मेक्सिको प्रात का आदि निवासी है। भारत के बगाल, कोकण आदि कई प्रान्तो मे कूडे करकट के स्थानो मे तथा गावडो के बाह्य जगल के किनारे पैदा हुआ देखा जाता है।

नोट न० १—कई वैद्यगण इसके फलों का या पचाङ्ग का काकनासा के नाम से उपयोग करते हैं। किन्तु यह काकनासा नहीं है। इस ग्रन्थ के भाग दो मे काकनासा (काकतुण्डी न० २) का प्रकरण देखिये।

नोट न०२—बिच्छू बूटी इससे भिन्न है। आगे इसका प्रकरण देखिये।

नाम—

हि०—बिछुआ, बघनखा। म०—विचू। गु०—बिछिदा व०—बागनखा। अ—टायगर्सक्ला (Tiger's Claw)

डेविल्स क्लो (Devil's claw) ले०—मर्टीनिया डिएन्ड्रा मर्टिनिया एन्नुआ (Martnia Annua)।

गुण धर्म व प्रयोग—

तीक्ष्ण, शोथहर, बाजीकरण, नपुंसकता नाशक व अर्शघ्न है।

बिच्छू आदि विषैले जतुओ के दश पर इसके फल को जल मे पीसकर लेप करने से शाति प्राप्त होती है।

वाजीकरण तथा नपुंसकता पर—इसके ताजे शुष्क फल ४० तोला लेकर छोटे-छोटे टुकडे कर मटकी मे भर कर पाताल यंत्र की विधि से तेल निकाल लेवें। १२ से १५ तोला तक तेल निकलेगा। यह तेल बाजीकरण है। प्रतिदिन इसकी १० बून्दें दुग्ध के साथ कुछ दिनो तक पीते रहने से निर्बल शुक्रकीट बलवान हो जाते हैं। नपुंसकता या ध्वजभग हो तो शिश्न पर हलके हाथो से तेल की मालिश की जाती है। —स्वास्थ्य से साभार

उक्त तेल पामा आदि चर्म रोगों पर भी उपयोगी है।

अर्श के मस्सो पर—फलो को कूटकर तिल तैल मे जला लें। जल जाने पर घोटकर उस कज्जली मे फाहा भिगो, गुदामार्ग पर रखकर पट्टी बाधें फिर गरम ईट कर नीम व वकायन के पत्ते रखकर मामूली सेंक करे। ७ दिन मे पूर्ण लाभ होगा।

—प० केशवप्रसाद मिश्र वैद्यशास्त्री
पो०—बकतरा (भोपाल)

पत्र—इसके पत्र जब आश्विन व कार्तिक मास मे पीले पड जाते हैं तब उनका संग्रह कर छायाशुष्क कर चूर्ण कर के सुरक्षित रखे। चूर्ण की मात्रा १ से २ रत्ती तक शहद क साथ ६-६ घटे के अन्तर से दें। यह हृदय के लिए डिजिटेलिस के समान उपयोगी है। थोडी मात्रा मे यह हृदय की गति को बढाता है किंतु अधिक मात्रा देने से हृदय की गति को मन्द करता है। इसके अतिरिक्त यह जीर्ण ज्वर को दूर करता, कफ को पतला करके बाहर निकालता है। निमोनिया मे इसके प्रयोग से फेफड़ो की सूजन कम होती तथा कफ छूटकर निकल जाता है। मूत्र नलिका के विकारो पर इसे देने से मूत्र खुलकर होजाता है तथा विकार दूर हो जाते है। सर्वांग शोथ में इसका बाह्य और अन्त प्रयोग किया जाता है। —ब० चं०

पत्तो का उपयोग अपस्मार में भी किया जाता है। क्षयजन्य कठमाला या अपची मे पत्रो को पीसकर लेप करते हैं। गले के छालों को दूर करने के लिए पत्तो के रस या शीत कषाय के कुल्ले (गण्डूष) कराते हैं।

बिच्छू बूटी (Girardiuia Heterophylla)

वट कुल (Urticaceae) के इस ४-६ फुट ऊचे, सर्वांग तीक्ष्ण कडे रोमो से व्याप्त क्षुप के पत्र ४-१२ इच लम्बे, ४-५ इञ्च चौडे, लट्वाकार, लम्बाग्र, अध पृष्ठ भाग चिकना (पत्र वृन्त तथा शिरायें डङ्कदार रोमो से व्याप्त), पुष्प—छोटे, वृन्तरहित, पुष्प मजरी सहतूत जैसी ६ इञ्च लम्बी, सघन रोमो से आच्छादित होती है।

हिमालय के प्रदेशो मे ७ हजार फुट की ऊचाई तक इसके क्षुप अधिक पाये जाते हैं। इस क्षुप के रोम शरीर पर लग जाने से बिच्छू के डक मारने जैसी तीव्र पीडा होती है। पहाडी लोग इसके पत्तो का साग बनाकर बडे प्रेम से खाते हैं।

नोट न० १—गढवाल निवासी कविराज योगेश्वर प्रसाद जी वैद्य वाचस्पति ने जो लेख इस बूटी के विषय मे हमारे पास भेजा है, उसका सारांश इस प्रकार है—

हिमालय के पहाडी प्रान्तो मे यह बूटी छोटी और बडी दो प्रकार की पाई जाती है। ये दोनो प्रकार की बूटिया प्राय वर्षाकाल के पहले ही पैदा होती है। छोटी के पौधे २-६ फुट ऊचे, पत्र ८ इञ्च लम्बे ४-५ इञ्च चौडे होते हैं। पत्तो तथा डंठलियो पर श्वेत रोम सदृश सूक्ष्म काटें से होते है। श्रावण या भाद्रपद के अन्त मे इस पर बीच बीच की ग्रन्थि स्थानो में से शहतूत के समान पुष्पो की मंजरी सी निकलती है। कुछ काल मे ये मजरिया हरे रग की बाल रूप मे परिवर्तित होकर बीज युक्त

बिच्छू बूटी
URTICA-URENS.

आरोही तंतु

पत्र

शाखा
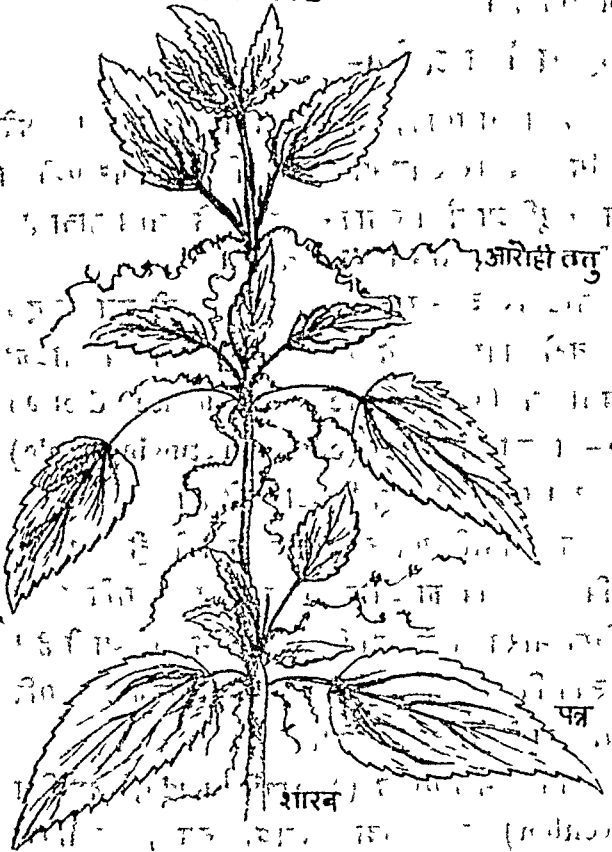
हो जाती हैं जब तक यह श्वेत पुष्प युक्त रहती है तब तक ही इसकी शाक बनाई जाती है। जो अत्यन्त उष्ण होती है। श्वास, कास, गुल्मोदर, अर्श, सर्वांग शोथादि विकारो पर पथ्य रूप मे यह शाक दी जाती है। इससे उदर हलका हो जाता, मूत्र काफी प्रमाण मे होता तथा शरीर हलका हो जाता है।

बडी बूटी का पौधा १० फुट से भी कहीं-कहीं अधिक ऊंचा पाया जाता है। पत्र ५-१० इञ्च लम्बे तथा २½ से ५ इञ्च तक चौडे, दोनो पृष्ठ भाग श्वेत रोमो से युक्त होते हैं। इन रोमो के स्पर्श से बिच्छू के डंक मारने जैसी वेदना होती है। पुष्प—श्वेत नलिकाकार मंजरियो में शहतूत के सदृश ही, तथा बीज काले रंग के, या भूरे समुद्रशोथ के बीज जैसे होते है। इसकी भी शाक बनाई जाती है। इसकी नूतन कोमल कोपलो को किसी चिपटे या कपड़े से पकडकर, तोडकर कढ़ाई में जल के साथ उबालते है। उबालने से यह निर्दोष हो जाती है फिर नीचे उतार कर ठण्डा हो जाने पर हाथो से मसल व निचाड़ कर पीसते है। उसके साथ उड़द, कुलथी या लोबिया आदि की पिट्ठी मिला कढ़ाई मे घृत के साथ हींग का छौंक देकर इसे बघारकर पतला शाक बनाते हैं जिसे चावलों के साथ बडे स्वाद से खाते है। जो सूखी सब्जी बनाते हैं वह बिना पिट्ठी की ही बनाते है। यह शाक सर्वांगशोथ, उदर विकार, जलोदर, श्वास, कास, प्रतिश्याय आदि में विशेष लाभप्रद है। कुमाऊं, गढवाल तथा तिब्बत मे इसकी शाक शीतकाल में आमतौर से सब कोई बडे प्रेम से खाते है। ध्यान रहे यह शाक प्रमेह, प्रदर, अतिसार तथा पित्तजन्य प्रसूति रोग में हानिकारक है।

इसके शुष्क पत्तो की चाय (फाण्ट) बनाकर पीने से कफजन्य ज्वर दूर होता है। वात व्याधि तथा श्वास कास मे इसके ६-४ ताजे पत्तो को कुलथी की दाल के साथ पकाकर, उसमे हींग, जीरे का छौंक देकर खाने से लाभ होता है।

नाम--

सं०—वृश्चिक। हिं०—बिच्छू बूटी, बिच्छू पान, बिच्छू घास, कंडाली, भिरु कंडाली। ले—गिरारडिया हेटेरोफिला।

गुणधर्म व प्रयोग--

उष्ण वीर्य, वातकफ नाशक, पित्तवर्धक, इसके पत्तो के प्रयोग ऊपर के नोट मे देखिए।

प्रमेह पर—इसके बीज २ से ४ रत्ती तक लेकर ६ माशा मिश्री के साथ पीस कर धारोष्ण गायके दूधमे प्रातःसाय सेवन से लाभ होता है। विशेषत: कफजन्य प्रमेह पर यह लाभदायक है। इससे शक्ति भी बढ़ती है।

विशिष्ट योग--

लोह, मल्ल तथा हरताल भस्म—लोह चूर्ण को इसके पञ्चाङ्ग के क्वाथ के साथ घोटकर २-३ बार गजपुट देने से उत्तम निरुत्थ लोह भस्म तैयार होती है जो विशेष गुणप्रद है।

मल्ल या हरताल भस्म के लिये इसके पञ्चाग को जला कर उसकी राख को एक मजबूत मटकी में अधो भाग तक भर देवें। फिर इसके १० पत्तो की लुगदी बना कर उसमें २ तोला शुद्ध मल्ल (संखिया) या २ तोला हरताल की डली रखकर, उस लुगदी को उक्त मटकी में भरकर मटकी के शेष भाग को उक्त राख से ही गले तक दबा दबाकर भर दें। अब इस मटकी को चूल्हे पर चढाकर ५-५ घटे की मन्द, मध्यम व तीव्र आच दें। कुल १५ घटो में उत्तम भस्म तैयार हो जाती है। इस प्रकार बनी हुई भस्म चाहे मल्ल की हो या हरताल की १ चावल की मात्रा मे भोजन के बाद पान के बीडे में या केवल पान मे रख कर खाने से श्वास, कास, कुष्ठ इत्यादि रोगों मे बहुत लाभ होता है। किंतु इसका सेवन १० दिन से अधिक दिनो तक नही करना चाहिये। पथ्य में—केवल गेहूँ, चावल, घी, दूध, शक्कर आदि सौम्य पदार्थ ही लेना चाहिए। —जगलनी जडी बूटी

नोट नं. १—इस बिच्छू बूटी के समीप ही एक अन्य बूटी का क्षुप होता है, जिसके पत्र, पुष्प, फलादि सब बन तुलसी (तुलसी अर्जकी Ocimumcanum) के क्षुप जैसा ही होता है। इसके पत्रो का रस लगा देने से, बिच्छू बूटी की बिच्छू के दश जैसी तीव्र वेदना शीघ्र ही शात हो जाती है।

नोट न० २—उक्त बिच्छू बूटी की ही जाति की एक गिरारडिनिया झेलेनिका (Girardinia Zeylenica) नामक बूटी होती है। इसे हिन्दी में–अल्ल, बिछुआ, आबा, चीचड। मराठी में–मोतीखजानी। पजाबी में–अंजन, धावल। नेपाली में—डली कहते है।

इस ऊचे, फैले हुए झाडीदार क्षुप की शाखाओ पर बिच्छू के डक जैसे वेदनाकारक रोम होते हैं। पत्र काफी चौडे तथा अग्रभाग मे कटे हुए होते हैं। पुष्प-उक्त बिच्छू बूटी के ही जैसे गजरियो में, तथा फल पर दोनो ओर रोम होते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

यह वेदनाशामक, शोथहर तथा ज्वरघ्न है। इसके पत्र सिर दर्द पर उपयोगी है। सधि शोथ पर पत्रो को पीसकर पुल्टिस जैसा बनाकर बाधने से लाभ होता है। ज्वर मे इसका क्वाथ दिया जाता है।

नोट न० ३—उक्त बिच्छू बूटी के ही कुल की एक अन्य बूटी होती है। इसे ले०–अर्टिका यूरे-स या अर्टिका डायओइका (Urtica urens or urtica dioica) अं०—कामन स्टिंगिंग नेटल (common stinging nettle) हि० व पजाबी—बिच्छू, बिछूटी कहते हैं।

इसके क्षुपादि सब उक्त बिच्छू बूटी के ही समान हैं। यद्यपि यह यूरोप का आदि निवासी है तथापि इसकी जातिया भारतवर्ष के पहाडी प्रान्तो मे पाई जाती हैं। जो उक्त बिच्छू बूटी के जैसी ही वेदनाकारक हैं तथापि औषधि कार्यो मे विशेष उपयोगी है।

इसमें फार्मेक एसिड (Formic acid), लेसीथिन (Lecithin), एक लसदार पदार्थ, नमक, अमोनिया (ammonia) कार्बोनिक एसिड और जलाश होता है।

फुसी, फफोले, ददोरे, मसूरिका जैसे त्वचा के उभारो पर इस बूटी का टिंचर या शर्बत बनाकर सेवन कराया जाता है। वृक्क-सम्बन्धी विकारो तथा रक्तस्राव पर यह एक घरेलू औषधि है।

गुणधर्म में यह सकोचक, सग्राहक, शामक, मूत्रल, रक्तविकार नाशक, तथा प्रभावशाली रक्तपित्तहर है।

प्रतिश्याय, श्वेतप्रदर, फुफ्फुसान्तर्गत स्राव, मूत्र के साथ रक्तस्राव आदि पर यह विशेष उपयोगी है। इसकी सूखी पत्ती का चूर्ण ४ रत्ती की मात्रा मे रात को सोते समय आग पर डालकर सूघने से धुये को नासिका द्वारा अन्दर खीचने से श्वास तथा फुफ्फुस सम्बन्धी अन्य विकारो मे लाभ होता है।

इसके टिंचर की मात्रा ½ से २ ड्राम तक, शर्बत की मात्रा २ से ४ ड्राम तक है। इसके टिंचर मे समभाग जल

मिलाकर उसमे स्वच्छ कपडे को भिगोकर अग्निदग्ध के स्थान पर रखने से विशेष लाभ होता है। —नाडकर्णी

डाक्टर वियर्ग का कथन है कि एक स्त्री को ३-४ वर्ष तक कोई सन्तान न हुई। किसी कारणवश, एक दिन उस स्त्री ने बूटी का पंचाङ्ग उबालकर, उसका लगभग दो आउन्स पी लिया। उसमे पहले तो उसका स्तन फूल गया, इसके बाद स्तन से रस की तरह एक प्रकार का स्राव निकलने लगा। पश्चात् साफ दूध आने लगा। अतएव प्रसव के बाद किसी के स्तन मे यदि दूध कम हो, या बिल्कुल न हो, तो इसके सेवन से विशेष लाभ होने की सम्भावना है। —वैद्य उदयलाल जी महात्मा

विजयसार (Pterocarpus Marsupium)

वटादिवर्ग एव शिम्बी कुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) के इस वनौषधि का सचित्र वर्णन इस ग्रन्थ के भाग १ के आसन नं १ के प्रकरण में दे चुके हैं। यहा इसके विषय मे अवशिष्ट उपयुक्त प्रयोगादि का विवरण दिया जाता है।

ध्यान रहे इस का उपयोग अति प्राचीन काल से आयुर्वेद मे हो रहा है। चरक के उदर्द प्रशमन दशेमानि, शिरोविरेचन द्रव्य एव सार आसव की गणना मे इसका उल्लेख है। इसके उत्तम शोधन गुण के कारण चरक तथा वाग्भट ने भी इसका रसायन रूप से प्रयोग दिया है और कहा है कि इसकी मूल या छाल १-१ तो का क्वाथ दिन मे दो बार ४-६ मास तक देते रहने से जीर्ण रक्तविकार एव जीर्ण त्वचारोग (उपकुष्ठादि) दूर हो जाते हैं। कच्चा दूध, तेज खटाई, मलावरोध करने वाला भोजन तथा मासाहार का त्याग कर इसका शान्तिपूर्वक सेवन करना चाहिए। कुष्ठरोगोक्त महाखदिर घृत, खालित्य रोग का महा नील तैल तथा उरुस्तम्भ नाशक श्योनकादि प्रलेप मे इसकी योजना की गई है। सुश्रुत ने सालसारादिगण में इसे लिया है। तथा कुष्ठ, शोष, रक्तपित्तादि रोगो पर, एव दूषित जल या मलिन जल को साफ करने के लिये भी इसकी योजना की है और अञ्जनो को इसकी लकडी के पात्र में रखने के लिये कहा है।

विजयसार का गोद—इसे हीरादोखी, हीरा दक्खण, चिनाई गोद, दम्मुल अखवीन, Kino काइनो कहते है। यह कड़वा, बेस्वादु गोद—शीतल, ग्राही, कीटाणुनाशक, रक्तस्रावरोधक, रोपण, यकृत के लिये बल्य, ज्वरघ्न, आक्षेपज वेदनानाशक तथा अतिसार, मुखपाक, पित्त प्रकोप, चक्षुप्रदाह, फोडे, सुजाक जन्य जीर्ण मूत्र प्रमेक, नलिका प्रदाह (Gleet), छाजन, दतशूल, दाह, प्रमेहादि विकारो पर हितावह है।

सामान्यत इसके गुण ढाक के गोद से मिलते जुलते है। ध्यान रहे वृक्क पीडित रोगियों के लिये यह हानिकारक है।

(१) अतिसार—गोद का एक निम्न प्रसिद्ध चूर्ण प्रयोग (पल्विस काइनो कम्पोजिटस (Pulvis Kino compositus) इस प्रकार है—

इसके १५ भाग गोद के साथ १ भाग अफीम तथा ४ भाग दालचीनी लेकर सबका चूर्ण बना लेवें। मात्रा २ से १० रत्ती दिन में तीन बार जल के साथ देने से रक्तातिसार, एव जीर्ण अतिसारो में शीघ्र लाभ होता है। रक्तातिसार मे इस चूर्ण का सेवन तीन दिन कराने तथा पथ्य में केवल खिचडी दही या दही भात देने से उदर पीडासह यह विकार दूर हो जाता है।

जीर्णातिसार व प्रवाहिका में अन्य उपयुक्त औषधि के साथ इसका गोद २-२ रत्ती मिलाकर सेवन कराने से कीटाणुओ का नाश होता, अन्त्र प्रदाह दूर होता, वेदना शमन होती तथा इसके ग्राही प्रभाव से अतिसार व प्रवाहिका में शीघ्र लाभ होता है।

(२) छाला, फोला, क्षत तथा अभिघातजन्य उदर मे रक्त सग्रह होने पर—

फोला या छाला या क्षत के फूटने पर उसमे से चिप-

चिपा रस स्राव होकर चारो ओर लगता रहता है। तथा क्षत में दाह भी होती है। ऐसी अवस्था मे गोद का चूर्ण बुरकने से लाभ होता है।

अभिघात या चोट के लगने से उत्पन्न उदर या छाती मे रक्त सग्रह जनित विकार में या अस्थि भग में इसका गोद १-१ माशा दिन मे तीन बार दूध के साथ पिलाने से लाभ होता है। अथवा इसकी छाल ६ माशा का क्वाथ या इसके पत्तो का रस दूध मे मिलाकर पिलावे।

(३) मुखपाक, दतशूल तथा छाजन और श्लीपद पर—

दाहक पदार्थ या गरम-गरम भोजन के कारण मुह के भीतर क्षत हुआ हो या जीभ फट गई हो तो इसके गोद के चूर्ण के साथ कत्थे का चूर्ण मिला मुख के भीतर बुरकाने से लाभ होता है।

दंतशूल—इसके गोद को दातो के गड्ढे मे भर देने से या दन्त मजन मे इसे मिलाकर प्रयोग करने से दातों की पीडा दूर होती है।

छाजन (उकवत या एग्झीमा) पर—इसके गोद के चूर्ण को बुरकने से, या श्वेत चन्दन को जल के साथ घिस कर, उसमें इसके चूर्ण को मिलाकर लेप करने से, जलन शांत होती, कीटाणु नष्ट होते तथा छाजन शीघ्र नष्ट होती है। साथ साथ यह गोद ४ रत्ती की मात्रा मे, दिन मे २ या ३ बार जल के साथ पिलाते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

श्लीपद पर—इसका गोद १-१ माशा की मात्रा मे, गोमूत्र या शहद के साथ दिन मे दो बार ४-६ माशा तक सेवन कराने से श्लीपद (हाथ-पैर मोटे हो जाना) दूर हो जाता है। यदि शरीर मे मेद (चरबी) बढी हो, तो वह भी इस प्रयोग से या इसकी छाल के क्वाथ के सेवन से कम हो जाता है। —गा औ र.

लकडी, मूल और छाल के प्रयोग—

(४) रक्तपित्त और इक्षुमेह या मधुमेह पर—

रक्तपित्त—इसकी लकडी को जलाकर, क्षार बनाकर इसे एक माशे की मात्रा मे, घृत के साथ, प्रात साय सेवन कराने से मुख, नाक, गुदा या मूत्रेन्द्रिय से होने वाला रक्तपित्त प्रकोपज रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

इक्षुमेह और मधुमेह में—इसकी लकडी का ६ मा० से १ तोला तक का टुकडा, रात्रि के समय कांच के गिलास मे जल के भीतर रख देवे। प्रात जल को छानकर पी लेवें। पुनः उसमें जल भरकर शाम को या रात्रि के समय पीवे। दूसरे दिन लकडी का नया टुकडा लेवे। इस प्रकार २-४ मास तक (पथ्यापथ्य पूर्वक) इस प्रयोग के करते रहने से मूत्रगत शर्करोत्पत्ति बन्द होकर इस विकार में लाभ होता है।

(५) दृष्टिमाद्य पर—

उसकी छाल के १ सेर क्वाथ में तिल तैल व बहेड़े की गिरी का तैल २०-२० तोला और भागरे का रस १ सेर मिला लोहे की कढाई मे मन्द आग पर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लेवे। प्रात सायं इस तैल की नस्य कराते रहने से नेत्र ज्योति बढ जाती है। —गा. औ. र.

उदर के गुल्म विकार मे छाल को दूध में पीसकर पिलाते है।

चोट पर—छाल का चूर्ण ३ मा० की मात्रा मे प्रात साय गरम जल से देवें।

फूल—इस वृक्ष के पुष्प विपाक मे मधुर, कफपित्त नाशक तथा वातवर्धक हैं।

नोट—मात्रा—गोद २ से ५ रत्ती या १२ रत्ती तक, लकडी या छाल का चूर्ण २ से ६ मा०। क्वाथ ५-१० तोला।

इसके गोद का प्रतिनिधि ढाक (पलाश) का गोद है। फोडा, जखम या त्वचा के विकारो पर इसके कोमल पत्तो को पीसकर लेप या पुल्टिस के रूप मे प्रयोग करते हैं।

विशिष्ट योग—

बीजकासव—इसकी छाल ६५ तोला, त्रिफला एक सेर मुनक्का २० तोला और पीपल की लाख २८ तोला सब को जौकुट कर १३ सेर जल मे पकावे। चतुर्थांश जल शेष रहने पर, छानकर, सधान पात्र मे भर ठण्डा होने पर उसमे खाड ५ सेर, शहद ६५ तोला, तथा त्रिकुट, नख (सुगन्धित द्रव्य), खस, सुपारी, शीतलचीनी, मुलेठी व कूठ प्रत्येक का चूर्ण १-१ तोला मिला पात्र का मुख

अच्छी तरह बन्द कर जौ के ढेर में दबाकर रखें। ग्रीष्म ऋतु में १० दिन पश्चात् तथा शीतकाल में २० दिन के बाद निकालकर छान लेवें। मात्रा १ से ४ तोला तक, समभाग शुद्ध जल मिलाकर सेवन से संग्रहणी, पाडुरोग, अर्श, शोथ, गुल्म, मूत्रकृच्छ, अश्मरी, कुष्ठ, कामला, प्रमेह और सन्निपात का नाश होता है। —ग० नि०

शेप प्रयोग हमारे बृहदासवारिष्ट सग्रह मे देखिये।

विजिंदक (Lepidium Dabra Linn)

राजिका कुल (Cruciferac) की यह एक जाति की घास है। इसके पत्ते केश के जैसे होते हैं।

यह पजाब मे अधिक बोया जाता है।

पंजाबी व अफगानी भाषा में विजिदक, अग्रेजी मे हेयरी ग्रास (Hairy grass) तथा लेटिन में लेपिडियम डाब्रा कहते हैं।

उदर के वात विकार (गैस) पर इसके बीज एक बार मे ७-८ नग तक दिये जाते है।

रक्तातिसार पर इसका टिंचर दिया जाता है।

विजोरा—देखें—नीबू मे

विथुआ (Dalderga Lanceolaria)

शिम्बी कुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) के इस सुन्दर पौधे के पत्र गूलर के पत्र जैसे पुष्प व फल छोटे-छोटे गुच्छे में लगते हैं।

ये पौधे पश्चिम हिमालय के प्रदेशो से लेकर नीचे सीलोन तक प्राय. सर्वत्र पहाडी जंगलो मे पाये जाते हैं। मिर्जापुर और बनारस के पहाडी इलाको मे यह प्रचुरता से पाया जाता है।

नाम —

हि०—विथुआ, गोरख, पासी। म०—टाकोली, जाकोली, हर्गनी, गम्री, कानरेही, डाडूसा। व०—चाकेमदिया नेपाली—बादेर सिरिस। लै०—डालबेर्जिया लेंसिओलेरिया

इसकी छाल में टेनिन १४% पाया जाता है।

प्रयोग—

संधिशोथ या आमवात पर—इसके बीजो के तैल का बाह्य तथा आभ्यन्तर प्रयोग किया जाता है। छाल के क्वाथ का घनसत्व या अवलेह तैयार कर सेवन कराते हैं।

मन्दाग्नि पर—छाल के फाण्ट का सेवन कराते हैं।

पार्यायिक ज्वर पर—इसकी छाल को कन्टाई की छाल के साथ पीस कर शरीर के मर्म स्थानो पर लेप करते है।

विदारी कंद नं० १■ (Pueraria Tuberosa)

गुडूच्यादि वर्ग एव शिम्बीकुल (Leguminosae) की इस आवर्त्तिनी या चक्रारोही, अति विस्तार मे फैलने वाली मोटी, अचिरस्थायी लता का काण्ड छिद्रयुक्त (पोला सा) छाल—भूरे रग की ½ इञ्च तक मोटी, पत्र—ढाक (या सेम) के पत्र जैसे पक्षाकार, त्रिपत्रक, ४-६ इञ्च लम्बे ३-४ इञ्च चौड़े लट्वाकार, अग्रभाग कुछ लम्बा

■ इसके दो भेद—विदारी और क्षीर विदारी चरकने मधुरस्कन्ध (वि. अ. ८) मे किये है। इस पर चक्रपाणी की टीका है, कि "एको दीर्घकन्दो बहुक्षीर क्षीर विदारीति व्यवह्रियते। अन्योहस्तिपादकोऽल्पक्षीर।" इनमे से प्रस्तुत प्रसग के कन्द को विदारी और आगे के प्रकरण मे वर्णित (Ipomoea Paniculata) को क्षीर विदारी ऐसा अधिकाश विद्वानो ने माना है, तथा हमे भी यह भेद मान्य है। बगाल की ओर एक अन्य कन्द (Trichosanthes cordata) को विदारी कन्द माना जाता है। भुई कुम्हडा यह नाम उक्त तीनो कन्दो को दिया गया है। उत्तर प्रदेश मे अधिकतर प्रस्तुत प्रसंग के कन्द को ही विदारीकन्द माना जाता है। अत. हम प्रथम उसीका शीर्षोक्त न० १ के नाम से वर्णन करते है। अन्य दोनो कन्दो का वर्णन आगे विदारीकन्द न०२ के प्रकरण मे देखिये।

नोकीला निम्न पृष्ठ भाग मुलायम सघन रोओ से युक्त, पुष्प—६-१८ इञ्च लम्बी मजरियो मे प्राय पत्तो के गिरने पर नूतन पत्रो के निकलने के पूर्व ही सुन्दर नीले या बैंगनी रग के पुष्प आते हैं। फली—२-३ इञ्च तक लम्बी, चिपटी, बीजो के बीच दबी हुई, खाकी रग के रोओ से आच्छादित होती है। प्रत्येक फली मे ३ से ६ तक गोल मोटे से बीज रहते हैं। कन्द—इसके मूल मे जमीन के नीचे प्राय कई कन्द काण्ड से दृढमूल शाखा केद्वारा जुडे हुए तथा निम्न भाग मे भी मूल शाखा से युक्त (सनाल) होते है। इनको ही विदारीकन्द कहते हे। प्रत्येक कन्द हरे रङ्ग का गोल कुम्हडे के आकार का प्राय २ फुट तक लम्बा तथा २½ फुट तक व्यास का होता है। बहुत बडे एव अत्यधिक वजनदार (कही-कही २० सेर से भी अधिक वजनदार पुराने कन्द होते हैं) ये कन्द, छोटे कन्दो की अपेक्षा हीन वीर्य समझे जाते हे। तथा वे छोटे कन्दो की अपेक्षा शीघ्र ही सड गल जाते हैं। छोटे कन्दो का स्वाद भी बडो की अपेक्षा सुमधुर होता है। बाजार मे पतले-पतले, दूध के जैसे श्वेत दिखाई देने वाले छोटे कन्दो के शुष्क कतरे विदारीकन्द नाम से बिकते है। इसके छोटे-छोटे ताजे मुलायम कन्द हरिद्वार आदि मे शाक सब्जी विक्रेता की दूकानो मे सराल नाम से बिकते हैं। ये स्वाद मे मुलैठी जैसे मधुर स्वाद वाले होने से इन्हे स्वादुकन्दा, ईक्षु विदारी आदि संस्कृत मे कहा जाता है। इस कन्द की लता को हाथी और घोडे बडे स्वाद से खाते हैं। अत इसे 'गजवाजि प्रिया' तथा भाषा में 'घुड वेल' कहते हैं।

नोट—चरक के बल्य, बृहणीय, वर्ण्य, कण्ठ्य, स्नेहोपग, तथा मधुरस्कन्ध गणो मे और सुश्रुत के विदारिगधादि, वल्लीपचमूल एव पित्तशामन गणो मे इसकी गणना की गई है।

यह लता पश्चिम हिमालय के निम्न भाग मे शिमला कुमाऊ आदि पहाडी स्थानो मे नेपाल तथा विन्ध्याचल, उडीसा, छोटा नागपुर, दक्षिण मे कोकण के पहाडी स्थानो मे अधिक पाई जाती है। बिहार में भी कही कही देखी जाती है। यह उक्त स्थानो मे प्राय नदी नालो की कगारो पर विशेष पायी जाती है।

नाम—

स०—विदारी, स्वादुकन्दा, ईक्षुगन्धा, कदपलाश, (पलाश के समान त्रिपत्रक होने से), गजवाजिप्रिया, भूमि कूष्माण्ड इ.। हि—विदारीकन्द, सफेद विदारी, बनकुम्हडा, पताल कोहडा, भुईकुम्हड़ा, सुराल, सराल इ.। म.—भुई कोहळा, घोड्रीची वेल, घोड वेल गु०—खाखरवेल, विदारी, फगियो। ब—शीमिया। ले—पुरेरिया ट्यूबेरोसा, हेडिसेरिम ट्युबेरोसा (Hedysarum Tuberosa)।

रासायनिक संगठन—

कन्द मे राल, शर्करा एव विशेषत स्टार्च अधिक पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—कन्द।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य, मधुरविपाक, वातपित्त शामक, स्नेहन, अनुलोमन, पित्तसारक, हृद्य, शोणित-स्थापक, कफनिसारक, कण्ठ्य, वर्ण्य, वृष्य, स्तन्यजनन, मूत्रल, दाहप्रशमन, ज्वरघ्न, बल्य, बृहण, रसायन, गर्भप्रद तथा कोष्ठगतरूक्षता, पित्तविकार, यकृतप्लीहावृद्धि, विबन्ध, हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार, स्वरभेद, वातश्लैष्मिककास, प्रमेह, शुक्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, वर्णविकार, विषमज्वर, दौर्बल्य, क्षय, शोष आदि मे प्रयुक्त होता है।

(१) बलवृद्धि व पुष्टि के लिये—इसके कन्द के चूर्ण को घृत मे भून कर उसमे बादाम की गिरी, चिरौंजी, पिस्ता, लौंग, इलायची, जायफल, गोखरू, केवाच बीज, शतावरी, मूसली व किशमिश यथायोग्य प्रमाण मे मिलाकर मिश्री की चाशनी में सबको डालकर २ या २½ तोला के लड्डू बना लेवे। नित्य प्रात १ या २ लड्डू खाकर ऊपर से गाय का दूध पीने से शरीर मे पुष्टि आती है।

अथवा—कन्द के चूर्ण के साथ सफेद मूसली, सालमपजा, असगध, गोखुरू और अकरकरा समभाग, सबका महीन चूर्ण कर शीशी मे भर लेवे। भोजन के तीन घटा

पूर्ण प्रात-सायं ३-३ माशा चूर्ण गाय के गरम दूध के साथ सेवन से वीर्य की वृद्धि, पुष्टि, स्तम्भन तथा कामोत्तेजना होती है। —सिद्ध योग सग्रह

अथवा—केवल कन्द के चूर्ण को ही ६ मा तक की मात्रा मे, उत्तम घृत १ तोला मिला, दूध के साथ सेवन से उत्तम बलवृद्धि, व पुष्टि होती है। स्वप्नदोष तथा मस्तिष्क की दुर्बलता भी दूर होती है।

नोट—आगे विशिष्ट योगो मे–शुक्रसजीवनी मोदक, वृष्य गुटिका तथा पाक प्रयोग देखिये।

(२) प्रसूता स्त्री के दुग्ध के लिये, तथा सधिशोथ व रक्तार्श पर—

कन्द के चूर्ण मे खाड या मिश्री मिलाकर दूध के साथ सेवन कराने से स्त्री का शरीर पुष्ट होकर, स्तनो मे खूब दूध आता है —ग से।

सन्धिशोथ पर कन्द को जल के साथ पीस कर गरम कर लेप करते है।

रक्तार्श पर— कन्द के चूर्ण के साथ तिल का चूर्ण मिला २ से ६ मा तक की मात्रा मे शहद और दूध के साथ सेवन कराते हैं।

(३) वाजीकरणार्थ—कन्द के कल्क को गूलर के फल की मात्रा मे (१ तो तक) उष्ण दूध के साथ पीनेसे यथेच्छ कामवृद्धि होती है।

अथवा—कन्द के महीन चूर्ण मे इस कन्द के ही स्वरस की भावना देकर घृत और मधु के साथ सेवन से भी खूब कामोत्तेजना होती है —सु चि, अ २६

वीर्यवृद्धि के लिये–इसके कन्द के साथ गोखरू, मूसली, आमला, सेंधानमक व पिप्पली समभाग का एकत्र चूर्ण कर उसमें चूर्ण के बराबर खाड मिला कर रखें। ६ मा तक की मात्रा मे इसे दूध के साथ सेवन करें। —हा म

शेष वाजीकरण के प्रयोग विशिष्ट योगो मे देखिये।

(४) विषमज्वर पर—कन्द का रस, ईख का रस, शहद, घृत व तिल तैल १-१ भाग लेकर ८ भाग, गरम किये हुये दूध मे मिलाकर पिलाने से विषमज्वर नष्ट होता है। —च द

(५) प्रमेह, भस्मक रोग, उदरशूल, बहुमूत्र, सिर दर्द दाह तृषा व दन्त रोग पर—

प्रमेह पर—कन्द के रस १० तो मे मिश्री व श्वेत जीरे का चूर्ण २-२ माशा मिलाकर सेवन करावे।

भस्मक रोग पर—(विदारी घृत) कन्द का रस और दूध ४-४ सेर, भैंस का घृत १ सेर तथा जीवनीय गण का कल्क १० तोला सबको एकत्र मिला मन्द आग पर पकावे घृत मात्र शेष रहने पर छान लेवे। २ से ५ तोला तक की मात्रा मे, इस घृत के सेवन से भस्मक रोग मे लाभ होता है। —वा से

शूलपर—कन्द के रस के साथ अनार का रस, मिला कर उसमें त्रिकुट व सेंधा नमक का चूर्ण मिलाकर पीने से त्रिदोषज शूल शीघ्र ही नष्ट होता है। —भा. भै र

बहुमूत्र पर—कन्द के चूर्ण को घृत मे भूनकर उसमें लौंग, इलायची, जायफल, जावित्री, पीपलामूल व दालचीनी का समभाग चूर्ण मिला, सब चूर्ण का चतुर्थांश सोठ चूर्ण और चूर्ण का १६ वां भाग पिप्पली चूर्ण मिलावें। फिर उसमे सब चूर्ण के समभाग शक्कर मिला, घृत के साथ घोटकर १ या २ तोला की गोलिया बना रखें। प्रात तथा रात्रि मे सोते समय १–१ गोली सेवन करें। —बं० गु०।

सिर दर्द पर—कन्द को पीसकर लेप करने से दर्द दूर होता है। —ब० गु०।

दाह व तृषा पर— कन्द के साथ अनारदाना, लोध, कैथ और बिजौरे नीबू का गूदा समभाग एकत्र पीसकर सिर पर (तालू पर) लेप करने से विशेषत ज्वर जन्य दाह व तृषा की शांति होती है। —भै र

दन्त रोग पर—[विदार्यादि तैल] विदारि कन्द, मुलेठी, सिंघाडा व कसेरू २–२ तोला एकत्र जल के साथ पीसकर कल्क करे। इसे २ सेर दूध तथा १६ तोला तिल मे मिला पकावें। तैल मात्र शेष रहने, पर छानकर रख ले। इस तेल की नस्य लेने से दन्त रोग नष्ट होता है। —भै० र०

नोट—मात्रा—कन्द चूर्ण ३ से ६ माशा तक।

अत्यधिक मात्रा मे यह वमनकारी है। तथा उष्ण प्रकृति वालो के लिये अहितकर है।

विशिष्ट योग—

(१) शुक्रसजीवनी मोदक—बिदारीकन्द का चूर्ण ५६ तोला, सिहोडा (शाखोट) के बीज ८ तोला, धान की खील १६ तोला, मिश्री और दूध ५-५ सेर सबको एकत्र मिलाकर पकावे। अवलेह जैसा गाढा हो जाने पर नीचे उतारकर उसमे जायफल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, कचूर, गठौना, अजवायन, त्रिकुट (सौठ, मिरच, पिप्पली) प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोला मिलाकर मोदक बनावें। १ से २ तोला तक सेवन से बल, वीर्य और तेज की वृद्धि होती है। —भा भै. र

(२) वाजीकरणार्थ—

विदार्यादि योग—पिप्पली, आमला, मुनक्का व मुलैठी समभाग का चूर्ण कर (एकत्र पीसकर) उसे विदारी कन्द के रस की लगभग ७ भावनायें देकर सुखा लेवें। फिर उसमे सबके बराबर मिश्री मिलाकर सुरक्षित रखें। मात्रा ६ माशा तक शहद और घृत के साथ चाटकर दूध पीने से उत्तम वाजीकरण होता है। —ग नि

योग न० २ (वृष्य गुटिका)—गो घृत १ भाग को १०० भाग विदारी कन्द के रस के साथ पकावे। जब थोड़ा सा रस अवशिष्ट रह जावे तब उतार कर उसमें १०० भाग गोदुग्ध (दुग्ध, घृत से १०० गुना हो) मिला कर पुन पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छानकर उसमे खाड़, वशलोचन का चूर्ण, शहद, तालमखाने का चूर्ण (पाठ मे 'इक्षुरस' शब्द है। ईक्षुरस से ईख का रस तथा तालमखाना भी दोनो का बोध होता है किंतु यहा अब इस मे ईख का रस मिलाने से गुटिका बिगड जावेगी अत ताल मखाना ही लेना उपयुक्त है) पिप्पली चूर्ण और कौच के बीजो का चूर्ण घृत से चतुर्थांश प्रमाण मे मिला गूलर के समान गोलियां बना लेवे। आधुनिक मात्रा इसकी ६ माशे तक पर्याप्त है। इसके सेवन से कामशक्ति अत्यधिक बढ जाती है। —च० चि० अ० २।

योग न. ३ (वृष्य योग)—विदारी कन्द चूर्ण १ प्रस्थ (६४ तोला) खाड १ तुला (५ सेर), गोघृत ५ सेर, पिप्पली चूर्ण ६४ तोला, वशलोचन चूर्ण १२८ तोला (१ सेर ४८ तोला) ताजा शहद ३ सेर १६ तोला, इन सबको एकत्र मिलाकर घी से चिकने किए हुए मिट्टी के पात्र में भरकर रख देवे। अग्नि बलोचित मात्रानुसार (१ से ४ तोला तक) प्रात काल इसके सेवन से यथेष्ट बल वीर्य बढता एव कामोत्तेजना होती है। —च. चि. अ. २

(३) विदारीकन्दादि पाक—विदारीकन्द का चूर्ण आधा सेर, श्वेत मूसली, कौच बीज, शतावर, गोखरू ६-६ तोला, छोटी इलायची, जायफल, वशलोचन २-२ तोला, लौंग एक तोला इनका महीन चूर्ण तथा बादाम गिरी, कतरी हुई चिरौंजी, पिस्ता व कसेरू ४-४ तोला इन सब को एक सेर ताजे खोये मे मिला फिर सबको आधा सेर घृत मे मद आचपर सेंक कर पाक जमा दे। २ से ४ तोला की मात्रा मे प्रात साय मिश्री मिलाकर पकाये हुए दूध के साथ लेवे। वीर्य स्राव, अशक्ति, धातुविकार प्रमेह आदि रोग दूर होते हैं।

नोट—विदारी कद के अन्य उत्तमोत्तम पाको के योग हमारे बृहत्पाक सग्रह ग्रथ मे देखिये।

बिदारीकंद नं० २—क्षीरबिदारी (Ipomoea paniculata)

त्रिवृत्कुल (Convolvulaceae) की इस आरोहिणी प्रतानिनी (विस्तृत फैलने वाली) लता की शाखायें कुछ पीतवर्ण की। पत्र—हाथ के पजे जैसे ३–७ इन्च व्यास के ५–७ भागो मे विभक्त। पुष्प—नलिकाकार, गोल १ इन्च व्यास के अग्रभाग मे १½-२½ इन्च व्यास के बैगनी रंग के वर्षाकाल मे आते हैं। फल—गुच्छो में गोल छोटे छोटे, चार परत वाले। बीज—फल के भीतर एक प्रकार की पर्तदार रुई से ढके हुए त्रिकोणाकार, अर्ध गोल बीज रहते है। वर्षाकाल में इन्ही बीजो से लता पैदा होती है।

कन्द—आकार प्रकार में शकरकन्द [रतालू] के जैसा वजन में अधिक से अधिक १ सेर तक बाहर से कूष्माण्ड जैसा भूरे रंग का खुरदरा सा होता है। काटने पर भीतर श्वेत रंग का तथा उसमें से बहुत क्षीर [दूध] निकलता है। इसीसे यह क्षीर विदारी कहाता है स्वाद में यह कुछ कसैला एवं कडुआ सा तथा पिष्टमय होता है। इसकी सुखाई हुई कतरियाँ वजन में बहुत हल्की तथा उनमें चक्राकार मण्डल दिखलाई देते हैं।

यह लता भारतवर्ष के उष्ण प्रान्तो में विशेषतः बंगाल व आसाम से सीलोन तक जंगलो मे तथा बागो मे बोयी हुई देखी जाती है। अत्यधिक शुष्क प्रदेशों मे तथा पश्चिम की ओर यह नही पैदा होती।

नोट—बंगाल की ओर इसका ही एक भेद ट्राइकोसेन्थॅस-कार्डेटा (Trichosanthes Cordata) भुई कुम्हडा के नाम से प्राप्त होता है। इसकी लता बहुत दूर तक फैली हुई, काण्ड-सुदृढ एवं सघन रोमाच्छादित, बहुशाखा-युक्त; पत्र—६-८ इञ्च लम्बे; गोल, पान के आकार के अनीदार, किनारे दन्तुर या कंगूरेदार, पत्रवृन्त—२-४ इञ्च लम्बा, मजबूत; पुष्प—४ इञ्च लम्बी सलाका पर, बैंगनी रंग के नलिकाकार पुष्प, एक लिंग विशिष्ट एवं पखुडियाँ कटे किनारे वाली, फल—चमकीला, लाल, इन्द्रायन के फल जैसा होता है। कन्द—बडा, पेठे के आकार का, पीताभ, स्वाद में कटु, तिक्त व कसैला होता है।

इसे हिन्दी मे—भुईं कोहडा, पाताल कोहडा। बंगला मे—भुईं कामडा, भू कामडा, भारबुबा कहते हैं।

यह उत्तर व पूर्व बंगाल में तथा पूर्व हिमालय के तल प्रदेशो मे और आसाम से पेगू तक, एवं खासिया पहाड की तराइयो मे-नेपाल मे अधिक पाया जाता है।

इसके कन्द और पुष्प औषधि कार्य मे आते हैं। कंद उत्तम शक्तिवर्धक होता है। बिहार (पटना) की ओर इसके शुष्क फलो का चूर्ण १ रत्ती से २॥ रत्ती तक की मात्रा मे उत्तेजक औषधि के रूप मे व्यवहृत होता है। ढाका की ओर इसके शुष्क कन्द का चूर्ण ५ रत्ती की मात्रा मे प्लीहा, यकृत एवं उदर के विकारो में दिया जाता है। ताजे कन्द को पीसकर तेल मे मिलाकर श्वेत कुष्ठ पर तथा जखमो पर लगाते हैं। —भारतीय वनौषधि

विदारी कन्द नं २ (भुई कुम्हडा)
IPOMOEA PANICULATA R.BR.
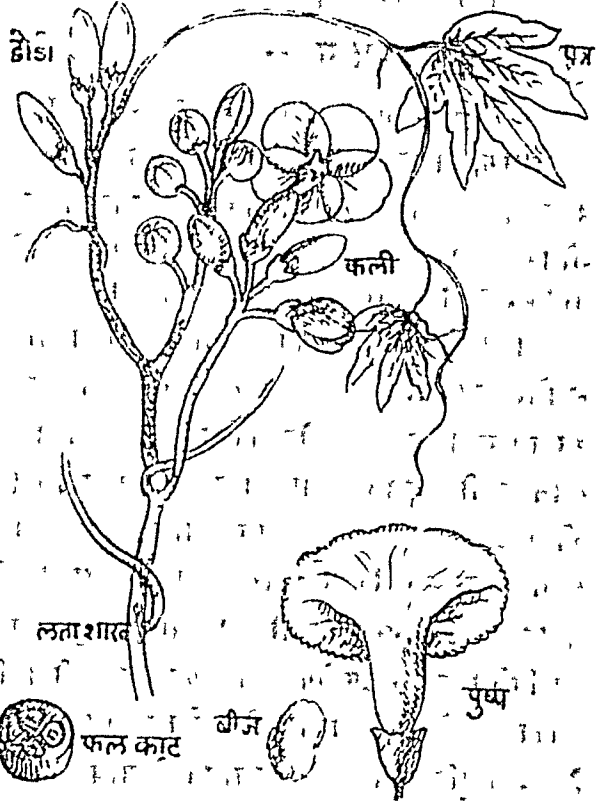
शेष गुण धर्म प्रस्तुत प्रसंग के विदारी कन्द नं० २ के अनुसार ही है।

प्रस्तुत प्रसंग के कन्द नं० २ के नाम, गुण, धर्मादि

नाम—

सं०—क्षीर विदारी, क्षीर वल्ली, पयस्विनी। हिन्दी—विदारीकन्द, बिलाईकन्द, भुई कुम्हडा। म०—दूध भुई कोहडा, हडधाकादा। गु०—विदारीकंद। बं०—भुईकामडा, बिलाई कन्द। ले०—आयपोमीया पेनिकुलेटा, आयपोमीया डिजिटाटा (Ipomoea Digitata) कानव्हलव्हुलस पेनिकुलेटा (connvolvulus-Paniculata)।

रासायनिक संगठन—

इस कन्द मे पिष्टमय पदार्थ (स्टार्च) अधिक होता

है। इसके अतिरिक्त शर्करा १० % एवं अत्यल्प प्रमाण मे निसोथ में पायी जाने वाली आनुलोमिक (मृदुरेचक) राल होती है।

प्रयोज्याग–कन्द और पुष्प।

गुण धर्म व प्रयोग—

कन्द—कटु, तिक्त, कषाय, मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, अनुलोमक, पित्तसारक, वीर्यवर्धक, कामोद्दीपक, रसायन, अनुलोमक, पित्तसारक, कफकारक, कांतिवर्धक, स्तन्यजनक, स्वरबल्य, मूत्रल कफकारक, कांतिवर्धक, स्तन्यजनक, स्वर-शोधक, क्षुधावर्धक, पाचन तथा पित्त विकार, रक्तविकार, वातजदाह, प्रमेह आदि मे प्रयुक्त होता है।

यह शरीर के वजन को बढाता है। किसी भी कारण से शिथिलता आयी हो, वजन कम हुआ हो तो इसके चूर्ण को घृत मे भूनकर दूध और शर्करा के साथ मिलाकर सेवन से शीघ्र वजन बढता है। काडलिवर आईल (तैल) की अपेक्षा इससे अधिक उत्तम लाभ होता है। इसके सेवन के समय न किसी प्रकार की घृणा होती है, और न शरीर मे कोई दुर्गन्ध आती है। प्रौढ मनुष्यो के लिए यह विशेष रूप से उपयोगी है। यकृत एव प्लीहावृद्धि में इसका चूर्ण देने से पित्तस्राव ठीक होकर शौच साफ होता है। दुग्ध वृद्धि के लिए इसे द्राक्षासव के साथ देते है।

(१) कृशता निवारणार्थ तथा अनियमित मासिक धर्म पर–धूप शुष्क कर कन्द के महीन चूर्ण को मक्खन और शक्कर के साथ तल कर सेवन करने से कृशता दूर होती है, मेद बढता है तथा इसके ही सेवन से स्त्रियों का अनियमित ऋतुस्राव नियमित यथायोग्य प्रमाण में होने लग जाता है।

(२) स्वप्नदोष तथा मूत्रकृच्छ्र और पित्तज शूल पर—इसके ताजे कन्द के रस में जीरा चूर्ण और शक्कर मिलाकर सेवन से स्वप्नदोष में लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र पर–इसके कन्द के साथ समभाग गोखरू, मुलैठी व नागकेशर लेकर चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर उसमें शहद मिलाकर सेवन कराते है।

पित्तजशूल मे–कन्द के रस में मधु मिलाकर पिलाते है।

(३) बालको की निर्बलता पर—निर्बल, कृश तथा जिसकी पाचन क्रिया ठीक न हो ऐसे बालक को कन्द का चूर्ण, गेहू और जौ का आटा समभाग एकत्र मिला घी में भूनकर उसमें घी व मधु विषम भाग तथा दूध थोडी मिश्री मिला हलुवा जैसा पका कर १ या २ तोला की मात्रा में खिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

अथवा कन्द चूर्ण १ माशा को शहद के साथ चटाते रहने से बच्चो की निर्बलता दूर होती है तथा इसके चूर्ण मे पिप्पली चूर्ण व मधु मिलाकर चटाने से पाचन शक्ति बढती है।

पुष्प—इसके पुष्प-गुरु, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाक, कामोद्दीपक, कफकर, वातवर्धक और पित्तनाशक है।

शुष्क पुष्प का चूर्ण १ से २॥ रत्ती की मात्रा मे उत्तेजक औषधि के रूप मे प्रयुक्त किया जाता है।

नोट—मात्रा – कन्द चूर्ण, १ से ६ माशा तक।

विशिष्ट योग—

विदारिकन्दादि क्वाथ—विदारीकन्द, सरिवन, छोटा गोखरू, सतावरी, अनन्तमूल (सारिवा), पुनर्नवामूल, और बडी कटेरी मूल समभाग जोकुट कर २॥ तोला चूर्ण को ४० तोला जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर ५ तोला तक की मात्रा में, दिन मे दो बार प्रतिदिन पिलाने से ज्वर, कफ विकार तथा फुफ्फुस शोथ युक्त विकार (ब्राकाइटिस) मे विशेष लाभ होता है। —नाडकर्णी

बिधारा* नं० १ (Rourea Santaloides)

गुडूच्यादिवर्ग एव कोनोरेसी [Conoracee] कुल की इस बडी विस्तारवाली बडे-बडे वृक्षो पर चढने वाली, बडी-बडी शाखा प्रशाखा युक्त लता की शाखाये बिलकुल त्रिवृत [निशोथ] की शाखा जैसी, किंचित श्वेत मटमैली

* 'वृद्ध दारक' और 'जीर्णदारु' नाम से इसके दो भेद हैं। प्रस्तुत प्रसंग के विधारा (वृद्धदारक) की लता खूब लम्बी होती है। अत. यह दीर्घबल्लरी तथा वृद्धावस्था का नाशक (वृद्धत्व दारकं नाशक य सः) होने से

होती है । अत कई बार इस विधारा और निशोथ मे भ्रम हो जाता है । तथा बगाल के कई स्थानो के अनजान वैद्यगण त्रिवृत्त [निशोथ] को ही विधारा कहते है । कानपुर की ओर भी निशोथ लता के टुकडे विधारा नाम से बिकते है । काशी बनारस के बाजारो मे प्राय. त्रिवृत्त [निशोथ] कुल के ही आइपोमिया पेटालायडी (Ipomoea Petaloidae) नामक लता विशेष के टुकडे विधारा नाम से बेचे जाते हैं । आगे विधारा न० २ के प्रकरण मे नोट न० ३ देखिये ।

ध्यान रहे निशोथ की लता अधिक से अधिक तीस या चालीस फुट लम्बी होती है, किन्तु प्रस्तुत प्रसग की विधारा की लता १५० से २०० फुट तक लम्बी होती है । दोनो के पत्रो में बहुत कुछ साम्य है । निशोथ के फल कालीमिर्च से कुछ बडे बिलकुल गोल व चिकने होते हैं तथा मूल [जड] महीन और लम्बान मे बहुत थोडी होती है । विधारा की मूल बहुत बडी तथा जमीन में बहुत ही गहरी गई हुई होती है, जैसे कि दक्षिण में वाकेरी भाजे (अश्मभेदी) की होती है । इसीसे मराठी भाषा में किसी-किसी ने विधारा को ही 'वाकेरी' नाम दे दिया है । यह मूल देखने में समुद्रशोष की मूल जैसी ही होती है । तथा दूसरा भेद यह है कि निशोथ अत्यन्त भेदक (दस्तावर) है । विधारा वैसा नहीं है । पीछे निशोथ का प्रकरण देखें ।

पत्र—विषमवर्ती, दीर्घवर्तुलाकार, अनीदार, गिलोय पत्र या नगलापान जैसे, अधिक सिरा, उपसिरा युक्त, ऊपरी भाग हरा, चिकना, पृष्ठ भाग किंचित श्वेत मखमल जैसा होता है । पत्र को हाथ मे पकडने से बहुत ही मुलायम मालूम देता है । महाराष्ट्र मे कोमल पत्तो की पकौडियां व शाक बनाते हैं ।

पत्र वृन्त या डठल—४-५ इञ्च तक लम्बे, अग्रभाग मे चपटे, बडो एव कुछ काले रग की दो ग्रन्थियुक्त होते हैं । डठल को तोडने से दूध जैसा द्रव पदार्थ निकलता है। इस प्रकार का दूध समुद्रशोष के पत्र वृन्त से नही निकलता ।

पुष्प—इसकी लता पर पुष्प बारहो महीने गुच्छो में लदे रहते है । डालियो के अन्त मे स्थान-स्थान पर पुष्पो का गुच्छा होता है । ये पुष्प कुछ बडे, भीतर से किंचित लाल या गुलाबी रंग के, बाहर से श्वेत वर्ण के, आकार प्रकार में प्राय. समुद्रशोष के फल जैसे ही होते है । इनमे एक प्रकार की सुगन्ध भी होती है । पुष्पवृन्त पत्र वृन्त की अपेक्षा कुछ बडे, जिसके आगे छत्राकार फूलो का गुच्छा ऊपर को उठा हुआ होता है तथा उसके अन्दर के कोटर मे पुष्प होते हैं इसीसे इसे अन्त. कोटर पुष्पी भी कहते हैं । पुष्पो की कलिया बहुत सी निकलती हैं । जो आकार प्रकार में बडी, गोल, श्वेत रेखायुक्त एव अग्रभाग

वृद्धदारक [दारक] वृद्ध दारयतीति] कहलाता है । इसकी लता दीर्घकाल तक चिरस्थायी रहने से इसे 'वृद्ध' कहा गया है । लता की आकृति बकरी के आन्त्र सदृश टेढी-मेढी उत्सेध युक्त होने से इसे अजान्त्री या छागलान्त्रिका कहते हैं । पुष्प बडा एव भीतर के भाग मे कोटर जैसा होने से कोटर पुष्पी कहते हैं ।

'जीर्णदारु' उक्त वृद्ध दारुक का ही एक भेद विशेष है इसकी लता भी सुदीर्घ ही होती तथा अधिक काल तक रहती है । दोनो में भेद इतन । है कि उक्त विधारा प्राय' हर प्रकार की भूमि में होता है, पत्ते बडे अधिक सिरायुक्त होते, फूल कुछ छोटे, कलिया प्राय गोल एव रेखायुक्त, फल शुष्क प्राय होते हैं । तथा यह जीर्णदारु ककरीली, रेतीली एव चिकनी ऐसी मिश्रित भूमि में होता है, पत्ते अपेक्षाकृत कुछ छोटे कम सिरायुक्त व पुष्प कुछ बडे, कलिया छुरी की धार जैसी एव रेखा रहित और फल कोमल होते है । इसका शेष वर्णन ऊपर के नोट न० १ में देखिये ।

आधुनिक मतभेद—अधिकाश मे आधुनिक वैज्ञानिक 'समुद्रशोष' को ही विधारा मानते हैं । तथा दक्षिण मे बम्बई, सूरत आदि के बाजारो में वरधारा या विधारा के नाम से समुद्रशोष या फांग की मूल या शाखाओ के टुकडे ही प्राय देखने मे आते हैं । इसका एक मात्र कारण यही है कि समुद्रशोष और विधारा मे बहुत कुछ समानता पाई जाती है किंतु दोनो को एक ही माना निराभ्रम है । आगे विधारा न० २ के प्रकरण मे इसका विस्तृत वर्णन देखिए सक्षेप मे खास पहिचान यह है कि विधारा के ताजे डठल को तोडने से उसमें दूध निकलता है समुद्रशोष मे नही निकलता ।

मे बहुत सूक्ष्म या पतली होती है। ये कलिया शीघ्र ही झड जाने वाली होती है।

फल—गोल, लिमोडा के फल जैसे ½ से ¾ इन्च तक लम्बे व चिकने प्राय गुच्छो मे लगते हैं। पकने पर नारगी वर्ण के लाल स्वाद मे मधुर होते है। पके हुए फल किसी खास उपाय के बिना नही टूटते। वैसे वे स्वय टुकडे टुकडे होकर फट जाते है। ये चिरस्थायी होते हैं। इसी से इसे वृद्ध फल भी कहते हे। प्रत्येक फल के भीतर एक या दो बीज होते हे।

इसकी लता विशेषत चित्रकूट के पास का विन्ध्य-प्रदेश, बगाल तथा दक्षिण भारत के विशेषत खानदेश, कोकण आदि प्रान्तो से लेकर ट्रावनकोर तक और सीलोन के जंगलों में पायी जाती है।

नोट न० १—इसका जो भेद जीर्णदारु है, उसके संस्कृत मे जीर्णा, फंजी, सूक्ष्म पत्रा, सुपुष्पिका, अजरा आदि पर्याय नाम हैं। हिन्दी मे बिधारा भेद, काला विधारा तथा बंगला मे विद्धडक कहते है। उक्त विधारे का जो शीर्षोक्त लेटिन नाम है वही इसका भी है।

इसकी बहुवर्षायु लता वृक्षो पर चारो ओर से लिपटी हुई, लम्बाई मे उक्त विधारे की अपेक्षा छोटी, कोमल, लता की पसरी हुई शाखायें कुछ कृष्ण वर्ण या जामुन के रग की गोल गोल, छाल हलके बैगनी रग की चम-कीली होती है। इसकी ताजी छाल या लकडी भी देखने मे ऐसी मालूम देती है कि मानो बहुत वर्षो की पुरानी जीर्ण शीर्ण होगई हो। इसीसे शायद यह 'जीर्णदारु' या जीर्ण वल्कला कहलाती है।

पत्र—इसकी टहनियों की विषमवर्ती सीको पर—पत्ते ३ से ७ तक उक्त विधारा पत्र की अपेक्षा कुछ छोटे, गोलाकार, अनीदार तथा कडे होते हैं। पत्र के मध्य भाग मे हलका सब्जरग का रुआं सा होता है। पत्रवृन्त-लम्बा, गोल तथा कुछ रोमश होता है। वृन्त के पास की ग्रन्थिया प्राय उक्त विधारा पत्र वृन्त की ग्रन्थियो जैसी ही होती हैं। भेद इतना ही है कि ये हरे रग की होती हैं।

पुष्प—चौथाई इन्च के घेरे मे (व्यास के), पाच दल वाले, प्राय श्वेत गुलबास या निसोथ के पुष्प जैसे भाद्रपद मास मे आते हैं। कही कही वैशाख से कार्तिक तक इसमें फूल रहते हैं।

फल—समुद्रशोष के फल जैसे ही किन्तु आकार में छोटे कोमल, गुठली युक्त होते हैं। फल के पकने पर अन्दर जो बीज निकलते है, उन पर कोमल श्वेत पदार्थ का वेष्टन होता है, जो स्वाद में मधुर मालूम देता है। प्रत्येक फल में २ से ४ तक बीज होते हैं।

इस लता के कोमल पत्र या फलों को तोडने पर उन में से दूध निकलता है। वनौषधि अन्वेषक वैद्य हीरामण जगले का कथन है कि दुष्काल के समय गरीब लोग इसके पत्रो पर ही अथवा जीवन निर्वाह करते हैं। अन्य समय मे भी विशेषत आषाढ मास में कोमल पत्रो की पकौ-डिया बनाई जाती है। यह लता खानदेश में सर्वत्र पायी जाती है तथा फाग या फजिका नाम से प्रख्यात है। निशोथ कुल की फजी या फाग जिसका वर्णन पीछे यथा स्थान किया गया है, उससे मिलती जुलती ही यह लता होती है।

यह लता खडकीली, ककरीली, पथरीली जमीन पर प्राय बम्बई के नीचे पश्चिम घाट में यथा कोकण से ट्रावनकोर तक के प्रदेश में तथा मलाबार व सीलोन में बहु-तायत से पाई जाती है।

गुणधर्म मे यह कुछ अल्पवीर्य है। शेष गुण-धर्म प्रस्तुत प्रसग के विधारा जैसे ही मधुर, पिच्छल (लसदार) कफ वातनाशक, बल्य तथा खासी और आम दोष को दूर करने वाला हे। रक्त विकारो को दूर करने मे यह सालसापरेला के समान गुणकारी हैं।

नोट न २—चरक मे इसे अधोगुणा तथा अन्त कोटर पुष्पी इन दो पर्यायो से विरेचनार्थ प्रयोग किया गया है तथा इसके उक्त दूसरे भेद 'जीर्णदारु' का प्रयोग 'फंजी' नाम से किया गया है। सुश्रुत में वृद्धरुक के लिये 'छगलान्त्री' नाम दिया गया है, तथा जीर्णदारु को चरक के अनुसार ही फजी नाम दिया गया है।

वृद्धदारु द्वय गौल्य पिच्छिल कफवात हृत।
बल्यं कासामदोषघ्न द्वितीय स्वल्प वीर्य कम्॥
—राज निघण्टु

प्रस्तुत प्रसग के विधारा के नाम, गुण धर्मादि—

नाम--

स०—वृद्धदारुक, आवेगी, दीर्घवल्लरी, वृद्ध (वृद्धा) अजात्री, छागलान्त्रिका इ.। हि०—विधारा, विधापरा, वधारा इ०। म०—वरधारा, म्हैसवेल, म्हातारीचा वेल वाढता देवदार, सावरवेल इ०। गु०—वरधारो। व०—बिताडक, वित्तरका, विधारका इ०। ले०—रोरिया सेंटेलाइडस। अ० मे भी इसका यही नाम है।

प्रयोज्याङ्ग—जड या मूल की डंडी।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु कटु, तिक्त, कषाय, मधुर विपाक, उष्णवीर्य, रसायन, मेधाजनक (बुद्धिवर्धक), स्वर को शुद्ध करने वाला, सारक, दीपक, कातिजनक, कामोद्दीपक, धातुजनक वल्य, रुचिकारक, रसायन, तथा उपदश, पाडु. क्षय, कास, श्वास, प्रमेह, वातरक्त, आमवात, वातविकार, शोथ एव कफविकार आदि मे प्रयुक्त होता है।

आधुनिक मतानुसार—इसकी जड का उपयोग कटु पौष्टिक वस्तु की तरह किया जाता है। यह रसायन, वलकारक, तथा वात और फिरङ्ग रोग की अमोघ औपधि मानी गई है। यह सधिवात, स्कर्वी, मधु प्रमेह तथा फुपफुस सम्बन्धी शिकायतो मे उपयोगी है। व्रण, फोडे, फुसी तथा अन्य चर्म रोगो पर वाह्य उपचार के काम मे ली जाती है।

यूनानी मतानुसार—उष्ण व रूक्ष है। कफ को दस्तो की राह निकालता, कामशक्ति को बढाता, बातकफ व रक्त दोपो को मिटाता, कब्ज दूर करता हे। सुजाक, सूजन, गठिया व गृध्रसी मे लाभदायक है। ३½ माशा की मात्रा मे इसे देने से जलोदर मे फायदा होता हे। इसमे जो चेप (दूध) होता है, उसके सेवन से रक्त शुद्ध होता है। शरीर सगठन या वीर्य सम्बन्धी खरावी को दूर करने के लिए इसके चूर्ण को दूध के साथ देते हे। इसका प्रतिनिधि असगध है।

(१) रसायनार्थ—मूल को छायाशुष्क कर, महीन चूर्ण कर सतावरी के रस मे (अथवा क्वाथ मे) भिगोकर धूप मे सुखावे। अच्छी प्रकार सूख जाने पर पुन उसे सतावरी के रस या क्वाथ में घोट कर धूप मे सुखावे। इस प्रकार ७ भावनाये देकर खूब महीन कर काच की शीशी में सुरक्षित रखे।

प्रथम हलका विरेचन देकर पेट साफ हो जाने पर इसकी मात्रा २ माशा से १ तोला तक गोघृत (६ माशा से २½ तोला) में मिला, नित्य प्रात साय, रसायन विधि से, एक मास तक या ४० दिन तक सेवन करने से वल वीर्य की वृद्धि होकर बुद्धि, मेधा, स्मरण शक्ति बढेगी तथा वली पलित आदि वृद्धावस्था के विकार दूर होगे। इसके सेवन काल में दूध, भात का भोजन करें। —भै० र०।

अथवा—इसके चूर्ण को आमला स्वरस की भावनायें देकर घृत के साथ या शहद व घृत के साथ अथवा गोदुग्ध के साथ एक मास तक विधिपूर्वक सेवन से रोगरहित दीर्घायु प्राप्त होती है।

अथवा—इसके चूर्ण के साथ समभाग असगन्ध का चूर्ण मिला घृत के पात्र मे रख दे। एक तोला तक की मात्रा मे गोदुग्ध के साथ सेवन करने से विशेष वाजीकरण होता है। कामशक्ति खूब बढती हे। यदि इसका सेवन करते हुए ब्रह्मचर्य या सयमपूर्वक रहे तो वली (बालो का झडना या त्वचा मे झुरिया पडना) एव पलित (बालो का श्वेत होना) रोग नही हो पाते।

—शार्ङ्गधर।

अथवा—इसकी जड को वसन्त ऋतु मे उखाड कर धूप मे शुष्ककर खूब महीन चूर्ण कर, गोघृत से तरकर घृत पात्र में भरकर मुख बन्द कर अनाज के ढेर मे १५ दिन तक दबाकर रक्खें। पश्चात् निकालकर एक तोला तक की मात्रा मे सेवन कर ऊपर से दूध पीवें। तथा औषध के पच जाने पर घृतयुक्त दूध का आहार करें।

—ग० नि०।

'वाजिवेगो दीर्घप्राण सुरूपो भास्करद्युति। यो लिह्यात्सर्पिषा चूर्णं वृद्धदारुक मूलजम्॥
लिहन् वा मधुसर्पिर्भ्या धात्री स्वरस भावितम्। क्षीरेण वा पिबेन्मास शत जीवेदरुक सुखी॥' (शोढल)

इसके सेवन से वृद्धावस्था में बहुत लाभ होता है। बालको की कुरूपता दूर होकर उनका स्वर सुधरता, टूटी हुई हड्डी जुड जाती एव रक्तदोष, अपस्मार, ग्रह, उन्मादादि मे लाभ होता है।

(२) श्लीपद, स्थूलता, आमवात आदि पर—

इसकी मूल ५ तोला तथा सोठ, कालीमिरच और पिप्पली एक-एक तोला सबका एकत्र कल्क कर, उसमे एक सेर घृत और चार सेर काजी मिला, मद आग पर पकावें। घृत मात्र शेष रहने पर, छानकर रख लें। मात्रा १-२ तोला तक सेवन करने से श्लीपद व आमवात नष्ट होता है, अग्नि दीप्त होती है।

यदि साथ ही साथ शोथ या शूल, गृध्रसी या पाडु रोग हो, तो उक्त प्रयोग के कल्क मे त्रिफला, पुनर्नवा मूल दारुहलदी व चित्रक एक-एक तोला मिला लेवें। तथा घृत सिद्ध कर ले। यह घृत उक्त सब विकारो को नष्ट कर बल, वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि करता है।

श्लीपद मे—केवल इसकी मूल का चूर्ण ही काजी या गोमूत्र के साथ सेवन करते रहने से भी लाभ होता है।

आगे विशिष्ट योगो में 'वृद्ध दारुकादि चूर्ण' का प्रयोग देखें।

दूषित वात विकार, उदर विकार और अर्श पर—

इसके मूल का चूर्ण ७ भाग तथा त्रिफला, पिप्पली, दारुहलदी, सोठ और पुनर्नवा मूल एक-एक भाग, सबका महीन चूर्ण कर, एकत्र अच्छी तरह खरल कर रखें। इसे १ से ६ माशा तक काजी के साथ सेवन से दुष्ट वायु, गुल्म, उदर विकार एव गर विषादि का नाश होता है। औषध के पच जाने पर यथेच्छ आहार कर सकते है।

—ग० नि०

अथवा—उदर विकार पर इसका मूल, छोटी हर्र (वालू मे भूनी हुई), सौफ, अजवायन, कालीमिरच, सेंधा नमक, श्वेतजीरा, धनिया व आमला समभाग महीन चूर्ण करें। ६ माशा की मात्रा मे प्रात साय जल से लेवे। उदर के सर्व विकारो मे लाभ होता है।

अर्श पर—वृद्धदारुक मोदक-विधारा, शुद्ध भिलावा और सोठ का चूर्ण एक-एक भाग तथा गुड सबके बराबर लेकर एकत्र घोट कर (३ से ६ माशा तक) मोदक बना लेवे। इसके सेवन से ६ प्रकार का अर्श रोग नष्ट हो जाता है।

—शा. स.

(४) वातरोग, उपदश तथा मूत्राशय की दाह पर—

इसके मूल के चूर्ण को, यथोचित मात्रा मे गोदुग्ध, रेंडी तैल या गोमूत्र या मद्य या आरनाल काजी इनमें से किसी भी एक उचित अनुपान के साथ सेवन से नानाप्रकार के वात रोगो का शमन होता है।

सधिवात मे—विधारा २ भाग और शतावरी एक भाग इन दोनो का क्वाथ सेवन कराते है। इससे गठिया (आमवात) भी दूर होता है।

ऊरुस्तम्भ पर—विधारा चूर्ण दो भाग और सोठ चूर्ण एक भाग, दोनो को एकत्र खरल कर लें। एक से चार माशा तक की मात्रा में प्रात साय गरम जल से सेवन करावे।

—ग० नि०

उपदश पर—विधारे के चूर्ण को, त्रिफला के क्वाथ के साथ, नित्य प्रात सेवन कराने से लाभ होता है।

मूत्राशय की दाह पर—विधारे का क्वाथ सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। इससे प्रतिश्याय भी दूर होता है।

यदि विधारा और चिरायता समभाग का चूर्ण मात्रा दो तोला तक का ४० तोला जल में अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराया जाय तो पित्त की ऊष्मा शीघ्र शात होती है। तथा कुछ दिन के सेवन से रक्त दोष भी मिट जाता है।

—सकलित

(५) स्त्री रोग तथा बाल रोग पर—

श्वेतप्रदर पर—इसकी जड के साथ लोध और समुद्र शोष (आगे के प्रकरण मे वर्णित विधारा न. २) की जड समभाग लेकर महीन चूर्ण कर, उसमे चूर्ण के बराबर चीनी (शक्कर) मिलाकर रखें। ६ माशा की मात्रा मे गो दुग्ध के साथ सेवन करावे। श्वेत प्रदर मे अति हितकर है।

—सि० भै० म० मा०

अथवा—विधारे का चूर्ण और असगध का चूरा ८-८ भाग, बडी इलायची चूरा व कुक्कुटाण्डकपाल चूरा २-२ भाग, वग भस्म १ भाग और मिश्री चूरा ८ भाग सबको एकत्र मिलाकर शीशी मे रखें। प्रात साय ४-४ माशे देकर

ऊपर से गो दुग्ध पिलायें। श्वेत प्रदर वाली स्त्री को २ से ६ मास तक या रोग अच्छा होने तक इस चूर्ण का सेवन करायें। —सिद्ध योग संग्रह

शुक्र गर्भ वृद्धि के लिए—विधारा और गुड़हल के पुष्प दोनो को गोदुग्ध के साथ पीसकर उसमे मिश्री मिला, प्रातःकाल ७ दिन तक पिलायें। विशेषत. मासिक धर्म के बाद चौथे दिन से ७ दिन तक पिलाने से अवश्य ही लाभ होता है। —व० गु०

अथवा—विधारा मूल चूर्ण १ से ३ माशा तक प्रति दिन प्रातः बकरी के ताजे दूध के साथ पिलाने से भी लाभ होता है।

पुत्रोत्पत्ति के लिये वृद्धदारक घृत—१ सेर गो घृत मे १० तोला विधारे की जड़ का कल्क और ४ सेर गोदुग्ध मिलाकर मन्द आग पर पकायें। घी मात्र शेष रहने पर छान लें। यह घी अत्यन्त वृष्य है। इसे पुत्र की अभिलाषा वाली स्त्री और साथ ही साथ पुरुष को भी सेवन करना चाहिये। मात्रा—१ से २ तोला तक गोदुग्ध के साथ। —व० से०

बालकों के नेत्र रोग 'कुकूणक' (क्षीर दोष जन्य-बालकों के नेत्रों के पलक में होने वाला रोग, कोथ, कुकर्द Ophthalmia in children) पर—विधारे के स्वरस मे उत्तम मद्य मिलाकर नेत्रों के भीतर पलकों मे लगाने से यह रोग नष्ट होता है। —व० से०

नोट—मात्रा—मूल चूर्ण १ से ६ माशा तक।

पत्र—इसके पत्रों के विषय मे (जो कहा जाता है कि विधारे के पत्र का पृष्ठ भाग खुजली पैदा करता है, तथा उसे व्रण या फोड़े पर बांधने या चिपकाने से फोडा शीघ्र पक कर फूट जाता है। ध्यान रहे ये सब गुण धर्म समुद्र शोष के पत्ते मे विशेषता से पाये जाते है, न कि प्रस्तुत प्रसंग के विधारा पत्र मे) आगे विधारा नं० २ (समुद्र शोष) का प्रकरण देखिये।

किन्तु मूत्रकृच्छ्र मे—विधारा पत्र को कुचल कर जल मे भिगोने से जल के कुछ गाढे हो जाने पर उसमे मिश्री मिलाकर पिलाने से मूत्र कृच्छ्र या सुजाक में लाभ होते देखा गया है।

विशिष्ट योग—

(१) वृद्धदारक समचूर्ण—विधारा मूल चूर्ण १२ भाग तथा त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, दारुहल्दी, बरने की छाल, गोखरू, गोरखमुण्डी और गिलोय ये १२ द्रव्य प्रत्येक १-१ भाग सबका चूर्ण एकत्र खरल कर रक्खें। मात्रा १ से ३ माशा तक कांजी के साथ सेवन करे। औषधि पच जाने पर बिना किसी विशेष परहेज के यथा रुचि आहार कर सकते है। इसके सेवन से श्लीपद, गृध्रसी, आमवात, गुल्म, कुष्ठ, अरुचि एवं वात कफ ज्वर नष्ट होता है। —भै० र०

अथवा—लघु वृद्धदारक सम चूर्ण—पिप्पली, हरड, बहेड़ा, आमला, देवदारु, सोंठ और पुनर्नव मूल ८-८ तोला तथा विधारा मूल सबके बराबर लेकर यथाविधि चूर्ण बना लें।

मात्रा ३ माशा तक कांजी के साथ सेवन से श्लीपद, वातरोग, प्लीहा और भगंदर रोग नष्ट होता है तथा अग्नि दीप्त होती है। इस पर भी किसी विशेष परहेज की आवश्यकता नही है। —ग० नि०

(२) वृद्धदारकाद्य घृत—विधारामूल ८ तोला, सोंठ ४ तोला तथा पिप्पली, हरड, बहेडा, आमला, दारुहल्दी, चित्रक व पुनर्नवा मूल २-२ तोला सबको एकत्र पीसकर कल्क करें। ६४ तोला घी मे यह कल्क तथा घी से चौगुना जल मिलाकर मन्द आग पर पकायें। घी मात्र शेष रहने पर छान ले। यह घी श्लीपद, गृध्रसी, शोथ, शूल, पाडु और आमवात को नष्ट कर बल, वर्ण व अग्नि की वृद्धि करता है। —भा० भै० र०

(३) विधारा पाक—विधारा मूल ४० तोला जौकुट कर ४ सेर जल मे पकावे। १सेर जल शेष रहने पर छान कर इस क्वाथ जल मे मिश्री ४०तोला डाल चासनी करें। इस चाशनी मे घी २० तोला तथा घी मे भुना हुआ खोया २० तोला मदाग्नि पर रख उसमे, अकरकरा, विधारा, दोनो मूसली, सतावर, कौंच बीज, असगन्ध और ताल-मखाना प्रत्येक १-१ तोला महीन चूर्ण कर अच्छी तरह

मिला नीचे उतार कर जमा देवें या २॥ तोला के मोदक बना ले। प्रात साय इसे गोदुग्ध के साथ सेवन से प्रमेह, स्वप्न मे धातुस्राव, वीर्य की कमी आदि विकार दूर होकर रक्त शुद्ध होता एव शरीर बलवान व पुष्ट होता है।

नोट—शेष अन्य पाको के उत्तमोत्तम प्रयोग हमारे बृहत्पाक सग्रह ग्रन्थ में देखिये।

विधारा नं. २ (समुद्रशोष)–Argyreia Speciosa

त्रिवृत कुल (Convolvulaceae) की इस विस्तृत आरोहिणी लता के काण्ड व शाखाये-कडी, गोलाकार, स्थूल रुई जैसे श्वेत चमकीले रोमो से आच्छादित, पत्र—लट्वाकार ६-१२ इञ्च व्यास के, ४-१२ इञ्च लम्बे, अधिक चौडे, तीक्ष्णाग्र या कुण्ठिताग्र, ऊपर के पृष्ठ भाग में चिकने, अध भाग मखमली श्वेताभ रोमो से व्याप्त, पत्र-वृन्त ३-६ इञ्च लम्बा, पुष्प-गुच्छो मे घटाकृति, १½-३ इञ्च लम्बे बाह्य दल श्वेत रक्ताभ रोमश, आभ्यन्तर दल बैंगनी या गुलाबी रङ्ग के होते है। ये पुष्प रात्रि मे विकसित होते तथा कुछ सुगन्धित होते हैं। फल—गुच्छो मे १ इञ्च लम्बे, गोल किंचित नोकयुक्त, चिकने, चमकीले, कच्ची दशा मे हरे, पकने पर पीताभ धूसर होकर फट जाने पर भीतर के बीज श्वेत भूरे रङ्ग के त्रिकोणाकार बाहर निकल पडते हैं। वर्षाऋतु से शीत काल तक पुष्प तथा बाद मे फल आते हैं।

यह पश्चिमी शुष्क प्रदेशो को छोडकर भारत मे प्राय सर्वत्र पाया जाता है। बागो मे भी लगाया जाता है।

नोट—इस लता की जड व काण्ड के ४-६ अगुल लम्बे टुकडे विधारा के नाम से बाजारो मे बिकते हैं।

समुदरसोख (Salvia Plebeia) नामक जो इससे भिन्न बूटी है उसका सचित्र वर्णन 'कमरकस' के प्रकरण में, भाग २ मे देखिये।

सुश्रुत के अधोभागहर गण मे लिया गया है।

नाम—

स—वृद्धदारु, समुद्रशोष, छागान्त्री इ। हि—विधारा, समुद्रशोष, घावपत्ता, घावबेल इ। म—समुद्रशोक। गु—समदर शोष, वरधारो। ब—बिजतारक। अ—एलेफेन्ट क्रीपर (Elephant creeper) ले—आर्जिरिया स्पिसिओजा लेटसोमिया नेरव्होसा (Lettsomia Nervosa)।
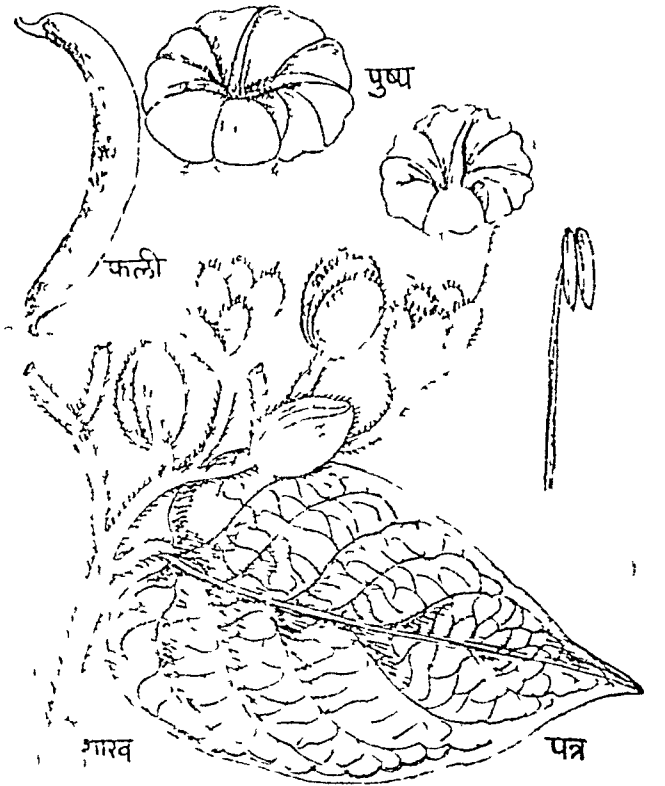
रासायनिक संगठन—

इसमे कषाय द्रव्य (टेनिन) और एक प्रकार की अम्ल राल पाई जाती है।

प्रयोज्याङ्ग—मूल, काण्ड, पत्र व बीज। बीजो को दोलायन्त्र विधि से दूध में ३ घंटे तक स्वेदित कर लेने से उनकी शुद्धि एव उनके गुणो की वृद्धि होती है। बीजो से तैल भी निकाला जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

मूल व काण्ड—लघु, स्निग्ध, कटु, तिक्त, कषाय, मधुर

विपाक, उष्ण वीर्य, कफवातशामक, दीपन, पाचन, अनुलोमन,रेचन, हृद्य, मेध्य, नाडी बल्य, कफघ्न, कठ्य, शुक्रजनन, बल्य, गर्भाशय शोथ तथा मस्तिष्क दौर्बल्य, वातव्याधि,आमवात, स्नायु के विकार, अग्निमाद्य, आमदोष, विवन्ध, अर्श, हृद्रोग, कास, स्वरभेद, शुक्रदौर्बल्य, प्रमेह, क्षय, शोष आदि मे प्रयुक्त होता है।

मूल या काण्ड का चूर्ण २ से ६ माशा तक गोदुग्ध या गरम जल के साथ प्राय साय लेने से दस्त साफ होता तथा आमवात और स्नायुविकारो मे लाभ होता है। बगाल की ओर पौष्टिक रूप मे इसका प्रयोग करते हैं।

(१) सधियो की दाहयुक्त पीड़ा तथा उपदश मे इसके चूर्ण को दूध के साथ सेवन कराते हैं।

(२) श्वेत प्रदर पर -इसके चूर्ण मे समभाग शक्कर मिलाकर १ तोला तक की मात्रा मे एक घूट ताजे जल के साथ दिन मे ३ वार सेवन कराते हैं। इससे योनिशूल में लाभ होता है।

(३) रक्तदोष नाशार्थ–इसकी जड २½ तोला को जोकुट कर २० तोला जल मे पकाकर ५ तोला शेष रहने पर छान कर उसमे शहद ३ माशा मिलाकर सेवन कराते है।

(४) श्लीपद (फीलपाव) पर–इसकी जड १ तोला पीसकर २½ तोला गोमूत्र मे छानकर उसमे ४ तोला शहद मिलाकर रोग की प्रारम्भावस्था में ही सेवन कराने से लाभ होता है।

(५) आत्र वृद्धि पर—इसकी जड को गोमूत्र के साथ खूब महीन पीसकर थोडा सेधा नमक मिला,गरम कर सूजन पर अर्थात उतरी हुई आत पर लेपकर १ घण्टा बाद लेप को साफ कर महुआ के तेल मे दसवा भाग कपूर मिला कुछ गरम कर मालिश करे। पश्चात् सभालू (निर्गुण्डी) की पत्तियो को पानी में उबालकर उस पानी में सेंधा नमक मिला उसमें कपडा तर कर चौपरत कर सुहाता हुआ सेंक करें। साथ ही साथ रोगी को छोटी हर्र को रेंडी तेल मे गर्म कर हर्र यदि १० तोला हो तो उस में काला नमक, अजवायन २-२ तोला हीग, भुनी हुई १ तोला मिला खूब एकत्र महीन कर ६-६ माशा प्रात साय खाकर ऊपर से २० तोला गरम दूध मे गो मूत्र और शक्कर प्रत्येक २½ तोला मिलाकर पिलाया करें। उतरी हुई आत ठिकाने पर आजावेगी।लगभग ८-१० दिन तक यह प्रयोग करें। —भा० गृ० चि०

(६) पत्र—इसके पत्र व्रणो के लिये पाचन, दारण शोधन तथा रोपण कार्य करते है। व्रण के पाचन व दारण के लिये पत्र को रोमश पृष्ठ भाग की ओर से व्रण शोथ पर बाधते है। फिर शोधन व रोपण के लिये ऊपरी चिकना पृष्ठ भाग व्रण पर रख कर बाधते है। इसी प्रकार इनके बांधने से भारी दूषित व्रण, नाडी व्रण, जीर्ण व्रणो में लाभ हो जाता है।

फोडे पर—इसके पत्तो पर घी अथवा तेल सीधी तरफ लगाकर गरम कर फोडे या सूजन पर बांधने से फोडा बैठ जायगा, सूजन जाती रहेगी। फिर यही पत्ता उलटा कर बाधने से फोडा फूट जायेगा।

(७) पामा व बालको के चर्म रोगो पर—पत्र रस मे तिल तेल मिला उसमे सोया के बीजो को पीस कर लेप करने से लाभ होता है। पत्तो के रस को ही लगाने मे पामा तथा उसके कीडे नष्ट हो जाते हैं।

(८) अण्डकोष के शोथ और वात विकारो पर—इसके पत्ते पर रेडी का तेल चुपड कर कुछ गरम कर बाधने से अण्डकोष की सूजन दूर होती है।

वात विकार पर—पत्तो की पकौडी घृत मे तल कर बनावें। इनके खाने से लाभ होता है।

नोट—मात्रा-मूल का चूर्ण १-३ माशा। बीज चूर्ण ५ १० रत्ती।

इसके मूल तथा काण्ड के शेष सब प्रयोग, विशिष्ट योग आदि विधारा नम्बर १ के अनुसार ही कहे जाते है। अर्श रोग पर जमीकन्द (सूरण) के प्रकरण मे (भाग ३ में) जो सूरण वटक(मोदक) वृहत् का विशिष्ट योगो में प्रयोग दिया गया है उसमे विधारे की योजना की गई है। यह प्रयोग वहुत उत्तम लाभकारी है।

विधारा नं.३ [दो पाती लता]–Ipomoea Biloba

उक्त त्रिवृत (निशोथ) कुल की ही इस वहुवर्षायु सैकडो फुट लम्बी फैलने वाली लता के काण्ड ताजी दशा मे मासल,जामुनी रग के,पुराने होने पर रस्सी की तरह हो जाने वाले, पत्र–१.५–२.५ इन्च लम्बे, चौडाई मे लम्बाई की अपेक्षा प्राय अधिक, मोटे चिकने, चमकीले, अग्रभाग मे कचनार के पत्र जैसे द्विभक्त, निम्न भाग मे वृन्त के पास कुछ लाल एव दो वडी रङ्गीन ग्रन्थियो से युक्त, पुष्प–वडे घण्टाकार, रक्ताभ, जामुनी रङ्ग के या गुलावी फल–½ इञ्च लम्बे, बडे, अण्डाकार, अनीदार, चिकने चार खण्ड युक्त, बीज फल के प्रत्येक खण्ड मे १ १ बीज काले वड, मृदु रोमश होते है ।

मूल—अनेक उपमूल युक्त, बड़ी, लम्बी, मोटी, भूरी छाल युक्त, काष्ठमय, मजबूत, ऐंठी हुई सी, लगभग ½ इञ्च मोटी होती है।

यह लता वैसे तो भारत के प्राय सभी भागों में यत्र तत्र पाई जाती है, किन्तु विशेषत बगाल, उडीसा, मद्रास, बम्बई, कच्छ आदि मे समुद्र के किनारे रेतीली भूमि में जहा अन्य कोई पौधे पैदा नही होते वहा यह खूब विस्तार से फैली हुयी देखी जाती है । मानो समुद्र के किनारे की रेती को यह खूब दूर तक मजबूती से जकडकर समुद्र की मर्यादा की रक्षा करती हो। इसी से शायद इसे मर्याद वल्ली कहते है ।

नाम–

स०—मर्याद वल्ली, सागर मेखला, मारवल्ली, वृद्ध-दारु इत्यादि । हि०—विधारा, दो पातीलता (पत्तो का अग्रभाग द्विभक्त होने से) मर्याद वेल । म०–मर्याद वेल । गु०—मरजाद वेल, दरिया वेल । व०—छागल खुरी (पत्र बकरे के खुर सदृश दिखलाई देने से) अ०–गोट्स फुट क्रीपर [Goats foot Creeper] सैंड वाइन्डिंग क्रीपर [Sand binding creeper] ले —आइपोमिया वाइलोवा, आ पेस्केप्री [Ipo Pescaprae] ।

रासायनिक संगठन —

इसके पचाङ्ग मे राल ७ २७%, अल्प मात्रा मे उडनशील तैल, अधिक मात्रा मे लुआवदार पदार्थ, तथा समुद्र के अनेक क्षार एव स्निग्ध पदार्थ पाये जाते है । इसकी जड व शाखाओ में गाढा पीत वर्ण का चिकना दूध, पिष्ट पदार्थ (स्टार्च) एवं क्षाराभ [Alkaloid] पाये जाते है। इसके सुखाये हुए द्रव का चूर्ण मृदुरेचक पदार्थ का काम करता है।

नोट— इसका ही एक भेद विशेष 'आइपोमिया पेटलाएडिया (Ipomoea Petaloidea) है इसे भी विधारा कहते है । इसकी लता वहुत विस्तृत, झाडदार, काण्ड-चिकना ऊपरी भाग पर २-४ उभरी हुई रेखाओ से युक्त, पत्र ५-७ इञ्च लम्बे,नीचे को लट्वाकार, ऊपर की ओर लट्वाकार प्रायवत् आयताकार, चिकने, रक्ताभ, अग्रभाग द्विभक्त या कुठित, रोमश, पत्र वृन्त २-३ इञ्च लम्बा पुष्प—कुछ श्वेताभ पीत वर्ण फल – ½ इञ्च अण्डाकार बीज छोटे-छोटे, सूक्ष्म लहरदार होते हैं ।

उक्त दोनो विधारा या आइपोमिया विशेष की जड़ें खाकी या भूरे रङ्ग की हलकी एव मुलैठी जैसी मोटी होती है। इनके विभिन्न आकार-प्रकार के काटकर सुखाये हुए टुकडे बाजार मे मिलते है। इनके फटे हुए भाग पर इसका दूध गोंद की तरह जमा हुआ रहता है। स्वाद मे कुछ कडुवे व फीके होते है।

गुण धर्म व प्रयोग–

गुरु, कटु विपाक, उष्ण-वीर्य, ग्राही, वातहर, सारक (विशेषत कफ विरेचनीय), मूत्रल, वाजीकर, शोथहर, तथा शूल,कास, वमन और आम निवारक है। गर्भधारक है इसकी जड की क्रिया अनन्तमूल या चोबचीनी के समान होती है । जड का स्वरस अत्यन्त मूत्रल है ।

कास पर—इसके काण्ड या जड का क्वाथ सेवन कराते है । आमवात तथा सधिशोथ मे जड के स्वरस को पिलाते तथा पत्तो को पीसकर लेप करते हैं।

पत्र—इसके पत्ते शोथहर, वेदना स्थापक, कासहर और मूत्रल है। फोडे फुसी या गठनो पर पत्तो का पीस-

कर बाधने से वे बैठ जाते है या फूट जाते है।

संधिवात पर—पत्तों को पीसकर लेप करते है। जलोदर, उदर शूल और काम मे पत्र स्वरस पिलाते है।

जलोदर मे साथ ही साथ पत्रों को कुचल कर उदर पर बांधते हैं।

शोथ, वद गाठ, जल शोथ, शिर शूल तथा मोच आदि मे पत्तो को पीसकर बाधते है।

वदगाठ, गडमाला तथा किसी भी ग्रंथि पर पत्रो को वफाकर बाधने से शीघ्र लाभ होता है।

नोट—शुष्क मूल का चूर्ण १ से ३ माशा तक। पत्र स्वरस ½ से १ तोला। सुखाया हुआ मूल स्वरस या दूध ५–६ रत्ती।

यह उष्ण प्रकृति के लिये हानिकारक है। निवारक आलूबोखारे का शीत कषाय है। प्रतिनिधि-निसोथ है।

विधारा नं. ४ [गंभारी भेद]–Gmelina Asiatica

निर्गुंडी कुल (Verbenaceae) की इस सुन्दर अनेक शाखा प्रशाखा युक्त, झाडीदार, वृक्षादि के सहारे बढती व फैलती हुई लता की शाखा से छोटी-छोटी टहनियो के काटे जैसे उभारो से युक्त, छाल—पतली पीताभ श्वेत रग की, पुष्प—विषमवर्ती १½ इञ्च तक लम्बे अडाकार, अनीदार। पुष्प—डालियो के अन्त मे स्थान-स्थान पर चमकीले पीले या रक्ताभ पीतवर्ण के पुष्प गुच्छो मे, फल—½ से ¾ इञ्च तक लम्बे, एक या दो बीजो से युक्त होते है। इस पर पुष्प प्राय. बारहो मास आते रहने से यह लता और भी सुन्दर दिखाई देती है।

यह बूटी भारत के दक्षिण मे ट्रावनकोर से कारोमण्डल कोष्ट तक तथा मद्रास व सीलोन मे नैसर्गिक पैदा होती है। अन्यत्र शोभा वृद्धि के लिये बाग बगीचो मे लगाई जाती है।

नाम–

स.—विदारी, विकारिणी, गोपामुद्रा। हि.—विधारा बधारा, भेदेरा। म.—लहान शिवण, शिवर्णा। गु.—लटके सरनु झाड। ले.—मेलिना एसियाटिका, मेलिना पार्विफ्लोरा (Gmelina Parviflora)।

रासायनिक संगठन–

इसमे एक प्रकार का ग्लुकोसाईड पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, कटु, तिक्त, कषाय, मधुर, उष्णवीर्य, पिच्छिल, सारक, दीपन, धातुवर्धक, बल्य, शातिदायक, कामोद्दीपक कफनिसारक, सकोचक तथा प्रमेह, मूत्राशय के विकार, सधिवेदना, नवीन सुजाक, उपदशजन्य अन्य विकारो मे उपयोगी है।

शीत जल मे इसके पत्र व कोमल शाखाओ को डालकर मलने से जो उनसे एक प्रकार का पिच्छिल एव लसीला पदार्थ निकलता है उसके कारण जल जमकर गाढा हो जाता है। सुजाक, स्नायु विकार, मूत्रदाह आदि मे इसका प्रयोग किया जाता है। सुजाक या मूत्रकृच्छ्र मे उक्त जमे हुए जल मे मिश्री मिलाकर सेवन कराते हैं।

इसके शेष प्रयोग विधारा न० १ के समान ही हैं।

विनजोम (वनजई)—देखो—सगकुप्पी।

नोट—बनचांद (Flagellaria Indica) नामक फ्लेगेलेरी (Flagellarieae) कुल की इस बूटी की वृक्षारोही लता ऊचे-ऊचे वृक्षो को जकडते हुए ऊपर को चढ़ती है। काण्ड-लगभग १ इञ्च मोटा, शाखायें-चिकनी गोलाकार। पत्र—वृन्तहीन, ६–१० इञ्च लम्बे अग्रभाग में लम्बी शिखायुक्त निम्न भाग मे गोलाकार, बहुशिरा विशिष्ट होते है। पुष्प—श्वेत वर्ण के छोटे-छोटे लम्बी फुनगियो या केशर तन्तुओ से युक्त तीन दल वाले तथा फल लाल रग के चिकने, गोल, छोटे-छोटे अमरूद के आकार के कुछ चमकीले होते है। वर्षा काल में-पुष्प तथा शीत काल के अन्त मे फल आते हैं।

यह लता सुन्दर बन से चटगाव तक तथा प्राय. समुद्र के किनारे के जगलो मे सिंगापुर की ओर विशेष देखने मे आती है। इसके पत्र सग्राही, सकोचक होते है।

—भारतीय वनौषधि

खिना (Avicennia Officinalis)

निर्गुण्डी कुल (Verbenaceae) की इस बहुशाखी झाडदार २५ फुट तक ऊची बनस्पति के पत्र अभिमुख, अखण्ड, चमकीले, लम्बगोल ३।।×१।। इची के सदैव हरे रहने वाले, पत्रवृन्त—क्रमश नोकदार, निम्न भाग में सूक्ष्म रोमश, पुष्प—शाखाओ के अग्रभाग पर, चौथाई इञ्च लम्बी शलाका पर पीले रग के ४-५ डिम्बाकृति पखुडियो वाले, सुगधित, ४ पुकेसरयुक्त पुष्प आते हैं। फल या डोडी—१ इञ्च लम्बी, कुछ चिपटी, तीक्ष्ण रोम-युक्त तथा मूल—मोटी, अनेक उपमूल युक्त होती है। इसमें बसतऋतु मे पुष्प व वर्षाकाल मे फल आते हैं।

यह बनस्पति भारत के दक्षिण मे, पूर्व व पश्चिम के समुद्र के तटवर्ती स्थानो मे अधिक पैदा होती है तथा भारत के कई जगली प्रदेशो मे भी देखी जाती है।

दुष्काल के दिनो मे घास आदि के अभाव मे इसे काट काट कर पशुओ को खिलाते हैं।

नाम—

सं०—सागरोद्भूत। हिं०—विना। म०—तिवर। गु०—तवर, चेरिया। ना—बीना, वानी। अ०—व्हाइट मेन्ग्रोव्ह् (White mangrove)। ले०—एव्हीसीनिया आफिसिनेलिस।

गुण धर्म व प्रयोग—

मल—उत्तेजक, कामोद्दीपक, छालसकोचक, उग्र, पत्र—कफनि सारक। बीज—पित्त नाशक है।

चेचक मे इसकी छाल का प्रयोग किया जाता है। व्रण और फोडो को पकाने के लिये कच्चे फलो का या बीजो का पुल्टिस बनाकर बाधते है।

फल—लघु, तिक्त, कसैले, मधुर, उष्णवीर्य, व्रणो को पकाने वाले तथा कृमिज्वर, विवन्ध, प्रमेह, उदावर्त, कुष्ठ, गुल्म, उदर रोग, अर्श तथा दूषित कफ नाशक है।

बीजो का तेल, मधुर, कसैला, उष्णवीर्य, कटुविपाकी है तथा यह वमन, विरेचन द्वारा दोषहारक है। वात, कफ, कुष्ठ, मेद रोग एव कृमि रोग मे उपयोगी है।
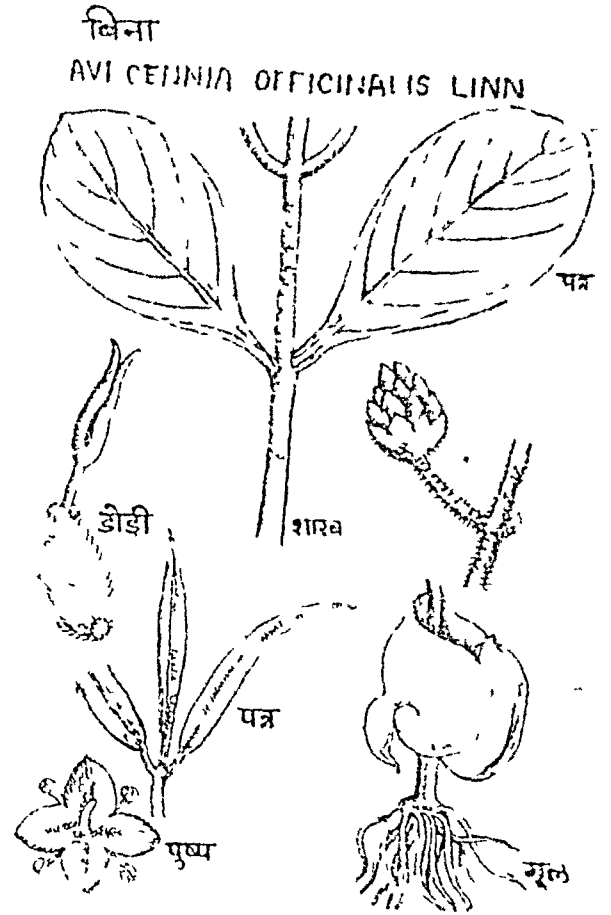
इन्फ्लुएञ्जा पर इसका प्रयोग—"एक स्त्री को भयकर इन्फ्लुएञ्जा का आक्रमण हुआ। श्वास नलिका मे शोथ, छाती मे कफ भरा हुआ, श्वास मे रुकावट, फेफडो मे श्वासावरोध की आवाज बहुत खराब सुनाई देती थी, जिससे मालूम होता था कि उसके फेफडे भी कफ से भरे हुए हैं। कफ नि सारणार्थ अडूसा क्वाथ, अलसी की पुल्टिस का सेक, भारङ्ग्यादि क्वाथादि प्रयोग किये गये, ज्वर के लिये महासुदर्शन क्वाथ दिया गया। किन्तु रोगी की हालत मे कोई सुधार न होने से मैंने इस बनस्पति के पत्तो को १० तोला लेकर, जौकुट कर उसके साथ ६ माशा नमक मिला क्वाथ बनाया और उसमें १ तोला शहद मिला पिलाया। आध घन्टे मे पीले, दुर्गन्धित, चिकने कफ के गुच्छे खासी के साथ निकलने लगे तथा ३-४ घण्टे

में लगभग सेर, सवा सेर कफ निकल गया। पुन दूसरी बार पत्रो का क्वाथ पिलाने से ज्वर जो १०४ डिग्री मे स्थित था उतर गया स्त्री अच्छी होगई। इसी प्रकार और भी २-३ रोगियो मे इसके प्रयोग से सन्तोपजनक लाभ हुआ।

—व० च०

विनौला—देखे—कपास मे।

बिरंजासिफ (Achillea Millefolium)

भृङ्गराज कुल (Compositae) के वहुवर्षायु इस अफसन्तीन के समान क्षुप के काड ३-४ फुट तक ऊचे, शाखायें वारीक; पत्र—एकान्तरीय, वरछी के आकार के, पुष्प—छत्तेदार, सोया या सोफ के पुष्प जैसे पीताभ श्वेत या गुलावी नील वर्ण के वावूने की जैसी सुगन्धयुक्त, स्वाद में किंचित तिक्त, विशेषत नमकीन होते है। इसके क्षुप पर एक प्रकार का लसदार द्रव्य लगा हुआ रहता है।

नोट—कही कही गन्दना वूटी को ही विरजासिफ कहते है। किंतु वह इससे भिन्न है। गन्दना का प्रकरण इस ग्रन्थ के भाग २ मे देखिए।

इसके क्षुप पश्चिम हिमालय के प्रदेशो मे काश्मीर से कुमाऊ तक ६ से ६ हजार फुट की ऊचाई तक पाये जाते हैं। प्राय यह वाग वगीचों में भी लगाया जाता है।

नाम—

हि०—विरजासिफ, वरजासफ। म०—रोजमरी*। अ०—मेलफोइल (Melfoil), यर्रो (Yarrow), नोज ब्लीड (Nose bleed)। ले०—एचिलीया मिलीफोलियम।

रासायनिक संगठन—

एसमे एक नीला या गहरा हरा उडनशील तैल तथा एचिलीन (Achillein) नामक तिक्त सत्व पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—पुष्प, पत्र, पचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग

इसके पुष्प- उष्ण, रूक्ष, कडुवे, मृदुरेचक, ऋतुस्राव नियामक, वेदना निवारक, व्रणपूरक, मूत्रनिसारक उत्तेजक, कृमिनाशक, ज्वरघ्न, मस्तिष्क के लिये बल्य, कामोद्दीपक, शोथहर, प्रमाथी, मूत्रार्त्तवजनन तथा अश्मरी, आमाशय का शोथ, कष्ट प्रसूति, यकृद्विकारयुक्त कफज्वर, जीर्णज्वर आदि मे उपयोगी है।
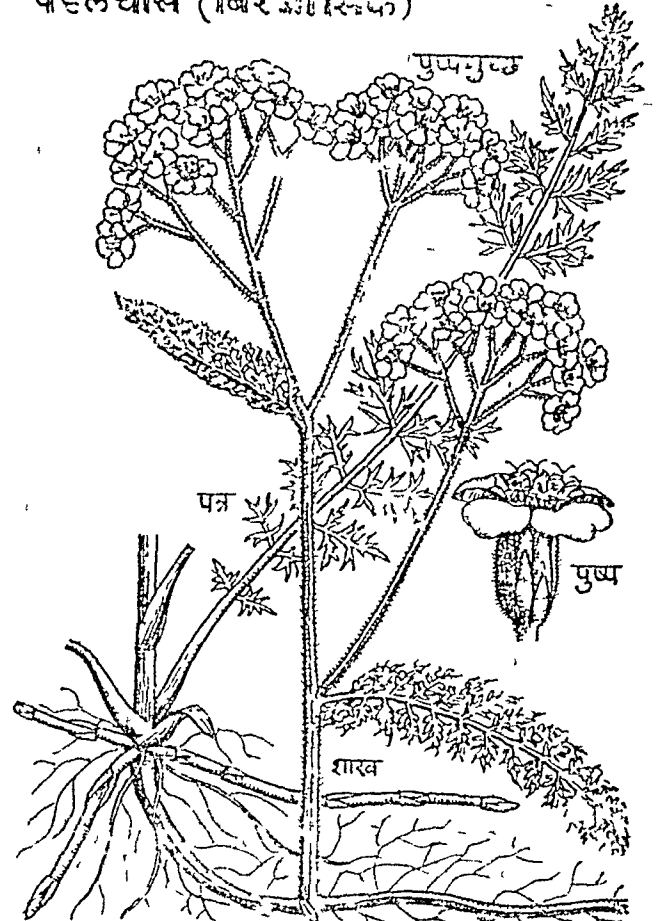
---

*तुलसी कुल की 'रोजमरी' नामक वूटी इससे भिन्न है। इसका वर्णन आगे यथास्थान 'रोजमरी' में देखिए।

इसका पंचाग-ज्वर निवारक, उत्तेजक, पौष्टिक है। ज्वर के प्रारम्भ मे तथा पसीने की रुकावट मे तथा विबन्ध, हृदय की जलन, शूल और अपस्मार मे भी यह लाभदायक है। इन सब विकारो मे इसका क्वाथ दिया जाताहै। शोथ और जीर्ण ज्वर के निवारण मे भी इसकी विशेषता है। कृमि पर-फूलो के चूर्ण को ३ माशा तक की मात्रा मे शहद के साथ चटाने से कृमि (विशेषत गोल कृमि) निकल जाते है।

ज्वर, बेहोशी तथा जुखाम मे इसके चूर्ण को गरम जल के साथ देते है। सिरदर्द पर इसका लेप करते हैं।

गर्भाशय के विकारो पर-इसके फल को ½-१ तोला की मात्रा मे जल के साथ थोडा पकाकर पिलाते है।

व्रण रोपणार्थ-इसके पचाग की राख को व्रण या जखमो पर बुरकने से वे शीघ्र भर जाते है।

शोथ तथा कर्ण विकार पर-इसके पत्र या पुष्प के शीतनिर्यास से सूजन को बार बार धोने से सूजन उतर जाती है।

पत्तो का शीत निर्यास, कान के रोगो मे भी लाभदायक है।

इसके पत्तो की धूनी मकान मे देने से सब जहरीले कीडे भाग जाते हैं।

अर्क—पचाग चूर्ण २० तोला को ४ सेर जल मे रात्रि के समय भिगोकर प्रात २ सेर अर्क खीच लेवे। ४ से ८ तोला तक सेवन से शोथ, कफ ज्वर एव यकृत विकार मे लाभ होता है। —यू. चि सा.

नोट—मात्रा–चूर्ण २ से ५ माशा।

अधिक सेवन मूत्र पिण्डो (गुर्दो) के लिये हानिकर है। हानि निवारक अनीसून या सौफ है। प्रतिनिधि बालूजा या अफसतीन है।

बिरमोवा (Flemingia Tuberosa)

शिम्बी कुल (Legumınoceae) के इस क्षुद्र क्षुप के पत्र–त्रिदलाकार या ३-३ गुच्छो मे, पुष्प–बैंगनी रग के, फली–छोटी-छोटी, प्रत्येक फली मे १-१ काले रग का गोल बीज होता है। इस क्षुप की जड मे एक कन्द होता है।

इसके क्षुप महाराष्ट्र प्रान्त में विशेषत कोकण में अत्यधिक पैदा होते है।

बिरमोवा, बिरमोली मरेठी भाषा के नाम है। लेटिन नाम फ्लेमिंजिया टयुबेरोसा है।

रासायनिक संगठन–

इसके कन्द में एक पीताभ राल १ ३%, शर्करा व गोद २५%, एस्पेरागिन (Asparagın) ४ ३%, स्टार्च ४०%, क्षाराभ १३%, सेलुलोज (Cellulose) १२ १%, राख ३ ५% तथा अल्प प्रमाण में टेनिन पाया जाता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

कन्द--मधुर व सकोचक है। कन्द को जल मे उबाल लेने से स्वाद मे अखरोट जैसा हो जाता है।

आमातिसार, रक्तातिसार तथा श्वेतप्रदर पर–कन्द का क्वाथ दिया जाताहै। अथवा कन्द के चूर्ण को द्राक्षासव के साथ देने से लाभ होता है।

इसके कोमल पत्र जहरीले होते है। मस्तक शूल पर पत्तो को पीसकर लेप करते हैं।

बिरोजा—देखे—चीड़ मे। बिलाई कन्द—देख—विदारी कन्द।

बिलायती इमली (Pithecellobium Dulce)

शिम्बी कुल के बबूल उपकुल (Mımosaceae) के इसके पौधे 'कचलोरा' जैसे ही होते हैं (कचलोरा का प्रकरण भाग २ में देखिये) इसके बीजो पर एक श्वेत मोटा सा आच्छादन होता है, जो मधुर होने से बालक-

गण बड़े प्रेम से खाते है। इसके पेड़ घर के या बागो के आवार में विशेषत लगाये जाते है।

प्रवाहिका, विशेषत शूलयुक्त प्रवाहिका मे इसके १-२ बीज (दिन मे १ बीज तथा रात्रि मे १ बीज) निगलवा देने से विशेष लाभ होता है।

विलायती सारिवा—देखे—सारिवा मे।

बिलारी Mukia Scabrella (Arm)

कोशातकी कुल (Cucurbitaceae) की इस अव-नत एव अति रोमश लता के पत्र-२-३ इन्ची, दन्तुर, पत्र वृन्त लगभग प्राय १ इन्ची, पुष्प गोल $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{6}$ इन्ची व्यास के, पीले, फल—$\frac{1}{6}$ से $\frac{1}{2}$ इन्ची, चमकीले लाल वर्ण के होते हैं। बीज—फल मे बीज घन सन्निवद्ध एव चिपटे होते हैं। पुष्प और फल विशेषत शीत काल के प्रारम्भ मे आते है, तथा पुष्प वर्ष भर प्राय लगे ही बने रहते हैं।

बगाल आदि एव भारत के प्रायः सर्व स्थानो मे यह लता देखी जाती है।

नाम —

सं०—अहिलेखन। हि०—बिलारी। म०—चिराती। ब०—आगमुखी, गोमाक काकडी। ले०—मुकिया स्केब्रेला, ब्रायोनिया स्केब्रेला (Bryonia Scabrella)।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह दीपन, मूत्रल, कफ नि सारक है। इसके बीज का क्वाथ प्रस्वेदकारक है।

मूल का क्वाथ आध्मान तथा दन्तशूल निवारक है। लता की कोमल शाखा तथा कोमल पत्र मृदु विरेचक हैं, ये शिर शूल तथा हृल्लास मे व्यवहृत होते हैं।

पत्र रस का उपयोग गर्भवती स्त्री के गर्भाशय के शोथ पर किया जाता है।

—नाडकर्णी तथा भारतीय वनौषधि से।

नोट—उक्त बूटी का विशेष वर्णन इस ग्रन्थ के भाग १ में अगमकी के प्रकरण मे देखिये।

बिलिंबी (Averrhoa Bilimbi)

चांगेरी कुल (Geraniaceae or oxalidaceae) का यह कमरख की ही एक जाति विशेष है। इसका पौधा कमरख के पौधे जैसा ही होता है, किन्तु फल अपेक्षाकृत छोटा, पीला या पीताभ हरित, दीर्घायताकार (obl-ong), १$\frac{1}{2}$–२$\frac{1}{2}$ इन्च लम्बा, $\frac{3}{4}$–१ इन्च मोटा, अधिक कोण युक्त एव स्वाद मे कच्ची दशा में अधिक खट्टा, पकने पर कुछ मधुर होता है।

यह भारत तथा वर्मा के बाग बगीचो मे लगाया जाता है। विशेषत मलाया मे यह अधिक पैदा होता है। भारतवर्ष के बाजारो में साग-सब्जी की दुकानो मे इसके पक्व या अर्धपक्व फल प्राप्त होते है।

नाम—

स—कर्कटी। हि०-बिलिंबी, बेलबू, तामरग। म—बिलबा। गु०—बिलम्बु। ब०—बिलम्बी। अ०—बिलिंबी (Bilimbi), ककुबर ट्री (Cucumber tree) ले०—एव्हेरोहा बिलिंबी।

रासायनिक संगठन—

कमरख के समान ही इसके फल की अम्लता एसिड आक्जेलेट आफ पोटास (Acid potassium oxalate, oxalic acid) पर निर्भर है। इसमे कमरख की अपेक्षा लवण की मात्रा अत्यधिक होती है।

प्रयोज्याङ्ग—फल।

गुणधर्म व प्रयोग—

सकोचक, दीपक, मनोल्लासकारी, शांतिदायक, तथा दाह, रक्तविकार, अतिसार, पैत्तिक उदरशूल आदि मे उपयोगी है।

फलो का अचार, मुरब्बा आदि बनाया जाता है, तथा भोजन को स्वादिष्ट करने के लिये इसकी चटनी, तथा इसके रस का रायता, कढी आदि बनाते है। इसका फल या कढी अर्श तथा स्कर्वी (Scurvy रक्तपित्त का एक भेद विशेष) रोगो मे उत्तम पथ्य रूप मे दी जाती है।

फल का शर्बत विशेष उपयोगी है। उत्तम परिपक्व फलो के अच्छी तरह छने हुये रस २५ तोला मे उत्तम शर्करा ७५ तोला, तथा जल २५ तोला मिला मन्द आग पर पकावें, शर्बत की गाढी चाशनी आने पर नीचे उत्तार शीशी में भर रक्खें। मात्रा ३ से ६ फ्लुइड ड्राम। शर्बत जल में अच्छी तरह मिलाकर २४ घंटे में ४-५ बार पिलावें। इससे पैत्तिक ज्वर में रोगी को शाति मिलती, दाह एव तृषा शात होती, ज्वर प्रकोप कम होता है। भीतरी आत्र, आमाशय एव अन्तःस्थ अर्श आदि से होने वाले साधारण रक्तस्राव में भी विशेष लाभदायक है।

बिल्ली लोटन (Melissa officinalis)

तुलसी कुल (Labiatae) के इसके घास जैसे, कही कही २ से ४ गज तक ऊचे क्षुप होते हैं। ताजे क्षुपो से बिजौरा जैसी मनोरम गन्ध आती है। इसीसे इसे बादरज बूया अरबी में कहते हैं। इसकी सुगन्धपर बिल्ली मोहित और मस्त होकर इस पर लोटने लगती है, अत इसे बिल्ली लोटन कहते है।

इसकी विशेष उत्पत्ति पर्शिया, यूरोप व उत्तर अमेरिका में होती है। भारत में इसका आयात पर्शिया से होता है।

नोट—इसी की एक जाति भारत में हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशो मे गढवाल से सिक्किम तक तथा खासिया की पहाड़ियो मे पैदा होती है। इसे लेटिन में मेलिसा पार्विफ्लोरा (Melissa paruiflora) कहते हैं।

अफगानिस्थान, पजाब, बगाल, मध्य व दक्षिण भारत मे इसके नीले फूल वाली एक जाति होती है, जिसे लेटिन में नेपेटा हिंदोस्ताना (Nepeta Hindostana) कहते है। निपेटा रुडेरालिस (Nepeta Rudaialis) भी इसी को कहते है। इसकी ऊचाई १५-४५ से मी तक, पत्र–१-३–५ से. मी तक लम्बे व १–३ ८ से. मी तक चौडे किनारे उभरे हुए हृदय के लिये बल्य हैं, सर्व प्रकार के ज्वरो में उपयोगी है। इसके क्वाथ के कुल्ले करने से गले के छाले दूर होते है। शेष गुणधर्म व प्रयोग प्रस्तुत प्रसग के बिल्ली लोटन के जैसे ही है।

इसका एक भेद और होता है, जिसके पत्र लम्बोत्तरे तथा पुष्प श्वेत होते है। यह काश्मीर मे होता है।
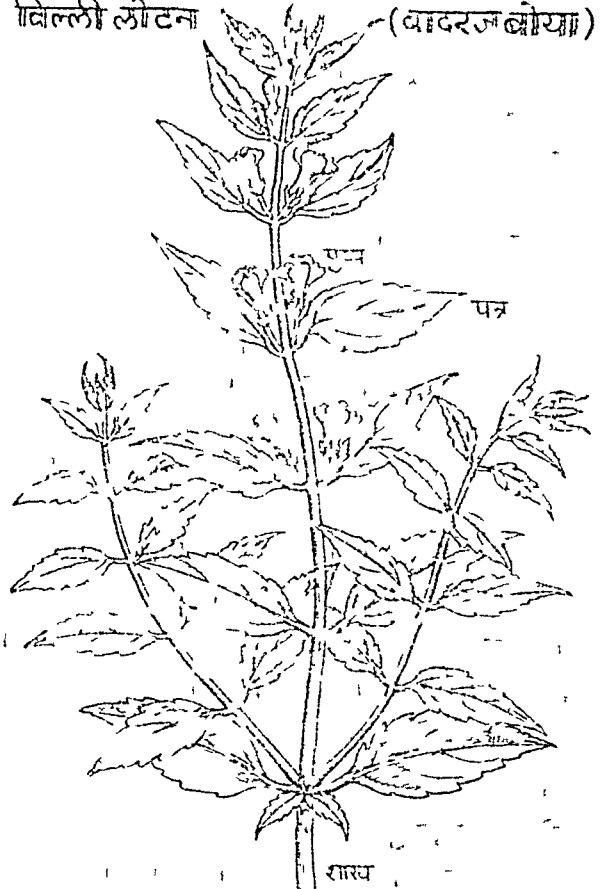
MELISSA PARVIFLORA BENTH

नाम—

हि०—बिल्ली लोटन, बौरा, बादरजबूया, बदरग खताई, बदरग बोया। म०—कालावल। अ०—अरेबियन बाम (Arabian balm), जेन्टल बाम (Gentle balm)

ले०—मेलिसा आफिसिनेलिस ।

रासायनिक संगठन----

इसमे कोमेरिन (Coumarin), ग्लुकोमाईड के अतिरिक्त स्वल्प प्रमाण मे टेनिन एक तिक्त सत्व तथा लगभग $\frac{1}{2}$ से $\frac{1}{4}$ % रगरहित कुछ पीला सा उडनसील तैल होता है ।

प्रयोज्याग—पचाग ।

गुण धर्म व प्रयोग--

उष्ण, रूक्ष, दीपन, वातघ्न, हृद्य, उल्हासकर, रक्त-शोधक, मुखदौर्गन्ध्यहर, शोथघ्न, बल्य, श्वासकृच्छ्रनाशक स्मरण, काम व आमाशय की शक्ति वर्धक तथा वात कफ विकार, मूर्च्छा, मरोड, हिक्का, अपस्मार, अर्दित, अर्धांग-वात, सधिशोथ वृक्कविकार आदि में उपयोगी है

बिल्लीलोटन (बादरजबोया)
VALERIANA OFFICINALIS LINN

आधुनिक मतानुसार—इसकी जड पचाग उत्तेजक होने से ज्वर की बढी हुई स्थिति में, जब शरीर मे बहुत दुर्बलता होती तथा तापक्रम गिरने लगता है तब उपयोग में ली जाती है । यह आक्षेप निवारक होने से इसका सफल प्रयोग आक्षेप निवारक औषधि की तरह हिस्टीरिया, अपस्मार, हैज़ा आदि विकारो में किया जाता है । किंतु ध्यान रहे आक्षेप निवारक औषधि की दृष्टि से हीग की अपेक्षा बहुत कमजोर है । अधिक मात्रा में इसे लेने से सिरदर्द, मानसिक उत्तेजना और ज्ञान ततुओं की क्रिया अव्यवस्थित हो जाती है । पार्यायिक ज्वरो में इसे सिनकोना की छाल या अन्य कटु पौष्टिक द्रव्यो के साथ लेने से लाभ होता है । इसके क्वाथ में स्नानकरने से तीव्र सधिवात में लाभ होता है ।

यूनानी मतानुसार—इसके सूघने से स्मरणशक्ति तेज होती, मस्तिष्क को शक्ति मिलती एव मस्तिष्क के विकार दूर होते है । इसके पत्रो को पीसकर शहद के साथ चाटने से श्वास कृच्छ्र (सास की तंगी) व खासी मे लाभ होता है । यकृत तथा पाचन क्रिया को यह शक्तिप्रद है तथा हिक्का मतली का निवारक है । दिलकी कमजोरी से यदि निद्रा न आती हो तो इसके प्रयोग से निद्रा आने लगती है । इसके सेवन से वायु के सब दोष दस्तो की राह निकल जाते है । इसकी ताजी जड को गर्भाशय में रखने से गर्भ गिर जाता है ।

इसके लेप से दूषित पूययुक्त व्रण, स्तन शोथ, आम-वात, सधि पीडा, आखो के आसपास की सूजन, वातप्रकोप जन्य खुजली में लाभ होता है। पशु के व्रणो को साफ कर इसके चूर्ण को भर देने से कृमि नष्ट होकर व्रण भर जाता है" ।

हृदय की व्याकुलता तथा चित्त भ्रम मे इसका अन्त प्रयोग चूर्ण या अर्क के रूप मे और बाह्य प्रयोग लेप के रूप मे उपयोगी माना जाता है । नींद में जिसे अधिक भय लगता है या भयानक स्वप्न देखने से घिग्घी बध जाती है उसे इसका सेवन करने से शीघ्र ही लाभ होता है ।

पागल कुत्ते और बिच्छू के जहर में इसके पत्ते १३) माशा की मात्रा में पीसकर शराब के साथ देते हैं। मुख दुर्गन्ध निवारणार्थ इसे मुख मे रख कर चवाते हैं। कफ के विकारो में इसका शर्बत या अर्क देते हैं।

शर्बत प्रयोग—इसके घनसत्व के साथ गावजवान का घन सत्व सम भाग एकत्र कर उसमें गुलाब का अर्क दोनो के समभाग तथा शर्बत सेब मिला कर पाक करें। वह शर्बत दिल को बल देने मे बहुत गुणकारी है। मात्रा २ तोला। यू० चि० सा०।

नोट—मात्रा-पचाग का चूर्ण ३-७ माशा तक। बीज-४ माशा से १ तोला तक।

अधिक मात्रा में सेवन से या अधिक सूंघने से सिर दर्द पैदा होता है। पेशाव मे जलन, मस्तिष्क में अव्यवस्था होती है। गरम प्रकृति वाले के यकृत के लिये हानिकर है।

हानिनिवारक—बबूल का गोद, धनिया या कुदुर है। प्रतिनिधि—अबरेशम, फरज मुश्क या माज तुलसी है।

नोट—इसका ही एक भेद फुलकिया, फण्डी नामक घास है। जिसे म० गोंडवेल व गुजराती में मीदड़िया, मीदाड़ियु घास तथा लेटिन में क्लोरिस बारबेटा (Chloris Bardeta) कहते हैं। वह १-३ फुट ऊचा या जमीन पर फैला हुआ होता है। वह पशुओ को खूब खिलाया जाता है।

विलैया-देखें—हाथी सुडी मे।

बिशोनी (Tephrosia petrosa)

शिम्बीकुल के अपराजिता उपकुल (Papilionceae) की यह एक क्षुद्र वनस्पति सरफोंका जैसी ही होती है। यह राजस्थान के जोधपुर, जैसलमेर आदि मे विशेष पैदा होती है।

नाम—

स०—कथापुष्पा, कथालू। हिन्दी—बिशोनी (राजस्थानी भाषा में)। ले—टेफ्रोसिया पेट्रोसा तथा टेफ्रोसिया स्पिनोसा (Tephrosia spinosa)

रासायनिक संगठन—

सरफोका के समान ही इसमें क्लोरोफिल, भूरे वर्ण का राल, मोम आदि पदार्थ पाये जाते हैं।

किन्तु गुणधर्म में वह उससे हीन वीर्य है।

गुण धर्म व प्रयोग—

तिक्त, उष्ण वीर्य, वेदनानिवारक, कृमिनाशक है। उपदश मे इसके पत्तो को उबालकर खिलाते हैं।

विष-देखें-बछनाग। विषकोगरा-देखें-नेवा में। बिसखपरा—देखें—पुनर्नवा।

बिसफेज (Polypodium Vulgare)

हसराज कुल (Polypodiaceae) की इस क्षुद्र वनस्पति के पत्र कगूरेदार या कटी हुई किनारी वाले तथा जडें बहुत घनी होती है। बाजार मे इसकी जडें ही बिस्फेज नाम से बिकती हैं। ताजी दशा में ये जडें हरी तथा सूखने पर भूरे रग की कुछ रक्ताभ एक ओर को चिपटी हुई सी तथा दोनो ओर इसकी प्रत्यक गाठ मे बारीक बारीक रेशे या उपमूलें निकली हुई होने से आकृति में कनखजूर जैसी दीखती हैं।

औषधि कार्यार्थ उत्तम जड वह मानी जाती है जो मोटी व ताजी हो, ऊपर से सुर्ख पीलापन लिए हो भीतर से पिस्ते के मगज जैसी हरी हो, चबाने से स्वाद में कुछ कड़ुवी तथा मधुर प्रतीत हो और जीभ मे खिचावट पैदा करे। भारत मे इसका आयात पर्शिया और यूरोप के देशो से होता है। यूनानी मे इसका अधिक उपयोग किया जाता है।

नाम—

हि —विषफेज, बसफेज, खकाली, खगाली। म -बस्केज बिचवा : ले.—पोलिपोडियम व्हल्गेरे।

प्रयोज्याङ्ग—जड।

गुण धर्म व प्रयोग—

ऊष्ण, रूक्ष, तिक्त, किंचितकषाय, कफनिस्सारक, वेदना निवारक, वातानुलोमन, शोथघ्न, उदरशूल, आध्मान, अपस्मार, मद, आमवात, कुष्ठादि में उपयोगी है। मर्शाङ्कुरो को गिराने के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है।

यूनानी मतानुसार—यह हृदय के लिये बल्य एव प्रसन्नताकारक है। दिल और दिमाग के विकारो को दस्त की राह निकाल देता है। इसे मिश्री के साथ लेने से वात, कफ तथा रक्त के दोष दस्तो की राह निकल जाते हैं। यह आमाशय के जमे हुए सुद्दो को बिखेर देता, कुष्ठ व रक्त के विकारो मे बहुत लाभ पहुचाता है। माली-खोलिया और गठिया में यह लाभदायक है। कास व श्वास मे इसे अनीसून और मुलैठी के साथ जोश देकर पीने से लाभ होता है। कालिक (उदरशूल) में शहद के पानी के साथ इसका क्वाथ बनाकर पिलाते है।

अर्श, आमाशय का जीर्ण शूल और अपस्मार पर इसे अमलतास या तुरजबीन (यवासशर्करा) के साथ देने से लाभ होता है।

फोडे फुसिया आदि रक्त विकार पर—इसकी ताजी जड को ऊपर से छीलकर पानी और नमक मे एक रात भिगोकर प्रात धोकर, पीसकर शहद मे मिला अवलेह तैयार कर प्रतिदिन चाटने से लाभ होता है

विषफेज
POLYPODIUM VULGARE LINN

नोट—मात्रा-कम से कम ५ रत्ती तक अधिक से अधिक३ से ७ माशा तक, किन्तु अधिक मात्रा मे देने से आमाशय में दाह पैदा होती है, जी मिचलाता है, फुफ्फुस और वृक्को को हानिकर है।

हानि निवारक—हसराज, गुलाब के फूल तथा पीली हरड़ हैं।

बिसौटा—देखो--अड़ूसा।

बिसौरा (Aspidium Felix Mass)

हसराज कुल (Polypodiaceae) की एक शीर्षोक्त लेटिन नाम की वनस्पति यूरोप, ब्रिटेन, उत्तरी अमेरिका, उत्तरी एशिया तथा हिमालय के पहाडो प्रान्तो मे पैदा होती है। इस वनस्पति मे पुष्प नहीं आते।

उक्त वनस्पति की ग्रन्थियुक्त जड़ो को बसंतकाल में काटकर ऊपर के पत्र एव सडे गले भाग को दूर कर सग्रह कर लेते है। इन्ही जड़ो को भाषा में बिसौरा, कीलदारु आदि कहते हैं।

उक्त कटी हुई जडो मे ३ से ६ इन्च या अधिक लम्बी गोल गाठें, $\frac{3}{4}$ मे १इन्च तक व्यास की चारो ओर से छोटी-छोटी नोकदार मोटी, काले रङ्ग के पत्तो की डठलों से आच्छादित होती है। रग में ये बाहर से भूरी या रक्ताभकृष्ण वर्ण की, भीतर मे पीताभ श्वेत, स्वाद मे प्रथम मधुर और कसैली, पश्चात् तिक्त एव उत्क्लेशकारक, गध में हलकी अप्रिय होती हैं। औषधि कार्य के लिए ये एक वर्ष बाद हीनवीर्य हो जाती हैं।

नाम--

हि —विसौरा, कीलदारु । फा.—सरख्स । स —पखराज। अ —मेलफर्न (Male Fern) ले — एस्पीडियम फिलिक्स मास, ड्रायोप्टेरिस फेलिक्स मास (Dryopteris Felix mass)

रासायनिक संगठन--

इसमें प्रभावशाली फाइनिलिक एसिड श्वेत चूने के रूप में, एस्पाइडीन नामक एक विषैला तत्व, एक उडनशील तथा कई प्रकार की रालें पाई जाती है।

गुण धर्म व प्रयोग---

उष्ण रूक्ष, उपशोषक, गर्भशातन (गर्भनाशक), उदर कृमि नाशक, वाह्य कृमि जूआदि नाशक, सक्षोभ जनन तथा वातरक्त एव हृत्स्पन्दन मे लाभकारी है। उदर तथा आन्त्रगत कृमि विशेषत कद्दूदाना कृमि के नाशार्थ प्रथम विरेचन के द्वारा आत व आमाशय की शुद्धि हो जाने पर रोगी को भूखा रख कर रात के समय इसको चूर्ण रूप में अकेले या अन्यान्य उपयुक्त ओषधियो के साथ सेवन कराते है। फिर दूसरे दिन प्रात विरेचन देने से मृतप्राय कद्दूदाना विशेष निकल जाते हैं। इसके क्वाथ से सिर धोने या इसके चूर्ण को तेल मे मिलाकर बालो की जड मे लगाने से सिर के जूए मर जाते है। व्रण रोपणार्थ इसके चूर्ण को बुरकते हैं।

नोट—मात्रा-३ माशा तक। यह फुफ्फुसो के लिए हानिकर है। हानि निवारक—शीह अरमनी (किरमानी अजवायन) है। प्रतिनिधि कमीला है।

—यू० द्र०।

बिही (Cydonia Vulgaris)

तरुणी कुल (Rosaceae) के मध्यमाकार के बहुशाखा प्रशाखायुक्त इस वृक्ष के काण्ड की छाल गहरी भूरी या काली, शाखायें टेढी मेढी, पत्र—सादे अखण्ड २-४ इन्च लम्बे १$\frac{1}{2}$-३ इन्च चौडे लगभग अण्डाकार गहरे हरे, ऊपरी भाग पर चिकने, नीचे भूरे रोमश, उपपत्र—छोटे, ३ इन्च लम्ब गोल, आरी जैसे दात वाले, पत्रवृन्त $\frac{1}{2}$ इन्च लम्बा, रोमश, पुष्प—पत्रकोण से निकले हुए श्वेत या गुलाबी आभावाले, २ इन्च चौडे, छोटे वृन्तयुक्त, पुष्प वाह्यकोष—नलिकाकार, रोमश, ५ पखुडियो से युक्त फल—नासपाती या सेव या अमरूद के आकार का मासल धूसर रुओ से आच्छादित, भीतर ५ विभाग का, अनेक बीजयुक्त, पकने पर सुगन्धित, सुनहरी पीले रग का, मधुराम्ल एव वजनदार होता है। बीज—लम्बगोल, चपटे, रक्ताभ भूरे रग के होते है। इन्ही बीजो को विहीदाना कहते हैं। जल मे भिगोने से ये फूलकर लुआबदार हो जाते हैं।

यह एक प्रकार का मेवा है तथा रसभेद से मधुर, अम्ल एव मधुराम्ल (खटमीठा) तीन प्रकार का होता है भारत के उत्तर-प्रदेश मे कई स्थानो मे अमरूद को ही बिही कहते है। किन्तु यह बिही अमरूद नही है।

यह यूरोप तथा अमेरिका का आदिवासी है। वहा इसके वृक्ष प्रचुर परिमाण मे पैदा होते है। भारत मे काश्मीर, पजाब तथा पेशावर, अफगानिस्तान और ईरान मे ५-६ फुट की ऊचाई पर होता है। विशेषत इसके फलो का तथा बीजो का आयात काबुल, ईरान और काश्मीर से भी होता है।

स —सिंचितका, अमृतफल। हि.—बिही, बही, काश्मीरी नाशपाती। म.—वीही, मौंगाली वेदाणा। गु —मोगलाई वेदाणा। ब —विहीदाना। अं —क्विन्स (Quince) ले —सायडोनिया व्हलगेरिस, पायरस सायडोनिया (Pyrus sydonia)

रासायनिक संगठन—

इसके बीजो मे सायडोनिन (Sydonin) नामक निर्यासयुक्त पिच्छिल द्रव्य (विशिष्ट प्रकार का लुआब) तथा एक पीत वर्ण का गाढा तेल १५.३% निकाला जाता है जो ताजा होने पर खाया जाता है। किन्तु यह शीघ्र ही दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। बीजो को जलाने पर जो ३½% राख होती है उसमे यवक्षार ७%, सज्जीखार ३%, मेगनीशियम १३%, चूना ७⅓%, लोह १%, फास्फोरिक एसिड ४१%, सल्फ्युरिक एसिड २⅔% तथा लवण १५% पाए जाते है।

इसके उक्त लुआब द्रव्य मे केलशियम साल्ट (Calcium salt) प्रोटीन और ओक्जलिक एसिड प्रतीत होते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—फल और बीज।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, मधुर, शीतवीर्य, मधुर विपाक, वातपित्त शामक, कफनि सारक, दीपन, रोचन, स्नेहन, यकृत के लिये बल्य, मेध्य, सौमनस्य जनन, हृदय, रक्त प्रसादन, रक्तवर्धक, रक्तस्तंभक, मूत्रल, बलवर्धक, बृंहण, दाहप्रशामक, ज्वरघ्न तथा अग्निमांद्य, अरुचि, हृल्लास, वमन, तृष्णा, कोष्ठगत रूक्षता, उदरशूल, मस्तिष्क विकार, मूर्च्छा शिर शूल, हृदौर्बल्य, रक्त विकार, रक्तातिसार यकृद्विकार रक्ताल्पता, रक्तपित्त मूत्रकृच्छ्र दाह पैतिक विकार सामान्य दौर्बल्य वातपैत्तिक कास श्वास ज्वरादि मे प्रयुक्त होता हैं।

मीठी बिही—अनुष्णाशीत व स्निग्ध है। खट्टी शीत रूक्ष होती है। फल का मगज—यक्ष्मा कास व रक्तष्ठीवन (ऊर्ध्व रक्तपित्त) मे उपयोगी है।

इसकी छाल—ग्राही होने से अतिसार व प्रवाहिका मे विशेष उपयुक्त है।

यूनानी मतानुसार—इसका फल पौष्टिक, सकोचक, मूत्रल, घाव को अच्छा करने वाला, कफनि सारक व ज्वरघ्न है। यह मस्तिष्क व यकृत को शक्तिप्रद है। क्षुधावृद्धि कर वा श्वास मे लाभकारी है। हृदौर्बल्य, हौलदिल पित्त या रक्त दोषोत्पन्न प्रवाहिका यकृत एव आमाशय का

बिहीदाना

CYDONIA VULGARIS PERS.

बीज

पुष्प

पत्र

शाख

फल
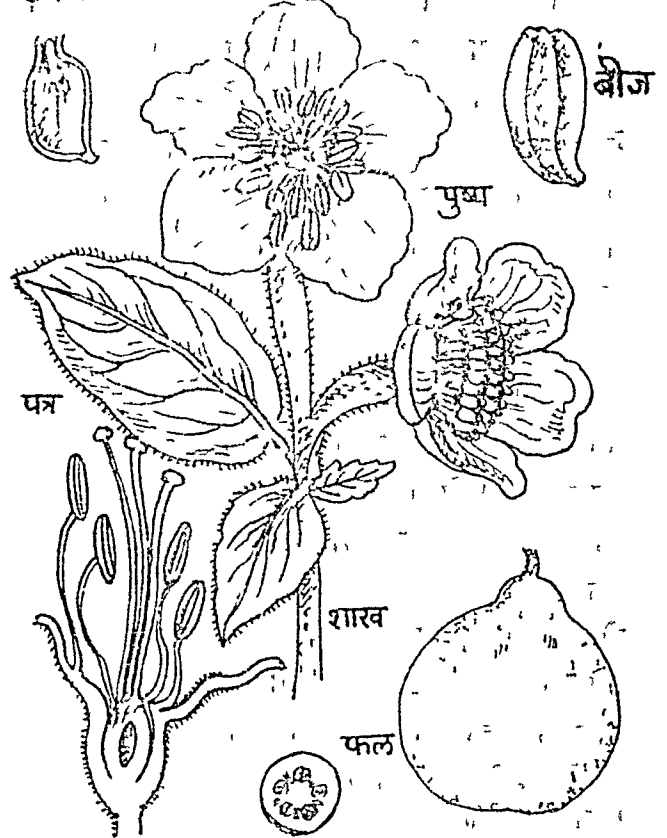
शोथ तथा इसी प्रकार की मन सतापकारक अन्य व्याधियो मे इसका मुरब्बा, शर्बत, रुब्ब (घनवलेह) आदि का प्रयोग लाभकारी होता है। प्यास मिचली व वमन पर इसे अकेला या उपयुक्त औषधियो के साथ देते हैं।

इसके बीज या बिहीदाना शीत व स्निग्ध हैं। रक्तपित्त या क्षयज रक्तष्ठीवन मे विशेष उपयोगी है, इससे रक्तस्रुति बहुत शीघ्र बन्द हो जाती है। मुखपाक पित्तज मुखविकार तथा शुष्क कास मे येबहुत उपयोगी हैं। गले की खराबी या खुश्की, रक्तमूत्रता, पित्तजज्वर, दाह तृष्णा प्रतिश्याय, पैत्तिक कास, जिव्हाशोथ, उरःक्षत, राजयक्ष्मा अतिसार तथा आन्त्रगत रूक्षता निवारणार्थ बीजो का जल मे भिगोकर लुआब निकाल कर उसमें मिश्री मिला कर पिलाते है। आग से जले हुए स्थान पर इसके लुआब का लेप करने से शीघ्र ही शाति मिलती है तथा फफोले नही उठने पाते। खौलते हुए ४० तोला जल मे १ तोला बिही

दाना पिलाने से गाढा लेप तैयार हो जाता है जिसे जले हुए स्थान पर या जखम पर लगाने से शाति प्राप्त होती है।

बीजो का फाण्ट बनाकर सुजाक मे देने से पेशाव की जलन कम होकर अधिक परिमाण में पेशाव होता है। इस फाण्ट को शुष्क कास में पिलाने व उससे कुल्ले करने से लाभ होता है। पुराने अतिसार मे बीजो का क्वाथ दिया जाता है। आत्र व्रणो के लिये बीजो का लुआव पिलाने से वह ईसबगोल के लुआव की तरह आतो की श्लेष्म त्वचा पर लिपट जाता है। जिससे वगैर किसी तकलीफ के आत्रव्रण शीघ्र ठीक हो जाता है।

(१) प्रवाहिका पर—इसके १ तोला बीज को लगभग चालीस तोला जल मे भिगोकर लुआव मे थोडी शक्कर मिला पिलाने से आत्र स्निग्ध होती है। तथा क्षत स्थान मे वेदना होकर जो बार–बार दस्त होता है वह कम हो जाता है। यदि अत्यधिक समय शौच होता रहता हो तो उक्त लुआव मे से २½ या ५ तोला जल थोडे थोडे समय पर या शौच होने पर वारवार पिलाते रहने से लाभ हो जाता है। मल मे यदि दुर्गन्ध हो या रक्त आता हो तो सुहागे का फूला एक-एक रत्ती दिन में ४–६ बार मिला दिया करें।

(२) शुष्क कास पर—बीजो का लुआब मिश्री मिलाकर दिन मे ४–६ बार थोडा थोड़ा पिलाते रहने से स्वर यन्त्र और श्वास नलिका स्निग्ध बनकर कास का वेग दूर हो जाता है।

(३) सुजाक और दाह पर—सुजाक मे जो भयकर जलन होती है उसकी तुरन्त शाति के लिये इसका लुआव दिन में ३–४ बार प्रत्येक बार लगभग २० तो तक पिलावें।

दाह विष प्रकोप, आमाशय के पित्त प्रकोप या मिर्च आदि दाहक पदार्थो से उत्पन्न दाह शमनार्थ बीजो के लुआव मे मिश्री मिलाकर बार२ पिलाते हैं।

(४) मुखपाक में—बीजो के लुआव से कुल्ले कराने से तीक्ष्ण पदार्थो के सेवन से उत्पन्न मुखपाक दूर होता है। तापचन या आमाशय के पित्त प्रकोप से मुखपाक हुआ हो तो कुल्ले कराने के अतिरिक्त लुआव में शक्कर मिला कर थोडा थोडा वार-बार पिलावें।

—गा औ. र

(५) प्रमेह, प्रदर, मूत्रकृच्छ, मूत्राघात पर—बीज १ या २ तोला को रात्रि के समय, जल में भिगोकर प्रातः उसमे २ तोला मिश्री मिलाकर पिलाते हैं।

नोट—मात्रा-फल १ से ५ तोला तक। अधिक मात्रा में अधिक सेवन मे यह कास, शूल, हिक्का और कम्पवात पैदा करता है। हानि निवारक शहद और अनीसून हैं। प्रतिनिधि सेव और अमरूद हैं।

फल का मुरब्बा १-२ तोला।

बीज (बिहीदाना)—३-५ माशा तक। अधिक मात्रा मे यह आमाशय को ढीला एव दुर्बल करता है। हानिनिवारक चीनी और सौंफ है। प्रतिनिधि ईसबगोल है।

विशिष्ट योग--

(१) विही बीज कल्प—प्रारम्भ मे इसके ५-७ बीजो को कूटकर रात्रि के समय ५ तोला जल मे काच के पात्र में भिगोकर प्रात उसमें १० तोला गरम किया हुआ दूध और २॥ तोला मिश्री मिला अच्छी तरह धीरे धीरे चबाते हुए सेवन करें। इसी प्रकार प्रातः भिगोकर रात्रि या सायकाल मे सेवन करें। १० दिन तक यही क्रम चालू रखे। पश्चात् इसके दो बीजो को और बढाये तथा इसी क्रम से १० दिन तक लेवे। इस प्रकार ३ महीने तक बीजों को वृद्धि क्रम से बढायें। बीजो की सख्या २२ से २४ तक होजाने पर कुछ दिनो तक उसी सख्या में लेते रहे। बीजो के वृद्धि क्रम के साथ ही साथ जल, दूध और मिश्री की भी वृद्धि करते रहे। पश्चात् घटाते हुए ५-७ बीजो पर आ जायें। इस कल्क प्रयोग से आध्मान, अरुचि, अग्निमाद्य, प्रसेक, हिक्का, शूल, जलन, सदाह अल्प मूत्र प्रवृत्ति, मलावष्टम्भ, गात्र शैथिल्य, क्लम, ओजोहानि, सताप, निद्राल्पत्व या निद्रानाश, विस्मृति, स्मृति भ्रश, वीर्य दौर्बल्य आदि विकार धीरे धीरे ३०-३५ दिनो में दूर होकर देह सिद्धि एव मन शुद्धि हो जाती है।

—आ० पत्रिका से साभार

(२) ज्वारश विही-फल – फल के टुकडे ४ सेर लेकर ३२ सेर शराव में हलकी आच पर पकाये। टुकडे गल

जाने पर उन्हे १० सेर झाग उतारे हुए गाढ़े शहद मे मिला पुन. जोश देवें। अब इसमें लौग २ तोला ८ माशा, बालछड ४ तोला, करफस बीज (अजमोद) १३ तोला ४ माशा, काली मिर्च २१ तोला ४ माशा सबका महीन चूर्णकर बिही के टुकड़ो पर छिडक कर मरतदान में भर रक्खें। मात्रा—१ तोला प्रतिदिन सेवन से आमाशय व पक्वाशय सशक्त होते है। अजीर्ण दूर होता है -यू चि सा इस योग को "ज्वारश-आवी गैरमदकूक" कहते हैं।

ज्वारश न० २—(ज्वारश सफर जली कावज)—

बिहीफल ४० तोला को छिलका तथा बीजरहित कर उत्तम सिरका ६० तोला में जोश देवे। जब बिही नरम हो जावे तो काटकर मलीदा सा बना, उसमें खाड तथा शहद २०-२० तोला मिला पाक करें। पाक सिद्ध हो जाने पर (उत्तम गाढा पाक होने पर) नीचे उतार उसमें सोठ १½ तोला, काली मिर्च, पिप्पली, लौग ७-७ माशा तथा अगर (ऊद) २२ माशा और केशर २½ माशा सबका चूर्ण कर मिला देवे। मात्रा—७ माशा भोजनोपरान्त सेवन से आमाशय के लिये बल्य है। क्षुधा वृद्धि होती है, पैत्तिक अतिसार व वमन दूर होता है। शरीर में स्फूर्ति तथा मन में आनन्द होता है— यू०चि०सा०।

ज्वारश सफर जली मुसहल—उक्त प्रकार से फल का मलीदा सा बन जाने पर—उसमें ६० तोला शहद मिला पाक बना लें तथा नीचे उतार कर इलायची छोटी व बडी प्रत्येक २२ माशा, सोठ, मस्तङ्गीरूमी प्रत्येक १½ तोला, पिप्पली, दालचीनी, केशर प्रत्येक १०½ माशा, सकमूनिया भुना हुआ ३ तोला और निसोथ ८½ तोला सबका चूर्ण पाक में मिलायें।

यह ज्वारश रेचक है, आत्र को मल तथा दोषो से शुद्ध करता है उदर शूल आत्रशूल को नष्ट करता तथा आमाशय बल्य व पाचक है। मात्रा—७ माशा अर्कसोफ १२ तोला के साथ सेवन करें। —यू०चि० सा०

(३) मुरब्बा बिही—बिही को छिलकेरहित कर मुरब्बा आमले की विधि के अनुसार मुरब्बा तैयार करे।

यह हृदय व मस्तिष्क को बलप्रद, सग्राही और पाचक है। मात्रा—२ तोला प्रातः सेवन करें।

(४) शर्बत बिही—बिही खटमीठी (मीठी और खट्टी) के छिलके और दाने दूर कर स्वरस १½ सेर निकाल कर उसमें खाड ३ सेर, ६० तोला मिला पाक करें। शर्बत की चाशनी हो जाने पर उतार कर रख लें। यह हृदय व आमाशय को बल्य तथा वमन अतिसार में उत्तम लाभप्रद है। मात्रा—२ से ४ तोला तक।

(५) रुब्ब बिही (घने गाढे शर्बत को रुब्ब कहते है) बिही को छीलकर छोटे छोटे टुकडे कर बीज दूर कर दे। और गूदे को कूटकर स्वरस निकाल उसमें अवभाग खाड मिलाकर घन शर्बत बना लें। यह हृदय आमाशय तथा आत्र को बलप्रद है, वमन तथा अतिसार में भी लाभकारी है। मात्रा—½ से १ तोला तक।

(६) मुख सुधार वटी—बिही फल को बीच में से खाली करें तथा खाली स्थान में लौग कूटकर भर दें। उसके ऊपर भिगोया हुआ कपडा लपेट कर ऊपर से मुलतानी मिट्टी लगा आग मे दबा दे। ऊपर की मिट्टी पक जाने पर उसे तथा कपडे को दूर कर के कूटें। पित्त प्रकृति वालो के लिये इसमें कपूर ६ रत्ती, चन्दन श्वेत ३½ माशा, जरदालू शुष्क (अर्क गुलाब में पिसा हुआ) २ तोला ११ माशा मिला वटी बना ले। कफज प्रकृति वालो के लिये कस्तूरी १½ माशा, जायफल १¾ माशा, सोठ ३॥ माशा मिलावें। इन गोलियो को मुख मे रखने से मुख की बदबू (जो कि आमाशय के विकृत होने से होती है) दूर होती है। —यू० चि० सा०

बीजक—देखें-विजयसार और आसन न० २। बीज बन्द—देखें—खजुरार, खिरेंटी और पालक जगली। बीजाबोल—देखें—बोल। बीरतरु—देखें-सरपत (मुज) और वेलन्तर।

बुई [Otostegia Limbata(Benth)]

तुलसी कुल (Labiatae) की यह क्षुद्र वनस्पति पजाब की छोटी पहाडियो पर तथा झेलम नदी के पश्चिम

तट पर विशेष पैदा होती है।

इसे पजाब की ओर बुई, अगभान, अवनी बूटी कडियारी (बडी कटेरी को भी कडियारी कहते हैं) लान और फुट कद तथा लेटिन में—ओटोरटेगिया कहते है ।

इसका पत्ररस मसूढो के विकारो पर लगाया जाता है । मनुष्यो तथा जानवरो के नेत्राभिष्यन्द पर भी इसका स्वरस उपयोगी है ।

नोट—बुई छोटी (Kochia Indica) नामक एक अन्य बूटी वास्तूक कुल (Chenopodia Ceae) की वर्ष जीवी बथुआ जैसी होती है । इसकी छोटी-छोटी शाखायें श्वेत रोमश होती है । यह बूटी उत्तर पश्चिमी भारत (पजाब आदि मे) तथा दक्षिण मे भी पैदा होती है ।

इसे पजाबी मे, बुई छोटी, कौरेरो तथा लेटिन मे कोचिया इण्डिका कहते है ।

यह बूटी हृद्य है । जिस रोगी का हृदय दुर्बल एवं अव्यवस्थित हो तथा साथ मे ज्वर भी रहता हो उसके लिये इसका प्रयोग विशेष उपयोगी है ।
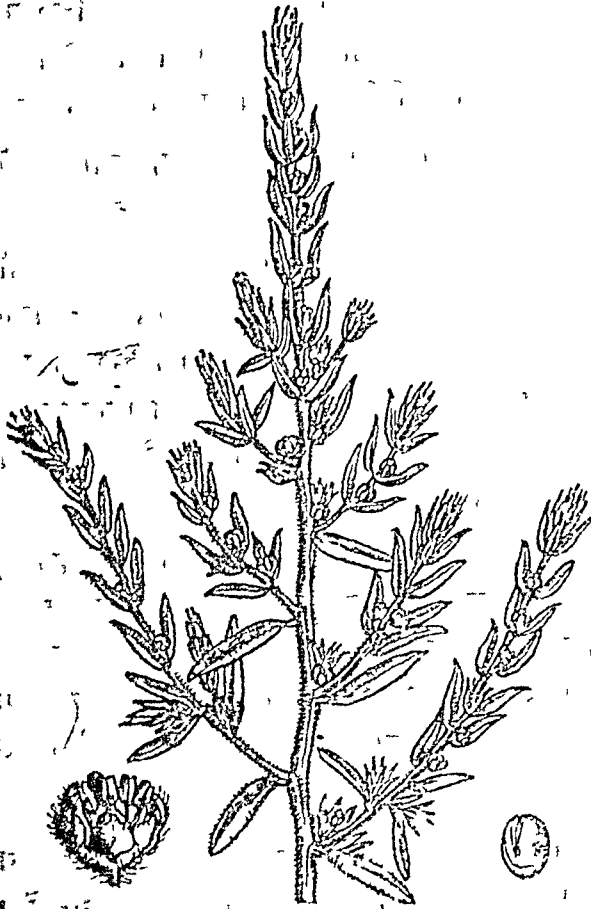
बुत्म [बतुम] (Pistacia Terbenthus)

आम्र कुल (Anacardiaceae) के आम या भिलावे के वृक्ष जैसे किन्तु कुछ छोटे वृक्षो के हरे रग के फलो को बुत्म या बतुम अरबी मे, हिन्दी मे गुले पिस्ता (विशेषत इसके पत्तो पर बनी हुई गाठ या कृमिगृह) मुस्ताकी,काबुली मुस्ताकी, खिजक, बूजगज आदि अग्रेजी मे टेरीबिंथ या चियान टर्पेन्टाईन ट्री (Terebinth or chian turpentine tree) तथा लेटिन मे पिस्टेसिया टेरीबिंथस कहते है ।

ये वृक्ष बलूचिस्तान, अफगानिस्तान, ईरान, अफरीका और यूरोप में विशेष पैदा होते हैं ।

इस वृक्ष की तीन जातिया है । इनमे से एक प्रकार का स्निग्ध राल या रूमामस्तगी के समान निर्यास प्राप्त होता है जिसे काबुली मस्तगी कहते है। यह रुमामस्तगी के स्थान मे उपयोगी है ।

इसके उक्त फलो को तोडने पर भीतर से चिपटी सी पिस्ता जैसी गिरी निकलती है, जो स्वादिष्ट होती है। इसे दबाकर तैल निकाला जाता है ।

गुणधर्म व प्रयोग—

फल—उष्ण, रूक्ष, सकोचक,स्तभक, पौष्टिक,वाजीकर, कफनि सारक, लेखन एव मूत्रार्त्तवजनन है। विशेषत वाजीकर माजून आदि कल्पो मे इसके चूर्ण को मिलाकर नपु सक एव वीर्य विकार ग्रस्त रोगियो को सेवन कराते

हैं। कास श्वास में छाती या फुपफुसों को कफ से शुद्ध करने के लिए इसे खिलाते हैं। यह लेखन होने के कारण झाई, छीप, दाद आदि पर इसका लेप बनाकर लगाया जाता है। इससे चेहरे का रंग निखरता है, तथा त्वचा के विकार नष्ट होते हैं।

नोट—मात्रा ३ से ५ माशा तक। अधिक मात्रा मे यह मस्तिष्क तथा आमाशय के लिये हानिकर है। हानि निवारक—कतीरा, बनफशा और अर्क गुलाब है। प्रतिनिधि—बादाम, अखरोट, पिस्ता और तरबूज के बीज हैं।

बुतसुर—देखे—असमानिया (भाग १ में)

बुन्दार (Eupatorium cannabinum)

भृंगराज कुल (compositeae) के इस क्षुप के पत्र हाथ के पंजे की आकृति के कुछ रोमश, कटी हुई किनारो वाले, पुष्प छोटे छोटे उग्रगन्धी गुच्छों में आते हैं। इस बूटी का सर्वाङ्ग कडुवा रहता है।

इसके क्षुप हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशो मे तथा यूरोप मे बहुत पैदा होते हैं।

नाम—

हि०—बम्बई की ओर बुंदार। अं०—हेम्प एग्रिमोनी (Hemp Agrimony) ले—यूपेटोरियम केनेबिनम।

इसके पत्र पुष्पो मे एक श्वेत वर्ण का क्षाराभ पाया जाता है, जो ईथर मे घुलनशील है।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसकी जड व पत्ते साधारण मात्रा मे देने से मूत्रल व स्वेदल कार्य करते है। बडी मात्रा मे ये वामक व भेदक है। कामला, रक्तपित्त (स्कर्वी), दुष्ट व्रण और पैरो (चरणो) की सूजन पर इसका फाण्ट पिलाते तथा इसी फाण्ट से शोथ या व्रणो को धोते है। फाण्ट विधि लगभग ५३ तोला उबलते हुए जल में इसके २½ तोला शुष्क पत्रो को डाल, नीचे उतार ढाक कर १०-३० मिनट रखने के बाद छानकर प्रयोग मे लावें। इसे ५ तोला की मात्रा में २-२ घंटे के अंतर से पिलाने से खूब पसीना व मूत्र आता है।

बुन्दुक—देखे—कटकरंज। बुन (बून्द)—देखें—काफी

बुब्बुर बूटी (Phaseolus Lunatus)

शिम्बी कुल के अपराजिता उपकुल (Papiliona-ceae) की इस बूटी के पुष्प छोटे छोटे हरिताभ पीतवर्ण के अधिक परिमाण मे आते है। बीज श्वेत होते हैं।

यह ब्राजील देश की आदि निवासिनी बूटी सम्प्रति भारत मे दक्षिण प्रान्तो के पहाडी स्थानो मे पाई जाती है।

नोट—इसकी एक जाति मे कभी-कभी विषैले तत्व पाये जाते है।

नाम—

हि०—विशेषतः बंगला में बुब्बुर बूटी, सिमरा

अं०—लिमापोल बीन (Limapoie bean), डबल बीन (Double bean) रंगून बीन (Rangoon bean)। ले०—फेजिओलस लूनेटस।

रासायनिक संगठन—

इसके बीजो मे हाइड्रोसायनिक एसिड युक्त एक विषैल ग्लुकोसाईड और फेजिओ ल्युनेटिन (Phaseolunatin) नामक द्रव्य पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

यह संकोचक है। बंगाल की ओर इसके कोमल पौधो की शाक बनायी जाती है। ज्वर मे विशेषतः यह पथ्य रूप में दी जाती है।

बुलु (Rhododendron Cinnabarim)

तालीश कुल (Ericaceae) के इस झाड़ीदार क्षुप की छाल पतली लालिमा युक्त भूरे रग की पत्र बहुत छोटे तालीश पत्र जैसे, पुष्प-छोटे गहरे लाल रङ्ग के या केसरिया रङ्ग के होते है ।

यह बूटी भूटान तथा सिक्किम मे १० से १२ हजार फुट की ऊंचाई तक पैदा होती है ।

नेपाल तथा भूटान की ओर इसे बुल मेतुमिमान तथा लेटिन में रोडोडेंड्रान सिनेबेरियम कहते हैं ।

इसमें एक विषैला कडुवा तत्व पाया जाता है । इसके पत्ते पशुओ के लिये जहरीले होते हैं । इसके धूम्रपान से नेत्र तथा चेहरे पर सूजन पैदा हो जाती है ।

बुराँस (Rhododendron Arboreum)

तालीस कुल (Ericaceae) के इस छोटे-छोटे सदा हरे भरे रहने वाले वृक्ष की छाल लाल भूरी, पत्र-शाखा पर दलबद्ध ४-६ इंच लम्बे, मालाकार या अण्डाकार आयताकार, ऊपरी पृष्ठ भाग चिकना, अधः पृष्ठ भाग रोमश, मुरचई या श्वेत रग का, पुष्प-बडे बडे, लाल या गुलाबी रग के आकर्षक, स्वाद मे खट्टे इनका अचार बनाया जाता है । कोपलो का शाक भी होता है ।

यह काश्मीर से भूटान तक ५ हजार फुट की ऊंचाई तक पाया जाता है ।

नाम—

हि. पजाबी—बुराम, अर्दवाल, बारू, ब्रोस, ब्रोला चचिओन, च्यू आदि । नेपाली—गोरास, घोनास । ले —रोडोडेंड्रान आर्बोरियम ।

इसमें एरीकोलिन (Ericolin) नामक एक तत्व पाया जाता है ।

रासायनिक संगठन—

पुष्प-सग्राही है । इसके कोमल पत्र कुछ विषैले होते हैं । इसके पुष्पो को पीसकर सिरदर्द पर लेप करते हैं । ये अतिसार मे भी उपयोगी हैं ।

बुरोचूचा (Cyperus Iria)

मुस्ताकुल (Cyperaceae) की यह क्षुद्र वनस्पति विशेषत बम्बई की ओर चावल के खेतो मे पैदा होती है । इसके क्षुप नागरमोथा के क्षुप जैसे होते हैं । इसे बम्बई की ओर बुरोचूचा तथा ले -सायप्रसइरिया कहते हैं ।

यह पौष्टिक, उत्तेजक, दीपन एव सकोचक गुण धर्म विशिष्ट है ।

बुशान (Salix Alba)

वेतस कुल (Salicaceae) के इस बडे वृक्ष की शाखायें मृदुरोमश, कोमल, पत्र—रेशमी मुलायम, पुष्प—पीत वर्ण के होते हैं ।

हिमालय के उत्तर पश्चिमी प्रदेशो में यह बोया जाता है । यह काश्मीर में उत्पन्न होने वाली वेस (वेद) जाति की एक उपजाति है । आगे वेदसादा का प्रकरण देखें, उसका और इसका लेटिन नाम एक ही है ।

नाम—

हि पजाबी में—बुशान, बिस, चम्मा, चग, कलचान, मलचाग, मदाना, मूर, बेदीस्याह इ । काश्मीरी में—वुदर, विपर । ले —सेलिक्स एल्बा ।

इसमें एक प्रकार का ग्लुकोसाईड पाया जाता है ।

गुण धर्म व प्रयोग—

छाल—कृमिनाशक, पौष्टिक, सकोचक ज्वरघ्न है । ज्वर की दशा मे होने वाली सधिपीडा में इसका क्वाथ दिया जाता है । अतिसार व रक्तातिसार में यह उपयोगी है ।

बुहरना (pulicaria Crispa)

भृङ्गराज कुल (compositae) के इसके क्षुप भागरा के क्षुप जैसे ही होते है।

इसके क्षुप बगाल, पजाब, सिध तथा गगा के ऊपरी मैदानो मे विशेष पैदा होते है।

इसे हिंदी मे बुहरना, बुरहना। पजाबी मे बुई, गिडी, फटमैर, सुतेह आदि तथा लेटिन मे पुलीकेरिया क्रिस्पा कहते है।

यह जतुनाशक है, कोथप्रशमन है। जानवर या मनुष्यो के दूषित व्रणो पर इसका लेप लगाया जाता है। यह लेप साधारण चोट या रगड पर भी लाभकारी है।

वेफरा—देखिये—भेकल। बकरियो—देखिये—भेखरियो।

बेकल (विकंकत) [Gymnos poria Montana]

तुवरक कुल (Flacourtiaceae or Bixinae) के इस ५-१५ फुट तक ऊचे वृक्ष की अनेक शाखाये पीताभ हरित वर्ण की या बैगनी रङ्ग की ऊची, नीची, टेढ़ी मेढी फैली हुई, लम्बे तीक्ष्ण नोकदार काटो से युक्त, पत्र १½ से २½ इच लम्बे, १ से १½ इच चौडे, हल्के हरे रङ्ग के, अग्र भाग मे चौडे, नीचे वृन्त की ओर सकडे किंचित कगूरेदार, पुष्प—शीतकाल मे छोटे-छोटे श्वेत रङ्ग के आते हे। फल—कालीमिर्च के जैसे, कच्ची दशा मे पीताभ हरित वर्ण के, अर्द्ध पक्वावस्था मे बैगनी रङ्ग के तथा पकने पर काले हो जाते है। पककर ये फल बीच मे से फटकर उनमे से वहुत छोटे छोटे श्वेत बीज २-२ या ३-३ निकल आते है।

इसके पौधे हिमालय के प्रदेशो मे तथा पजाब, बिहार, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान आदि के जगलो मे एव गङ्गा के मैदान और दक्षिण के पश्चिमो घाटों मे पाये जाते है।

नोट—इस ग्रंथ के द्वितीय भाग मे वर्णित 'कण्टाई' का ही यह एक भेद विशेष है।

नाम—

स०—विकंकत, व्याघ्रपदा, ग्रथला, ब्रह्मपादप इ०। हि०—बेकल, बाइकल, काकरा, कटाई, कडाई, किकणी, टोटर इ०। म०—हरमेचा, भारली, वेफल, वेकर। गु०—विकारो, वाकलो। ब०—वेचिगाछ। पजाबी—दजकर, खेराई, किगारा इ०। ले०—जिम्नोस्पोरिया माटेना।

बैकल (विकंकत)
GYMNOSPORIA MONTANA BENTH

गुण धर्म व प्रयोग--

फल–लघु, अम्ल, मधुर शीतवीर्य विपाक मधुर, दीपन, पाचन, पित्तशामक, रक्तशोधक, सर्व दोष नाशक तथा कामला, दाह, शोष, व्रण, अर्श आदि मे प्रयुक्त होता है।

इसके पत्तो मे भी उक्त गुण धर्म है। रक्त विकार, अर्श, पाडु, कामला, शोथ एव पित्त विकार पर पत्तो के क्वाथ मे शक्कर मिलाकर पिलाते है। इससे जठराग्नि प्रदीप्त होकर, क्षुधा वृद्धि एव पाचन ठीक प्रकार से होता है।

आख के फूले पर पत्तो का रस लगाते है। इसके वृक्ष की जड की छाल के चूर्ण को सरसो के तेल मे मिलाकर लगाने से सिर केजुये, लीके आदि नष्ट होती है। कैंसर मे भी इसका सफल प्रयोग हो सकता है।

वेख बादियान–देखिये–सौफ मे (सौंफ की जड)

बेंत (Calamus Rotang)*

नारिकेल के कुल (Palmae) के साधारणत वेत के बहुवर्षायु, काटेदार, चढने वाली लता सदृश, कोमल क्षुप के काड अति कोमल, नलिकाकार, परिवेष्टक अकुर युक्त, बास जैसे पर्व वाले, काड की छाल अति दृढ, पत्र

* विद्वानो मे इसके विषय मे मतभेद है। निघण्टु ग्रथो मे वेतस तथा जलवेतस इन दो भेदो का उल्लेख है। राजनिघण्टु मे वेत्र नाम से एक स्वतन्त्र बूटी (वेतो वेनो योगिदण्ड सुदण्डो मृदुपर्वक । वेत्र पचविध शैत्यकषायो भूत पित्त हृत्) का उल्लेख है। कई विद्वानो ने वेतस शब्द से बेत ग्रहण किया है। जिसका प्रस्तुत प्रसग मे वर्णन किया जाता है।

कई लोग वेतस शब्द से वेदसादा, वेदमुश्क आदि तथा इसी जाति के अन्य उपभेद (जलमाला, वेदलैला) एव बेदवडा को 'जल वेतस' मानते है, जिनका विस्तृत वर्णन आगे के वेदसादा आदि के प्रकरणो मे क्रमश देखिये।

भावप्रकाश मे वेतस के पर्याय मे वजुल और वानीर शब्द दिये गये है। किंतु चरक (क अ १ व ९ मे तथा चि अ. १० व १६) मे इन दोनो शब्दो का एक साथ उल्लेख होने से मालूम होता है वजुल और वानीर दो अलग अलग बूटिया है। चरक चि अ ४, १२, २७ व ३६ मे वेत्र तथा वेतस भी साथ साथ दिये गये है, जिससे स्पष्ट है कि ये दोनो भिन्न बूटिया है। वेत्र नाम से रक्तपित्त (चि अ ४) शोथ (चि अ १२) एव ऊरुस्तम्भ (चि अ २७) मे उपयोग किया गया है।

गुण धर्म की दृष्टि से वेद (सादा, विशेषत वेदमुश्क) के गुण भावप्रकाशोक्त 'वेतस' से मिलते जुलते है। आगे पृष्ठ १७८ पर बेद का प्रकरण देखिये।

—सम्पादक

वास के पत्र जैसे, एकातर, पक्षाकार, तीक्ष्ण नोकदार, क्वचित चौडे, समानातर शिरा वाले, काटेदार अकुरयुक्त पुष्पावरण (Spalhes) के भीतर नर मादा पुष्प छोटे छोटे वृन्तयुक्त, स्त्री पुष्प मे बाह्यकोष नरपुष्प जैसा नीचे नलिकाकार, ऊपर ३ खण्डयुक्त होता है। पुष्प की बालमजरी (Spadices) पुष्पावरण के भीतर अनेक शाखा युक्त काटेदार होती है। फल गोल, पतले कवचयुक्त होते है।

नोट—ऊपर बेत का सर्व साधारण परीक्षात्मक वर्णन दिया गया है। वेंत की कई जातिया हे, उनमे से मुख्य जातियो का सक्षिप्त वर्णन इस प्रकार हे—

(१) सिलोन जाति का वेत—केलेमस रोटाग (calamus Rotang) के काड अतिकोमल, ऊपर साधारण काटो से युक्त, पत्र–समानातर पर २० से ३६ इच तक लम्बे, बहुत छोटे वृ तयुक्त, उपपत्र ७–८ इच लम्बे, पुष्प नर पुष्प की बालमजरी (Male spadix) अतिलम्बी, अकुरयुक्त तथा उपमजरी ½ से १ इच मुडी हुई। स्त्री पुष्प की उपमजरी लम्बी, फल– गोल-लगभग ¾ इची व्यास के होते है। इसे लेटिन मे केलेमस एक्सटेसस (Calamus extenus) भी कहते है।

इसके क्षुप विशेषत सिलोन, सिलहट, चीन तथा मध्य प्रदेश, दक्षिण मे महाबलेश्वर, गोवा, मलाबार, रामेश्वर, कर्णाटक आदि मे अधिक पैदा होते है।

(२) वडा वेत (Calamus viminalis)—सरल भाव से पैदा होने वाले कभी–कभी किसी वृक्ष के सहारे वर्द्धित होने वाले इस क्षुप के काण्ड मोटे, दृढ होते है। इसके काण्ड, पत्रदण्ड तथा पत्र के ऊपर छोटे–छोटे टेढे काटे होते है। पत्र २–३ फुट लम्बे, अग्रभाग तीक्ष्ण लम्बे काटो से युक्त, पत्र वृन्त सीधा, लम्बा, काटेदार, उपपत्र ४–१० इच लम्बे हल्के हरे, ३–३ के गुच्छो मे होते हे। ये पत्र विपमान्तर पर या गुच्छो मे तथा ३ धार वाले होते है। पुष्प मजरी ४–५ इच लम्बी तथा ½–१½ इच लम्बे काटो से युक्त होती हे। फल—गोल ⅓–½ इच

बडा वेतस (बेंत)
CALAMUS VIMINALIS WILLD.

पत्र
फल
पुष्प
शाख
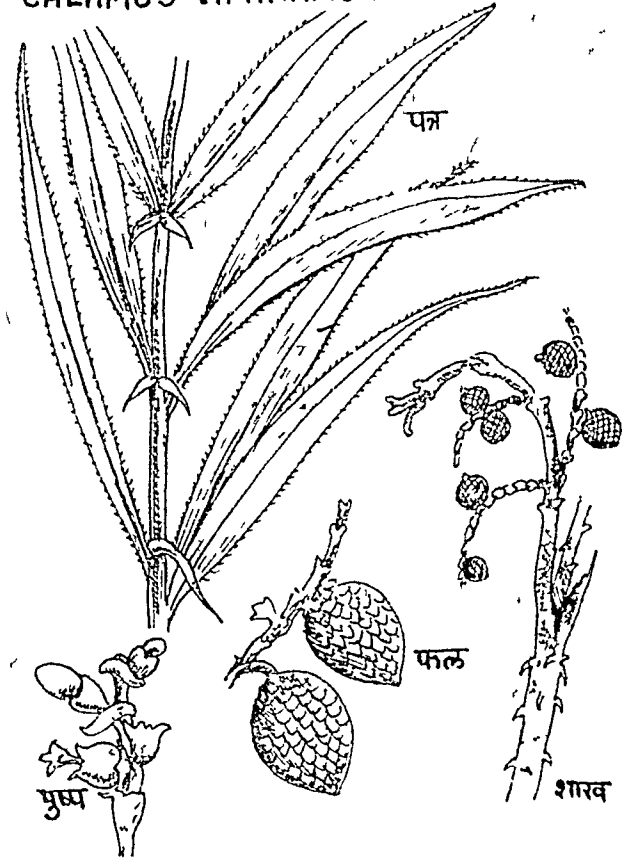
व्यास के, आयताकार चिकने बीजो से युक्त होते हे। वर्षा काल मे पुष्प तथा शरद या शीतकाल मे फल आते है।

बगाल की ओर इसको बडा बेत कहते है। इसका प्राचीन लेटिन नाम (Calamus Fasiculatus) केलेमस फेसिकुलेटस है।

इसके काटे तथा विशेषत पत्र विहीन स्थान का भूमि पर रेगने वाला अकुर (Flagella) जहरीला होता है। इसका कुछ अश शरीर मे घुस जाने पर उस स्थान पर पाक हो जाने की सभावना है। अत शीघ्र ही उसे सूई से या शस्त्र से बाहर निकाल देना चाहिए।

इसके क्षुप पूर्वी बगाल या बगाल के प्राय सर्वस्थानो मे ग्रामो के आसपास या जगलो मे, तथा उडीसा, बर्मा और अन्डमान मे विशेष पैदा होते है।
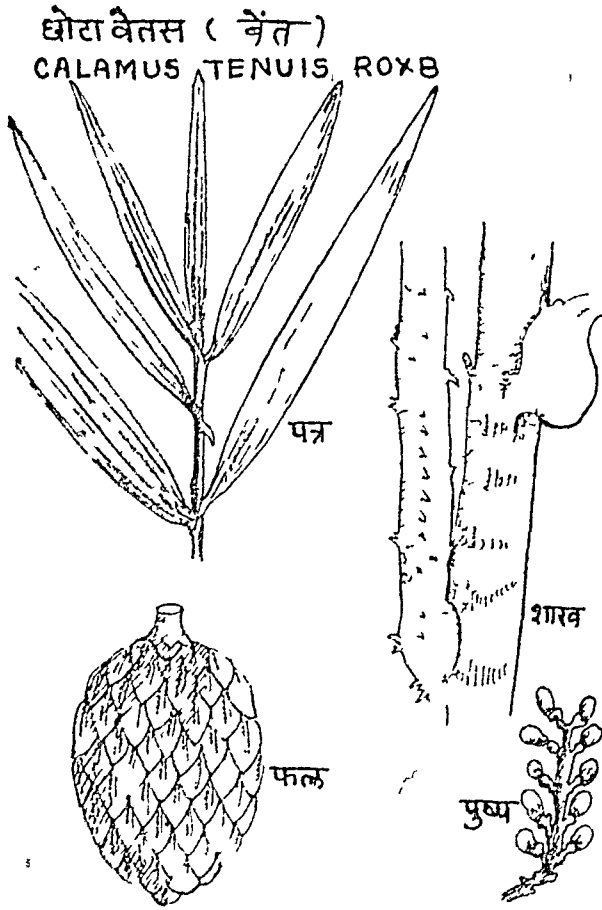
(३) छोटावेत—केलेमस टेनुइस (Calamustenuis) अंग्रेजी मे रतन केन (Rattan cane)। इस पृष्ठ पत्र स्थित टेढे काटो की सहायता से ऊपर को फैलने वाली आरोहीलता के काण्ट छोटी अगुली के जैसे मोटे, अति लम्बे कभी कभी २००–३०० फुट तक लम्बे, चिकने, हरे, कोषमय पत्राधारो मे ढके हुए, पत्र—१½ से ४ फुट तक लम्बे, पक्षाकार, समदल युक्त, पत्र वृन्त कण्टकावृत, पत्रक ६–१२ इच लम्बे, ½–¾ इच चौडे, रेखाकार या भालाकार लम्बी नोक एव ३–३ शिराओ से युक्त किनारे तथा शिराओ पर मुडे हुए छोटे कटकयुक्त होते है। पत्रनाल व पत्रकोष पर भी प्राय १ इच तक लम्बे, सीधे काटे होते है। पत्र कोष से चाबुक के सदृश ८ फुट तक लम्बी एक रचना (Flagellum) निकली रहती है इस पर भी काटे होते है। पुष्प—पत्रकोषो (Spathe) के भीतर एक लिंगी पुष्पो की विदण्डिक (Spike) वह मजरी जिसमे बिनानाल पुष्प भिन्न भिन्न ग्रथियो से निकले हो) मजरिया पाई जाती है। निम्न पुष्पावरण ६–१० इच लम्बा, फल—½ इच व्यास का लगभग गोलाकार काले किनारे के वल्क पत्रो (Seale leaves) से ढका हुआ रहता है। शीत ऋतु मे (प्राय जनवरी से एप्रिल तक) इसमे पुष्प और फल आते हैं।

यह अधिक लम्बा होने के कारण वगाल मे इसे छाची वेत कहते है।

उत्तर पूर्व, व मध्य वगाल मे कुमाऊ से पूर्व भाग मे सुन्दर वन, आसाम, सिलेहट, चटगाव तथा ब्रह्म देश और कोचीन मे २ हजार फुट की ऊचाई तक प्राय जलप्राय भूमि मे इसकी सघन लताए देखी जाती है।

(४) वेथरा वेत—केलेमस ट्रावनकोरिकस (Calamus Travancoricus) इसका काड वहुत नाजुक पत्र—३ से ५ तक गुच्छो मे रहते है।

इसके कोमल पत्र पित्त विकार, अग्निमांद्य तथा कान के विकारो मे उपयोगी है। ये कृमिनाशक है। यह दक्षिणी प्रायद्वीप मे मलावार से ट्रावनकोर तक पैदा होता है।

नोट—भारत मे चीन से जो वेत आता है। यह अधिक कोमल एव उत्तम जाति का होता है। यह जल मे भीगने पर भी नही सडता। कुर्सियो मे प्राय इसका अधिक उपयोग होता है।

उक्त सब वेत की जातियो के गुण धर्म प्राय एक समान है।

नाम—

स—वेतस, निचुल, वजुल, अभ्रपुष्प, दीर्घपत्रक इ.। हिंदी—वेंत, वैत। म—वेत। गु—नेतर। व—वेत्र, वेत। अ—चेअर वाटम, केन (Chair bottom cane) लेटिन नाम—ऊपर सबके भिन्न-भिन्न देदिये गये है।

गुण धर्म व प्रयोग--

कटु, तिक्त, कषाय, शीतवीर्य एव कास, पित्त, दाह, शोथ, अर्श, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, अतिसार, रक्तस्राव,

योनिरोग, तृषा, रक्त विकार, व्रण, प्रमेह, रक्तपित्त, कुष्ठ आदि मे प्रयुक्त होता है ।

इसके अकुर लघु, कटु, कुछ नमकीन, उष्ण, दीपन कफ वातनाशक हैं । इसके पत्र लघु, तिक्त, कटु, कसैले वातकारक, मल भेदक, मूत्रल, शीतवीर्य, रक्त प्रसादक कफघ्न एव पित्तशामक है । इसका बीज मधुराम्ल, कसैला, रूक्ष, पित्तकर, रक्तदोष हर, व कफघ्न है । फल पित्तवर्धक, कफ व रक्त विकार नाशक है ।

नोट—चरक मे वेदना स्थापन दशेमानि मे वजुल नाम मे तथा सूत्रस्थान (अ २७) के शाको मे वेतस शाक, कल्पस्थान प्रथम अध्याय मे एव सिद्धि स्थान के १० वें अध्याय मे वजुल और पनीर नामो से पित्तशामक वस्ति द्रव्यो के साथ इसकी योजना की गई है । चरक और सुश्रुत दोनो के रोगोपचार मे इसका उपयोग पाया जाता है ।

(१) योनिशैथिल्य और शोथ रोग पर—इसकी जड को जौकुट कर ४ तोला चूर्ण को ६० तोला जल मे मिला, मन्द आच पर अर्धावशिष्ट क्वाथ सिद्ध कर छानकर इससे योनि को दिन मे दो वार अच्छी तरह प्रक्षालन करे । इसी प्रकार नित्य क्वाथ वनाकर ८-१० दिन प्रयोग करने से योनि सकुचित एव सुदृढ हो जाती है । साथ ही साथ उक्त प्रक्षालन क्रिया के बाद इसकी जड को पत्थर पर घिसकर योनि के भीतर बाहर लेप करते रहने से शीघ्र लाभ होता है ।

शोथ पर—इसकी छाल के साथ सम भाग क्षीरीवृक्ष (वड, गूलर, पीपल, पिलखन व पारसपीपल) की छाल मजीठ, कमलनाल, लालचन्दन और सुगन्धवाला लेकर सबको महीन पीसकर तेल मे पकाकर लेप या मर्दन करने से विशेषत पित्तज शोथ मे लाभ होता है ।

—व० से०

साधारण शोथ रोगी को—वेत की कोमल शाखाओ के टुकडे कर जल मे पकावे । खूब नरम होने पर छान कर तैल मे पका कर खिलाते रहे । नमक न मिलावे ।

(२) ज्वर, उरुस्तम्भ, रक्तपित्त और मूत्रकृच्छ्र पर—सर्व ज्वर पर—इसकी जड के साथ समभाग नल या नरसल की जड, मूर्वा वा देवदारु, इनका यथाविधि क्वाथ वनाकर सेवन कराने से सर्व प्रकार के ज्वर नष्ट होते है

—सुश्रुत उ अ ३९

उरुस्तम्भ पर—इसके कोमल पत्तो को तिल तैल मिश्रित जल मे पकाकर काले नमक का प्रक्षेप देकर शाक वनाकर खिलावे ।

रक्तपित्त पर—इसकी जड के क्वाथ मे शहद मिला कर सेवन कराते है ।

मूत्रकृच्छ्र पर—वेत की लकडी ४-६ माशा तक घिस कर चावलो के धोवन या जल के साथ पिलाने से पेशाव साफ आता है । अथवा इसकी लकडी के ६ इच टुकडे को जलाकर बीडी के समान धूम्रपान कराने से पेशाव तुरन्त उतरने लग जाता है ।

—र त सा

(३) कुत्ते के विष पर तथा मत्स्य विष पर—इसकी जड के साथ समभाग कूठ (कुष्ठ) को जौकुट कर फाट वनाकर पिलाते रहने से कुत्ते का विष दूर होता है ।

मछली के दश पर—इसकी जड को जल मे घिस कर उसमे घृत मिला गरम कर लेप करने से लाभ होता है ।

नोट—मात्रा—मूल का क्वाथ १० तोला तक । कोमल शाखा या अकुर का रस १-२ तोला ।

वगाल की ओर 'छोटे वेत' का प्रयोग वहुत किया जाता है । दक्षिण मे सिलोन जाति के वेत का औषधि कार्य मे विशेष प्रचलन है ।

वेत्तिर (Juniperus Recurva)

देवदारु कुल (Coniferae) के इस झाडीदार क्षुप के पत्र—वरछी जैसे, फल लम्बगोल, गहरे बादामी रग के पकने पर चमकदार हो जाते है । प्रत्येक फल मे १-१ बीज रहता है ।

यह भारत के पश्चिम उत्तर प्रदेश, पजाव आदि मे विशेष होता है ।

नाम—

हि०—चेत्तिर, वतर, यैलू, विदेलगज, विल, इ०।
ले०—जूनिपेरस रिकरवा।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसकी हरी लकड़ी का धुआ तेज वमनकारक होता है वमन कार्यार्थ इसका प्रयोग किया जाता है। —नाडकर्णी

बेद-सादा (Salix Alba)

वेतस कुल (Salicaceae) के इस सुन्दर बडे झाडीदार वृक्ष के काड पीताभ श्वेत वर्ण के कुछ पोले मे, छाल—श्वेत रग की, उपशाखायें पीली, लाल या वैजनी, पत्र—वारीक ६-६ इच लम्बे, उपपत्र २॥ से ४ इच लम्बे, सकरे, वल्लभाकार, नोंकदार, प्राय ४ ५ पत्र एकत्र, एकान्तर समूहवद्ध, ऊपरी भाग मे हरे, पृष्ठ भाग मे श्वेत या श्यामवर्ण के, पत्र वृन्त २१० इच लम्बा, पुष्प—वसन्त ऋतु मे, पत्र निकलने के बाद, कही कही पत्र निकलने के पूर्व ही, पुष्प पीत वर्ण या श्वेताभ नीले रङ्ग के कोमल मखमली, छोटे छोटे सुगन्धित, लम्बी मजरियो मे, पु-मजरी १-२ इच लम्बी, पतनशील, स्त्री मजरी कुछ अधिक लम्बी (२-३ इच तक) पतनशील होती है। कहीं कहीं इसमे जो फली आती है वह चिकनी, प्राय वृन्तरहित होती है।

हिमालय के पश्चिमोत्तर प्रदेशो मे तथा तिब्बत मे यह अधिक पैदा होता है। काश्मीर के रास्ते पर इसके अत्यधिक वृक्ष लगाये हुए देखे जाते है।

आयुर्वेदिक निघण्टु के मतानुसार यह या इसकी जातिया जल वेतस या जल माला है। इनके क्षुपदार वृक्ष प्राय नदी या नालो के किनारे विशेष पैदा होते हैं। इनके लचीले पतले काड या शाखाये टोकरियो के वनाने मे काम आते है।

नोट—इसकी कई जातिया या उपजातिया हैं। पीछे 'बुशाने' नाम से जिसका वर्णन किया जा चुका है, वह इसीका एक खास भेद है। इसके अतिरिक्त—वेद मुश्क, वेद लेला, वेद मजनू, वेद वडा, वेद स्याह ये पाच मुख्य इसकी जातिया हैं। इनमे से वेद मुश्क और वेद लैला इनका वर्णन आगे के प्रकरणो मे स्वतत्र रूप से किया जाता है। शेष वेद मजनू, वेद वडा और वेद स्याह पर सक्षिप्त नोट इस प्रकार है—

स०- वेतस (वेद)
SALIX ALBA LINN

(अ) वेद मजनू—(Salix Babylonica) इसके मध्यमाकार के वृक्ष हिमालय के काश्मीर नेपाल आदि प्रदेशो मे तथा उत्तरी हिन्दुस्तान मे अधिक पैदा एव लगाये भी जाते हैं। इसे हिंदी मे पजाव की ओर वेद मजनू, वेसू, वाला इत्यादि। काश्मीर मे—गुर्हर, विमा। नेपालीमे—तिस्सी अग्रेजी मे—वीपिंग विलो (Weeping willow), ले० मे सेलिक्स वेवीलोनिका कहते है।

इसकी छाल और पत्र—पौष्टिक, सकोचक है, ज्वरघ्न भी है। पार्यायिक ज्वर तथा सतत ज्वर मे इसका विशेष

उपयोग होता है। छाल कृमि नाशक भी है। इसमे सेलिसिन (Salicine) नामक तत्व पाया जाता है।

(आ) वेद वडा—(Salix Acmophylla) इसके वृक्ष छोटे-छोटे, छाल खुरदरी, लम्बान मे फटी हुई, पत्र २ से ७ इच लम्बे, ½-¾ इच चौडे, भालाकार, हरे चमकीले, पुष्प—नर व नारी पुष्पो की मजरिया पृथक-पृथक, नीचे की ओर झुकी हुई होती है।

इसके वृक्ष पूर्व पश्चिम हिमालय के प्रदेशो मे तथा उत्तर प्रदेश मे लगाये जाते हैं।

इसे हिंदी मे—वेद वडा, वेड, जलमाला, ववई की ओर तथा सिंधी मे—बुड्ढा, लेटिन—सेलिक्स एक्मोफाला कहते है।

इसकी छाल ज्वरघ्न है। इसका क्वाथ ज्वर मे दिया जाता है।

(३) वेद स्याह—(Salix Nigra)—इसके भी वृक्ष छोटे होते हैं। इसे वेदस्याह, वेद वेडी, काश्मीर मे—मुर तथा लेटिन मे—सेलिक्स नायग्रा, मेलिक्स डेफ्नोडेम [S. Daphnoides] कहते है। इसकी छाल मे एक ग्लुकोसाइड और सेलिसिन पाया जाता है।

नाम--

स०—वजुल, वेतस, वितिका। हिं०—वेद सादा, वेद पजावी—विस, बुशन, चम्पा। काश्मीर—विविर। अ०—व्हाइट विलो (White willow), हटिंगडन विलो (Huntigdon willow), लेटिन—सेलिक्स अल्बा। इसमे भी प्रभावशील द्रव्य सेलिसिन पाया जाता है।

प्रयोज्यांग--

छाल, पत्र, पुष्प। विशेषत छाल का क्वाथ, ताजे पत्तो का रस और पुष्पो का अर्क।

गुण धर्म व प्रयोग--

शीतल, रूक्ष, कटु, तीक्ष्ण, सुगधित, दाहशामक, मस्तिष्क एव हृदय के लिये बल्य, सौमनस्यजनन, मूत्रल, वेदनास्थापन, पैत्तिक ज्वर मे लाभकारी है। पित्तज्वर, उष्णवात, पित्तप्रकोप, रक्तविकार, यकृत एव हृदय की सताप दशाओ मे रोगी को इसकी पत्तो की शय्या (पर्ण-शय्या) पर शयन कराने से वडी शाति प्राप्त होती है।

यकृत का अवरोध, कामला, प्लीहा विकृति, अतिसार रक्तातिसार, प्रवाहिका मे पत्र रस मे शहद मिलाकर दिया जाता है। या छाल का क्वाथ देते है। जीर्ण यकृतावरोधज, कामला और प्लीहा वृद्धि पर भी इसके ताजे पत्रो का रस दिन मे ३ बार पिलाया जाता है। कर्णशूल मे पत्तो का रस कुछ गरम कर कान मे डाला जाता है।

हृदय की विशेष धडकन, हृच्छूल, शिर शूल, व्याकुलता, रक्तस्राव, चेचक, रोमान्तिका, मंथर ज्वर, दाह, तृषावृद्धि आदि पर पुष्पो का अर्क पिलाया जाता है। अनेक औषधियो के निर्माण मे यह अर्क भावना के रूप मे प्रयुक्त होता है। क्षय और मसूरिका तथा अन्य पित्तज रक्त दुष्टियो मे यह अर्क विशेष लाभकारी है। सामान्यत वेदसादा का उपयोग वेदमुश्क (आगे का प्रकरण देखे) के स्थान पर हो सकता है।

नोट—मात्रा—छाल क्वाथ के लिये ½ से १ तोला पत्र स्वरस १ से २ तोला या ५ तोला तक, पुष्पार्क ५ से १० तोला या १५ तोला तक। कटि (कमर) के लिये यह हानिकारक है। हानि निवारक मिश्री, अर्क गुलाब या गुलकद। प्रतिनिधि-नीलोफर, मेहदी के पुष्प है।

स्व० श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य ने इसे ही चरक सहिता कथित वजुल (जलवेतस) माना है। चरक के वेदनास्थापन महाकषाय तथा आसव योनिसार वृक्षो मे वजुल का उल्लेख मिलता है।

वेद या सेलिक्स की सव जातियो मे से इसकी लकडी विशेष मूल्यवान मानी गई है। इसकी लकडी दृढ एव हल्के वजन की होती है। इसके क्रिकेट वैट वहुत अच्छे वनते है। वेदमुश्क के समान इसके फूलो से अर्क खीचा जाता है। इसकी छाल का क्वाथ व्रणो को धोने मे भी उपयोगी है।

—गा औ र.

विशिष्ट योग—अर्क वेदसादा को, वेदमुश्क के विशिष्ट योग मे देखिये।

बेद मुश्क (Salix Caprea)

उक्त वेतस कुल के उक्त वेदसादा के वृक्ष जैसे, किन्तु उसकी अपेक्षा कुछ छोटे १५–२० फुट ऊंचे, काण्ड—३–४ फुट व्यास के, छाल—पतली, लचीली, स्वाद मे बहुत कटवी, शाखाये—अभिमुख, पत्र–एकान्तर, २–४ इंच लम्बे, गोल, अण्डाकार, दतुर, नोकदार, गहरे हरित वर्ण के, चिकने, ऊपर की ओर न्यूनाधिक स्थान मे ऊबड खाबड, निम्न भाग मे पिंगलरोमश, पुष्प—पीतवर्ण के, अति सुगंधित, पत्रोद्गम के पूर्व ही आते है। बीज-रोमश।

पुष्पो को वेदमुश्क, वेदमिशी कहते है। वाष्पीकरण विधि से इनका जो सुगंधित अर्क या इत्र निकाला जाता है उसे उत्तर भारत मे ईरानी व फारसी लोग विशेष उपयोग मे लाते है।

इसके वृक्ष ईरान, यूरोप तथा पश्चिमोत्तर भारत विशेषत पंजाब, काश्मीर और पश्चिम उत्तर प्रदेश मे लगाये हुए देखे जाते है।

नोट—कहा जाता है कि ईरान या परसिया से आने वाले लोगो ने भारत मे इसके पुष्प एव उसके अर्क का प्रचार किया। पश्चात् मुगलो ने इसका उपयोग करना प्रारम्भ किया। वे लोग इसको मस्तिष्क एव हृदय सम्बन्धी विकारो तथा हर प्रकार की अस्वस्थता मे एक घरेलू औषधि की तरह उपयोग मे लेते थे।

ईरान मे इसके वृक्षो की ऊचाई २५–३० फुट होती है तथा भारत मे कम होती है।

इसकी तथा इसकी अन्य जातियो की शाखाये भी वेत के समान होती है। तथा इन शाखाओ की छाल से भी कुर्सी आदि बुनते है। वेत के समान इसकी भी छडी (वेंत से कुछ कम कोमल) बनती है। शाखा को वाष्प देकर छाल निकाल ली जाती है।

नाम–

सं—वेतस, वानीर, गन्ध पुष्प, नम्र। हि—वेदमुश्क। अं—ब्राड लीव्ह्ड विलो (Baroad Leaved willow), गोट्स सेलो (Goats Sallow) ले—सैलिक्स केप्रिया।
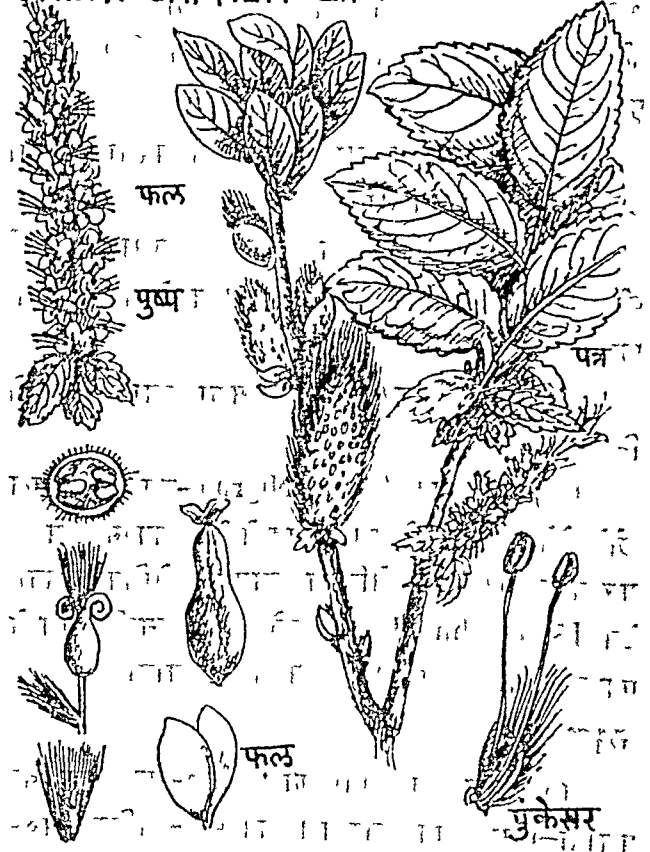
रासायनिक संगठन–

इसकी छाल मे टेनिन (कषायाम्ल) ४.१०%, एक तिक्त, रेशम जैसा मुलायम, चमकीला, श्वेतस्फटिक जैसा ग्लुकोसाईड सैलिक्स (Slicinemin) २७% (जो लाला रस के प्रभाव से सैलिजनिन (S lige) एव शर्करा मे परिणित हो जाता है) होता है इनके अतिरिक्त मोम, वसा गोंद आदि द्रव्य भी पाये जाते है।

इसकी पत्तियो पर एक मधुर निर्यास जमकर सूख जाता है। जिसे वेद अगवीन कहते है।

प्रयोज्याङ्ग—छाल, पुष्प, पत्र तथा वेद अगवीन।

गुण धर्म व प्रयोग--

स्निग्ध, कटु, तिक्त, कटु विपाक, शीतवीर्य, त्रिदोषहर, दीपन, ग्राही, हृद्य, यकृदुत्तेजक, कोष्ठमार्दवकर, रक्तस्तम्भन, संधानीय, मूत्रल, वृष्य, कामोद्दीपक, वेदनास्थापन, दाहप्रशमन, मेध्य, मस्तिष्कशानिप्रद, योनिदोषहर, ज्वरघ्न तथा अग्निमाद्य, ग्रहणीविकार, यकृद्विकार, हृद्दौर्बल्य, रक्तपित्त, क्षय, रक्तनिष्ठीवन, उर:क्षत, मूत्र कृच्छ्र, शुक्रदौर्बल्य, नपुसकता, स्वप्नदोष, रक्तविकार आदि मे प्रयुक्त होता है ।

इसके गुण धर्म प्रयोगादि वेदसादा के जैसे ही है किंतु उसकी अपेक्षा यह अधिक प्रभावशाली है।

डाक्टर देशाई के मतानुसार इसकी छाल—सकोचक शीतल, ज्वरघ्न व दाहशामक है। पुष्प-रोचक है। छाल का क्वाथ विषम ज्वर, पित्तज्वर, नवीन आमवात एव तज्जन्यज्वर व क्षयज्वर मे दिया जाता है। इसके देने से अन्तर्दाह, शिरदर्द, फेफडो से होने वाला रक्तस्राव कम होजाता है। सधिवात मे इसे देने मे सधिशोथ एव वेदना शात हो जाती है ।

साधारणज्वर तथा अजीर्ण मे इसके पुष्पो का अर्क देने मे क्षुधा वृद्धि होती है। इस अर्क से हृदय की धडकन कम होती है। नेत्राभिष्यन्द व शिर शूल मे भी यह लाभदायक है। कास और कफ क्षय मे—इसके ४ भाग अर्क को १ भाग तिल के ताजे तेल मे मिलाकर हल्की आच पर पकाने पर तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रोगी को सेवन कराते है (नस्य देते और छाती पर मर्दन करते है)

इसकी लकडी की राख फुफ्फुसो से होने वाले रक्त स्राव पर (शहद या अडूसा के स्वरस के साथ) दी जाती है। तथा इसे सिरके मे मिलाकर अर्श के मस्सो पर लेप करते है ।

छाल—इसकी छाल का क्वाथ विषमज्वर, पैत्तिकज्वर, नूतन आमवात तथा कफ क्षय मे देते है। इससे शिर शूल, सधिपीडा, सधिशोथ तथा कफक्षयजन्य रक्तष्ठीवन मे लाभ होता है।

अर्श मे उक्त क्वाथ से परिषेक करते है तथा छाल को महीन पीसकर लेप करते है। इससे वेदना व दाह की शाति एव रक्तस्राव बन्द होता है ।

पत्र—इसके पत्ते सकोचक, कफनि सारक, मृदुरेचक ज्वर मे लाभप्रद, हाथपैरो का कम्प निवारक तथा स्नायु शूल, नेत्राभिष्यन्द, प्लीहावृद्धि आदि मे उपयोगी है। ज्वर मे पत्तो का क्वाथ दिया जाता है ।

पुष्प—इसके पुष्प रोचक है। औषधि कार्यार्थ पुष्पो का अर्क ही काम मे लिया जाता है। उष्ण ज्वर, हृदय की धडकन आदि मे अर्क का सेवन कराया जाता है। नेत्राभिष्यन्द तथा शिर शूल पर अर्क मे स्वच्छ वस्त्र को भिगोकर उसकी पट्टी रखी जाती है।

वेदअगवीन का उपयोग विशेषत. नेत्रो की ज्योति बढने के लिये किया जाता है।

नोट—मात्रा—ताजा स्वरस २-५ तोला तक। क्वाथ के लिए छाल आधा तोला से एक तोला तथा क्वाथ १० तोला तक। पत्र या पुष्पो का अर्क १ से ५ तोला तक।

अर्क का उपयोग माणिक्य, पन्ना, मोती आदि की पिष्टी बनाने के लिए भी किया जाता है।

इसका मुख्य प्रभावशाली सेलिसिन (Salicin) जो श्वेत रग का कडुवा, पौष्टिक एव ज्वरहर है इसकी मात्रा २½ से १५ रत्ती तक है। यह आमवातिक ज्वर, पार्यायिक, विषम ज्वर, प्रतिश्याय, स्नायु शूल आदि मे प्रयुक्त होता है।

इसके तरल सत्व (Liquid extract) की मात्रा २० बूद तक है। यह स्वप्नदोष की उत्तम औषधि है। रात्रि के समय, शयन के ½ घण्टा पूर्व इसकी २० बूदे, २½ तोला जल मे मिलाकर लेने से विशेष लाभ होता है वीर्य स्राव नही होने पाता। किन्तु वीर्योत्तेजक कारणो से दूर रहना आवश्यक है। —नाडकर्णी

ध्यान रहे वेदमुश्क के किसी भी रूप मे विशेषत, अर्क रूप मे अति सेवन से शैत्य के कारण वात प्रकोप हो कर वातविकार विशेषत कटिशूल आदि हो जाया करते है।

हानिनिवारक—अर्क गुलाब, शर्करा आदि है।

प्रतिनिधि—नीलोफर, वेदसादा है ।

विशिष्ट योग—

अर्क वेद मुश्क।

वेद मुश्क के पत्र को २० तोला लेकर, रात्रि के समय ४ सेर जल मे भिगोकर प्रात भवका यत्र से २ सेर तक अर्क खीच लेवे।

मात्रा—१० तोला तक सेवन से दिल दिमाग को बल देता है। तृषा तथा खफकान को दूर करता है।

—यू चि सा।

इसी प्रकार वेदसादा का भी प्रयोग है। जो खफकान (विद्वेष, वहशत, व्याकुलता) और पित्तरोगो मे उपयोगी है।

विशेष प्रभावशाली अर्क बनाना हो तो—

वेद सादा (या वेदमुश्क) के पत्र १ सेर रात को १६ सेर जल मे भिगोकर प्रात. १०-बोतल तक अर्क खीचने के पश्चात् पुन इस अर्क मे उतने ही पत्र भिगोकर दोबारा १० बोतल अर्क खीच लेवे। मात्रा—३ तोला तक यह अर्क प्रात. या सायकाल के समय २ तोला शर्वत उन्नाव मिलाकर पिलावे। इससे हृदयगत ऊष्मा, वहशत और दिल की धडकन दूर होती है। उष्ण व्याधियो मे तथा राजयक्ष्मा मे विशेष लाभदायक है। इसे अर्क वेदसादा (जदीद) कहते है।

पुष्पो का अर्क (तैल या इत्र) भी उक्त वाष्पी करण विधि से निकाला जाता है। इसकी मात्रा १ से २ तोला तक है।

वेद लैला (Salix Tetrsperma)

उसी वेतसकुल के इसके वृक्ष वेदमुश्क या वेदसादा से भी बडे ५० फुट तक ऊचे, सुन्दर; काण्ड—दृढ, १० फुट तक व्यास का, शाखायें—लगभग सीधी, छाल—श्वेत, खुरदरी, कहीं कहीं काली, रेमेदार, कडुवी, सुगन्धित, छाल के भीतर की लकडी लोहिताभ या लाल रग की, नरम, पत्र—१-६ इच लम्बे, ½-¾ इच चौडे, अण्डाकार, नोकदार, सूक्ष्म रोमश, दन्तुर धार वाले, पृष्ठ भाग मे श्वेत, दूसरी ओर हरे; पत्र वृन्त ३⁄१० इची, पुष्प कोमल, मखमली, पाडुवर्ण के, कुछ सुगन्धित प्राय एक लिङ्गी, पत्रोद्गम मे पूर्व ही वसन्त ऋतु मे आते हैं। फल या फली—चिकनी ५ इंच तक लम्बी, कडी, ४-६ बीज युक्त वर्षाकाल मे आती है।

हिमालय के प्रदेशो मे नदी, नालो के किनारे, छ हजार फुट की ऊचाई तक तथा पश्चिमोत्तर भारत काश्मीर आदि छोटा नागपुर, विहार, उत्तर वगाल, दक्षिण मे महालेश्वर, ट्रावनकोर तथा ब्रह्मदेश, सिंगापुर, सुमात्रा, जावा आदि मे इसके वृक्ष विशेष पाये जाते है। सीलोन मे यह नहीं होता।

वेद लैला
SALIX TETRASPERMA. ROXB.
पत्र
पुष्पगुच्छ
शाख

नाम—

स —वरणा, जल वेतस, नादेय, निकेतन (गृहनिर्माण मे उपयोगी होने से)। हि —वेद लैला, भैन्स, जलमाला, **बेगस, बेंट,** वेधा, वक्षेल, मगशेर इ। म —वालुंज, वेसी,

वितसा, वींचा, धानी, धनई इ । वं —पानीजामा, वोर्ड शाकी । ले —सैलिक्स टेट्रास्पर्मा ।

इसकी छाल में भी सैलिसिन (Salicin) नामक तत्व पाया जाता है ।

इसके गुणधर्म प्रयोगादि नव. वेदमुश्क के समान ही है । छाल का क्वाथ कड़ुवा तथा ज्वरहर है ।

पुष्पो का अर्क वेदमुश्क के अर्क जैसा ही दाहशामक और शान्तिप्रद है । किंतु इसके पुष्पो का अर्क प्राय नही निकाला जाता ।

वेंदरली (Lycopodium Clavatum)

स्थूल शैवाल कुल (Lycopodiaceae) के जलाशय के किनारे या आर्द्रभूमि पर पैदा होने वाले इस सेवार या काई रूप क्षुप के हरित वर्ण के स्थूल छत्ते से होते है । ये प्राय सर्वत्र आर्द्रशीतल या समशीतोष्ण स्थानो में पाये जाते हैं ।

नाम—

दक्षिण मे मद्राम की ओर इसे वेंदरली , अ०—क्लब माम स्पोरम (Club mass Spores), व्हिजीटेबल सल्फर (Vegitable Sulpher) वुल्फ क्ला (wolf claw), लेटिन—लिकोपोडियम क्लेवेटम, लिकोपोडियम स्पोरस (Lycopodium Spores) कहते हैं ।

रासायनिक संगठन—

इसमें एक स्थिर तैल ४७%, शर्करा २%, उडनशील मेथिलामिन (Methylamin) व क्षार ४% पाये जाते हैं ।

गुणधर्म व प्रयोग—

मूत्रल, मार्दवकर, विकाशी या आक्षेपहर, कृमि नाशक, उपशोषक तथा आर्त्तवजनन है ।

सधिवात, अपस्मार तथा फुफ्फुस सम्बन्धी विकारो पर इसका टिंचर (१ भाग मे १० भाग मद्यार्क मिलाकर बनाया हुआ) १५ से ६० बून्द की मात्रा मे तथा इसका सूक्ष्म चूर्ण ५ से १५ रत्ती की मात्रा मे दिया जाता है ।

यह वृक्को के सदाह शोफ तथा मूत्रकृच्छ्र मे भी उपयोगी है । बालको के तथा बडो के शय्यामूत्र के विकारो मे यह विशेष उपयोगी है ।

मुहासो पर तथा उकवत (छाजन) तथा जुलपित्ती (Herpes जो कि प्राय. बालको की जंघा एव काख मे लाल पीली नन्ही फुसिया उठती है) पर इसके महीन चूर्ण का अवधूलन किया जाता है ।

औषधि की गोलियो के अप्रिय स्वाद को छिपाने के लिये गोलियो पर इसके चूर्ण का आस्तरण किया जाता है । इससे चिपकनी गोलिया परस्पर मे चिपकने भी नही पाती ।

बेदाना (Berberis Vulgaris)

दारुहरिद्रा कुल (Berberidaceae) की इस बूटी के विषय मे हम दारुहल्दी के प्रकरण (भाग ३ मे) के सक्षिप्त नोट मे कह आये है कि इसके गुल्म रूपी क्षुप दारुहल्दी के क्षुप जैसे ही होते है । ये विदेशो मे तथा भारत के हिमालय प्रान्त के नेपाल तथा तिब्बत मे लेकर अफगानिस्तान तक या काश्मीर मे लेकर नेपाल तक १२ हजार फुट की ऊंचाई तक पाये जाते है ।

नाम—

इसे हिन्दी, फारसी मे—बेदाना, पजाबी मे—भिरडंक, चाचर, काशमल, चौहार आदि । अ०—ट्रू बारबेरी (True barberry), ले०—बरबेरिस व्हल्गेरिस, बरबेरिस पेटियोलरिस (B. Petiolaris) कहते है ।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसकी जड शीतवीर्य, पौष्टिक, पित्तनाशक, विरेचक

है। मस्तिष्क सम्बन्धी विकारो मे तथा कास, अर्द्धाङ्ग, सधिवात एव अर्धावभेदक (आधा शीशी) मे लाभदायक है।

जड की छाल मूत्रल है। उष्णता तथा तृषा की शाति के लिए एव हृल्लास (जी मचलाना) को दूर करने के लिए यह उपयोगी है। यह सकोचक है, ज्वर तथा पित्त के निराकरणार्थ भी यह प्रयुक्त होती है। इसका क्वाथ अरुण ज्वर (Scarlet fever) मे विशेष लाभकारी है।

इसकी जड का क्वाथ भीतरी चोट की पीडा को दूर करने के लिए भी पिलाया जाता है।

बेफोल (Desmodium Polycarpam)

शिम्बीकुल के अपराजिता उपकुल (Papilionaceae) के इसके लता रूप क्षुप कोयल (अपराजिता का प्रकरण देखिये भाग १ मे) के क्षुप जैसे ही हिमालय की तलैटी के मैदानो मे तथा अन्य मैदानी प्रान्तो मे भी पैदा होते हैं।

नाम—

इसे सयाली पहाडी भाषा मे—वेफोल तथा ले०—डेस्मोडियम पोलिकार्पम, हेडिसेरम परपुरियम (Hedysarum purpureum) कहते है।

गुणधर्म—

इसका उपयोग मूर्च्छा तथा आक्षेप के निवारणार्थ किया जाता हे।

बेबीना (Mussaendra Frondosa)

मजिष्ठा कुल (Rubiaceac) के इस पराश्रयी लतारूप कोमल रोमयुक्त गुल्म की छाल चिकनी, धूसर वर्ण की भीतरी काष्ठभाग श्वेतवर्ण, कोमल, किंचित् कडा, पत्र—लम्बे, गोल डिम्वाकृति के; पत्र वृन्त—बहुत छोटा, पुष्प—नारगी रग के तुर्रेदार अनेक शाखायुक्त गुच्छो मे रेशम के समान मुलायम, कोमल, रोमश, फल—डिम्वाकार एव सूक्ष्म रोमयुक्त होते हैं। वर्षाकाल मे पुष्प तथा शीत काल मे फल आते है।

इसके क्षुप नेपाल, आसाम, खसिया पहाड तथा दक्षिण के पश्चिमी घाट एव मलाबार कोस्ट मे प्रचुरता से पैदा होते है। दक्षिण के कोकण प्रांत मे इसके क्षुप बडे वृक्षाकार होते हैं।

नाम—

स०—नागवल्ली, श्रीवत्ती, भूताकुश। हि०—वेबीना वेदीना। म०—भूतकशी, भूतकसा, वेवना, लवसाद, भूतेगी। व०—नागवल्ली, नेपाली–असारी। अ०—व्हाईट केलिसीन (white calycine)। ले०—मुसीन्ड्रा फान्डोसा, मु फ्लेवेसेन्स (Mussaendra Flavescens)

रासायनिक संगठन–

इसकी जड मे एक कडुवा ग्लुकोसाईट सेपोनिन (Saponin) नामक होता है। इसके अतिरिक्त एक राल शर्करा, पिच्छिल द्रव्य, रजक पदार्थ पाये जाते है।

गुणधर्म व प्रयोग–

उष्ण, कटु, कषाय, तीव्र गंध, कफवात शामक, दीपन, त्वग्वात, श्वेतकुष्ठ, कफ, भूत बाधा, ग्रहपीडा निवारक तथा धातु परिवर्तक, मूत्रल, मार्दवकर है। जड–कफ नाशक, पौष्टिक तथा कास, श्वास, ज्वर, मेदो वृद्धि पर उपयोगी है।

श्वेतकुष्ठ मे—जड को ६ माशा तक गोमूत्र मे घिस कर देते है। नेत्राभिष्यन्द पर—जड को जल मे घिसकर नेत्रो पर मोटा लेप करते है।

पाडु या कामला मे—पत्तो का रस २ तोला दूध के साथ मिलाकर देते है।

दृष्टिमांद्य या तिमिर रोग पर–पत्तो का रस लगाया जाता है। सिर के भारीपन मे—पत्तो का रस सुंघाते है, छींके आकर सिर हलका हो जाता है।

बालको की शीत एव प्रतिश्यायजन्य कास पर इसकी शुष्क कोपलो का फाट पिलाते है।

पुष्प—मूत्रल, शोथघ्न, व्रणशोधक एव चर्मरोग तथा फुफ्फुस के विकार, पार्यायिक ज्वर व जलोदर, मे उपयोगी है। व्रणो की शुद्धिकरणार्थ फूलो को पीस कर लेप करते है।

बेर (Zizyphus Jujuba)

बदर कुल* (Rhamnaceae) के इस मध्यम प्रमाण के कण्टकयुक्त २० फुट ऊचे (बागी या बोये हुए वृक्ष और भी अधिक ५० फुट तक ऊचे) वृक्ष की शाखाये चारो ओर फैली हुई, छाल—धूसरवर्ण की विदीर्ण या खुरदरी, बीच बीच मे कण्टकयुक्त (तीक्ष्ण काटे दो दो होनेपरएक सीधा व एक मुडा हुआ, कभी कभी किसी किसी मे काटे बिल्कुल नही होते), पत्र–१-१½ इंच के घेरे मे गोल या लम्बगोल ¾ से २½ इंच लम्बे, ¾ से २ इंच तक चौडे, पत्रोदर हरितवर्ण, पत्रपृष्ठ श्वेत या पाडु वर्ण का, पुष्प–हरिताभ श्वेत, २ इंच व्यास के गुच्छो मे, फल–आधा से डेढ इंच व्यास के गोल, मासल या शुष्क, पहले हरे, फिर पीतवर्ण तथा पूर्ण पकने पर लाल होते है। इनमे गुठली कडी गोल होती है। पुष्प–शीतऋतु से पूर्व तथा फल शीत काल फाल्गुन, चैत्र मास मे आते है।

भारत मे ये प्राय सर्वत्र दो प्रकार के एक नैसर्गिक पैदा होने वाले तथा दूसरे बोये हुए पाये जाते है। बोये हुए की ऊचाई, घेरा, पत्रादि मे बहुत अन्तर हो जाता है।

बेर
ZIZYPHUS JUJUBA LAMK.

पुष्प
पत्र
शाखा
फल
पुष्प

---
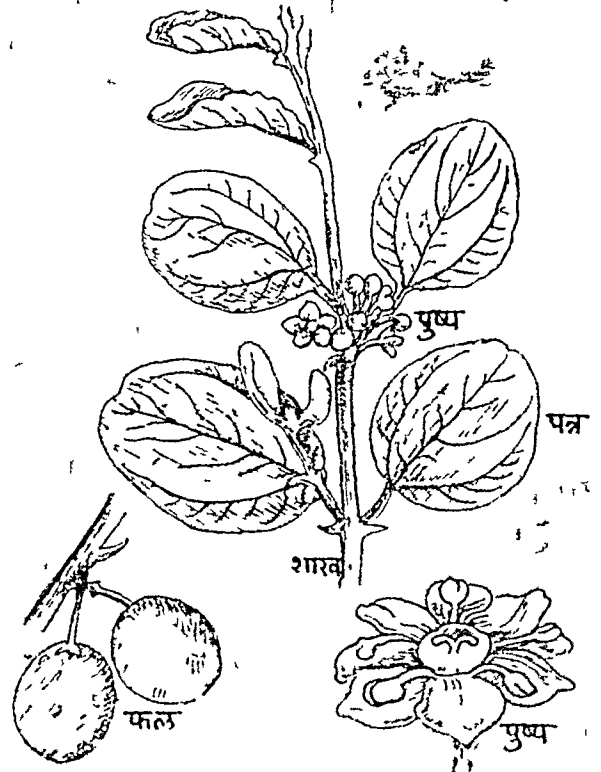
*इस कुल का वर्णन इस ग्रन्थ के भाग १ मे 'उन्नाब' के प्रकरण मे फुटनोट मे देखिये।

इसके पत्र, पुष्पादि रग के कार्य मे आते हैं। रेशम के कीडो को इसके पत्र खिलाते हैं। इसके वृक्ष पर लाख अच्छी होती हे तथा इसकी छाल मे कषाय द्रव्य (टेनिन) भी अधिकता से पाया जाता हे।

नाम—

यह सक्षिप्त वर्णन सर्व साधारण वेर का है। जिसे स—वदरीकोल, पत्रकटक, उभयकटक आदि, हि—वेरी, वदर, म—वोर, गु—वोरडी, कुल, देसर, अ—इडियन जुजुवे (Indian jujube), इडियन प्लाम (Indian plam) और ले—जिजाइफस जुजुवी कहते है।

इस कोल या छोटे वेर के अतिरिक्त जो सौवीर नामक वेर छोटा, मधुर तथा पका हुआ हो उसे ही 'कोल' कहा जाता हे। (राजबेर, वडा वोर), भूवदरी (झड-वेरी) और कर्कन्धु (कटवेर) ये फलो की आकृति भेद से ३ प्रकार की और मुख्य जातिया हैं। इनमे से—

(१) राजवोर (सौवीर) यह मध्य एशिया का मुख्य निवासी हे। भारत के वागो मे फलो के लिये यह वोया जाता है या इसकी कलमे लगाई जाती है। इसके फल वडे छुआरे के आकार के होते हे। वृक्ष छोटे छोटे होते है। इसे—

स—राजवदर, राजकोल, मधुर फल, कुपल, नृप श्रेष्ठ, दृथु फला आदि। हि—वडा वेर, पेवन्दी वेर, लम्वे वेर आदि, म.—राजवोर, पेवन्दी वोर, अमदावादी वोर ग—खारेक वोर, अजमेरी वोर, काशी वोर इ, व—नारकूल, अ—जुजुवा फ्रुट (Jujuba fruit), लोटो फागी (Loto phagi), ले—जिजायफस सेटिवा (Zizyphus Sativa), जि लोटस (Z Lotus) कहते हे।

इसके वृक्ष काश्मीर, पश्चिमोत्तर प्रदेश, ईरान, अफगानिस्तान तथा चीन मे अधिक पैदा होते है।

उन्नाव या खोरासानी वेर (Zizyphus vulgaris) इसी का एक भेद हे। इस ग्रन्थ के १ भाग मे उन्नाव का प्रकरण देखिये।

(२) झडवेरी—इसकी अत्यधिक तीक्ष्ण काटेदार झाडी २ से ६ या १० फुट तक ऊँची, पत्र, फल आदि छोटे छोटे होते है। फल—गोल, कच्ची दशा मे हरे, पकने पर लाल एव चमकदार, भीतरी गुठली बहुत कठोर होती है।

इसकी झाडी भारत मे प्राय सर्वत्र, पजाब, सिंध, गुजरात, दक्षिण राजस्थान, मालवा आदि मे प्रचुरता से पाई जाती हे। राजस्थान, मेवाड आदि मे इसके ताजे व शुष्क पत्तो को, या समग्र झाडी को ही महीन काट काट कर पशुओं को खिलाते है। फल वालक गण वडे प्रेम से खाते है। कोई कोई इसे ही उन्नाव या विलायती वेर कहते है। किन्तु वास्तव मे उन्नाव इससे भिन्न है।

इसे स—भूवदरी, अजप्रिया, सूक्ष्म फला, वहु कटका इ, हि—झडवेर, कोकण वेर, जाली वेर इ। म—भुई वोर, गु—चणिया वोर, व—मेटोकुल.कुलगाछ, तथा ले—जिजाईफस नुमुलेरिया (Zizpyhus Nummularia) कहते हे।

गुण धर्म व प्रयोग—

कसेला, अम्ल, मधुर, शीतल, सकोचक, दीपन, पाचन-रोचक, रक्तपित्त प्रकोपक हे। इसकी गुठली की गिरी, मधुर, कसैली, कामोद्दीपक, वीर्यवर्धक तथा तृषा, वात, वमन, दाह, पित्त आदि निवारक है। इसके पत्र फोडे, फुसी व खुजली मे लाभकारी हैं। इनका धुआ जुकाम एव नासिका स्राव मे उपयोगी हे। सन्धि पीडा मे इसके क्वाथ मे स्नान कराते हे। मुख के छाले तथा मसूढो से रक्तस्राव होने पर इसके क्वाथ से कुल्ले कराते हे।

(३) कटवेर (कर्कन्धु)—कटकयुक्त ६ से १५ फुट ऊचे इस झाडीदार वृक्ष की लकडी पीताभ भूरी या लाल, भूरी व कडी होती है। वृक्ष पुराने हो जाने पर काटे रहित हो जाते है। इसकी छाल मे टेनिन अधिक होता है। छाल का उपयोग चमडे को उत्तम काला रगदार

बनाने के लिये किया जाता है। ये वृक्ष सीलोन व ईस्ट इंडीज में बहुत होते हैं।

इसे स —क्षुद्रबदर, कर्कन्धु, घोण्टा, बदरिका इ , हि —कटबेर, कठबेर, भण्टेर, म —काटे गुठीं, खारकी ग —गटबोरडी, गुटबोरडी, ले —जिजाईफस एक्सलोपायरा (Zizyphus xylopyra)।

कोई कोई इसके फल को ही उन्नाव कहते हैं। गुण धर्म मे यह प्राय उन्नाव से मिलता जुलता है।

इसीका एक भेद जो बगाल और ईस्ट इंडीज (पूर्व प्रायद्वीप) मे अत्यधिक पैदा होता है, उसे बगाल की ओर सियाकुल और लेटिन मे जिजाईफस सोरोरिया (Z Sororia) कहते हे। इसके फल कुछ खटमीठे तथा सकोचक स्तंभक एव कफ नि सारक है। पत्र—वातु परिवर्धक है।

नोट—इसके अतिरिक्त मकाई बेर (Z Oneoplia) के काटेदार क्षुप की शाखायें बहुत लम्बी इधर उधर फैली हुई पत्र १ से ३ इंच तक लम्बे ½ से १ इंच चौडे, दन्तुर, अतिसघन, नूतन पत्र कोमल रोमश, पुष्प—चिकने रोमश, पखुडी त्रिकोणाकार, फल—छोटे छोटे कच्ची दशा मे हरे, पकने पर काले होते है।

यह प्राय भारत के सब उष्ण प्रदेशो के जगलो मे तथा सीलोन मे पाया जाता है।

इसे स—लघुबदरी, श्रृगालकोली, बहुकटका, हिं—मकाई, म—कनेरबदली, मकोर, हरुण, ब —सियाकुल, माहकोआ, अ —जेकाल जुजुबी (Jackal jujube), ले —जिजिफस ओनियोप्लिया कहते है।

इसकी छाल ज्वरघ्न, पाचक, पौष्टिक है। जड की छाल का क्वाथ ताजे व्रणो के पूरणार्थ उपयोगी है। उदरशूल निवारणार्थ इसके फलो के मिश्रण मे एक प्रकार की गोलिया बनाकर दी जाती है।

इसकी ही एक अन्य जाति इमली बेर जिजिफस आक्सिफायला हे। (Z Oxyphylla) इसके भी काटेदार क्षुप होते है। फल—पकने पर नारगी लाल वर्ण के किंतु कुछ देर रखने पर काले हो जाते है। ये स्वाद मे इमली जैसे खट्टे होते है।

प्रस्तुत प्रसग के बेर के विषय मे—

चरक के हृद्य, हिक्कानिग्रहण, उदर्द प्रशमन, विरेचनोपग, श्रमहर, स्वेदोपग गणो मे तथा फलासव औषधि सग्रह, कषाय एव अम्लस्कन्ध मे, सुश्रुत के आरग्वधादि एव वातसशमनगण मे इसका उल्लेख है।

रासायनिक संगठन—

फल मे अम्ल, पिच्छिल द्रव्य व शर्करा, तथा छाल व पत्र मे टेनिन और जिजिफिक एसिड (Jiyyphic acid) नामक एक स्फटकीय तत्व पाया जाता है।

प्रयोज्याङ्ग—फल, फल की गुठली की गिरी, जड़, छाल, पत्र, लाख, गोंद।

गुण धर्म व प्रयोग—

गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल, अम्ल, शीतवीर्य, वातपित्त शामक, तृष्णानिग्रहण, रुचिवर्धक, दीपन, अनुलोमन, हृद्य, शोणितास्थापन, हिक्कानिग्रहण, मूत्रल, मूत्रगतशर्करान्यून कारक, स्वेदोपग, उदर्दप्रशमन, दाहप्रशमन, बृहण, श्रमहर, तथा अरुचि, अग्निमाद्य, विबन्ध, हृद्दौर्बल्य, रक्तविकार, रक्तपित्त, वातपैत्तिक कास श्वास, मूत्रकृच्छ आदि मे प्रयुक्त होता है।

कच्चा फल—पित्तकफकारक, पका फल—स्निग्ध, मधुर, अम्ल, कफकारक, पित्तकासहर, वात, अतिसार, शोष, रक्तदोष व श्रमहारकहै। शुष्क फल—लघु, दीपन अनुलोमन, तथा कफ, वात, तृषा, पित्त, क्लम, श्रम आदि नाशक हे। छोटी जाति के क्षुद्रबेर खट्टे, कुछ स्वादिष्ट मृदुविरेचक, दाहकारक होते है। इनमे कर्कन्धू (कटबेर) अम्ल, किंचित् मधुर, कषाय, स्निग्ध, गुरु एव वात पित्त नाशक हैं।

राजबेर—शीतल, गुरु, मलभेदक, शुक्रजनक, बृहण (रस रक्तादिवर्धक) तथा पित्त, दाह, रक्तविकार, क्षय, एव तृषानाशक है। छोटा या कोल नामक राजबेर ग्राही, रोचक, कफ पित्त जनक, गुरु, सारक एव वातनाशक है।

यूनानी मतानुसार—बेर पहले दर्जे मे शीत व रूक्ष है। सौमनस्यजनन विशेषत सतापहर व पित्तघ्न है। यह मेवा की तरह खाया जाता है। यद्यपि यह गुरु (चिर

पाको) एव कम पुष्टिकर है तथापि उससे एक उत्तम पोषणाश या पुष्टि प्राप्ति होती है। उष्ण प्रकृति को यह सात्म्य है, रक्त एव पित्त के उद्वेग कोओर तृष्णा को शमन करता है। भुना हुआ पित्तातिसार को बन्द करता है।

श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी का कथन है कि "हृदय को बल देने वाले फलो मे बेर उत्तम है। मधुराम्ल रस विशिष्ट जो बेर होते है, वे ही हृद्य होते है। गोल बेर जो बडी या छोटी, कुछ मीठी कुछ खट्टी होती है, हृदय के लिए लाभदायक है। बडी बेर, कलमी बेर, पेवदी बेर जो लम्बी गोल बडी होती है, उसकी अपेक्षा कम हृद्य होती है, यद्यपि वह मधुर भी है। श्रमहर या थकावट दूर करने का गुण बडे छोटे सभी बेरो मे है जो मीठे हो। श्रमहर गुण प्राप्त करने के लिये इच्छानुसार बेर खाना चाहिये।

विरेचकोपयोगी गुण—बडी बेर जो मीठी हो, पककर लाल हो गई हो, खाने पर पेट साफ करती है। अधिक खाना दस्तावर होता है। यह गुण केवल मीठी बेर मे ही है। बेर अधिक खाने से शरीर मे पसीना आता है। शारीरिक विषो को दूर करने के लिए, मौसम मे बेर अधिक खाना अत्यावश्यक है। यह एक बल्य खाद्य की तरह काम आता है।" —फलाङ्क से साभार

सत्तू के रूप मे सेवन—झडबेरी, बडे गोल बेर तथा कलमी या पेवन्दी बेरो को सुखाकर चूर्ण बना सत्तू के समान शक्कर आदि के साथ सेवन करने का प्रचार बहुत प्राचीन काल से भारत मे है। यद्यपि इसमे सत्तू के सब गुण (सक्तवो बृहणो वृष्यास्तृष्णापित्त कफापहा। पीता सद्यो बलकरा भेदिन पवनापहा ॥ सु सू अ ४६) नही है तथापि जो निम्नाङ्कित गुण है—वे इसे ग्राह्य एव उपयोज्य बनाने के लिये पर्याप्त है। कहा है—

"कर्कन्धु बदरादीना श्रम क्षुत तृट् क्लमच्छिद ।
सक्तवोऽम्लरसा हृद्या यथा द्रव्य गुणाश्च ते ॥
—अष्टाङ्ग सग्रह सू अ ७

अर्थात्—कर्कन्धु तथा बदर (छोटे या बडे बेर) से बनाये हुये सत्तू थकावट, क्षुधा व तृषा को दूर करते है। अम्ल रस वाले एव हृद्य होते है। सत्, जिस द्रव्य से (या जिस प्रकार के बेर आदि से) बनाये गये हो, उस द्रव्य के गुण विशिष्ट ही वे होते है।

(१) ज्वर मे दाह तथा उदर्द पर—ज्वर की दशा मे दाह की विशेषता हो तो सूखे या ताजे झडबेर २ तोले को ३२ तोला जल मे पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर छान कर थोडी शक्कर मिला पिलाने से दाह, तृषा, व्याकुलता शान्त होती है, एव पित्तज्वर भी कम हो जाता है। विषम ज्वर मे भी यह क्वाथ दिया जाता है।

अरुचि को दूर करने तथा क्षुधा वृद्धि के लिये शर्वत-शुष्क बडे बेर (या उन्नाव) २ सेर को कूटकर जल ४ सेर मे पकावे, चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर उसमे २ सेर शक्कर मिला शर्वत की एक तारी चाशनी तैयार कर लें। मात्रा—२ से ४ तोला तक शर्वत मे जल मिलाकर दिन मे २ ३ बार सेवन से अरुचि दूर होकर क्षुधा वृद्धि होती है।

उदर्द या शीतपित्त पर—झडबेर जो पककर लाल होकर जंगलो मे सूख गये हो उन्हे लाकर चूर्ण बना लें। १ से २ माशा तक यह चूर्ण जल के साथ पिलावें। इससे वमन और अरुचि मे भी लाभ होता है।

(२) प्रदर वात विकार तथा शुक्रप्रमेह पर—बेर के महीन चूर्ण (३ माशा) मे समभाग गुड और उत्तम घृत मिलाकर सेवन कराने से स्त्रियो का प्रदर रोग दूर होता है। —भा भै र

अथवा उक्त चूर्ण को केवल शहद के साथ देते रहने मे भी लाभ होता है।

वात विकार पर वातहर उपनाह—सूखे हुये बेर का गूदा, कुलथी, देवदार, रास्ना, उडद, अलसी, तिल, रेडी के बीज, कूठ, वच, सौफ और जौ इनका चूर्ण कर खट्टी काजी (या गोमूत्र) मे पका (गाढा कर), दो कपडो के बीच मे रखकर जहा वात का दर्द हो वहा सेकने से पीडा शात होती है। —सिद्ध योग सग्रह (चरक सू. अ ३)

शुक्र प्रमेह पर—जगली कच्चे बेरो को जिनमे गुठली न पडी हो छायाशुष्क कर चूर्ण कर रोगी को सेवन

कराते है। —यूनानी

(३) नाडी व्रण (नासूर) पर—वेर फल का ऊपर का छिलका, मैनफल, सुपारी, दालचीनी व सेधा नमक समभाग मिश्रित अत्यन्त महीन चूर्ण कर (सेहुण्ड डडा थूहर) और आक के दूध मे घोट कर वत्ती वना उसे लगाने से नाड़ीव्रण शीघ्र ही नष्ट होता है। —वृ० मा०

बेर के बीज (गुठली एव गिरी)—कसैले, कुछ मधुर लेखन, पित्त शामक, शुक्रवर्धक, वल्य, वृष्य (कामोद्दीपक), चक्षुष्य तथा कास, श्वास, हिक्का, तृषा, वमन, दाह एव श्वेत प्रदर आदि मे उपयोगी है।

(४) पित्त विकार, ज्वर की तृषा आदि पर—बीज की गिरी और लौंग समभाग एकत्र पीस कर मिश्री की चाशनी मे मिला दिन मे ३-४ बार चटाने से जी मिचलाना, वमन, दाह आदि पित्तविकार शात हो जाते हैं।

ज्वर मे पित्त प्रकोप जन्य तृषा शांति के लिये इसकी गिरी और मुलैठी का चूर्ण एकत्र मिला थोडा थोडा मुख मे डालते है।

वमन पर—गिरी के साथ धान की खील, वटाकुर (बरगद के अकुर) और मुलैठी एकत्र कर जल मिला, गाढा सा क्वाथ कर उसमे शहद व मिश्री मिला, थोडा-थोडा पिलाते है।

(५) नेत्र रोग, वीर्य क्षीणता, मूर्च्छा, प्रमेह, भस्मक रोग, हिक्का, मसूरिका और विच्छू के विष पर—इसकी गुठली को जल मे घिस कर दिन मे दोवार नेत्रो मे अजन के समान लगाते रहने से उष्णता या रोहो (पोथकी) के कारण होने वाला नेत्रस्राव वन्द होता है तथा रोहे भी दूर हो जाते है।

वीर्य की क्षीणता पर—गिरी को पीसकर गुड के साथ मिलाकर खाने से वीर्य की कमजोरी दूर होकर वीर्य पुष्ट होता है।

मूर्च्छा पर—गिरी के साथ कालीमिर्च, खस और नागकेसर समभाग चूर्ण वना लेवे। २-३ माशा की मात्रा में जल के साथ पिलाने से मूर्च्छा दूर होती है। —यो० र०

प्रमेह पर—वेर विलकुल कच्चे जिनकी गुठली दांतो से विना परिश्रम (सहज ही मे) चवाई जा सके १ सेर छायाशुष्क कर साथ ही मे १० तोला इमली के वीज की गिरी लेकर दोनो का महीन चूर्ण कर रक्खे। मात्रा—३ से ६ माशा तक, २० तोला दूध के साथ सेवन से प्रमेह दूर होता है। दूध अधिक सेवन करे। खटाई, मैथुन, गरम वस्तु निषेध है। —स्व श्री प भागीरथ स्वामी

भस्मक रोग पर—गिरी को जल मे पीसकर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। —वृं नि र

हिक्का पर—गिरी को सौफ और लौग के साथ पीस कर थोडा जल मिलाकर पीने से हिक्का शीघ्र वन्द होता है तथा उवकाई आना भी वन्द हो जाता है। अथवा—गिरी को चिलम मे रखकर धूम्रपान करने से भी तत्काल हिक्का वन्द होती है। अथवा—गिरीको पीस उसमे आक दूध की १ भावना दे छायाशुष्क कर थोडा चूर्ण चिलम मे रख धूम्रपान करे।

अथवा—राजवेर (कोल) की गुठली की गिरी के साथ समभाग शुद्ध सौवीराजन (सुरमा) और धान की खील का चूर्ण कर ३ से ६ माशा की मात्रा मे दुगने शहद के साथ मिलाकर सेवन से हिक्का दूर हो जाती है। —सु उ त अ ५०

मसूरिका मे—गुठली के छिलके को पीसकर गुड मे मिलाकर खाने से सर्व प्रकार की मसूरिका पक जाती है। —व च

विच्छू के विष पर—गिरी के साथ समभाग ढाक (पलास) के वीज लेकर एकत्र चूर्ण कर आक के दूध मे ६ घण्टे खरल कर वडी गोली या वर्ति बना लेवे। इसे जल मे घिस र लेप करने से विष उतर जाता है। —गा औ र

पत्र—वेर के पत्ते शीतल, दाह प्रशामक, कफ विकार पित्तविकार, अतिसार, कृमि, मुख शोथ, श्वास, यकृत विकार आदि मे उपयोगी है। मसूढे के रक्तस्राव को वन्द करते है। जखम तथा उपदश जन्य व्रणो को भरने वाले हैं। पथरी (अश्मरी) को दूर करने के लिए पत्तो का प्लास्टर लगाते हैं। पत्तो को चवाने से जिह्वा की

स्वाद ग्रहण की शक्ति नष्ट होती है, जैसे कि गुडमार पत्र के चवाने से होती है।

(६) दाह, मूत्र कृच्छ्र, स्वरभेद आदि पर—इसके कोमल पत्तो को कूटकर जल मिला मथन करने पर जो झाग निकलता है उसे शरीर पर मलने से ज्वर की दशा मे होने वाला या मदात्यय के कारण होने वाला दाह शात हो जाता है। अन्य कारणो से होने वाला स्थानिक दाह भी इसके मर्दन से दूर हो जाता है। पत्तियो को पीसकर कल्क का लेप करने से भी दाह दूर होती है। इससे विस्फोट की भी शांति होती है।

मूत्रदाह तथा पीडा के निवारणार्थ—पत्तो को पीस कर पेडू पर लगाते है।

रुग्दाह सन्निपात पर—इसके पत्तो के साथ, श्वेतचदन और नीम पत्र समभाग लेकर सब को एकत्र पीस पैरो के तलुओ मे लेप करने से लाभ होता है। —भा भै र

पित्त ज्वर मे सन्ताप निवारणार्थ—इसके कोमल पत्र २ तोला को अच्छी तरह धो पीसकर ८ तोला जल मे घोलकर हाथो से आलोडन करने पर जब झाग उठे तब उसमे ४ रत्ती सेंधा नमक मिला मद आच पर पकावे। ५ तोला तक शेष रहने पर उतार कर छानकर प्रात साय पिलावें। —सि भै म माला

अग्निदग्ध पर—कोमल पत्तो को दही के साथ पीस कई बार लगाने से अग्निदग्ध की पीडा, जलन दूर होती है, तथा दाग मिट जाता है।

मूत्र कृच्छ्र पर—इसके कोमल अकुर और श्वेत जीरा एकत्र घोट छानकर पिलाने से उष्णता से रुका हुआ पेशाब साफ उतरता है।

स्वर भेद तथा कास पर—पत्तो को पीसकर थोडे घृत मे सेंक कर या गरम कर उसमे सेधा नमक मिला रोगी को थोडा थोडा चटाने से स्वरभग (गला बैठना) तथा कास मे लाभ होता है। —यो र

(७) अतिसार, चेचक, मुखपाक और इक्षु मेह (मधु मेह) पर—अतिसार मे पत्र चूर्ण को मठे के साथ देते है। रक्तातिसार हो तो दिन मे रोगी को बेरी के पत्तो का रस और रात्रि के समय सोठ तथा कदम्ब की छाल का क्वाथ पिलावें। ३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। —भा भै. र

चेचक या शीतला पर—पत्तों का कल्क ६ माशा और गुड २ माशा एकत्र मिला (यह १ मात्रा है) सेवन कराने से शीतला का विष शीघ्र बाहर निकल जाता या जल जाता है। दूसरे या तीसरे ही दिन मे शीतला मे शाति आने लगती है। पशुओ को शीतला निकली हो तो काठियावाड मे रेवारी बेर के पत्तों और छाल का क्वाथ बनाकर छाछ मिलाकर पिलाते हैं। —गा औ र

इसके पत्तो का रस दूध के साथ सेवन कराने से चेचक का प्रकोप नही होता, यदि हुआ भी तो उसका जोर कम हो जाता है। —व गु

मुख पाक पर—पत्तो का क्वाथ कर दिन में २-३ बार कुल्ले कराने से लाभ होता है। यदि आमाशय का पित्त तेज होने से मुख पाक हुआ हो तो पित्त शमनार्थ विरेचन एव शामक औषधि भी देनी चाहिए।

यदि रस कपूर वाली औषधि के सेवन से मुख पाक हुआ हो ममूढे शिथिल होगये हो, मुख से लार गिरती हो तो इसके पत्तो का या छाल का क्वाथ कर कुल्ले कराये जाते है। —गा औ र

इक्षुमेह—(इसमे ईख के रस जैसा मूत्र होता है, यह कफज प्रमेह का एक भेद है, इसमे शर्करा होती है—Glycosuria) गुडमार की भाति बेर के पत्तो का चूर्ण ३ माशा तक दिन मे दो बार देने से इक्षुमेह मे लाभ होता है।

(८) कुक्कुर कास, नकसीर, व्रण विद्रधि, नासूर, यौनिशैथिल्य, बालो का झडना, आदि पर—

कुक्कुर कास पर—पत्तो पर मेसिल का लेप कर धूप मे शुष्क कर, उन्हे दूध मे भिगोकर चिलम मे रख धूम्रपान कराते है।

नकसीर पर—पत्तो को पीसकर कनपटी पर बार-बार लेप करते है।

दुष्ट व्रण, विद्रधि तथा अन्य फोडो को पकाने के लिए इसके कोमल पत्र तथा कोमल डालियो को पीसकर गरम कर लेप करते या पुल्टिस जैसा बनाकर बाधते है।

यदि नासूर (नाडी व्रण) हो तो उसके पत्तो के साथ नीम के पत्तो को पीसकर नासूर मे भर देते है।

योनिशैथिल्य पर या भग सकोचनार्थ—इसके ताजे पत्तो को महीन पीसकर योनि पर लेप करते रहने से योनि शैथिल्य दूर होकर काफी यो दृढ योनि सकोच हो जाता है।

बालो का झडना—बालो को शक्ति देने तथा शिर की भूमी दूर करने के लिये, पत्तो के क्वाथ से सिर को धोते है।

इसके पत्तो को पीस पानी मे मथने पर जो झाग उठता है, उसके मलने मे केशो का झड़ना वन्द हो जाता है।

विच्छू के विष पर—इसके कोमल नूतन पत्रो को गूलर के साथ पीस कर लगाते हैं। —सकलित

छाल और जड—बेर वृक्ष की छाल—ग्राही, व्रण शोधन है। अतिसार, रक्तातिसार, प्रदर, रक्त पित्तादि पर प्रयुक्त होती है। छाल और जड दोनो पौष्टिक है। जड का क्वाथ ज्वर के निवारणार्थ दिया जाता है, किंतु इसका असर ज्वर पर बहुत ही मदगति मे होता है। डा ईव्हर्सन का कथन है कि इसमे ज्वर निवारण करने वाले तत्वो की अपेक्षा पौष्टिक तत्व ही अधिक रहते हैं। जड का चूरा व्रण और पुराने जख्मो को दूर करने के काम मे लिया जाता है।

विस्फोट मे छाल को पीसकर लेप करते है। फोडो पर इसकी पुल्टिस बनाकर बाधते है। इसके क्वाथ से फूटे हुये फोडो को या सडे हुए क्षत को धोते है। पुराने क्षत या फोडो पर छाल का चूरा बुरकाते है। झडबेरी की जड की छाल का उपयोग शुक्र प्रमेह, श्वेत प्रदर मे किया जाता है।

(९) अतिसार, प्रदर, उपदश व आत्र पर—इसकी जड की छाल का क्वाथ कर उसमे मूङ्ग का यूप बनाकर पिलाने से अतिसार शमन हो जाता है।

रक्तातिसार हो तो जड की छाल और तिलो को (लगभग समभाग) पीसकर गाय के दूध मे (बकरी का दूध हो तो उत्तम) मिला, उसमे शहद डालकर पिलावे —शार्ङ्गधर

प्रदर पर—छाल का चूरा प्रात साय ३ माशा की मात्रा मे गुड के साथ देते रहने से श्वेत और रक्तप्रदर दोनो मे लाभ होता है। —गा औ र

उपदश पर—जगली बेर के वृक्ष की छाल (जड की हो तो उत्तम) ५ तोला कुचल कर पीसकर आवश्यकतानुसार जल मे मिला उसमे ५ तोला मिश्री डालकर २० बार ठडाई की तरह लौट-पलट कर ३ दिन पीने से उपदश समूल नष्ट होता है।

—स्व श्री प भागीरथ स्वामी

अथवा—जड़ की भस्म १ तोला को आम के अचार के तैल मे मिलाकर सेवन करे। ऊपर से ताजा ठडा जल पीवे। पथ्य मे—तैल, अम्ल, लवण का सेवन न करे। उपदश मिटता है। —सि भै म माला

आत्रवृद्धि पर—झडबेर की जड (अगूठे जैसी मोटी) के ५ तोला टुकडे को कूटकर ६० तोला जल मे मन्द आच पर पकावे। २० तोला जल शेप रहने पर छानकर रोगी को पिलावे। इसी प्रकार प्रात साय ४० दिन पिलाने से फिर कभी आत नही उतरती।

ध्यान रहे, इसके सेवन से कभी कभी विवन्ध हो जाता है। अत उष्ण जल की वस्ति द्वारा पेट साफ रखना आवश्यक है। हलका एव सुपाच्य भोजन देवे। तथा रोगी को किसी भी प्रकार का परिश्रम न करने दे। आराम से शय्या पर ही लिटाए रखे।

(धन्वन्तरि से)

—श्री वैद्य लालाराम जी शर्मा 'वशिष्ठ'
यूहा (करनाल)

(१०) स्वरभेद, सिरपीडा, पित्त ज्वर, प्रलाप, मुखपाक व पामा तथा दुग्धवृद्धि के लिये—

स्वर या कठ के बैठ जाने पर इसकी छाल का टुकडा मुख मे रखकर चूसते रहने से २-३ दिन मे लाभ हो जाता है।

सिर दर्द पर—जड की छाल और पिप्पली को पीस

कर लेप करने से मस्तक पीडा नष्ट होती है। —ग नि

पित्त ज्वर पर—धूप में सुखाई हुई इसकी जड को जल मे औटाकर छानकर उस जल को पिलाते है।

प्रलाप पर—जड की छाल को ब्राह्मी पत्र के साथ जौकुट कर २ तोला चूर्ण को ३२ तोला जल मे पकाकर चतुर्थांग शेष रहने पर छानकर पिलाते हैं।

मुख पाक पर—इसकी जड की छाल के साथ ववूल की जड की छाल समभाग जौकुट कर उसका हिमनिर्यास या क्वाथ वनाकर कुल्ले कराते है। किसी भी कारण से हुए मुख के छाले दूर हो जाते है। —सकलित

पामा—इसकी छाल के हिम निर्यास (कषाय) मे चावलो को पकाकर विना माड निकाले, गोघृत व मिश्री मिला कर सेवन करने से पामा का नाश होता है। —सि भै म माला

दुग्धवृद्धि के लिए—छोटी वेरी (या मकाई वेर देखो पीछे नोट मे) की जड को दातो से चवाकर मुख मे रखकर उसका रस चूसने से प्रसूता स्त्री के स्तनो मे दुग्ध वृद्धि होती तथा दूध के कृमि नष्ट हो जाते है। (दूध शुद्ध होता है) इस प्रयोग का फल ७ दिन मे मालूम होता है। —भा भै र

लाख (लाक्षा)—चिकित्सा शास्त्र की दृष्टि से सवमे श्रेष्ठ लाख–पीपल वृक्ष की है। दूसरे नम्वर मे वेरी की लाख है। इसके गुण धर्म पीपल वृक्ष की लाख के जैसे ही हैं किन्तु उरःक्षत आदि कई रोगो मे यह उसकी अपेक्षा अधिक उत्तम कार्य करने वाली है।

(११) उरःक्षत (Pthisis) पर—क्षय रोग मे अथवा अधिक चोट आदि कारणो से थूक एव कफ के साथ रक्त आता रहता हो तो इसकी लाख १ तोला का क्वाथ कर उसमे ८ गुना पेठे का रस मिला दिन मे २-३ वार पिलाते रहने से रक्त स्राव वन्द हो जाता है तथा वक्षस्थल का विकार दूर होता है। —गा औ र

(१२) उन्माद आदि हर 'लाक्षारिष्ट'—वेरी की लाख २॥ सेर महीन पीसकर १० सेर जल मे रात्रि के समय भिगोकर प्रात मन्द अग्नि पर पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छान लेवे। उसमे लालचन्दन का चूरा, कमल फूल २०-२० तोला, श्वेत चन्दन का चूरा १० तोला, नीलोफर ५ तोला और धाय के पुष्प १५ तोला सवको जौकुट कर तथा खाड १। सेर मिलाकर चिकनी मटकी मे मुख वन्द कर ३० दिन तक सुरक्षित रखें। फिर छानकर वोतलो मे भर लेवे।

मात्रा—४ तोला, दोनो समय जल मिलाकर सेवन करने से उन्माद, मानसिक दुर्वलता, वुद्धि की मन्दता, योषापस्मार आदि शीघ्र दूर होते है। —बृ आसवारिष्ट सग्रह से

गोद—वेरी के वृक्ष के गोद को वकरी के दूध मे घिसकर लेप करने से दाह दूर होती है।

नोट—मात्रा—फल ५-७ नग। छाल क्वाथ १० तोला तक।

मूल छाल का चूर्ण ३-४ माशा। पत्र कल्क-आधा से १ तोला। अधिक मात्रा मे फल-चिरपाकी होने से आध्मानकारक हैं। हानि निवारक—गुलकन्द तथा मस्तगी।

विशिष्ट योग—

(१) वदरादि चूर्ण—वेर, त्रिफला, त्रिकटु प्रत्येक ८-८ तोला, कपूर १-१ तोला, धान की खील ४८ तोला तथा इलायची, दालचीनी व तेजपात ४-४ तोला, वसलोचन ३२ तोला और अम्लवेत (चकोतरा नीवू का गूदा सुखाया हुआ) १६ तोला इन सवका चूरा कर, उसमे दो गुनी खाड अच्छी तरह मिलाकर रखे। यह चूर्ण हृदय के लिये हितकारी तथा वमन, राजयक्ष्मा, रक्तपित्त, ज्वर व कास नाशक है। मात्रा ६ माशा तक। —ग नि

(२) कर्कन्ध्वादि पानक—झडवेरी के वेर ६४ तोला कूटकर चौगुने जल मे मिला अच्छी तरह मसलते हुए ७ वार छान कर जल को शुद्ध मटकी मे डालकर उसमे गुड ८ तोला, खाड ४ तोला तथा काली मिर्च १ तोला, केशर ३ माशा, दालचीनी ४ माशा, तेजपात ४ माशा, छोटी इलायची १ तोला, कमलनाल ६ माशा इनका महीन चूर्ण तथा सुगन्ध योग्य जावित्री मिलाकर (अथवा

चमेली के फूलो से सुगन्धित कर) ढककर रख देवे ।

इसके पान करने से विभ्रम, तृषा, वमन, दाह, अतिसार, प्रवाहिका, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और मदात्यय का नाश होता है । —ग नि.

इस योग का सेवन ७ या ८ दिन से अधिक दिन नही करना चाहिए ।

(३) बदरी फलासब— (मस्तक विकृति हर)— झडवेरी के शुष्क वेर १।। सेर, झडबेरी की जडकी छाल आधा सेर इनको जौकुट कर ५ सेर जल मे शाम को भिगोकर प्रात पकावे । ४ सेर जल शेष रहने पर उसमे २½ सेर शक्कर मिला मिट्टी के चिकने पात्र मे भर उसमे इलायची के दाने, धनिया, खस, नागरमोथा, श्वेतचन्दन का बुरादा, नागकेशर, गुलाब के फूल, कपास के फूल और नीलोफर २-२ तोला, धाय के फूल २० तोला सबको जौकुटकर मिला कर २१ या ३० दिन तक पात्र का मुख बन्द कर रखे । पश्चात् मल छानकर बोतलो मे भर देवे । मात्रा—१ से ३ तोला तक सेवन से मन्द या चिडचिडे मिजाज वालो को विशेप लाभ होता है । उदण्डता या बदमाशीपन को दूर करने का यह एक अच्छा प्रयोग है । जो व्यक्ति कुत्सित विचार वाला, बुरे आचरण वाला या नटखट स्वभाव वाला हो उसे इसके सेवन से आशातीत लाभ होता है ।

—स्व० श्री मिश्र बलवन्त शर्मा वैद्यराज

बदरी फलासव न०२ (प्रतिश्याय आदि पर)—उत्तम बढिया मीठे वेर २½ सेर कुचलकर मन्द भूभल की आच पर दो घटे, किसी कलईदार पात्र मे मुख बन्द कर रखे फिर कपडे मे दबाकर रस निचोड ले । यदि यह रस १½ सेर तक हो, तो उसमे आधा सेर खाड मिला काच की एक बडी बोतल मे भरे । (यदि बडी बोतल न हो, तो २ या ३ शीशियो मे भरलें) । मुख पर मजबूत कार्क लगा दे । फिर इन बोतलो को किसी बडे पात्र मे रखे । जल भर देवे । जल इतना हो कि बोतले उसमे डूबी रहे इस पात्र को चूल्हे पर चढाकर एक पहर तक मन्द आग से पकावे । फिर निकाल कर बोतलो का मुख चपडे से अच्छी तरह लेस देवे । १० दिन रखा रहने पर उसे काम मे लावे । मात्रा—१ से २ तोला तक । जुखाम तथा जुखाम की खासी, सिर दर्द आदि पर बहुत लाभकारी है । जुखाम के लिए यह अद्वितीय वस्तु है । सोते समय इसे दो चम्मच गरम जल मिलाकर पीना चाहिए । यह पसीना लाकर ज्वर को भी उतार देता है ।

—स्व० श्री० मिश्र बलवन्त शर्मा वैद्यराज ।

(४) बदरी पत्रासव—(कास, श्वासहर)—वेरी के हरे ताजे पत्तों को ४ सेर कुचल कर ३० सेर जल मे २४ घण्टे तक भिगोकर, भवके द्वारा १२ सेर अर्क खीच लेवे । उसे मिट्टी के चिकने पात्र मे भर कर उसमे पुराना गुड २½ सेर, बबूल की छाल आधा सेर, झरबेरी की जड की छाल १० तोला, अदरख, पोस्त के डोडे, अनार के छिलके बहेडा गुठली रहित, कसौदी के बीज, धतूरा मूल, कटेरी मूल, अडूसा मूल और लौंग प्रत्येक ५-५ तोला, धाय के फूल २० तोला इन सबको जौकुट कर मिला दे । पात्र का मुख बन्द कर १ महीने बाद छान कर बोतलो मे भर लेवे । मात्रा—२ से ६ तोला तक । यह हर प्रकार के कास, श्वास को नष्ट करने में अद्वितीय गुणकारी है । इस पर तैल, दही, गुड, खटाई, उर्द की दाल और लाल मिर्च से परहेज करना चाहिए ।

—स्व० श्री मिश्र बलवन्त शर्मा वैद्यराज ।

(५) बदरी त्वकाद्यारिष्ट (कास, श्वासादि नाशक) जगली बेरी की छाल, अपामार्ग, अडूसा, कदली गोभ (केले के स्तभ के मध्य का भाग) प्रत्येक ४-४ सेर जौकुट कर क्वाथ विधि से २६ सेर जल मे पकावे । चौथाई भाग शेष रहने पर छान कर, अगर से धूपित शुद्ध चिकने मटके मे भर ठडा हो जाने पर उसमे गुड ८ सेर, लोटा सज्जी १०तोला, जवाखार ५तोला और नवसादर २½तो० मिला, २० दिन तक सन्धान कर रक्खे । पश्चात् छानकर काम मे लावे । मात्रा—२½ तोला । सर्व प्रकारकी असाध्य पुरानी खासी, श्वास, हिक्का, पाण्डु, कामला आदि रोग शीघ्र ही नष्ट होते हे । खटाई, मिठाई, तैल, लाल मिर्च आदि से परहेज करना चाहिए ।

रसायनाचार्य श्री आर के शर्मा जगराओ

(६) बदरादि पाक [हृद्य तथा रक्तपित्तादि नाशक]— बेर की गुठली की मीगी, त्रिकटु, त्रिफला प्रत्येक का चूर्ण

८-८ तोला, धान की खील ४८ तोला तथा इलायची, दालचीनी, तेजपात ४-४ तोला, बसलोचन ३२ तोला और अम्लवेत १६ तोला इन सबका महीन चूर्ण कर सब चूर्ण से दो गुनी खाड की चाशनी कर उसमे चूर्ण को अच्छी तरह मिलाकर पाक जमा दे या मोदक बना लेवे।

मात्रा—६ माशा प्रात साय बकरी के दूध या गोदुग्ध के साथ सेवन से रक्तपित्त, वमन, राजयक्ष्मा, ज्वर और खासी मे लाभ होता है। यह पाक हृदय के लिये विशेष लाभदायक है। —वैद्य गिरिजाशकर जी, प्रेमी

नोट—हमारे बृहत्पाक सग्रह ग्रन्थ मे इसके अतिरिक्त अन्यान्य उत्तमोत्तम पाक प्रयोगो को देखिये।

बेरबंज (Olea Cuspidate)

पारिजात कुल (Oleaceae) के इस सदैव हरे भरे रहने वाले, मध्यम प्रमाण के वृक्ष की नूतन छाल अति मुलायम, पुरानी होने पर कडी खुरदरी, पत्र—हारसिंगार (पारिजात) या जैतून के पत्र जैसे, पुष्प—कुछ श्वेत वर्ण तथा फल—कलमीबेर जैसे अण्डाकार, कच्ची दशा मे हरे, पकने पर पीत वर्ण के स्निग्ध तैल युक्त होते है।

इसके वृक्ष पश्चिमोत्तर हिमालय, काश्मीर आदि मे २ से ६००० फुट की ऊचाई तक पाये जाते है।

नाम—

बेरबज यह इसका पहाडी गढवाली नाम है। हिन्दी—काऊ, कान, कौ, कौहू, खाऊ आदि, तथा लेटिन मे—ओलिया कुस्पिडेटा कहते है।

गुण धर्म—

इसके फल—पौष्टिक, ऋतुस्राव नियामक, पित्तशामक, यकृद्विकार नाशक तथा गीली खुजली, तृषा, नेत्रदाह, दतशूल आदि मे उपयोगी है।

फलो का तैल—प्रमाथी, उत्तेजक, अप्रिय स्वादवाला, विरेचक, आमशूल सधिवात, जीर्णव्रण आदि मे उपयोगी है।

पत्र और छाल—कडुवे सकोचक एव विषमज्वर मे उपयोगी है।

बेल (Aegle Marmelos)

गुडूच्यादि वर्ग एव जम्बीर कुल (Rutaceae) के २५—३० फुट ऊचे वृक्ष की शाखाये सीधे मोटे तीक्ष्ण १ इञ्च लम्बे काटो से युक्त, पत्र-सयुक्त त्रिपत्रक (यदि इसके ३ से अधिक पत्र सयुक्त कही-कही प्राप्त हो जाते है तो भारतीय कर्मकाण्डी उसे बहुत ही महत्व देते है) गधयुक्त पत्रवृन्त—१—२ इञ्च लम्बा होता है। उष्णकाल के प्रारम्भ मे पत्र झड जाते है। और चैत्र-वैसाख मे क्रम से नवीन पत्र निकलते है।

पुष्प—नूतन पत्तो के आगमन के साथ ही प्राय हरिताभ श्वेत वर्ण के ४-५ पखुडियो वाले, लगभग १ इच तक चौडे पुष्प, मधु समान गधयुक्त आते है। फल—प्रारम्भ मे बहुत छोटे, गोल ३ मे ८ इच व्यास के, बीज रहित, हरिताभ रग के आते है, जो धीरे-धीरे बढकर ग्रीष्म ऋतु मे, उनके भीतर बीजो का पूर्ण विकास होने पर वे शनै शनै पक कर पीत वर्ण के हो जाते है। प्रारम्भ मे जब ये बाल दशा मे रहते है तब उनके ऊपर का आवरण हरे रग का पतला एव भीतर का गूदा हरे-पीले रग का होता है। पकने की दशा मे ऊपरी आवरण कडा तथा भीतर का गूदा लाल पीले रग का मधुर स्वादिष्ट एव सुगन्धयुक्त हो जाता है। तथा गूदे और बीजो मे गोद जैसा पीला चिपकने वाला गाढा रस रहता है। फलोके पकने के समय वृक्ष के सब पत्ते झडकर केवल फल ही फल रह जाते है। बागो मे लगाये हुए वृक्षो के ये फल काफी बडे ½ पाव से लेकर २½ सेर तक वजन के होते है। बीज—अनेक, १०—१५ समूहो मे, बिनौले के सदृश श्वेत रोगो से युक्त एव चिकने तथा रगहीन गोद

से लिपटे रहते है।

इसके वृक्ष प्राय समस्त भारत मे विन्ध्य तथा सतपुडा पर्वताचलो मे नदियो के किनारे बहुतायत से, और बगाल विहार, मध्य भारत, दक्षिण भारत व बर्मा मे भी अधिक पैदा होते है।

नोट न० १—जगली और बागी (वन्य एव ग्राम्य) भेद से इसके वृक्ष दो प्रकार के होते है। जगली के पत्र छोटे फल छोटे अत्यन्त कडे, बीज अधिक तथा अधिक गोंद से लिपटे हुए होते हैं। ये कुछ मादक, स्वाद मे हीक दार एव अप्रिय होते है। इनके वृक्षो मे काटे भी अत्यधिक होते है। बागी के पत्र बड़े तथा फल भी काफी बडे छिलका नरम, अच्छे सुनहरे रग के कम बीज वाले सुस्वादु सुगंधित होते हैं। वृक्षो मे काटे बहुत कम होते है। किसी किसी मे काटे बिलकुल नही होते।

नोट न० २—यह एक पूर्ण भारतीय वृक्ष है। शास्त्र पुराण आदि आर्य एव वैदिक साहित्य मे इसकी बहुत महिमा गाई गयी है ऐसी कि यह एक दिव्य वृक्ष अन्यान्य दिव्य वनस्पतियो के समान पृथ्वी मे गहरी धँसी हुई अपनी जडो से साधारण आहार के अतिरिक्त पारद जैसी धातुओ के अशो को ग्रहण करता रहता है। इसीलिये इसमे भिन्न भिन्न दिव्य गुणो के अतिरिक्त बाह्य स्पष्ट प्रतीत होने वाला दिव्य गुण यह है कि इसके वृक्ष मे लगे हुए पुराने फल वर्षा काल के बाद पुन हरे हो जाते है। तथा इसके पत्र तोडकर सुरक्षित रखे हुए ६ मास तक ज्यो के त्यो बने रहते है एव गुणहीन नही होते।

उक्त दिव्य गुणो के कारण यह बहुत पवित्र एव अशुद्धिनिवारक माना गया है। सूतिकागार के निर्माण मे एव सूतिका के पलग की लकडी बेल की लेने का चरकादि मे विधान है। इसके वृक्ष की छाया शीतल एव आरोग्य-कारक है।

नोट न० ३—चरक के शोथहर, अर्शोघ्न, आस्थापनोपग गणो मे यह लिया गया है। चरक सूत्रस्थान अ २५ मे कहा गया है "बिल्व साग्राहिक दीपनीय वातकफ-प्रशमनानाम्" अर्थात् मल का सग्रह, अग्नि का दीपन

बिल्व (बेल)

AEGLE MARMELOS CORR.
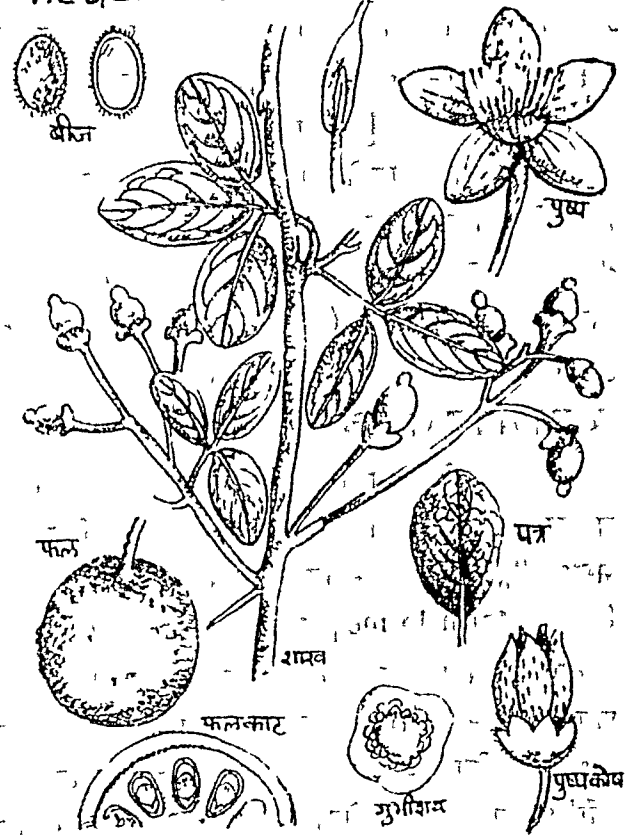
एव वातकफ का पूर्णतया शमन ये सर्व कर्म एक साथ करने वाले द्रव्यो मे बेल श्रेष्ठ है।

सुश्रुत के बृहत्पचमूल, वरुणादि, अम्बष्ठादि गणो मे यह लिया गया है। सुश्रुत ने चि अ. २८ के मेधायुष्कामीय अध्याय मे विशिष्ट पद्धति से ऋग्वेदोक्त श्रीसूक्त के द्वारा बिल्व की आहुती आदि का विधान किया है, जिससे अलक्ष्मी का नाश एव आयुवृद्धि होती है।

नोट न० ४—बाजारो मे प्राय कहीं—कहीं बेलगिरी के साथ कैथ की गिरी का मिश्रण कर दिया जाता है। ध्यान रहे, बेलगिरी मे जैसे बीजो के चारो ओर कुछ पोला सा भाग एव चिपचिपा सा शुष्क गोद रहता है वैसा कैथ की गिरी मे नही रहता।

नाम—

स—बिल्व (रोगान् बिलति भिनत्ति—जो रोगो को

नष्ट करे), शाण्डिल्य (पीडा निवारक), शैलूष (सुन्दर फल), श्रीफल (लक्ष्मीप्रियफल), मालूर (शरीर शोभावर्धक), गन्ध गर्भ [गन्धयुक्त], कण्टकी, सदाफल [फल सदा लगे रहने के कारण], महा कपित्थ [बडे कैथ के समान], ग्रथिल [शाखाये गांठदार होने से]। बाल फल की मज्जा या गिरी को विल्वपेशिका, बिल्व कर्कटी हि—वेल, विल, बील, बोलो, शुष्क गूदे को बेलगिरी, बेलसोठ, बेलकचरी। म—वेल। गु—बीली। व—विल्व, वेल। अ—बील (Beel), बेगाल क्विन्स (Bengal quince)। ले—ईग्ल मार्मेलस।

रासायनिक संगठन—

फल के गूदे मे म्युसिलेज [पिच्छिल द्रव्य], पेक्टिन, शर्करा, उडनशील तैल, तिक्त सत्व, निर्यास, टैनिन तथा भस्म २%होते हैं। इसमे विशेष कार्यकारी द्रव्य मार्मेलोसिन' [Marmelosine] नामक होता है। फल का अत्यन्त महत्वपूर्ण खाद्य-घटक कार्बोहाइड्रेट है जो पके फल मे १६ २% पाया जाता हे। इसके अतिरिक्त इसमे ९७% प्रोटीन, ०७% वसा तथा ७ ६ ग्राम विटामिन 'सी' प्रतिशत ग्राम मे होता है, विशेषत इस फल मे टैनिन का जो तत्व होता है उसके कारण यह विशेष गुणदायक हो जाता है। इसके गूदे मे ९% तथा छिलकेमे २०% टैनिन होताहै। इसके ताजे पत्र से एक विशिष्ट गधयुक्त हरिताभपीत वर्ण का तैल निकाला जाता है। बीजो से भी एक हल्के पीले रग का तैल प्राप्त होता है, जो रेचक गुणधर्म विशिष्ट होता हे। जट, पत्र और छालमे मुख्यत टैनिन की विशेषता होती हे। इसके काण्ट की भस्म मे सोडियम तथा पोटाशियम के लवण, कैल्शियम एव लोह के फास्फेट, कैल्शियम कार्बोनेट, मैगनीशियम कार्बोनेट, सिलिका आदि पाये जाते है।

प्रयोज्याङ्ग—फल, पत्र, मूल, छाल, बीज, फूल।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कषाय, तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, कफवातशामक, रोचक, दीपन, पाचन, हृद्य, रक्तस्तभन, कफघ्न, मूत्र एव तद्गत शर्करा कम करने वाला, कटुपोष्टिक तथा अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, मधुमेह, श्वेतप्रदर अतिरजस्राव, रक्तार्श आदि मे प्रयुक्त होता है।

बाल फल—लघु, तिक्तकषाय, दीपन, पाचन, स्निग्ध, उष्ण तथा शूल, आमवात, सग्रहणी, कफातिसार, वातकफनाशक, आत्र के लिये वल्य है।

तरुण या अर्धपक्व फल—लघु, कटु, कसैलो, उष्ण स्निग्ध, संकोचक, दीपन, पाचन, हृद्य एव कफ वात नाशक हे।

पक्व फल—गुरु, कटु, तिक्त रस युक्त, मधुर रस प्रधान, उष्ण, दाहकारक, मृदुरेचक [किंतु अधिक मात्रा मे लेने से विष्टम्भ कारक] वातानुलोमक, दुर्गन्धयुक्त अर्थात् वायु उत्पन्न करने वाला हृद्य एवं वल्य है।

नोट—प्राय सर्व प्रकार के अन्यान्य फल परिपक्व होने पर ही अधिक गुणशाली होते हैं। किंतु बेल का कच्चा [बाल] फल ही औषधि कर्म मे विशेष प्रभावशाली होता है। यद्यपि वेल की जड मे जितनी त्रिदोषनाशक शक्ति है उतनी फल मे नही होती तथापि जितनी कुछ शक्ति होती है उसके द्वारा ही वह अतिसार एव ग्रहणी आदि विकारो की सन्निपातिक अवस्था मे भी लाभ पहुचाता है। बाल फल के जो ऊपर गुण धर्म कहे गये है, उन्ही गुणो से इसका उपयोग ग्राही कार्यार्थ या मल विसर्जन मे गाढापन लाने के लिये होता है। यह इसका मलावरोधक गुण अन्यान्य ग्राही द्रव्यो जैसा केवल अवरोधक ही न होकर पाचकगुण युक्त होता है। इसके गूदे या गिरी के छोटे-छोटे टुकडे कर धूप मे सुखा लेते है। यह विल्व पेशिका या वेल कचरी विशेष लाभकारी होती है। अतिसार मे यह मल को गाढा करती तथा आतो के क्षोभ या शैथिल्य को दूर कर उसकी सकोच शक्ति को वढाती है। आमातिसार मे यह आम का पाचन कर आत्र शक्ति को वढाती है। रक्तातिसार मे यह दूषित रक्त को शुद्ध कर एव आत्र के क्षोभ को कम कर उसकी संकोच शक्ति को बढाती है। बडी आत्र पर इसका उत्तम प्रभाव होने से यह संग्रहणी विकार मे उत्तम लाभकारी है। इस विकार मे यह ग्रहणी यत्र के शैथिल्य को दूर कर उसकी सकोच शक्ति को वढाती

है तथा यथायोग्य आहार की पाचन क्रिया मे सहायता पहुचाती है। ध्यान रहे उक्त गुण विशेषत कोमल[बाल] फलो की गिरी मे अधिक पाये जाते है तथा कुछ अश मे वे गुण तरुण या अवपके फलो मे भी रहते है, जैसा कि ऊपर तरुण फल के गुण धर्म मे कहा गया है। परिपक्व वेल फल मे कसैलापन, चीकटपन कम हो जाने से उसका उपयोग विशेष लाभदायक नही होता, प्रत्युत वह पचने मे दुर्जर होता है। यद्यपि यह भी ग्राही या मलावरोध अवश्य है, तथापि अपचन को बढाने वाला होने से हिता-वह नही है।

आधुनिक वैज्ञानिको ने सिद्ध किया है, कि वेल फल के गूदे, पत्र एव मूल मे जो रासायनिक तत्व पाये जाते है उनका विशेष प्रभाव आत्र और रक्तवह सस्थान पर पडता है। फल का उतना प्रभाव नूतन अतिसार मे नही होता जितना कि चिरकालीन आमातिसार या रक्तातिसार मे होता है। वेल मे जो लसदार पदार्थ होता है, उसके प्रयोग से ही आंत्र मे स्निग्धता आती तथा उसकी गति नियमित होकर मलावरोध के द्वारा रस का शोषण रक्त मे होता एव वधा हुआ मल आने लगता है।

डा० डीमक का कथन है कि वेल फल बलकारक व रक्तशोधक है। यह मृदु विरेचक एवं उदरशोधक है। दाह की शाति के लिये हरे फल के गूदे को इमली के पत्ते के साथ व्यवहार करना चाहिये। "डा० ग्रीन के मत से पके वेल फल के शर्वत के व्यवहार से उदरामय और अजीर्ण रोग शीघ्र शात हो जाता है। अतिसार और वमन की शाति के लिये कच्चे वेल को आग मे पका कर देना चाहिये। बरफ और मिश्री के साथ पके वेल के शर्वत का उपयोग करने से रक्त शुद्धि होती है।"

डा० घोष का कथन है कि इसके पक्व फल का गूदा मृदुरेचक है, अत स्तब्धता प्रधान[Spastic] एव जीर्ण मलावष्टम्भ मे उपकारी है। उपयोग मे गूदा वैसा ही खाया जा सकता है अथवा शर्वत के रूप मे लिया जा सकता है। शर्वत बनाने के लिये इसके टुकडे कर जल मे मसल छान कर लेना चाहिये। रुचि के लिये अल्प मात्रा मे शक्कर मिलाई जा सकती है। अपक्व फल को किंचित् भून कर या उसके महीन टुकडो का क्वाथ बना कर दिया जावे, तो यह शोषक [astringent] होने से कफातिसार तथा प्रवाहिका मे लाभकारी होता है। पक्व फल उपलेपक एव मृदुरेचन होने से प्रवाहिका के शात हो जाने पर अथवा ग्रहणी विकार की आरभिक अवस्था मे दिया जा सकता है। सम भाग अरारोट के चूर्ण के साथ पक्व फल का चूर्ण मिला कर भी उन्ही रुग्णो को दिया जा सकता है। पक्व फल दुस्साध्य कफज अतिसार तथा जीर्ण प्रवाहिका मे बहुमूल्य औषधि है। आधुनिक चिकित्सा शास्त्र मे इसके अपक्व या अर्ध पक्व फल का द्रवसार [लिक्विड एक्सट्रेक्ट] उक्त रोगो मे ६० से १२० बूदो की मात्रा मे दिया जाता है।"

"डा० रामसुशील सिंह जी ने अपने पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान मे लिखा है कि वेलगिरि का अन्य उपयुक्त औष-धियो के साथ क्वाथ वनाकर देने से श्वेत आव[mucous diarrhoea] एव लाल आव या प्रवाहिका [dysentery मे वहुत लाभ होता है। स्नेहन [demulcent] एव मृदु सारक प्रभाव के लिये पके फल के गूदे का सेवन प्रवा-हिका के रोगोत्तर काल मे वहुत उपयोगी होता है। ऐसे अग्निमाद्य [dyspepsia] के रोगियो मे जिनमे कभी तो कब्ज रहता है और फिर अतिसार होने लगता है तथा यही क्रम बरावर बना रहता है, वेल का सेवन वहुत उपयोगी होता है।"

श्री गगासहाय जी पाण्डेय अपने भावप्रकाश निघण्टु मे लिखते है कि भूना हुआ कच्चा फल या कच्चे फल का सुखाया हुआ गूदा ग्राही एव दीपन होने के कारण अति-सार, रक्तातिसार एव प्रवाहिका मे दिया जाता है। जब ज्वर न हो, रोगी दुर्बल हो तथा पाचन खराब हो गया हो, तब इससे विशेष लाभ होता है। आव, रक्त एव कुथनयुक्त तीव्र प्रवाहिका मे यद्यपि इसके चूर्ण को लाभदायक माना गया है, तथापि इन अवस्थाओ की अपेक्षा जीर्ण विकारो मे इसका गुणकारी प्रभाव स्पष्ट दिखलाई देता है। इसके सेवन के पश्चात् धीरे-धीरे

अतिसार मे रक्त कम होकर मल बंधा हुआ होने लगता है। अधिक दिन लेते रहने मे आम भी कम हो जाती है, तथा बाद मे बिल्कुल नही रहती। जीर्ण आव की शिकायत होने पर इसके साथ बडी सौंफ एव घोडवच मिला क्वाथ बनाकर देते है। रक्तपित्त वाले रोगी को आव होने पर यह विशेप लाभदायक है। अरारूट के साथ इसकी पेया बनाकर देने से आन्त्र को बल प्राप्त होता है। प्रवाहिका मे इसके फल का कल्क, तिल का कल्क दही मलाई तथा घृत के साथ देते है। पित्त एव रक्तातिसार मे इसका गूदा और मुलैठी शर्करा, मधु एव चावल के धोवन के साथ देने से लाभ होता है। इसके गूदे के साथ गुड का प्रयोग आमशूल विवन्ध, कुक्षिरोग तथा रक्तातिसार मे लाभदायक होता है। अत्युग्र ग्रहणी मे इसके गूदे के साथ सोठ एव गुड मिलाकर सेवन करे, तथा आहार मे तक्र का सेवन करे। पुराने विकारो मे इसका मुरब्बा भी लाभकारी होता है। पुराने सुजाक मे ताजा गूदा व कबाब चीनी दूध के साथ देते हैं।

कच्चे फल की शुष्क गिरी को काजी मे भिगोकर सेवन करने से जठराग्नि अत्यन्त प्रदीप्त होती, अरुचि दूर होती, हृदय विकृति दूर होती तथा आमवात नष्ट होती है।

पके फल मे जो शहद जैसा गाढा रस होता है वह मधुर और उष्णवीर्य है।

डा० मुनुद्दीन शरीफ के मत से बेलगिरी का चूर्ण पौष्टिक, अग्निदीपक तथा ज्वरनाशक है। यह अतिसार व रक्तातिसार के सभी रूपो मे उतना उपयोगी एव लाभकारी नही है जितना कि तीव्र मरोडयुक्त अतिसार मे। यह दस्त के साथ गिरने वाले रक्त को बन्द करता, आव को निकाल देता, तथा दस्त होने के समय मे बहुत अन्तर कर देता है। किन्तु यह दस्त के प्रमाण को कम नही कर सकता। अत दस्त के प्रमाण को कम करने के लिये इसे अफीम के साथ देना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह चूर्ण टायफाइड ज्वर, क्षय ज्वर [Hectic fever] या अन्य किसी भी औपधि से न उतरने वाले, हमेशा समान रूप से शरीर मे बने रहने वाले, ज्वर को उतारने मे बहुत उपयोगी है। इस प्रकार के ज्वरो मे जब उष्णता या तापमान बहुत बढा हुआ होता है तब इस चूर्ण को देने मे वह एकदम कम हो जाता है। ऐसे ज्वरों मे इसे ५ से ८ रत्ती तक की मात्रा मे २४ घण्टे मे ४ या ६ बार देना चाहिये। अतिसार के रोग मे इस चूर्ण की मात्रा १० से ३० रत्ती तक की मात्रा मे चौथाई रत्ती अफीम के साथ मिलाकर २४ घण्टे मे ४ से ६ बार देवें।

(१) अतिसार, वमनादि तथा संग्रहणी पर—कहीं-कहीं कच्चे या तरुण (अधपके) बेल की बेलगिरी को बगैर सुखाये ही जल मे उबाल कर शहद मिला अतिसार या प्रवाहिका मे सेवन कराते है।

कभी-कभी कच्चे बेल को आग मे भूनकर खिलाने से अथवा भूने हुए बेल के गूदे मे मिश्री और अर्क गुलाब मिला प्रात खाली पेट सेवन कराने से भी सर्व प्रकार के अतिसारो मे लाभ होता है। अथवा—

बेलगिरी (सुखाई हुई) ५ तोला, श्वेत कत्था २ तोले एकत्र महीन चूर्ण कर उसमे १० तोला मिश्री मिला; १० रत्ती की मात्रा मे दिन मे ५-६ बार के सेवन से सर्व प्रकार के अतिसारो मे उत्तम लाभ होता है।

उक्त प्रयोग मे कोई-कोई बेलगिरी के समभाग कत्था, आम की गुठली, ईसबगोल की भूसी और बादाम की मीगी मिला शक्कर या मिश्री के साथ सेवन कराते है। जीर्णातिसार, आमातिसार, प्रवाहिका आदि पर यह अच्छा कार्य करता है। अथवा—

बेलगिरी, धनिया, सोठ, नागरमोथा व अतीस प्रत्येक ३-३ माशा जौकुट कर आधा सेर जल मे अष्टमांश क्वाथ सिद्ध कर प्रात साय सेवन से भी अतिसार मे पूर्ण लाभ होता है। यह धान्यपचक क्वाथ आम शूल तथा विवन्धयुक्त अतिसारनाशक एव दीपन पाचन है। यदि रोगी की क्षुधा नष्ट हो गई हो, पेट फूला (आध्मान) हो तो इस क्वाथ मे कुडा छाल और इन्द्र जौ थोडा मिला देने से यथेष्ट लाभ होता है। अथवा—

बेलगिरी २० तोला मे १० सेर जल मिलाकर पकावे १ सेर जल शेप रहने पर, छानकर उसमे लगभग आधा सेर तक मिश्री मिला, बोतल मे भर रखे। मात्रा १ या

२ तोला प्रत्येक मात्रा मे भुनी हुई सोठ का चूर्ण ४ रत्ती और अफीम मू ग बरावर मिलाकर सेवन करावे। २ या ३ वार के सेवन से ही लाभ होता हे। सर्व प्रकार के अतिसार दूर होते हे। अथवा आगे विशिष्ट योगो मे विल्वासव देखिये। —स्वानुभूत।

अथवा—वेलगिरी, आम की गुठली, सेमर का गोद (मोचरस), सोठ तथा पोस्त के डोडे समभाग पीस छान कर सबके वरावर शक्कर मिला रक्खें। ६-६ माशा की मात्रा मे ४-४ घटे वाद खिलाकर ऊपर से १० तोला गाय का मट्ठा थोडा नमक मिलाकर पिलावे पथ्य मे दही और खिचडी देवें।

नोट—आगे विशिष्ट योगो मे विल्वादि चूर्ण देखिये। —भा गृ चि।

कफातिसार पर—वेलगिरी, काकडासिगी, नागरमोथा, हरड और सोठ इनका क्वाथ कफातिसारनाशक एव अग्नि व वल की वृद्धि करता हे। —च चि अ १९

ज्वरातिसार पर—वेलगिरी, सुगन्धवाला, चिरायता, गिलोय, धनियां, सोठ, कुडे की छाल और नागरमोथे का क्वाथ लाभकारी है। यह शूल नाशक भी है। —यो र

आमातिसार पर—वेलगिरी और आम की गुठली की गिरी दोनो समभाग एकत्र पीस, मात्रा २ से ४ माशा तक चावल के माड के साथ या शीतल जल के साथ प्रात साय सेवन करावे।

अथवा—दोनो उक्त गिरियो को १-१ तोला लेकर कूट पीसकर ३२ तोला जल मे पकावे। ८ तोला शेष रहने पर छानकर शहद और मिश्री मिला, मात्रा आधा तोला से २ तोला तक आवश्यकतानुसार पिलावे। इससे हैजा या वमनयुक्त अतिसार मे भी लाभ होता हे। —स्वानुभूत

अथवा—एक अधपके (तरुण) वेल को लेकर नीचे पटककर चिटका दे, तथा आग मे भून कर उसमे से ५ तोला गूदे के साथ १ तोला सोठ चूर्ण व २ तोला गुड एकत्र पीस, उसकी ३ मात्रा कर दिन रात मे ३ वार खिलाकर ऊपर से १० तोला तक्र, नमक व भूनी हीग मिलाकर पिलावे। भोजन दही और खिचडी का करे।

अथवा—वेलगिरी और सोठ प्रत्येक २½ तोला, अलसी भूनी चूर्ण की हुई ५ तोला और शक्कर १० तोला सबको कूट छानकर रखे। मात्रा ६ माशा तक ४–४ घटे से ४ वार सेवन करा, ऊपर से गाय का मट्ठा १० तोला मे सेधा नमक १ तोला मिला पिलावे, पथ्य मे दही खिचडी देवे। —भा गृ चि

वमन युक्त अतिसार या विसूचिका पर—वेलगिरी और गिलोय ४-४ माशा एकत्र जौकुट कर २० तोला जल मे चतुर्थाश क्वाथ सिद्ध कर छानकर थोडा-थोडा पिलावे। विकार की विशेष प्रवलता हो, तो इस योग मे जायफल कपूर और छुहारा थोडे प्रमाण मे मिला क्वाथ करे तथा वार-वार थोडा-थोडा पिलाने से विशेष लाभ होता है।

क्षुधा मद हो गई हो, पाचन शक्ति क्षीण हो तो वेलगिरी का चूर्ण, छोटी पिप्पली, वसलोचन व मिश्री २-२ माशा के एकत्र चूर्ण मे अदरख का रस १ तोला तक मिला तथा थोडा जल मिला आग पर पकावे। गाढा हो जाने पर दिन मे ४ वार चटावे। अथवा—

वेलगिरी चूर्ण और अदरख दोनो को पीस थोडी शक्कर व इलायची चूर्ण मिला, तथा थोडा जल मिलाकर पकावे। अवलेह जेसा हो जाने पर वार-वार चटावे। —स्वानुभूत।

हेजे के दिनो मे वेल फल का शर्वत नित्य सेवन करते रहने से हेजे का प्रकोप नही होने पाता।

अथवा—वेलगिरी के चूर्ण को पुराने गुड के साथ पीसकर मटर जैसी गोलिया वना, नित्य ३-४ गोली सेवन करते रहने से हैजे का आक्रमण नही होने पाता।

गर्भवती के वमन या अतिसार पर—वेलगिरी २ तो को चावल के धोवन या माड के साथ पीसकर थोडी मिश्री मिला, दिन मे २–३ वार देने से लाभ होता है। साथ ही ज्वर हो या किसी भी दशा मे इससे लाभ ही होता है। उमे अन्य किसी भी उपद्रवो की सभावना नही रहती। —वृक्ष विज्ञान।

वालातिसार पर—वेलगिरी को सौफ के अर्क मे घिस कर देने से वालक के हरे, पीले, लाल दस्तो की शिकायत दूर होती हे। अथवा—

वेलगिरी व ढाक का गोद एक-एक रत्ती तथा मिश्री दो रत्ती एकत्र थोडे जल के माथ खरल कर मन्द आच पर गाढा कर चटाने मे भी विशेष लाभ होता हे ।
अथवा—

वेलगिरी, सौंठ, जायफल, नागकेशर व वडी इलायची समभाग महीन चूर्णकर खसखस [पोस्त दाना] के क्वाथ मे खरलकर, चना जैसी गोलिया वना, अवस्थानुसार आधी या एक गोली माता के या गाय के दूध मे घिस कर पिलावे ।

दात निकलते समय वच्चो को जो दस्त आने लगते है, पेट मे मरोड होती है, उस दशा मे उपरोक्त योग लाभकारी होते हे । अथवा—

वेलगिरी, सोठ, मरोडफली व आम की गुठली की मिगी एकत्र जल के साथ पीस छानकर पिलाने से भी लाभ होता है । अथवा—

केवल गिरी के एक तोला चूर्ण को १५ तोला जल मे पकाकर दो तोला शेप रहने पर उसमे ६ मा मधु मिला पिलावे ।

यदि रक्तमिश्रित दस्तो की विशेषता हो तो वेलगिरी, अतीस, माजूफल, दूधियावच तथा पाठा समभाग का चूर्ण कर, अवस्थानुसार ½ से एक माशा तक की मात्रा मे एक–दो तोला गौ दुग्ध मे घोलकर पिलावे ।
—स्वानुभूत ।

रक्तातिसार पर—वेलगिरी एक तोला को दस तोला वकरी का दूध और वीस तोला जल मे एकत्र मिला पकावे । दूध मात्र शेप रहने पर छानकर उसमे थोडी मिश्री मिला सेवन कराने मे लाभ होता हे । प्रवाहिका भी दूर होती है ।
अथवा—

गिरी के दो माशा चूर्ण और मुलेठी चूर्ण एक माशा को चावल के दो तोला धोवन मे पीस दो माशा शकर और शहद तीन माशा मिला दिन मे २–३ वार सेवन करावे । पित्तरक्तातिसार नष्ट होता हे । अथवा—

गिरी और धनिया १–१ भाग तथा मिश्री दो भाग का चूर्ण कर ३ से ६ माशा तक ताजे जल मे प्रातःसाय सेवन कराने से उत्तम लाभ होता हे ।

अथवा—गिरी के चूर्ण मे समभाग मिश्री मिला, मात्रा २ से ६ माशा तक शहद के साथ या शर्बत अजुवार या बीज वन्द के लुआव के साथ सेवन करावें ।

अथवा—कच्चे वेल को कडे की आग पर रखे । ऊपर का छिलका विल्कुल काला हो जाने पर भीतर का गूदा निकाल मात्रा १ से २ तोला तक दिन मे तीन बार मिश्री मिला सेवन करावे ।
—स्वानुभूत
अथवा—

वेलगिरी दो तोला को १६ तोला वकरी के दूध और ६४ तोला जल के साथ पकावें । दूध मात्र शेष रहने पर छानकर उसमे मोचरस व इन्द्रजौ का चूर्ण ४–४ रत्ती और मिश्री एक तोला मिला पिलाने से उत्तम लाभ होता है । अथवा—

वेलगिरी, खून खरावा, राल, सौंफ और श्वेत जीरा समभाग चूर्ण वना लेवे । मात्रा–२ से ६ माशा दिन मे १–३ घटे के अन्तर से तक्र या शर्बत अनार के साथ देवे
—सचित्रायुर्वेद

रक्त के साथ पतला पानी जैसा मल होने पर वेलगिरी के २–३ माशा चूर्ण को फाणित [राव], शहद और तैल के साथ भोजन के पूर्व चाटने से शीघ्र ही लाभ होता है ।
—सु. उ अ. ४२

नोट—वेल का मुरब्बा भी अतिसार, रक्तातिसार मे उपयोगी है । मुरब्बा, शर्बत आदि के प्रयोग आगे विशिष्ट प्रयोगो मे देखिये ।

सग्रहणी पर—ग्रहणी विकार की प्रारभिक अवस्था मे विल्व फल का प्रयोग विशेष लाभदायक होता है ।

वेलगिरी चूर्ण एक तोला, सौंठ चूर्ण और पुराना गुड ६–६ माशा एकत्र खरल कर मात्रा–३ मा दिन मे तीन या चार वार तक्र के साथ सेवन करावे तथा रोगी को तक्र पर ही रखे । अन्य भोजन न देवे । अथवा—

वेलगिरी और कुडा छाल दोनो का चूर्ण १–२ तो एकत्र मिला, रात्रि के समय १५ तोला जल मे भिगोकर प्रात इस हिम को मल छानकर पिलाते रहने से भी विशेष लाभ होता हे ।
—स्वानुभूत ।

अथवा—वेल के कच्चे फल को आग मे सेककर, गूदा निकाल कर १ तोला गूदे मे थोडी शक्कर मिलाकर

सेवन करते रहने से भी उत्तम लाभ होता है।

जीर्ण सग्रहणी मे—बडे-बडे पके फलो को भाड मे भुनवाकर उसके गूदे मे थोडी खाड मिला, दिन-रात मे जब-जब भूख लगे यही खाया करे तथा प्यास लगने पर गाय का धारोष्ण दूध पिया करे। शेष सब भोजन और पानी छोड दे। शीघ्र लाभ होता है। —फलाक से

अथवा—बेलगिरी, नागरमोथा, इन्द्र जौ, सुगन्धवाला और मोचरस प्रत्येक १ तोला एकत्र चूर्ण कर, बकरी का दूध १ सेर तथा जल ४ सेर मे मिला पकावे। दूध मात्र शेष रहने पर छानकर, इसे दिन मे ३-४ बार पिलावे। इसी प्रकार तीन दिन तक प्रतिदिन इस योग को तैयार कर पीने से अति प्रवृद्ध एव रक्तयुक्त पुराना ग्रहणी विकार भी नष्ट होता है। —व से

(२) तृषा, वमन, दाह, कोष्ठबद्धता, मन्दाग्नि पर—पके फल के गूदे को शीतल जल मे मसल, छानकर उसमे मिश्री, इलायची, कालीमिर्च, लौंग तथा किंचित कपूर मिला, शर्बत बनाकर पीने से तृषा, वमन एव दाह की निवृत्ति होकर, समस्त शरीर की थकावट दूर होती है। जिन्हे कब्जी की विशेष शिकायत हो, वे इसे भोजन के बाद लेवे।

अथवा—उक्त गूदे को जल मे मसल छानकर उसमे बर्फ और थोडी शक्कर मिला सेवन करने से कोष्ठबद्धता दूर होकर पित्त, दाह एव तृषा शात होती है, मलमूत्र साफ होकर चित्त प्रसन्न हो जाता है।

अथवा—उक्त गूदे को इमली के पानक के साथ थोडी शक्कर मिलाकर या दही के साथ शक्कर मिला पीने से खुलासा दस्त होकर, दाह शात हो जाती है।

नोट—कोष्ठबद्धता के निवारणार्थ सायकाल के समय एक अच्छा पका हुआ बेलफल खाने से भी चाहे जैसा कडा कोठा हो, मुलायम हो जाता है। किंतु वात-प्रधान प्रकृति वालो को, या जिनके कोठे [पक्वाशय] मे पहले से ही अधिक रूक्षता हो, उन्हे इसके खाने से दस्त साफ नही होता, पेट मे आध्मान [अफरा] होता है। ऐसो को चाहिये कि उक्त पके फल के गूदे को मिश्री या खाड मिलाकर खावे, या गूदे को साफकर ऊपर से शक्कर का शर्बत पीवे।

मन्दाग्नि पर—पके फल के गूदे मे शक्कर, सोठ, जीरा, इलायची, काली मिर्च एव किंचित कपूर मिला खूब घोट छानकर पीने से जठराग्नि प्रदीप्त होती तथा आमदोष शमन होकर भोजन मे रुचि बढती है।

(३) बल वीर्य की अशक्ति, बहुमूत्र, रक्तविकार, मस्तिष्क एव स्नायु-सम्बन्धी विकार तथा ज्वर पर—

बलवीर्य की कमजोरी के लिए—बेलगिरी, असगध, और मिश्री समभाग चूर्ण कर उसमे चौथाई भाग उत्तम केशर का चूरा मिलाकर रखे। मात्रा—४ माशा तक, प्रात साय सेवन कर ऊपर से सुखोष्ण दूध पीवे।

अथवा—केवल बेलगिरी के चूर्ण को मिश्री मिले हुए दूध के साथ सेवन करे। इन प्रयोगो के सेवन से रक्ताल्पता, भयकर रोगो से मुक्त होने पर शारीरिक दुर्बलता, वीर्य की कमजोरी आदि दूर होती है।

अथवा—अच्छे पके हुए फल का गूदा १ भाग, गाय का दूध ४ भाग, जल ८ भाग तथा शक्कर १ भाग एकत्र मिला भबके द्वारा अर्क खीच लेवे। मात्रा—२॥ तोला तक नित्य पीने से पित्तदाहादि दोष दूर होकर रक्त शुद्धि तथा बल-वीर्य की वृद्धि होती है।

अथवा—पके फल के गूदे को सुखाकर महीन चूर्ण बना रखे। थोडी मात्रा मे इसका नित्य सेवन करने से शरीर मे पुष्टि आती है तथा दन्तरोग एव आमाशय सम्बन्धी रोगो की वृद्धि नही होने पाती।

रक्त विकारो पर रक्तशुद्धि के लिये—इसका ताजा गूदा या शुष्क गूदे का चूर्ण ३ या ४ तोला तक लेकर समभाग शक्कर मिला नित्य सेवन करे।

बहुमूत्र पर—बेलगिरी १ तोला और सोठ ६ माशा एकत्र जौकुट कर ४० तोला जल मे, अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर सेवन कराते रहने से ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

मस्तिष्क एव स्नायु सम्बन्धी विकारो पर बिल्वादि चूर्ण—बेलगिरी, नागरमोथा, छोटी इलायची, श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, अजवायन, अजमोदा, निशोथ, चित्रक, बिड नमक, असगध, खिरैटी मूल, पिप्पली, बसलोचन व शिलाजीत समभाग चूर्ण करे। मात्रा—१ से २ माशा तक दूध

या काजी के साथ सेवन से मस्तिष्क तथा स्नायु सम्बन्धी रोग (Nervous diseases) शीघ्र ही दूर हो जाते है। पथ्य मे हलके एव शरीर को पुष्ट करने वाले अन्नपान का सेवन करे। इसके विपरीत का परित्याग करना चाहिये।

—भैं० र०

ज्वर पर—जीर्ण ज्वर पर— बेलगिरी और रेंडी की जड जौकुट कर १-१ तोला, गोदुग्ध ४० तोला तथा जल २ सेर एकत्र मिला पकावें। दूध मात्र शेष रहने पर छान कर सेवन करावे। इस बिल्वादि क्षीर पाक के सेवन से ज्वर की हालत मे जो मलद्वार मे कभी कभी असह्य वेदना होती है, वह भी दूर हो जाती है।

—व० से०

शीत ज्वर या व्रणादि से उत्पन्न ज्वर के वेग की शांति के लिए केवल बेलगिरी के चूर्ण को जल के साथ सेवन करावें।

—सकलित

(४) अर्श, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र (सुजाक), वातगुल्म, कान, मरिया का विप, बगल की दुर्गन्ध और अग्निदग्ध पर—

अर्श पर—कहा जाता है कि बेल फल के सेवन से बवासीर पैदा होती है। यह कुछ अश मे ठीक है, किंतु खाड या मिश्री के साथ इसका सेवन पैदा हुई बवासीर को नष्ट कर देता है। बेलगिरी के चूर्ण मे समभाग मिश्री मिला, माशा ८ माशा तक शीतल जल के साथ सेवन कराने से विशेषत रक्तार्श मे शीघ्र लाभ होता है।

अथवा—बेलगिरी के साथ सौंफ और सोंठ मिला क्वाथ बनाकर सेवन कराते है।

प्रदर पर—बेलगिरी, नागकेशर और रसौत समभाग चूर्ण कर लेवें। मात्रा—४ माशा तक चावल के धोवन के साथ सेवन कराने से दोनो प्रकार (श्वेत व रक्त) के प्रदर दूर होते है। यह प्रयोग रक्तार्श तथा रक्तातिसार मे भी लाभकारी है।

—स्वानुभूत

मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) पर—कच्चे फल के गूदे को दूध के [illegible] (कबाब [illegible]) [illegible] २-२ [illegible] दूर होती है तथा जीर्ण मूत्रकृच्छ्र (सुजाक) भी दूर होता है। इस योग मे किंचित यवक्षार (जवाखार) भी मिला सकते है।

—सकलित

वातगुल्म पर—बेलगिरी या कोमल फल के गूदे के साथ गुड मिलाकर सेवन से लाभ होता है। शरीर मे प्रविष्ट हुआ दूषित वात विकार तथा उदर का शैथिल्य भी दूर होता हे।

—व० गु०

बधिरतादि कर्ण विकारो पर—बेलगिरी ५ तोला को गोमूत्र १५ तोले मे पीस उसमे आधा सेर तिल तैल, बकरी का दूध और जल २-२ सेर मिला मद आग पर पकावें। तेल मात्र शेप रहने पर छान कर रख ले। इसे कुछ गरम कर ४-५ बून्द कान मे प्रात साय डालते रहने से बहरापन, कर्णशूल, कर्णस्राव आदि विकार दूर होते है। इस योग से कफज एव वातज कर्ण रोग नष्ट होते है।

—भैं० र०

कर्ण बाधिर्य पर—बेल का ताजा गूदा लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर चौगुने तिल तैल मे पकावे। पकाते समय तेल से चौगुना बकरी का मूत्र भी इसमे मिला देवे। पककर तेल मात्र शेप रहने पर छानकर रख लेवे। नित्य कानो को गोमूत्र से धोकर यही तेल ५-५ बूद डाला करे। जल्दी न करे, जितना पुराना रोग होगा उतना अधिक समय उसके अच्छे होने मे भी लगेगा। इससे कान का बहरापन दूर हो जावेगा।

—भा० गृ० चि०

नोट—बधिरता के साथ ही कर्णनाद भी हो तो उक्त भैं० र० के तेल के प्रयोग के साथ ही साथ सोठ और गुड को जल के साथ महीन पीस कर नस्य लेना हितकारी होता है। इससे कर्णनाद, कानो मे सनसनाहट दूर होगी।

—भैं० र०

कास पर—बेलगिरी का चूर्ण, मिश्री ५-५ तोला, वसलोचन १ तोला एकत्र चूर्ण कर ३ माशे की मात्रा मे दिन मे ३ बार शहद के साथ सेवन से खासी तथा श्वास का फूलना दूर होता है।

मरिया के विष पर—पके फल के गूदे को भर पेट खिलाने से मरिया (मल्ल) के विष को यह अपने मे जज्ब कर लेता है तथा उसका मारक असर नही होने

पाता।

वगल की दुर्गन्ध नाशार्थ—वेलगिरी और हरड सम-भाग एकत्र जल मे पीसकर लेप करने से दुर्गन्ध दूर होती है। —भा भै र

अग्निदग्ध पर—वेल का गूदा पीसकर तिल तैल मे मिलाकर १० दिन रखने के वाद वस्त्र से छान कर सुरक्षित रखें। दग्ध स्थान पर इसे लगाने से तुरन्त शाति प्राप्त होती है। —सकलित

फल का ऊपरी कडा छिलका—यह छिलका ग्राही या सकोचक होता है। इसके महान चूर्ण मे थोडी अफीम मिला उचित मात्रा मे तीव्र अतिसार मे देते हैं।

वमन पर—छिलका ५ भाग तथा गिलोय ४ भाग एकत्र जौकुट कर २ तोला चूर्ण ३२ तोला जल मे पकावे। ८ तोला शेष रहने पर छानकर ठडा हो जाने पर थोडा शहद मिला २-२ घटे से थोडा थोडा पिलाते है। —नाडकर्णी

जू नाशार्थ—पके फल के खापडे (छिलके) को साफ कर कटोरी जैसा वना लेवें। उसमे तिल तेल को थोडा कपूर मिला भर कर ऊपर इसी कटोरी के दूसरे भाग को ढककर मुख मुद्रा कर रखने के वाद उस तेल को सिर पर लगाने से जू आदि कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, वाल साफ रहते हैं।

इस छिलके की धूनी देने से (आग पर जला कर धुवा करने से) मच्छर मक्खी आदि दूपित कीटाणु भाग जाते है। —सकलित

पत्र—वेल के पत्ते सकोचक, पाचक, त्रिदोप विकार नाशक, कफनिसारक, आमशूल निवारक, व्रणशोधक, रोपक, शोथहर, वेदना स्थापन तथा मधुमेह, जलोदर, कामला, ज्वर, नेत्राभिष्यन्द आदि मे उपयोगी है।

फलो की अपेक्षा पत्तो मे पारद के यौगिकाणु की मात्रा अधिक पाई जाती है।

डा देसाई के मतानुसार ताजे पत्तो का स्वरस ज्वर, कफ ज्वर, शोथ, कास आदि कफ विकार एव नेत्राभिष्यन्द मे लाभदायक होता है। इससे दस्त साफ होकर ज्वर हलका पड़ जाता है। अग्निमाद्य से होने वाले श्वास विकार मे कफ निकालने के लिये पत्तो का क्वाथ वनाकर दिया जाता हे। जल शोथ, विवन्ध व कामला मे पत्तो का स्वरस काली मिर्च के साथ दिया जाता है। व्रणो पर तथा शोथयुक्त विकारो मे ताजे पत्तो को पीसकर वाधने से या पत्तो की पुल्टिस वाधने से वहुत लाभ होता है। नेत्राभिष्यन्द मे पत्तो का स्वरस नेत्रो मे डालते है। तथा पत्तो को पीसकर पलको पर लेप करते है।

मधुमेह मे पत्र स्वरस १—२ तोला देने से लाभ होता है। यह शरीर की दुर्गन्ध को भी दूर करता है। ज्वर की सन्निपातिक अवस्था (Delirium) मे पत्तो का गरम पुल्टिस ललाट के ऊपर वाधा जाता है।

वेलपत्र श्री शकर जी के पूजन की एक मुख्य सामग्री है। प्राचीन ऋपिगण योगाभ्यास और समाधि लगाये, विना अन्न—जल के जिस वनस्पति के सहारे ध्यान मग्न रहते थे उसीमे से यह भी एक है। वेलपत्र के सेवन से मलमूत्र कम निकलता है, शरीर की इन्द्रिया एव चचल चित्त की वृत्तिया एकाग्र होती तथा गूढ तत्व विचार की शक्ति जागृत होती है। यज्ञ के शाकल्य मे ये पत्र काम मे लाये जाते है। अग्नि होत्री वेलपत्र और दूध के सयोग से श्वेतवर्ण की भस्म तैयार कर शरीर पर लगाते है।

पत्र स्वरस वालको के लिये रेचक एव कफनाशक है। प्रतिश्याय, कास, श्वास व ज्वर मे उपयोगी है। पार्श्वशूल, शोथादि मे पत्तो से स्वेदन करते है। कृमि विकार मे पत्र रस पिलाते है।

शरीर की दुर्गन्ध नष्ट करने के लिये पत्र रस का लेप करते है। शरीर मे कही भी काटा आदि धसने तथा उसके न निकलने पर, उस स्थान पर पत्र की पुल्टिस वाधने से वह शल्य भीतर ही गलकर नष्ट हो जाता है। तथा कोई विकार भी नही होने पाता।

क्षुधा निवारणार्थ कई साधु सन्यासियो का कथन है कि वेलपत्री को भाग के समान पीस छानकर पीने से वहुत दिनो तक विना अन्न के मनुष्य जीवित रह सकता है। पाचन शक्ति के अनुसार २० तोला से ४० तोला तक इसका सेवन कर लेने से मलमूत्र वहुत कम होता है, तथा शरीर भली भाति स्थिर रह सकता है।

हैजा के प्रतिकारार्थ बेल पत्र का रस १० तोला तक लेकर उसमे थोडा नीबू का रस और मिश्री या शक्कर मिला रोज १ या २ बार पीते रहने से हैजे का आक्रमण सहसा नही हो पाता। पक्वाशय का कार्य ठीक नियमित रूप से चलते रहता है। अग्निमाद्य नही होने पाता।

विशेष दृष्टव्य—बेल पत्र की गन्ध एव रस कसैला होने से यह पित्त के विकारो को दूर करता है। यह शीत वीर्य होने से दाह को शात करते हुए शोथ या सूजन को दूर करता है। जिस ग्रथि शोथ या व्रण मे दाह की विशेषता हो उस पर इसका उपयोग विशेष लाभप्रद होता है। यह क्रमिनाशक है अत इसका महीन कल्क कर क्रमियुक्त स्थान पर लेप करने से सब क्रमि नष्ट होकर पुन वहा नही पैदा होते। किसी भी जख्म पर इसे बाधने से या लेप करने से मक्खियां, सूक्ष्मजन्तु आदि उसके पास नही आने पाते, तथा वह शीघ्र ठीक हो जाता है।

पत्र रस निकालने की विधि—बेलपत्र का रस केवल आषाढ व श्रावण मास मे ही, थोडा जल का छीटा देकर पीसकर निचोडने से सरलता से निकलता है। अन्य ऋतुओ मे रस निकालना हो, तो ताजे पत्तो को सिलपर पीसकर, गोला सा बना उस पर बड के पत्तो को लपेट कर, कपड मिट्टी कर आग की भूभल मे डाल दे। ऊपर की मिट्टी लाल हो जाने पर उसे निकाल कर, ठडा होने पर ऊपर की मिट्टी, व बड के पत्तो को दूर कर, उस गोले को कपडे मे रख बलपूर्वक दबाकर रस निकाल लेते है।

[१] मधुमेह पर—ताजे पत्तो को पीसकर इसके ५ तोला कल्क मे २½ तोला असली शहद मिला, वस्त्र मे रखकर अच्छी तरह निचोडने से जो रस निकले उसे पिलावे। इस प्रकार दिन मे २ या ३ बार पिलाने से मूत्र मे मीठा आना बन्द होता तथा इस रोग के कारण शरीर पर होने वाले व्रण या फुसिया शीघ्र ही सूख जाती है।

पत्तो को जल के साथ पीसकर या उक्त पुटपाक विधि से निकाले हुये १ तोला से लगभग ५ तोला तक रस मे अर्ध भाग असली शहद मिला सेवन करावे।

रोगी को चना, गुड, शक्कर, आलू, दही और चावल नही खाना चाहिये। केवडा के इत्र की गध नही लेनी चाहिये। नीबू, सतरा आदि फल यथेष्ट सेवन करे, किंतु बहुत मीठे फलो को नही। काले जामुनो का खाना विशेष हितकारी है। मक्खन निकाला हुआ दूध ले सकते है। उसे मीठा करना हो, तो शुद्ध मधु या शुगर का सत्व [सेक्रीन] मिला लेवे। चोकर समेत मोटे आटे की रोटी जौ के सत्तू, जौ की खीले, आवले, अदरख की चटनी लेवे। भोजन की मात्रा थोडी व खूब चबाकर खावे। आगे विशिष्ट योगो मे बिल्व पत्रासव का भी योग उत्तम है। —स्वानुभूत।

कोई-कोई पत्र रस की मात्रा १ तोला [बिना शहद मिलाये] नित्य प्रात पिलाते है। कुछ दिनो मे मूत्र मे शक्कर आना धीरे-धीरे कम होकर अन्त मे बिलकुल बन्द हो जाता है। जगलनी जडी बूटी के गुजराती लेखक का कथन है कि मधुमेह के एक भयकर केश मे प्रतिदिन प्रात साय दो बार पत्र रस के सेवन कराने से दो महीने मे रोगी को बहुत उत्तम लाभ हुआ।

बबई के स्व वैद्य श्री अप्पा शास्त्री साठे [आयुर्वेद पत्र के सम्पादक] का कथन है कि मधुमेह के बहुत से रोगियो को उन्होने बेलपत्र का रस सेवन करा आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की। वे बेल के १५० पत्रो को पिसवाकर थोडा जल मिला रस निचोड कर प्रात साय पिलाते थे। अथवा १५० पत्तो को पिसवाकर गोली बना जल मे घोलवाकर प्रात पिलाते, तथा इसी प्रकार शाम को पिलाते थे। लघन, वमन, विरेचन करवाते तथा शमन दीपन औषधि देते। पथ्य मे पुराना अन्न, शाठी चावल, कगुनी के चावल, जौ, समा, मोठ, गेहू, कुलथी, मूग, तिल, पुराना मद्य, गधी व भैस का मूत्र, परवल, करेला, ककोडा, लहसन, कच्चा केला, गोखरू पत्र का शाक, चूहाकानी, गिलोय, त्रिफला, कमलकन्द, कमलबीज खजूर, तथा कडवे पदार्थ, हाथी और घोडे पर बैठना, खूब भ्रमण करना एव व्यायाम करना आदि।

अपथ्य—मूत्र वेग को रोकना, धूम्रपान, पसीना निकालना, रक्तस्राव, बहुत समय तक उकडू बैठना, दिन मे सोना, नवीन अन्न, आनूप देशीय [जलसमीपवर्ती]

जीवो का मास, पिष्टान्न [पिट्ठी के पदार्थ] मैथुन, तैल, तक्र, दही, गुड, घृत, ईख, मिठाई, खटाई तथा समस्त कफकारक पदार्थ । इस प्रकार के पथ्यापथ्य का पालन रोगी से करवाते थे ।

निम्नाङ्कित योग मधुमेह के नाशार्थ बहुत उत्तम सिद्ध हुए थे ।

बेल पत्र, हल्दी, गिलोय, हरड, बहेडा और आमला ६-६ माशा सबको कूट कर १० तोला जल मे रात्रि के समय मिट्टी के पात्र मे भिगोकर प्रात खूब मसल छानकर इसकी आधी मात्रा प्रात तथा शेष अर्ध मात्रा शाम को बसतकुसुमाकर रस की मात्रा के साथ सेवन करावें ।

—कविराज महेन्द्रनाथ पाडेय [मधुमेह उपचार]

बेल के कोमल पत्र २ तोला को पीसकर स्वरस निकाल आवश्यक ही समझा जाय तो उसमे २-३ नग मुनक्का व कालीमिर्च १ नग पीसकर मिला प्रात साय लगातार २-३ महीने तक सेवन से यह रोग नष्ट हो जाता है । आयुर्वेदी तथा एलोपैथी के समन्वयवादी चिकित्सक बिल्व पत्र स्वरस प्रयोग के साथ-साथ 'इन्सुलीन' के इन्जेक्शन भी देते रहना उत्तम समझते है। केवल इस इन्जेक्शन से पेशाब मे शक्कर की मात्रा तो घटजाती है किंतु रोग पुन धर दबाता है । अतएव दोनो को साथ साथ चलाने मे स्थाई लाभ होते देखा गया है। कुछ चिकित्सक बिल्व पत्र स्वरस के साथ गुडमार स्वरस भी मिलाकर देना उत्तम समझते है ।

—प्रोफेसर श्री राधाकृष्ण पाराशर आयुर्वेदाचार्य

बेल पत्र और नीमपत्र १०-१० नग तथा तुलसीपत्र ५ नग इनको पीस कर गोली बना प्रात नित्य जल के साथ लेते रहे ।

नोट—उक्त किसी भी प्रयोग से लाभ होता है, किंतु पथ्यापथ्य का पालन आवश्यक है ।

[२] दाह, तृषा, अम्ल पित्त, अजीर्ण सिरदर्द, अर्श-यकृत शूलादि पर—दाहपर—बेल पत्र १ या २ तोला को २० तोला जल मे ३ घण्टे तक डुबोकर रखे । प्रति २ घण्टे पर २-२ तोला वही जल पिलावे । आन्तरिक दाह शात होता है ।

विशेष गरमी के कारण या पारद युक्त [कच्चो रसायन] औषधि के सेवन से दाह हो, कठ मे जलन हो, मुखपाक हो तो बेल पत्र का अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर मिश्री मिला प्रात साय सेवन करावे तथा बेल पत्र पीस कर जल मिला दिन मे ३-४ बार कुल्ले करावे ।

मस्तिष्क की दाह पर—पित्त की कुपितावस्था मे रक्त के उष्ण हो जाने से यदि यह दाह तो बेल पत्र पीसकर मोटा लेप करने से लाभ होता है। यह लेप वात की तीव्रता को भी दूर करता है। प्रसूति के बाद स्त्री के मस्तक मे जो वात की तीता होती है, अथवा जो स्त्री परिपूर्ण गर्भावस्था के पूर्व ही प्रसूत होती है उसके मस्तक मे कभी२ वात की तीव्रता के कारण सिर भारी हो जाता हे । आखो मे अधेरा छाजाना, चक्कर आजाना, दाह, प्रलाप, बेहोशी आदि लक्षण होते है। इसे नन्दा वायु का विकार कहते हे ।ऐसी अवस्था मे भी उक्त प्रकार के पत्र लेप से दोष शमन होकर रोगी को उत्तम निद्रा आती है ।

'पित्त की कुपितावस्था मे कोमल पत्र की चटनी बना कर खिलाने से भी शाति प्राप्ति होती है, पाचन क्रिया भी ठीक होती है । पत्तो की धनिया, जीरा तथा किंचित सेधा नमक मिला कर चटनी बनाते है। उक्त प्रकार से पत्रो को थोडे जल के साथ पीसकर कपाल पर मोटा लेप करने से प्रलापकी प्रवृति नही होती। तृषा की विशेषता हो तो पत्र स्वरस ३ माशा मे मधु ६ माशा मिला कर ३-३ घण्टे से चटावे ।

अम्लपित्त के कारण गले मे, छाती मे जलन हो तो पत्रो को जल के साथ पीस छान कर मात्रा २ तोला तक थोडी मिश्री मिला, दिन मे ३-४ बार पिलाने से शीघ्र लाभ होता है ।

अजीर्ण पर पत्र स्वरस १ तोला मे काली मिर्च सेधा नमक १-१ माशा का चूर्ण मिलाकर [यह १ मात्रा है] प्रतिदिन ३ बार सेवन करे ।

सिर दर्द पर—पत्र स्वरस से कपडे को तर कर उसकी

पट्टी सिर पर रखते हैं। सूखने पर पुन स्वरस से भिगो लेते है ।

अर्श पर—खूनी बवासीर पर तन्त्र प्रयोग—

शनिवार के दिन बेल पत्र की २-४ टहनी तोडकर उस समय कमर मे बाधे, जब खून गिर रहा हो। शीघ्र ही रक्तस्राव होना बन्द हो जायेगा। भविष्य मे कदापि न होगा। अर्थात् रोग निमूल हो जायगा।

—डा० नरेन्द्रसिंह नेगी की गुप्त योग रत्नावली से।

शूल पर—यकृत शूल हो तो-पत्र स्वरस १ तोला मे सेंधा नमक १ माशा मिलाकर दिन मे ३ वार पिलावे।

उदर शूल हो तो पत्र १ तोला के साथ कालीमिर्च ७ नग पीसकर, मिश्री १ तोला मिला, शर्बत बनाकर दिन मे ३ वार पिलावे।

हृदय शूल हो तो—पत्र स्वरस १ तोला मे गोघृत आधा तोला मिला चटावे।

[३] पाडु, कामला, जलोदर, धातुदौर्बल्यादि वीर्य विकार तथा प्रवाहिका पर—ताजे कोमल पत्रो के ढाई से ५ तोला तक रस मे कालीमिर्च का चूर्ण १ माशा तक मिला प्रात साय सेवन करावे। इससे पाडु रोग व कामला मे लाभ होता है। रोगी को शोथ भी हो तो पत्र रस को गर्म कर लेप करे। या पत्रो को जल मे पका कर वफारा देने से पीडायुक्त शोथ दूर होती है। इस उपचार से कामला, त्रिदोषज शोथ, मलावरोध व अर्श मे भी लाभ होता है। —व से।

जलोदर पर—ताजे पत्रो के ढाई से ५ तोला तक रस मे छोटी पीपली का चूर्ण १ या डेढ माशा मिला पिलावे। इस प्रकार प्रात साय सेवन कराने से लाभ होता है।

धातु दौर्वल्य पर—पत्र चूर्ण ३ माशा की मात्रा मे थोडा शहद मिला प्रात साय प्रतिदिन चटावे।

अथवा—नित्य नियमित रूप से पत्र स्वरस मे अथवा पत्रो की चाय मे जीरा चूर्ण और दूध मिलाकर पीते रहने से धातु दुर्बलता दूर होकर शरीर सशक्त बना रहता है। पत्र स्वरस २ से ५ तोला तक लेकर उसमे श्वेत जीरा चूर्ण ६ माशा तथा मिश्री १ तोला और थोडा दूध पीवे। २१ दिन तक नित्य एक वार सेवन से लाभ होकर शारीरिक शैथिल्य, पित्त की व्यग्रता, स्मरण शक्ति की न्यूनता एव निद्रानाशादि विकृतिया दूर होती है।

ध्वजभग पर—बेल पत्र १५ नग के साथ वादाम की मीगी २ नग मिला कर पीस छानकर दूध और मिश्री मिला शर्बत बना प्रात साय पावे।

वीर्य स्राव या स्वप्नदोष पर—बेल पत्र, धनिया और सौफ सम भाग को कूट कर १ या २ तोला चूर्ण १० तो० जल मे भिगो कर प्रात मल छान कर पिलावे। अथवा उसके कोमल पत्र ११ नग और सौफ ३ माशा दोनो को पीस छानकर प्रात नित्य पिलावे। अथवा केवल इसी के शुष्क पत्रो के चूर्ण मे समभाग खाड मिलाकर रखलेवे। मात्रा ६ माशा तक प्रात साय ताजे जल के साथ सेवन करावे। इससे प्रमेह एव प्रदर मे भी लाभ होता है।

प्रवाहिका मे—पत्र स्वरस १ तोला मे ३ माशा मधु मिलाकर प्रति ३ घण्टे के अन्तर से चटाते है।

[४] मूत्र, मूत्रकृच्छ्र, छोटी छोटी लडकियो का प्रदर, ज्वर, शोथादि पर—

कास पर—बेलपत्रो को आग पर तवे मे रख जला ले। फिर पीस छान कर १-२ माशा की मात्रा मे शहद के साथ दिन मे ३ वार चटावे। इससे दुर्गन्धित कफयुक्त कास, वात पित्त जन्य कास एव कुक्कुर कास मे भी लाभ होता है।

मूत्रकृच्छ्र पर—कोमल ताजे पत्र ६ माशे, श्वेत जीरा ३ माशा और मिश्री ६ माशे एकत्र पीस कर कल्क को खाकर ऊपर से जल पीने से ६ या ७ दिन मे पूर्ण लाभ होता है। रोगी की अवस्थानुसार उक्त मात्रा मे न्यूनाधिकता कर सकते है। इससे मूत्र मे जलन होना, मूत्र अत्यल्प होना, तथा मूत्र के साथ वीर्य का जाना आदि विकार दूर होते है।

छोटी लडकियो का प्रदर—लडकियो को कृमिदोष के कारण कभी-कभी प्रदर जैसा विकार होता है, योनिमार्ग से लसिका स्राव होता है ऐसी अवस्था मे बेल पत्र रस को शहद के साथ दोनो समय सेवन कराने से शीघ्र लाभ

होता है ।

ज्वर पर—विशेषत कफवात ज्वर अथवा जिस ज्वर मे यकृत की दशा ठीक न हो, या विषम ज्वर की अवस्था मे बेल का अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर, उसमे मधु मिला प्रात साय पिलावे । आन्त्र ज्वर [टायफाईड] मे तथा सतत ज्वर मे भी इससे लाभ होता है ।

तीव्र ज्वर की प्रलापावस्था मे पत्तो की पुल्टिस बना रोगी के मस्तक पर रखते है । उक्त क्वाथ ग्रन्थिज्वर या प्लेग की हालत मे पिलाने से प्लेग का विष दूर होकर आराम पहु चता है । गिल्टी पर इसकी पुल्टिस बाधते है ।

कफ प्रकोप की अवस्था मे या तीव्र प्रतिश्याय [जुखाम] की दशा मे, जब छाती कफ से भरी हो, तो पत्तो को पीस, गरम कर छाती पर लेप करने या पुल्टिस जैसा बनाकर बाधने से लाभ होता है । साथ मे उक्त क्वाथ भी पिलावे । इससे सूखी खासी भी दूर होती है ।

छोटे बालको के ज्वर मे यदि कफ की विशेषता हो, दस्त साफ न होता हो तो पत्तो का अर्क या स्वरस निकाल कर शहद मिला बार-बार चटावे । ज्वर की साघातिक हालत मे या उन्माद की दशा मे रोगी को बेल पत्र से ढक देने से विशेष लाभ होता है ।

शोथादि पर—बेल पत्र के रस को छानकर [२ से ३ या ४ तोला] कालीमिर्च चूर्ण [३ माशा तक] मिलाकर पिलाने से त्रिदोषज शोथ, मलावरोध, अर्श और कामला मे लाभ होता है । —व० से०

[५] व्रण, गलगण्ड, नारू, कर्ण विकार, नेत्र विकार, घृत शुद्धि आदि—व्रण पर पत्तो को बिना जल के पीसकर टिकिया बना बाधने से लाभ होता है। गहरे से गहरा घाव भी बिना पके ठीक होता है । दूषित व्रण भी शीघ्र ठीक होता है । अथवा–पत्तो को पीस गरम कर पुल्टिस जैसा बना व्रण या फोडो पर बाधने से वे शीघ्र दुरुस्त होते है । तथा पत्तो को पानी मे पकाकर उस पानी से उनको धोना चाहिए, वे शीघ्र ही शुद्ध होकर भर जाते है । मासार्बुद या कैंसर अथवा कार्बन्कल नामक भयकर जहरीले व्रणो के सुधार लिये उक्त प्रकार से पुल्टिस एव व्रण प्रक्षालन के साथ ही साथ नित्य दिन मे ३ बार पत्र रस मात्रा २½ तोला सेवन कराते रहने से भीतर की अशुद्धि दूर होकर कुछ दिनो मे पूर्ण लाभ होता है । ऊपर मधुमेह के विषय मे जो पथ्यापथ्य कहा गया है उसका पालन करना आवश्यक है । एक रोगी को इस प्रकार का दूषित व्रण गर्दन पर पीछे की ओर हुआ था, कई बार डाक्टरो ने आपरेशन एव मलहम पट्टी आदि किया किन्तु वह बार बार अशुद्ध पूय एव रक्त से पूय शोथ युक्त हो जाया करता था । अन्त मे उसे उक्त उपचार से ही ३२ दिन मे पूर्ण लाभ हुआ ।

गलगण्ड या गण्डमाला या अपची पर भी उक्त प्रयोग से पूर्ण लाभ होता है । उक्त प्रकार से पुल्टिस बना बाधना चाहिए । अथवा इसके कोमल पत्तो को पीस उसमे थोडा शुद्ध घी मिला आग पर गरम कर टिकिये बनाकर गडमाला की ग्रन्थियो पर बाधते रहे । इसको नित्य दिन मे दो बार बाधने से कुछ दिनो मे अवश्य लाभ होता है । श्लीपद मे पत्तो का लेप और उक्त उपचार लाभकारी है ।

चोट, मोचादि पर—उक्त प्रकार से पुल्टिस बाधे अथवा पत्र रस मे थोडा गुड मिला गरम कर गाढा प्रलेप करे । यदि चोट के कारण जख्म हो तो पत्र रस मे कपास का फाया तर कर दिन मे २-३ बार रखा करे । तथा थोडा थोडा पत्र रस शहद मिलाकर पिलावे ।

किसी कीडे के काटने से जलन एव शोथ हो तो दश स्थान पर पत्तो के ताजे रस को बार बार लगाने से शाति होती है । अग्निदग्ध पर भी इस पत्र रस के लगाने से शाति प्राप्त होती है ।

शरीर के किसी स्थान मे सुई, कीलादि घुस गयी हो तो उस स्थान पर डठल निकाले हुए पत्तो को पीस पुल्टिस बनाकर कुछ दिन बाधते रहने से वह शल्य भीतर ही गल जाता है । नित्य २-३ बार उसे बाधे । एक बार बाधने के बाद लगभग २ घटे तक बधी रहे, फिर उसे हटाकर २ घण्टे बाद पुन बाधना चाहिये ।

चेचक या माता की बीमारी मे जब शरीर मे अत्यन्त दाह एव बेचैनी हो तो पत्र रस मे मिश्री मिला पिलाने से तथा बेल पत्रो का पखा बना कर हवा करने से रोगी को विशेष शाति मिलती है ।

नारू या नहरुआ पर—पत्तो को जल के साथ पीस, लगभग ३ तोला कल्क मे कपूर ६ माशा मिला अच्छी तरह घोटकर टिकिया सी बना नारू पर रख ऊपर से वस्त्र की पट्टी बाध देवें। प्रतिदिन ताजी टिकिया बनाकर बाधने से ३ या ४ दिन मे ही लाभ होता है।

नेत्र विकार पर—आखो मे पीडा, शोथ लाली हुये अधिक कीच निकलती हो तो पत्तो को पीस कुछ गरमकर पुल्टिस जैसी बना आखो पर बाधने मे लाभ होता है। साथ ही साथ पत्तो के स्वच्छ रस को आख के अन्दर भी डालते रहना चाहिए।

माता [चेचक] के कारण नेत्र ज्योति नष्ट या कम होगई हो तो पत्र-स्वरस १-१ या २-२ बून्दें अन्दर टपकाते रहने से विशेष लाभ होता है।

नेत्र के शोथ, शूल, अभिष्यन्द [आखे आना], अधिमन्थ [अभिष्यन्दजन्य नेत्र रोग Acute orbital Cellulitis] अश्रुस्राव, लालिमा आदि विकारो पर—चक्रदत्त का निम्न योग उत्तम लाभदायक है—अच्छी तरह छना हुआ पत्र रस [४ माशा] मे सेंधा नमक [२ रत्ती] और गौघृत [४ बून्द] मिला, शुद्ध छोटे से ताम्र पात्र मे डालकर एक बडी कौडी से तब तक मर्दन करें [घोटते रहे] जब तक वह गाढा न हो जावे। गाढा हो जाने पर उसी ताम्रपात्र के मध्य भाग मे उसे एकत्र कर गाय के गोबर के उपले की धूम्रयुक्त धीमी आग मे धूपित करे। जब वह रस काला हो जाय तब उसे निकालकर डिबिया मे भर रखें। इसे स्त्री के दूध [या गौ दुग्ध] मे मिला पतला कर आखो मे १-२ बून्द, नित्य दो बार डालना चाहिए।

अथवा—भैषज्यरत्नावली का निम्न प्रयोग भी उक्त विकारो पर उत्तम है—पत्र स्वरस के साथ समभाग काजी और सरसो का तेल तथा थोडा सेंधा नमक मिला ताम्र-पात्र मे तावे की मूसली से खूब घोटकर रख ले। इसे आखो मे लगाने से भी नेत्रस्रावादि विकारो मे लाभ होता है। —स्वलिखित एव प्रकाशित लेख से

नेत्र पाक एव नेत्रशूल पर—बेल पत्र और तुलसी पत्र रस १-१ भाग तथा स्त्री का दूध दो भाग एकत्र कासे की थाली मे नागरबेल [ताम्बूल] के पान के साथ तावे की मूसली से [नीम या किसी अन्य लकडी के घोटे मे ताम्र पत्र लगवाकर उससे] घोटे। कज्जल जैसा हो जाने पर निकाल कर सुरक्षित रखे। इसे लगाने से लाभ होता है।
—भा भै र

रतौंधी पर—ताजे बेल पत्र २ तोला को ७ दाने काली मिरच के साथ महीन पीस १० तोला जल मे छान कर उसमे १॥ तोला मिश्री या शक्कर मिला पीवें। प्रात साय तथा साथ ही बेल पत्रो को तोड मरोड कर [कुचल कर] रात्रि के समय किसी पत्थर या काच के प्याले मे जल डालकर भिगोकर रखे। प्रात उससे आखो को धोते रहे। शीघ्र ही लाभ होगा, आखो की ज्योति भी बढेगी। गरमी के दिनो मे ठण्डे जल से धोवें तथा शीतकाल मे जल को गरम कर धोना चाहिये। अथवा—

बेल पत्र रस १ तोला, गोघृत ६ माशा और कपूर १ माशा एकत्र ताम्र पात्र मे, तावे की कटोरी से खूब रगडे, काला अजन बन जावेगा। इसे आखो मे लगाया करें। साथ ही नित्य प्रात साय गोमूत्र मे आखो को धोया करे।
—भा गृ चि

कर्ण विकार पर—बेल के कोमल पत्तो को किसी निरोगी गाय के मूत्र मे पीस लेवें। जितना यह कल्क हो उससे ४ गुना तिल तेल तथा तेल मे ४ गुना बकरी का दूध मिला कर मन्द आच पर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छान कर रख लें। इस तेल को नित्य कानो मे डालते रहने से बहरापन, सनसनाहट [कर्णनाद], कानो की खुदकी, खुजली आदि दूर होती है।

बधिरता विशेष हो तो उक्त प्रयोग के साथ ही साथ निम्न घृत का भी सेवन करें—

गोघृत १ सेर मे बेल पत्र रस तथा अनार पत्र रस १-१ सेर मिलाकर मद आग पर पकावे। घी मात्र शेष रहने पर छान कर रखले। मात्रा—२ तोला तक गोदुग्ध व मिश्री मिलाकर सेवन करते रहे।

घृत शुद्धि—पुराने एव दुर्गन्धित घृत को सुधारने के लिये जितना घी का वजन हो उसका चौथाई हिस्सा उसमे दही तथा दही से चौथाई वजन के बेल के ताजे

पत्तो की पिसी हुई लुगदी मिला कर मन्द आच पर पकावे। जब घृत कडकड़ाने लगे तब नीचे उतार ठण्डा कर छानकर मिट्टी की बरनी मे भर लेवे। यह ताजे घी के समान सुगन्धित व स्वादिष्ट होजाता है।

अथवा—१ सेर पुराने दुर्गन्धित घृत मे ८-१० वेल पत्र मिलाकर आग पर गरम कर कडकड़ा लेने से भी उसका सुधार हो जाता है। —सकलित

मूल और छाल—बेल वृक्ष की जड भूमि मे बहुत गहरी जाती है तथा मजबूत भी अधिक होती है। जड के ऊपर की छाल पीताभ भूरे रङ्ग की तथा भीतर से श्वेत होती है। ताजी जड को चीरने से एक पतला रस निकलता है, जो थोडी देर मे गाढा व पीला हो जाता है।

गुण धर्म मे—यह लघु, मधुर, वमन, शूल, त्रिदोष, नाडी तन्तुओ के लिये शामक, कुछ नशा पैदा करने वाली, तथा ज्वर, अग्निमाद्य, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी, उदर शूल, मूत्रकृच्छ्र, वातव्याधि, आक्षेपक, उन्माद, हृद्दौर्बल्य, अनिद्रा आदि मे प्रयुक्त होती है।

मूल एव छाल मे जो एक तीव्र उद्वेजक सुगन्धित द्रव्य होता है उसका विशेष महत्वपूर्ण एव अनेक रोगो पर अत्यन्त उपयोगी गुण यह है कि वह दाह या किसी प्रकार के क्षोभ को उत्पन्न न करते हुए, शरीरान्तर्गत वातनाडियो एव स्नायुतन्तुओ को उचित उत्तेजना देता है; स्रोतसो को साफ करते हुए, उनकी शक्ति को बनाये रखता है तथा और भी एक महत्वपूर्ण गुण यह है कि यदि शरीर के किसी भाग मे जहरीला या सड़ान पैदा करने वाला कोई द्रव्य उत्पन्न होगया हो तो उसे निकाल बाहर करता है, एव उस भाग को सडान से बचाता है। शास्त्रीय भाषा मे उक्त त्रिविध कार्यो को ही त्रिदोषनाशक कहा जाता है।

जिस द्रव्य मे, स्रोतसो का या शरीरान्तर्गत दूषित द्रव्यो का संशोधन करना; वेदना या किसी प्रकार का क्षोभ न करते हुए ठीक-ठीक उत्सर्जन कार्य को करना, तथा सडान क्रिया का प्रतिबन्ध करना ये तीन गुण मुख्यत हो वह द्रव्य सर्व सामान्यत किसी भी रोग पर औषध रूप मे उपयुक्त हो सकता है। कारण शरीर द्रव्यो के दूषित या विषयुक्त हो जाने, या स्रोतसो के अवरुद्ध हो जाने, या अभिसरण अथवा उत्सर्जन क्रिया ठीक योग्य प्रकार मे न होने से ही प्राय रोगोत्पत्ति हुआ करती है।

वेल मूल मे उन सब रोगोत्पत्तिकारक कारणो को नष्ट करने का गुण धर्म पाया जाता है। और विशेषत सन्निपातक स्वरूप के विकारों मे [उक्त सब लक्षणो का अस्तित्व होने से] बिल्व मूल विशेष लाभदायक होता है। यही कार्य करने वाले अन्यान्य औषधि द्रव्यो की अपेक्षा इसमे यह विशेषता है कि यह दाहक या क्षोभक न होते हुये अपना कार्य सुचारु रूप से करता है।

बिल्व मूल के गुणो के समान ही गुणयुक्त, या उसके गुणो के सहायभूत टेटू [स्योनाक] मूलादि दशमूलों के मिश्रण में त्रिदोषनाशक गुण इसी तत्वानुसार है। उनमे से वेल, अरणी [अग्निमंथ] और टेटू इन तीनो के मूलो में यह गुण विशेष प्रमाण मे पाया जाता है। दशमूलान्तर्गत इन तीन पौधो के मूल विशेष महत्व के है।

प्राय केवल वेल मूल के उपयोग करने का प्रचार नहीं है। इसके साथ, इसके ही समान गुणकारी अन्य द्रव्यो का एकत्र मिश्रण किया जाता है। दशमूल सेवन कराने का प्राय सर्वत्र विशेष प्रचार है। किन्तु खेद है कि वातविकार और सूतिका विकारो पर दशमूल का जितना व्यवहार किया जाता है, उतना क्षय रोग तथा सन्निपात ज्वर पर नही किया जाता। रूढि के गुलाम बनकर रहना हमे योग्य नही। इन विकारो पर भी धडल्ले के साथ इसका उपयोग अवश्य करना चाहिये।

हमारा अनुभव है, कि क्षय रोग, सन्निपात ज्वर तथा दाहरहित शोथ एवं त्वग्रोगो पर बेल मूल या दशमूल का उपयोग उत्तम लाभदायक होता है। सन्निपात ज्वर मे ज्वर चिकित्सा के तत्वानुसार योग्य अवस्था होने पर दशमूल अथवा केवल वेल मूल के क्वाथ का उपयोग विशेष लाभप्रद है। तथा क्षय रोग मे प्रतिबन्ध या प्रतिकार की दृष्टि से दशमूल क्वाथ उत्तम लाभकारी है।

[६] वात विकार, कोष्ठबद्धता, धातुक्षीणता व शोथ पर—

मासपेशी तथा संधियो मे स्रोतसो का अवरोध होने

एव उत्सर्जन क्रिया के कम हो जाने से जो आमवात, संधिवात जैसे विकार पैदा हो जाते है। उन पर अपने उत्तेजक गुण के द्वारा स्रोत संशोधन एव उत्सर्जन कार्य को सपन्न कर बिल्व मूल उत्तम लाभ पहुचाता है।

बिल्व मूल २½ तोला को कूटकर, २० तोला जल मे विधिवत चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर प्रात साय सेवन कराने से, कोष्ठबद्धता दूर होकर वात विकार शमन हो जाता है।

धातुक्षीणता या वीर्यस्राव पर—मूल का या उस की छाल का रस, मात्रा २ तोला तक निकाल कर गोदुग्ध १० तोला तथा श्वेत जीरा चूर्ण २ माशा एकत्र मिला प्रात साय सेवन करावे। अथवा—मूल की छाल और जीरे को एकत्र महीन पीसकर गोदुग्ध के साथ शुक्रतारल्य एव शुक्रमेह मे सेवन कराते है।

शोथ पर—उक्त प्रकार से इसका चतुर्थांश क्वाथ सिद्धकर दोनो समय सेवन करावे, तथा मूल की छाल का कल्क कर सेक देने से पीडा कम होकर शोथ दूर होती है। इस कार्य के लिये छाल को पीस, गरम कर, वस्त्र मे लपेट कर सेकना चाहिये, फिर उसी गरमागरम कल्क को पुल्टिस जैसा शोथ स्थान पर बाध देवें, अथवा उसका लेप बना गाढा-गाढा लेप कर ऊपर से सेक देवे।

यदि उदर पर अफरा [आध्मान] शूल एव मलावरोध हो, तो मूल के क्वाथ की वस्ति देने से शीघ्र ही लाभ होता है।

[७] प्रसूत विकार, शूल, ज्वर, अतिसार—

स्त्रियो को प्रसव काल या प्रसव के पश्चात् होने वाले शोथ, शूलादि विकारो पर बिल्व मूल का लाभदायक गुण स्पष्ट ही है। किन्तु गर्भाशय की अशुद्धि के कारण होने वाले सर्वाङ्ग शोथ, तीव्र ज्वर एव क्षयादि भयकर विकारो पर भी यह उत्कृष्ट गुणदायक है। स्त्रियो की आर्तव दुष्टि या गर्भाशय के शोथादि कारणो से उत्पन्न प्रदरादि विकारो पर भी इसका उक्त प्रकार से क्वाथ आदि का उपचार करने तथा इसके क्वाथ की उत्तर वस्ति देने से परम लाभ होता है। गर्भिणी स्त्री के वात जन्य विकारो पर इसकी छाल और अरणी मूल समभाग का विधियुक्त क्वाथ सेवन कराने से लाभ होता है।

शूल पर—प्रसूता के योनिशूल मे बेल मूल का चूर्ण २ माशा एकत्र मिश्रण कर उत्तम श्रेणी के मद्य के साथ [मद्य १½ तोला] सेवन कराते है।

उदरशूल हो तो, इसके मूल के साथ एरण्डमूल चित्रक मूल, और सोंठ का एकत्र जौकुट मिश्रण कर, अष्टमांश क्वाथ सिद्धकर उसमे २ रत्ती हींग [भुनी हुई तथा सेंधव नमक [१ माशा] का प्रक्षेप देकर २½ तोला तक की मात्रा मे पिलाने से तत्काल ही विशेषत वात या कफ जन्य शूल शात होता है। बिल्व मूल, एरण्ड मूल आदि उक्त द्रव्यो का कल्क गरम कर उदर पर लेप कर देने से अथवा बिल्व मूल, एरण्ड मूल और तिल समभाग कांजी के साथ पीस गरम कर लेप करने से भी शूल दूर होता है।

यदि क्वाथ मे अरणी मूल और अड्डूसा मूल समभाग लिया जाय तो कफजन्य शूल शीघ्र ही दूर होकर जठराग्नि दीप्त होती है। —हारीत

सिर के शूल पर इसकी सूखी हुई जड को थोडे जल के साथ सिल पर घिस कर मस्तक पर गाढा लेप करने से लाभ होता है।

ज्वर और ज्वरातिसार पर—बेल मूल का विधियुक्त अष्टमांश क्वाथ सिद्धकर दिन मे दो बार सेवन कराने विषम ज्वर मे जब ज्वर का वेग विशेष तीव्र हो तब यह क्वाथ उसे शात कर देता है। इस क्वाथ से हृत्कम्प [हृदय की अत्यधिक धडकन] एव हृद्दौर्बल्य तथा उन्माद मे भी लाभ होता है। यह कटु पौष्टिक है।

ज्वर के अत्यधिक वेग के कारण रोगी को प्यास बार बार लगती हो जीभ पर छाले हो गये हो, या कुनैन के अधिक सेवन से हानि पहुची हो तो उक्त क्वाथ मे मिश्री १ से ३ तोला तक मिलाकर थोडा-थोडा दिन मे चार पांच बार पिलावें।

ज्वरातिसार मे मूल और सौंफ ४-४ माशा एकत्र कूट कर २० तोला जल मे मन्द आग पर पकावे। चतुर्थांश [५ तोला] शेष रहने पर छान कर ठण्डा होजाने पर डेढ तोला मिश्री मिला सेवन करावें। इससे आम और शूल भी दूर होता है।

[७] क्षय [राजयक्ष्मा], श्वास और वमन पर--
क्षय एव श्वास रोग मे सामान्यत शरीर का पोषक रस धातु दूषित हो जाता है तथा रस वाहक स्रोतसो का अवरोध सा हो जाता है। इन कारणो को बेल मूल शीघ्र दूर कर सकता है, इसीसे यह क्षयनाशक माना जाता है। प्रयोग इस प्रकार करे—मूल ढाई तोला, अडूसा पत्र डेढ तोला तथा नागफनी थूहर के पके फल २ तोला, सोठ, कालीमिर्च व पिप्पली २-२ माशा सबको कूट कर आधा सेर जल मे अष्टमाश क्वाथ सिद्ध कर प्रात साय शहद मिला सेवन कराने से शीघ्र लाभ होता है। श्वास या दमा मे भी इस क्वाथ से लाभ होता है। विशेषत श्वास नलिका के प्रदाह के कारण या छाती मे रक्ताधिक्य के कारण अथवा मानसिक दौर्बल्य से जो श्वास होता है, उस पर रामबाण जैसा कार्य करता है।

वमन पर—यदि उक्त कारणो से केवल वमन की शिकायत है तो विल्व मूल के चतुर्थांश क्वाथ मे शहद मिला प्रात साय सेवन से लाभ होता है। यदि त्रिदोषज वमन हो तो इसकी मूल या छाल और गिलोय के क्वाथ मे शहद मिला सेवन करावे।

[९] बाल रोग, मेद विकार, मूत्र कृच्छ्र, अर्श, रक्त विकार, प्रमेह, नेत्र विकार आदि पर--

बालको के वमन व अतिसार पर—बेल की जड ढाई तोला जौकुट कर ½ सेर जल मे पकावे। १० तोला शेष रहने पर छानकर धान की खीलो का चूर्ण २ तोला और खाड यथावश्यक मिला अच्छी तरह आलोडित कर दिन मे इसकी ४ मात्राये पिलावे। --ब से

बालक के डब्बा [उत्फुल्लिका, पसली चलना] पर-- बेल जड की छाल, नागरमोथा, पाठा, त्रिफला, तथा छोटी व बडी कटेरी के क्वाथ मे पुराना गुड मिलावे। बालक के पेट पर सेक करें और उसके पेट व पीठ पर गरम सलाई से एक बिन्दु के बराबर दाग देना चाहिये।

—यो र।

मेद विकार पर—इसकी छाल, अरणी की छाल, अरलु, खभारी तथा पाढल की छाल के क्वाथ ४ तोला शहद ६ माशा मिला कर सेवन कराने से कुछ दिनो मे लाभ होता है। —शा ध

मूत्रकृच्छ्र पर—इसकी जड को कूट कर रात्रि के समय जल मे भिगो, प्रात मसल छान कर मिश्री मिला पिलाने से कष्टपूर्वक पेशाब होना, मूत्र मे जलन, चिनग आदि शिकायते दूर होती है। अथवा निम्न गद निग्रहोक्त क्वाथ का सेवन उत्तम लाभदायक है।

बेल की जड और अमलतास की जड प्रत्येक २½ तोला एकत्र कूट कर ½ सेर जल मे चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर प्रतिदिन प्रात सेवन कराने से ३ दिन मे पूर्ण लाभ होता है।

उक्त दोनो प्रयोग सुजाक [पूयमेह गनोरिया] पर भी लाभकारी है। साथ ही साथ विल्व मूल क्वाथ की उत्तर वस्ति भी देनी चाहिये।

अर्श पर—रोगी के मस्सो मे विशेष वेदना हो तो जड का क्वाथ तैयार कर, सुखोष्ण हो जाने पर उसमे रोगी को बैठालने से शीघ्र ही वेदना दूर होती है।

रक्त विकार व प्रमेह पर—अशुद्धि के कारण रक्त मे जो कृमि पैदा होकर नाना प्रकार के त्वक रोगो को उत्पन्न करते है। उन्हे विल्व मूल नष्ट कर रक्त को शुद्ध करता है। उदर के कृमि विकार को यह दूर नहीं कर सकता। इसकी जड २½ तोला और गोखुरू १ तोला दोनो को कूटकर, उबलते हुये १० तोला गरम जल मे भिगो देवे। ठण्डा हो जाने पर उसमे थोडी मिश्री मिला पिलावे। दोनो समय इस प्रकार सेवन कराने से रक्त शुद्धि होती है। तथा इस प्रयोग से नवीन प्रमेह की शिकायत भी दूर होती है।

रक्त विकृति के कारण शरीर पर फुसिया, फोडे हो तो जड को पीस कर या इसकी शुष्क लकडी को जल मे घिस कर लेप करने से जलन, सूजन और लाली दूर होती है।

रक्त मे बाह्य विष के प्रविष्ट हो जाने पर इसकी जड के साथ कैथ की और चौलाई की जड एकत्र कूटकर रस निकाल बार-बार पिलाने से विष दूर होकर रक्त शुद्ध हो जाता है। सर्पदश पर भी यह इसी प्रकार

पिलाया जाता है। साधारण विष बाधा पर केवल इसकी ही जड को जल मे पीस, छानकर बार-बार पिलाने मे लाभ होता हे।

नेत्र विकार पर—नेत्र मे पटल या नीलिका [नेत्र दृष्टिगत रोग एक प्रकार का तिमिर या मोतिया विंदु की प्रथमावस्था] विकार हो तो, इसकी जड के रस को बालक के मूत्र मे मिलाकर आजने से लाभ होता हे।"

—स्वलिखित एव प्रकाशित लेख से।

बेल के फूल, बीज और लकडी—फूलो मे तृष्णा [प्यास] अतिसार और वमननाशक गुण हे। इनके सूघने से सर्दी, जुकाम, नजला मे लाभ होता है। इससे मृदुता [नरमाई] आती तथा मन प्रसन्न होता है। फूलो से मधुर गन्ध का इत्र बनता है।

[१०] तृष्णा, वमन तथा अतिसार पर—यदि केवल तृष्णा या वमन से रोगी पीडित हो तो ताजे या सूखे फूल ३ माशा लेकर १० तोला जल मे भिगो मसल छानकर उसमे मिश्री २ तोला तक मिला पिलाने से शीघ्र लाभ होता हे।

यदि साथ मे अतिसार भी हो तो उक्त मिश्री मिले हुये पुष्प रस मे ईसबगोल की भूसी २ माशा तक मिला बार बार पिलावे।

बीज—उष्ण वीर्य, अत्यन्त वातनाशक तथा रेचक है आयु तथा शरीर की वृद्धि करने वाले है। ये सब गुण प्राय इसके तेल मे है।

डा० दत्त और डा० दीक्षित ने अन्वेषण कर इसके विषय मे लिखा है, कि बीजो को कुचल कर उनका पेट्रोलियम ईथर मे एक्सट्रैक्ट बनाया गया। उसमे से एक पीले रग का तैल जेसा तत्व प्राप्त किया गया। इस तैल मे बहुत ही उत्तम विरेचक तत्व होते हे। तथा १½ ग्राम की मात्रा मे लेने मे यह बहुत ही उत्तम विरेचक असर बतलाता हे।

[११] प्रमेह, सुजाक नाशार्थ, बुद्धिवर्धनार्थ एव हृदय मस्तिष्क व कर्ण विकारो पर तथा कल्प रूप मे तैल प्रयोग-पके या अधपके बेल के फलो को लेकर कुचल कर जल मे डालकर उबाल लेवे। गूदे से बीजो के अलग हो जाने पर उन्हे निकाल व शुष्क कर महीन चूर्ण कर त्रिफले के क्वाथ की ७ भावनाये देकर सुखाकर चूर्ण का कोल्हू द्वारा तैल निकलवा दे। पश्चात् तैल को ऐसे मृत्पात्र मे जिसमे घृत रखा जाता हो उसे अच्छी तरह साफ कर भर कर पात्र का मुख अच्छी तरह बन्द कर एक महीने तक जमीन मे गाडकर रखे। इस विधि से प्रस्तुत किया हुआ यह तैल विशेष लाभकारी होता है।

वमन विरेचनादि से शरीर-शुद्धि के पश्चात् प्रथम दिन उक्त तैल को ८ रत्ती [१ माशा] की मात्रा मे [२० तोला तक पकाकर ठडा किया हुआ गोदुग्ध या धारोष्ण गोदुग्ध मे मिलाकर] पिलावे। इसी प्रकार प्रति दिन ७-८ रत्ती तैल बढाते हुए, दसवे दिन १० माशा मे पिलावे। दूध का प्रमाण बढाने की आवश्यकता नही। फिर उसी प्रमाण से तैल की मात्रा घटावे। सेवन काल मे तैल के पच जाने पर पथ्य रूप मे प्रतिदिन केवल चावल [शाली चावल हो तो उत्तम] का भात और गोदुग्ध का सेवन करे। इस प्रकार नियम एव पथ्यापथ्य पूर्वक तैल के प्रयोग से प्रमेह एव पूयप्रमेह [सुजाक] का भयकर रोग नष्ट हो जाता है। शरीर मे शक्ति तथा नेत्रो की दृष्टि शक्ति मे विशेष वृद्धि होती, तथा कानो की बधिरता एव अन्य कतिपय वातरोग दूर होते है।

उक्त कल्प प्रयोग का प्रारम्भ शुभ दिन मे विशेषत शीतकाल मे किसी भी मास की कृष्णपक्ष अष्टमी या चतुर्दशी मे, पुष्प योग मे, मकान के शुद्ध कमरे मे रहते हुए करने से और भी अधिक लाभ होता है।

अथवा—पके हुये बेल फलो के उक्त प्रकार से बीजो का चूर्ण कर, [त्रिफला क्वाथ की भावना न देकर] केवल तिल तैल मे १५ दिन भिगोकर पाताल यन्त्र द्वारा तैल निकाल रखे। यह भी बुद्धिवर्धक एव हृदय और मस्तिष्क को लाभदायक है। इसकी कुछ बून्दे कान मे टपकाते रहने से कुछ दिनो मे बहरापन दूर होजाता है। कर्णपीडा भी दूर

"बिल्वमूल रसो बाल मूत्र युक्तोऽञ्जिनेगत। पटल नीलिका हन्ति कुभृत्य स्वामिन यथा॥" —हि वैद्यक

होती है। सिर पर लगाते रहने से कफवात सम्बन्धी पीडा दूर होती है। शक्कर के साथ अथवा गोदुग्ध मे इसकी कुछ बूदें नित्य सेवन करते रहने से बुद्धि बढती, तथा हृदय की कमजोरी दूर होती है।

[११] योनिशूल पर—निम्न योग-रत्नाकर का प्रयोग उत्तम है। इसके बीज [२ भाग] तथा भागरे के बीज [१ भाग] दोनो एकत्र पीस कर रखे। इसे उचित मात्रा मे मद्य [या मृतसंजीवन सुरा] के साथ सेवन करने से स्त्रियो के योनिशूल का विकार शीघ्र दूर होता है।

लकडी—वैज्ञानिको के परीक्षण से ज्ञात हुआ है कि वेल काष्ठ की राख मे पीछे रासायनिक सगठन मे वर्णितानुसार अन्य द्रव्यो के अतिरिक्त फास्फेट आफ लाइम (phosphates of lime) और फास्फेट आफ आइरन (phosphates of iron) ये दोनो बलवर्धक पदार्थ थोड़े परिणाम मे प्राप्त होते है। अत धातु क्षीणता मे वेल काष्ठ की भस्म लाभदायक है। इसे उचित मात्रा मे शहद के साथ चटाते है।

[१३] बधिरता नाशार्थ—वेल की साधारण मोटी लकडी एक या दो अगुल लम्बी लेकर उस पर तिल तेल से तर किया हुआ रेशमी वस्त्र लपेट कर उसके नीचे का सिरा जलावें जो तेल टपके उसे कलईदार या चीनी मिट्टी के प्याले मे या कटोरी मे ग्रहण कर शीशी मे भर रखे। इसकी दो तीन बूदे नित्य कान मे टपकाने से कुछ दिनो मे बहिरापन दूर होजाता है। इससे कान की पीडा भी दूर होती है।

सूतिका ग्रह मे बाल ग्रह की शाति के लिये इसके काटो की या लकडी की धूनी दी जाती है।

कई जगह इसकी लकडी चन्दन की लकडी के समान मानी जाती है। इसे घिसकर चन्दन की तरह मस्तक पर लगाते है। यह यज्ञीय वृक्ष माना जाता है अत इसकी लकडी हवन की समिधा मे ली जाती है।

—स्वलिखित एव प्रकाशित लेख से।

नोट—मात्रा-वेल गिरी का चूर्ण [ढक्कनदार शीशी मे रखा हुआ] १½ से ३ माशा या अधिक से अधिक २ तोला तक। पुष्टि के लिये तथा ज्वर एव रक्त विकार नाशार्थ यह चूर्ण १या २ माशा। फल का ताजा गूदा बड़ो के लिये एक दिन मे २ से ४ तोला तक। छोटो को अवस्थानुसार चूर्ण या गूदा कम प्रमाण मे देवे।

पत्र स्वरस २ तोला तक। क्वाथ के लिये इसकी शुष्क छाल का चूर्ण २ तोले लेवे। फाण्ट के लिये ३-५ माशे लेवे। पान का शर्बत २-४ तोला। प्रवाही सत्व ६० से १२० बूद तक।

ध्यान रहे पके बेल के खाने को प्राय २ घण्टे बाद उसका उदर मे पाचन होता है।

इसको अधिक लम्बे समय तक निरतर किसी न किसी रूप मे अधिक प्रमाण मे सेवन से आत्र निर्बल होकर वात प्रकोप तथा अर्शादि रोग होने की सम्भावना है। यह अवरोधजनक [अभिष्यन्दी] एव मन्दाग्निकारक हो जाता है। एक साथ एक ही समय मे इसे अत्यधिक मात्रा मे नही लेना चाहिये।

इसके अधिक खाने से मन्दाग्नि, आध्मान आदि विकार होने पर खाड का शर्बत पिलावे। इसका दर्प नाशक, हानिनिवारक खाड है।

भूतकाल मे भारत आये हुये यूरोपियन डाक्टर औषधि रूप मे बेल का इतना अधिक उपयोग करते थे कि अन्तत ब्रिटिश फार्माकोपिया मे वेल से निर्माण की हुई औषधियो को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया था। किंतु अब गत लगभग ५०-६० वर्षो से वे सब निकाल दी गई है। इसके स्थान मे जिन औषधियो का समावेश किया गया गया है वे तत्क्षण लाभकारी तो है किंतु उनसे होने वाला लाभ चिरस्थायी नही होता।

आषाढ मास मे वेल का खाना निषिद्ध ही कहा है—"चैती गुड बैसाखे तेल। जेठे राह असाढे बेल।।" आषाढ मास यह वर्षा ऋतु का आरभ सूचक पूर्वरूप है। इसी मास से जठराग्नि का शनै शनै मन्द होना प्रारम्भ होता है अत बेल जैसे गुरुपाकी द्रव्यो का सेवन वर्जित किया गया है।

विशिष्ट योग —

[१] बिल्वादि चूर्ण—बेलगिरी, मोचरस, सोठ, जल से धोकर सुखाई हुई भाग और धाय के पुष्प १-१ भाग, धनिया २ भाग तथा सौफ ४ भाग लेकर प्रथम गिरी, सोठ व मोच रस को सरौते से छोटे छोटे टुकडे कर सब द्रव्यो को एकत्र मिला कर कडाही मे मन्द आच पर सौफ की थोडी सुगन्ध आने लगे इतना सेक देने के पश्चात् कूटकर कपडछन चूर्ण कर रखे। मात्रा १-३ माशा ठडा जल अनार का रस या छाछ के साथ, दिन मे ४-५ बार ३ या ४ घटे के अन्तर से देवें।

यह योग उत्तम पाचन, दीपन एव ग्राही है। अतिसार मे केवल इसे ही या रस पर्पटी के साथ मिलाकर देवे। प्रवाहिका पेचिस[मरोड के साथ आव और रक्त मिला हुआ दस्त आना]पर थोडा घी और एरण्ड तेल लगाकर सेकी हुई छोटी हरड का चूर्ण सम भाग मिला कर उनके सौफ या ईसबगोल के लुआव के साथ देवे। प्रवाहिका के लक्षण जैसे२ कम होते जावे तैसे२ हरड चूर्ण का प्रमाण कम करना चाहिये। ग्रहणी रोग मे रसपर्पटी, पचामृत पर्पटी, सुवर्ण पर्पटी आदि र्पटी के योगो के साथ मिला कर देवे। अतिसार मे आरम्भ से रोग अच्छा होने तक किसी भी अवस्था मे इसका प्रयोग कर सकते है। —सिद्धयोग सग्रह

[२] विल्व पचक [क्वाथ]—वेलगिरी, सरिवन, [शालपर्णी], पिठवन [पृश्निपर्णी[, खरेटी और अनार का छिल्का इनका क्वाथ अतिसार, ज्वर तथा वमन पर हितकर है। भै र।

विल्व पचक [चूर्ण]—बेलगिरी, मोचरस १०-१० भाग, आम की गुठली ७ भाग, जायफल दो भाग और अफीम १ भाग इनका चूर्ण २½ माशा से ५ माशा तक की मात्रा मे देने से चिरकालीन आमातिसार मे लाभ होता है। —नाड़कर्णी।

]३] विल्वादि योग—वेल की जड की छाल, तुलसी की मञ्जरी[पुष्प],करञ्ज के फल, तगर, देवदारु,त्रिकटु, त्रिफला, हल्दी और दारुहल्दी सम भाग का महीन चूर्ण कर उसे बकरे के मूत्र मे अच्छी तरह घोट कर, छाया शुष्क कर रखे। यह विषों का नाशक उत्तम अगर है। इसका अञ्जन लगाने, इसकी नस्य देने तथा इसे जल के साथ पिलाने से सर्प, मकडी विच्छू आदि का विप तथा विसूचिका, अजीर्ण और ज्वर एव भूत बाधा नष्ट होती है। —वा भ उ अ ३६।

[४] विल्व फलासव—वेल गिरी का महीन चूर्ण ½ सेर को २० सेर जल मे पकावें। १० सेर जल शेष रहने पर छानकर सधान पात्र मे भर कर उसमे मिश्री ३ सेर धाय पुष्प चूर्ण १ सेर, सौंठ चूर्ण ५ तोला और अफीम १ तोला मिला, पात्र का मुख बन्द कर १५ दिन सुरक्षित रख, छान कर बोतलो मे भर रखें। १ से २ तोला तक रोगी के बलाबलानुसार सेवन करावे। जल के साथ यह सर्व प्रकार के अतिसार के लिये परमोत्तम है।

फलासव न २—वमन दाह नाशक

वेल के पके फलो का गूदा ½ सेर लेकर ३ सेर ताजे शीतल जल मे घोल कर छान लेवे। इसे सधान पात्र मे भर उसमे मिश्री २ सेर, धाय पुष्प चूर्ण ½ सेर तथा इलायची, कालीमिर्च, लौग, नागकेशर प्रत्येक का चूर्ण ४-४ तोला और कपूर १ तोला मिला, मुख सधान कर ७ दिन के बाद छानकर काम मे लावे। १ से २½ तोला तक देने से तृषा, वमन, दाह, थकावट एव आमदोप दूर होता है। यह अग्नि प्रदीपक, व रुचिवर्धक है।

विल्व पत्रासव (मधुमेहादिनाशक)

बेल पत्रो को जल के साथ पीस कर वस्त्र मे छानकर निकाले हुये रस १ सेर मे कालीमिर्च चूर्ण ५ तोला और रेक्टीफाइड स्प्रिट १० तोला मिला, बोतलो मे भर मजबूत कार्क लगोकर रखे। ७ दिन बाद काम मे लावे। ३ माशा से १ तोला तक, समभाग जल के साथ प्रात-साय, कुछ नास्ता करने के बाद सेवन से मधुमेह शीघ्र नष्ट होता है। त्रिदोषजन्य शोथ, मलावरोध, अर्श और कामला रोग भी दूर होता है।

[६] विल्वादिघृत—बेलगिरी, चित्रक, चव्य, अदरख समभाग एकत्र जौकुट कर ८ सेर चूर्ण मे ४८ सेर जल मिला चतुर्थांश क्वाथ [१२ सेर] सिद्ध कर, इसमे उक्त चारो द्रव्यो का कल्क १ सेर, बकरी का दूध ४ सेर और

घृत २ सेर मिला पका कर घृत सिद्ध कर लेवे। मात्रा-६ माशा, सेवन से गृहणी एव तज्जन्य शोथ, मन्दाग्नि अरुचि आदि उपद्रव शीघ्र दूर होते हैं। —भै र

[७] विल्व तेल—वेलगिरी या कच्चे वेल का गूदा १ सेर को ५ सेर जल मे पकावें। १ सेर शेष रहने पर छानकर उसमे तिल तेल और आवले का स्वरस प्रत्येक आधा सेर, वकरी का दूध १ सेर तथा कल्कार्थ वेलगिरी २ तोला, लाख, आवला, नागरमोथा, लालचन्दन, तेजपात, प्रियंगु, अनन्तमूल, शतावर, वच, सोया, मजीठ, असगन्ध, छोटी इलायची, सरल काष्ठ, तगर, जटामासी, देवदारु, श्वेतचन्दन, व पुनर्नवा ६-६ माशा एकत्र पीसकर मिलाकर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर एक माह तक वन्द कर रखने के वाद काम मे लावें। इसकी मालिश से दाह, शूल शीघ्र दूर होता है।

नोट—तेल के अन्य शास्त्रीय प्रयोगो को ग्रन्थो मे देखिये।

[८] वेल का मुरव्वा—तरुण या अधपके फलो की गिरी [गूदा] निकाल, स्वच्छ गजी के मोटे वस्त्र मे वाध दोला यत्र विधि से खूव वाष्पित करे [वफार दें]। गूदा खूव मुलायम होजाने पर चूने के पानी मे थोडी देर डाल रखें। पश्चात् निकाल कर अच्छी तरह पोंछ कर गिरी से चौगुनी मिश्री की एकतारी चाशनी मे उसे डाल देवे। साथ ही साथ उसमे जायफल, जायपत्री, इलायची, केशर की मात्रा अन्दाज से महीन चूर्ण कर मिला दे और काच या चीनी मिट्टी के पात्र मे भर मुख वन्द कर लगभग दो मास तक सुरक्षित रखने के वाद काम मे लावे। सेवनीय मात्रा एक दिन मे २ से ४ तोला तक है। यह सर्व प्रकार के आमाशय सम्वन्धित विकारो पर लाभदायक है। प्रवाहिका अतिसार मे उत्तम है।

नोट–गिरी या गूदे को वाष्पित करने के लिये एक पात्र मे आधे भाग तक जल भर कर पात्र के मुख पर साफ व मोटा वस्त्र वाधकर उस वस्त्र पर गूदे के कतरे हुये गोल टुकडो को रख किसी ढक्कन मे वन्द कर नीचे आग जलावे। जिससे जलीय वाष्प मे ही टुकडे नरम हो जावें। फिर उन्हे मिश्री या खाड की चाशनी मे डाल दे। यदि दूसरे दिन पाक पतला हो जावे तो टुकडो को अलग कर पुन चाशनी का पाक कर ले और टुकडो को उसमे डाल द। उसमे जायफल आदि न मिलाने पर भी उत्तम लाभकारी है।

[९] वेल का शर्वत—वेलगिरी २० तोला को १ सेर जल मे पकावे। ६० तोला तक जल शेप रहने पर छानकर उसमे मिश्री दो सेर मिला, एकतारी चाशनी तैयार कर ले। इसमे केशर, जायपत्री अन्दाज से मिला कर भर रखे। यह शर्वत पित्तातिसार या गरमी के दस्तो को दूर करता है। हैजा मे भी यह दिया जा सकता है। क्षय रोग मे जव कफ गाढा निकलता हो और ज्वर एक समान १०० डिग्री तक वना रहता है तथा वच्चो की कुकर खासी मे और सग्रहणी विकार मे भी यह परम लाभदायक है। ग्रीष्म काल मे सेवनीय है।

मसूढो के विकार मे ५ तोला इस शर्वत मे दूध मिला कर थोडा थोडा घूट घूट कर पीने से मसूढो के असाध्य रोग भी दूर होते है।

कोष्ठ मे मलवद्धता के कारण विशेष उष्णता रहती हो तो वेल का ताजा शर्वत इस प्रकार तैयार कर सेवन कर—वेलगिरी ४ तोला को २० तोला जल मे पीस छान कर उसमे ४ तोला मिश्री मिलाकर पीने से शीघ्र ही एक सौम्य रेचन होकर कोठा साफ होगा तथा उष्णता या दाह दूर हो जाती है।

नोट—कई नाजुक प्रकृति के लोगो को वेलगिरी का चूर्ण या चूर्ण युक्त अन्य औषधि का सेवन करना पसन्द नही आता। उनके लिये उक्त मुरव्वा या शर्वत की योजना करना ठीक होता है।

ग्रीष्म ऋतु मे इसका शर्वत या पानक इस प्रकार तैयार कर पीने से परम शाति प्राप्त होती है। अच्छी जाति के वागी सुपक्व एव मधुर वेल के गूदे को प्रात मिट्टी की हाडी मे रखकर उसमे जल डाल देवे। दिन के समय जव शीतल पेय की इच्छा होती है तव गूदे को अलग कर शेप जल मे खाड मिलाकर पीवे। यह शीतल मधुर सुगधित एव तृप्तिकर पेय है। यह पेय शीघ्र पाकी एव दीपन है। —स्वलिखित लेख से।

[१०] बिल्व पेय सुजाक पर—बेल का प्रवाही सुजाक [गनोरिया] पर अति लाभकारी है।
सत्व-१ ड्राम, टिंचर क्यूबेब [कबील का मुरामार] २०
बूंद और जल एक औंस का मिश्रण दिन में ३ बार देवें
यह मूत्रल एवं संकोचक प्रभाव युक्त है। चिरकालीन

—श्री वैद्य पं० साहबदास गौड़ विशारद
पो० बरुहा [लहार] भिण्ड म० प्र०

बेलकामू—देखें-सारिवा में। बेलद्रुम—देखें-मूर्वा में।

बेलन्तर (Dichrostachys Cinerea)

शिम्बी कुल के बब्बुलादि उपकुल [Mimosaceae] के मध्यमाकार कटीले इसके वृक्ष छोंकर [शामी] के वृक्ष जैसे ही होते हैं। पत्र भी वैसे ही होते हैं; किन्तु पुष्प पचरंगी छोटे-छोटे होते हैं।

ये वृक्ष उत्तर प्रदेश, राजस्थान, विन्ध्यप्रदेश में नर्मदा नदी या अन्य नदी नालों के तटों पर तथा, दक्षिण के पश्चिमी घाट पर पाये जाते हैं।

नाम—

स—वेल्लन्तर, दीर्घमूल, वीरवृक्ष आदि। हिंदी—बेलन्तर, वरखोल, खेरी, वरतुली, कांनराय इत्यादि। म०—बेलन्तूर। ले०—डिक्रोस्टेचिस सिनेरिया, मिमोसा सिनेरिया [Mimosa cineria]।

तिक्त तीक्ष्ण [चरपरा], उष्ण, कटुविपाक, दीपन, मलरोधक, तथा वातविकार, मधिशूल, योनि रोग एवं मूत्र सम्बन्धी विकारों में इसका प्रयोग किया जाता है।

नेत्राभिष्यन्द में-इसके कोंपलों को पीसकर नेत्रों पर इसकी लुगदी रखी जाती है।

बेला [मोगरा] (Jasminum Sambac)

पुष्पादि वर्ग एवं पारिजात कुल [Oleaceae] के [illegible] ७-८ फुट ऊंचे, [illegible] क्षुप की शाखायें हरित वर्ण की, [illegible], पत्र-अभिमुख क्रम से, [illegible], [illegible], अण्डाकृति [illegible], [illegible] युक्त १½-३½ इंच लम्बे, १-२½ [illegible], [illegible], [illegible], पत्र वृन्त-छोटा, रोमश पुष्प-शाखाओं के अग्र भाग में पुष्प प्रथम कली के रूप में कुछ लम्बे गोल, खिलने पर गोल, श्वेत वर्ण के सुगंधित ३-५ या ७ पुष्प गुच्छ के रूप में, किंतु कभी२ एकाकी भी पुष्प वाह्यकोष लम्बा, हरिताभ, ८-१० दल युक्त, नुकीला ¼ इंच लम्बा, सूक्ष्म रोमश, आभ्यन्तर कोष-वाह्यकोष में

बेला

JASMINUM ARBORESCENS, ROXB.
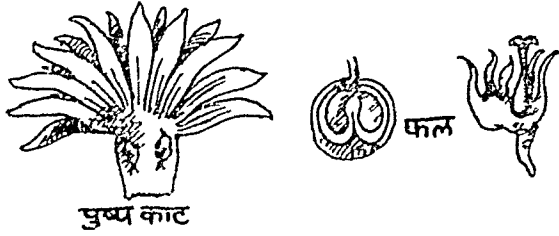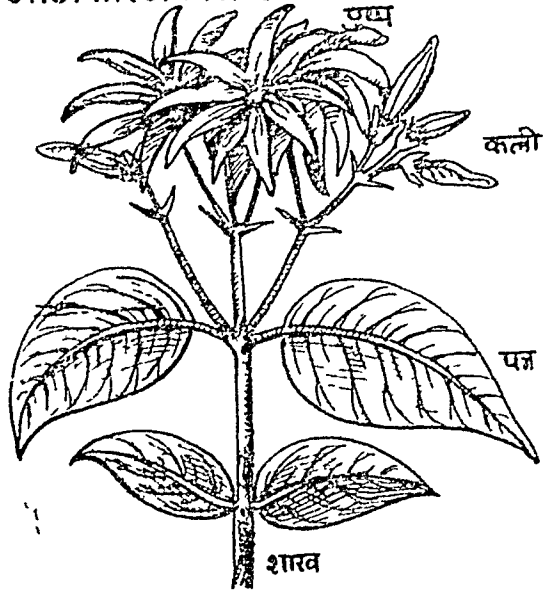
जितने दल होते है उतने ही इसमे होते है। पखुडिया कुछ तिरछी, फैली हुई कभी कभी दुगुने दल युक्त, पुष्प वृन्त-छोटा, रोमश, फल-गोल ½ इच व्यास के कुछ लम्बे से, पुष्प वाह्यकोप के आवरणयुक्त एव १-२ काले रङ्ग के वीज युक्त होते है। ग्रीष्म व वर्षा ऋतु मे पुष्प, पश्चात् फल आते हे।

यह भारत मे प्राय सर्वत्र उष्णकटिवन्ध वाले प्रदेशोके वागो मे पुष्पो के लिये लगाया जाता है तथा वनो मे नैसर्गिक भी पैदा होता हे। वर्मा, सीलोन मे भी प्रचुरता से होता हे।

नोट—[१] इसके अनेक भेद उपभेद हे। उनमे से प्रमुख भेद इस प्रकार है—एक तो यही प्रस्तुत प्रसग का होता हे। यह वाटिकाओ तथा वनो मे ही अधिकता मे होता हे। वाटिका मे काट छाट कर लगाये गये इसके पौधे अधिक ऊचे नही वढते तथा उनके पुष्प प्राय दुगुनी [भीतर वाहर दो तह वाली[पखुडियो मे युक्त होने से पखुडियो का गुच्छ सा एव वडा गोल दिखाई देता हे इसमे सुगन्ध अधिक मनोहर होती हे। इसे वटमोगरा सस्कृत मे नवमल्लिका, वार्षिकी, षटपदानन्दा इत्यादि। अग्रेजी मे डवल फ्लावर्ड अर्बेयिन जैस्मीन [Double flowered araben jasmine] लेटिन मे उक्त शीर्षोक्त नाम के अतिरिक्त जेसमिनम लोमोनाई (Jusminum Lomonii] भी कहते हें।

इसका ही एक भेद —

[व] वासन्ती [नेवारी]—सस्कृत—मधुमाधवी, सप्तला, नेपाली, नवमल्लिका, वासन्ती। हि—नेवारी, वसनी निवाडी, म०—नेवाली कुदी, रायनेवाली, कुमार, गेमाली, वीरवन्ती गु—वटमोगरा, वडकूद, नेपाली, ले०—जेसमिनम आर्वोरेसेन्स [Jasminum Arborescens]

इसके झाडदार ७-६ फुट ऊचे क्षुप [जगली नेवारी के वृक्ष इससे भी अधिक ऊचे होते है] की शाखाये रोमश, पत्र खिरनी के पत्र जैसे, प्राय अभिमुख जोडे२ से, पृष्ठ भाग चिकना, नसो से पूर्ण, किनारो पर तरगायित, लम्बे नोकदार, ४ इच लम्बे, २½ इच चौड़े, पत्रोदर भाग हरा चिकना, पत्र वृन्त ½-¾ इची, पुष्प-प्रत्येक पुष्प दण्ड पर पुष्प ५-७ पखुडी वाले, सख्या मे १२ से २० तक, श्वेत रङ्ग के, मनोरम सुगन्धित स्वाद मे फीके, फल- नीम की निवोली जैसे, कच्ची दशा मे हरे, पकने पर काले हो जाते हे। इसमे प्राय फल वहुत कम आते हैं। ग्रीष्म काल मे पुष्प व वर्षा मे फल आते हे।

यह उत्तर-पश्चिम हिमाचल प्रदेशो मे तथा अवध कुमायू, वङ्गाल तथा दक्षिण के पर्वतीय प्रदेशो मे पाया जाता हे।

गुण, धर्म व प्रयोग —

लघु, तिक्त व शीतल, त्रिदोष व रक्तविकार नाशक हे। फुफ्फुसावरण की श्लेष्मक कला के रक्तजन्य अवरोध पर इसके ७ पत्रो को शीतल जल के साथ किंचित काली मिर्च, सोठ लहसन तथा सहजना की छाल ६ माशा सा.

मिला खूब महीन घोट छान कर पिलाने से प्राय' वमन द्वारा कफ निकल कर अवरोध दूर हो जाता है। छोटे बालक को इसके १ या आधे पत्ते को अगस्तिया के ४ पत्तो के साथ घोट छानकर उसमे काली मिर्च व सुहागे काफूला १-१ रत्ती चूर्ण मिला शहद के साथ चटावे। इसके पत्ते कुछ चरपरे, सकोचन, दीपन व पौष्टिक होते है।

योनि शैथिल्य पर—इसके पत्र, असगध व मोचरस के क्वाथ से धोने पर लाभ होता है। —भा भै र।

(C) इसका दूसरा भेद-वन मल्लिका, मदयन्ती भूपदी, अतिमुक्ता (मोतिया, बुटमोगरा, वेल मोगरा) है। पौधा—लता रूप, पत्र व पुष्प—अपेक्षाकृत छोटे, पुष्प एकाकी या इकहरी ५-७ पखडियो वाले, छोटे छोटे, अधिक गोलाकार, मोती जैसे अनेक गुच्छ रूप मे आते हैं। पुष्पो की कलिया गोल गोल, शोभायमान,मनोहर गन्ध युक्त होती है। इसे लेटिन मे जेसमिनम अगुष्टि-फोलियम (Jasminum Angustifolinm)कहते है। अंग्रेजी मे वाइल्ड जेसमीन (Wild Jasmine)म०—रान मोगरा, कुसा, गु०—वट मोगरा, जगली डोलर, व—वनमल्लिका।

यह भारत मे विशेपत समुद्रतटवर्तीय प्रदेशो मे तथा वङ्गाल, मद्रास प्रान्त, दक्षिण प्रदेश, कोकण, महाराष्ट्र प्रान्त, सीलोन आदि मे अधिक पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

तिक्त, मधुर, कपाय, लघु, मदगधी, हृद्य, शीतवीर्य, तथा पित्त, कफ, व्रण, दाह, शोप, त्रिदोपशामक है। दोहशमनार्थ पुष्पो का रस दिया जाता है। अजीर्णजन्य अतिसार मे पत्र रस पिलाते हैं। वालको के कफ प्रकोप मे वमनार्थ पत्र रस को शहद के साथ देते है। फुफ्फुस एव श्वासनलिका के शोथजन्य निमोनिया आदि पर इसके पाच पत्तो के रस के साथ सहजने की जड का रस ६ माशा मिलाकर उसमे ७ कालीमिर्च, २-३ लहशुन की कली एकत्र घोटकर मिलावे तथा २ तोला शहद के साथ सेवन कराने से बडा लाभ होता है। यह तीव्र प्रयोग है, इससे कफ पतला होकर दस्त व वमन के द्वारा निकल जाता है। इसकी मात्रा रोगी के वलानुसार देनी चाहिये। छोटे वच्चो के निमोनिया मे—इसके पत्र का चौथाई भाग, कालीमिर्च के २-३ दाने व फुलाया हुआ सुहागा १ रत्ती एकत्र घोटकर शहद के साथ चटाते हैं। दाह पर तथा फफोलेदार फैलने वाली खुजली (Herpes) पर इसकी जड को वच के साथ नीवू के रस मे घोट कर लगाते है।

विशेप दृष्टव्य—हीना (Jasminum Heyneana) इसी की एक जाति विशेप है। इसका इत्र हिना के इत्र नाम से प्रसिद्ध है।

वन मल्लिका (वन मोगरी)—Jasminum Rettle-rianum इसी का एक भेद विशेप है। इसकी झाडीदार लता होती है। पत्र पुष्पादि उक्त मल्लिका के अनुसार ही होते हैं। फल चिकना व काला होता है। यह पश्चिम घाटी पर कोकण से ट्रावनकोर तक अधिक पाई जाती है। इसके पत्र छाजन (एग्झीमा) पर विशेप उपयोगी है।

(D) जिसे हिन्दी, पजाबी मे—चम्बा, मोतिया, वनसू, जेहशिग, म—रानमोगरी, गु—दोजार और लेटिन मे—जेसमिनम आफिसिनेल (Jasminum officinale) कहते हैं, वह इसका या चमेली का भेद विशेप है। यह एक झाडीदार पराश्रयी लतारूप मे होता है। पत्र-३ से ७-७ के गुच्छो मे लगते है। पुष्प-श्वेत, सुगन्धित उक्त वेला के जैसे ही होते है। फल—कुछ लम्बा सा होता है।

गुणधर्म व प्रयोग—पुष्प—तिक्त, कसैला, कुछ मधुर, शीतल, तथा कृमि, हृदय रोग, मधुमेह, पित्त प्रकोप, दाद, तृषा, चर्म रोग, मुख, दात एव नेत्र विकारो मे उपयोगी है। यह कफ और वातकारक है। इसकी जड को घिस कर दाद पर लगाते हे।

यह स्नायुमडल को शातिदायक है। फल-निद्राजनक हे। इसमे जसमीन नामक उपक्षार तथा उडनशील तैल पाया जाता है। इसके सुगन्धित तेल को तिल तेल मे मिलाकर सिर पर मलने से स्नायुमडल शात होता हे।

(E) हरेल चारा—Jasminum Scandens यह भी इसीका एक भेद हे। हरेलचारा यह इसका नेपाली

बेला (रांयबेल)

JASMINUM SAMBAC AIT.
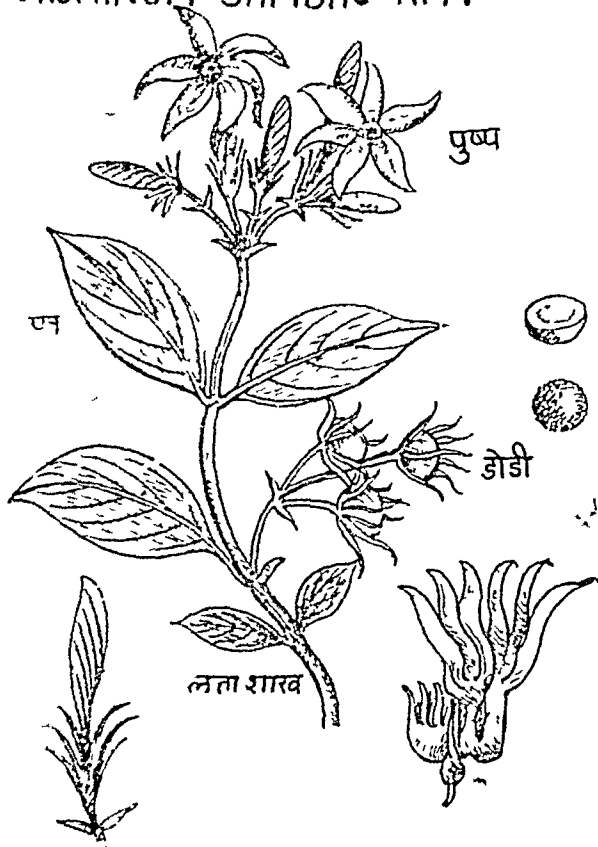
नाम है। यह सिक्किम, आसाम, खासिया, नेपाल, बगाल तथा चितगाव के पहाडो मे पैदा होता है।

इसमे एक कडुवा तत्व पाया जाता है। इसकी जड दाद पर लगाने के काम मे ली जाती है।

(F) कस्तूरी मल्लिका–यह भी इसीका एक भेद है। इसके दो प्रकार हैं–एक लता सदृश तथा दूसरी एरण्ड वृक्ष जैसी। दोनो के पुष्प तथा फल के बीजो मे कस्तूरी जैसी मनोहर गन्ध आती है। गुणधर्म मे यह प्रस्तुत प्रसग के वेला के पुष्प आदि के समान होती है (रा नि) केश मलने के मसाले मे इसका बीज डाला जाता है।

(G) वेलाकुन्द भी इसकी एक जाति विशेष हे। इसका सचित्र वर्णन कुन्द के प्रकरण (भाग २) मे देखिये।

(H) विखमोगरा—Cynanchum odoratissima यह अर्क कुल (Asclepiadaceae) की लतारूप वनौषधि पहाडी देशो मे होती है। वेला (मोगरा) के जैसे ही इसके पुष्प होते है। पत्ते चौडे होते है। इसमे छोटे छोटे फल भी आते है। पत्तो का रस बहुत कडुवा होता है। मात्रा—३ से ५ रत्ती तक। अधिक मात्रा मे लेने से विप के समान असर होता है। वास्तव मे यह विष नाशक है। सर्प विप तथा विपखपरा के विप मे पत्र रस पिलाते है। विप प्रभाव से शरीर मे कही क्षत होगया हो या घाव विपाक्त हो गया हो, या विषहारी फोडा हो तो इसके पत्ते या जड पीस कर उसके साथ कुचले के बीज को घिसकर लेप करते है। सर्दी गरमी से पैरो मे ऐंठन हो तो इसके पत्र रस मे काली मिर्च का चूर्ण मिला दिन मे ४-५ बार लेप करे। —अगद तत्र से

(I) एक एरण्डकुल का दूध मोगरा होता है। जिसका वर्णन हजारदाना मे देखिये।

नोट न २—चरक, सुश्रुतादि प्राचीन सहिता ग्रन्थो मे प्रस्तुत प्रसग के वेला का विभिन्न पर्यायी नामो से चिकित्सा प्रयोगो मे उपयोग किया गया है। वाग्भटादि सग्रह ग्रन्थो मे प्राय. उन्ही सहिता ग्रन्थो के प्रयोगो को दुहराया गया है। वाग्भट ने विशेपत इसका जो माल्यधारण के रूप मे प्रयोग दर्शाया है, उसीका पिष्टपेपण अन्य ग्रन्थो मे किया गया है। गदनिग्रहादि पश्चात् कालीन सग्रह ग्रन्थो मे इसका मदयन्ती नाम से विशेषत घृत तैलादि के प्रयोगो मे उपयोग किया गया है।

नाम–

स०–मल्लिका (मल्लयते मूर्ध्नि धार्यते इति, माला के रूप मे धारण किया जाने से, अथवा 'मल्लिहंस इव शुक्लत्वत्' हसके जैसा श्वेत होने से)। शीत भीरु (शीत काल मे नष्ट होजाने से) मदयन्ती (महक मदकारी होने से) सौम्या इ। हि–वेला, रायवेला, मोगरा, मोतिया, चम्बा, मुग्रा इ। म–मोगरा। गु–मोगरो, डोलर। ब–वेल, मतियो अ–अरेबियन जेसमाईन (Arabian Jasmine), लिली जेसमाईन (Lily Jasmine)। ले.–जेस्मिनम सम्बक।
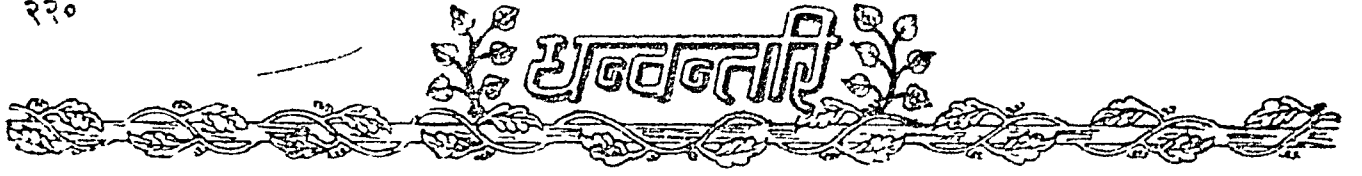
रासायनिक संगठन—

पुष्पो मे एक सुगधित तैल होता है। इसका इत्र भी बनाया जाता हे, जिसे 'इत्र मोतिया' कहते हैं।

प्रयोज्याग—पुष्प, पत्र व मूल।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रुक्ष, कटु, तिक्त, उष्णवीर्य (कईशीत वीर्य मानते हैं), कटु विपाक, वातपित्त (या त्रिदोप) शामक, मेध्य, स्वेदल, चक्षुष्य, विपघ्न स्तन्य शोषण, रोपण, स्तभन (ग्राही), हिक्का प्रशमन, रक्तशोधक, रक्त प्रसादन, वृष्य, गर्भाशयोत्तेजक, तथा शोथ, नेत्र विकार, व्रण, रक्तपित्त, विस्फोट, कण्डु,हृद्रोग, मुखरोग, वेदना, आमदोष, दाह, शोष आदि मे प्रयुक्त होता है। इसके गुणधर्म प्राय चमेली जैसे हैं।

गरमी के दिनो मे इसके ताजे सुविकसित पुष्पो को थोडी देर के लिये, ठडे जल के मटके मे डालकर उस सुगधित जल के पीने से तृषा शात होकर मन प्रसन्न होता है।

पाश्चात्यमतानुसार—यह शोणितस्थापन, शोथ नाशन, स्तन्यनाशन, आर्त्तवजनन, तथा रक्त प्रवाहिका, उन्माद, दृष्टिमाद्य, मुखपाक, फोडे फुसी, रक्तातिसार, दुष्टव्रण, निद्रानाश, अर्श, चर्मरोग, कुष्ठ,ज्वर, वमन, हिक्का, कृमि, कर्णरोग, नेत्ररोग नाशक है। साथ ही मूत्रल, मस्तिष्क बल्य, निद्राजनन भी है। मुख्यत इसका प्रभाव स्त्री की आभ्यन्तर जननेन्द्रियो विशेषत गर्भाशय पर तथा स्तन्य एव रक्तसस्थान पर होता है।

पुष्प—शोथघ्न, स्तन्यशोषण, पित्त नाशक है। पुष्पो की मनोहर सुगन्ध से कामवासना जागृत होती हे, अत स्त्री सहवास के समय इनकी माला धारण की जाती है। चीन देश मे चाय को सुगधित करने के लिए पुष्पो का प्रयोग करते है। ध्वजभङ्ग, शिश्नशैथिल्य मे पुष्पो का कल्क वस्ति प्रदेश पर रखते है। सामान्य नपुन्सकता मे पुष्पो की माला धारण की जाती हे।

(१) स्तन शोथ तथा उन्माद पर—स्तनशोथहर स्तन्य (दुग्ध) शोपणार्थ—प्रसव के पश्चात् कभी-कभी दुग्ध वाहिनियो मे दूध का सग्रह होकर उसकी गाठ सी जमकर स्तन मे सूजन हो जाती है जो पककर स्तन विद्रधि का रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार की सूजन प्रसव के बाद सतान के काल कवलित हो जाने से या माता के रुग्ण हो जाने से या अन्य कारणो से भी होती है। ऐसी दशा मे इसके २–३ तोला ताजे फूलो को स्वच्छ सिलपर बिना जल मिलाये पीसकर स्तन पर मोटा या गाढा लेप लगाकर या पुल्टिस बनाकर बाधते हैं। दिन मे २–३ बार अर्थात् ४–४ घण्टे से पुराने कल्क को साफकर नये फूलो का लेप या पुल्टिस बाधी जाती है। इससे दूध शोषित हो जाता है, सूजन उतर जाती है, पुन पाक नही हो पाता। स्तन पर शोथ आदि न हो, तथा दूध कम करना हो, तो भी इस प्रयोग से लाभ होता है।

डा० वूड का कथन है, कि उक्त लेप दिन मे दो बार बदलते हुए केवल दो दिन के व्यवहार से ही दूध कम हो जाता है। कभी-कभी २४ घण्टो मे ही दूध अदृश्य हो जाता है। किंतु साधारणत दो या तीन दिनो मे यह बन्द होता है। इससे शोथ नष्ट होकर स्तन पाक का कोई भय नही रहता, तथा पूय निर्माण की प्रक्रिया भी रुक जाती है। केवल दो-तीन फूलो के गाढे रस का लेप करने से भी यही क्रिया होते देखी जाती है। पुष्पो के अभाव मे पत्रो का और जड का भी उपयोग किया जाता है।

उन्माद पर—इसके पुष्प एव पत्र के कल्क तथा उनके स्वरस से सिद्ध किये हुये घृत के प्रयोग से शीघ्र यथेष्ट लाभ होता है।

(२) पुष्पो का तैल—इस तेल मे भी उपरोक्त सब गुण धर्म पाये जाते हैं। इसके पुष्पो से तिल आदि किसी भी उपयुक्त तैलीय द्रव्यो के बीजो को सुवासित कर निम्न विधि से उनका तैल निकाल लिया जाता है। इस तैल मे इसके पुष्पो की सुगन्ध तथा उसके किंचित् गुण भी आ जाते हैं। किंतु विशिष्ट यत्र द्वारा इसके पुष्पो का जो अर्क निकाला जाता है उसमे इसके सब गुण विद्यमान रहते हैं। इसके इत्र से सिर दर्द एव मन की उद्विग्नता दूर होती है।

तिल आदि को सुवासित करने की विधि—तिलो को

पानी के छींटे देकर कुछ नरम हो जाने पर किसी कलई-दार पात्र मे प्रथम पुष्पो की एक तह विछाकर उस पर तिलो को फैला देते हैं, उस पर पुन पुष्पो की तह दी जाती है । इस प्रकार क्रमश कई तहे देकर उसे मोटे वस्त्र से ढाक कर रखते है । १२ या १८ घण्टो बाद तिलो को एकत्र कर कोल्हू मे पेरवा लेते है ।

नाक या कान से दुर्गन्ध स्राव निकलने पर उक्त तैल की कुछ बूदे डालने से शीघ्र ही उत्तम लाभ होता है।

नासार्श पर चक्रदत्त ने जो 'करवीरादि तैल' का प्रयोग दिया है उसमे करवीर (विशेषत लाल कनेर), चमेली आदि के पुष्पो के साथ इसके पुष्पो की भी योजना की गई है । —सकलित

पत्र—

वेला के पत्र—ग्राही, सकोचक है तथा चर्मरोग, व्रण रक्तातिसार, नेत्र विकार आदि मे उपयोगी है ।

(३) व्रण, मुखपाक तथा नेत्र विकारो पर—

व्रण पर—इसके शुष्क पत्तो को जल मे पीसकर पुल्टिस बनाकर वाधने से उत्तम लाभ होता है । दुष्ट व्रण भी दूर होते है ।

व्रण के पाक काल मे तीव्र वेदना हो तो इसके ताजे पत्तो को जल से पीस पुल्टिस जैसा बनाकर वाधने या इसका गाढा लेप करने से वेदना शमन होती है । लेप या पुल्टिस को दो-दो घण्टे से बदलते रहे । अन्य चर्म रोगो पर पत्तो का लेप करते है ।

मुखपाक पर—पत्तो के क्वाथ से कुल्ले कराने से, या पत्तो को चवाने से मुख के छाले दूर होते है ।

नेत्र विकारो पर—पत्तो को पीसकर नेत्रो पर प्रलेप करने से या तिल तैल मे पत्तो की लुगदी तथा पत्तो का रस मिलाकर मन्द आग पर पका, तैल मात्र शेप रहने पर छानकर रखे । इसे आखो मे लगाते रहने से दृष्टिमाद्यादि नेत्र विकारो मे लाभ होता है । विशेषत इस तैल का सिर पर मर्दन करने से उक्त नेत्र विकारो मे लाभ होता हे । आखो मे लगाने की आवश्यकता नही ।

(४) स्तन्यनाशार्थ तथा रक्तातिसारतथा नाभी के टलने पर—

स्तन्यनाशार्थ इसके पुष्प के प्रलेप का प्रयोग ऊपर दिया गया है । यहा अन्त प्रयोग दिया जाता है—इसके शुष्क पत्तो के साथ, भौंरी के घर की मिट्टी (भृग कीट जो मिट्टी का घर वनाता है, वह मिट्टी), लज्जालू के वीज, धाय के पुष्प, गेरू, रसाजन और राल इनमे से यथा लब्ध द्रव्यो को लेकर चूर्ण बना दो-चार माशे की मात्रा मे, दिन मे दो बार शहद से चटाते है । यह प्रयोग गर्भिणी स्त्री के योनि मार्ग से श्वेत या रक्तस्राव होने पर विशेष उपयोगी है । —व गु ।

अनियमित ऋतुस्राव की दशा मे पत्तो का स्वरस १-२ तोला की मात्रा मे थोडा शहद मिलाकर सेवन कराने से लाभ होता है ।

रक्तातिसार या रक्त प्रवाहिका पर—

इसकी २-३ तोला कोमल एव ताजी पत्तियो को, जल के साथ पीस छानकर उसमे मिश्री या शक्कर यथा योग्य मात्रा मे मिला पिलाते है । दिन मे २ से ४ वार तक देने से मल के साथ रक्त स्राव या वार-वार मल की प्रवृत्ति कम हो जाती है । —सकलित

नाभी टलने पर—नाभी के स्थानच्युत होने पर उदर वेदना एव बार-वार मल प्रवृत्ति होती है। ऐसी दशा मे इसके पत्तो का रस गोदुग्ध मे मिलाकर पिलाने से वमन होकर नाभी यथास्थान आजाती है। पीडा तथा मल प्रवृत्ति भी दूर होती हे । वमन होने पर दूध भात (चावल) या दूध दलिया खिलावे । —व गु और गा औ र

मूल—वेला की जड रक्त शोधक, गर्भाशयोत्तजक, आर्त्तवजनन तथा वृष्य है । रक्त विकारो मे यह उपयोगी है ।

(५) रजोरोध या कष्टार्त्तव तथा ध्वजभग और रक्त पित्त पर—इसकी जड का मोटा चूर्ण कर ३ माशा की मात्रा मे २२ तोला जल मिला चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर दिन मे २-३ वार सेवन कराने से शीघ्र ही ३ दिन मे मासिक धर्म की शुद्धि होकर रज स्राव कम होना, कष्ट के साथ होना, गर्भाशय मे दर्द होना आदि विकार दूर होते है। आर्तव की प्रवृत्ति नियमित हो जाती है ।
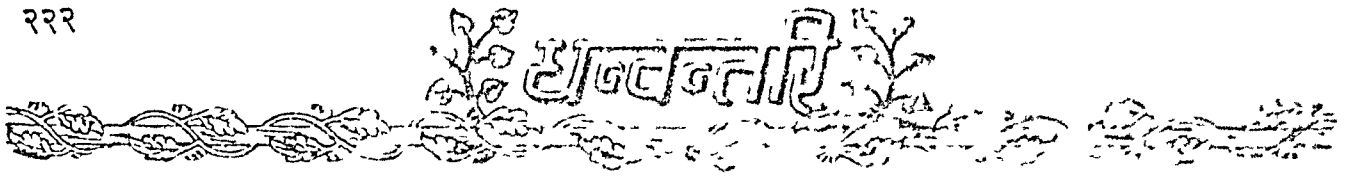
प्रसूतिस्राव–प्रसव काल मे होने वाले अनियमित रक्त स्राव (Lochia) पर उक्त क्वाथ को या मूल के स्वरस को योग्य मात्रा मे शहद मिलाकर सेवन कराने से प्रसूति स्राव यथायोग्य होकर अपत्यपथ साफ हो जाता है।

ध्वजभग या नपुन्सकता की स्थिति मे जड को जल के साथ पीस छानकर पिलाते है। तथा बस्ति प्रदेश पर उसके पुष्पो का कल्क लगाते हैं। —सकलित

रक्तपित्त पर–जड के क्वाथ को छानकर, ठण्डा कर उसमे खाड व शहद मिला पीने से लाभ होता है।

नोट–मात्रा-चूर्ण १ से ४ माशा। क्वाथ ५ से १० तोला।

बेलाडोना‡ (Atropa Belladona)

धतूरा या कण्टकारी कुल (Solanaceae) की इस बूटी का सचित्र परिचयात्मक विवरण इस ग्रन्थ के प्रथम भाग के 'अङ्गूर शेफा' के प्रकरण मे दे दिया गया है। यहा उसका प्रयोगात्मक शेपाश दिया जाता है।

इसके पत्र का प्रयोग-चूर्ण, टिंक्चर, घन सत्व तथा द्रव सत्व निर्माण के लिए किया जाता है। मूल का प्रयोग--मलहम, प्लास्टर, लिनिमेट, गुदवर्ति (Suppository) आदि बनाने के कार्य मे होता है। एट्रोपीन इसका ही क्रियाशील प्रधान सत्व है। यह एट्रोपीन गन्ध एव रग हीन कणो के रूप मे मिलता है। इसके जलीय घोल का प्रयोग इन्जेक्शन द्वारा भी किया जाता है। धतूरे मे भी एट्रोपीन पाया जाता है।

वाह्य प्रयोग—बेलाडोना एव एट्रोपीन का शोषण त्वचा के द्वारा भलीभाति होने के कारण इसका प्रयोग लिनिमेट [लेप] प्लास्टर आदि रूपो मे किया जाता है। अलकोहल, ग्लिसरीन, क्लोरोफार्म तथा वसा के साथ मिलाकर इसका वाह्य प्रयोग करने से इसके क्षाराभ त्वचा द्वारा चूस लिये जाते है। यदि त्वचा क्षारयुक्त या छिली हुई हो तो यह चूषण क्रिया और भी शीघ्रता से होती है। इसका प्रमुख कार्य त्वचा स्थित सज्ञावह नाडियो के अग तन्तुओ पर होता है। जिससे उनका अवसादन होता है। इसीलिये वेदनाहर एव स्थानीय सज्ञाहर (Local aneasthetic) औषधि के रूप मे इसका प्रयोग किया जाता है। इसके योग से तैयार किया हुआ प्लास्टर फोडे, फुन्सी, गठान, कठमाला की ग्रथिया, दूध के जमाव से हुई स्तनो की सूजन, सधि शोथ आदि रोगो पर लगाने से उनका पकाव नही हो पाता, पूय पैदा नही होना, पूय और दूषित रक्त का प्रतिबन्धकारी धर्म इसका बहुत उत्तम है। आमवात, वातरक्त, सिराओ की सूजन आदि विकारो मे भी इसका प्लास्टर लगाने से शोथ और वेदना कम होजाती है। योनिस्राव मे इसकी फलवर्ती योनि मे रखते है।

आतरिक प्रयोग—अत्यल्पमात्रा मे इसका यथायोग्य उत्तम अल्प उत्तेजनात्मक प्रभाव मस्तिष्क केन्द्रो पर या

‡ इस इटालियन भाषा के शब्द का अर्थ है "सुन्दरी स्त्री"। इटली की स्त्रिया अपनी आखो की सुन्दरता वढाने के लिये इसके फल का कुछ मात्रा मे व्यवहार किया करती थी। इस बूटी मे विद्यमान एट्रोपीन नामक तत्व आखो की पुतली का विस्तारक होने से मालूम होता है कि इसका व्यवहार करने वाली सुन्दर स्त्री की आखो की पुतलिया कुछ विस्तृत हो जाने से उसकी आखें नूतन आभायुक्त सुन्दर हो जाती होगी तथा मुखमण्डल की शोभा अधिक बढ जाती होगी। अत इसके पौधे का नाम ही बेलाडोना (सुन्दरी स्त्री) इटली के टर्नफोर्ट (Tournefort) नामक वैज्ञानिक ने रख दिया है।

—Beautiful flowers of Kashmir तथा Chambers Dictionary के आधार से।

इसके प्रभावशाली तत्व का नाम 'एट्रोपीन' यह ग्रीक भाषा के एट्रोपास (Atropos) शब्द से व्युत्पन्न है। इसका अर्थ है जीवन को समाप्त करने वाला मारक। वेलाडोना विषजनक एव मारक होने से इसे एट्रोपा बेलाडोना कहते है।

केन्द्रीय वातनाडी मण्डल पर होता है। किंतु अधिक मात्रा मे प्रयोग करने से यह केन्द्रीय वाताधिष्ठान (Motor Nervous System) को अत्यधिक उत्तेजित कर देता है। जिससे प्रलाप, वाचालता, मानसिक भ्रम, चाल मे लडखडाहट, दृष्टिशक्ति धुधली, कनीनिका का विस्फार होना, नेत्र व चेहरा लाल हो जाना, नाडी तेज एव श्वासोच्छ्वास अपेक्षाकृत शीघ्र होने लगना आदि लक्षण होते हैं। यदि इसकी मात्रा और भी अधिक हो तो इन लक्षणो मे उग्रता की वृद्धि होकर चित्त भ्रम, ज्ञान शून्यता (Delirium), आक्षेप (Convulsion) मूर्छा या सन्यास (Stupor) की स्थिति हो जाती हे। मारफीन (Morphine) या अफीम के सत्व की तरह एट्रोपीन का प्रयोग वेदनाहर औषधि के रूप मे भी होता हे।

हृद्रोग एवं फुफ्फुस सम्वन्धी विकारो पर—वेलाडोने का प्रयोग वहुत उत्तम होता है। हृदय के वायें अधर पुट की गति को धीमी करने तथा नाडी की तीव्र गति को शिथिल करने के लिये यह विशेष उपयोगी है। इसे हृद्य औषधियो के साथ भी दिया जाता है। इससे हृदय का फूलना भी वन्द होजाता है। हृद रोगो मे इसके आन्तरिक प्रयोग के साथ ही साथ इसकी जड को उवालकर या उसके घन सत्व को जल मे घोलकर हृदय पर लेप भी किया जाता है या इसका प्लास्टर लगाया जाता हे। हृत्पीडा, तेज धडकन आदि विकार को दूर करने लिये इसका प्रयोग अफीम की अपेक्षा श्रेष्ठ हे। पीडा यदि अत्यधिक हो तो इसे अफीम मे मिलाकर दिया जा सकता है।

इसके सत्व एट्रोपीन का प्रयोग कम मात्रा (१/५० ग्रेन) मे किया जाय तो वह हृदय की गति को कम कर देता है। किंतु अधिक मात्रा मे या थोडी मात्रा को ही कई वार देने से यह हृद्गति को वढा देता हे। किसी कारण हृद्गति अत्यन्त कम (४०-५० प्रति मि) हो जाती हो तो इसका प्रयोग सावधानी से कुछ अधिक मात्रा मे कर रोगी को वचाया जा सकता है। वेलाडोना श्वासनलिका की मासपेशियो के आक्षेप को दूर करता हे। साथ ही कफस्राव [Bronchial secretion] को भी कम करता हे इसलिये फुफ्फुस शोफ मे (oedema of the lungs) जो कि प्राय सद्य हृदयातिपात मे हुआ करता है एट्रोपिन १/१०० ग्रेन का इजेक्शन अत्यन्त लाभकर सिद्ध हुआ है। श्वास रोग [दमा], श्वास नलिका की सूजन तथा विशेषकर कुकर खासी मे वेलाडोने का उपयोग किया जाता है। इस कार्य मे यह अफीम की अपेक्षा श्रेष्ठ हे। अफीम से भी खासी का कष्ट कम हो जाता हे। किंतु उसमे श्वासोच्छ्वास के केन्द्र स्थान मे वहुत अशक्ति आजाती हे। कफ पडना कम हो जाता है किंतु इससे उक्त केन्द्रस्थान को उत्तेजना प्राप्त होती हैं उसकी शक्ति वढती है, तथा कास कष्ट होने पर भी कफ पडने मे कमी नही होती। कफ रोगो मे कफ अधिक वढ गया हो तथा खासने की शक्ति कम हो गई हो एव हृदय अशक्त हो गया हो उस समय इसका प्रयोग विशेष लाभदायक होता है।

ग्रथियो पर प्रभाव–शरीर की सभी ग्रथियो के स्रावो को (जो कि विभिन्न कार्यों के सम्पादनार्थ विभिन्न अवयवो से उत्सृष्ट होते है) यह (वेलाडोना एव एट्रोपीन) कम कर देता है या वन्द कर देता है। इसीलिये इसका प्रयोग आमाशयिक व्रण (Gastric ulcer) मे आमाशय स्राव कोवन्द करने के लिये किया जाता है। वस्तुत आमाशय व्रण एव परिणाम शूल की यह एक प्रधान औषधि मानी जाती है। स्वेद ग्रथियो से उत्सृष्ट होने वाले स्वेद को भी यह रोक देता है। अत स्वेदाधिक्य मे इसका प्रयोग अत्यन्त लाभकारी होता हे। ज्वर मे अथवा क्षय रोग मे अत्यधिक पसीने को रोकने के लिये अकेले वेलाडोने को या यशद भस्म के साथ दिया जाता हे। दुग्धस्राव पर इसका विशेष प्रभाव नही होता, किन्तु प्रसवोत्तर काल मे शिशु के मर जाने पर स्तनो मे दुग्ध भार को कम करने के लिये इसके लेप का प्रयोग किया जाता हे और उपयोगी भी सिद्ध हुआ हे। इससे स्तनो की सूजन दूर होती हे। यह मूत्रस्राव को नही वन्द कर सकता। अधिक मात्रा मे इसका प्रयोग करने पर मूत्राशयघात (Bladder paralysis) होकर मूत्राघात की दशा पैदा हो जाती है।

फिर भी यथोचित मात्रा मे प्रयोग करने से यह मूत्र

सम्बन्धी कई शिकायतो को दूर करता है। इसके तत्त्व मूत्र मार्ग से ही वाहर निकलने के कारण मूत्र मार्ग की वेदना, सकोच विकास की कमी, स्वप्न दोष, नीद मे मूत्र होना, आदि विकार दूर हो जाते है। अश्मरी मे भी यह कुछ अश मे लाभ पहुचाता है। गर्भाशय की पीडा को भी यह दूर करता है। इन विकारो मे इसका भीतरी व वाहरी दोनो प्रकार से प्रयोग किया जाता है।

नेत्र रोग—एट्रोपीन का प्रयोग नेत्र विकारो मे कम किया जाता है । प्राय होमेट्रोपीन (जो इसकी अपेक्षा कम विषैली होती है) उपयुक्त होती हे । एट्रोपीन का प्रयोग गुटिका, वटी या द्रव (घोल) के रूप मे किया जा सकता है।

विशेष दृष्टव्य—वेलाडोना को अधिक मात्रा मे छोटे वच्चे सहज ही मे सहन कर लेते हे, किन्तु वृद्धो पर इसका प्रयोग क्रमश अल्प मात्रा मे ही करना ठीक होता है। प्राय वे इसे विशेष सहन नही कर पाते। अत सावधानी से क्रमिक मात्राओ के उत्तरोत्तर अभ्यास से इसके प्रति थोडी सात्म्यता उनमे पैदा की जा सकती हे। कुछ लोगो को यह प्रकृत्या असात्म्य होता है। उन्हे अल्प मात्रा मे भी इसके प्रयोग से कुछ न कुछ उपद्रव (यथा त्वचा पर चकत्ते, त्वचा रक्त वर्ण की होना, ताप का वढना, हृत्स्पन्द, मुख व गले मे रूक्षता आदि) पैदा हो जाते हैं। इस प्रकार की असात्म्य रूपी प्रवृत्ति किसी विशिष्ट कुटुम्ब के सभी जनो मे पाई जाती है। ऐसे लोगो को या पित्तप्रकृति वालो को इसका प्रयोग नही करना चाहिये। या अत्यन्त सावधानी से करना चाहिये। कई विषो के लिये एट्रोपीन एक अत्यन्त उपयोगी औषधि है। यह स्वय विष होते हुये भी "विषस्य विषमौषधम्" इस उक्ति के अनुसार दूसरे महान विषो का प्रतिविष हे। अफीम, मारफीन, पिलोकारपीन, वछनाग, क्लोरोफार्म, हाइड्रोसायनिक एसिड इत्यादि कई विषो के मारक उपद्रवो मे इसका प्रयोग रासायनिक प्रतिविष (Chemical antidote) के रूप मे किया जाता है। एट्रोपीन का इजेक्शन प्राय मारफीन के साथ मिलाकर दिया जाता है। इसमे दो लाभ होते हे—१-शामक प्रभाव की वृद्धि होती हे। २-एक दूसरे का प्रतिविष होने मे विषप्रकोप या विषमयता की सभावना विल्कुल नही रहती।

वेलाडोने का विषाक्त प्रभाव एव उपचार—अधिक मात्रा मे इसके सेवन से इसके विषाक्त प्रभाव के रूप मे मुख मण्डल लाल हो जाना, मुह सूख जाना, स्वरभेद, अधिक तृषा, आखें लाल होना, पुतलियाँ प्रसारित होना, त्वचा शुष्क व उष्ण होना, शरीर का तापक्रम वढ जाना, नाडी का पहिले मन्द होना, पश्चात् तीव्र व दुर्बल होना, श्वास क्रिया का पहले मन्द होना वाद मे गहरी एव शीघ्रता से होना, चलने मे लडखडाना, शिरोभ्रम, प्रलाप, पश्चात् तन्द्रा, अन्त मे मूर्च्छा होकर मृत्यु होना, कभी-कभी मृत्यु के पूर्व आक्षेप होना आदि लक्षण होते हैं।

वेलाडोने की घातक मात्रा ६० बूद तथा एट्रोपीन सल्फेट की $\frac{1}{२४}$ से $\frac{1}{२}$ रत्ती तक है। घातक काल २४ घण्टे। मृत्यूत्तर रूप मे समस्त आभ्यतरिक अगो मे रक्ताधिक्य तथा श्वासावरोध के चिह्न मिलते हैं।

चिकित्सा—इसकी सम्पूर्ण चिकित्सा धतूरे के विष जैसी ही की जाती है विशेषत मैनफल, रीठा, राई आदि किसी भी एक वामक द्रव्य को जल मे घोलकर पिलावें तथा उगली की सहायता से वमन करावे। उदर पम्प के द्वारा आमाशय द्रव्यो को वाहर निकाले, आक्सीजन देवें। प्रलाप दूर करने के लिये सिर पर वर्फ की थैली रखे। उत्तेजक औषधि देवे। कृत्रिम श्वसन क्रिया करावे, टेनिन, चाय, चारकोल या मारफिन $\frac{1}{३}$ ग्रेन दे। इसके विष का निःसरण मूत्र मार्ग द्वारा होता हे। अत मूत्राशय को शलाका द्वारा खाली करते रहे। —सकलित।

आत्ययिक विशिष्ट प्रयोग—

[१] वातज वेदना पर—(लिनिमेंट) लिक्विड एक्स्ट्रेक्ट बेलाडोना दस औंस कपूर १ औंस, वाष्प जल २ औंस और आल्कोहल २० औंस तक लेकर प्रथम कपूर को आल्कोहल ६ औंस मे मिला द्रव करे। फिर सब को मिलाकर २० औंस लिनिमेंट [मर्दन] तैयार करे। इसे २४ घण्टे रखकर छान लेवे। इसका उपयोग वेदना निवारण के लिये मर्दन रूप मे किया जाता है। वातज शूल

एवं वेदनायुक्त रोगो मे यह विशेष उपयोगी है। गृध्रसी आदि वात रोगो पर मर्दन करने से वेदना दूर होती है। हृदय शूल मे हृदय पर भी मर्दन किया जाता है। राजयक्ष्मा मे वक्ष प्रदेश की मासपेशियो मे उग्रता तथा त्वचा मे स्पर्श शक्ति की अधिकता होने पर इसका उपयोग किया जाता है। एव प्लास्टर भी लगाया जाता है। स्तनो मे वेदना होने पर इसकी मालिश सत्वर लाभ पहुचाती है।

[२] कर्णशूल पर—इसका अर्क [टिंक्चर बेलाडोना] १ भाग मे ग्लिसरीन ४ भाग मिलाकर रखे। इसकी २-४ बूदें दिन मे दो वार कान मे डालने से शीघ्र लाभ होता है। —रसतत्रसार।

[३] गुदभ्रंश पर—वेलाडोना ४ तोला, ग्लिसरीन २ तोला और गेरु का महीन चूर्ण १ तोला इनको एकत्र खरल मे खूब घोट कर रख लो। प्रथम गुदा को गरम पानी से अच्छी तरह धो पोंछ कर तथा थोडा सा घृत चुपटकर गुदा को भीतर कर, ऊपर से यह लेप एक साफ कपडे पर लगाकर गुदा पर रख देवें। ऊपर से लगोट कस दें। इस प्रकार २४ घण्टे मे दो वार करें। पथ्य मे सादा ताजा तरल भोजन दाल दलिया आदि देवें। यह प्रयोग योनिकन्द [योनि बाहर की ओर निकल आना] पर भी लाभकारी है। —आ चिकित्सक

(४) अर्श पर—एक्स्ट्रैक्ट वेलाडोना, वेसलीन, कपूर, नीम का तैल लेकर प्रथम नीम तैल मे वेसलीन मिलाकर कुछ गरम करे। पिघलकर एक दिल हो जाने पर उसमे शेष द्रव्यो को मिला एक जीव करले। इसे अर्श के मस्सो पर लगाकर सेक देने से विशेष लाभ होता है, शोथ तथा पीडा दूर होती है। शरीर के किसी भी भाग मे शोथ तथा पीडा हो तो इसके मर्दन से दूर होती है। इसे यूनानी मे मरहम नायाव कहते हैं।

प्रमेह पर—एक्स्ट्रैक्ट वेलाडोना और अफीम ३-३ माशा, मेथीलेटिड स्प्रिट ५ तोला सबको एकत्र खरल कर २-३ दिन धूप मे रखें। आवश्यकतानुसार रुई से शिश्न पर लगाने से यह लिन्ना शिश्न की त्वचा मे बेहोसी पैदा कर प्रमेह को लाभ पहुचाता है, उत्तेजना को कम करता है। इसे यूनानी मे 'मुखदर' [सुप्ति तिला] कहते है।

—यूनानी चि० सा०।

नोट—यूनानी के 'दवाये मनूम' मे इसकी जड का चूर्ण मिलाया जाता है।

(६) वेदनाशामक वेलाडोनासव—इसके पत्तो का जौकुट चूर्ण २½ तोला मे मद्य (रेक्टिफाइड स्प्रिट) २½ रत्तल (पौंड) मिलाकर काच की बोतल मे दृढ काग लगाकर रख देवे। ७ दिन बाद छान लेवे।

मात्रा—५-१५ बूद तक जल के साथ सेवन से श्वास विकार एव अन्य वात कफ जन्य वेदना शमन होती है। कम्प, अपस्मार, योषापस्मार (हिस्टीरिया), कुक्कर कास आदि रोगो को भी यह दूर करता है।

—स्वकृत (वृहदासवारिष्ट सग्रह)

नोट—मात्रा—शुष्क पत्र चूर्ण ¼ से ½ रत्ती तक। एट्रोपीन सत्व वेलाडोना [यह रङ्ग एव गधहीन कणो के रूप मे होता है। इसके जलीय घोल का प्रयोग इन्जेक्शन मे भी किया जाता है।] मात्रा $\frac{1}{240}$ से $\frac{1}{60}$ ग्रेन तक।

टिंक्चर वेलाडोना ५-३० बूद। एक्स्ट्रैक्ट वेलाडोना लिक्विड ¼-१ बूद।

नोट न० २—

लक्ष्मणाकन्द—यह भी वेलाडोना का एक भेद है।

इसे भारतीय बाजार मे लछमना, लछमनी, म० गु० सस्कृत और बगला मे लक्ष्मण, अग्रेजी मे मेण्ड्रागोरा (Mandragora) लेटिन—एट्रोपा मेड्रागोर (Atropa mandragoro) कहते है। यह एक बहुवर्षायु क्षुप का कन्द है। पत्र—चौडे, नोकदार, डठलदार, फल आवले के समान पीतवर्ण के तथा कन्द या जड गाजर के जैसा होता है।

यह उत्तरी भारत, नेपाल तथा चम्पारन, दरभगा आदि मे पाया जाता है। चम्पारण की ओर जो कन्द पाया जाता है वह गर्भाशय के बच्चे के आकार जैसा होता है। कन्द मे एक प्रकार की तिक्त गध आती है। कन्द

एव कन्द की छाल व पत्र औषधि कार्य मे आते है ।

गुणधर्म व प्रयोग—

बेलाडोना मे जो विष होता है, उसका रूपान्तर हलका विष इसमे होता है। शेष इसके गुणधर्म बेलाडोना के समान है । किन्तु यह उसकी अपेक्षा मृदुस्वभावी औषधि है। इसके सूखे कन्द मे और भी हलका प्रभाव रहता है। इसे त्वचा मे लगाने से त्वचा मे स्पर्श शून्यता आ जाती है। इससे स्थानिक पीडा का कष्ट भी होता दूर है। अल्प प्रमाण मे यह कुछ नशा लाने वाला एव बाजीकरण हे । इसका विपाक्त द्रव्य बेलाडोना के एट्रोपीन या खुराशानी अजवायन के सत्व हायोसायमीन Hyoscyamine के समान गुणधर्म युक्त होता है। किन्तु त्वचा मे शून्यता लाने का गुण धतूरे के समान होता है।

किसी प्रकार की शस्त्र क्रिया करने के पूर्व स्थानिक शून्यता लाने के लिए इसके कन्द की छाल घिसकर या पीसकर लगानी चाहिये। उसके पत्ते पीसकर शोथ पर बाधने से लाभ होता है।

गर्भधारणार्थ—हमारा अनुभव है, कि इस कन्द को मासिक धर्म के चौथे दिन दूध मे पीसकर पिलाने से गर्भाशय दोष के कारण जिन स्त्रियों मे गर्भ धारण नही होता उन्हे गर्भ रहता और उचित सभाल रखने से सन्तान उत्पन्न होती है।

इसके कन्द मे स्त्रीलिंगी और पुल्लिङ्गी भेद होता है। स्त्रीलिंगी कन्द के व्यवहार से कन्या तथा पुल्लिगी कन्द के व्यवहार से पुत्र की उत्पत्ति होती है।

—श्री आयुर्वेद वृहस्पति श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल रचित अगदतत्र से साभार।

ध्यान रहे—पुत्रदा, पुत्रकदा, प्रसिद्ध लक्ष्मणा बूटी इससे भिन्न है। आगे यथास्थान 'लक्ष्मणा' का प्रकरण देखिये।

—सपादक

बेलि (Limonia Monophilla)

निम्बुक कुल (Rutaceae) के इस कटीले छोटे वृक्ष या क्षुप के पत्र—३-६ इन्च लम्बे अयुग्म पक्षाकार (विषम सख्यक पत्रक युक्त पख के आकार के) प्रत्येक युग्म (जोडे) पत्रको के मध्य का पत्र दण्ड पखाकार फैला हुआ, पत्रक सख्या मे ५-६ तक पुष्प—प्रत्येक सलाका पर गुच्छो मे रक्ताभ श्वेत वर्ण के छोटे-छोटे, फल—छोटे-छोटे गोल मासल (लाल लुआव युक्त गूदेदार) पकने पर काले तथा अत्यन्त खट्टे होते हैं।

यह वनौपधि पश्चिमी एव दक्षिणी भारत के शुष्क पहाडी स्थानो मे तथा शिमला, कुमाऊ, बिहार, बगाल एव आसाम आदि मे विशेष पाई जाती है ।

नाम—

हि०—बेलि, बेली, बेलसियान, काटाकेरी इ । म —रानलिंबू, कावट, टाडशा, नाडवेल इ । ले—लिमोनिया मोनोफिला, लि क्रेनुलाटा (Limonia Cranulata), लि एसिडिसिमा (L Acidicimma)।

गुणधर्म व प्रयोग—

पत्र—आक्षेपहर है। अपस्मार पर—पत्रो का फाट या क्वाथ विशेष लाभकारी माना जाता है।

मूल—रेचक व स्वेदल है। उदरशूल तथा हृद्रोग मे उपयोगी है।

फल—शुष्क फल—पौष्टिक हैं। आत्र सम्बन्धी विक्षोभ आदि विकारो पर लाभकारी है। चेचक तथा तीव्र हठीले एव विनाशक ज्वर के सक्रमण का निरोधक है।

पके फल का लाल रग का लुआवयुक्त गूदा कई जगम विषो का उत्तम प्रतिबन्धक माना जाता है।

बेलिया पीपल—देखे—पाकर मे नोट।

बेलीपाता (Hibiscus Tillaceus)

कर्पास कुल (Malvaccae) के इस मध्यम प्रमाण के वृक्ष के पत्र–कपास के पत्र जैसे ४-५ इंच लम्बे ३-५ इच चौडे कुछ गोल, हृदयाकृति के रोमश। पुष्प–गुच्छोमे श्वेत, गुलाबी रग के छोटे छोटे वर्षाकाल मे आते हैं।

यह वनौषधि दक्षिण के पूर्वी एव पश्चिमी घाटो मे, तथा बगाल एव उत्तर पश्चिमी हिमालय के प्रदेशो में पैदा होती है।

नाम–

हिन्दी मे–बम्बई की ओर बेली पाता, बेलपाता, पोला, पुला, वारंगा, पोटारी। ब०—वोला, चेलवा। गु०—म्होटी हिरवनी। अ—कार्कवुड (Cork wood) ले—हिबिस्कसटिलियासेस, कायडिया केलिसिना (Kydia Calycina)

गुणधर्म व प्रयोग–

जड–ज्वर एवं वातनाशक है। मूत्र-दाह पर–जड की छाल का क्वाथ देते हैं।

आमवात, सधिवात, कटिशूल आदि विकारो मे लेप करने की औषधियो मे यह मिलाई जाती है तथा इसके क्वाथ का बफारा दिया जाता है।

छाल का चूर्ण वामक है। पत्र—मृदु विरेचक तथा व्रण पूरक है। पत्रो का क्वाथ व्रणों, जख्मो के प्रक्षालन के काम मे आता है।

पुष्प—पुष्पो को दूध मे उबालकर कान मे डालने से कर्णशूल मे लाभ होता है।

फल—त्वचा की शिथिलता दूर करने के लिये फलो का पीला रस त्वचा पर रगडा जाता हे।

नोट—पीछे 'पूली' का प्रकरण देखिये।

बैंगन (Solanum Melongena)

शाक वर्ग एव कण्टकारी कुल (Solanaceae) के इस सुप्रसिद्ध फल-शाक के वर्षायु या द्विवर्षायु कण्टकित २-४ फुट ऊंचे क्षुप के पत्र कटीले ३-६ इच लम्बे (किसी मे काटे नही होते) अण्डाकार, विस्तृत अनेक भागो मे विभक्त, पत्र वृन्त–१ इच या अधिक लम्बा, पुष्प–कटेरी के पुष्प जैसे, नीलाभ, बैंगनी रग के, फल—२-६ इच लम्बे गोल, रक्ताभ नीले, काले, श्वेतहरिताभ, श्वेतादि रग के होते है। फलो का व्यवहार शाकार्थ विशेष होता है। वृक्ष पर फूल व फल वर्ष मे कई बार आते रहते है।

यह भारत मे—सर्वत्र शाक के लिये बोया जाता है।

नोट—फल के आकार तथा रग भेद से यह कई प्रकार का होता है। साधारणत लम्बगोल जाति को बैंगन तथा गोल जाति को भाटा कहते है। नीलाभ कृष्णवर्ण का (बैंगनी रग) का अधिक पाया जाता है, इसीके कारण इसे बैंगन की तथा रङ्ग को बैंगनी रङ्ग की सज्ञा प्राप्त हुई हे। श्वेत वर्ण का गोल एव लम्बा बैंगन उक्त बैंगन की अपेक्षा कम पाया जाता है, गोलाकार श्वेत वर्ण का कोमल भाटा प्रशस्त माना गया है। हरिताभ पीतवर्ण का या श्वेत रङ्ग मिश्रित बैंगन भी अल्प परिमाण मे मिलता है, गुणधर्म मे यह प्राय श्वेत के जैसा ही होता है। इन सबके गुणधर्म व प्रयोग आगे देखिये।

महाराष्ट्र मे तथा अन्यत्र भी एक 'बेली-बैंगन (बेलीवागी) होती है। इसके वृक्ष प्राय बहुवर्षायु होते है तथा वर्ष मे ३-४ वार फल देते है जो खूब लम्बे, पतले, वेलनाकार, बैंगनी रङ्ग के या श्वेत वर्ण के भी होते है। यह भी गुणदायक है।

एक कुली बैंगन (Solanum Esculentum) इसीका एक भेद है। इसके वृक्ष प्रस्तुत प्रसग के बैंगन के वृक्ष जैसे ही होते है। यह उक्त 'बेली बैंगन' का ही एक भेद है। इसके फल लम्बे, रक्ताभ श्वेत वर्ण के
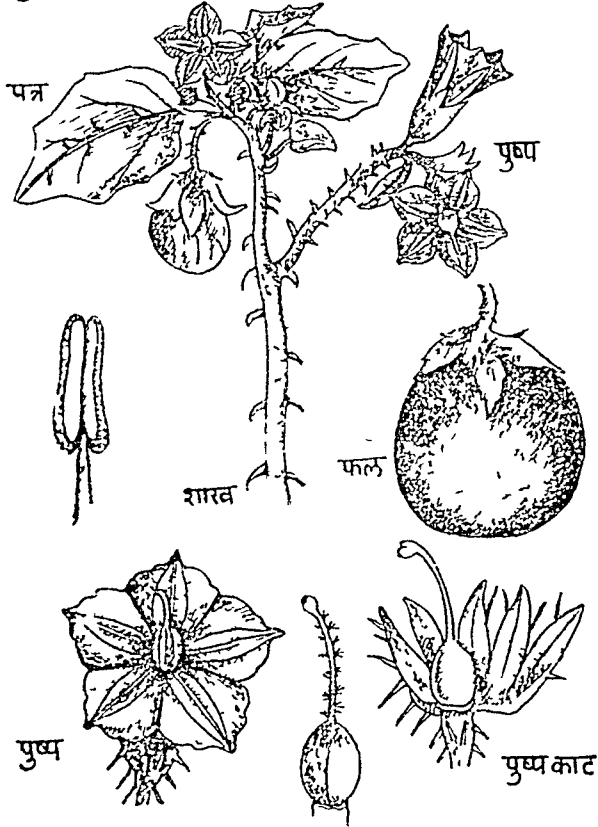
बिल्कुल श्वेत वर्ण के होते है। गुणधर्म आगे देखिये। इसे बगला मे 'कूलिबैगुन' कहते है।

वन भाटा या बैंगन के जगली भेद का सक्षिप्त वर्णन 'कटेरी वडी' के प्रकरण मे (भाग २ मे) देखे।

'राय बेगन (S Ferox)' इसीके कुल का होने पर भी इसके स्वरूप मे विशेष भेद होने से इसका वर्णन यथास्थान 'राय बैंगन' के प्रकरण मे आगे देखिए।

नोट न० २—यह भारत का बहुत प्राचीन फल है। चरक मे इसका उल्लेख है तथा सुश्रुत मे (मू अ ४६) इसके गुणधर्म दिये गये है।

नाम—

स—वृन्ताक (वडावृन्तयुक्त होने से), वार्ताक (वृत्ताकार या गोलाकार होने से या 'वार्तं स्वास्थ्यमाकयति' —स्वास्थ्य को विकृत करने से), भण्टाक (वृत्ताकार फल), हि—बैंगन, बेगुन, भटा, भाटा, बताऊ। म—वांगी, वागे। गु—वेगनी, रीगणा। ब—वेगुन, बोग वातकि। अ—ब्रिजाल (Brinjal) एगप्लाट (Eggplant), ले—सोलेनम मेलोगिना।

रासायनिक संगठन—

ताजे फल मे ८८ से ९१ ५% जल, खनिज पदार्थ ० ५%, प्रोटीन १ ३%। बसा ० ३%, कार्वोहाइड्रेट ६ ४%, कैलशियम ० ०२%, फासफोरस ० ०६%, लोहा १ ३ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम, विटामिन 'ए' ५ इ यू प्रति सौग्राम, विटामिन 'बी१' १५ इ यू प्रति सौ ग्राम, विटामिन 'बी२' काफी प्रमाण मे तथा विटामिन 'सी' २३ मिलीग्राम प्रति सौ ग्राम पाया जाता है।

शुष्क फल मे ईथरएक्स्ट्रैक्ट ४ २०%, अलब्युमिनाईड १६ ३७%, विलेय कार्वोहाइड्रेट ५५ २३%, काण्डसूत्र (तन्तू) १७% और राख या क्षार ७ २०% पाया जाता है। हरी पत्तियो मे रक्तविकार नाशक विटामिन 'सी' होता है।

प्रयोज्याङ्ग—फल, बीज, पत्र व मूल।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रुक्ष, तीक्ष्ण, मधुर, उष्णवीर्य, विपाक मे मधुर (कई कटु मानते है), किंचित पित्तजनक, रोचन, दीपन, यकृदुत्तेजक, यकृद्विकार नाशक, हृद्य, अनुलोमन, मूत्रल, वेदनास्थापन, वल्य, बृहण, तथा अर्श, कफ पित्त विकार, अनिद्रा, शोथ, प्लीहा, अपची, अदित, गृध्रसी आदि वात विकारो मे प्रयुक्त होता है। सर्वसामान्यत बैंगन कफ व पित्तको बढाने वाला होता है। कफ पित्तकारक द्रव्य चतुष्टय मे इसकी गणना है (उडद, दही, मछली व बैंगन)।●

कोमल फल—जिसमे बीज न पडे हो, ऐसे कोमल 'बतिया बेगन' लघु, मधुर, चक्षुष्य, कफनाशक तथा अरुचि, ज्वर, अग्निमाद्य, त्रिदोष, यकृद्विकार, विबन्ध, पित्तार्श मे पथ्यकर होते है। यह कच्चा भी खाया जाता है, छिलका नही उतारना चाहिए।

● कफपित्तकरा माषा कफपित्तकर दधि।
कफपित्तकरा मत्स्या वृन्ताक कफपित्तकृत ॥

—भा. प्र.

कोमल बैंगन—कफ पित्तहर है।

मध्यम कोमल बैंगन—लघु, पित्तकारी होता है।

बड़े बैंगन—गुरु, शीतवीर्य, मूत्रल, वृष्य, धातुवर्धक, सारक, किंतु त्रिदोष विशेषत कफकारी होते है।

पक्व (डाल का पका हुआ)—लघु-किंतु वात एव त्रिदोष प्रकोपक होता है।

अगारे पर भुना हुआ बैंगन—अत्यन्त लघु, किंचित पित्तकर, दीपन, पाचन तथा कफ, मेद व वातनाशक है। इसमे तेल और नमक मिलाने पर यह गुरु व स्निग्ध होता है।

रंगानुसार बैंगन के गुणधर्म—

श्वेत बैंगन—जो आकार मे मुर्गी के अण्डे के जैसा होता है। अर्श रोग मे इसका भर्ता विशेष हितकारी है। गुणधर्म मे साधारण बैंगन जैसा ही किन्तु अपेक्षाकृत हीन गुण युक्त होता है। वनौषधि विज्ञान के विशेषज्ञ आचार्य श्री विश्वनाथ द्विवेदी का कथन है कि—"श्वेतवर्ण मे सब रङ्ग मिश्रित होते हैं, किंतु इसमे अग्नियाश का तत्व अधिक होता है। इस पर सूर्य की किरणो का प्रकाश पड़ने से विशेष गुणयुक्त द्रव्य पृथ्वी से शोषित होते है, जिनमे अग्नियाश अधिक होता है। यह विशेष रूप से यकृत का कार्य जो पित्त निर्माण व शर्करा का द्राक्षौज मे परिवर्तन करने का होता है, उसमे यह सहायक होता है। इसको अधिक मात्रा मे खाने से विरेचन अधिक होता है, तथा पित्त, पक्वाशय मे अधिक आकर अपने विस्र, उष्ण, तर गुणो से मल को पतला कर देता है, शरीर मे उष्णता पैदा करता तथा और भी अधिक खाने से अरुचि, विरसता, अग्निमाद्य, अरति पैदा करता है। बच्चो को बाल यकृत रोग होने पर इसका उपयोग पूर्ण लाभ देता है। यह कम मात्रा मे सेवन से पाचक संस्थान के लिये बलदायक, तथा अधिक मात्रा मे मल को पतला करने वाला होता है। यह उदर मे पहुच कर समान वायु के केन्द्र को प्रेरणा देकर पाचन व शोषण मे अधिक सहायता देता है।

बैंगनी रंग का—यह अग्नि व वायु तत्व की प्रधानता से बनता है। पुष्पोद्गम के बाद जैसे ही इसमे फल आते है, तैसे ही यह सूर्य किरणो के सप्त वर्णो से अधिक रूप मे बैंगनी वर्ण ग्रहण करने लगता है। फल मे इस तत्व के अधिक सग्रह होने से लोहाश अधिक मात्रा मे पृथ्वी से शोषित होता है। फल का वर्ण ऊपर से गाढे बैंगनी रग का व नीचे श्वेत वर्ण से भर जाता है। (यदि इसे बीच से काटकर धूप मे प्रकाश या हवा मे रख दे। तो यह किंचित पीतवर्ण का हो जाता है। इसमे से रस निचोडना चाहे तो अत्यल्प मात्रा मे मिलेगा।) यह कम मात्रा मे यकृत कार्यावरोध को कम करता है। किन्तु श्वेत की तरह लाभदायक नही होता। अधिक मात्रा मे यह आत्रो की शोषण क्रिया को बढा कर मल को गाढा करता है, तथा अपान वायु के क्षेत्रो का कार्य अव्यवस्थित कर देता है। यही कारण है कि बैंगनी बैंगन कभी-कभी विबन्ध, आध्मानादि बढाकर मल को शुष्क कर उदर की स्वाभाविक दशा मे परिवर्तन कर देता है। अब यह कम मात्रा मे वात दोषशामक अधिक मात्रा मे सेवन से वात प्रकोपक हो जाता है। इस प्रकार के गुणो के कारण ही यह कहावत (किवदन्ती) प्रचलित हो गई कि—

"भटा एक को पित करे, करे एक को वात" यद्यपि यह सत्य है, तथापि इसने भटा के ऊपर साधारण जनता की अरुचि उत्पन्न करदी और मनुष्य जाति के लिये विशेष लाभप्रद इस वस्तु के प्रति एक घृणात्मक प्रचार होगया। वास्तव मे यह पृथ्वी तल पर यकृत के कार्य को सुधारने वाली अमृत की तरह लाभदायक वस्तु है।

ईषत बैंगनी व हरित वर्ण मिश्रित बैंगन तथा इसी प्रकार कम या अधिक वर्ण मिश्रित इसके कई प्रकार के भेद होते है। इन सब मे एक ही सा गुण दोष होता है। इसका उपयोग दुर्बलता, रक्तात्पता, यकृत की क्रियाहीनता, विबन्ध व पाडु रोग मे विशेष लाभदायक है।

हरित, पीत या श्वेत रग मिश्रित बैंगन के भी गुण श्वेत बैंगन से मिलते जुलते है।

(रसायन के फलाक से साभार)

[१] हिक्का, श्वास, यकृद्विकृति, रक्तगुल्म तथा अर्श पर—

हिक्का और श्वास के रोगियो के लिये—बैंगन का

यूप, जिसमे दही त्रिकटु चूर्ण और घृत डाला गया हो, विशेष हितकर होता है। रोगी को पुराने शालिचावल या साठी के चावल, गेहू तथा जौ का भोजन हितकर है।

—च चि अ १७

यकृद्विकृति पर—असली नौसादर ५-६ तोला लेकर श्वेत बैगन के रस मे खरल कर टिकिया बना हाडी मे डमरू यत्र की विधि से जौहर उडाओ। फिर उस जौहर (सत) को निकाल एक बैगन को बीच से चीर कर उसमे भर दो और एक बोतल मे अन्दर कर दो तथा उस बोतल का मुह दूसरी बोतल के मुख पर फिट कर दो ताकि तेल नौसादर निकल कर इसमे टपके। इसका रग ब्राडी के समान होगा। जिस रोगी को यकृत की खराबी हो, चाहे कैसा ही परेशान क्यो न हो, इसकी ५-६ बूदें बतासे मे या जल से प्रातःकाल ३ दिन देवें। इसके बाद मात्रा कम करते जावे। रोगी सदैव के लिये इस रोग मे छूट जायेगा। सैंकडो बार का अनुभूत है।

—डा० नरेन्द्रसिंह नेगी के गुप्त रोग रत्नावली से साभार।

रक्त गुल्म पर—बैगन को आग मे भून कर भरता बनालो। उसे रेडी के तेल मे छौक कर भून लो (यदि भरता ५ तोला हो तो रेडी तेल १ तोला मे भूने) उसमे कच्ची हीग १ माशा तथा सेधा नमक १ तोला मिला, कुछ गरम रहते ही गुल्म के स्थान पर लेपकर ऊपर से रेडी का पत्र रख कपडे से बाध देवे। ऐसा करने से गुल्म मुलायम पड कर कम होने लगेगा तथा २०-२५ दिनो मे पूर्ण लाभ होगा। रोगी को साथ ही निम्न प्रकार से बना हुआ हरड चूर्ण का सेवन करावे—

छोटी हरें १० तोला को ५ तोला रेडी तेल मे भून ल। फिर भुनी हीग, जवाखार, काला नमक और सैंधा नमक १-१ तोला तथा कबीला २ तोला मिलाकर पीस छान ले। प्रात साय ६-६ माशा गरम जल के साथ लिया करे। इससे दस्त साफ होकर रक्त गुल्म दूर हो जावेगा।

—भा गृ चि

अर्श पर—बैगन को सोये के क्षार के जल मे सिजा कर घृत मे भन लेवे। इसे गुड मे मिलाकर भर पेट खाने के बाद तक पीने से ७ दिन मे अत्यन्त प्रवृद्ध सहजार्श के मस्से भी अवश्य नष्ट हो जाते हैं।

—वृ भा [भा भै र]

(२) पक्षाघात, गृध्रसी, आध्मान, प्लीहा, तथा अनियमित मासिक धर्म पर—

पक्षाघात पर (लकवा)—बैगन को धोकर छोटे२ टुकडे कर १० तोला टुकडो को थोडा जल तथा बराबर का घृत मिलाकर पकावें। फिर श्वेत जीरा (घृत मे सेंका हुआ) ४ रत्ती तथा शक्कर १० तोला मिला ठण्डा कर प्रात साय सेवन करें। मासाहारी कबूतर का मास रस लेवें तो ठीक है। इस प्रकार ७ दिन के सेवन से शरीर का दर्द, सन्धिवात, कब्जी का रोग मिट जाता है। पथ्य मे—दूध गेहू की रोटी खायें। गरम पानी मे स्नान करें व गरम जल पीवें। यह प्रयोग ३५ वर्ष से ऊपर की आयु वालो को विशेष हितकर है। लम्बे प्रयोग से पुराना लकवा भी दूर हो जाता है।

—वैद्य सीतारामजी जोगी भिषगाचार्य, लोहार्गल तीर्थ—शेखावाटी

गृध्रसी पर—बैगन को रेंडीतेल मे तल कर उसमे यथोचित हीग व नमक मिलाकर सेवन से लाभ होता है।

—चक्रदत्त।

आध्मान—जिसके उदर मे वात के कारण गुब्बारा सा होता है, गैसेस का सचय हुआ करता है, उसके लिये बैगन का साग [बैगन ताजे, लम्बे व काले या बैंगनी रग के लेवे] सेवन करना हितकर है। साग मे ताजा हरा लहसुन, या शुष्क लहसुन की फली मिला कर हीग की छौक देनी चाहिये। यह साग थोडी मात्रा मे खाते रहने से कोई अपाय नही होता, उदर मे गैस सचय का प्रमाण कम होता है। —आरोग्य मदिर।

प्लीहा वृद्धि पर—बार- बार मलेरिया ज्वर से आक्रान्त होने के कारण बढी हुई प्लीहाग्रस्त रोगी यदि कुछ बैगन का साग विधिवत् बनाकर खाया करे तो प्लीहा पूर्ववत् यथायोग्य ठीक हो जाती है।

—आरोग्य मदिर।

अनियमित, मासिक धर्म पर—जिस स्त्री को समय पर यथायोग्य प्रमाण मे मासिक स्राव [ऋतु स्राव] नही होता अनियमित कभी भी हो जाया करता है। या मासिक धर्म के समय अतिशय स्राव होता है पीडा होती है इत्यादि विकार होते हैं उसे इसकी साग के सेवन से उन विकारो मे वहुत कुछ लाभ होता है। पथ्य मे ज्वार की रोटी, वैगन का साग या भरता तथा अल्प प्रमाण मे गुड [१ तोला] प्रति २-३ दिन के अन्तर से लिया करें। कब्जी न होने पावे इसका ध्यान रखें।

आरोग्य मंदिर।

(३) वालको की पसली चलना (डिब्बा), अनिद्रा, आघात या चोटजन्य पीडा, गाठ की पीडा, शोथ, नारु, प्रस्वेद और धतूरे के विप पर—

वालक की पसली चलना या डिब्बा रोग पर—वैंगन को भूनकर उसमे सज्जीखार मिला उदर प्रदेश पर वाधते रहने से अति छोटे छोटे वैंगनो के डठलो को दूर कर छिद्रकर उनमे डोरा पिरो कर माला सी वना गले मे लटका देने से लाभ होता है। —व गु।

अनिद्रा पर—सायकाल के समय वैंगन के भरते मे या भरते के रस मे शहद मिलाकर सेवन से शीघ्र निद्रा आती है।

अथवा—इसके भरते मे श्वेत प्याज (१० तोला मे ३-४ माशा प्याज) मिलाकर खाने से उत्तम निद्रा आती है। —व गु।

आघात या चोटजन्य पीडा पर—वैंगन को भूनकर उसमे हल्दी व प्याज मिलाकर वाधते है। तथा भुने हुये वैंगन के रस ५-७ तोला मे थोडा गुड मिलाकर खिलाते है।

गाठ की पीडा पर—वैंगन को भूनकर गरम-गरम सुहाता हुआ वाधने से लाभ होता हे।

शोथ पर—वेदनायुक्त शोथ के स्थान पर वैंगन को पकाकर उसकी पुल्टिस वनाकर वाधते है।

नारू पर—वैंगन को भूनकर दही के साथ मिलाकर नारु के स्थान पर वाधते रहने से ७ दिन मे नारु का कीडा निकल जाता है। —यो. र.।

प्रस्वेद पर—वैंगन को कुचलकर उसका रस लगाने या पीसकर लेप करने से अधिक पसीना निकलना वन्द हो होता है।

हाथ पैरो मे शीतजन्य अधिक स्वेद आता हो तो वैंगन और पोस्त (अफीम का डोडा) दोनो को कुचलकर पानी मे औटाकर इस पानी से हाथ पैरो को धोते रहने से लाभ होता है।

शीतल व्यक्ति के पैरो के तलुवो से कभी-कभी अत्यधिक स्वेद स्राव हुआ करता हे। उसे चाहिये कि लम्बे वैंगनो को भूनकर या वफार कर उन्हे डेठ से लेकर अग्र भाग तक चीरा देकर रात्रि मे निद्रा के पूर्व पैरो के तलुवो पर रख कपडे से रात भर वाध रखे। यह प्रयोग ३-४ दिन करने से लाभ होता है। —आरोग्य मन्दिर

धतूरे के विप पर—वैंगन २० तोला को चाकू से वारीक कतर कर १ सेर जल मे खूव मसल कर छानले। ४-४ घण्टे से चार वार मे पिला देने से लाभ होता है।

—भा गृ. चि।

बीज—वैंगन के बीज हृदयोत्तेजक, अग्निमाद्य नाशक हृदयदौर्वल्यहर, विष्टम्भी तथा कास श्वास मे उपयोगी है।

(४) वच्चो के रोमान्तिका (खसरा, छोटी चेचक Measles) पर—

बीजो के महीन चूर्ण को जल के साथ मिलाकर पिलाने से कम से कम १ वर्प के लिये वच्चा खसरे से सुरक्षित रहता हे। उसे यह रोग नही होने पाता। इसके लिये लम्बी किस्म के वैंगनो के बीज लेना ठीक होता है। जिस घर मे खसरे का रोगी हो उस घर के अन्य लोग इस चूर्ण के सेवन से इसकी छूत से बच गये हैं।

—डा० सन्याल कलकत्ता।

(५) दन्तशूल मे—बीजो को आग मे जलाकर नलिका द्वारा उस शूल स्थान मे उसके धुये की धूनी देते है।

पत्र—वैंगन के पत्ते—मादक, कास श्वास हर तथा विपघ्न है।

(६) रक्तार्श, अनिद्रा, वमन तथा खुजली पर—

रक्तार्श के रोगी को पत्तो को महीन पीसकर उसमे जीरा और शक्कर मिलाकर देते है। रक्तस्राव बन्द होता है तथा पीडा भी दूर होती है।

अनिद्रा पर—पत्तो का रस २ तोला, श्वेत प्याज का रस २ तोला और उत्तम शहद १½ तोला एकत्र मिला रात्रि के समय सोने के एक घण्टे पहले देकर ऊपर से थोडा दूध पिला देवे। प्रगाढ निद्रा आयेगी तथा स्नायु मडल का तनाव कम होगा। तनाव व क्षुब्धता अधिक बढी हुई हो, तो यह स्वरस मिश्रण प्रात काल भी दिया जा सकता है।

—श्री भवानीशकर जी वैद्य, तपोवन (उदयपुर)

वमन निवारणार्थ—पत्र रस को अदरख के ताजे रस के साथ देते है।

खुजली पर—पत्तो को और फलो को कुचल कर उसमे शक्कर मिलाकर मर्दन करते है या लेप सा लगा कर थोडी देर बाद गरम पानी से धो डालते हैं।

[1] मूल—कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, आत्र सकोचक, कृमि नाशक, उत्तेजक, हृद्य, तथा कास श्वास, ज्वर, ब्रोंकाइटीस, वमन, श्वेत कुष्ठ तथा खुजली (Pruritis) आदि मे उपयोगी है। कष्ट प्रसूती, दतशूल, कालिक उदरशूल मे भी इसका उपयोग होता है। कास व प्रतिश्याय मे इसके उपयोग से कफ ढीला होकर शीघ्र निकल जाता है। मूत्र के समय होने वाली पीडा के निवारणार्थ इसके रस या निर्यास को दिन मे दो बार देते है।

(७) नेत्र विकार पर—

आख के जाले पर जड को जल के साथ घिस कर आजते है।

फूले पर—जड को गुलाब अर्क मे घोटकर गोली बना, शुष्क कर अपेक्षानुसार अर्क गुलाब मे या जल मे घिसकर लगाते रहने से लाभ होता है। अथवा जगली बैंगन की जड को नीबू के रस मे घिसकर दिन मे ३–४ बार नित्य लगाने मे भी शीघ्र लाभ होता है।

(८) नारु तथा अण्डवृद्धि पर—

नारु पर—उसकी जड को मनुष्य के मूत्र मे पीसकर गरम कर नारु पर रख ऊपर से पीपल का पत्ता रख बाध देने से वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। —यो र

अण्डवृद्धि पर—जड को जल मे महीन पीसकर लेप करे। —व गु

नोट—मात्रा-पत्र स्वरस ३-६ माशा। बीज चूर्ण ५–१० रत्ती। मूल चूर्ण ५-१२ रत्ती।

बैंगन का फल अधिक मात्रा मे भारी [गुरु] एव अपाचक होने से निर्बल एव रोगी के लिये हानिकर है, यह वातकारक तथा अर्शजनक होता है। हानि निवारणार्थ घृत, दुग्धादि स्निग्ध पदार्थ, सिरका और मास देते हैं।

किंतु बैंगन का विधिवत् उपयोग करने से धमनियो मे उभरे हुये दोष शात होते, नाडियो की जडता दूर होती, पाचन शक्ति बढती, वात कफ के विकार दूर होते, हृदय का दबाव कम होता तथा शरीर मे शक्ति व स्फूर्ति बढती है। मदाग्नि, जुखाम, अजीर्ण, पाडु, वात व्याधि, कास एव कानो के विकारो मे पथ्य है।

—श्री भवानीशकर जी वैद्य तपोवन (उदयपुर)

निम्न विकारग्रस्त व्यक्ति को बैंगन का खाना ठीक नही होता, प्रत्युत् हानिकर होता है। जिसके नेत्रो मे सदैव दाह जलन होती हो, नेत्र लाल रहते हो, इस प्रकार के नेत्र विकार ग्रस्त व्यक्ति को, जिसकी पित्त प्रकृति हो, उबकाई, जी मिचलना, मुख मे लाला स्राव विशेष हो, पित्ताधिक्य से वमन होती हो, शरीर मे दाह बना रहता हो, शरीर का तापक्रम बढा हुआ रहता हो, जिसे विबन्ध या कोष्ठबद्धता सदैव रहती हो, जिसे नकसीर [नाक से रक्तस्राव] होता रहता हो, जो जीर्ण अर्श रोग से ग्रस्त हो, रक्तस्राव होता हो, शोथ हो, जिस स्त्री को प्रदर हो या मासिक धर्म के बाद भी कई दिनो तक रक्तस्राव होता हो, ऐसे व्यक्तियो को बैंगन का साग, भरता या बैंगन मिश्रित कोई भी पदार्थ नही खाना चाहिये।

सर्व साधारणत स्वस्थ व्यक्ति को ऐसे बैंगन नही खाने चाहिए—जिसमे बीज बहुत हो, जो पककर पीले पड गये हो, तथा जो बहुत बासी कई दिनो के रखे हो, और शुष्क हो गये हो।

बैंगन का खाना शीतकाल मे हितकारी है । अन्य ऋतुओ मे स्वास्थ्य एव आरोग्य की दृष्टि से बैंगन सेवन ठीक नही होता । बैंगन खाने वालो को दही व ताजे तक्र का उपयोग आहार मे करते रहना चाहिये । इससे बैंगन से होने वाली हानि का बहुत कुछ निवारण हो जाया करता है ।

सक्षेप मे ध्यान रहे यद्यपि बैंगन गुणकारी है तथापि जिसकी प्रकृति के प्रतिकूल हो उसे उसका नही खाना ही उत्तम हे ।

विशिष्ट योग–

(१) वार्ताकु गुटिका—बैंगन (सुखाये हुये), सेहुण्ड [थूहर का शुष्क काण्ड] १६–१६ तोला, सैंधा, सचल व विडनमक १५–१५ तोला, आक की जड की छाल ३२ तोला और चित्रक मूल ८ तोला इनको एकत्र कूटकर सम्पुट मे बन्दकर अन्तर्धूम दग्ध करके, भस्म को बैंगन के रस मे खरलकर ४ रत्ती से ८ रत्ती तक की गोलिया बना लेवे ।

भोजन के पश्चात् इसके सेवन से भोजन शीघ्र पचता है । ये गोलिया जितने बार भी भोजन किया जाय उसे पचा देती है । कास, श्वास एव अर्श के रोगियो को हितकारी है । विसूचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोग को शात करती हैं । यह गुटिका कफ के ग्रहणी विकार मे लाभकारी है । —भै र । यह योग चरक चि स्था अ १५ मे क्षार गुडिका नाम से कहा गया हे ।

(२) बैंगन कल्प—(बालको के यकृद्विकार पर)—प श्री विश्वनाथ जी द्विवेदी, आयुर्वेद शास्त्राचार्य, भूतपूर्व प्रिंसीपल ललित हरि आयुर्वेदिक कालेज के मतानुसार "यह कल्प तब तक उपयोगी होता है, जब तक यकृत की रचनावस्तु मे अन्तर नही आता तथा वह बढा हुआ होता है । अर्थात् स्पर्श मे यकृत मृदु हो, बहुत कडा न हो, जैसा कि सौत्रिक तन्तु भरण से वात यकृत (सिरोसिस) मे हो जाता है । यकृत मे जब तक ये तन्तु (Fibric tissue) पूर्णरूप से न भर जाये तब तक बच्चे का मल हरा, फटा हुआ, अम्लगन्धी द्रवयुक्त होता हे, मूत्र हल्के पीतवर्ण का रहता हे । सौत्रिक वृद्धि मे रजक वस्तु की वृद्धि, यकृत की विकृत क्रिया, ज्वराधिक्य, त्वचा का वर्ण स्वाभाविक रहता है । बल भी बच्चे मे बना रहता है । इस समय तक कल्प लाभदायक होता है । कल्प मे श्वेत भाटा ही लाभप्रद होता है ।

निम्न असाध्यावस्था मे यह उपयोगी नही—ज्वर लगातार अधिक रहे, शरीर की त्वचा का वर्ण काला होने लगे, मूत्र मे गाढापन हो, रग पीत-रक्त वर्ण या लाल वर्ण का हो जाय । मूत्र से वस्त्र पर पीला रङ्ग जैसा लग जावे, अतिसार, शोथ, शुष्कता आदि अन्य उपद्रव हो, तो रोग असाध्य जाने ।'

अत साध्यावस्था मे दुग्ध व अन्न खाने वाले बच्चो को या केवल अन्न खाने वाले बच्चो को यह लाभदायक है।

विधि—बल युक्त बच्चो को जिन्हे यकृत वृद्धि हुए बहुत दिन हुए हो पथ्य मे बैंगन का भर्ता व रोटी केवल खाने को देना चाहिये । साथ ही साथ पुनर्नवा मडूर या १ रत्ती की मात्रा मे दिन मे ३ बार मृताक या बृहत् कटकारी क्वाथ देवे । बलयुक्त बच्चो को केवल मडूर भस्म की आधी रत्ती देने व केवल बैंगन का भर्ता देने से पर्याप्त लाभ होता हे । १७, २१ या ४१ दिन लगातार देना चाहिये ।

वर्धन—क्रमश भर्ता की मात्रा ७ दिन तक धीरे-धीरे बढावे, फिर घटाकर स्वाभाविक मात्रा मे लावे । दिन भर मे ३-४ बार मे प्रथम दिन १० तोला तक भर्ता, फिर २॥ तोला की वृद्धि कर के ७ वे दिन २५ तोला तक भर्ता कम से कम देवे । बलिष्ठ बच्चे को अधिक भी दे सकते हे ।

लाभ का उचित क्रम—२-३ दिन के बाद पतला हरा मल निकलने लगता है, फिर पीला मल पतला ही आता है । ७ दिन बाद क्षुधा बढने लगती हे । वह इच्छापूर्वक खाने की चेष्टा करता है । पित्त अधिक बनकर व समस्त आन्त्र का कार्य सचालन कर उनकी दशा सुधारता है । यकृत छोटा होने लगता है, इसके बाद आहार मे इसे कम देते है । साधारण यकृत इतने ही से सभल जाता हे । एक बार मे दशा न सुधरने पर पुन यही क्रम दुहराना चाहिये । दो बार मे बहुत सुधार हो जाता हे ।

अधिक विकृत—यकृत मे प्रथम ७ दिन के वाद मात्रा कम न करते हुए, और ७ दिन लगातार एक सी मात्रा इसकी देते है। फिर द्वितीय सप्ताहान्त पर धीरे धीरे कम कर देते है। दशा न सुधरने पर पुन इसे दुहराते हैं।

अधिकतर दुर्बल बच्चो को इसके साथ दुग्ध का भी सहयोग देते हे। अधिक वैंगन के पहुचने पर पतला दस्त होने लगता है तव चतुर वैद्य का कार्य है कि मात्रा कम कर देवे। कई बच्चो को जोर के दस्त आते है। इससे न घवराते हुए मात्रा कम करके दशा सुधरने पर पुन क्रम वर्धन करना चाहिये।

केवल वैंगन का भर्ता व रोटी मात्र देने से ही देहाती पुष्ट बच्चे शीघ्र स्वस्थ होते पाये गये है। कितनो को मडूर भस्म भी देनी पडी, किंतु उचित यही हे कि औषधि युक्त ही यह प्रयोग हो।

यदि ज्वर अधिक रहे तो वाल-रस (भै र आदि ग्रन्थो मे प्रयोग है) १ रत्ती और मिलाना चाहिये। इससे ज्वर कम होता तथा वल आता हे। मूत्र का वर्ण सुधरता है। यदि विवध हो जाय तो आधी रत्ती 'यकृत-प्लीहादि लौह' प्रात साय इसके साथ देने से मल आने लगता हे।

भर्ता—वैंगन को कडे की आग मे जो वहुत तेज न हो भून कर ऊपर का छिलका हटाकर, भर्ते मे सैंधा-नमक, कालीमिर्च मिलाकर तैयार करें, स्वस्थ मनुष्य इसमे हरी, लाल मिर्च व शुद्ध सरसो तेल भी डाल ले तो उत्तम स्वादिष्ट हो जाता है। भर्ते को तेल या घी मे तलने से उसका साराश जलकर नष्ट होजाता है, लाभ प्रद नही होता।

इस प्रकार वैंगन का सेवन लाभप्रद व विशेपकर यकृत के लिये विशेप उपयोगी है। यह अनुभव स्वत. कई रोगियो पर किये गये हैं। अत. ठीक प्रकार से किसी सुयोग्य चिकित्सक की सलाह लेकर इसे प्रारम्भ करना चाहिये।

स्वस्थ व्यक्तियो के लिये स्वास्थ्य रक्षार्थ—शीत ऋतु मे वैंगन का शाक, विना मसाले का (या बहुत कम मसाले का) १५ दिन कम से कम खा लेने पर एक वार यकृत का सशोधन हो जाता है। इसी ऋतु मे वैंगन अधिक पैदा होते है तथा इसी ऋतु मे सचित पित्त का प्रकोप होता है। वैंगन खाने से पित्त की वृद्धि होकर प्रणालिया, आन्त्र आदि की स्थिति ठीक हो जाती है। मल मे पित्त निकल जाता है, प्रकोप का हेतु नही बनता। अत इस ऋतु मे इसका सेवन विशेप लाभप्रद होता है।

वैंगन की दूसरी फसल ग्रीष्म के प्रारम्भ मे होती है। इसमे सिंचाई अधिक होती है, ग्रीष्मातप से यह अधिक आग्नेय गुण लेता हे। अत गरम होता है। इसी समय वसत ऋतु होने से यह कफ की प्रकोपावस्था का काल होता है। अत अल्प मात्रा मे—इसका शाक सेवन लाभ-दायक होता हे। अधिक मात्रा मे यह उष्णताकारक, दस्ता-वर एव हानिकर हो जाता है। पतले दस्तो मे वैंगनी रग के भटा का उपयोग लाभप्रद है।

मात्रा—स्वस्थ व्यक्ति एक वार मे १ पाव तक वैंगन का शाक या भर्ता खा सकता है तथा शरीर पर कोई हानि नही होती। मृदुकोष्ठ वाले को पतला मल आता है। साधारण व्यक्ति इसका ५ से १० तोला तक भर्ता सरलता से पचा सकता है।

हरा कोमल वेंगन कच्चा ही खाने से क्षुधा वृद्धि होती है। किन्तु रोगी को नही खाना चाहिये।

—फलाक (रसायन) से साभार

वोकड़ी (Convolvulus Argentens)

त्रिवृत्त कुल (Convolvulaceae) की यह लता वागो या खेतो की मेडो या कूपनो पर बहुत फैली हुई होती हे। पत्र व पुष्प गुलवास के पत्र, पुष्पो जैसे होते है। यह महा राष्ट्र की ओर कोकण, वम्बई आदि तथा वगाल मे अधिक पाई जाती हे।

नोट—यह समुद्रशोष (विधारा न २) Argyreia Speciosa का ही एक भेद विशेष हे।

नाम—

स.—वृपपत्रिका, अजान्त्री, इ। हि—वोकडी (यह वास्तव मे मरेठी नाम है) म—पुङ्गली, पुङ्गल वेल,

वोकड़ी । गु —पुङ्गडी । व —छागलवेटे । ले —कनवोलवलस अर्जेन्टेन्स, कन नर्वीसस (Con Nervosus), कन स्पेसीओसा (Con Speciosa) ।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, कटु, तिक्त, कसैली, मधुर, कटु विपाक, स्रसन, शीतवीर्य, रोचक, वीर्यवर्धक, वातकारक, गर्भोत्पत्तिकारक, कास, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, कफ, पित्त, हृद्रोग तथा विष निवारक हे ।

वेदनाकारक शोथ युक्त फोडे को फोडने के लिए इसके पत्तो को पीसकर पुल्टिस बना बाधते है। भयकर दूपित व्रणो पर पत्तो का लेप या पुल्टिस लगाने से जलन, वेदना शात होकर शीघ्र लाभ होता है ।

शेप गुणधर्म व प्रयोग समुद्रशोप जैसे ही है ।

वोजीदान—देखिये—अकरकरा । वोडा—देखिये—लोविया । वोतसुर (वुत्सुर)—देखिये—अमसानिया ।

वोंदरी (Bondari)

हमारे जिले (वालाघाट म प्र) मे यह वूटी होती है, जो अक्षय तृतीया के वाद धूप की तेजी वढ जाने पर खेतो मे पैदा होती है ।

पौधा जमीन से लगा हुआ, छछलता रहता है । पत्ते खुरदरे रेखादार, कट किनारी के होते हे । यहा के देहाती लोग वोंदरी कहते है ।

प्रयोग—

लू लगने पर इसे सिलपर पीस कर लगुदी वना लेवे । पीसते समय सिर धोने की चिकनी मिट्टी थोडी डालकर ठडा पानी सीचते जाये । जव अच्छी तरह पिस जाय, तव कपडे मे रख निचोड लें, और काच की कटोरी मे २½ तोला यह रस लू लगने वाले रोगी को पिलादे । ज्वर की तेजी, घवराहट, वेचैनी, वमन आदि शान्त होकर एक दम नीद आ जाती है । प्रात साय या दिन मे ३ वार ३ खुराक पिलाने से रोग निर्मूल हो जाता है । यह स्वाद मे कडुआ, कसैला एव अति शीतल है ।

मैंने इस वूटी का प्रयोग भवके से अर्क खीचकर उन्माद के रोगियो पर भी किया है । एक पुरुप जो क़्लर्वी करता था उन्माद रोग से पीड़ित हो गया था, नीद नही आती थी, रात दिन प्रलाप करता था । उसे दिन रात मे ६-६ घण्टे के वाद ४–४ मात्रा पिलायी । पहिले ही दिन नीद आ गई । १४ दिन के सेवन से दुरुस्त हो गया । इसी तरह एक २९ वर्प की स्त्री को उन्माद हो गया । वह भी इसके सेवन से अच्छी हो गई ।

वोल (हीरावोल) [Bolsamodendron myrrha]

गुग्गुल कुल (Burseraceae) का यह वृक्ष गूगल के वृक्ष से मिलता जुलता सा होता है, किन्तु इसमे काटे होते है । इसके काण्ड मे क्षत करने से जो एक गाढा निर्यास निकलता है, उसे ही वोल कहते हे । इस निर्यास (गोद) मे जो गोल, वेडौल छोटे वडे दाने से होते है, वे परस्पर मे चिपककर वडे वडे पिंडो के रूप मे परिणित हो जाते हैं । ये रक्ताभ, पीले या धूसर वर्ण के तेलिया वहुत कुछ गूगल जैसे भगुर, सुगधित, तथा स्वाद मे कुछ कडुवे खरासदार होते है ।

यह वृक्ष पूर्वोत्तरी अमेरिका, सोमालीलैंड का आदि-

● इसके लेटिन नाम तथा कुल का पता हमे नही मिला । इसके विपय मे श्री वैद्य नान्हूलाल जी गुप्ता, आयुर्वेद विशारद, गावी चौक, जिला वालाघाट (म प्र) ने जो कुछ धन्वन्तरि वर्प ३६ अङ्क ८ मे प्रकाशित किया उसे ही यहा उद्धृत किया है—सम्पादक ।

बोल
BALSAMODENDRUM MYRRHA NEES
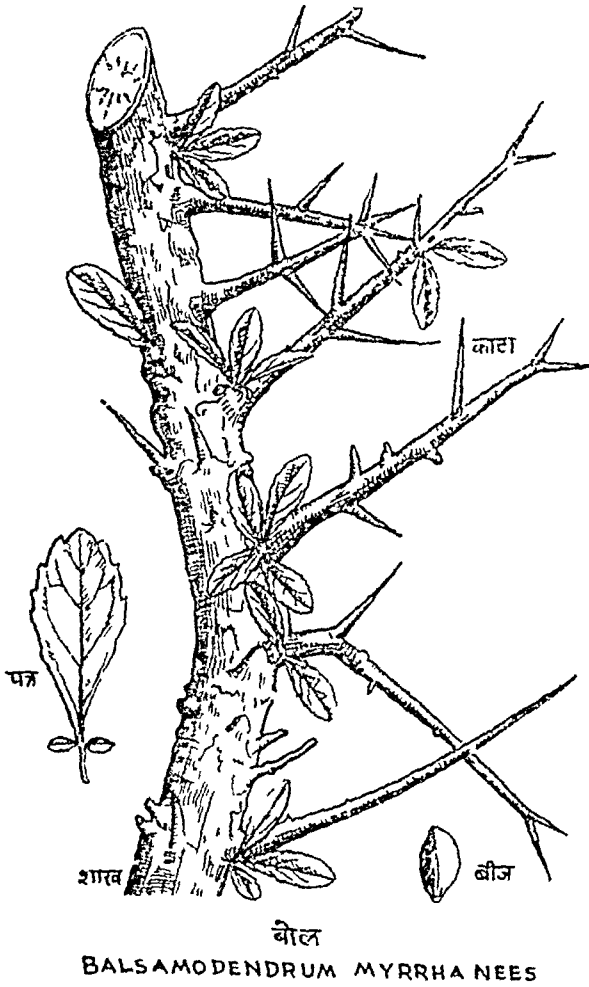
वासी है। तथा अरब, पर्शिया, अबीसिनीया, श्यामादि देशो मे भी होता है। इसके निर्यास (बोल) का प्रधानत सग्रह उक्त सोमालीलैंड नामक प्रान्त मे होता है। वही से इसका आयात अरब के अदन नामक बन्दरगाह पर होता है, जहा से यह सीधे यूरोप में भेजा जाता है, अथवा प्रथम भारत के बम्बई मे आता तथा यहा से इसका निर्यात यूरोपीय देशो को होता है। इसके अतिरिक्त इसका न्यूनाधिक सग्रह अफ्रीका के अबीसीनिया प्रान्त, दक्षिण अरब, पर्शिया (फारस) एव स्याम आदि देशो मे होने वाले इसके वृक्षो से भी होता है। मक्का का बोल (मुरमक्की) सर्वोत्ताम माना जाता है।

नोट न० १—बोल के प्रकार—एक तो प्रस्तुत प्रसग का रक्ताभ, लाल बोल (हीराबोल) है। इसके वृक्ष कुछ प्रमाण भी कही-कही भारत के पश्चिम भाग मे भी पाये जाते है। किन्तु इनका निर्यास (बोल) उतना श्रेष्ठ, विदेशी बोल जैसा नही होता कुछ हीन प्रकृति का होता है। बम्बई की ओर इसकी उत्तम जाति को करमू और हलकी जाति को म्हैसा बोल कहते है। बाजारो मे व्यापारी लोग इसमे गूगल आदि अन्य जाति की गोदो का मिश्रण कर देते हैं। परीक्षार्थ इसे तेजाब मे डालकर देखे, यदि तेजाब का रङ्ग बैगनी या किरमिची हो जाय तो उत्तम असली जानना चाहिए।

दूसरा श्वेत बोल है। यह श्वेताभ कृष्ण वर्ण का होता है। यह विशेषतः प्रसूता स्त्री या गाय भैस को कत्थे के साथ खिलाया जाता है जिससे गर्भाशय की शुद्धि एव दुग्ध की वृद्धि होती है। मरेठी मे इसे बालत बोल कहते हैं।

तीसरा कृष्ण बोल (काला बोल) है। यह प्रस्तुत प्रसग के बोल से भिन्न रसोन कुल (Liliaceae) के ग्वारपाठे का घन सत्व है। इसे एलुवा या मुसब्बर कहते है। इस ग्रन्थ के भाग १ मे एलुवा तथा भाग २ मे ग्वारपाठे के प्रकरणो मे इसका सचित्र वर्णन देखिये।

चौथा मोमियाई बोल है। मनुष्य के रक्त से जो प्राचीन काल मे मोमियाई बनाई जाती थी, तथा अभी भी कही-कही बनायी जाती है। उसे भी एक प्रकार का बोल माना जाता है। यह काला मोम जैसा होता है, इसके लगाने से बडे-बडे जखम शीघ्र ही अच्छे हो जाते है। प्रस्तुत प्रसग का बोल भी जख्मो को एव दुष्ट व्रणो को अच्छा कर देता है, किंतु मोमियाई जैसा यह शीघ्र अच्छा नही करता।

मोमियाई—यूनानी मे जिस शिलाजीत विशेष को मोमियाई कहते हैं। वह शिलाजीत जैसा ही एक द्रव्य है, जो अरब और फारस के पहाडो से प्राप्त होता था। आजकल वह अप्राप्य होने से इसके स्थान मे शुद्ध शिलाजीत (सत शिलाजीत ही) लिया जाता है। किन्तु यह असली मोमियाई (मोमिया) जैसे व्रण जखमादि मे बाह्य प्रयोगार्थ विशेष काम मे नही आता।

नोट २—बोल का उपयोग प्राचीन काल मे नही होता था। अत चरकादि प्राचीन ग्रन्थो में इसका उल्लेख नही मिलता। मुसलिम शासन काल से इसका उपयोग

आयुर्वेद मे हो रहा है। कई विद्वानो का अनुमान है, कि बहुत प्राचीन काल मे बोल के स्थान पर प्राय बोल जैसा उपयोगी 'जिगनी' वृक्ष के निर्यास (गोद) को काम मे लाया जाता था। इस ग्रन्थ के भाग ३ या ७ मे जिगनी का प्रकरण देखिये।

नोट ३—कही-कही बोल को हीरादोखी (खून-खरावा) कहा जाता है। किन्तु, वास्तव मे हीरादोखी इससे भिन्न है। आगे यथास्थान भाग ६ या ७ मे हीरादोखी का प्रकरण देखिये।

नाम—

स०—बोल, गन्धरस, पिण्ड, गोपरस इ०। हि० बोल, हीराबोल, बीजाबोल। म०—बोल, रकत्या बोल, बालत बोल, हिराबोल, करम, बन्दर करम। गु०—हीरा-बोल। व—गन्धरस, गन्ध बोल। अ०—मिर्र (Myrrh) ले०—बालसमोडेण्ड्रोन मिर्रा, कोमिफोरा मिर्रा (Commiphora Myrrha)।

रासायनिक संगठन—

इसमे एक उडनशील मिर्रोल (myrrhol) नामक तैल ५-१० % तथा गोद ३० से ६०%, राल ३५%, मिर्रीन [myrrhin] नामक एक तिक्त सत्व और कैल्सि-यम, फास्फेट, कार्बोनेट आदि पाये जाते है।

गुण धर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, तिक्त, कटु, कषाय, उष्ण (मतान्तर से शीत) वीर्य, कटु विपाक, त्रिदोषहर विशेषत वातशामक दीपन, पाचन, उत्तेजक, वातानुलोमन, मेधाजनक, रक्त-शोधक, रक्तगत श्वेत कणवर्धक, श्लेष्महर, श्लेष्मपूतिहर, मूत्रल, आर्त्तवजनक, स्वेदल, गर्भाशय शोधक, लेखन तथा कृमि, वातकफजन्य विकार, अग्निमाद्य, विवन्ध, आनाह, उदर रोग, पाण्डु, वातरक्तादि रक्तविकार, कास, श्वास, पार्श्वशूल, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, रजोरोध, कष्टार्त्तव, प्रदर, योनिशूल, चर्मरोग, नेत्राभिष्यन्द, ज्वर, कुष्ठ, अपस्मार, रक्तातिसार, ग्रहबाधा आदि पर प्रयुक्त होता है, पुरुषत्व नाशक है।

मुख से लेकर गुदापर्यन्त इसकी उत्तेजक क्रिया होती है। अत अजीर्ण, विवन्ध व पाडु रोग मे इसका विशेष उपयोग होता है। यह रक्त के श्वेत्त कणो (Leucocytes) को बढाकर पाडु एव युवा लड़की के हलीमक (रक्तालपता chlorosis) मे विशेष लाभ करता है। इसमे इसका टिंचर (आसव आगे विशिष्ट योग देखे) दिया जाता है। स्थानिक क्रिया के लिये गण्डूस (mouth wash))के रूप मे इसका प्रयोग अनेक मुख रोगो मे उपयोगी होता है। एतदर्थ १ औस जल मे इस का टिंचर २ ड्राम मिलाकर प्रयुक्त करते है। इस मिश्रण मे थोडा सुहागा मिला देने से इसकी क्रियाशीलता और भी बढ जाती है। इस रूप मे इसका प्रयोग मुखपाक, मुख के निनावा रोग (Aphthous), जिह्वा व्रण, गल-शैथिल्य (Relaxed throat) एव मसूढो के रोग [Spongy gums] आदि मे किया जाता है। जीवाणु नाशक एव कफ नि सारक (disinfecting expectorant] के रूप मे इनका प्रयोग चिरकालिक ब्राकाइटिस तथा श्वास नलिका विस्फार (Bronchiectasis) रोग मे तथा आर्त्तव प्रवर्त्तक होने के कारण इसे एलुका एव लौह भस्म के साथ नष्टार्त्तव, कष्टार्त्तव आदि रोगो मे किया जाता हे। दीपन, पाचन तथा वातानुलोमन क्रिया के लिए रेचक औषधियो मे सहायक रूप से योजना की जाती है।

यह शरीर के भीतर जाकर श्वास मार्ग, फुपफुस, प्रजनन मार्ग मूत्रेन्द्रिय तथा श्लेष्मल त्वचा के द्वारो बाहर निकलता है। बाहर निकलते समय जिन जिन मार्गो से यह निकलता है उन मार्गो की विनमय क्रिया को सुधारते हुए उनको उत्तेजित करते हुए अन्दर के दूपित विकार या विप को स्वेदन, मूत्र एव कफ के साथ बाहर निकाल देता है। त्वचा मार्ग से बाहर निकलते समय स्वेद को बढाकर, मूत्रेन्द्रिय से निकलते समय मूत्र के प्रमाण को बढाकर अन्दर के विपो को बाहर निका-लता है, फुपफुस एव श्वास नष्ट करते हुए उसे निकाल बाहर करता है। इससे श्लेष्मक त्वचा की शिथिलता कफ का निस्सरण एव उसमे रहने वाले दूपित जन्तुओ का नाशक होता है। अत चिरकालीन कफ रोगो मे इस का उपयोग किया जाता है। तरुण मनुष्यो की खासीमे

बहुत लाभप्रद है। प्रजनन मार्ग मे निकलते समय यह गर्भाशय का सकोचन करने वाला, उत्तेजक एव आर्त्तव प्रवर्त्तक होता है। इससे गर्भाशय का शैथिल्य, जीर्ण वस्ति शोथ और श्वेत प्रदर मे भी लाभ होता है। सन्धिवात, वातरक्त, गृध्रसी आदि पर इसका लेप करते है। यह शोथ प्रतिवन्धक (सडान को दूर करने वाला) होने से अन्य उपयुक्त द्रव्यो के साथ मिला गोलिया वना, महामारी (हैजा) के समय प्रकोपनिवारणार्थ देते है।

(१) मुख पाक, दन्तवेष्ट, कठ शोथ, कठ रोहिणी दतशूल तथा दद्रु पर—

मुखपाक, दन्तवेष्ट (पायरिया) कण्ठशोथ पर—इसे अर्क गुलाव मे मिलाकर कुल्ले कराते है या इसे अन्य द्रव्यो के साथ चूर्ण कर भीतर बुरकते है। अथवा इसके चूर्ण मे समभाग शहद और रेक्टिफाइड स्प्रिट मिलाकर इस मिश्रण को अर्क गुलाव या [गुलाव के पुष्पो का फाण्ट] ५० भाग मे घोलकर गण्डूष करायें। अथवा इसके टिंचर २ ड्राम मे १ ड्राम सुहागे का फूला और २ औंस जल मिलाकर कुल्ले कराने से कठ मुख और जिह्वा के क्षत [छाले आदि] मे लाभ होता है। मसूढे वलवान बनते हैं। मसूढो मे क्षत हो तो उस पर इसका टिंचर लगाया जाता है।

दन्त शूल पर—इसके टिंचर १ भाग मे २ भाग जल मिला दिन मे २,३ वार कुल्ले कराने से शूल दूर होता है एव मसूढे सशक्त होते हैं।

दन्त शूल मे—दातो के गड्ढे मे इसके चूर्ण को भर देने से भी लाभ होता है। या इसके चूर्ण मे गूगल को पीसकर डाढ पर लगाते हैं।

कण्ठ के सक्रामक रोग कठ-रोहिणी (diphtheria पर—इसके टिंचर मे ग्लिसरीन मिलाकर १ या २ घटे अन्तर से लगाते है तथा टिंचर के कुल्ले कराते हैं।

(२) उदर विकार, मासिक धर्म विकृति तथा कफ प्रकोप पर—

उदर सम्वन्धी विकारो पर—इसके १½ रत्ती चूर्ण मे रेवन्द चीनी समभाग और कालादाना चूर्ण २½ रत्ती एकत्र मिला (यह १ मात्रा है) खरल कर जल के साथ सेवन से उदर विकार, क्षुधामान्द्य तथा विवन्ध (कब्जी) दूर होता है।

मासिक धर्म की विकृति पर—वोलादि वटी—उत्तम वोल १० तोला, सुहागे का फूला, विलायती कसीस, एलुवा ५-५ तोला, भुनी हीग २½ तोला सवको एकत्र जटामासी के फाण्ट मे १२ घण्टे खरलकर २-२ रत्ती की गोलिया वना लेवें। प्रात साय (या रात्रि को) भोजन के आध घण्टे वाद जल मे सेवन कराने से स्त्रियो की मासिक धर्म की विकृति दूर होती है। अनेक वालक होने या अन्य कारणो से गर्भाशय शिथिल हो जाने से मासिक धर्म मे थोडा और काला रक्त गिरता हो व मासिक धर्म शुद्ध न होता हो, कमर मे वेदना हो तथा नेत्रो मे निर्वलता हो तो यह वटी अति हितकर है। १-२ मास सेवन से रजोदर्शन नियमित वन जाता है—रसतत्रसार। यह योग स्व श्री प० यादव जी त्रिकम जी आचार्य का है।

अथवा—वोल, एलुवा और विलायती कसीस तीनो को समभाग मिला, ग्वारपाठे के रस मे ६ घण्टे तक खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया वना ले। एक या दो गोली दिन मे तीन वार जल के साथ सेवन से मासिक धर्म की शुद्धि एव वेदना की निवृत्ति होती है।

—गा औ र।

मासिक धर्म की प्रवृत्तियो के लिये वोल के साथ समभाग एलुवा मिला, जल मे पीस, वेर जैसी गोली या लम्वी मोटी वर्त्ति बनाकर योनि मे धारण करने से मासिक धर्म आने लगता है। आवश्यकतानुसार दूसरे दिन पुन इसका प्रयोग करें। ध्यान रहे गर्भाशय या उसके मुख पर शोथ हो, तो इसका प्रयोग न करे, तथा अधिक निर्वल एव नाजुक प्रकृति की रुग्णा हो तो भी विचार पूर्वक सौम्य उपचार करें। —रसतत्र सार

कफ प्रकोप पर—श्वास एव कफ कास की दशा मे, छाती मे अति कफ के सग्रहीत हो जाने पर छाती मे भारीपन, वेचैनी, घवराहट, मद ज्वर, हाथ पैर मे हडकल, आलस्य, क्षुधानाश आदि लक्षण होने पर, वोल की ४-४ रत्ती की मात्रा जल के साथ दिन मे तीन वार देते रहने

से कफ सरलता से निकल कर लाभ होता है ।

—गा० औ० र० ।

(३) रक्तमेह, प्रदर, शीत प्रमेह, नेत्र विकार, व्रण, रक्त स्राव और दाह पर—

रक्तमेह पर—बोल १-१ माशा दिन मे दो बार ५-७ दिन तक जल के साथ देने से मूत्र मे रक्त आना बन्द होता है ।

श्वेत प्रदर पर—४-४ रत्ती बोल को १-१ तोला चावलो के धोवन मे ६ माशा शहद मिलाकर दिन मे दो वार देते रहने से थोडे ही दिनो मे लाभ होता है ।

शीत प्रमेह पर—श्वेत वोल ३ माशा तथा पुराना गुड ६ माशा एकत्र खरल कर ३ गोलिया बना, प्रात, दोपहर भोजनोत्तर व रात्रि मे सोते समय १-१ गोली जल मे घोलकर ७-१४ या २१ दिन तक नित्य गोलिया तैयार कर देते रहने से कफज प्रमेह मे लाभ होता है ।

—व गु

नेत्र विकार पर—नेत्राभिष्यन्द मे इसे स्त्री के या गधी के दूध मे घोलकर नेत्रो मे डालते है । नेत्रव्रण या दृष्टिमाद्य मे उपयुक्त द्रव्यो के साथ अजन मे डाल कर लगाते है । या इसे दूध मे घोलकर नेत्र प्रक्षालन करते है ।

व्रणो पर—इसका लेप करने से शोथ प्रशमन एव रक्त स्तभन होता है ।

दुष्ट व्रण—जिसका दीर्घकाल से रोपण नही होता, दुर्गन्धित पूयस्राव होता है उसे इसके टिंचर से धोते रहने से व्रण शोधन होकर शीघ्र भर जाता है ।

नाडी व्रण या भगदर आदि मे बोल धोये हुये घृत मे मिलाकर लगाया जाता है । या तैल मे मिला पिचकारी द्वारा प्रवेश कराया जाता है । तथा त्रिफला के साथ इसका सेवन भी कराया जाता है ।

रक्तस्राव पर—किसी शस्त्र के लग जाने से रक्तस्राव होता हो, तो उस पर इसका चूर्ण लगाने से तुरन्त वन्द हो जाता है । केशिकाये एव फटी हुई त्वचा जुड जाती है तथा पाक भी नही होता । [ऐसी दशा मे यह मोमियाई जैसा कार्य करता है ।] —गा औ र

दाद पर—वोल ४, कुलिजन २, रूमस्तगी व अजवायन १-१ भाग लेकर सवको पोटली मे बाध मटकी मे ४ गुने जल मे डालकर धूप मे रख दे । ३ दिन बाद इस जल के लेप करने से दाद अवश्य नष्ट हो जाता है ।

—भा भै र ।

नोट—मात्रा–साधारण मात्रा ५–१० रत्ती तक चूर्ण या गोली के रूप मे देवे । यह उष्ण प्रकृति के लिये हानिकर है । हानि निवारक शहद तथा सर्द एव तर द्रव्य हैं । प्रतिनिधि—कूट, जुदवेदस्तर, या मोमियाई [पीछे नोट देखें] है ।

विशिष्ट योग—

टिंचर [आसव] वोल के १ भागचूर्ण मे १० गुना मद्य [९० प्रतिशत वाला] मिला बोतल मे भर दृढ काग लगाकर रखे । ३ या ७ दिन बाद मोटे फलालैन के वस्त्र से छान, शीशियो मे भर ले ।

मात्रा—१० से ६० बूद तक जल के साथ देवे । यह आमाशय के लिये दीपक, वेदना नाशक श्वास, मार्ग के लिये कफस्रसक, गर्भाशय के लिये आर्त्तव प्रवर्त्तक तथा शोधक है । मुखरोग पर ऊपर से इसका लेप तथा जल मे मिलाकर कुल्ले करे ।

नोट—वोल पर्पटी रस, बोल बद्ध रस आदि के प्रयोग रस ग्रन्थो मे देखिये । विस्तार भय से यहा नही दिये जा सकते ।

ब्रह्म कमल (Saussurea obvallata)

भृगराजकुल [Compositae] के इस २–३ फुट तक लम्बे क्षुप के पत्र लम्बे, सुगधित, पुष्प—बडे, श्वेत वर्ण के, उग्रसुगधयुक्त, विकसित होने पर अति सुन्दर लगते है । अगस्त सितम्बर मे पुष्प आते है ।

ब्रह्मकमल (सूरजकौल)

इसके क्षुप हिमालय मे काश्मीर से सिक्कम तक १० से १५ हजार फुट की ऊचाई पर पाये जाते हैं।

नाम--

स हि—ब्रह्मकमल, पहाटी नाम—सर्जकौल; पजावी नाम—बिर्म कवल, कवल, ले—सौसुरिया आववेलेटा.

प्रयोग—

गढवाल की ओर इसके पुष्पो की भस्म—प्लीहावृद्धि मे शहद के साथ देते है।

अपस्मार तथा मानसिक विकृति जन्य रोगो मे इसके पुष्पो से सिद्ध किये हुये तैल की सिर पर मालिश करते हे।

इसकी जड कटे एव कुचले हुये शरीर के स्थान पर लगाते हैं।

ब्रह्मदंडी (Tricholepsis Glaberrima)*

भृङ्गराज कुल [composıtae] के इस २–४ फुट ऊचे, वर्षायु, चिकनेक्षुप के काण्ड सीधे, कोमल कुछ श्वेत रग की शाखाये बारीक कोन युक्त धारीदार, पत्र बरछी के आकार के १-४ इच लम्बे, आधे इच से १ इच चौडे तीक्ष्ण कण्टक युक्त, अखड नोकदार, किनारे दातेदार, ऊपरी भाग कुछ काले धब्बो से युक्त, पत्र- वृन्तहीन होते है। पुष्प-पत्र युक्त गुच्छो मे बैंगनी, गुलावी, नारगी या भूरे रग के, बाबूना के पुष्प जैसे तथा वैसी ही गन्ध वाले होते है। ये पुष्प शाखा के अग्र भाग पर प्रथम गोल निकलते, खिलने पर कटोरी की आकृति के लालिमायुक्त नीले हो जाते हे। इनके चारो ओर बारीक एव कोमल काटे होते है। फल क्षुप के मध्य भाग से एक लम्बी डण्डी निकलती है जिसके अग्रभाग पर घुण्डी के आकारके लम्बे गोल, चिकने, बहुत कुछ ऊटकटारे के फल जैसे काटेदार होते है।

इसके क्षुप पश्चिमी राजस्थान, आबू पहाड, मध्य भारत, सौराष्ट्र तथा दक्षिण मे कोकण तथा दक्षिणी घाट, बम्बई प्रात तथा मैसूर, हैदराबाद आदि मे प्राय

* जिस प्रकार विष्णु भगवान की नाभि से कमल निकल कर ऊपर कमल दण्ड होता है जिस पर ब्रह्माजी बैठते है उसी प्रकार यह दण्डाकार निकल कर गुलाबी कण्टकयुक्त कमल के समान पुष्पयुक्त होती है। इसी लिये इसे ब्रह्मदडी [अजदण्टी] कहते हे।

—स्वर्गीय प० भागीरथ जी स्वामी

ब्रह्मदण्डी
TRICHOLEPIS GLABERRIMA D.C.
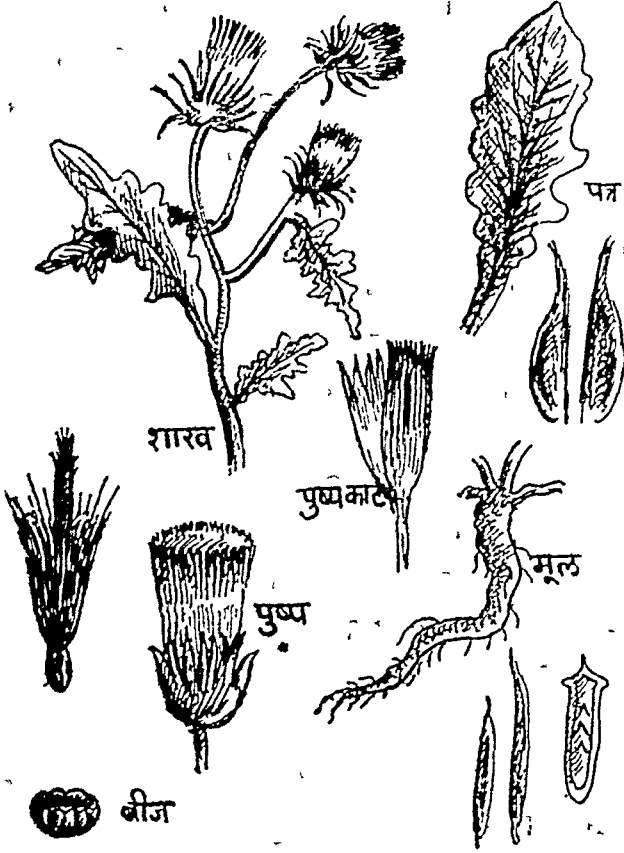
झाडियो मैदानो एव ज्वार आदि के खेतो की मेडो पर विशेष पाये जाते हैं।

नोट न० १—इमकी ही एक जाति जिमे लेटिन मे लेम्प्राचीनियम माइक्रोसेफेलम (Lamprachaenium Microcephalum Benth) कहते ह। हिदी, मराठी, सस्कृत मे इमे भी ब्रह्मदण्डी, अजदण्डी कहते हे। इसका सीधा खडा क्षुप १-२ फुट तक ऊचा, काण्ड मादा, अल्प शाखा युक्त, चिकना, रोमश, गाठदार (ग्रन्थियो से युक्त) प्राय बेगनी आभायुक्त, पत्र २-३ इन्च लम्बे, से. १½ इच चौडे, अण्डाकार, नोकदार, लम्बे पतले ऊपरी भाग छोटे-छोटे काटे जैसे रोमयुक्त, निम्न भाग सघन ऊन जैमे रोमो से आच्छादित, दूर दूर आरी जैसे किनारी दार, पत्र वृन्त ½-¾ इच लम्बा, पुष्प की बुण्डी छोटी वन्द काटेदार मी १/५ इच मे कम व्यास की, कोमल रोमश वृन्तयुक्त, फल या डोडी बहुत छोटी लम्बी गोल कुछ दबी हुई, कोमल उज्ज्वल होती हे।

इमके क्षुप महाराष्ट्र प्रात, बरार, महाबलेश्वर, मद्रास, मैसूर आदि प्रान्तो मे पाये जाते है।

यह सुगन्धित कडवी है तथा चर्म रोग, श्वेत कुष्ठ, वात कफ के विकार तथा प्रदाह पर विशेष प्रकार मे इमका घरेलू उपयोग किया जाता है। इमके पचाग को हिम, फाण्ट या क्वाथ के रूप मे सेवन कराया जाता है। शेष गुण धर्म व प्रयोग प्रस्तुत प्रसग के ब्रह्मदडी जैसे ही हे।

नोट न० २—प्रस्तुत प्रसंग की ब्रह्मदडी का ही एक भेद बादावर्द है जिमे सस्कृत मे 'भूदण्डी' तथा लेटिन मे—Volutarella Divaricata or Tricholepsis Procumbens कहते है। इसका सचित्र वर्णन पीछे 'बादावर्द' के प्रकरण मे देखिये।

नोट न० ३—कही-कही भ्रमवश 'ऊटकटारा' ही ब्रह्मदडी माना जाता है। इस ग्रथ के भाग १ मे ऊटकटारे का सचित्र वर्णन देखिये।

नोट न० ४—आयुर्वेद के प्राचीन आर्ष ग्रन्थो मे ब्रह्मदडी का स्पष्ट उल्लेख या विशेप प्रयोग नही मिलता। मालूम होता है कि इसका विशेप प्रचार निघण्टुओ की रचना के समय से होने लगा है। तथापि इसका अधिक प्रचार एव घरेलू उपयोग भारत के दक्षिणी प्रान्तो मे प्राचीन काल से हो रहा हे।

नाम–

स—ब्रह्मदडी, अजादण्डी, कटपत्र कला, हि.—ब्रह्मदडी, म—ब्रह्म दडी, बोठामोर, गु—ब्रह्मदडी, फुसयाई, ब—छागलदडी, वामनदडी, अ—थिसल (Thistle), ले—ट्रायकोलेपसिस ग्लेबेरिया।

प्रयोज्याङ्ग—पचाङ्ग।

गुण धर्म व प्रयोग–

तिक्त, उष्ण वीर्य (मूल अति उष्ण), कामोद्दीपक, मज्जातन्तुओ को बलदायक, रक्तशोधक, स्मरणशक्ति वर्धक, व्रण पूरक तथा कफ, वात, शोथ, उन्माद, प्रदाह,

प्रसूत रोग, कृमि, वीर्यविकार, जीर्ण ज्वर, श्वेतकुष्ठादि चर्म रोग नाशक हे।

(१) रक्त विकार, कुष्ठ, प्रमेह, रक्तमेह तथा गण्ड-माला पर—

रक्त विकार पर—छायाशुष्क किये हुये इसके पत्तो के चूर्ण की मात्रा बडो के लिये ३ माशा तक तथा बालको को ४ रत्ती से १ माशा तक आयु एव बलाबलानुसार २ से ७ कालीमिर्च के दानो के साथ खरल मे जल के साथ पीस छानकर नित्य सेवन से शीघ्र ही रक्त शुद्ध हो कर छोटे बडे फोडे फुसी, गुमडे ७ दिन मे दूर हो जाते है। बालको की मात्रा मे कालीमिर्च १-३ दाने मिला १ या २ चम्मच जल मे पीसकर बच्चे की नाक पकड कर पिलावे अन्यथा वमन हो जाती है, क्योकि यह बहुत कडवी होती है। इस बूटी का अर्क निकाल कर पिलाने से भी यही लाभ होता हे। —भा ज बू।

नोट—इसके पचाङ्ग का हिम या फाण्ट बनाकर सेवन से भी रक्त शुद्धि होती है। आगे विशिष्ट योगो मे इसके आसव का प्रयोग देखे।

कुष्ठ पर—इसके पचाङ्ग का चूर्ण एक तोला के साथ सात कालीमिर्च के दानो को जल मे पीस छान कर नित्य ४० दिन तक पथ्यपूर्वक सेवन कराने से बहुत लाभ होता है। पथ्य मे केवल चने की रोटी देवे।

प्रमेह पर—उक्त कुष्ठ के प्रयोग से प्रमेह रोग मे भी लाभ होता हे। अथवा चूर्ण की मात्रा १ से ३ माशा तक दूध के साथ सेवन से भी प्रमेह मे लाभ होता है।

रक्तमेह पर—पचाङ्ग का जौकुट चूर्ण २ तोला को २० तोला जल मे रात्रि के समय भिगो, प्रात छानकर पिलाने से मूत्र मे रक्त आना बन्द हो जाता है, जलन भी दूर होती हे। नेत्र रोगो मे भी यह हिम लाभदायक है। प्रसूति के बाद होने वाली गर्भाशय की पीडा भी इसके सेवन से दूर होती है। —स्व प भागीरथ जी स्वामी।

गण्डमाला पर—इसकी जड को चावल के धोवन के साथ पीसकर लेप करने से तथा चावलो के धोवन के साथ महीन पीस छानकर पिलाते रहने से फूटी हुई गण्डमाला नष्ट हो जाती है। —यो र।

(२) बुद्धिवर्धनार्थ तथा नपुसकता, वाजीकरणार्थ, जीर्ण ज्वर, रक्त प्रदर और व्रणो पर—

बुद्धि वर्धनार्थ पर—इसके पचाङ्ग का चूर्ण तीन से छ माशा तक की मात्रा मे गोदुग्ध या जल के साथ सेवन से स्मृति बढती, स्वर शुद्धि होती, रक्त शुद्धि, वीर्य शुद्धि होती, कामशक्ति, स्तभन शक्ति बढती, शरीर का शैथिल्य, शुक्र मेह दूर होना, कमर की कमजोरी व मुख की दुर्गन्ध दूर होती है।

नपुसकता पर—इसकी जड को छायाशुष्क कर, उसके साथ उसकी छाल को भी समभाग लेकर चूर्ण कर लेवें। उसमे समभाग मिश्री या शक्कर मिला, प्रात साय १-१½ माशा की मात्रा मे, मिश्री मिला और केशर मिले हुये दूध के साथ सेवन से वीर्य शुद्धि होकर, पुष्टि होती है तथा नपुसकता दूर होती है।

जीर्ण ज्वर पर—इसके पचाङ्ग को अन्य ज्वर नाशक द्रव्यो के साथ फाण्ट या क्वाथ बनाकर सेवन कराते हैं। ऐकाहिक विषम ज्वर मे इसके रस का नस्य देते हैं।

—सकलित।

वाजीकरण—इसके स्वरस से गेहू का आटा माडकर बाटी बना, खूब सेक कर, घृतयुक्त चूरमा बनाकर, नित्य ११ दिन तक खाने से खूब वाजीकरण होकर शक्ति बढती तथा मज्जा तन्तुओ के रोग भी नष्ट होते है।

—स्व प भागीरथ जी स्वामी।

रक्त प्रदर पर—इसका पचाङ्ग का चूर्ण १ तोला और रसौत ½ तोला को दस तोला जल के साथ पीस छानकर उसमे ३ तोला मिश्री मिला, दिन मे ४ बार पिलाने से लाभ होता है।

व्रणो पर—इसके पचाङ्ग की भस्म को घृत मे घोट कर लगाने से लाभ होता हे। केवल इसकी राख को शोथ पर मलने से सूजन दूर होती है। —सकलित।

(३) कविराज श्री कर्णराय जी "आत्माराम बाबा" (निजामपेठ हैदराबाद) के कृपाकर प्रेषित स्वानुभूत अमूल्य प्रयोग—

साधारण मासिकस्रावावरोध पर—ब्रह्मदडी मूल (जौकुटकर) दो तोला पुराना (कम से कम दो वर्ष

का) गुड (लगभग ३–४ तोला) और जल ३० तोला एकत्र पकावे। दस तोला तक शेष रहने पर छानकर प्रात सूर्योदय के पूर्व पिलावें। भोजन मे मूग की दाल की अलूनी (विना नमक की) खीचडी, घृत मिलाकर खिलावें। यह प्रयोग हमने मासिक होने से ७ दिन पूर्व चालू कराया मासिक खुलकर आया। कुल १२ दिन तक प्रयोग कराया गया। वेदनायें शान्त हो गयी। पश्चात् रुग्णा को ब्रह्मदडी चूर्ण १½ माशा और हरताल (पत्र हरताल, तवकिया हड़ताल) भस्म ½ चावल, एकत्र खरल कर दूध के साथ प्रात साय सेवन कराया। ईश कृपा से रुग्णा के सारे उपद्रव दूर हो गये। किंचित् प्रदर रोग रहा, जो कि मार्त्तण्ड फार्मेसी के प्रदरान्तक ६ इजेक्शन हर चौथे दिन लगाने से दूर होकर रुग्णा को एक वर्ष वाद लडका हुआ।

उक्त हरताल भस्म की विधि—पत्र हरताल [उत्तम पीला आवदार] ५ तोला ले चाहे तो इसे शुद्ध कर पीपल छाल की श्वेत राख १½ सेर और मजीठ की राख १½ सेर दोनो को मिला, एक शराव मे आधी राख भरें तथा वीच मे हरताल की डली रख ऊपर से शेष राख दवाकर भर दे। नीचे कीकर [ववूल] की मद आच देवें। ३ प्रहर मे श्वेत भस्म हो जाती है। आच देते समय राख से जव धुआ निकले अन्य राख डालकर उसे दवाते जावे। हाडी या शराव को आग पर चढाते समय अपने इष्ट देव का, ईश्वर का नाम लेकर या सत श्री अकाल कहकर नीचे आच देना प्रारभ करे। ३ प्रहर वाद, धीरे से शराव को नीचे उतार स्वाग शीतल हो जाने पर ऊपर की राख धीरे-धीरे दूर कर वीच की श्वेत भस्म चम्मच से निकाल लेवे। राख जो आस पास हो, उसे ज्वर पीडित पर प्रयोग करें। यह हरताल भस्म क्षय के सिवा अन्य सव ज्वरो पर लाभकारी है। कुष्ठ मे इसे १ सुई के नोक वरावर मुनक्का मे दें ऊपर से त्रिफला कषाय अनुपान मे दें। नमक न दे। ४० दिन मे लाभ हुआ है। उपदश तथा वात रोगो मे, धनुर्वात आदि रोगो में यह यथोचित अनुपान से देवे।

रक्त शुद्धि और रजप्रवृत्ति के लिये—एक लड़की १६ वर्ष की, शरीर मे फोड़े फुसी बहुत हो गये थे उसे ब्रह्मदडी चूर्ण १-१ माशा दिन मे ३ वार दिया। अनुपान मे मेहदी पत्र ७ नग, गोरख मुण्डी फल ५ नग मोटा चूर्ण कर १५ तोला गरम जल मे रात्रि के समय भिगो प्रात मल छान कर तीन वार दिया गया ३ सप्ताह मे लडकी स्वस्थ हो गयी। उसकी माता ने कहा कि लडकी अभी तक वालिग नही हुई है, मैंने उपरोक्त ब्रम्हदडी वाला गुड योग कपाय १५ दिन तक प्रयोग कराया, जिससे उसके शरीर मे स्फुरण पैदा हुआ और वह लडकी २८ दिन औषध प्रयोग करने के पश्चात् दूसरे मास में प्रथम वार रजस्वला हो गयी। लोहमण्डूर कल्प भी साथ मे प्रयोग कराये गये। दूसरी वार मासिक होने के पश्चात् वह अच्छी खासी युवती मालूम होने लगी।

श्वास कास के वेग पर—हमने ब्राम्हदण्डी का स्वरस आग पर थोडा गरम कर गुन-गुना कर थोडा-थोडा १ तोला तक चटाया हे। आशातीत लाभ हुआ है। दौरा आसान हो जाता है, कफष्ठीवन आसानी से होता है।

वशीकरणार्थ तान्त्रिक प्रयोग—ब्रम्हदण्डी, बच, कुष्ठ [कूठ] मीठी सवको समभाग चूर्णकर रखें। इसकी १ चुटकी पान मे रख कर रविवार के दिन खिला देने से कैसा भी हठीला हो अवश्य वश हो जायगा। ४ वार करके देखे। प्रत्येक वार भगवती कामदा को याद कर लिया करे। इससे दुष्ट स्त्री पुरुषो को सुमार्ग पर लगाया जा सकता है। अपनी मान मर्यादा बढाने के लिये प्रयोग करे। दुष्टता व लपटतावश प्रयोग करेगा तो भगवान का काल सर पर है। इसका ध्यान रखे।

नोट—इसके पचाग का स्वरस १ तोला की मात्रा मे प्रयोग करने से तथा अलूना पथ्य देने से शरीर जडता एव फोडे फुसी आदि दूर होते है। नाडी जाल को पुष्ट करता है। फिरङ्ग व सोजाक मे इसका प्रयोग करने पर रोग शाति होती है। पचाग का चूर्ण १ से ३ माशा जल या दूध से प्रयोग कराने पर रक्तशोधक तथा वीर्यशोधक गुण दर्शाता है। उवालकर क्वाथ रूप मे पानी से वात नाडी जाल की पुष्टी करता है। वृद्ध मनुष्यो के कटिशूल को यह क्वाथ अत्यन्त लाभप्रद है। भोजन मे नमक कम खावे या छोड़ देवे (सेधा नमक खावे) प्रमेह रोग मे भी मेरे अनुभव मे ब्रम्हदंडी अच्छा काम देती है। प्रमेह

व्याधि मे इसका चूर्ण १ से ३ माशा दूध के साथ प्रयोग कराता हू ।

—कविराज श्री कर्णराय जी 'आत्माराम बाबा
निजामपेठ हैद्राबाद

नोट—मात्रा शुष्क चूर्ण २ से ७ माशा तक, ताजी हरी १ तोला तक। स्वरस १ से २½ तोला तक। क्वाथ के लिये ½ से २ तोला तक। मूल—१ से २ तोला।

यह पारे को बाधने वाली मानी जाती है। इसके पत्र स्वरस मे शहद मिलाकर योनि मे लेप कर, सभोग करने मे स्त्री पुरुष दोनो को अति प्रसन्नता होती है।

—वैद्य मनोरमा।

इसकी मात्रा अधिक सेवन से यह रूक्षता पैदा करती है। हानि निवारणार्थ शहद देते है। इसकी प्रतिनिधि गोरखमुडी,नीलकठी है।

विशिष्ट योग—

ब्राम्हदण्डचासव (रक्तदोषहारक)

ब्रहमदडी की जड ४ सेर और गोरखमुण्डी का पचाग १ सेर दोनो को जौकुट कर १३ सेर जल मे पकावें। ५ ६ सेर तक शेष रहने पर छानकर ठडा होने पर सवान पात्र मे भर उसमे शहद ३ सेर मिश्री २½ सेर, धाय पुष्प का चूर्ण १ सेर तथा कालीमिर्च चूर्ण ५ तोला मिला अच्छी तरह मुख मुद्राकर २१ दिन सुरक्षित रखने के बाद छानकर बोतलो मे भर ले। मात्रा १ से ४ तोला तक। यह रक्तदोष, उपदश जन्य व्रण, कुष्ठादि नाशक हैं। रक्त को शुद्ध करता है।

—स्वकृत।

ब्रम्ह वृक्ष—देखे—ढाक। ब्रम्हमण्डूकी—देखे—ब्राम्ह। ब्रम्ह सौचली—देखें—हुरहुर।

ब्राह्मी (Hydrocotyle Asiatica)

गुडूच्यादि वर्ग एव शतपुष्पाकुल (umbelliferae) की इस क्षुप रुपलता के प्रसरणशील काण्ड के प्रत्येक पर्व से मूल, पत्र, पुष्प व फलो का उद्गम होता है। पत्र एकान्तर गोल, वृक्काकार, अखड, किन्तु किनारे प्राय गोल दन्तुर, ½–२½ इन्च लम्बे चौडे ७ शिराओ से युक्त स्वाद मे तिक्त, कटु, किंचित् सुगधित, किन्तु शुष्क पत्तो मे स्वाद तथा गन्ध अत्यल्प, पुष्प—वसन्तऋतु मे काण्ड के पर्व से निकले हुये कई रोमश चिकने पुष्प दण्डो (सलाकाओ) पर छोटे छोटे नीलाभ श्वेत या लाल वर्ण के सख्या मे ३-५ सवृन्त पुष्प, फल—ग्रीष्म मे लम्बजगोल कडे चिपटे ⅓–⅙ इन्च के एक साथ प्राय २ से ७ तक है। मूल—सूक्ष्म सूत्रवत्।

यह प्राय भारत मे ही और सोलन मे भी कही-कही ४ हजार फुट की ऊचाई तक जलाशयो के किनारे (रुके हुए या दूषित जलाशयो के किनारे नही) पायी जाती है। अन्यत्र होने वाली ब्राम्ही भारत को जैसी शुद्ध गुणदायक नही होती। किन्तु भारत की भी विशेष प्रभावशाली वही होती है जो गगादि पवित्र नदियो के या उनकी नहरो के किनारे पायी जाती है। इन स्थानो पर यह आसानी से प्राप्त होती है। जहा तक हरी मिले इसे ताजी ही लेना ठीक होता है, अथवा इसे छायाशुष्क कर सुरक्षित रखना चाहिये। धूप मे सुखाने से यह बेकार हो जाती है। इसका तैलीय द्रव्य 'अलकोहल ईथर' उड जाता है।

नोट नं १—ब्राह्मी और मडूकपर्णी—प्रस्तुत प्रसग की ब्राह्मी तथा मडूकपर्णी ये दोनो दिव्य वूटिया एक ही जाति की भारत मे अति प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। यजुर्वेद मे ब्राह्मी के सन्तानोत्पादक गुण का सप्रयोग वर्णन आया हुआ है ●। मडूकपर्णी की प्रसिद्धि विशेषत चरका

● "तनूपा भिषजा सुतेऽश्विनोभा सरस्वती। मध्वा रजासीन्द्रियमिद्रायपथिभिर्वहान।" यजु अ २० मं ५६"
—विद्वान वैद्य सन्तानोत्पत्ति के लिये सरस्वती (ब्राह्मी बूटी) को मधु के साथ सेवन करावे। इस प्रकार इसके सेवन से वीर्य और रज ठीक स्थान मे जाकर स्थिर होकर गर्भ का धारण करता है।

"अश्विना भेषज मधु भेषजन सरस्वती। इन्द्रेत्वष्ठायश श्रियरूप मधु सुते॥"—यजु २० मत्र ६४॥ अर्थात् प्रजोत्पत्ति के लिये वैद्य हमे मधु और ब्राह्मी बूटी देते है। इससे सारे ससार का रचियता उत्पन्न हुए पुत्र को यश, श्री

ब्राह्मी (मंडूकपर्णी)

HYDROCOTYLE ASIATICA LINN.
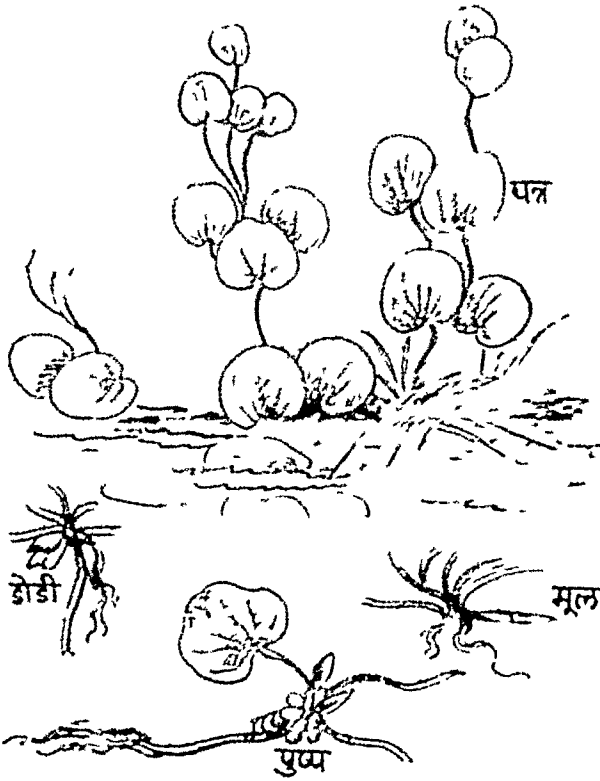
दि संहिता काल मे हुई। तथा प्राय तवसे ही इन दोनो का मिश्रण सा होगया। और आगे के कुछ निघण्टुकारो ने दोनो को एक ही मान कर दोनो का एक साथ घालमेल कर दिया। परिणाम यह हुआ कि भिन्न-भिन्न स्थानो मे भिन्न-भिन्न बूटिया ब्राह्मी मानी जाने लगी। वगाल के कविराजो ने जलब्राह्मी (जलनीम) को ही (इस ग्रन्थ के भाग ३ मे जलनीम देखे) असली ब्राह्मी मान लिया। कई स्थानो मे मडूकपर्णी ही ब्राह्मी माने जाने लगी। कही-कही मूसाकानी को ही ब्राम्ही मानने लगे (आगे मूसाकानी का प्रकरण देखे)।

चरक और सुश्रुत ने ब्राह्मी व मडूकपर्णी को भिन्न भिन्न दर्शाया है। चरक चि स्था अ १० मे अपस्मार पर ब्राम्ही की योजना ब्राम्ही घृत मे तथा ब्राम्ही रसायन में तथा सूत्र स्थान के शाकवर्गमे मडूकपर्णी का उल्लेख है। और उदर रोग एव विप पीडित रोगी की चिकित्सा मे इसका शाक खाने का विधान है। वय स्थापन दशेमानि मे और विमान स्थानके तिक्तस्कन्व मे भी मडूकपर्णी का उल्लेख है।

सुश्रुत ने भी मडूकपर्णी को शाक वर्ग और तिक्तस्कन्ध मे लिया है, तथा चि स्था अ २८ मे ब्राह्मी और मडूकपर्णी के भिन्न २ योग दिये है यथा ब्राह्मी स्वरस रसायन कल्प योग, ब्राहमी घृत रसायन एव मडूकपर्णी स्वरस रसायन कल्क योग। तथा इस तथ्य की ओर सकेत किया गया है कि ब्राह्मी मे वामक गुण होने से उसका पचन हो जाने पर ही दोपहर को दुग्धादि सेवन कराना हितकर होता है। उसके साथ दुग्ध का सेवन नही करावे। इसके विपरीत मडूकपर्णी मे उग्र मादक एव दाहक गुण होने से इसका सेवन दूध मे मिलाकर कराना श्रेयस्कर होता है। वाग्भट का भी कथन है कि जो मनुष्य मडूकपर्णी को घृत मे भूनकर दूध के साथ एक मास तक सेवन करते हुए कोई अन्न का भोजन नही करता, वह चिरकाल तक जीवित रहता, शास्त्र विजयी होता तथा यौवन एव सुन्दरता को प्राप्त करता है।

गुणधर्म की दृष्टि मे भी सुश्रुत ने मडूकपर्णी को अति लघु एव रक्त विकार, पित्त प्रकोप हृदय दौर्बल्य, प्रमेह, कुष्ठ* ज्वर, श्वास कास, अरुचिनाशक, रस व विपाक मे

(ऐश्वर्य) और रूप देता है।

"गोभिर्न्सोममश्विना मासरेण परिसुता। समधातसरस्वत्या स्वाहेन्द्रे सुत मधु" यजु २० से ६६। अर्थात् ब्राह्मी को ताजे मधु के साथ वलवान पुत्र के लिये श्रेष्ठ क्रिया द्वारा दो। इससे जैसे सूर्य की किरणो से चन्द्र प्रकाशित होता है तथा शीतल स्वभाव का होता है वैसे ही ब्राह्मी के गुणो से मधु दीप्त होकर श्रेष्ठ पुत्रोत्पत्ति होती है।

* सुश्रुत ने कुष्ठ चिकित्सा मे महाकुष्ठ पर कही हुई सुरा के विधान मे ब्राम्ही की योजना की है। इससे सिद्ध होता है कि ब्राम्ही भी रक्तशोधक एव रक्त विकार नाशक है।

मधुर,शीतल कहा है (सूत्र स्थान अ ४६)। इस सूची मे मस्तिष्क विकृति का उल्लेख नही है। अत' समझना चाहिए कि ब्राह्मी का उपयोग विशेषत मस्तिष्क विकृति, वात नाडी विकृति, अपस्मार, उन्माद, स्मृति-नाश आदि पर होता है। किन्तु रसायन रूप मे इन दोनो की बहुत कुछ साम्यता है।

नव्य मतानुसार भी ब्राह्मी का प्रभाव विशेषत मस्तिष्क विकार और मडूकपर्णी का रक्त विकार एव चर्म रोगो पर माना गया है।

मडूकपर्णी व ब्राम्ही के स्वरूपादि का भेद इस प्रकार है—ये दोनो प्राय लतारूप है। किंतु ब्राह्मी की लता विशेष विस्तरणशील होती है। मडूकपर्णी की लता प्राय रक्ताभ, लता के अग्र भाग के पत्र क्रमश छोटे, पतले एव रक्ताभ तथा फूल पीले होते है। ब्राह्मी के पत्र चिकने, दलदार तथा शाखा की प्रत्येक जोड पर एक से अधिक आते है। मडूकपर्णी के पत्र कुछ खुरदरे, ब्राह्मी पत्र से वडे तथा स्वाद मे कुछ मधुर होते है।

मडूक पर्णी को सस्कृत-मे—ब्रह्म माडुकी, हि—खुलखुरा, बगला मे—थौलकुटी,जिमशाक, गु—खडब्रह्मी म—कारिवणा लेटिन मे—हायड्रोकोटायल रोटडीफोलिया (Hydrocotyle Rotundifolia) कहते है। यह भारत मे प्राय सर्वत्र आर्द्र स्थानो मे २ हजार फुट की ऊचाई तक पाई जाती है तथा विदेशो मे भी पैदा होती है। (किन्तु ब्राम्ही सर्वत्र नही पाई जाती) इसकी अन्य जातिया भी है। जिनमे कुछ के पत्र विशेष वडे, फल श्वेत होते है। कुछ ऐसी भी है जिनके फल लाल होते है।

मडूक पर्णी
HYDROCOTYLE ROTUNDIFOLIA ROXB

गुणधर्म व प्रयोग–

यह रसायन, वल्य, मूत्रल, वय स्थापन, मेध्य, रक्तशोधक, कुष्ठघ्न, व्रणशोधक एव रोपक है। अधिक मात्रा मे यह मादक होने से इससे शिर शूल, चक्कर आना एवं कभी कभी सन्यास (Coma) भी हो जाता है। इससे त्वचा की रक्तवाहिनियो का विस्फार होता है।

इसका प्रयोग विशेषत चर्म रोग, रक्त विकार तथा वात जन्य विकारो पर किया जाता है। त्वचा के विकारो में यह उत्तम लाभकारी है। कुष्ठ मे इससे कुछ लाक्षणिक लाभ एव साधारण स्वास्थ्य ठीक होता है। फिरग-उपदश की द्वितीयावस्था एव तृतीयावस्था और जीर्ण आमवात मे इसे देते हैं। इसका चूर्ण व्रण पर लगाते व खिलाते भी है। इसके प्रयोग से यदि खुजली अधिक वढे तो कुछ दिन इसका सेवन वन्द कर रेचक औषधि दी जाती है। वच्चो के आमातिसार मे इसके २ से ४ पत्रो का रस जीरा और मिश्री चूर्ण के साथ दिया जाता है तथा नाभी के नीचे पत्र-स्वरस का लेप करते है। वच्चो की हकलाहट दूर करने के लिये इसके पत्ते चवाने को देते है। स्मरण शक्ति की वृद्धि के लिये इसका चूर्ण दूध के साथ देते है।
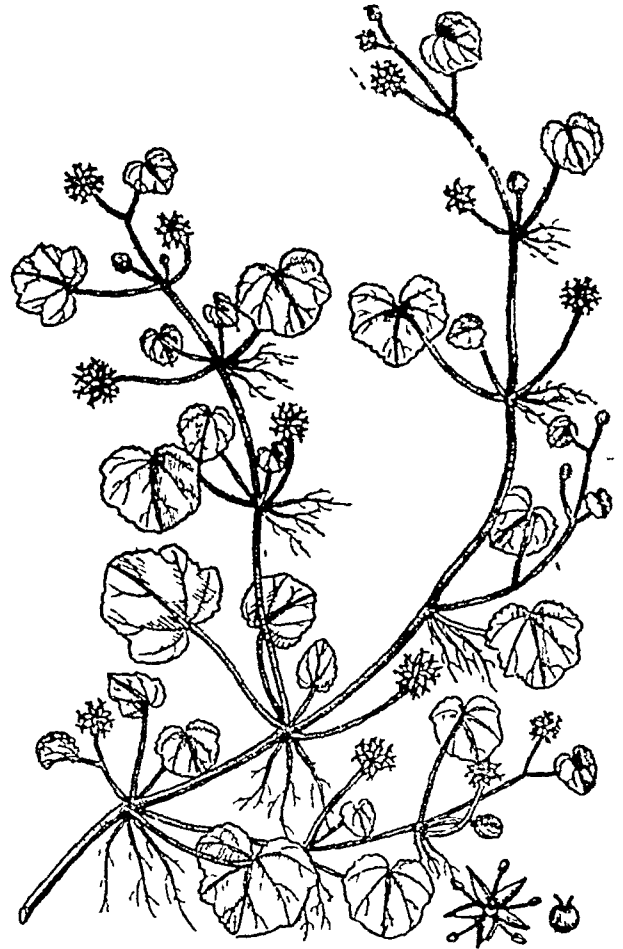
विशेष गुणधर्म व प्रयोग प्रस्तुत प्रसग की ब्राम्ही और

जलनीम के जैसे ही है। इसके चूर्ण की मात्रा २ से ४ रत्ती, ताजे पत्र सख्या मे बडो के लिये-८ से १२ तक, बच्चो के लिये-२ या ४ तक देते हैं।

इसके कुछ प्रयोग इसी प्रकरण मे आगे देखिये।

प्रस्तुत प्रसग की ब्राह्मी के नाम, गुणधर्म आदि—

नाम–

स —ब्राह्मी (ब्रह्मण इदतेन प्रोक्त वा, ब्रह्मत्वसिद्धये सहायी भूतत्वात्-ब्रह्म) की प्राप्ति के लिये सहायक होने से सरस्वती,सुरमा,सौम्यलता,ब्रमहचारिणी इ.। हि –ब्राह्मी, ब्रह्मी,कोटयाली,विरहमी। म –ब्राह्मी। गु –विधाब्राह्मी, बरमी। ब –ब्राह्मीशाक, ऊधाविर्नी। अ.–इडियन पेनीवर्ट (Indian penny wort) ले –हाइड्रोकोटाईल एशियाटिका। सेन्टेला एशियाटिका (Centella Asiatica)

रासायनिक संगठन–

जलनीम के रासायनिक सगठन जैसा ही है। भेद इतना है कि इसका क्षाराभतत्व ब्राह्मीन (Bramhine) को वेलेराईन (Vallarine) कहते हैं जो जलनीम के तत्व जैसा विषैला नही होता, वह हृदय के लिये प्रत्यक्ष बल्य है। इसके अतिरिक्त इसमे और मडूकपर्णी मे भी हाइड्रोकोटिलिन (Hydrocotylin) एक ग्लुकोसाईड, एशियाटिकोसाइड (Asiaticoside) अल्प उडनशील तेल, स्थिर तेल, कुछ शास्त्रीय द्रव्य, पेक्टिक एसिड (Pectic acid) तथा विटामिन 'सी' पाये जाते हैं। शुष्क होजाने पर इसमे सेन्टोइक एसिड (Centoic acid) तथा सेन्टेलिक एसिड (Centellic acid) पाये जाते है।

प्रयोज्याग—पचाग।

गुणधर्म व प्रयोग––

लघु, सर, तिक्त, कषाय, मधुर, शीतवीर्य,मधुर विपाक, मेध्य, रसायन, रक्तशोधक, त्रिदोष (विशेषतः कफ पित्त-शामक), दीपन, स्तम्भन, हृद्य, स्मरणशक्तिवर्धक, स्वर शुद्ध कारक, मूत्रल, स्तन्यजनन, बल्य, वयस्थापन तथा मस्तिष्क दौर्बल्य, उन्माद, अपस्मार, अग्निमाद्य, अतिसार, ग्रहणी, कास, श्वास, स्वर भेद, मूत्रकृच्छ्र, पैत्तिक प्रमेह, शोथ आदि पर उपयोगी है। ये ही गुणधर्म न्यूनाधिक मडूकपर्णी मे भी पाये जाते हैं, विशेषत यह विविध चर्म रोग नाशक, शोथघ्न, तथा व्रण शोधक एव रोपक है। इससे प्राय शरीर के सभी अङ्गो की क्रिया उत्तेजित होती तथा बल व आयु की वृद्धि होती है तथापि ब्राह्मी के अभाव मे मडूकपर्णी का प्रयोग करना विशेष हितकर नही होता।

ब्राह्मी अन्य उत्तेजक द्रव्यो की भाति वातनाडियो को व मस्तिष्क को केवल उत्तेजित नही करती, प्रत्युत उनमे पौष्टिक तत्वो को पहुचाकर शाति पैदा करती है। मस्तिष्क दौर्बल्य की दशा मे अत्यधिक मानसिक परिश्रम के कारण वातनाडिया प्रक्षुब्ध होकर, मस्तिष्क की सतुलन शक्ति नष्ट होती है, एव अर्ध विक्षिप्त के जैसे जैसे अण्ट-सण्ट भाषण एव असम्बद्ध कार्य होने लगते है, स्मरणशक्ति लुप्त हो जाती है तथा उन्माद, अपस्मार आदि मानसिक विकार होने लगते है। ऐसी हालत मे ब्राह्मी के साथ चतुर्थांश मात्रा मे शखपुष्पी मिलाकर सेवन से विशेष लाभ होता है।

केवल हृदय या मस्तिष्क ही नही, प्रत्युत प्राय समस्त धातुओ की दुर्बलता दूर कर उन्हे सशक्त बनाने मे एव शरीर के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को सदृढ करने मे ब्राह्मी उत्तम प्रभावशाली सिद्ध हुई है। शारीरिक तथा मानसिक उत्तेजना को शात कर सात्विक वृत्ति पैदा करना ब्राह्मी का एक अप्रतिम विशेष गुण होने से ही अध्यात्म चिन्तन करने वाले इसका प्रचुर रूप मे सेवन करते है, और ब्रह्मी की प्राप्ति मे ब्राह्मी को एक विश्वसनीय सहायक मानते है। इसीलिए यह ब्राह्मी कही जाती है। इसके नियमित सेवन से शरीर मे रोगाक्रमण निवारक शक्ति का विकास एव दीर्घायु की प्राप्ति होती है।

प्रखर ग्रीष्म ऋतु मे जब स्वभाव मे कुछ उदासी एव चिड-चिडापन आने लगता है, तथा विचार शक्ति कुण्ठित सी होने लगती है, तब प्रातःकाल इसे ठडाई के रूप मे या शर्बत बनाकर पीने से दिन भर चित्त सुव्यवस्थित रहता एव शरीर मे उत्साह, स्फूर्ति पर्याप्त बनी रहती है।

उन्माद तथा अपस्मार मे यह अत्यन्त प्रभावशाली

औषधि है। किन्तु नवीन तीक्ष्ण (acute) उन्माद की दशा मे यह लाभकारी नही प्रत्युत् हानिकारक है। जीर्ण (chronic) या पुरातन उन्माद मे ही जब उन्मत्तावस्था शात हो जाय, उसे पकडकर कैद करने की आवश्यकता न हो उसमे किसी प्रकार का जोश न दिखायी देवे, केवल ज्ञान न हो, कोई भी काम ठीक न कर सके तथा शात बैठा हुआ बडबडाया करे ऐसी दशा मे ब्राम्ही घृत लगभग दो मास तक सेवन कराने मे उसकी बुद्धि ठिकाने आ जाती है। नवीन या उन्माद की उग्रावस्था मे ब्राह्मी के स्थान मे प्रथम रोगी को उग्र प्रभाव वाली कोई रेचक औषध देने के पश्चात् खुरासानी अजवायन जैसी कोई भी शामक निद्राकारक औषधि देना हितकारी होता है।

अपस्मार, हिस्टीरिया आदि रोगो पर ब्राह्मी द्वारा सिद्ध घृत उत्तम लाभकारी है। ब्राह्मी के सेवन काल मे यदि कोष्ठबद्धता हो जाय तो साथ मे कोई हल्की रेचक औषधि मिला लेनी चाहिये। प्राचीन आचार्यो ने इसी लिये इसके साथ शखपुष्पी मिलाने का निर्देश किया है। इसके सयोग से ब्राह्मी का विष्टभकारक दोष अधिकाश मे दूर हो जाता है। अपस्मार रोग या किसी भी रोग मे रोगी की नाडी शिथिल हो गई हो,तो ब्राम्ही के साथ कूठ के प्रयोग का विधान है। ब्राम्ही मे क्षुधा को मन्द करने का भी दोष है। इसके निवारणार्थ ब्राम्ही के साथ वच को देने का विधान दिया गया है,जो वास्तव मे बहुत उपयोगी है।

(१) उन्माद तथा अपस्मार पर—ब्राम्ही के स्वरस २½ तोला से ५ तोला तक लेकर उसमे कूट का चूर्ण २ माशा तक और शहद २ तोला मिलाकर पिलाते रहने से लाभ होता है। —यो र।

अथवा—वच, कूठ और शखपुष्पी को पीस कर १० तोला कल्क के साथ ब्राम्ही स्वरस ४ सेर और गोघृत १ सेर एकत्र कर लगभग ४ सेर जल मिला पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर--१ से २ तोला की मात्रा मे सेवन कराने मे जीर्ण उन्माद, अपस्मार व ग्रह विकार दूर होते है। —व० सेन

अथवा—ब्राम्ही के ६ माशे स्वरस मे कूठ का चूर्ण १½ माशा तथा शहद ६ माशा मिलाकर पिलाने से जीर्ण उन्माद मे लाभ होता है। दिन मे दो बार पिलावे।

अथवा—ब्राम्ही, बादामगिरी, चारो मग्ज (खीरा, तरबूज, खरबूजा व ककडी के बीजो की गिरी) प्रत्येक ३-३ माशा, कालीमिर्च ७ नग तथा मिश्री २ तोला उनको मे घोट छानकर पिलावें, दिन मे दो बार। यह पित्तज जीर्ण उन्माद मे विशेष लाभकारी है।

केवल ब्राम्ही ३ माशा को ही, कुछ दाने कालीमिर्च के साथ जल मे घोट छानकर पिलाते रहने मे भी लाभ होता है।

अथवा—ब्राम्ही, शखपुष्पी ३-३ माशा, बादामगिरी, छोटी इलायची के दाने ६-६ माशा तथा चारो मग्ज १ तोला सबको जल मे घोट छानकर मिश्री मिला दिन मे २ बार पिलावें। जीर्ण उन्माद तथा काम, पैत्तिक ज्वर को दूर करता है। यह कठ को भी साफ करता है, स्मरणशक्ति को बढाता है। —संकलित

अथवा—ब्राम्ही स्वरस ताजा (ताजी ब्राम्ही के अभाव मे सूखी का अष्टमाश क्वाथ) १ तोला मे कूठ का महीन चूर्ण २ से ५ माशा तक, वच का चूर्ण २ माशा, मधु ३ माशा व घृत ६ माशा एकत्र मिलाकर चटावे। यह बडो की १ मात्रा है, बालको को चौथाई मात्रा देवें। दिन मे २ या ३ बार चटाते रहने से ८-१० दिन मे अवश्य लाभ होता है। —स्वपरीक्षित

उन्माद मे नस्य प्रयोग—वच, कूठ, शखपुष्पी व धत्तूरे की जड का महीन चूर्ण कर ब्राम्ही रस की ७ भावनायें तथा धतूर बीजो के तैल की ५ भावनाये देकर रखे। इसका नस्य देवे। —वैद्य रहस्य।

जीर्ण अपस्मार पर—ब्राम्ही, ब्रम्हदडी ३-३ माशा पेठा (भूरा कुम्हडा या कद्दू) के बीजो की गिरी ६ मा, कालीमिर्च १ मा तथा ३ नग छोटी इलायची एकत्र जल के साथ ठडाई की तरह घोट छानकर उसमे थोडा गोदुग्ध व शक्कर मिला प्रातःसाय पिलावे। शीतल काल मे उक्त द्रव्यो का क्वाथ बनाकर कई दिनो तक सुखोष्ण पिलावे। इस प्रकार पिलाते रहने से लाभ होता है।

अथवा—ब्राम्ही ३ माशा, उक्त पेठे की गिरी ६ माशा, मीठी वच ३ माशा, कालीमिर्च ११ नग और छोटी इलायची ३ नग सबको जल मे पीस गरमियो मे ठडाई बनाकर, वर्षा व शीतकाल मे क्वाथ बना दूध शक्कर

मिला प्रात साय पिलाते रहे ।

ध्यान रहे इस रोग मे ८-८ दिन के बाद जलापा चूर्ण और शक्कर ३-३ माशा एकत्र मिला रात्रि के समय खिलाकर ऊपर से २० तोला गरम दूध पिला दिया करे । अथवा शुद्ध रेडी तेल २½ तोला को २० तोला गरम दूध मे मिला थोडी शक्कर मिला, रात मे सोते समय पिलाया करे । तो उदर शुद्धि होकर औषधि का विशेष लाभ होगा रोगी को सदाचारपूर्वक रहते हुये बाकी चीजो से बचते रहना परमावश्यक है । दूध, मलाई, मक्खन का सेवन करावे तथा श्रद्धापूर्वक अधिक दिनो तक दवा का सेवन करावे तभी रोग की निवृत्ति होगी । —भा गृ चि

अथवा—ब्राम्ही की ताजी पत्ती का रस ६ माशा मे बच और कुलिजन का महीन चूर्ण १-१ माशा तथा शहद ३ माशा व घृत ६ माशा एकत्र मिलाकर चटावें (यह १ मात्रा है) दिन मे २ बार चटाते रहने से अपस्मार, मूर्च्छा, चित्तभ्रम एव मस्तिष्क दौर्बल्य मे लाभ होता हे ।

अथवा—ब्राम्ही, शखपुष्पी, बच, कूठ और छोटी इलायची समभाग चूर्ण कर रखे । १-२ माशा की मात्रा मे रस सिन्दूर ½ रत्ती मिला मधु व घृत के साथ सेवन करावे । प्राय १ मास मे लाभ प्रतीत होता है ।

—सकलित

अथवा – १ तोला ब्राम्ही के स्वरस या क्वाथ मे रस पर्पटी की २ रत्ती की मात्रा सेवन कराने से लाभ होता है ।

अथवा—शर्बत ब्राम्ही १ सेर, छोटी पिप्पली, मुलैठी, मीठी बच, सौठ, छोटी इलायची ५-५ तोला इनको जौकुट कर ७ सेर जल मे पकावे । १ सेर शेप रहने पर अच्छी तरह छानकर उसमे उत्तम शर्करा २½ सेर मिला एक तार की चाशनी पका कर उसमे शहद ४० तोला, केशर ६ माशा और कस्तूरी १½ माशा को एक जीवकर मिला देवे । मात्रा ३ माशा से १ तोला तक दिन मे ३ बार चटावे । पथ्य मे केवल दूध भात देवे । —बूटी दर्पण ।

योषापस्मार (हिस्टीरिया) मे भी उक्त प्रयोग लाभकारी है ।

विशेष प्रयोग—ब्राह्मी, जटामासी, पीपल वृक्ष की छाल और शख पुष्पी इनको समभाग लेकर जौकुट कर जल मे पकाकर, छानकर, पुन पकाकर घनसत्व बना ले। प्रतिदिन १ या २ बार १ माशा घनसत्व मे मोती और लोह भस्म १–१ रत्ती तथा प्रबाल ४ रत्ती मिला, २ गोलिया बना प्रात साय १–१ गोली खिलाने से बडा लाभ होता हे । केवल रजोदोष की अवस्था को छोडकर शेष सर्व प्रकार की हिस्टीरिया मे यह लाभदायक है । किन्तु रोगी को दाल, शाक आदि मे हीग का प्रयोग आवश्यक है । —नारीरोगाङ्क (धन्वन्तरि)

अपस्मार मे नस्य प्रयोग—

ब्राम्ही, सोठ, बच, कूठ, पिप्पली, नीलोफर व सेंधानमक समभाग चूर्णकर ब्राम्ही स्वरस की ७ भावनाये देकर ब्राम्ही के रस मे उसका कल्क करे । इस कल्क और ब्राम्ही के रस के साथ गोघृत को सिद्धकर रोगी को दिन मे ३ ४ बार नस्य देवे ।

अथवा ब्राम्ही के रस द्वारा सिद्ध किये हुये घृत मे बाझ ककोडे का रस मिलाकर नस्य देवे ।

—बूटी दर्पण ।

(२) मस्तिष्क व हृदय की बल वृद्धि तथा स्वर शुद्धि के लिये—

ब्राम्ही के १० तोला चूर्ण मे समभाग बादाम का तैल मिलावे । फिर उसमे खीरा, खरबूजा, तरबूजा व ककड़ी के बीजो की गिरी २½-२½ तोला छोटी इलायची के बीज ५ तोला और कालीमिर्च १ तोला इन सबका चूर्ण मिला सुरक्षित रख ले । ३ माशा की मात्रा, नित्य गोदुग्ध के साथ सेवन से हृदय व मस्तिष्क की शक्ति एव स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है । तथा वाणी कोमल व मधुर होती है ।

अथवा—हरी ब्राह्मी ४ माशा या सूखी २ माशा, बादाम गिरी १० नग, छोटी इलायची बीज १½ माशा तथा उक्त चारो मगज १½–१½ माशा तथा कालीमिर्च सात दाने इनको जल के साथ खूब महीन पीस, छानकर मिश्री मिला सेवन करने मे तथा सयमपूर्वक रहने मे भी उक्त लाभ होता हे । यह ठडाई का प्रयोग उष्ण काल ही मे ठीक होता है ।

ताजी ब्राम्ही के २ तोला स्वरस मे थोडा शहद मिला कर पान करने से हृदय की शक्ति बढती है।

—बूटी दर्पण।

अथवा—ब्राम्ही शुष्क, आवला, बहेडा व हरड २-२ तोला और कालीमिर्च ६ माशा सबको महीन पीस छान कर सबके बराबर मिश्री मिलाकर रखे। ६ माशा से १ तोला तक नित्य प्रात साय गौदुग्ध या ताजे जल के साथ सेवन से मस्तिष्क दौर्बल्य, उन्माद, दिल की धडकन आदि मे लाभ होता है। —स्व परीक्षित।

अथवा—ब्राम्ही, शखपुष्पी, शतावरी, गिलोय १-१ भाग, श्वेत चदन व गुलाब पुष्प आधा-आधा भाग इनको जौकुट कर २० भाग जल मे पकावे। चतुर्थाश शेष रहने पर उसमे मिश्री २½ भाग मिला एक तारी चाशनी बना रखे। २ से ५ तोला तक दूध या जल मे मिला कर प्रात साय सेवन से मस्तिष्क दौर्बल्य दूर होकर बुद्धि एव स्मरण शक्ति की वृद्धि होती है। —सकलित।

अथवा—ब्राम्ही के ताजे पत्र २० तोला कुचल कर १ सेर घृत मे मन्द आच पर पका, घृत को छानकर रखे। २½ तोला तक इस घृत के नित्य सेवन से बुद्धि बढती, दिमाग की गरमी, खुश्की दूर होती, स्मरण शक्ति बढती है।

बच्चो के लिये मधुर प्रयोग—आधा सेर ताजी या २० तोला सूखी ब्राम्ही का क्वाथ यदि १ सेर हो तो उसमे १ सेर खाड मिलाकर पकावे। पक्की चाशनी आने पर वर्फी की तरह जमा लेवे। १ तोला तक बच्चो को खिलाते रहने से उनकी बुद्धि बढती, सीतलापन दूर होता व खासी मे भी लाभ होता है। —बूटी दर्पण।

नोट—आगे विशिष्ट योगो मे 'ब्राम्ही घृत' और ब्राम्ही कल्प योग देखिये।

स्वर शुद्धि के लिये—ब्राम्ही, वच मीठी, सौंफ, अकरकरा, छोटी पिप्पली, मुलैठी और सोठ समभाग लेकर, महीन चूर्ण कर ३ माशा की मात्रा मे, प्रात साय शहद के साथ धीरे-धीरे चाटने से शीघ्र ही (२-४ दिनो मे) कठ विकार दूर होकर स्वर मधुर एव शुद्ध हो जाता है।

अथवा—ब्राम्ही, वच, हरड छोटी, अडूसा मूल तथा पिप्पली के समभाग चूर्ण को २ से ४ माशा तक शहद के साथ चाटने से सात दिन के अन्दर ही स्वर अत्यन्त मधुर होता स्वरभग दूर होता, एव गला खुल जाता है।

—वगसेन।

अथवा—ब्राम्ही, गोरखमुडी, वच, सोठ व पिप्पली के चूर्ण को शहद के साथ चाटने से भी उक्त लाभ होता है। —नि. र.।

(३) वीर्य वृद्धि के लिये तथा प्रमेह, स्वप्नदोष, निद्रानाश, मूत्रकृच्छ्र, श्वास, कास, सन्निपात, दाह और रक्तचाप पर—

वीर्य वृद्धि के लिये—हरी ब्राम्ही के १० तोला स्वरस मे, घृत मे भूने हुये जमीकन्द के टुकडे ५ तोला छिलका सहित छोटी इलायची का चूर्ण सफेद, मूसली का चूर्ण और लोहभस्म २-२ तोला तथा भेड का दही ५ तोला एकत्र मिलाकर, लोहे की कडाही मे भूनकर रख लेवे। बलानुसार २ रत्ती से ८ रत्ती तक की मात्रा मे सेवन से बल व वीर्य की अत्यन्त वृद्धि होती है। यह योग प्रमेह, धातुक्षीणता, वीर्यपात को नष्ट करता, वीर्य को पुष्ट कर मस्तिष्क दौर्बल्य तथा पाण्डु कामला मे भी लाभकारी है। इससे शरीर मे रुधिर बहुत बनता है।

प्रमेह, स्वप्न दोष पर—केवल ब्राम्ही के चूर्ण मे मिश्री मिलाकर नित्य दूध के साथ सेवन करने से भी लाभ होता है।

निद्रानाश पर—ताजी ब्राम्ही और शखपुष्पी के १½ तोला रस को, १०-१५ तोला कच्चे गोदुग्ध मे मिला पीते रहने से, ताजी ब्राम्ही व शखपुष्पी के अभाव मे इन दोनो का चूर्ण आधा तोला तक दुग्ध के साथ लेने से अथवा—

केवल ब्राम्ही का ही चूर्ण ३ माशा गाय के कच्चे दूध आधा सेर तक मे, अच्छीतरह घोट छानकर अथवा ब्राम्ही के ताजे २०-२४ पत्तो को साफकर गाय के आधा सेर कच्चे दूध मे घोट छानकर लगभग ७ दिन सेवन कराने से पुराना अनिद्रा रोग दूर हो जाता है।

मूत्रकृच्छ्र पर—ब्राम्ही का रस अथवा क्वाथ थोडी

मिश्री या शक्कर मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।

श्वास कास पर—ब्राम्ही, अडूसा, पिप्पली, ग्वारपाठा की जड, गिलोय और आक के क्वाथ तथा कल्क से सिद्ध किया हुआ घृत श्वास, कास को नष्ट करता है। (उक्त द्रव्यो का क्वाथ ४ सेर, कल्क सात तोला और घृत १ सेर एकत्र मिला यथाविधि घृत सिद्ध कर लेवे)।
—भा भै र

सन्निपात (विशेषत. चित्तभ्रम तथा रुग्दाह सन्निपात) पर—ब्राम्ही, वच, खश, नागरमोथा, त्रिफला, कुटकी, खरैटी, अमलतास, चिरायता, नीम की छाल, कडवी तोरई, मुनक्का और दशमूल का क्वाथ पिलाने से लाभ होता है।
—यो र

दाह पर—ब्राम्ही के साथ धनिया मिला, रात को जल मे भिगो प्रात पीस छानकर मिश्री मिला पिलावे।

रक्तचाप पर—ब्राम्ही, अर्जुन की छाल, सर्पगन्धा, गिलोय, आमला व असगध समभाग महीन चूर्ण कर, ३ माशा की मात्रा प्रात सायं १० तोला गौदुग्ध मे मिला कर सेवने से उच्च रक्तचाप, हृदय की धडकन एव स्वभाव का चिडचिडापन दूर होता है।

अथवा—ब्राम्ही, कूठ, सर्पगधा, अर्जुन छाल व शखपुष्पी १–१ तोला तथा वच आधा तोला एकत्र महीन चूर्ण कर बीजरहित मुनक्को के साथ खूब घोटकर ४-४ रत्ती की गोलियाँ बना लेवे। दूध के साथ २–२ या ४–४ गोलियां दिन मे २ बार नियमित लेने से उच्च रक्तचाप मे लाभ होता एव मस्तिष्क दौर्बल्य दूर होता है।
—सकलित

नोट—मडूकपर्णी—ब्राह्मी और मडूक पर्णी का घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण, प्रसगानुसार मडूकपर्णी के विषय मे यद्यपि बहुत कुछ उक्त प्रारभ के नोट न १ मे दिया जा चुका है तथापि कुछ महत्व की बाते जो वहा नही देने मे आई वे यहा दी जाती है—

यह भारत तथा विदेशो मे भी उष्ण प्रदेशो मे सर्वत्र वर्षा ऋतु मे पैदा होती है। इसे जल मिलता रहे तो वर्ष भर हरी बनी रहती है। इसके पत्तो को मसल कर सूघने से कुछ तीव्र गध आती है। कई स्थानो पर यह ब्राम्ही के नाम से प्रचलित है, किंतु यह वास्तव मे ब्राम्ही नही है।

डा० देसाई के मतानुसार मडूकपर्णी-कुष्ठहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण, मूत्र जनन, स्तन्य शोधन, ग्राही, बल्य और रसायन है। ताजी दशा मे इसे बडी मात्रा मे देने से नशा लाती है, फिर सिर मे दर्द व चक्कर आता है। इसका प्रभावशाली तेल त्वचा द्वारा बाहर निकलता है, जिससे त्वचा उष्ण प्रतीत होती तथा कुछ पीडा भी होती है। यह पीडा प्रारम्भ मे हाथो से शुरू होकर सारे शरीर मे जाती है। कभी-कभी शारीरिक उष्णता असह्य हो जाती है। केशिकाओ मे रक्त की गति बढ कर त्वचा लाल होती एव खुजली चलती है। लगभग ७ दिन के बाद-क्षुधा बढती है। इसका तेल वृक्को द्वारा बाहर निकलने से मूत्र का परिमाण बढ जाता है।

डा खोरी का कथन है कि ज्वरातिसार तथा रक्तातिसार मे इसका सेवन मुलैठी के साथ किया जाता है। यह उष्ण एव रसायन होने से विविध त्वचारोग, फिरङ्ग (उपदश) जन्य रक्तविकार के ददोरे, शून्य कुष्ठ (Anaestheticl ep*osy), श्लीपद, गलगण्ड, गण्डमालादि रोगो मे यह व्यवहृत होती है। पीनस रोग मे इसकी मूल का नस्य कराया जाता है। फिरङ्गज व्रण एव अन्य प्रकार के क्षतो पर इसका लेप करते या पुल्टिस बाधी जाती है। तथा जलस्रावी व्रणो पर इसके पत्तो का चूर्ण बुरका जाता है। इसकी जड तथा ताजे पत्तो मे एक उडनशील तेल और एमीलिन (Amylene) नामक भयकर बेहोशी लाने वाला दाहक (हाइड्रोजन व कार्बन प्रधान) द्रव्य पाया जाता है। इनके अनुरूप ही ताजी मडूकपर्णी का गुण माना जाता है।

डा० बोइलू का अनुभव—कुष्ठग्रस्त रोगी पर इसका प्रयोग करने से प्रथम हाथ पैर की त्वचा मे उष्णता होती तथा खुजली चलती है फिर थोडे दिन बाद सारी देह मे उष्णता व अति खुजली होती, त्वचा लाल हो जाती, रक्त की गति तेज होती, नाडी अति तीव्र एव पूर्ण चलती है। ७ दिन बाद क्षुधा बढकर पचन क्रिया बहुत ठीक होने लगती है। कुछ दिनो बाद त्वचा मुलायम एव एक समान हो जाती है। उपत्वचा के छिल्टे निकल जाते

स्वेद आने लगता, तथा त्वचा का कार्य यथास्थिति होने लगता है।

यदि इसे अल्पमात्रा मे स्वस्थ मनुष्य को दिया जाय तो शीघ्र ही मूत्रल गुण दर्शाती है। इसके चूर्ण की मात्रा १ से २ माशा तक दी जाय तो तन्द्रा आने लगती और मस्तिष्क मे वेदना (Cephalgia) होने लगती है। फिर इसका सेवन बन्द करने पर भी यह असर एक मास तक बना रहता है। कभी कभी इससे भयकर प्रवाहिका भी हो जाती है। मैं अपने स्वानुभव से कहता हू कि मैंने इसका स्वय सेवन किया और मात्रा बढाते गया। मुझे ज्ञान हुआ कि इसका विषैला सत्व शरीर मे सग्रहीत होकर विष प्रकोप दर्शाता है। इसके विष प्रभाव से मुझे इतनी ठडक (शीत) लगने लगी कि अनेक रजाई ओढने पर एक घण्टे के बाद देह मे उष्णता आई। इसके बाद स्वरयत्र मे खिचाव होने लगा। ऐसा प्रतीत होने लगा कि इसी समय हृदय की गति बन्द हो जायगी। फिर आक्षेप के चिह्न प्रारम्भ हुए तथा शाम ो वमन और रक्तातिसार होगया। ये तो शीघ्र ी मिट गये। दूसरे दिन प्रात विष का प्रभाव तो नहीं रहा, किन्तु निर्बलता तथा गले मे वेदना का अनुभव होता था। इससे अनुमान किया जा सकता है कि मडूकपर्णी योग्य मात्रा मे दी जाय तो रुधिराभिसरण क्रिया के लिये उत्तम उत्तेजक है। तथा इसका असर विशेषत त्वचा पर होता है। मात्रा अधिक देने पर तन्द्रा लाती है और कभी मूर्च्छा भी होती है।

त्वचा के सर्व प्रकार के रोगो मे रुधिराभिशरण को सबल करने की इसमे अधिक शक्ति है। यद्यपि यह वातरक्त और फिरग रोग पर पूरा लाभ नही पहुचा सकती तथापि उक्त शक्ति के कारण इससे कुछ लाभ तो होता ही है। यह पुरानी दृढ व्यूची (छाजन, एग्झीमा) पर अतिप्रशमनीय लाभकारी है। क्षत, सुजाक के साथ उत्पन्न फिरङ्ग की द्वितीय व तृतीय अवस्था मे भी यह उत्तम लाभदायक है। एव पुराने, सडे हुए व्रण, बालकों के अतिसार तथा पीनस आदि रोग मे निकलने वाले पूय, आम, कफादि का सुधार कर शक्ति देने मे यह चमत्कारक लाभ पहुचाती है। —गा औ र

मंडूकपर्णी के प्रयोग—

(१) रक्त विकार, त्वचा के विकार, जलोदर, कामला तथा पीनस पर—इसके पत्र या पञ्चाग का चूर्ण १½ तोला, कुलिजन, अजवायन व पिप्पली १-१ माशा सबका चूर्ण एकत्र कर, पान के रस मे घोटकर १-१ रत्ती की गोलिया बना ले। दिन मे ३ बार (१-१ या २-२) गोली ४० दिन तक इन रक्त विकारहर गोलियो का सेवन करे। पथ्य मे घृतयुक्त बिना नमक की चने की रोटी खाना चाहिये। —स्वर्गीय प० भागीरथ स्वामी

त्वचा के रोगो पर मलहम—इसके १ भाग पत्रचूर्ण मे ७½ भाग वैसलीन मिला कर मलहम बना लेवे। सब प्रकार के त्वचा विकारो पर इसके लगाने से लाभ होता है। —गा औ र।

जलोदर पर—इसके लगभग १ तोला पत्तो के साथ निशोथ के पत्र मिला कर दोनो को निशोथ के ही स्वरस मे या जल मे साग के समान पकाकर, उसमे खटाई, नमक या घृतादि मिलाये बिना सेवन करे। भोजन बिल्कुल न करे। इस प्रकार एक मास (उदर्याकला से दूषित जल निकल जाय उदर नरम पडे और क्षुधा की प्रतीति होने तक) प्रयोग करे। फिर दुर्बल रोगी के प्राणो की रक्षा या पुष्टी के लिये ऊटनी के दूध का सेवन कराने पर बढा हुआ, प्रबल जलोदर भी नष्ट होकर देह निरोगी एव सबल बन जाती है।

इस चरक सहिता के प्रयोग से विरेचन होकर पतले जल सदृश दस्त लगते है। वर्तमान मे ३ से ५ दिन प्रयोग करने पर उदर नरम हो जायगा ऐसा अनुमान है। जिस रोगी को उदर से जल निकालने की सुविधा न हो ऐसे बढे हुये रोग वाले रोगी को यह प्रयोग करा सकते है। —गा औ र

नोट—हमारे विचार से केवल मडूकपर्णी को ही उचित मात्रा मे लेकर उसे उसके रस या थोडे जल के साथ उबालकर या बिना उबाले चटनी जैसा पीसकर सेवन कराने और प्यास लगने पर उसी का रस पिलाने से भी लाभ होता है तथा यही अभिप्राय चरक जी का प्रतीत होता है। [देखो चरक चि अ १३]—सम्पादक

कामला—मडूक पर्णी के स्वरस मे शहद या हल्दी का चूर्ण अथवा आमला या दूध मिलाकर प्रात काल पीने मे लाभ होता हे —भा भ र ।

पीनस पर—मडूकपर्णी, काली मिर्च और कुलथी का मन्दोष्ण क्वाथ पीने मे लाभ होता है —भा भै र ।

[२] उपदश, कुष्ठादि चर्म रोग, श्लीपद, रक्तस्राव दुष्ट व्रण, मुखपाक, श्वेतप्रदर, हकलाहट और अर्श पर—

उपदश, फिरग उपदश पर—इस व्याधि की द्वितीय अवस्था मे जव विकार त्वचा एव श्लेष्मिक कला मे अधिष्ठित होता है तव इसके प्रयोग से लाभ होना है । इस व्याधि की गर्मी के कारण रक्त विकृत होकर, शरीर पर छोटी छोटी फुसिया उठ आई हो, सधियो मे जकडन हो, शरीर मे रह-रह कर पीडा उठती हो, तो इसके १ तोला स्वरस मे गोघृत आधा तोला और शहद ३ माशा मिश्रण कर पिलावे [यह एक मात्रा हे] इसी प्रकार प्रात साय सेवन मे लगभग १ या २ मास मे पूर्ण लाभ होता है । स्त्रियों को भी उपदशजन्य गुप्त रोगो पर इस प्रयोग का सेवन लाभदायक है ।

अथवा इसके पचाग के जौकुट चूर्ण २ तोला को जल और दूध १०-१० तोला मे मिला, थोडा उवालकर मिश्री या शक्कर मिला छानकर नित्य २ वार ३ मास तक पिलावें ।

नोट—इस प्रयोगार्थ ब्राह्मी भी ली जा सकती है तथा उत्तम कार्य करती है ।

श्लीपद पर—इसका पचाग १ तोला कालीमिर्च ७ नग एकत्र पीस कर १० तोला जल मे घोल छानकर प्रात साय पिलाते हैं तथा नीचे कुष्ठादि चर्म रोग देखिये ।

रक्तस्राव पर—इसके पत्र आधा तोला को ५ तो जल मे पीस १ तोला मिश्री मिला पिलावें । दिन मे २ या ३ वार ।

इस प्रयोगार्थ ब्राह्मी पत्र लेना और भी अच्छा है ।

कुष्ठादि चर्म रोग तथा व्रणो पर—आभ्यतर प्रयोगार्थ चूर्ण स्वरस या शर्वत आदि काम मे लाया जाता है । इसका स्वरस यथोचित मात्रा मे अथवा इसका चूर्ण ३ रत्ती से ८ रत्ती तक शहद के साथ दिन मे ३ वार चटाते हैं ।

वाह्य प्रयोगार्थ —इसके चूर्ण की पुल्टिस, मलहम आदि वनाते है । शतधौत घृत २ तोला मे इसके स्वरस की ६० बून्दे डालकर खूव फेट डालने से उत्तम मलहम तैयार हो जाता है । अथवा एक औंस वेसलीन मे इसका स्वरस १ ड्राम मिलाकर मलहम वना लेते है । इस मलहम को लगाते रहने से तथा उक्त प्रकार से इसके आभ्यन्तर सेवन से श्लीपद,अण्डवृद्धि, त्वचा के चट्टे, कुष्ठ, पामा, उकवत [एक्झीमा], फोडा, व्रण, गड या ग्रन्थि वृद्धि (Enlargement of glands) सधिवात आदि पर लाभ होता है ।

साधारण कुष्ठ रोगी को उक्त प्रकार से इसके वाह्य एव आभ्यन्तरिक प्रयोग से रोग मे शीघ्र ही लाभ होने लगता हे । किंतु वीच मे रोगी के शरीर मे खुजली का दौरा होने लगता है । ऐसी दशा मे ७-८ दिन के लिये उक्त उपचार को वन्द कर उसे अमलतास निशोथ आदि सौम्य रेचक देना चाहिये । सौम्य रेचन कराने के २-३ दिन पहले से ही रोगी को घृत से तर की हुई चावल व मूग की खिचडी दोनो समय खिलावे । ऐसी कोई मु जिस कराये विना सौम्य जुलाब का कुछ भी असर नही होना । फिर वैसा ही उपचार प्रारभ करे । वीच वीच मे जव जव खाज का उपद्रव हो तो उपचार को वन्द कर रेचन क्रिया का सहारा लेता रहे । १-२ मास मे अवश्य लाभ होता है ।

दुष्ट व्रण या नाडी व्रण पर—इसके पत्रो को पीस कर पुल्टिस जैसा वना कर वाधते या लेप करते है । दिन मे १ या २ वार ।

मुख पाक या मुख के छालो पर—इसके पत्तो को वार वार चवाकर थूकने से [दिन मे ३ वार] लाभ होता है ।

श्वेत या रक्त प्रदर पर—इसके पचाग का चूर्ण १ से २ माशा तक शहद के प्रात साय साथ चटाते है ।

—सकलित

हकलाहट या तुतलाने के विकार पर—इसके

[या ब्राह्मी के] छायाशुष्क पत्रो के साथ तुलसी या अडूसे के शुष्क पत्र तथा मुलेठी, कुलिजन, छोटी पिप्पली और श्वेत मिर्च इन सबका महीन चूर्ण १ से ३ माशा तक प्रात साय शहद के साथ चटावे तथा भोजन के बाद सारस्वतारिष्ट [आगे विशिष्ट योगो मे देखें] २ से ३ तोला समभाग जल मिलाकर पिलावे। शीघ्र लाभ होता है —आ विकास

अर्श पर—इसका पञ्चाग शुष्क किया हुआ, सनाय, गुलाब पुष्प १-१ तोला, पिप्पली १½ तथा नीम की निबौली, रसौत, हरड, मुनक्का २-२ तोला इन सबका चूर्ण कर उसमे शुद्ध गूगल २ तोला मिला, त्रिफला के क्वाथ से घोटकर छोटी-छोटी बेर जैसी गोलिया बना लेवे। प्रात. साय जल से ३ या ४ गोली तक सेवन करे। कब्जी विशेष हो तो इसे गरम जल के साथ लेवे। इससे दोनो प्रकार अर्श पर लाभ होता है ।

मस्सो पर—इसके पत्र, नीम पत्र, कनेर पत्र, कडवी तुरई की जड और गुड इनको काजी मे पीसकर लेप करते रहने से मस्से गिर जाते है। —अ योगमाला।

नोट—मात्रा-स्वरस [ब्राह्मी] १-२ तोला मडूक पर्णी की मात्रा इससे कम देनी चाहिये। पत्र [ब्राह्मी] बडो को ८ से १२ तक बालको को २-४ की सख्या मे। मूल चूर्ण ३-१२ रत्ती तक। पचाग चूर्ण १ से ५ माशा तक [किंतु मडूक पर्णी बहुत कम] छायाशुष्क पचाग चूर्ण [मडूकप] २ से ४ रत्ती। कुष्ठ एव वात के रोगी को कल्प कराने के लिये प्रथम सप्ताह मे ५-५ रत्ती। फिर प्रति सप्ताह ढाई रत्ती बढाकर ४ मा तक बढावे। फिर ढाई-ढाई रत्ती कम करके छोड देवे। एक मास तक बिल्कुल बद रखे। पुन आवश्यकतानुसार क्रमश ४ माशा तक बढावे, प्रारभ से यह चूर्ण रात्रि को शयन के पूर्व निवाये जल के साथ दिन मे १ बार लेवे। फिर उसके दो विभाग कर प्रात और रात्रि को लेवे। [डा० बोइल]

ध्यान रहे ब्राह्मी या मँडूक पर्णी के पत्तो को धूप या उष्णता मे कदापि न सुखावे। उन्हे चटाई पर जहा स्वच्छ हवा बहती हो, अच्छी तरह फैला देना चाहिये। १-२ दिन मे सब पत्र भलीभाति शुष्क हो जाने पर कूट पीस चूर्ण कर या वैसे ही शीशियो मे भर, मुख अच्छीतरह बन्द कर रखे। ऐसे ही शुष्क पत्रो का उपयोग करने से पूर्ण लाभ होता है। अन्यथा रोगी को केवल भूसा खिलाना।

ब्राह्मी के कुछ दोष—आचार्य नित्यानन्द जी का कथन है कि ब्राम्ही के दो दोष उल्लेखनीय है। एक तो यह शरीर मे रूखापन पैदा करती है दूसरे यह कुछ मलावरोधक भी है। किंतु इन दोषो को हम आसानी से दूर कर सकते है। यही नही इन दोषो को दूर करने मे जिन पदार्थो का सेवन करना चाहिये उनमे हमारा ब्राम्ही के प्रति आकर्षण बढता ही है घटता नही। रूक्षता मिटाने के लिये किसी स्निग्ध चीज के साथ और मलावरोध शक्ति को नष्ट करने के लिये हलका सा रेचक द्रव्य साथ मे लेना चाहिये। इसलिये ब्राम्ही का मनमाने ढग पर प्रयोग करने की सलाह मैं नही देता हू। किंतु उचित तरीके से इसका सेवन बुद्धि जीवियो के लिये एक वरदान सिद्ध होगा —स्वास्थ्य से साभार

मण्डूकपर्णी का अतियोग होने से शीतजन्य वातवृद्धि के कारण मद, शिर शूल, भ्रम व अवसाद उत्पन्न होने है। त्वचा मे लालिमा और कण्डू होती है। ऐसी अवस्था मे मात्रा कम दें या प्रयोग ही बन्द कर देना चाहिये। उष्ण प्रकृति के लिए भी यह हानिकर है।

अहितकर हानि निवारणार्थ विरेचन, तथा अन्य वात शामक औषध विशेषत सूखी धनिया का फाण्ट, या खुरासानी अजवायन का प्रयोग करे।

प्रतिनिधि—दाल चीनी, कबाब चीनी और तज है।

विशिष्ट योग—

(१) ब्राह्मी कल्प—वमन विरेचनादि द्वारा शरीर को शुद्ध कर (कुटीप्रवेश विधि से) प्रथम सहस्रसपात* मत्रो से आहुति देकर, शक्ति के अनुसार ब्राह्मी स्वरस का सेवन करें। जब यह पच जावे, तब तीसरे प्रहर मे,

*मत्र—"ॐ अमृतोद्भवाय अमृत कुरु ॐ" इस मत्र से सहस्रबार अग्नि मे आहुति देकर, अथवा—ऋग्वेद के सहस्रसम्पाताध्याय में कहे हुए सहस्र मत्रो से आहुति देकर कल्प सेवन प्रारभ करें।

लवणरहित यवागू लेवे, अथवा दूध के साथ यवागू का सेवन करे। इस प्रकार ७ दिन सेवन से मनुष्य तेजस्वी व मेधावी होता है। दूसरी बार ७ दिन सेवन से अभिलषित ग्रन्थ रचना मे समर्थ होकर विस्मृत रचना स्मरण हो जाती है। तीसरी बार ७ दिन के सेवन से दो बार कही गई सौ (१००) वाणी भी एक साथ स्मरण रखता है। इस प्रकार २१ दिन सेवन से दु ख दारिद्रय नष्ट होता, सरस्वती देवी प्रत्यक्ष शरीर मे प्रवेश करती है। स्मरण एव धारणा शक्ति विशेष बढ जाती है। तथा दीर्घायु की प्राप्ति होती है। —सुश्रुत चि अ २८।

कल्प न २—सुश्रुत के उक्त चि अ २८ मे ही 'ब्राम्ही घृत रसायन कल्प' इस प्रकार है—ब्राम्ही स्वरस २ प्रस्थ (१२८ तोला) और घृत १ प्रस्थ (६४ तोला), विडगतडूल (वायविडग के तुषरहित चावल) १६ तोला, वच व गिलोय का चूर्ण ८-८ तोला तथा त्रिफला चूर्ण ४८ तोला इनको जल के साथ पीस, कल्प बना उक्त स्वरस और घृत मे मिला, धीमी आच पर पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छान कर सुरक्षित रखे। पश्चात् उक्त कुटी प्रवेश विधि से हवनादि कर, शक्ति के अनुसार उचित मात्रा मे (१ से २ तोला तक) इसे सेवन करें। औषधि के पच जाने पर दूध, घी और भात खावे। नमक आदि का त्याग करें। इसके सेवन से वमन, दस्त व पसीने द्वारा शरीर के दूषित कृमि निकल जाते है। दारिद्रय नष्ट होता, शरीर की काति निखरती है। आयु स्थिर रहती, कुष्ठ, विषमज्वर, उन्माद, अपस्मार, विष, भूतबाधा आदि रोगो का नाश होता है।

कल्प न ३—'ब्राम्हीसिद्ध कल्प'—ब्राहमी २० तोला, बच, गोरखमुंडी की गुडिया ५-५ तोला, पिपल्ली व सुवर्णभस्म १-१ तोला, कालीमिर्च १ माशा और बादामगिरी का मोटा चूर्ण मशीन से कर, शेष द्रव्यो का महीन चूर्ण कर सबको मिला, शहद के साथ ३ घण्टे खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना लेवे। १-१ गोली दिन मे दो बार प्रात और रात्रि को पकाकर सुखोष्ण दूध के साथ सेवन करे।

इस कल्प का प्रयोग पथ्यपालनपूर्वक १ वर्ष तक करे। यह मस्तिष्कशोधक, रसायन, धारणाशक्तिवर्धक तथा दीपन पाचन है। इसका प्रयोग मस्तिष्क मे कफ आम या विष का सग्रह, जीर्ण अपस्मार, स्मृतिनाश, जीर्ण सिरदर्द, जीर्ण प्रतिश्याय, पीनस, नेत्रविकार, दृष्टिमाद्य एव वात प्रकोप आदि रोगो पर होता है। इसके सेवन काल मे गोघृत का नस्य भी कराते रहना चाहिए। जिससे नासा मार्ग से श्लेष्मस्राव होकर मल निकलता रहे। —रसतत्रसार से साभार।

कल्प न ४—मडूकपर्णी कल्प—स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन एव वस्ति (पचकर्मो से) शुद्ध किये हुए व्यक्ति को अन्नादि भोजन का परित्याग करा विधिवत् उसके द्वारा उक्त ब्राहमी कल्प न १ मे कही गयी आहुती आदि एव कुटी मे प्रवेश करा, उसकी शक्ति के अनुसार (प्रथम दिन ३ माशा तक) मडूकपर्णी को महीन पीसकर न ले स्वरस को दूध मे मिला (या प्रथम कल्क को खिला या स्वरस को पिला) ऊपर से दूध पिलावे। इसके पच जाने पर दोपहर को दूध के साथ जौ की थूली या दलिया का ३ मास तक सेवन करावे। अथवा तिलो के साथ मडूकपर्णी को पीस, कल्क कर दूध के अनुपान से इस कल्प का प्रारभ करे। पच जाने पर दोपहर को दूध और घृत के साथ भात का सेवन करावे। शक्ति के अनुसार औषधि की मात्रा ७ दिन के बाद बढावे। अथवा ३ दिन उपवास करा, ३ दिन मडूकपर्णी का सेवन करावे और ३ दिन के पश्चात् दूध और घृत का पथ्य देवे इस प्रकार १२ दिन सेवन करने वाला व्यक्ति बुद्धिमान व शतायु होता है। ३ मास तक सेवन करने वाला तेजस्वी एव अति धारणाशक्ति युक्त होकर दीर्घायु होता है।

—सुश्रुत चि स्था अ २८

(२) ब्राहमीरसायन—छायाशुष्क ब्राहमी, शखपुष्पी, गिलोय, व मुलैठी ५-५ तोला सूक्ष्म चूर्ण कर, उसमे स्वर्ण भस्म ½ तोला अच्छी तरह मिला, खरल कर, शीशी मे सुरक्षित रख लेवे। १ से ३ माशा तक मात्रा मे, शुद्ध घृत ३ माशा और शहद १ तोला मिला सेवन करे। ऊपर से इच्छानुसार दूध पीवे। इस प्रकार प्रात साय सेवन से, शीघ्र ही स्मरणशक्ति, हृदय शक्ति एव शारीरिक

शक्ति की वृद्धि होती है।

अथवा—साधारण सर्व प्रकार की शक्ति वृद्धि एव रसायन सिद्धि के लिये ब्रहमी २ तोला तक लेकर गोदुग्ध २० तोला और जल १ सेर तक एकत्र मिला क्षीर पाक करे। दूध मात्र शेप रहने पर, छानकर उसमे मिला सेवन करते रहे।

(३) ब्राहमी चूर्ण-(सारस्वत चूर्ण) कूठ, असगध, सेधानमक, कालीमिर्च, पिप्पली, शखपुष्पी, अजमोद, सोठ, श्वेतजीरा और स्याह जीरा इनके समभाग चूर्ण मे उतना ही मीठी वच का चूर्ण मिला, उसमे ब्राहमी स्वरस की २१ भावनाये देकर शुष्क कर चूर्ण को सुरक्षित रखे। ६ माशा तक की मात्रा मे प्रात.साय गोघृत या उत्तम शहद के साथ सेवन से तथा ऊपर से गोदुग्ध का पान करने से बुद्धितीव्र होती, स्मरण शक्ति, शारीरिक शक्ति बढती है।

चूर्ण न० २—ब्राहमी त्रिकुटा, त्रिफला, धनिया अजवायन, शतावरी, बच व भारगी सबके समभाग चूर्ण को कागदार शीशी मे भर रखे। शक्ति अनुमार उचित मात्रा मे सेवन करने से स्मरणशक्ति बढती, स्वरशुद्धि होती, सेवन काल मे तैल, मिर्च रूखी, खट्टी एव वातज चीजो से परहेज करे।

चूर्ण न०३—ब्राहमी १० तोला, मीठी वच, मुलैठी, असगध, विधारा व शतावर ५-५ तोला तथा मिश्री ३५ तोला सबका महीन चूर्ण बना रखें। बलाबल के विचार से इसकी मात्रा (१ तोला तक) प्रात साय गोदुग्ध यथेच्छ ½ सेर तक के साथ सेवन करे। प्रथम इसकी मात्रा ३ से ६ मात्रा तक गोदुग्ध २० तोला के साथ सेवन करे। फिर धीरे-धीरे बढावे। दूध को अच्छी तरह पकाकर शीतल होने पर मिश्री मिलाकर पीवें। धारोष्ण दूध हो तो सर्वोत्तम। इसके सेवन से प्रमेह, स्वप्नदोपादि सपूर्ण धातु विकार नप्ट होते है। —बूटीदर्पण

चूर्ण न ४—ब्राहमी १ तोला, शखपुष्पी ३ माशा, बादाम गिरी २ तोला, चारो मग्ज ४ तोला' धनिये की गिरी (या धनिया) व गोखरू १-१ तोला तथा त्रिफला ३ तोला, कूट पीस कर चूर्ण कर रखे। मात्रा ३ माशा दूध के साथ १ मास तक लेवें। घृत सेवन जारी रखे। दिमाग को शक्ति देने एव दृष्टिमाद्य पर लाभकारी है। —सचित्रायुर्वेद।

(१) ब्राम्ही वटी—ब्राम्ही २० तोला, मुलैठी ६ माशा, छोटी इलायची बीज दो तोला, केसर १ तोला, चादी, वर्क २० नग, स्वर्ण वर्क १० नग, कस्तूरी २ माशा, मीठी बादाम गिरी ५ तोला, अभ्रक भस्म ६ माशा सबको महीन पीस, यथाविधि खरल कर धनिया और सौंफ के क्वाथ से ३ दिन भावित करे। २-२ रत्ती की गोलिया शहद की सहायता से बनावे। १ से ४ गोली, प्रात साय दूध से लेवे। स्मृतिदोप, उन्माद, प्रतिश्याय, मस्तिष्क की दुर्बलता मे अत्यन्त परीक्षित है। —यू चि सा।

वटी न० २—रस सिन्दूर ५ तोला, अभ्रक भस्म, बग-भस्म, शुद्ध शिलाजीत, कालीमिर्च, पिप्पली, वायविडग १-१ तोला एकत्र महीन चूर्ण कर ब्राम्ही के क्वाथ मे घोट-कर चना जैसी गोलिया बना ले। १-२ गोली दिन मे २ या ३ बार आवश्यकतानुसार मक्खन, मलाई, दूध आदि के साथ देने से स्मरणशक्ति की वृद्धि और कमजोरी दूर होती है। —अ यो मा

वटी न० ३—ब्राहमी ५ तोला, अभ्रक, पारद भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, लोह भस्म, शिलाजीत, वायविडग १-१ तोला एकत्र खूब खरल कर शहद और घृत की सहायता से १ माशा तक की गोलिया बना ले। सेवन से स्वप्नदोप, मस्तिष्क दौर्बल्य, धातुस्राव, निर्बलता, कृशता दूर होती है। —धन्वन्तरि।

(५) ब्राम्ही नवनीत (मक्खन)—रात्रि मे २½ सेर गोदुग्ध को अच्छी तरह पकाकर उसमे ब्राम्ही के शुष्क पत्र १½ तोला और छोटी इलायची समभाग दोनो का महीन चूर्ण मिला दूध को जमा देवे। प्रात मथकर मक्खन निकाल, उसे थोडा गरम कर उसका मट्ठा अलग कर, मक्खन को काच के पात्र मे भर उसमे वशलोचन, रूमी-मस्तगी और काली मिर्च का महीन चूर्ण प्रत्येक १½ तो० मिलाकर रख दे। मात्रा—३ माशा से १ तोला तक छोटे बच्चो को १ से १½ माशा बडे बच्चो को १½ से ६ मा० तक उम्र के अनुसार गाय के दूध के साथ या वैसे ही मिश्री मिलाकर चटाये। निरतर ४० दिन के सेवन से बुद्धि, बल एव वीर्य की विशेप वृद्धि होती है। प्रमेह,

स्वप्न दोष, कब्ज आदि विकार दूर होते है। यह दिल व दिमाग को बलकारक तथा वर्ण को निखारता है।

—घर का डाक्टर से साभार

(६) ब्राम्ही पानकया ठडाई—ब्राम्ही ३ माशा, गुलाब पुष्प १ नग, बादाम गिरी (जल मे भीगी हुई) ७ नग, इलायची ७ नग, कालीमिर्च २८ नग, साफ १५ नग, खसखस १ माशा, शुद्ध भाग (४ बार जल मे धुली हुई) ४ रत्ती, तथा पिस्ता (या कोई एक मगज) ६ माशा इन सबको एक साथ सिल पर बलवान हाथो से बीच बीच मे जल के छीटे देते हुए खूब महीन पीसे। आवश्यक जल ५ तोला तक मिला छानकर १० तोला दूध और शक्कर २ तोला मिलाकर १–१½ गिलास ठडाई तैयार कर सेवन करने से (१½ महीने के प्रयोग से) हृदय व मस्तिष्क बलिष्ठ होता है। उन्माद, अपस्मार, योषापस्मार, मानसिक विकृति मे यह सतत लाभप्रद प्रयोग है। —धन्वन्तरि।

ठडाई न० २—ब्राम्ही पत्र हरे या शुष्क लगभग १ तोला रात को भिगोकर, प्रात साय उसके साथ भीगे बादाम १० नग, पोस्तदाना (खसखस) ३ माशा, इलायची के दाने और थोटी कालीमिर्च मिला सिल पर खूब रगडकर पीस ले। तथा उसमे शक्कर और जल इच्छानुसार मिला छानकर प्रात. पीने से दिन भर तरी रहती है। उष्णकाल के लिये यह उत्तम ठडाई है। अधिक मानसिक श्रम से भी दिमाग मे कोई थकावट नही होती, पाचन शक्ति बढती, मलावरोध दूर होता है। चाहे तो इसमे दूध भी मिलाया जाता है, बरफ भी डाली जा सकती है।

जिसे ठडाई पीसने की सुविधा न हो वे ब्राम्ही का अर्क निकालकर रख ले। तथा उसमे शक्कर मिला और ऊपर से जल मिला पीवे। ब्राम्ही को चौगुने जल मे २४ घण्टे भिगोकर भवके से अर्क खीच लिया जाता है।

—स्वास्थ्य से।

(७) ब्राह्मी अर्क—ब्राम्ही शखपुष्पी, वच व गिलोय प्रत्येक २० तोला लेकर जौकुट कर ८ सेर जल मे २४ घण्टे भिगोकर भवके से अर्क खीच लेवे। मात्रा १ तो अनुपान दूध। इसके सेवन से मेधा तेज होती, हृदय और मस्तिष्क बलवान होता, स्मरण शक्ति बढती तथा ज्वर दूर होता है।

अर्क न० २—ब्राम्ही, नीलकठी नीम की छाल, पित्त पापडा १०–१० तोला, शीशम की छाल, चिरायता, उशबा, निशोथ व गिलोय ५–५ तोला जोकुट कर ८ गुने जल मे २४ घण्टे भिगोकर अर्क खीच लेवे। मात्रा २ तोला मे शहद मिलाकर सेवन से उपदश आतशक का गन्दा रक्त शुद्ध हो जाता, दाद, खाज व चर्मरोग दूर हो जाते है।

नोट—इस प्रयोग के लिये 'ब्राम्ही के स्थान मे मडूकपर्णी लेना उचित है। —बूटी दर्पण।

अर्क न० ३—ब्राम्ही, मुनक्का, तुलसी पत्र, इलायची व लौंग १०–१० तोला, शख पुष्पी ५ तोला सबको जो कुटकर ८ गुने जल मे मिलाकर अर्क खीच लेवे। मात्रा ५ तोला तक, थोडा जल मिला सेवन से शरीर निरोगी तथा कठ साफ होता है। कास, श्वास हिक्का दूर होती, मस्तिष्क शक्ति बढती, क्षुधा तीव्र होता है।

(८) ब्राह्मी अरिष्ट—

ब्राह्मी अरिष्ट (सारस्वतारिष्ट या दिव्यारिष्ट)—शुद्ध होकर शुभ दिन, प्रात ब्रह्म मुहुर्त मे मूल, पत्र, शाखा युक्त ब्राह्मी १ सेर तथा पुष्य नक्षत्र मे उखाडी मे हुई या सग्रह की गई शतावर, विदारी कन्द, हरड, खस, अदरख सौंफ प्रत्येक २० तोला लेकर सबको जोकुट कर १६ सेर जल मे पकावे। ४ सेर शेष रहने पर, छानकर ठडा होने पर उसे सुवर्ण कलश या मिट्टी के शुद्ध चिकने मटके मे भर उसमे आधा सेर शुद्ध शहद, १ सेर मिश्री या खाड तथा धाय के फूलो का चूर्ण २० तोला, निर्गुण्डी के बीज (ये न भी मिले तो चल सकता है), निशोथ, पिप्पली, लौंग, वच, कूठ, असगध, बहेडा, गिलोय, छोटी इलायची बीज, वायविडग व दालचीनी प्रत्येक का चूर्ण १–१ तोला मिला (यदि मिट्टी के पात्र मे भरा हो, तो उसमे स्वर्ण पत्र का सूक्ष्म चूर्ण भी १ तोला मिलावे)। पात्र का मुख अच्छी तरह बन्द कर एक मास तक सुरक्षित रखे। पश्चात् खोलकर देखे, यदि स्वर्ण
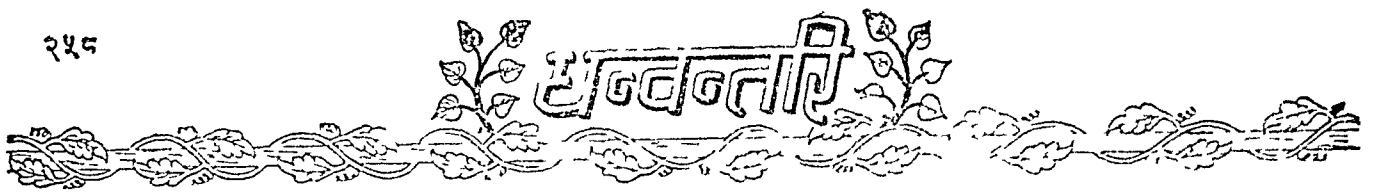
पत्र विलीन हो गये हो, तो कपडे छानकर बोतलो मे भर रखे ।' मात्रा ३ से माशा १ तोला तक, गोदुग्धके अनुपान से लेवे । यह आयु, वीर्य धारणाशक्ति, बुद्धि, वल एव कांतिवर्धक, हृद्य, रसायन है । स्वरभग, स्वर का भारी होना एव हकलाना नाशक, मज्जातन्तु, मस्तिष्क के लिये अत्यन्त गुणकारी है । शिशु, बालक, तरुण, वृद्ध पुरुष या स्त्री को किसी भी ऋतु मे समान गुणदायक है । पुरुषो के वीर्य दोषो को एव स्त्रियो के ऋतु दोषो को नष्ट करने मे यह अपूर्व गुणशाली है. ओजवर्धक है। उन्माद, अपस्मार एव मूर्च्छा रोग को भी यह दूर करता है । जिस वालक को लालास्राव अधिक होता हो, तोतलापन हो, बुद्धि मन्द हो, बीच-बीच मे मूर्च्छा आती हो या अपस्मार होतोप्रात साय इसअरिष्टकी ३ माशा की मात्रा, २तो जल या दूध मे मिलाकर पिलावे । तथा रात्रि मे मकरध्वज का सेवन करावें । कफकारक पदार्थो से परहेज रखे । —भै र

नोट—इसे सुवर्णारिष्ट, दिव्यारिष्ट भी कहते है ।

यदि ब्राह्मी के स्थान मे मडूकपर्णी के योग से यह अरिष्ट बनाया गया हो तो इसे सारस्वतारिष्ट नही कहा जा सकता । यह स्वर्ण मिश्रित या स्वर्ण रहितभी बनाया जाता है । स्वर्ण मिश्रित की मात्रा ३ से ६ मा तक जल के साथ दिन मे दो बार, स्वर्ण रहित की मात्रा–६ माशा से १ तोला तक । यह कुष्ठ, उपदश, चर्म रोग, अस्थिक्षय, राजयक्ष्मा, जीर्ण ज्वर आदि पर विशेष हितकारी है । तथा रक्तप्रसादक बुद्धि प्रद, वय, वातनाडी पोषक एव हृद्य है ।

(९) ब्राह्मी आसव (सारस्वतासव)—

ब्राह्मी पचाग ५ सेर, शतावर, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, देवदारु, श्वेत चन्दन, हरड, खस, सोठ, सौफ, शीतलचीनी, वच मीठी, वायविडग, कपूर, खरैंटी के बीज व गोखरू प्रत्येक ४० तोला, धाय के फूल २½ सेर सबको कूट पीसकर चीनी की बडी बरणी मे भरे । उसमे शक्कर १० सेर, जल १ मन तथा स्वर्ण पत्र २ तोला मिला, मुख अच्छी तरह बन्द कर छाया मे रखे । प्रति सप्ताह इसे एक बार हिला दिया करे । ३५ दिन के बाद छानकर बोतलो में भर रखे । १ से ४ तो तक दूने जल मे मिलाकर सेवन करे । १ वर्ष सेवन से बल, वीर्य, आयु, कांति, स्मृति, मेधा, वाणी की शुद्धता आदि की वृद्धि होती है । यह पौष्टिक, शक्ति वर्धक एव अनेक रोगो का नाशक है । इसे 'महासरस्वनीसुरा' भी कहते है । —रसतरगिणी ।

नोट—ब्राह्मी स्वरस आदि से निर्मित देखिये 'रक्ताल्पताहरात्मक' हमारे बृहदासवारिष्ट सग्रह मे ।

(१०) ब्राह्मी शर्बत—ब्राह्मी शुष्क, बादाम गिरी, कद्दू के बीज ४–४ तोला, इलायचीछोटी ३ माशा काली मिर्च १ मा सबको खूब महीन पीस गुलाब अर्क १ सेर मे अच्छी तरह मिलाकर उसमे खाड या मिश्री १¼ सेर मिला पकावे । शर्बत की चाशनी आ जाने पर ठडा कर बोतल मे भर रखे । २ से ४ तोला तक शर्बत एक गिलास जल मे मिलाकर पीने से दिमाग की गरमी दूर होती है । यह बुद्धिवर्धक एव हृदय के लिये बल्य है । गरमी के दिनो मे विशेष लाभकारी है ।

शर्बत न० २—बादाम गिरी छिली हुई ५ तोला कद्दू ,ककडी, तरबूज व खरबूजे की गिरी प्रत्येक छिली हुई १–१ तोला, सौफ २ तोला, काली मिर्च १½ तोला और छोटी इलायची बीज १¼ तोला सबको जल के साथ खूब महीन पीसकर ब्राह्मी स्वरस ४५ तोला तथा खाड या मिश्री २½ सेर मिला, छानकर, कलईदार पात्र मे पकावे । शर्बत की चाशनी आ जाने पर बोतल मे

×प्राय' स्वर्णपत्र विलीन नही होते । अत उनका स्वर्ण लवण बनाकर डालना ही ठीक होता है , विधि—एक नक्की (आतसी) शीशी मे १ तोला स्वर्ण डालकर, स्प्रिट लैंप पर गरम करें और १-१ मात्रा नमक व शोरे का तेजाब एकत्र मिला, उसमे से थोडा- शीशी] मे छोडते रहे जब तक कि स्वर्ण पिघल न जाय । पश्चात उसमे १ तोला तक सेंधानमक का चूर्ण मिला दें । जब जलीय अश शुष्क हो जाय और स्वर्ण का रग नारगी हो जाय, तब शीशी को ठंडा कर उसमें से स्वर्ण लवण को निकाल लेवे ।
—भा. भै. र. ।

रखें । २ से ३ तोला शर्वत एक गिलास जल मे मिला पीने से हृदय, मस्तिष्क एव नेत्रो की शक्ति स्मरणशक्ति बढती है। भ्रम चक्कर आदि आना दूर होता है। तथा धातु विकार मूत्र विकार आदि नष्ट होकर शरीर मे वलवृद्धि होती है।

शर्वत न० ३—ब्राह्मी के ताजे सूखे पत्र १ सेर असगध व शखपुष्पी १०–२० तोला इनका जौकुट चूर्ण कर ४ सेर जल मे पकावे। ३ सेर जल शेप रहने पर मसल कर छान लेवें। इसमे ३ सेर शक्कर मिला, शर्वत की चाशनी पकाले। १ से २ तोला शर्वत को १० तोला दूध या जल मे मिला सेवन से मस्तिष्कशक्ति बढती है। उन्माद, अपस्मार, हिस्टीरिया, चित्तभ्रम, मूर्च्छा युक्तमेह आदि दूर होते है।

शर्वत न ४—ब्राम्ही का स्वरस १/२ सेर, वादाम गिरी छिलका रहित १० तोला, कालीमिर्च और सौफ १-१तोला लेकर प्रथम तीनो चीजो को खूब महीन थोडे जल के साथ सिल पर पीस कर स्वरस मे मिला तथा थोडा और जल मिला अच्छी तरह मसलते हुए छानकर उसमे दो सेर खाड मिला पकावे जलाश निकल कर शर्वत की कुछ गाढी सी चाशनी आजाने पर, बोतल मे धर लेवे। ३ तोला शर्वत को १० तोला तक जल मिला, सेवन से मस्तिष्क दौर्वल्य दूर होकर बुद्धि की वृद्धि होती है।

शर्वत न ५—केवल ब्राम्ही रस मे ढाई गुना मिश्री मिला, शर्वत की चाशनी बना ले। मात्रा २½ तोला तक दो गुने जल मे मिलाकर सेवन से भी मस्तिष्क दौर्वल्य मे लाभ होता है, रक्तचाप (रक्त का दवाव), जीर्ण उन्माद आदि मे लाभकारी है।

नोट—मडूकपर्णी का भी शर्वत बनाया जाता है। मडूक पर्णी के २ तोला चूर्ण मे २५ या ३० तोला जल मिला, कलईदार पात्र मे मद आच पर पका आधा जल शेष रहने पर छानकर, इसमे २५ तोला शक्कर मिला पकावे। शर्वत की चाशनी होते ही उतार कर, ठडा होने पर बोतल मे भर ले। मात्रा १ तोला तक, जल के साथ सेवन से पित्त शात, होता उपदश की दाह दूर होती, मेधा शक्ति बढती है तथा कुष्ठादि चर्म रोगो मे भी विशेष लाभकारी है। मडूक पर्णी के स्वरस मे भी ढाई गुना शक्कर मिला कर यह शर्वत बनाया जाता है।

(११) ब्राम्ही पाक—ब्राम्ही स्वरस लगभग ८ सेर तक लेकर उसे १ सेर गौ के घी मे डालकर मद आग पर पकावे। घी मात्र शेप रहने पर छानकर, उस घी मे १½ सेर उत्तम खोया को भून ले। भूनने पर जब खोवा वादामी रङ्ग का हो जाय, तब नीचे उतार उसमे किशमिश, नारियल की गिरी, मुनक्का १०-१० तोला, वादाम गिरी की पिट्ठी, पिस्ता, चिलगोजा की मीगी, अखरोट की मीगी ये सब खूब महीन की हुई, प्रत्येक ५-५ तोला मिलाकर २॥ सेर मिश्री की चासनी मे पाक जमा देवे।

मात्रा—अग्निबलानुसार १ से ५ तोला तक, नित्य प्रात सेवन कर गौदुग्ध पीवे। इससे मस्तिष्क शक्ति खूब बढती है, वल वीर्य की वृद्धि भी होती है।

नोट—इस प्रकार के कई अन्यान्य उत्तम पाक हमारे 'वृहत् पाकसग्रह' ग्रथ मे देखिये।

(१२) ब्राम्ही घृत—(सारस्वत घृत)—जड तथा पत्र सहित ताजी हरी ब्राम्ही को जल से अच्छी तरह धोकर ऊखल मे कूट कर, वस्त्र द्वारा निष्पीडन कर स्वरस निकाले। यह रस यदि ६ सेर ३२ तोला हो तो गौघृत १ सेर ४८ तोला, कल्क द्रव्य हल्दी, आवला, (अन्य ग्रन्थ मे पाठ मलती है) कूठ, निसोथ व हरड ४-४ तोला तथा पिप्पली, बाय बिडङ्ग, सेंधा नमक, खाड, वच १-१ तोला सवको जल के साथ पीसकर बनाया हुआ कल्क और जल १ सेर ४८ तोला सबको एकत्र मिला पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छान कर रख लेवें।

मात्रा—आधा तोला से २ तोला तक, गोदुग्ध मे मिला प्रात साय सेवन से, कठ स्वर विशुद्ध होता है। १५ दिन सेवन से शरीर अदभुत कातियुक्त होता है। एक महीने के प्रयोग से स्मृतिशक्ति अत्यन्त बढ जाती है। इसके अतिरिक्त यह सर्व प्रकार के कुष्ठ, अर्श, गुल्म, प्रमेह, कासादि रोगो का भी नाशक है। यह घी वल, वर्ण एव अग्नि की वृद्धि करने वाला, तथा वन्ध्या स्त्रियो एव क्षीणवीर्य मनुष्यो के लिये भी हितकारी है। —भै. र

घृत न २—ब्राम्ही स्वरस १ सेर, गोघृत २ सेर, हरड़,
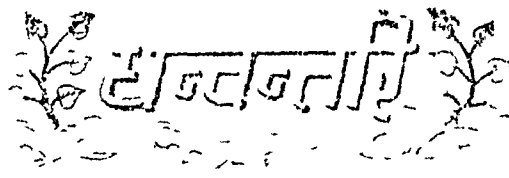
मीठी वच १०-१० तोला, शुद्ध गूगल १॥ तोला, कूठ, विष्णुकाता (अपराजिता, कोयल), गिलोय, जवासामूल, त्रायमाणा, अरणीमूल, ककोल, मालकागनी, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, आकाशवेल (अमरवेल), शालपर्णी (सरिवन), असगध, पिप्पली, पाढ, सखौती (शखपुष्पी), बावची, अद्रक व हल्दी प्रत्येक ४ तोला लेकर, प्रथम उक्त हरडादि द्रव्यो को जौकुटकर ६ सेर जल मे मन्द आग पर पकावे। चतुर्थांश शेष रहने पर छान लेवे। फिर जटामासी ५ तोला, खस, छोटी इलायची, जावित्री २॥-२॥ तोला और नागकेशर असली १ तोला इनको जल के साथ पीस, कल्क करे। पश्चात कलईदार कढाही मे उक्त स्वरस क्वाथ, घी व कल्क एकत्र मिला, मन्द आच पर घी सिद्ध कर ले।

मात्रा—बलानुसार ३ से ६ माशा तक, प्रात साय आध सेर गोदुग्ध मे मिला सेवन करे। स्मृति, बुद्धि, बल की वृद्धि, उदर विकार, मस्तिष्क सम्बन्धी विकार, स्वरभग आदि दूर होते हे। विद्यार्थी तथा दिमागी काम करने वालो के लिये यह योग अद्वितीय है। —बूटी दर्पण

घी न ३—ब्राम्ही, वच, शखपुष्पी, वच मीठी, और शतावर प्रत्येक २० तोला सबको जौकुट कर रात्रि के समय ८ सेर जल मे भिगो दे। प्रात मथानी मे मथकर छानकर उत्तम गौ घी २॥ सेर मिला पकावे। घी मात्र शेष रहने पर पुन छानकर रख लेवें। मात्रा आधा तोला को पकाये हुए दूध के प्रात साय सेवन मे भ्रम, स्मृति-ह्रास दूर होते है। —संकलित

नोट—सुश्रुत का 'ब्राम्ही घी' पीछे विशिष्ट प्रयोग न० १ मे ब्राम्हीकल्प न० २ देखिये।

(१३) ब्राम्ही-तैल—शुष्क ब्राम्ही १०तोला, लालचन्दन का बुरादा, शुष्क शख पुष्पी २-२तोला, श्वेत चदन बुरादा, सुगन्ध वाला ८-४ तोला और खस १ तोला सबको जल के साथ खूब महीन पीसकर १ सेर जल मे घोलकर १ सेर तिल तैल व १० तोला बादाम तैल मे पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रखे। इसके लगाने से मस्तिष्क निर्बलता, उष्णता, खुश्की दूर होती, बुद्धि बढती है। बच्चो को परमोपयोगी है। —बूटी दर्पण

तैल न २—ब्राम्ही का स्वरस या क्वाथ १५ तोला को १ सेर नारियल के तेल मे मिला थोडी देर आग पर चढावे, इस प्रकार ३-४ दिन जरा जरा सी आच देवे। जलाश निकल जाने पर (ध्यान रहे कि तेल न जलने पावे) छान कर रख ले। इसमे इच्छित रग व सुगन्ध मिलायी जा सकती है। —स्वास्थ्य से

भग—देखिये भाग। भटा [भाटा]—देखिये-बेगन।

भंड़ा (Geranium Nepalense)

चागेरी कुल [Geraniaceae] की इस वर्षजीवी एव रोमश बूटी के छोटे क्षुप प्राय सटकल्ल या तिनपतिया बूटी के जैसे जमीन पर फैलने वाले होते है। पुष्प जामुनी रग के होते है। इसकी जडे गहरे लाल रग की होती है। औषधि प्रयोग मे प्राय जड ही ली जाती है। यह हिमालय के समशीतोष्ण प्रदेशो मे तथा बिहार, नीलगिरी और सीलोन मे पैदा होती है।

नाम —

हिंदी मे पजाब की ओर भड, भाड, भडा। लेटिन जिरेनियम नेपालेस, जि० आसोलोटम (Geranium occilatum) जि० राबर्टीयानम् (Ger Robertianum) इसमे जिरेनिन [Geranin] नामक एक कडुआ तत्व पाया जाता है।

गुण धर्म—

सकोचक, मूत्रल है गुर्दे के विशेष विकारो मे अश्मरी आदि मे इसका उपयोग किया जाता हे। ग्रन्थि व्रणादि पर इसका लेप करते है। अश्मरी, ज्वर और पाडु रोग मे इसका रस या फाट पिलाया जाता है।

भकुर—देखिये-कचरी । भटकटैया—देखिये—कटेरी । भटकोवा—देखिये मकोय । भटेउर—गठिवन मे । भटनील—देखिये-नील जगली मे नोट ।

भगलिङ्गी (Etenolepis Cerasiformis)

कोशानकी कुल [cucurbitaceae] की वर्षा ऋतु मे पैदा होने वाली इस आरोही लता की शाखाये सुतली से पेंसिल जितनी मोटी, सीधी पाच रेखा एव कडे रोम युक्त, खुरदरी सी, फीके हरे रग की तथा सूक्ष्म लम्बे ततुओ से युक्त, पत्र- एकान्तर, १ से ५ इच लम्बे, १-४ इच चौडे, किनारो पर आरे जैसे दतुर, दोनो ओर से खुरदरे, पृष्ठ भाग गहरे हरित वर्ण का, कोने नीचे से ऊपर की ओर क्रमश अधिक चौडे व लम्बे, बीच का कोना सबसे लम्बा, ऐसे ३–५ तथा ७ कोने वाले, करेले के पत्ते जैसे, गन्ध उग्र, स्वाद मे कडवे, पुष्प-पत्र कोण के पास उपपत्र जैसे पुष्प पत्र एक ही थान मे नर व मादा, नर पुष्प धारण करने वाली सीक बहुत पतली ½-१ इच लम्बी क्रमश ५-८ पुष्पो से युक्त। मादा पुष्प धारण करने वाली सीक ½ इच लम्बी एव अपेक्षाकृत मोटी, पुंकेसर पुष्प मे नही होता, स्त्रीकेशर गर्भाशय मे हरे रग का होता है। फल—शिवलिगी से छोटे कच्ची दशा मे हरे व कडवे जड पर श्वेत दागो से युक्त, पकने पर नीले व लाल रङ्ग के, बीज—प्रत्येक फल मे १ या २ बीज चिकने गूदे मे लिपटे हुये श्वेत रङ्ग के भगाकार होने से इसे भगलिगी कहते है। मूल-४ से ८ इच कही कही १½ फुट तक लम्बी सुतली या पेंसिल जैसी मोटी श्वेत वर्ण की २-३ उपमूलो से युक्त एव गन्ध मे कडवास युक्त होती है।

इसके सूक्ष्म फूल व फल चणबोर जैसे गोल होते है। पत्तो की सुन्दरता के कारण इसकी लता बहुत सुन्दर दिखाई देती है। इसमे उपपत्र जैसा पुष्प पत्रो का विलक्षण आकार के कारण इसकी लता शिवलिगी की लता से शीघ्र ही भिन्न पहिचानी जा सकती है।

कच्छ, सिध, काठियावाड, राजस्थान आदि स्थानो मे कच्चे रास्ते के दोनो ओर तथा खेतो की बाढो पर इसकी लतायें बहुत देखने मे आती है।

अक्षिपीडक (भगलिङ्गी)

नाम—

स०—अक्षिपीडक, भगलिंगी। हि०—भगलिंगी। गु०—आख फुटामणि। ले०—एटनोलेपिस सेरासिफोर्मिस।

प्रयोज्यांग—

मूल, पत्र व फल।

गुण धर्म व प्रयोग—

उपलेपक, शोथघ्न तथा चिरगुणकारी पौष्टिक है।

ज्वर मे—इसके और सरफोका की जडो का क्वाथ

दिया जाता है। अजीर्ण व अरुचि में इसकी जड़ कालीमिर्च के साथ ही दी जाती है। सन्धिवात की सूजन पर मूल का लेप किया जाता है। फोड़े तथा विद्रधियों को पकाने के लिये पत्तों की पुल्टिस बांधी जाती है।

इस बूटी के सम्बन्ध में शोध की आवश्यकता है कि यह भी जलोदर के रोगों पर कितनी लाभप्रद हो सकती है—

— श्री [illegible]

भटवांस (Dolichos Lablab)

शिम्बी कुल के उपकुल [Papilionaceae] की इस लता के पत्र, पुष्प, फली आदि सेम लता के जैसे ही, किंतु कुछ बड़े होते हैं।

यह भारत में विशेषतः दक्षिण की ओर के प्रान्तों में कोंकण, बम्बई आदि में अधिक पाया जाता है।

नोट—सेम की कई जातियां हैं, उनमें से यह एक कड़वी सेम या काली सेम है।

भटवास् (सेम)
DOLICHOS LABLAB LINN
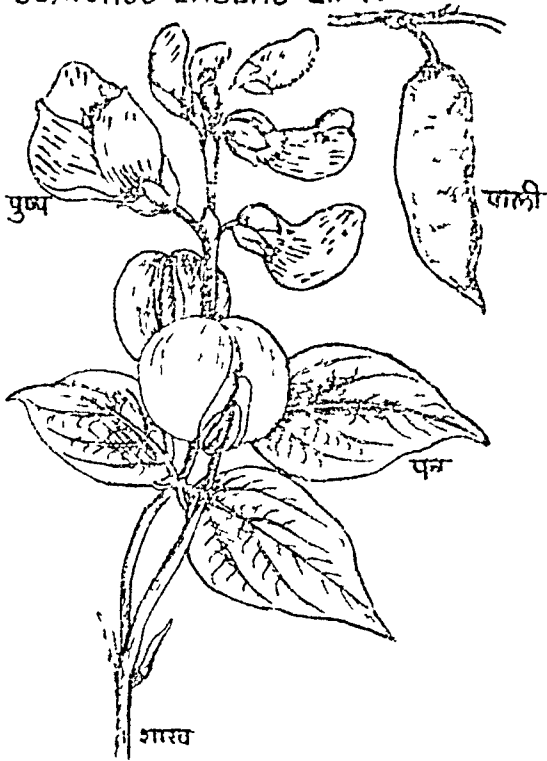
नाम—

सं०—निष्पाव, राजशिम्बी, वल्लक इ०। हिन्दी में—भटवास, भँटवास, कालालोबिया, बटजग। म०—पावटे, काळे वाल, वालपापड़ी। गु०—ओलियो। बंगला में—भटराशु, राजशिम्बी बीज। अं०—डोलिकोस लबलब, हियासिंथ बीन [Hyacinth bean] लबलब वल्गेरिस [Lablab vulgaris]

रासायनिक संगठन—

इसमें मांसवर्धक द्रव्य २४%, स्टार्च ५७%, स्थिरतैल १½% और राख ३% पाये हैं।

गुण धर्म—

गुरु, रूक्ष, मधुर, तिक्त कषाय, उष्ण वीर्य, कटु या अम्ल विपाक, सारक, विदाही, स्तन्य [दुग्धवर्धक], पित्त व रक्तवर्धक, मलमूत्ररोधक तथा कफविकार, शोथ, विष एवं शुक्रनाशक है।

पत्र—विषनाशक, धातुस्राव नियामक उदरशूलनाशक हैं। कोमल ताजे हरे पत्तों की साग खाई जाती है। बीज—पौष्टिक, ज्वरघ्न, दीपन, आक्षेप निवारक तथा नकसीर नाशक माने जाते हैं। इसकी जड़ विषाक्त है।

भटा—देखिये-बेंगन। भडभाड—देखिये-सत्यानाशी। भतुआ—देखिये-मेठा [कद्दू]

भद्रक (Scaevela koenigii vahl)

स्वकुल [Goodeniaceae] के इस १से ३ मीटर तक ऊंचे क्षुपरूप पौधे के पत्र ११.५ से २० सेण्टी मीटर तक लम्बे व ३.८-९ से० मी० तक चौड़े, पृष्ठ भाग पर श्वेत रोमश, पुष्प छोटे श्वेत वर्ण के फल-गोल, छोटे छोटे

बेर जैसे होते है ।

यह बूटी भारत के समुद्र तट वर्ती स्थानो मे पैदा होती है ।

नाम—

हिंदी मे बम्बई की ओर भद्रक । म०-भद्रक भद्राक्ष ले०—स्कीवोला टाकनिगी, स्कीवोला फ्रुटेसेन्स (Scaevola Frutescens) इसमे एक कड्वातत्व तथा ग्लुकोसाईड पाया जाता है ।

गुण धर्म—

यह बेरी–बेरी नामक सक्रामक रोग का प्रतिरोधक है। इसके फलो का रस नेत्रो के धुंधलेपन को दूर करता है।

भद्रदन्ती (Jatropha Multifida)

एरण्डकुल (Euphorbiaceae) के इसके अतिसुन्दर क्षुरुप पौधे दन्ती (बटी) के जैसे ही, किन्तु उससे कुछ छोटे होते है । इसके पौधे शोभा के लिये बाग बगीचो मे लगाये जाते है । यह दक्षिण अमेरिका का पौधा है।

नाम—

स हि०–भद्रदती, विषभद्र, तेज जमालगोटा । अ०–कोरल ट्री (Cora tree) स्माल फिजिक नट (Smell physic nut) ले०—जेट्रोफा मल्टिफिटा ।

इसके बीजो मे स्थिर वसायुक्त तैल तथा एक तिक्त तत्व पाया जाता है ।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसका फल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य एव विरेचक है। यह अर्श, व्रण, प्लीहावृद्धि तथा चर्मरोगो मे वाह्य प्रयोगार्थ उपयोगी है ।

बीज—किंचित मधुर, अतिविरेचक एव वामक, मेदा निवारक, पित्तवर्धक, दाहकारक तथा विपाक्त है । इसके विष निवारणार्थ नीबू का रस तथा उत्तेजक औषधिया दी जाती है।

बीजो का तैल गर्भस्रावक है । इसका भीतरी तथा वाह्य प्रयोग किया जाता है ।

उसके पत्तो का दूधिया रस गीली खुजली पर लगाया जाता है । तथा यह रस जख्म व्रण आदि पर भी लगाते है ।

भद्रमूज तथा भद्रवल्ली—देखें—रामसर । भव्य—देखे—चालटा । भरभड—देखे—सत्यानाशी ।

भसमकन्द (Sauromatum Guttatum Schott)

मूरणकुल (Araceae) का यह पौधा सूरण या जिमीकन्द के पौधे जैसा होता है । इसके मूल मे सूरण से भी बडा कन्द होता है ।

यह भारत के मध्य प्रदेश, पजाब, पश्चिमी हिमालय, छोटा नागपुर, बम्बई प्रान्त, कोंकण तथा उत्तर प्रदेश के गगा के उत्तरी मैदानो मे पाया जाता है।

नाम—

हि०—मध्य प्रदेश की जगली भाषा मे 'भसमकद' । म०–लोथ । ले०—सारोमेटम गुट्टाटुम ।

गुणधर्म—

यह उष्ण है । त्वचा के लिये उत्तेजक है । त्वचा के उत्तेजनार्थ कन्द का पुल्टिस बनाकर बाधते है । जिससे भीतर को दबा हुआ विषैला व्रण आदि ऊपर को उभर आता है ।

भसीड—देखे—कमल मे कमल नाल ।

भांग (Cannabis Indica)

हरीतक्यादि वर्ग एव भगाकुल ● (Gannabinaceae) के उम वर्षायु ८ फुट तक ऊंचे क्षुप की शाखायें पतली, भीतर कुछ पोलीसी, कोमल, पत्र—नीम के पत्र जैसे, करकरेदार, किंतु लम्बाई चौडाई मे नीम पत्र से छोटे एकान्तर, प्रत्येक दल पर ३-७ उप पत्र युक्त, ऊर्ध्व पृष्ठ गहरे हरे रग का खुरदरा, अधोपृष्ठ हलके रग का मृदुरोमश, पुष्प—नरक्षुप मे पत्रकोण मे निकले हुए तुर्रे जैसी रचना युक्त छोटे-छोटे हरितवर्ण के पुष्प आते हैं। जिसके बाह्यकोष के दल ऐंठे हुए से सख्या मे ५ ऊपर-ऊपर स्थित तथा पुकेसर ५ होते हैं। मादाक्षुप मे पत्रकोण मे कलमी जैसी रचना मे हरित उज्ज्वल बाह्य अभ्यन्तर कोषयुक्त पुष्प छोटे-छोटे आते है। बीजकोष या फल—मादाक्षुप के पुष्पो मे ही छोटे-छोटे कुछ दबे हुए से गोल दानेदार एक कोषयुक्त बीजकोष होते हैं। मूल—जड का घेरा ६-७ इन्च तक, अनेक रेशायुक्त होता है, निचले भाग मे जडे फैली रहती है, जो श्वेत वर्ण की, बीच मे मोटी तथा ऊपर नीचे पतली होती हैं।

ईरान, ईराक, मिश्र, अफ्रिका आदि मध्य एशिया के प्रदेशो मे तथा हिमालय के निम्न भागो के प्रदेशो मे प्राय नैसर्गिक पैदा हुए इसके क्षुप अधिक पाये जाते है। पजाब के पूर्व की ओर बगाल, बिहार एव उत्तर प्रदेश (अलमोडा, गढवाल,नैनीताल आदि जिलो मे)तक फिर दक्षिण की ओर की शीत रूक्ष या उष्ण रूक्ष स्थानो की (जैसे अहमदनगर सातारा, सोलापुर आदि) काली, कोमल परती भूमि मे जहा वर्षा कम होती है इसकी उपज की जाती (बोई जाती) है। तथा कही २ नैसर्गिक भी होती है। मुगेर, बहराइच आदि जिलो की भाग अच्छी मानी जाती है। भारतवर्ष के अतिरिक्त अमेरिका तथा दक्षिण यूरोप मे भी यह पैदा होती हैं।

नोट न १—यूरोपादि देशो मे पैदा होने वाली भाग गुणो मे अत्यधिक श्रेष्ठ तथा भारतीय भाग से भिन्न ही मानी जाती थी। अत भारतीय भाग को 'कैनिबिस इंडिका' तथा विदेशी को 'कैनिबिस सेटिवा (वार्ट हुर्ट), कहा जाता था। किंतु बाद मे विशेष अन्वेषणो द्वारा उक्त दोनो के पौधो मे कोई वानस्पतिक विशेषता या भेद न पाये जाने से दोनो को एक ही नाम से पुकारा जाने लगा। हिमालय प्रदेश के प्राय सब जंगलो मे यह पाई जाती है। इसके जिन पौधो से नशे प्राप्त किये जाते है तथा जिनसे नशे के लिये या औषधि कार्यार्थ पत्र तोडे जाते है उन दोनो प्रकार के पौधो मे कोई अन्तर नही है। तथापि कुछ विद्वानो ने इसके बीजो मे कुछ भेद प्रदर्शित किया है इसमे कोई सदेह नही कि भाग के मादा पौधो मे, जिसकी कुमायु एव अन्य स्थानो मे नशे के लिये खेती की जाती है चरस की पर्याप्त मात्रा होती है और कभी-कभी यह गाजे के रूप मे भी पाया जाता है। मादा भाग के पुष्पित या फलित शिखर (अग्रभाग) शुष्क किये हुए चिकित्सा मे प्रयुक्त होते है। यूरोप के बाजारो मे मिलने वाले इस द्रव्य मे बहुत अधिक नमी होती है।

नोट न २—यद्यपि चरक सुश्रुतादि प्राचीन सहिता ग्रन्थो म भाग का कोई स्पष्ट उल्लेख नही है, तथापि इसकी उत्पत्ति और गुणो के सम्बन्ध मे 'वनौषधि चन्द्रोदय' कार ने किसी प्राचीन ग्रन्थ से निम्न श्लोक* उद्धृत किया है। जिसका तात्पर्य है कि पुरातन काल मे जब मन्दराचल पर्वत से समुद्र मथन हुआ था, तब अमृत रूप से इसकी उत्पत्ति हुई। तीनो लोक मे विजय देने वाली होने से इसका नाम विजया हुआ यह देवराज इन्द्र को प्यारी है लोगो के कल्याणार्थ कामनाओ को पूर्ण करने वाली यह बूटी पृथ्वी पर आयी है। इसके सेवन से सर्व

● इस कुल के क्षुप पुष्पवाहक, द्विबीजपर्णी, एकोपागी (एक जातीय), पुष्पदल ५ रोमश, नरकेसर ४, अण्डकोष बटे लटके हुए बीजकोष एक फाक वाले, उपरिस्थ, बीजो मे मासल पदार्थ नहीं रहता।

*जाता मन्दर मन्थनाज्जलनिधौ पीयूष रूपा पुरा। त्रैलोक्ये विजय प्रदेति विजया श्री देवराज प्रिया॥
लोकाना हितकाम्यया क्षितितले प्राप्ता नरं कामदा। सर्वातङ्क-विनाश-हर्ष जननी यैसेविता सर्वदा॥

भांग व गांजा

CANNABIS SATIVA LINN.
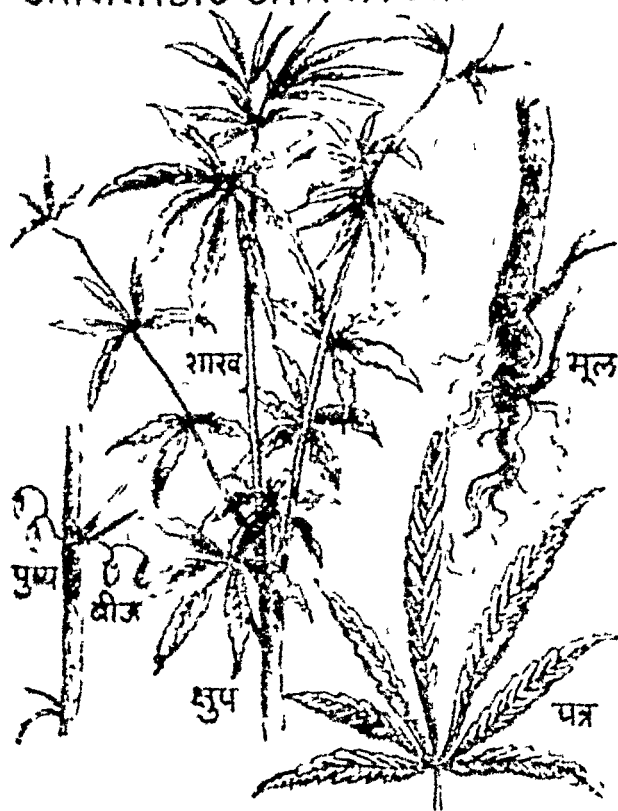
प्रकार के रोग दूर होते है। कामशक्ति की वृद्धि होती तथा तन प्रसन्न रहता, हर्ष प्राप्त होता है।

प्राचीन संहिता काल मे संभवत औषधि कार्यार्थ ही इसका विशेष प्रचार न हो, किन्तु पेयादि अन्य रूप से इसका व्यवहार अवश्य ही किया जाता था। उसी से अब भी अन्य देशों की अपेक्षा भारत मे इसका अत्यधिक उपयोग किया जाता है। औषधि कार्य के अतिरिक्त ठंडाई की तरह इसका विशेष उपयोग किया जाता है। तथा विवाह आदि मांगलिक कार्यों मे भी इसका व्यवहार होता है। मुगल शासन काल मे यूनानियो ने इसके उपाङ्गभूत गांजा, चरस आदि का खूब प्रचार किया। १९ वी शताब्दी मे पाश्चात्य चिकित्सकों ने इसके गुणों का परिचय प्राप्त कर इसके निद्राप्रद एवं वेदनाशून्यताकारक गुणों की विशेष प्रशंसा की और ब्रिटिश तथा अमेरिका की फार्माकोपिया मे इसे स्थान दिया गया। किंतु अब इसका स्थान कुछ गौण कर दिया है।

नोट नं ३—भांग, गांजा और चरस—इसके क्षुप नर और मादा भेद से दो प्रकार के है। मादा जाति के क्षुप अपेक्षाकृत कुछ अधिक ऊंचे, कुछ अधिक काल के बाद परिपुष्ट होने वाले, तथा पत्र भी अधिक गहरे हरित वर्ण के होते है। नैसर्गिक उत्पन्न हुये या बोये हुये नर तथा मादा जाति के वृक्षों के पत्तों का यथोचित संग्रह ही भांग कहलाता है। इसमे नर जाति के पुष्पो तथा स्त्री जाति के बीजों का भी मिश्रण रहता है। नर जाति के पुष्प, पत्रों की अपेक्षा अधिक मादक नही होते, किन्तु स्त्री जाति के पुष्प अधिक मादक होते हैं। अधिक ऊंचाई पर पैदा होने वाले क्षुपों को जून व जुलाई मास मे तथा निचले स्थानों के क्षुपों को मई व जून मे काट कर, ओस तथा धूप मे बार-बार रखने के बाद, शुष्क हो जाने पर दबाकर रख दिये जाते है। इस प्रकार भांग का संग्रह किया जाता है। इसमे प्रभावशाली तत्व या चरस का अंश लगभग १०% होता है। इस प्रभावशाली तत्व की दृष्टि से उत्तर प्रदेश, पंजाब, सीमान्त प्रान्त तथा मद्रास प्रान्त की नीची पर्वत श्रेणियों के आस पास पैदा होने वाले क्षुपों से संग्रहीत की हुई भांग श्रेष्ठ मानी जाती है।

गांजा—विशेषत बोये हुये मादा जाति के क्षुपों की पुष्प मंजरियां (पुष्पांकुर) फलित होने के पूर्व ही तोड़ ली जाती है। क्योंकि फलित या बीजोत्पत्ति हो जाने पर इसकी मादक शक्ति का ह्रास हो जाता है। फिर इन तोडी हुई रालदार मंजरियों को सुखा लेते है। इसे ही गांजा कहते है। यह रङ्ग मे मटमैला, कुछ हरा, स्वाद मे कुछ कटु या चरपरासा तथा गंध मे विशिष्ट प्रकार की मादकतायुक्त होता है। इसमें प्रभावशाली तत्व २६% होता है। इस तत्व की दृष्टि से पूर्वी बंगाल, मध्यप्रदेश तथा बम्बई प्रान्त के बोये हुए क्षुपों मे प्राप्त किया गया गांजा श्रेष्ठ माना जाता है। भारत के दक्षिण तथा पश्चिम मे प्राय गांजा नाम से भांग और गांजा दोनों का व्यवहार होता है। उडीसा मे प्राय गांजे को ही पीसकर बनाये गए पेय को भांग कहते है।

चरस—उक्त मादा क्षुपों की शाखाओं की दरारें,

पत्र, डठल एव पुष्पो पर जो एक प्रकार का लसदार, रालसदृश रस निकलकर जम जाता है, उसे ही चरस कहते है। इसमे उक्त प्रभावशाली तत्व ८०% तक पाया जाता है। इस तत्व की दृष्टि से नेपाल, काश्मीर तथा लद्दाख के पहाडी भागो पर बोये हुये क्षुपो मे इसका सग्रह किया जाता है। शीतकाल मे रात्रि मे ओस पडने के पश्चात् प्रात चमडे का कपडा पहनकर इसके क्षुपो मे इतस्तत फिरने से, क्षुपो की रगड मे उक्त लसदार चरस कपडे पर चिपट जाता है, उसे खुरचकर चमडे से पृथककर गोले या ढेले के रूप मे बना लेते है। अथवा हाथ और पैरो से पुष्प मजरियो को रगडकर हाथ पैरो मे चिपके हुये इस लसदार द्रव्य को खुरचकर जमा कर लेते है।

प्राय भारत मे उत्पन्न हुये क्षुपो से चरस पृथक् नही की जाती, अत यहा गाजा ही तैयार किया जाता है। यहा चरस यारकद से, काश्मीर के लेह के मार्ग से लाया जाता है।

नाम–

स—भगा (भज्यते बुद्धिरनया, जिससे बुद्धि भ्रष्ट हो), मातुलानी (जो मातुल-लक्ष्मीवाहन-उलूक की भाति अन्धा बना देवे), मादनी, विजया (जो बुद्धि को जीत ले), गजा (इसकी एक जाति से गाजा पैदा होने से) आदि। हि—भाग, भग, विजया, सिद्धि, बूटी इ । म गु—भाग। व—भाग, सिद्धि। अ—इडियन हेम्प (Indian hemp)। ले—केनाबिस इडिका, केनाबिस सेटिवा (cannabis sativa)।

गाजा के नाम—स—गजा, मातुल पुत्रक, सम्विदा-मजरी, उग्रा इ। हि—गाजा, गाझा। म—गाजा। गु—गाजो। व—गाजा। अ ले—केनाबिस सेटिवा।

रासायनिक संगठन–

भाग और गाजे मे एक ही प्रकार का सत्व है। उसके सारभाग चरस मे केनोबिनोन (Cannabinone) नामक एक मुलायम बादामी रग की राल होती है। यही इसका मुख्य प्रभावशाली सत्व है। इसके अतिरिक्त भाग गाजे मे गोद, शर्करा, कैल्शियम फास्फेट (Calcium phosphate), अत्यल्प मात्रा मे उडनशील तैल, सेन्द्रिय अम्ल, कलमीशोरा, नौसादर आदि द्रव्य पाये जाते है।

प्रयोज्याङ्ग—भाग, गाजा व चरस। ये यदि सुरक्षित न रखे जाये तो पुराने हो जाने पर गुणहीन हो जाते है।

गुण धर्म व प्रयोग–

लघु, तीक्ष्ण, रूक्ष, तिक्त, उष्णवीर्य, कटु विपाक, वातकफहर, पित्त वर्धक, मदकारी (प्रारभ मे हर्षोत्तेजक, हर्षजनक पश्चात् प्रलापजनक) दीपन, पाचन, रोचक, ग्राही, पित्तसारक, शूल प्रशमन, निद्राजन्य वेदना आक्षेप-हर, मूत्रल, शुक्रस्तभक, गर्भाशय सकोचक, त्वचा शून्य-कारक, रक्तस्रावरोधक, धातु एव ओजशोषक; तथा—शिर शूल, अनिद्रा, अपतानक, धनु स्तभ, अग्निमांद्य, अजीर्ण, अतिसार, प्रवाहिका, ग्रहणी, उदरशूल, यकृच्छूल, अर्श, रक्तस्राव, कुक्कुर कास, श्वास, विसूचिका, योषाप-स्मार, रक्तप्रदर, रज शूल, विसर्प, पूयमेह [सुजाक], वृक्कशूल, मूत्राशय स्तभ जन्य मूत्राघात, क्लैब्य, शीघ्र पतन, कष्ट प्रसव आदि विकारो पर प्रयुक्त होता है।

नोट—भाग और गाजे के गुण लगभग समान ही है किंतु भाग की क्रिया विशेषत आमाशय एव आत्र पर अधिक होती है। तथा यह गाजे की अपेक्षा अधिक ग्राही है। गाजे की प्रधान क्रिया मस्तिष्क पर होती है, वैसे तो भाग की भी क्रिया मस्तिष्क पर होती है, किन्तु उतनी नही। भाग से बनी हुई ठडाई या पेय से मूत्र की मात्रा बढती है।

भाग और गाजा दोनो से आखो की पुतली विकसित होती, तथा नाडी की गति भी बढती है। दोनो मे कामो-द्दीपक और गर्भाशय सकोचक शक्ति है। गर्भाशय सको-चक का प्रभाव प्रत्यक्ष मासपेशी के सकोच एव अप्रत्यक्ष-तया नाडी सस्थान के द्वारा होता है। दोनो उत्तेजना जनक है। उत्तेजना की अवस्था मे कभी-कभी प्रलाप भी होता है। किंतु रक्त सचालन क्रिया मे विशेष प्रभाव नही पडता। उत्तेजना का अधिक असर मस्तिष्क पर होता है। अल्प मात्रा मे भाग के सेवन से मस्तिष्क पर जो असर होता है, उसके कारण बोलने एव अधिक बाते

करने की प्रवृत्ति बढ जाती, विचार शक्ति भी बढती है। मनकी प्रफुल्लता एव हर्ष की वृद्धि होती, चिंता दूर होती क्षुधा भी अच्छी लगती है। इसके पश्चात् मस्तिष्क पर दूसरा प्रभाव निद्रा का होता है। पेशियों की सचालन शक्ति बढ़ जाती है। इसके द्वारा होने वाली विचार शक्ति की वृद्धि सेवन कर्त्ता की प्रकृति के अनुसार होती है। स्पर्शशक्ति का ज्ञान कुछ कम पड जाता है, कभी-कभी शरीर मे चुनचुनी सी भी प्रतीत होती है। गाजा के भी अल्प मात्रा में सेवन मे यही लक्षण होते है।

निद्रा तो अफीम से भी आती है, किंतु अफीम के नशे से जागने के बाद आलस्य मालूम होता है। इस प्रकार का आलस्य शिरोवेदना, ग्लानि, अग्नि माद्य आदि शिकायतें इसमे नहीं होती। और न अफीम के समान कब्जियत होती है। भांग सेवन करने वाले प्राय भाग पीने के बाद शौच को जाते हैं तथा उन्हे खुलकर दस्त होता है। किंतु भाग व गाजा के नशे मे निद्राभंग के पश्चात् जीभ सूखती हुई मालूम पडती है, तथा शरीर मे रूक्षता प्रतीत होती है।

भाग व गाजे मे जो वेदना स्थापक शक्ति है वह अफीम से कम है। किन्तु शाति कारक धर्म विशेष है। इनके व्यवहार से पेशाब अधिक आता है। उनके पेशाव मे एक प्रकार की विशेष गन्ध रहती है। पेशाव लाने के लिये [मूत्रावरोध मे] भाग का अरिष्ट १० बूद तक दिया जाता है। इनमे वाजीकरण की भी शक्ति है, किन्तु इससे तन्मयता बढ जाती है। श्वास प्रश्वास और नाडी की गति के सम्बन्ध मे निश्चित स्थिति नही रहती कभी-कभी श्वास प्रश्वास की गति बढ जाती है। फिर शीघ्र ही मन्द भी हो जाती है। जब पेशियो की सचालन शक्ति बढ जाती है, तब शारीरिक उत्ताप बढ जाता है। किन्तु निद्रितावस्था मे उत्ताप घट जाता है। अपतन्त्रक या अपस्मार और हिस्टीरिया के दौरे एव आक्षेप इनके प्रयोग से अवश्य रुकते है, तथा एक प्रकार की अवसाद की स्थिति आती है। इनके सेवन से पित्त का सचार अच्छा होता है, अत. भूख भी अच्छी लगती है, तथा आहार का पाचन भी अच्छा होता है। साथ ही मल का पतलापन भी घटता है। आतो का श्लेष्मा कम होता है। अधिक मात्रा के कारण त्वचा की ज्ञानग्राहक शक्ति इतनी घट जाती है कि दात उखाडा जाय तो भी उसका दु ख नही प्रतीत होता। चीरफाड करने पर शस्त्र चालन का कष्ट बोध नहीं होता।

भांग का उपयोग मादक रूप मे तथा औषधि रूप मे किया जाताहै। जो मादक रूप मे उसका सेवन करते हे,उनको सिवाय हानि के और कोई लाभ नही होता। यद्यपि औषधि रूप मे सेवन की जाने पर यह वाक्शक्ति एव विचारशक्ति को बढाती हे, तथापि मादक रूप मे उसका सेवन विरुद्ध परिणाम भी करता है। नशेबाजो को अनेक प्रकार के मस्तिष्क रोग तथा स्नायविक विकार उत्पन्न हो जाते है स्वास्थ्य नष्ट होता है। इसका औषधि रूप मे सेवन अनेक रोगो को समूल नष्ट करता है। आंत्रशूल व वृक्क शूल मे यह लाभकारी है पित्तशोष के कारण उत्पन्न शूल को नष्ट करती है। आमाशय के बल को बढाती, अजीर्ण जन्य अतिसार एव अजीर्ण को नष्ट करती हे। इसके योगो को उन्माद रोग मे दिया जाता है, तथा इससे वृक्क-शोथ जन्य पीडा (Nephritis) भी शान्त होती है। यह रक्त मिश्रित मूत्रस्राव को रोकती हे। बाह्य प्रयोग मे अर्श के मस्सों पर लगाने से पीडा दूर होती है। यह साधारण ज्वर निवारक भी है। सुजाक मे होने वाली शिश्नेन्द्रिय की पीडा, इसके लेप से शान्त होती हे। इसके सेवन से नाडी दौर्बल्य जन्य आक्षेपयुक्त मासिक धर्म की पीडा शीघ्र ही दूर होती है।

आमाशय शोथजन्यशूल तथा क्षय रोग के कास मे यह शीघ्र लाभकारी है। वैसे ही किसी कारण से वस्ति मे आक्षेप हो या आक्षेपजन्य तमक श्वास हो, तो इसके योगो से लाभ होता है। अत्यन्त कष्टदायक तीव्र तथा आक्षेपयुक्त सक्रामक कास (कुकर खासी) मे इससे विशेष लाभ होता है। स्त्री की प्रौढावस्था के अन्त मे मासिकस्राव के बन्द हो जाने के कारण होने वाले तीव्र शिर.शूल मे भाग का योग सेवन करने से लाभ होता है। वैसे ही गर्भस्राव या गर्भपातजन्य अधिक रक्त प्रवृत्ति, अथवा मासिकस्राव के समय होने वाली अधिक रक्त प्रवृत्ति मे भी इसके योगो से लाभ होता है।

भाग के योगो के सेवन से शुक्राशय एवं तत्सम्बन्धित अवयवों के ध्वजभंगादि विकार दूर होकर उनकी शक्ति बढती है। स्वप्नदोष दूर होता, वीर्य की स्तम्भन शक्ति बढती है। एतदर्थ तथा अन्यान्य विकारों के नाशार्थ प्राचीन काल में वाजीकर औषधियों में यथा महाकामेश्वर, कामेश्वर, महामदन मोदक, रतिवल्लभ रसायन, कौंचपाक आदि रति शक्तिवर्धक, उत्तेजक, स्तंभक, नपुंसकत्व हर प्रयोगों में तथा त्रैलोक्य सम्मोहन रस आदि में इसका उपयोग किया गया है।

भाग-पत्र के चूर्ण का प्रयोग व्रणों में मांसांकुरोत्पत्ति को बढाता है। पत्तों की गरम पुल्टिस स्थानिक शोथ, विसर्प, वातनाडीशूल, रक्तार्श के मस्से आदि पर शूलहर एवं शामक रूप में लगाने से लाभ होता है। भाग और खुरासानी अजवाइन का धुआ भी लाभ करता है। नेत्रशोथ पर भाग का गरम कल्क बांधते हैं। अण्डशोथ में भी शोथ तथा वेदना शमनार्थ भाग का प्रयोग करते हैं।

यूनानी मतानुसार--भाग तीसरे दर्जे में शीत व रूक्ष है। यह प्रथम आराम और नशा पैदा करती, गालों की लाली को निखारती है। चिन्ता को मिटाती है, भूख-प्यास को तेज करती है अन्त में इसके सेवन से दिमाग विकृत हो जाता है। दृष्टि में भी विकृति आती है, आंखों के नीचे अंधेरा आने लगता है। जनून और मालीखोलिया हो जाता है, नामर्दी आ जाती है। वीर्य खुश्क होता तथा कामवासना कम होती है। मिठाई से नशा बढ जाता है, तथा खटायी से कम हो जाता है। कभी-कभी उचित मात्रा में इसके सेवन से एवं इसकी आदत न डालने से इससे कोई नुकसान नहीं होता। खाली पेट इसे लेने से नुकसान पहुंचाती है। जो इसका सेवन दिन में दो बार करते हैं, वे खासी से पीडित होकर शीघ्र मरणासन्न हो जाते हैं। इसमें काली मिर्च डालकर सेवन से इसकी खुश्की बढ जाती है। उत्तम तो यह है कि बादाम गिरी, ककडी, तरबूज व कद्दू के बीजों की गिरी, छोटी इलायची के दाने और सौंफ के साथ इसे घोट छानकर पीवें। ये चीजें कालीमिर्च से उत्तम है। इसके ताजे पत्तों का मदोष्ण लेप आंख का दर्द तथा प्रकाश का नहीं सहना दूर कर देता है। इससे पेशाब की मिकदार बढ जाती है। यदि पेशाब लाने वाली दवाओं के साथ पिलाया जाय तो पेशाब बहुत ज्यादा आती है, तथा गुर्दों की जलन बन्द होती और गुर्दे का दर्द दूर होता है।

आधुनिक मतानुसार--पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भाग के विषय में बहुत कुछ अनुसंधान किया है। उनका कथन है कि कई रोगों में विशेषत धनुस्तंभ, जलातंक (पागल कुत्ते का विष), वातरोग, बच्चों के आक्षेप तथा हैजा में इसका प्रयोग अच्छा लाभकारी है। अनुसंधानों से सिद्ध हुआ है कि धनुस्तम्भ (टिटेनिस) और हैजा की यह अच्छी दवा है। धनुस्तंभ में प्रथमत इसकी मात्रा बढानी पडती है तथा रोगी को कई दिनों तक इसके नशे से मस्त रखना पडता है। हैजा में यह अफीम की तरह काम करती है। हैजा के प्रारंभ में ही इसे देने से विशेष लाभ होता है। इसे विरेचक औषधों के साथ प्रयोग करने से मरोड नहीं होती। अतिसार के पश्चात् रोग निवृत्ति की अवस्था में इसका पानक शांतिदायक होता है।

गांजा, चरस तथा भाग के बीजों के गुणधर्म व प्रयोग तथा एलोपैथी के प्रयोग आगे देखिये।

भांग का शोधन--

सर्व साधारणत सेवनार्थ भाग को ठण्डे ताजे जल में कम से कम २-३ घण्टे भिगो रखने के बाद अच्छी तरह मसलकर निचोडकर जल को बहा देते, साथ ही साथ उसमें जो बीज हो उन्हें भी बहा देवे। क्योंकि बीजों में उष्णता अधिक होती है। इस प्रकार भाग को धो लेने से उसका खुश्की लाने का दुर्गुण दूर हो जाता है। तथा यह घोट पीसकर पीने के योग्य हो जाती है।

औषधि प्रयोगार्थ उक्त धोई हुई भाग को सुखाकर गोघृत में भूनकर प्रयोग करे।

अथवा--भाग को ३ बार जल से धोकर मिट्टी के पात्र में डालकर सुखा ले, फिर उसे मंद आंच पर थोडा सेक कर, चूर्णकर, छानकर ४ भाग पोस्त के डोडे के पानी [या क्वाथ] और ८ भाग गाय के दूध में पकाकर शुष्ककर रख ले। इस विधि से भाग दोष रहित एवं विशेषत वाजीकरण के प्रयोगों के लिये हितकारी हो जाती है।
--भा० भै० र०।

अथवा—बबूल की छाल के क्वाथ मे दोलायत्र विधि से भाग को २५-३० मिनट तक मध्यम अग्नि पर स्वेदन कर शुष्क कर ले या गोदुग्ध की भावना देकर सुखाकर रख लेवें। यह भी औषधि प्रयोगार्थ उत्तम लाभदायक होती है।

अथवा—भाग को गोदुग्ध मे दोलायंत्र से २-३ घटे स्वेदन कर, जल से धोकर शुष्क कर हल्की आच पर गो-घृत मे भूनकर काम मे लावे। या गोदुग्ध मे उबालकर सुखाकर साधारण प्रयोग के कार्य मे लावे।

नोट—गाजे की शुद्धि भी इसी प्रकार की जाती है। डा० देसाई का कथन है कि शुद्धि भाग या गाजा आमाशय की पीडा, कुपचन, सग्रहणी, अतिसार तथा नये व पुराने आमविकार दूर करने के लिये किसी प्रयोजक औषधि के साथ देना चाहिये। भाग से इन विकारो मे होने वाली पीडा कम होती है। यदि मल के साथ रक्त हो तो वह बन्द होता है। क्षुधावृद्धि होती, पित्त का सवहन अच्छी तरह होता तथा आहार का पचन ठीक प्रकार से होता है। इसका सेवन अधिक दिनो तक किया जाय तो भी पचन क्रिया बिगडती नही। अतिसार मे शुद्ध भाग या गाजे का चूर्ण गुड या चीनी मिलाकर देना चाहिये।

(१) अजीर्ण, आमातिसार तथा विसूचिका पर—

आमाशय के शूल सहित अजीर्ण, शूल रहित सामान्य अजीर्ण तथा पुराने अजीर्ण विकार या ग्रीष्म काल मे होने वाले अजीर्ण एव अतिसार पर भाग का सेवन काली मिर्च व छोटी इलायची के साथ दिन में ३-४ बार करने से मल बधकर होता, वेदना व प्रदाह दूर होता तथा पचन क्रिया सबल होकर लाभ होता है।

अथवा—रस सिन्दूर, शुद्ध गन्धक, यवक्षार, सुहागा, सज्जीखार, पाचो नमक ये दस चीजे समभाग भुनी हुई भाग सबके बराबर तथा सहजने की जड की छाल भाग से आधी, सब के महीन चूर्ण को भाग, सहेजना, चित्रक व भागरे के रस मे २-२ दिन खरलकर, सम्पुट मे रख एक प्रहर तक तीव्र अग्नि मे पकावे। फिर निकाल अदरख व चित्रक के रस की सात-सात भावनाये देकर, शुष्ककर खरलकर रक्खे। २ से ८ रत्ती तक की मात्रा मे शहद के साथ सेवन करने तथा ऊपर से गुड व सोठ १-१ माशा एकत्र मिलाकर खाने से अग्नि प्रदीप्त होती है। यह रस रत्नाकर का 'अग्निकुमार रस' है।

आगे विशिष्ट योगो मे 'ज्वालानल रस' देखिये।

अतिसार पर—भाग और जायफल का चूर्ण १-१ भाग तथा इन्द्र जौ का चूर्ण २ भाग एकत्र मिला (१ या १½ माशा की मात्रा मे) शहद के साथ चटाने से सर्व प्रकार का अतिसार नष्ट होता है। —भा. प्र

आमातिसार हो तो भाग (या गाजे) का चूर्ण सौफ के अर्क के साथ दिन मे ३ बार देने से अपचन तथा दुर्गन्धमय दस्त, कच्चा आम जाना ये सब दूर होते है।

—गा औ र

विसूचिका (हेजा) पर—हमारा अनुभव है कि शुद्ध भाग को सजीवनी वटी या अग्निकुमार रस के साथ मिला कर देने से वमन बन्द होता, पैरो मे गोला सा उठकर ऐठन होने का उपद्रव नही होता, दस्त भी रुकते तथा नाडी की गति मे भी सुधार हो जाता है। विसूचिका में शरीर ठडा पड जाया करता है, किंतु भाग का योग होने से शरीर मे गर्मी बनी रहती है। नाडी की उत्तेजना घटती नही है। अच्छा तो यह है कि इसे रोग के आरभ मे ही दिया जाय। —श्री स्व प० जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल आ वृहस्पति, प्रयाग (अगद तत्र से)।

अपचनजन्य या कीटाणुजन्य हैजा होकर वमन व दस्त होने लगे हो, तो प्रारभावस्था मे भाग (या गाजा), छोटी इलायची व कालीमिर्च दो-दो रत्ती तथा कपूर १ रत्ती एकत्र घोटकर आधा-आधा घण्टे या एक-एक घण्टे पर, उबालकर शीतल किये हुये जल के साथ देते रहने से, थोडे ही समय मे वमन, दस्त दूर होते है। नाडी सुधरती, देह मे उष्णता एव उत्तेजना आती है। विसूचिका के लिये यह उत्तम उत्तेजक औषधि प्रयोग है।

—गा औ र

(२) अर्श, शूल, निद्रानाश, प्रमेह, पूयमेह, मूत्रावरोध और रक्त मूत्रता पर—

अर्श पर—अशुद्ध भाग [या गांजे] के साथ हल्दी,

प्याज व तिल मिला पीसकर लेप करने, या इस मिश्रण को पीस टिकिया बना, बाधकर लगोट कस लेने से अर्श की सूजन एव रक्तस्राव दूर होता है, जिसके कारण रोगी के दस्त मे रुकावट होती है। वनौषधि गुणादर्शकार श्री शकरदा जी शास्त्री पदेजी ऐसी अवस्था मे भाग के साथ पशुओ के सीग को कुचलकर गुदा पर धूनी दिलाते थे। इसमे चमत्कारिक लाभ होता है। अथवा अलसी पुल्टिस मे थोडा गाजा डालकर लगावे और भाग या गाजा मिलाकर सेक करे तो लाभ होता है।

—अ तत्र से

नोट—उक्त अलसी की पुल्टिस वाले प्रयोग मे अशुद्ध हरी या सूखी भाग १ तोला को अलसी ३ तोला के साथ पीसकर पुल्टिस बनाकर बाधे। इससे फूली हुई पीडा एव खुजलीयुक्त बवासीर मे विशेष लाभ होता है।

अथवा—अशुद्ध भाग के पत्तो को ५ तोला लेकर थोड़े पानी मे इतना पकावें कि पत्ते जल जावे। फिर उसमे १ माशा अफीम मिलाकर खूब घोटकर ५ तोला गौघृत मिला मलहम सा बनाकर रखे। इसे अर्श के मस्सो पर लगाने से पीडा, जलन एव सूजन दूर होकर मस्से नष्ट होते हैं।

अथवा—केवल भाग को ही जल मे पीस, कुछ गरम कर मोटा-मोटा लेप करने या इसकी टिकिया बनाकर बाधने से भी अर्श की पीडा दूर होती है।

—सकलित

शूल पर—अपचन या प्रवाहिकाजन्य उदरशूल हो, तो भाग के सेवन से दूर हो जाता है। भाग १ माशा तक जल मे ३ बार धोकर घी मे भून कर, समभाग शक्कर मिला, ३-३ घण्टे से सेवन करें, अथवा भाग और काली-मिर्च का चूर्ण गुड मे मिलाकर गोली बना कर सेवन करे।

शिर शूल पर—भाग ४ माशा तक जल ४ तोला मे भिगोकर छान लेवे, उसमे बकरी का दूध ३ तोला मिला कर नासिका मे इसकी १० बूदें, डाल नस्य देवें।

निद्रा नाश पर—भाग ५ तोला तथा गुलाब पुष्प की पखुडी १६ तोला एकत्र कूटकर ६० तोला मिश्री चूर्ण में मिला ४० दिन तक धूप मे रख, काचके पात्र मे भर रखें। मात्रा—२ तोला तक गोदुग्ध के साथ रात्रि मे सोते समय सेवन करने तथा भाग को बकरी के दूध मे पीसकर पैरो के तलुवो पर मालिश या लेप करने से उत्तम निद्रा आती है। अनिद्रा रोग दूर होता है।

अथवा—घी में भुनी हुई भाग का चूर्ण १ माशे मे शहद या गुड के साथ सेवन से अच्छी नीद आती है। यह योग वातज्वर तथा विषम ज्वर मे, अतिसार मे भी लाभ-कारी है। वृद्ध मनुष्यो के निद्रानाश मे भी यह योग विशेष व्यवहृत होता है।

अथवा—भाग, कमलपुष्प, अफीम, जायफल, अजवायन और पीपलामूल समभाग घोटकर तथा उसमे भाग के क्वाथ की भावना देकर १-१ रत्ती की गोलिया बनालें। शयन के समय १ या २ गोली जल के साथ लेने से उत्तम निद्रा आती है।

—सकलित

अथवा—निद्राकरासव—भाग ५ तोला, बबूल और आक की छाल प्रत्येक ४० तोला सबको पीस कर, शुद्ध चिकने मटके मे भर उसमे १ सेर गुड को ५ सेर जल मे घोलकर डाल, मुख मुद्राकर १ मास तक सुरक्षित रखने के बाद भवके द्वारा अर्क खीचकर बोतलो मे भर रखे। मात्रा–१ से २॥ तोला तक, थोड़ा जल मिला सेवन करने से खूब अच्छी निद्रा आती है, रोगी को शाति प्राप्त होती है। वात रोग शमन होते तथा क्षुधा वृद्धि होती है।

—वृ आसवारिष्ट सग्रह

प्रमेह पर—भाग का महीन चूर्ण, बगभस्म और गिलोयसत्व १-१ रत्ती एकत्र कर (यह १ मात्रा) शहद से दिन मे २-३ बार सेवन से शीघ्र लाभ होता है।

पूयमेह (सुजाक) मे—भाग (या गाजा) की ठंडाई पिलाने से मूत्र विरेचन होकर पूय निकल जाता है। मूत्र त्याग के समय होने वाला दाह शमन होता है। वृक्क या मूत्राशय मे से रक्तस्राव होता हो तो बन्द होता है तथा प्रदाह का दमन होता है। फिर आवश्यकता रहे तो सुजाक नाशक उपयुक्त औषधि सेवन करावे। —गा औ र

सुजाक मे भाग के क्वाथ की पिचकारी लगाने से भी अति लाभ होता है।

मूत्रावरोध पर–उग्र पदार्थो का सेवन, सुजाक, सुषु-म्नाकाण्ड की वेदना, कुनाईन का अधिक सेवन आदि

कारणो से होने वाले मूत्रावरोध मे ककडी के बीजो की गिरी और भाग की ठडाई बनाकर पिलाई जाती है। यदि अश्मरी कण मूत्रमार्ग मे आगया हो, तो पुनर्नवाक्षार, यवक्षार, अपामार्ग क्षार, कबूतर की शुष्क विष्ठा या अन्य अश्मरी भेदक औषधि के साथ भाग की ठडाई दी जाती है। —गा औ र

रक्तमूत्रता पर—भाग, सौफ और इलायची पीसकर पिलाने से अथवा केवल भाग के ही पिलाने से मनुष्य, पशुओ (बैल, भैस आदि) के पेशाब या पखाने मे रक्त का जाना बन्द होजाता है। पशुओ के लिये मात्रा १माशा रखनी चाहिये। —अ. तत्र

(३) वाजी करणार्थ तथा दुर्बलता, थकावट, कातिहीनता और त्वचा के विकारो पर—

वाजीकरणार्थ—भाग मे वाजीकरणार्थ शक्ति की विशेषता है।

घी मे भुनी हुई भाग का चूर्ण ५ तोला को १ सेर खोया मे मिलाकर शक्कर १ सेर की चाशनी मे डालकर १-१ तोला के मोदक बना लेवे। सायकाल या रात्रि के समय १ मोदक खाकर ऊपर से १० से २० तोला तक दूध पीवे। घी का सेवन विशेष करे।

शास्त्रोक्त मदनानन्द मोदक (आगे विशिष्ट योगो मे देखे) इस कार्य के लिये विशेष उपयोगी है। उससे शिश्नेन्द्रिय की उत्तेजना बढती है। मस्तिष्क मे जो स्फूर्ति की क्रिया सम्पादित होती है, उसमे रक्ताभिसरण उत्तेजित होता तथा शिश्न मे रक्त प्रवाह बढकर उत्तेजना एव काठिन्य आता है। ज्ञानग्राहक शक्ति कम हो जाने से अधिक समय तक घर्षण होने पर भी शुक्रपात नही होता। २ रत्ती भाग मलाई के साथ लेने से या माजूम के रस मे (विशिष्ट योगो मे माजून के प्रयोग देखें) इसे लेने से इस उद्देश्य की सिद्धि होती है। शिश्न की सुपारी मे गाजा पीसकर लेप करने से भी शीघ्र वीर्यपात नही होता। —अ तन्त्र

अथवा—हरी भाग ७॥ तोला, सोठ, जावित्री, बालछड, तमालपत्र प्रत्येक ४॥ तोला, कालीमिर्च, मस्तगी, केशर ३-३ तोला लेकर प्रथम भाग को बादाम तेल मे १८ दिन तक तर रखे, फिर हलका सा भूनकर बारीक चूर्ण करलें। उसमे शेष द्रव्यो का महीन चूर्ण मिला, त्रिगुणा मधु मे मिला सुरक्षित रखे। यदि इसमे ३ तोला कस्तूरी, १॥ तोला चादी वर्क, ६ माशा अम्बर, शहब और स्वर्ण वर्क ४॥ माशा मिला ले तो अति उत्तम माजून (मफरह) तैयार होगा। मात्रा—७ माशा। यह वाजीकर स्तभक, उत्तेजक एव हृद्य है। इसे 'मफरह बगयान' कहते है। —यू चि सा

दुर्बलता (कृशता) पर—भाग, असगध, (नागौरी), विदारीकन्द, ईसबगोल की भुसी और मिश्री समभाग कूट पीस कर रख लेवे। मात्रा—३ माशा तक। ग्रीष्मकाल मे आवले के मुरब्बे के साथ या घी शक्कर व कालीमिर्च चूर्ण के साथ लेकर ऊपर से दूध पीवे। शीतकाल मे शहद या मक्खन के साथ लेकर दूध पीवे। भोजन मे दूध भात या हलुवा लिया करे। शरीर हृष्ट-पुष्ट एव बलवान होता है। यह प्रयोग पुरुष तथा स्त्री दोनो के लिये उपयोगी है।

थकावट—काम करने पर शीघ्र ही थकावट आजाती हो तो भाग १ माशा तक, बादामगिरी २ से ४ माशा कालीमिर्च १ माशा तथा मिश्री ३ तोला इनको १५-२० तोला जल मे घोट छानकर आवश्यकतानुसार पीने से लाभ होता है।

कातिहीनता पर—भाग स्वरस (या क्वाथ) ४० तो मे तिल तेल २० तोला मिला पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर रखले। इसे चेहरे पर प्रतिदिन १ बार लगाते रहने से काति निखरती है। —सकलित

त्वचा के विकारो पर—छाजन (उकौत, व्यूची या एग्जीमा) पर—भाग ८ तोला, सिंदूर ४ तोला, तथा बावची २ तोला लेकर प्रथम तिल तेल ४० तोला को आग पर जोश देवे। झागो के शात होने पर उसमे सिन्दूर डाले—फिर १ घण्टा बाद बावची चूर्ण डाले, फिर—१ घटा बाद भाग चूर्ण मिलाकर नीचे उतार ले।

इसे सोते समय हाथ, पैर की छाजन पर लगाये, किंतु पानी न लगने दें, थोडी देर बाद छाजन के स्थान को आग पर २-३ घड़ी [लगभग १ घण्टे तक] सेकने से छाजन नष्ट हो जाती है। —यू चि सा

गात्रो मे औषधिरत्नकार का कथन है कि व्यूची

आदि त्वचा विकारो मे जब अधिक खुजली चलती है, त्वचा शुष्क हो जाती तथा वारवार निद्रा भग होती रहती है तब शाम को भाग बडी मात्रा मे थोडे दिनो तक देते रहने और शरीर पर तेल का मर्दन करते रहने से त्वचा मुलायम हो जाती है, कीटाणु नष्ट हो जाते, तथा खुजली दूर हो जाती है।

नोट—भाग के क्वाथ का विसर्प तथा वातशूल की वेदना [न्यूरलजिक पेन] पर सिचन करते है। इसका लेप सिर पर करने से रूसिका को दूर करना है।

[४] ज्वर, वातरक्त, उन्माद, धनुस्तंभ, नेत्रविकार व्रण तथा अण्डकोष के शोथ पर—

ज्वर पर—विषम ज्वर या वारी से आने वाले अन्तरा, तिजारी, चौथया आदि ज्वरो मे तथा जीर्ण ज्वर मे भाग या गाजा को किसी प्रयोजक औषधि के साथ देने से बहुत लाभ होता है। ज्वरजन्य शीत का जोर घटता है, क्षुधा प्रदीप्त होती है। तथा ज्वर उतर जाने पर थकावट या क्लान्ति नही मालूम पडती, मानसिक प्रसन्नता रहती एव रक्ताभिसरण क्रिया नियमित होती है। एतदर्थ १ या डेढ रत्ती धुली हुई भाग को थोडे गुड मे मिला बेर जैसी ३ गोलिया बना लेवे। ज्वर चढने के ३-४ घण्टे पहले १-१ गोली यो ही या मीठे दही के साथ लेवे। इस प्रकार १-१ घण्टे मे तीनो गोली लेवें। उसी दिन ज्वर नही आयेगा यदि आयेगा भी तो बहुत कम आवेगा। दूसरी पाली मे इसी प्रकार लेने से बिल्कुल नही आयेगा। रोगी को ज्वर के दिन केवल दूध ही लेना चाहिये।

भूत ज्वर मे—रविवार या मगलवार को भाग के पौधे की जड को खोदकर सिर पर बाधने से उपद्रव शात हो जाता है —अ.तत्र

अथवा शुद्ध भाग ४ रत्ती, भुना हुआ चना १ माशा और गुड २ माशा एकत्र पीसकर गोली बना ज्वर से पूर्व देने से भी लाभ होता है।

अथवा—भाँग १ माशा पीसकर ३ माशा गुड मे मिलाकर खावें, ऊपर से गर्म दूध या गरम जल पीवे। जूडी आने के दो घण्टे पूर्व घटे-घटे पर २ बार यदि नशा मालूम पडे तो इमली का पना बनाकर पीवे। शान्ति मिलेगी। जो लोग भाग खाने वाले है उनके लिये ये भाग व गुड के प्रयोग लाभदायक नही है। ध्यान रहे, कमजोरी वालो को २-४ रत्ती भाग की मात्रा देवें तथा दो खुराक से अधिक न देवें। —भा गृ चिकित्सा

अथवा—भाग १ माशा तक, काली मिर्च ४ माशा और हीग भुनी हुई १ रत्ती सबका चूर्ण ज्वर चढने के पूर्व २-३ बार देवे।

वातरक्त—यह अति गभीर व दुखदाई रोग है। प्रारम्भ मे हाथ पैरो मे प्रबल दाह होना, हाथ पैरो की उगुलिया, नाक, कान पर विकृति होती है। फिर किसी को ज्वर, स्थान-स्थान पर रक्त विकार के ददोरे तथा असह्य पीडा होती है। इस रोग की प्रारभिक अवस्था मे दाह के शमनार्थ भाग श्रेष्ठ औषधि है। मात्रा बडी देनी चाहिये। —गा औ र।

उन्माद पर—भाग, गाजा और हीग १-१ भाग एकत्र पीसकर, अजवायन क्वाथ की ४ भावनाये देकर शुष्क कर शहद के साथ घोटकर १ से ४ रत्ती तक की गोलिया बना लेवे। इसे जटामासी के फाण्ट के अनुपान से २-२ या ३-३ घण्टे से देवे। उन्माद, अपस्मार, आक्षेपादि मानसिक विकार दूर होते है।

—आ पत्रिका

धनुस्तभ (Tetanus)—डा कास्टगिर ने भाग का धूआ पिलाकर इस रोग के कई रोगियो को आराम किया था। ७ रत्ती भाग को थोडी सी तमाखू के साथ हुक्के मे भरकर रोगी को पिलाया जिससे आक्षेप की गति कम होने लगी। कई बार इसका धूम्रपान कराने से रोगी ठीक होगये।

बम्बई के डा० जी० सी० लुकास ने परीक्षा करके देखा कि इस रोग मे भग के धूम्रपान से आक्षेप क्रमश धीरे धीरे बहुत समय के बाद हुआ करता है तथा उसका जोर भी धीरे धीरे कम हो जाता है। रोगी को अधिक कमजोरी नही आती और वारवार व्यवहार करने से रोग एकदम दूर हो जाता है।

डा० डायमाक ने भी कई रोगियो को केवल भाग के धूम्रपान से लाभ पहुचाया है तथा उन्होने निर्णय

किया कि यह धनुस्तंभ के लिये यह एक उत्तम औषधि है ।
—व च

नेत्रविकार पर—भाग को जल के साथ पीस, थोडी गरम कर पुल्टिस बना, रात्रि के समय नेत्रो पर बाधने मे भारीपन, वेदना, खुजली और लाली आदि दूर होते है ।

व्रण पर—सद्यो व्रण मे भाग का चूर्ण भर देने से धनुस्तंभ का भय नही रहता, शोथ नही होता, वेदना बन्द होकर व्रण शीघ्र पूर्ण हो जाता है ।

अण्डकोष के शोथ पर—इसके गीले पत्तो की पुल्टिस बाधने से तथा इसके क्वाथ का बफारा देने मे शीघ्र लाभ होता है
—सकलित

[५] कफ विकार [प्रतिश्याय, कास, श्वास], छीक के लिये कर्ण या गर्भाशय के विकार, गर्भस्थापनार्थ, पुत्रोत्पत्ति के लिये, योनिशैथिल्य, चूहे के विष और हरताल के विष पर—

कफ विकार पर—भाग २ रत्ती, काली मिर्च ७ नग एकत्र जल मे पीसकर ऊपर से सुखोष्ण जल पीवे दिन मे दो बार ।

प्रतिश्याय पर—भाग के ताजे पत्तो को पीस बड या पीपल के पत्ता मे लपेट कर डोरे से बाध कर उसपर १ अगुल मोटा मिट्टी का लेप कर आग मे दवा दे । मिट्टी का रग लाल हो जाने पर ठडा कर भाग को निकाल चूर्ण कर उसमे सेधानमक और तेल मिलाकर १माशा तक की मात्रा मे सेवन से सर्व प्रकार के जुकाम नष्ट होते है । यह प्रतिश्याय की परमौषधि है । —ग नि

कास पर—भाग पत्र रस २ माशा तक मे शहद ३ माशा मिला दिन मे ३ बार पीवे ।

श्वास पर—घृत मे सेकी हुई भाग १ रत्ती, काली-मिर्च और मिश्री मिलाकर दिन मे ३ बार देवे । इसमे धनुर्वात मे भी लाभ होता है ।

छीक लाने के लिये—भाग के शुष्क पत्तो का चूर्ण सुघाते है।

कर्ण पीडा पर—भाग के हरे पत्तो का स्वरस कान मे डालने से शूल दूर होता है, कानो के कृमि नष्ट होते है ।

गर्भाशय के विकारो पर—भाग (या गाजे) का प्रभाव गर्भाशय मे सकोचन क्रिया सम्पादन मे होता है । इसकी सकोचन क्रिया मे वेदना नही होती । अत जरायु के शैथिल्य के कारण अथवा गर्भवती के क्षीण होने के कारण गर्भाशय मे प्रसव वेदना न होकर प्रसव विलम्ब से होता हो तो भाग पिलाना प्रारभ किया जावे । इससे गर्भाशय मे उत्तेजना होकर प्रसव वेदना होने लगती है । जिन स्त्रियो को गर्भपात हो जाया करता है उन्हे भाग दी जाया करे तो गर्भाशय मे सकोच होकर गर्भपात की घटना सभवत नही होती । यदि गर्भपात के बाद या प्रसव के पश्चात रक्त अधिक जा रहा हो, तो भाग (या गाजा) पिलाने से जरायु का सकोच होकर रक्तस्राव बन्द हो जाता है । एलोपैथी वाले ऐसी दशा मे अर्गट दिया करते है । किन्तु उससे अपेक्षा भाग या गाजे का प्रभाव शीघ्र प्रगट होता है । अर्गट का प्रयोग अधिक समय तक करने से, उसका प्रभाव सन्तान पर हानिकारी होता है, किंतु भाग या गाजे का परिणाम हानि-कर नही होता । इनकी क्रिया बलवती होती है,तथा निश्चय होती है। अत्यार्त्तव एव पीडितार्तव की अवस्था मे भाग और गाजा अधिक गुणकारी है । इसमे बीजकोष का कष्ट निवारण होता है ।
—अ तत्र ।

गर्भस्थापनार्थ—भाग २ माशा, अफीम १ रत्ती, कस्तूरी २ रत्ती, जायफल १ नग, केशर १ माशा, सुपारी ३ नग, लौग ४ नग सबको महीन कूट पीसकर पुराने गुड ६ माशा मे मिला, चना जैसी गोलिया बना लेवे । मासिक धर्म के पश्चात् प्रतिदिन ३ या ७ दिन तक १-१ गोली प्रात साय या एक ही बार माजून मोचरस ७ मा० मे मिलाकर दूध के साथ देवे । चौथे या ८ वे दिन सम्भोग करे । इस वटी के प्रयोग से गर्भाशय के विकार नष्ट होकर गर्भाधान होता है । यदि मासिक धर्म मे कोई विशेष विकृति न हो, तो अवश्य ही गर्भ स्थापन होता है ।
—यू० चि० सा० ।

(माजून मोचरस—मोचरस, सुपारी, नवाशीर,

निशास्ता, गुलाब पुष्प, त्रिफला, श्वेत व काली मूसली ६-६ माशा अनार का छिलका ९ माशा, बीही का रस तथा अम्ल अनार का रस प्रत्येक २½ तोला, खाड और शहद त्रिगुण, यथा विधि पाककर औषध चूर्ण मिला माजून तैयार करे। मात्रा १ तोला)

पुत्रोत्पत्ति के लिये—नीचे भाग के बीजो का प्रयोग देखे।

योनिशैथिल्य पर—भाग की पोटली ३ घटे तक योनि-मार्ग मे रखने से अनेक बार प्रसूता स्त्री का भी योनि-शैथिल्य दूर हो जाता है। योनि कडी हो जाती है।

चूहे के विष पर—चूहे के काटने के पश्चात तुरत योग्य उपचार न करने से विष अधिक प्रकुपित होकर ज्वर, सारे शरीर मे दाह, सिर दर्द, रक्त विकार, शीत पित्त के समान ददोरे, उगलियो मे शोथ आदि लक्षण होते हैं। उसपर भाग या गाजा उत्तम औषधि है। भाग को मजीठ, काली अनन्तमूल, चोपचीनी, उन्नाव, सत्यानाशी या अन्य सारक एव रक्तशोधक औषधि के साथ सेवन कराने से तुरन्त लाभ होता है। —गा० और० र०

हरताल के विष मे—भाग देने से लाभ होता है।

गांजा

चपटा, गोल तथा चूर्ण तीन रूपो म पाया जाता है। मादा जाति के भाग के पुष्पाकुरो को एकत्र (एक पर एक) जमाकर रच कर, पैरो से या अन्य साधनो से खूब दबाने या कुचलने पर जो उसकी खली सी (गट्टा सी) बन जाती हे उसे ही सुखाने से चपटा गाजा तैयार हो जाता हे।

अथवा—इसकी पुष्पाकुर युक्त टहनियो को तोड-कर कुछ थोडी खुली जगह रखकर साधारण सूख जाने पर इन्हे पैरो से रोदते हे तथा थैलो मे ठूस कर भरते हे कुछ दिन बाद नमी से कुछ ताप पैदा हो जाती है। अन्दर हाथ डाल इच्छानुसार गरमी पाने पर फिर रौदा व पीटा जाता है। पुन बोरियो मे बन्द कर देते है। फिर उनमे गरमी आने पर पूर्णतया शुष्क होने के लिए रख देते हे। वह कुछ चिपचिपासा भूरा चिपटा पपडी के रूप मे हो जाता है।

उक्त पुष्पाकुरो को अलग-अलग शुष्क करने पर, वह सिकुडकर गोलाकार सा बन जाता है। वही गोल गाजा कहाता हे। तथा पुष्पाकुरो को टटी एव पत्तो सहित एकत्र मिलाकर शुष्क किये हुये चूर्ण को चूर्ण या चूरा गाजा कहते हैं। इनमे चपटा गाजा श्रेष्ठ माना जाता है।

नाम——

गाजे के भिन्न-भिन्न नाम इस प्रकार हैं—कालाहादी, अजनपत्री, कच, गजिका, आनदा, गाज, गाजालाई, भागजा, मधुक, सिद्धि आदि। अग्रेजी और लेटिन मे केनाबिस सेटिवा (cannabis sativa)।

गुणधर्म व प्रयोग—

उत्तेजक, आह्लादक, सग्राहक, कफनाशक, बल्य, शोणित स्थापन, क्षुधाजनन, वेदनास्थापन, मूत्रल, कामोद्दीपन, निद्राजनक, शातिजनन, त्वकसज्ञाहरन है। सकोच विकास प्रतिबधक, गर्भाशय सकोचक, अग्निप्रदीपक, तृप्तिकारक, आक्षेपहर व मादक है। तथा बाह्यायाम, अन्तरायाम —एक प्रकार का अपतानक आक्षेपक वातरोग जिसमे शरीर पीछे की ओर या सामने की ओर अकड जाता या झुक जाता हे (Emprosthotonos or opisthotonos) मदात्यय, शूल, अम्लपित्त, अग्निमाद्य, रक्तप्रदर, प्रसववेदना, सिरदर्द, कालीखासी, क्षयकास, शुष्ककास, कम्प, हिस्टीरिया, उन्माद आदि रोगो पर प्रयुक्त होता हे।

डा० देसाई का कथन हे—"गाजे की क्रिया विशेषत मस्तिष्क पर होती हे। प्रारम्भ मे न्यूनाधिक उत्तेजना मिलती हे किंतु भरपूर मात्रा लेने से ज्ञानग्राहक शक्ति कम होती, नशा आता, त्वचाशून्य होती, पैरो मे शिथिलता आती, नेत्र की कनीनिका विकसित होती, नाडी तेज होती तथा गाढ सुषुप्ति की अवस्था प्राप्त होती हे। जागृत होने पर अति क्षुधा लगती है। अफीम की निद्रा से जागने पर जैसा आलस्य पैदा होता है, तैसा इससे नही होता तथा अफीम के समान इससे कब्जियत भी नही होती।

"गाजा मे वेदनाशामक धर्म अफीम से कनिष्ट कोटि का हे। शातिकारक धर्म अति प्रबल है। इससे मूत्र का परिमाण वढ जाता है। वाजीकर एव कामोत्तेजक धर्म अनेक वार स्पष्ट प्रतीत होता है। नाड़ी की क्रिया निश्चित नही होती, विशेषत तेज होती है, तथापि कभी मन्द भी हो जाती है। आक्षेप आना और मासपेशियो मे ऐठन आना इन दोनो का प्रतिवन्ध एव शमन करने का गुण दृष्टिगोचर होता है फिर भी अफीम से कम। इससे क्षुधा प्रदीप्त होती, तथा पित्तोत्पत्ति अधिक होती है। अधिक दिनो तक इसका सेवन कराया जाय तो भी पाचन क्रिया नही विगड़ती। आत्र के भीतर श्लेष्मा (आम) कम होना, पित्तस्राव वढना एव आहार का पचन अच्छा होना, इन तीन गुणो के कारण मल का पतलापन कम होता हे, फिर भी अफीम के सदृश मलावरोध नही होता।

"गाजा से वृत्ति आनन्दमय वनती, तथा सव क्रिया नियमित होती हे ऐसा रोगी को भासता है। त्वचा की ज्ञानवाहक शक्ति अति कम होती है। वडी मात्रा देने पर इतनी शून्यता आ जाती हे कि दात विना पीडा हुए निकाल सकते है या साधारण अस्त्र चिकित्सा चीर-फाड कर सकते हे। शरीर के किसी भाग मे वेदना होती हो शूल हो, या मासपेशियो मे ऐठन आती हो, तो उनको कम करने तथा निद्रा लाने के लिये गाजा दिया जाता है यथार्थ मे इन कार्यो के लिये इसकी अपेक्षा अफीम उत्तम औषधि है किन्तु जिनको अफीम नही दे सकते उनको गाजा ही दे[illegible] है। [illegible] का जैसा भय है तैसा इससे नही है। पित्ताश्मरी शूल, वृक्कशूल, उपान्त्रशूल, शिर शूलादि मे शूल शमनार्थ गाजा दिया जाता है। यदि कर्णशूल हो, तो इसके रस की बूद डालने से लाभ होता है।

"गाजा गर्भाशय को उत्तेजित व आकुचित करता है अर्गट [Ergot] * से जिस तरह गर्भाशय को शक्ति मिलती हे, उसी तरह गाजे से मिलती है। किंतु इसकी क्रिया अर्गट के समान अधिक समय तक नही टिकती। गाजे की गर्भाशय पर प्रत्यक्ष क्रिया होती है तथा मस्तिष्क केन्द्र पर क्रिया होकर परम्परा क्रिया भी होती है। गाजे से किसी भी प्रकार की हानि नही होती। इससे मृत्यु होने का उदाहरण नही मिला।

मस्तिष्क को किसी से आघात पहुचकर होने वाले धनुर्वात [आक्षेप], प्रसूता का धनुर्वात, अपस्मार, कम्पवात, दात आने के समय बालको के आक्षेप, वृक्कप्रदाह, सगर्भा को होने वाला अपस्मार, हिस्टीरिया इन सब रोगो पर गाजे की श्रेष्ठता निर्णीत हुई हे। धनुर्वात मे यह निर्भय औषधि हे किसी को भी दे सकते हे। मेदे की खराबी से पैदा हुये रोगो मे इसका अच्छा प्रयोग होता हे। निद्रानाश, स्वेदप्रवृत्ति आदि विकारो मे यह अच्छा काम करता है। यह वेदना को कम कर देता है। किंतु रोग की जड को नष्ट नही करता। रोग की जड को नष्ट करने के लिये इसके साथ दूसरी प्रयोजक औषधिया देनी चाहिये। मज्जातन्तु की सूजन मे गाजे को पारद के साथ

---

* अर्गट क्लोविसेप्सी परपूरिया (Claviceps Purpurea) नामक फगस (Fungus) के शुष्क किये हुये स्क्लिरोशियम (Sclerotium) होते है, जो तृण कुल की राई (Rye) नामक पौधे से प्राप्त किये जाते हे। इस पौधे का लेटिन नाम सिकेल सिरिआले (Secale cereale) है। ये पौधे स्पेन, पुर्तगाल, पोलेंड तथा रूस आदि यूरोपीय देशो मे विशेष होते है। आजकल दक्षिण भारत में नीलगिरी मे अर्गट प्राप्त करने के लिये उक्त राई वनस्पति की खेती की जाती हे तथा उनसे अर्गट प्राप्त करने मे सफलता भी प्राप्त हुई है। यह राई अपने यहा की राई (राजिका Black mustard) से भिन्न है। अर्गट गाढे बैंगनी एवं काले रग का १ से ३ सें मी लम्बा एव १ से ५ मि. मी चौड़ा गोपुच्छाकर तथा बहुत कुछ त्रिपार्श्विक होता है। यह तोडने से खट से टूट जाता है। इसमे अरुचिकारक गन्ध तथा स्वाद मे भी अरुचिकारक होता है। चिकित्सा मे इसका प्रधान उपयोग गर्भाशयिक क्रिया के लिये किया जाता है। गर्भाशय की संकोच क्रिया दुर्बल होने से पुरस्सरण गति मे बिलम्ब होता है। ऐसी अवस्था में इसका प्रयोग किया जाता है। इसका विशेष विवरण पाश्चात्य मटेरिया मेड़िका मे देखिये।

देवे। मज्जातन्तु की वेदना मे इसे सज्रिया के साथ देने मे चमत्कारिक लाभ होता हे"।

गाजा और अफीम की तुलना सक्षेप मे--

गाजा	अफीम
नवीन ही वीर्यवान होता हे।	पुरानी भी काम देती है।
शीघ्र परिणामकारी है।	मन्द परिणामकारी है।
वेदनाशामक धर्म साधारण।	वेदनाशामक धर्म विशेप।
शान्तिकारक धर्म अतिप्रवल।	यह धर्म प्रवल।
आक्षेप, ऐंठन प्रतिवन्धक धर्म साधारण किंतु निश्चित।	यह धर्म कुछ अधिक किन्तु अनिश्चित है।
क्षुधावर्धक।	अग्निमाद्यकारक।
मूत्रपिण्ड विकृति मे दे सकते है	इस विकृति मे नही दे सकते
वातनाशक हे।	आध्मानकारक है।

गांजा शुद्धि–

गाजे को दोलायत्र विधि से ३ घण्टे तक गोदुग्ध मे पकाने या वाष्पित करने से शुद्ध हो जाता है। विशेप हानिकर नही होता। औषधि कार्यार्थ इसे शुद्धि कर लेना आवश्यक हे। गाजा पान करने वाले नशेवाज अशुद्ध ही का धूम्रपान करते है। जो जानकार होता हे वह इसे खूब जल मे धो लेता है।

गाजा पान—नशेबाज प्राय इसका धूम्रपान ही करते है। १ तोला गाजे के साथ तम्माखू ३ माशा के प्रमाण मे लेकर दोनो को एकत्र मसलकर वस्त्र मे बाधकर जल मे डुबो डुबोकर, तदन्तर्गत चरस का अश दूर हो जाने तक खूव मसलते हुये धोते है। पश्चात् चिलम मे थोडी तमाखू डालकर उस पर उक्त लुगदी को यथा प्रमाण (जितने पीने वाले हो तदनुसार) रख उस पर पुन थोडी तमाखू डालकर आग से जलाकर धूम्रपान करते है। इसको आदी या नशेवाज नही है वह तो इसके एक ही दम लगाने (कश लगाने) से घूम जाता है। तन्द्रा भी आ जाती हे। नशेवाज को ४-५ दम लगाने पर भी कुछ नही होता, वह सावधान रहकर सव कार्य करता हे। किंतु अत्यधिक बार कश लगाने पर उसे भी इसका नशा चढता है। वह भी गुमसुम सा हो जाता है। जो इसके विशेप आदी हो जाते है, उनके वल, वीर्य एव ओज का शीघ्र ही नाश होता है। सिवा गपशप मारने के, वह अपना या समाज का कोई भी कार्य ठीक प्रकार से नही कर सकता।

गांजे के प्रयोग–

(१) हिक्का, शुष्क कास, प्रतिश्याय, श्वास, फुफ्फुसावरण प्रदाह, वातनाड़ी प्रदाह, तथा शूल पर—

हिक्का पर—गाजे को समभाग गुड के साथ मिला मटर के समान गोली बनाकर देने पर हिक्का शमन हो जाती है। आवश्यकता रहे तो एक घण्टे बाद पुन. एक गोली देवें। इससे कुछ नशा आता है। किन्तु किसी प्रकार को हानि नही होती। —गा औ र।

अथवा–गाजा को ५–१० वार गरम जल मे जब तक हरा जल निकले तब तक धोकर शुष्ककर, पीसकर, शहद से २–२ रत्ती की गोलिया बना लें और कालीमिर्च के चूर्ण मे डालते जावें। १ गोली सुखोष्ण जल मे देवे। आवश्यकता पर २ घण्टे वाद और १ गोली दे सकते है। इससे कुछ नशा आ जाता है, किन्तु हिक्का शमन हो जाती है। —रस तन्त्रसार।

अथवा—गाजा १ रत्ती, चिरयारी गिरी १ माशा दोनो को तमाखू मे मिला, चिलम मे भर कश लगावे। तेज से तेज हिचकी भी रुक जाती है।

—शेख फय्याज खा, विशारद एम डी एस
भीनमाल (जालोर)

शुष्क कास पर—गाजे का सेवन (धूम्रपान या उदर सेवन) हितावह माना गया हे। इससे घबराहट दूर होती तथा श्वसनयत्र पर शामक असर पहुचता है।

—गा औ र

अथवा—गाजा को जलाकर उसकी राख शहद के साथ चाटने से अथवा मलाई के साथ १ रत्ती धुली हुई भाग के सेवन से शुष्क कास तथा श्वास मे दम का चढना रुकता है, श्वासोच्छ्वास ठीक प्रकार से होता है।

प्रतिश्याय (जुकाम), नजला पर—गाजा ७ माशा, मुलैठी ५ माशा, सोठ ३ माशा और ताम्बूल पत्र को कूटकर, मिश्री के शीरा मे मिलाकर ५० गोलिया बना

१ गोली प्रात साय गोजिह्वादि क्वाथ अथवा अर्क गाजवा के साथ सेवन करावे ।

काली खासी मे—उक्त गोली ⅛ या ¼ भाग तक शर्वत बनफसा से या माता के दूध से देवे ।

कफ युक्त अतिसार और प्यास मे उक्त गोली दालचीनी के क्वाथ से प्रयोग करे ।

श्वास तथा प्यास की खुश्की मे—गाजा १ तोला, तमाखू १½ तोला, सोरा १ तोला, अनीसून (सौंफ) १० माशा, लोवान कौडिया ४ माशा सबको कूटकर चूर्ण कर ले । १ माशा चूर्ण चिलम मे रखकर या आग पर रख कर धूनी देते हैं। प्यास मिटाकर श्वास को रोकता है। खासी मे भी ठीक है। किंतु खास मौके पर ही काम मे लाना चाहिये । इसका व्यसन हानिकर है ।

—शेख फय्याज खा विशारद ।

फुफ्फुसावरण प्रदाह (Pleurisy) की प्रथमावस्था मे फुफ्फुसो की झिल्ली मे शूल (पार्श्वशूल) चलता है, उसे दूर करने मे अफीम की अपेक्षा गाजा विशेष हितावह माना गया है ।

वातनाडी प्रदाह—(Neuritis) अधिक मद्यपान, शीत लग जाना, आम वात, चोट लगना, वृद्धावस्था, विषमज्वर, कठरोहिणी, नेत्रपाक, गृध्रसी, मधुमेह आदि कारणो से उत्पन्न होता हे । इसमे प्रदाह स्थान मे वेदना होती है । इसे दूर करने के लिए गाजे का सेवन रसकपूर, मल्ल भस्म (या मल्लसिंदूर), लोह भस्म या अन्य औषधि के साथ कराया जाता हे ।

इसी प्रकार वृक्क प्रदाह (Bright disease) जिसमे दर्द, शोथ, लसीका मेह या जलोदर के लक्षण होते है। यह आशुकारी और चिरकारी दो प्रकार का होता है। इन दोनो प्रकारो मे मूत्र मे जाने वाली प्रथिन को रोकने, रक्तस्राव वन्द करने एव वेदना शमनार्थ गाजा अमोघ औषधि है। ऐसी दशा मे गाजा को पीसकर पिलावे ।

शूल (शिर शूल)—अतिश्रम, मानसिक उद्वेग, वृद्धावस्था, वातनाडी प्रदाह तथा मानसिकधर्म के कारण उत्पन्न शिरदर्द पर गाजे का सेवन २-३ मास तक कराने पर रोग का प्रतिकार हो जाता है । आधाशीशी हो तो वह भी दूर हो जाती है । यदि गाजे के साथ मल्ल मिलाया जाय तो लाभ सत्वर हो जाता हे ।

—गा. औ र.

फिरङ्ग (उपदश) जन्य टेबीज डोर्सेलिस (Tabes Dorsalis) नामक रोग जिसमे एक प्रकार की विद्युत के समान चपल एव तीव्र पीडा (Lightning pains) होती है, उसमे गाजे से लाभ होता है ।

—सकलित

(१) मस्तिष्क की कोमलता, पक्षाघात जन्य कम्प, मदा[illegible]य, उन्माद, उपदश, प्रमेह तथा स्वप्नदोष और वहुमू[illegible] तभनार्थ—

मस्तिष्क की कोमलता के कारण होने वाले कोमलीभूति (साफ्टनिंग Softning) रोग मे मस्तिष्क की ऊपर की हड्डी नरम होजाती है। रात्रि मे प्रलाप करना, सिरदर्द, वमन, उवाक, बेचैनी, ग्लानि, भयप्रद दर्शन आदि लक्षण होते हे । इस विकार मे १-२ मास तक गाजा या गाजे का सत्व या चरस इनमे से किसी का भी धूम्रपान कराने से लाभ होता है ।

पक्षाघात जन्य कम्प पर—गरमी के आघात से जो पक्षाघात होता हे, उसमे रह रह कर कुछ कुछ समय बाद कम्प (आक्षेप या झटका) आते रहते ह उसके निवारणार्थ मल्ल आदि प्रयोजक औषधि के साथ गाजा दिया जाता हे ।

—गा औ र

मदात्यय (Alcoholism) पर—शराब के अत्यधिक सेवन से पैदा होने वाला रोग, जिसमे शरीर काला पड जाता है । मन अतिचचल होकर व्यर्थ विचार आते रहते हे, निद्रा नही आती आदि लक्षण होते है। इस दशा मे गाजा या चरस का प्रयोग अच्छा लाभकारी होता है। अन्त.करण मे स्फूर्ति उत्पन्न होती, मन प्रफुल्लित रहता, दाह शात होती, निद्रा आती हे। धीरे धीरे रोग पूर्णत दूर हो जाता हे ।

उन्माद रोगियो को भी निद्रा नही आती, अत किसी भी कारण से हुए अनिद्रा मे डाक्टर लोग ब्रोमाईड दिया करते है, किन्तु उसका प्रभाव मस्तिष्क व हृदय को शिथिल कर देता है। ऐसी दशा मे गाजे को खुरासानी अजवायन के साथ मिलाकर सेवन कराया जाय अथवा ब्रोमाइड आफ पोटासियम के साथ गाजा या भाग क

अरिष्ट मिलाकर दिया जाय तो नींद भी अच्छी आवेगी तथा ब्रोमाइड का बुरा प्रभाव असर नही करेगा।

—अ तत्र

उपदश—तीव्र उपदश के विकार मे एक प्रकार का पक्षाघात (लकवा) सा होता है, उसमे गाजा उपयोगी माना जाता है।

प्रमेह व स्वप्नदोष पर—गाजा १½ तोला, क.कनार (अफीम का फल या डोडा) साबित ६ माशा, काली व श्वेत मूसली, तोदरी (लाल व श्वेत), बहमन सुर्ख व सफेद, धनिया की गिरी बीजबन्द, तालमखाना प्रत्येक २½ माशा तथा मिश्री १० तोला सबको कूटकर बादाम रोगन १½ तोले मे मिलावें और सबकी दो गुनी शहद मिलाकर अवलेह बनावे। ७ दिन तक आनाज के ढेर मे रखकर प्रयोगकरे। मात्रा ३ माशा घृत व दुग्ध का सेवन विशेष प्रमाण मे करे।

बहुमूत्र पर—गाजा ६ माशा, मस्तगी, गोद पलाश का ६–६ मासा, जुफ्त बलूत (बलूत के बाह्य आवरण के नीचे चिपटा हुआ एक बारीक छिलका) ८ माशा, सोंठ घृत मे भुनी हुई ४ माशा, तिल श्वेत सबके समभाग तथा शक्कर भी सबके बराबर लेकर चूर्ण कर रखे। बडो को मात्रा ५ माशा बच्चो को १ मे २ माशा दोनो समय दूध से देवे।

स्तम्भनार्थ—गाजा ५ माशा, अफीम १ माशा, गूगल भैंसिया १½ तोला, मोचरस, कमरकस, रबसूस (मुलैठी का शुष्क घन सत्व) प्रत्येक ६ माशा सबका चूर्ण कर घृत ११ माशा तथा शहद सबके समान लेकर एकत्र खरल कर ५० गोलियां बनावे। स्त्री प्रसग के १½ घटा पूर्व १ या २ गोली खावें। दूध व घृत का सेवन विशेष करें खटाई आदि से इसका प्रभाव दूर होता है।

—शेख फय्याज खां।

नोट—नपुंसकता पर आगे विजयापुष्पाद्यवलेह देखे।

(३) गर्भाशय के विकार, कष्टार्त्तव, प्रसव वेदना तथा पागल कुत्ते के दश पर और गाजे के लेप विषय मे—

स्त्रियो के गर्भाशय के कष्टार्त्तव आदि विकारो पर—मासिक धर्म आने पर या मासिक धर्म के समय यदि कटि-शूल, सिरदर्द, अतिकष्ट आदि लक्षण हो, तो प्रथम मृदु विरेचन देकर कोष्ठ शुद्धि होने पर गाजा (या चरस) यथोचित मात्रा मे भूनी हुई हीग के साथ दिन मे २-३ बार देते रहने से वेदना कम होती है। इससे गर्भाशय मे आकुंचन क्रिया होती है। बीजाशय या डिंबकोष तथा बीजाशय नलिका मे होने वाली वेदना और सूजन दूर होती है एव रज स्राव यथास्थिति उचित प्रमाण मे सरलता पूर्वक होता है। रोग जडमूल से नष्ट न हो, तो भी बहुत लाभ पहुचता है।

निर्बल तथा रुग्णा स्त्रियो को और जिनका गर्भाशय शिथिल हो उनको प्रसव सरलतापूर्वक नही होता। अति-वेदना होती है। ऐसी दशा मे प्रसूता को शीघ्र प्रसव कराने के लिये गाजा १ मे ५ रत्ती तक की मात्रा मे १-१ घण्टे के अन्तर पर या २-३ बार ताम्बूल (पान) के साथ देवें। रक्तस्राव के निवारणार्थ २ मे ५ रत्ती तक दिन मे ३ बार देवे।

पागल कुत्ते के दश पर—जल सत्रास रोग होता है, वह पानी नही पी सकता, पानी सामने आते ही चिल्लाता है, आक्षेप आते हैं। अत पागल कुत्ते के काटने पर १०-२० दिन के भीतर यदि कुछ बडी मात्रा मे कुछ दिनो तक नियमित गाजे का सेवन कराया जाय तो उसके कीटाणु एव विष नष्ट होकर सदा के लिये रोग दूर हो जाता है। रोग की जीर्णावस्था मे जलभीति, वेदना एवं आक्षेपो को दूर करने के लिये भी गाजा सफलतापूर्वक दिया जाता है। लम्बे समय तक देते रहने पर रोग दूर हो जाने के अनेक उदाहरण मिलते हैं। —गा० औ० र०।

गाजे के लेप—श्लेष्मल त्वचा पर गाजे का लेप करने से वहा शून्यता आ जाती है। मसूढो पर गाजे की कली पीसकर मलने से बिना कष्ट के दात उखाडा जा सकता है। गाजे को स्पिरिट मे डालकर उसका तरल सत्व तैयार करले, इसे दातो के दर्द मे लगाने से वेदना कम होती एव बिना कष्ट के दात उखड आता है। चर्म विकारो मे खुजली उठती हो, पीडा या आग सी जलन होती हो, तो गाजे के लेप से आराम होता है। —अ. तत्र

विशिष्ट योग—

विजया पुष्पाद्यवलेह्— जल मे धोया हुआ गाजा १४ तोला, जायफल, जावित्री, लौंग, दालचीनी, छोटी इलायची के दाने, अकरकरा व केशर २-२ तोला तथा बादाम गिरी ४ तोला, सबको कूट पीसकर महीन चूर्ण कर १ सेर मिश्री की घनी चाशनी कर आधी गरमी कम होने पर उसमे मिलादें, तथा साथ ही कस्तूरी और अम्बर ६-६ माशा मिला लेवे। मात्रा—१ से ३ मासा तक, दिन मे दो बार चाटकर ऊपर मेमिश्री मिला हुआ दूध पीने से थोडे ही दिनो मे नपुसकता, शीघ्रपतन, शारीरिक निर्वलता व अनिद्रा रोग दूर होता है। उत्साह की वृद्धि होती है। मन प्रफुल्लित, पचन क्रिया सबल बनती और शरीर पुष्ट होता है। ब्रम्हचर्य के पालनपूर्वक इस अवलेह के सेवन से अतिस्त्री सेवन, मानसिक चिन्ता, शारीरिक निर्वलता आदि कारणो से उत्पन्न नपुंसकता दूर होती है। गाजे मे प्रवल वाजीकर गुण होने से इसकी सुषुम्ना काडस्थ कामोत्तेजक केन्द्र पर क्रिया होकर शिश्न मे उत्तेजना आती है। मन मे आनन्द की वृद्धि होने से भी वासना अनुरूप कामोत्तेजना होती है और त्वचा की सवेदना शक्ति मन्द होने से शुक्रपतन देर से होता है। अत स्तभन शक्ति जिनकी कम हुई हो, उनको भी इसके सेवन से लाभ हो जाता हैं। —गा० औ० र०।

(२) विद्युत तिला—गाजा अशुद्ध १ भाग लेकर जल के साथ सिल पर पीसकर लुगदी बनाले। फिर ४ भाग तिल तैल को कढाई मे डालकर आग पर गरम करे, पश्चात् उसमे गांजे की लुगदी डालकर पकावे। तैल मात्र शेष रहने पर नीचे उतार कर छानकर शीशी मे भर रखे। रात्रि मे सोते समय इन्द्री पर धीरे-धीरे मालिश करे। यह बहुत पुराना, एक हस्तलिखित पुस्तक से प्राप्त योग है। मैं कई बार आजमा चुका हू।

—वैद्य स्वामी रामनारायण 'वियोगी' आयु शास्त्री,
राम द्वारा, छापर (राजस्थान)

चरस

मध्य एशिया मे जिस चरस का आयात होता है, उसमे प्राय पत्तो, छोटी छोटी डालियो और धूल का मिश्रण रहता है। कारण वहा पर प्राय क्षुपो के शुष्क हो जाने पर उनमे से चरस निकाला जाता है। किंतु हिमालय के दक्षिण की ओर के प्रान्तो मे इसके क्षुप जब गीले एव ताजे रहते है तब ही उनमे से चरस प्राप्त किया जाता है। अत यह निखालस व उत्तम होता है।

रासायनिक संगठन—

चरस मे टर्पिन १५%, सिस्क्विटर्पिन २०%, टसिक्रेड आइल ३३% और पैराफिन ०७५% पाया जाता है। चरस को लेटिन मे केनाबिनन (Cannabinin) कहते है।

गुण, धर्म व प्रयोग —

चौथे दर्जे मे शीत व रूक्ष है। मदकारी, शुक्र स्तभ, मूर्च्छा तथा दौर्वल्यकारक है। हृल्लास, विबन्ध, ज्वर, मासिक धर्म विकृति, आमातिसार, आक्षेप, शिर शूलादि मे यह प्रयुक्त होता है। इसके गुण धर्म प्राय गाजे के जैसे होते हैं।

इसका सेवन प्राय. गाजे के समान ही तमाखू मिलाकर चिलम मे रख कर धूम्रपान के रूप मे किया जाता है और कई स्थानो मे इसे वैसे ही अफीम के समान खाया जाता है, उत्तर भारतवर्ष तथा राजस्थान मे इसका विशेष सेवन किया जाता है।

तमाखू के साथ इसका धूम्रपान उन्माद एव अपतत्रक आदि मे शामक औषधि के रूप मे किया जाता है।

चरस की शुद्धि—इसे जल से घोल कर स्वच्छ वस्त्र मे छानकर छायाशुष्क कर लेने से शुद्धि हो जाती है।

अफीम के स्थान मे, जहा अफीम का देना उपयुक्त न हो, वहा चरस की योजना विशेष लाभकारी है।

(१) स्तम्भनार्थ—उत्तम शुद्ध चरस ३ माशा, चादी के वर्क १ माशा तथा बीजरहित मुनक्का ६ मा एकत्र घोटकर मसूर जैसी गोलिया बना लेवे। शीघ्रपतन की रुकावट के लिये [स्तभनार्थ] सभोग से २ घण्टा पूर्व १ गोली दूध से लेते है।

(२) आमवातिक ज्वर, आमातिसार, मासिक धर्म

की विकृति तथा आक्षेपादि मानस रोगो पर—

आमवातिक ज्वर—इसमे हृदय क्रिया दूषित होती है। वेदना का स्थान बदलता रहता है, सन्धि स्थानो मे मे पीडा होती है। मूत्र लाल हो जाता है और ज्वर अधिक आता है। इस पर चरस का उपयोग अति हितावह है। इसका धूम्रपान कराना चाहिये अथवा चरस की मात्रा आधी रत्ती, दिन मे ३ बार अन्य ज्वघ्न औषधियो के साथ देते रहना चाहिये।

मासिक धर्म की विकृति पर—यदि जीर्ण बीजाशय प्रदाह [Quaritis] के कारण मासिक धर्म स्राव मे विकृति हुई हो तो चरस १ भाग, अफीम १ भाग और कपूर २ भाग एकत्र मिला ग्वरपाठे के रस मे या जल मे खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना लेवें। प्रात साय १-१ गोली २-४ मास तक देते रहने से बीजाशय प्रदाह एव मासिक धर्म विकृति दूर हो जाती है।
—गा औ र।

आमातिसार पर—चरस और खसखस दोनो सम भाग एकत्र खरल कर शहद मिला गोलिया बना लें। मात्रा आधी रत्ती से १ रत्ती तक शहद के साथ देवे।

आक्षेप, अपस्मार, उन्माद आदि मानसिक विकारो पर—चरस और हीग (भुनी हुई) समभाग खरल कर शहद के साथ घोटकर गोलिया १-१ रत्ती बना ले। इसे जटामासी के फाण्ट के साथ ३-३ घण्टे से देवे।
—सकलित

भाग के बीज—सकोचक, उत्तम पौष्टिक, उष्ण वीर्य, आध्मान एव वात नाशक, वमन शामक तथा शोथ शूल नाशक व कामोद्दीपक है।

प्रलाप पर—बीजो को जल मे पीसकर ५ रत्ती तक की गोलिया बना कर शहद मे देते है। ३-३ घण्टे के अन्तर से।

पुत्रोत्पत्ति के लिये—गर्भ के दूसरे मास मे ही भाग के बीज १ माशा प्रात ताजे जल से सेवन करावे। इस प्रकार निरतर १ मास तक देते रहने से अवश्य ही पुत्र होगा, पुत्री नही। —एकौषधि गुण विधान से।

बीजो का तेल—बीजो को कोल्हू मे पेरकर जो स्थिर तेल २० से ३०% प्राप्त होता है, वह ताजी अवस्था मे पीताभ हरित वर्ण का गध व रुचि मे प्रिय होता है, किंतु पुराना हो जाने पर रक्ताभ पीतवर्ण का एव गन्ध व रुचि मे अप्रिय हो जाता है। यह स्थिर तेल गुण धर्म मे अधिकाश मे अलसी के तेल जैसा ही होता है। इसके अभाव मे अलसी तेल लिया जा सकता है। बीजो के चूर्ण को वाष्पीकरण विधि या [पाताल यन्त्र से] जो तेल निकाला जाता है वह उडनशील होता है।

तेल मे केनाबेन Cannabene, केनाबिनन Cannabinin, केनाबिन हाइड्राइट cannabene Hypride, टेटानो केनाबिनिन Tatano cannabene, केनाबिनाल cannabinol आदि महत्वपूर्ण तत्व पाये जाते है।

बीजो का तेल निकाल लेने के बाद जो खली रहती है वह पशुओ के लिये उत्तम पुष्टिजनक खाद्य है। इससे पशुओ मे दुग्ध की भी विशेष वृद्धि होती है।

गठिया आदि वातज वेदना मे मालिश करने मे लाभ होता है। कान के दर्द पर तेल की कुछ बूदे डालने से शीघ्र लाभ होता है।

नोट—आयुर्वेद के सिद्ध योग रसचन्द्रिका वटी (आगे विशिष्ट योगो मे देखिये) मे तथा लक्ष्मीविलास रस के एक योग मे [भै र देखे] भाग के बीज डाले जाते है।

मात्रा आदि—भाग २-४ रत्ती यह साधारण मात्रा है। इससे अधिक मात्रा विषादजनक होती है। किंतु भाग के व्यसनी बडी से बडी मात्रा का गोला खा लेने पर भी उन्हे कुछ विकार नही होता यह उन्हे सात्म्य हो जाती है। जो कभी भाग का सेवन नही करते उनके लिये इसकी घातक मात्रा ६ माशा से १ तोला तक है।

गाजा आधी से १ रत्ती तक। कई व्यक्तियो को इस की अधिक मात्रा सहन नही होती, अत प्रारम्भ मे मात्रा कम देनी चाहिये।

चरस $\frac{1}{2}$ से १ रत्ती तक तथा भाग का सत्व (Ext cannabis Indica) $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती तक है। इन दोनो की अधिक से अधिक २$\frac{1}{2}$ से ३$\frac{1}{2}$ रत्ती की मात्रा घातक

होती है ।

भाग का आसव (टिक्चर) साधारण मात्रा ५ से १५ बूद तक है । अतिमात्रा ४ से ८ माशा घातक है।

उक्त भाग, गाजा आदि का विषाक्त प्रभाव यदि शीघ्र कम न किया जाय तो १२ से ४८ घण्टो मे मादक हो सकता है ।

भाग के मूल का चूर्ण १० रत्ती तक की मात्रा मे देवे ।

इनका हानिकारक प्रभाव विशेषत. दृष्टि और मस्तिष्क पर होता हैं । उन्माद मे सिर दर्द आदि विकार होते है। हनिनिवारक-वमन कराना, अरहल की दाल का धोवन, दूध, दही, घृत, तथा नारगी, अनार, अमरूद आदि फलो का रस है ।

ध्यान रहे इसके निरन्तर अभ्यास से जो व्यसन हो जाता है उसके कारण अग्निमाद्य, अनिद्रा, कृशता, कामावसाद स्मृतिह्रास, कम्प, उन्माद आदि जीर्ण विष के लक्षण उत्पन्न होते है ।

विषाक्त प्रभाव—भाग के अधिक मात्रा मे लेने से आधा घण्टे बाद तथा गाजा व चरस के अधिक मात्रा मे लेने से शीघ्र ही विष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इसमे जो लक्षण होते है उन्हे दो अवस्थाओ मे विभक्त किया जाता है—प्रथम या उत्तेजनावस्था मे आखे लाल होना, चेहरा फूल जाना, पैर लडखड़ाना, शिरशूली, भय, हास्य, असम्बद्ध बचन या प्रलाप, भुनभुनी, त्वचा मे शून्यता, पेशीदौर्बल्य तथा तन्द्रा कभी कभी उग्र होने पर हत्या करने का प्रयत्न करना आदि ।

द्वितीय (निद्रावस्था) मे—तन्द्रा के बाद मद का गभीर आक्रमण होने से गभीर निद्रा मे ग्रस्त होना, सपूर्ण शरीर मे या उसके किसी भाग मे गुरुता एव सज्ञाहीनता होना, बहुत देर बाद जागृत होने पर कुछ स्वस्थ होता है मृत्यु बहुत कम प्राय: श्वासावरोध या हृदयातिपात (हार्ट फेल) से होती है ।

उपचार—तुरन्त ही कय (वमन) करावे । एक डाक्टरी रिपोर्ट से ज्ञात हुआ है कि झिंक सल्फेट (Zinc sulphate) देने से शीघ्र ही वमन होती है, या अन्य वमनोपचार करे । मुख द्वारा आमाशय प्रक्षालन कर वमन करावे । वमन के हो जाने से नाडी की गति घट जाती है, यहा तक कि १०० तक आ जाती है । तब हृदय को बल देने वाली उत्तेजक औषधि देवे । ४–५ प्रहर की बेहोशी के बाद होश आ जाता है तथा उसे दुर्बलता का बोध होता है । होश में आने पर भी कभी कभी अकारण हसता एव असङ्गत बाते करता है । ऐसी दशा मे विरेचक पदार्थ देकर दस्त करा देना चाहिये । विरेचन के लिये भी मुख द्वारा औषधि न दी जा सके, तो बस्ति क्रिया करनी चाहिए ।

गाजे व चरस के विषाक्त प्रभाव की दशा मे तो स्टमक पम्प का उपयोग ही उचित रहता है । नीबू का शर्बत देना लाभदायक होता है। मुख और मस्तिष्क पर शीतल जल छिडकना चाहिये । इससे गरमी व खुश्की दूर होती है । सामान्यत विशेष चिकित्सा की आवश्यकता नही रहती । तथापि कभी–कभी कुचिलासत्व (स्ट्रिकनिया) या अन्य उत्तेजक औषधि देनी पडती है । गर्दन के पीछे छाला उठाकर विषाक्त प्रभाव कम किया जा सकता है दूध पिलाना और सोने देना उचित है । डाक्टर लोग निद्रा के लिये पोटाशिय ब्रोमाइड देते है । किन्तु यह कार्य स्वर्णमाक्षिक भस्म और जटामासी से भी हो सकता है । —अ तत्र

ध्यान रहे भाग के प्रबल विष का प्रभाव दूर होने पर भी, रोगी की आखे कुछ दिनो तक लाल-लाल और चपल रहती है, प्रलाप करता है, साधारण बातो मे भी उत्तेजित हो जाता है, क्षुधा मन्द हो जाती तथा शरीर निर्बल हो जाता है । इन लक्षणो को दूर करने के लिये दही और मक्खन मिश्री का सेवन कराना चाहिये । अन्यथा निर्बलता व अग्निमाद्य दीर्घकाल तक रह जाते है । —गा. औ र

नशा उतारने के लिये—भाग का नशा उतारने के लिये दही अथवा मट्ठा और भात खिलावे । पथ्य मे मट्ठा और भात खिलावे । जायफल खिलाने से भी अथवा अरहर की दाल १० तोला पीसकर ½ सेर जल मे घोल छान

कर यथावश्यक पिलावे । गाय के दही मे सोठ का चूर्ण मिलाकर देवे । सोठ चूर्ण १ तोला, दही २० तो मिला कर देते है । यह मात्रा युवा व प्रौढ की है । बालक के लिये मात्रा कम कर देवें । अथवा अदरख का रस १ तो को २० तो गोदुग्ध मे मिलाकर पिलावे, यह मात्रा भी युवा व प्रौढ की है । ध्यान रहे अदरख के रस का प्रयोग एक ही बार करे । शेष प्रयोग स्वास्थ्य लाभ होने तक बराबर कर सकते है ।

—धन्वन्तरि के विष चिकित्सांक से ।

हमारा अनुभव है कि कच्चा भाटा (बगन) पीस कर उसका रस निचोड कर पिलाने से, या अमरूद की पत्ती पीसकर पिलाने से, भरपेट अमरूद खिलाने से या आम की आमकली या आमका मधान चूसने से भी नशा जाता रहता है । अथवा अदरख, सेंधानमक और नीबू निचोडकर चटनी बनाकर चटावे, या २–३ दाने कालीमिर्च व ½ तोला श्यामातुलसी की पत्ती पीसकर जल मे घोलकर पिलावे, या २–३ दाने कालीमिर्च और ½ तो जामुन की कोमल पत्तिया पीस छानकर पिलावे । मक्खन मिश्री खाने को देवें, अथवा—करेमुआ (कलमी शाक, नाडी शाक) शाक की १०–१२ पत्तिया जल मे पीस छान कर पिलावे । या छ माशा पोस्त के दाने (खसखस), जल मे घोलकर पिलावे । दोनो मे कडुवा तेल डाले ।

—अ तत्र ।

हमारा खास अनुभव है कि कभी–कभी नीबू, इमली सतरे आदि के रसो से या तक्र, दही आदि से भी लाभ नही होता (मधुर रस से तथा घृत आदि स्निग्ध पदार्थो से तो और भी नशा बढ जाता है) ऐसी दशा मे केवल कागजी नीबू, मौसम्मी या सन्तरे के १–२ बीजो को जल मे पीस छानकर पिलाने से या इस पीसे हुये कल्क को शहद के साथ चटाने से भाग, गाजा, चरस, अफीम आदि का नशा तुरन्त ही उतर जाता है । —सम्पादक ।

यदि नशे के साथ ही मे समस्त अङ्गो मे पीडा हो, वात प्रकोप हुआ हो, तो सोठ व अदरख को पीसकर पिलाने से उपद्रवो का उपशम हो जाता है । कभी कभी नशे के कारण जिह्वा पीली, श्वास प्रश्वास मे कठिनता, अत्यधिक प्रलाप, खुजली आदि उपद्रव भी हो जाते है । ऐसे समय मे सोया के क्वाथ मे नमक व जैतून का तेल मिला, उसमे दालचीनी, कालीमिर्च, सोठ या अदरख का चूर्ण मिलाकर पिलावे, तत्काल नशा उतर जावेगा ।

विशिष्ट योग—

(१) विजया चूर्ण—(भाग सेवियो के लिये उत्तम योग) शुद्ध भाग २० तोला को शुद्ध धोकर घृत मे भूनकर उसके साथ बादाम गिरी १० तोला, चिरौंजी ५ तोला और कालीमिर्च १ तोला इन सबके चूर्ण को शक्कर ४० तोला मे मिलाकर रखे । मात्रा २ माशा तक । प्रात साय ताजे जल के साथ सेवन से वृद्धावस्था मे होने वाली कमजोरी, क्षुधामान्द्य आदि समस्त रोग दूर होते है । स्मरण शक्ति तथा शुक्र स्तभन शक्ति बढकर नपुसकता दूर होती है । —धन्वन्तरि विष चिकित्सांक ।

आगे प्रयोग न० ८ व ९ मे चूर्ण प्रयोग देखिये ।

(२) विजया ठडाई—भाग शुद्ध, खसखस, बादाम गिरी, सौफ, कालीमिर्च, ककडी व तरबूज के बीज, इलायची व गुलाबकली ३-३ माशा इनको जल के साथ सिल पर खूब महीन पीस कर दूध और जल प्रत्येक ½ सेर और शक्कर बहुत थोडी रुचि के योग्य दिलाकर खूब नीचे ऊपर कई बार फेंट कर इस ठडाई के पीने से नशा किंचित आनन्ददायक आता है । पीने वाला बराबर होश मे रहता है अध्ययन, लेखन, पठन, मनन आदि बौद्धिक क्रियायें बडे उत्साह से करता है । जो कभी भाग का किंचित भी सेवन नही करते उनको यह पेय केवल ५ तोला ही देना ठीक होता है । अन्य लोग इसे २०-२५ तोला तक ले सकते हैं । किंतु ध्यान रहे, इसे नित्य बार-बार नही पीवे, अन्यथा इसका व्यसन भविष्य मे दुष्परिणामकारक ही होता है ।

(३) विजयावटी—विजयासार (भाग को १६ गुने जल मे पका, चतुर्थांश शेष रहने पर छानकर, पुन. पका कर घनसत्व करले), एलुवा (मुसब्बर), लाल कमल की जड, अपामार्ग जड समभाग एकत्र जल के साथ खूब महीन पीसकर २-२ रत्ती की गोलिया बना लेवे । यह वटी दारुण कटि व्यथा, जरायुशूल, बाझपन, विषम एव

कष्ट रज स्राव को नष्ट करती है। —भै र ।

वटी नं २—भाग धोयी हुई १६ तोला, सफेद मिर्च ४ तोला, अभ्रकभस्म, छोटी इलायची बीज, जायफल २-२ तोला तथा लोह भस्म और सिन्दूर १-१ तोला लेकर, प्रथम भाग को खूब महीन पीसकर उसमे शेष द्रव्यो का चूर्ण मिला खूब मर्दन करें। फिर ६ तोला भाग के अष्ट भाग क्वाथ मे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया वना लें। मात्रा—१-१ गोली, दिन मे २ या ३ बार जल के साथ लेवें। यह रसायन, दीपन, पाचन, ग्राही, मादक व वृष्य है। यह विदेश के जलवायु लगने, वर्षा ऋतु मे जल विकार होने, वातविकार, कफरोग, मन्द ज्वर का वना रहना, अपचन जन्य अतिसार आदि को नष्ट करता है। हिस्टीरिया, आमातिसार या ग्रहणी रोग वालो को शक्ति वढाने के लिए बहुत लाभदायक है। जिनकी ग्रहणी (Duodenum) निर्बल हो, उनको यह वटी कम मात्रा मे दीर्घकाल तक सेवन करनी चाहिये। —र तन्त्रसार

वटी न ३—उक्त प्रयोग न ३ मे लिखा हुआ विजयासार और अभ्रकभस्म १ १ तोला, सफेद मिर्च, इलायची छोटी बीज व वशलोचन २-२ तोला इनको थोडे जल मे खरल कर १-१ रत्ती की गोलिया बना लेवे। १-१ गोली दिन मे ३ बार जल के साथ जीर्ण रोगो मे तीक्ष्ण प्रकोपावस्था मे आवश्यकतानुसार २-२ घटे पर देवें। इससे उन्माद, वाताक्षेप, प्रलाप, रज.शूल, राजयक्ष्मा की कास, अग्निमाद्य, अरुचि, अतिसार, ग्रहणी, वृक्कशूल और स्वप्नदोष दूर होते है। दीपन, पाचन एव ग्राही गुण के लिए यह अतिसार, ग्रहणी एवं प्रवाहिका में अन्य औषधि के साथ दी जाती है। —र तन्त्रसार।

वटी न ४—शुद्ध भाग और मालकागनी ३२-३२ तोला, खुरासानी अजवायन ४८ तोला, अजमोद ३ तो, भुने हुये धतूरे के बीज ६ तोला, जावित्री २ तोला, जायफल व शुद्ध अफीम ३-३ तोला लेकर अफीम थोडी-थोडी मिलाते हुये सबको घोट पीसकर चूर्ण करें। चूर्ण से दो गुना पुराने गुड की दो तार की चाशनी कर उसमे सब चूर्ण तथा ६ माशा पारद भस्म या रससिंदूर मिला कर ३ ३ माशा की गोली (४ रत्ती से ८ रत्ती तक का गोलिया बनाना ठीक रहेगा) बना १-१ गोली प्रतिदिन दूध के साथ लेने तथा दिन रात दूध ही पीकर रहने से नपुसकता नष्ट होती है। धातुदौर्बल्य, हस्तमैथुन कृतदोष एवं वीर्यत्व दूर होकर आयु की वृद्धि होती है।

—अ तत्र।

वटी न ५—रसचन्द्रिकावटी—भाग के बीज, धतूरे बीज, कटेली के बीज, समुद्रफल के बीज, सिधारे के बीज, शुद्ध पारद और शुद्ध गधक समभाग लेकर, प्रथम पारे गधक समभाग की कज्जली बना कर उसमे अन्य द्रव्यो का चूर्ण मिला, सबको अदरक के रस मे घोट कर मटर जैसी गोलिया बना लें। प्रात: जल के साथ सेवन करने तथा पथ्यपूर्वक रहने से समस्त जीर्ण रोग, सन्निपात, आमवात, शिरोरोग, मन्यास्तभ, जलग्रह, ग्रहणी, श्लीपद, अन्त्रवृद्धि, भगदर, कामला, शोथ, पाडु, पीनस अर्शादि रोग नष्ट होते है।

—भा भै र।

(४) विजया योग—भाग के पचाग का चूर्ण ३२ तोला, मिश्री २८ तो दोनो के चूर्ण को शहद १४ तोला तथा घृत ७ तोला मे एकत्र मिला कर रखें। इसे यथोचित मात्रा मे ४ महीने तक दूध के साथ सेवन करने तथा दूध भात का आहार करने से समस्त रोग नष्ट होकर यौवन युक्त दीर्घायु प्राप्त होती है। —व से।

(५) विजयाघृत—भाग की पत्ती २० तोला को सिल पर महीन पीसकर, उसके कल्क को ताजा गोघृत २ सेर तथा गोदुग्ध ८ सेर मे एकत्र मिला मन्द आच पर पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छान लेवे।

यह घृत अत्यन्त वाजीकरण वृष्य एवं शुक्र स्तम्भक है। इसे कूष्माण्डादि कान्तिवर्धक अवलेह और पाकादि मे डालना चाहिये। —भा. भै, र.

(६) मोदक न १—मदनानन्द मोदक—बीजो सहित ३४ तोला भाग को खूब धोकर थोडे घृत मे भून लेवें। जलने न पावे। फिर त्रिफला, त्रिकुट, धनिया कचूर, कूट काकडासिंगी, जायफल, सेंधानमक, मैंथी, नागकेशर, श्वेतजीरा, व तालीसपत्र इन १७ द्रव्यो की २-२ तोला

लेकर कूट पीसकर, छान कर जरा घी मे भून लें और उक्त भाग के चूर्ण मे अच्छी तरह मिलाकर उसमे घृत, मिश्री ६८ तोला और शहद २० तोला डालकर कर खूब मलो। एक दिन हो जाने पर १½ तोला के लड्डू बना ले। काच या चीनी मिट्टी के साफ पात्र मे इलायची, तेजपात व कपूर को अन्दाज मे पीसकर, थोडा सा नीचे बिखेर उस पर लड्डू जमा कर ऊपर से पुन उस चूर्ण को छिटक दे। प्रात. साय या एक ही समय एक मोदक खाकर दूध पीने से वृद्ध भी सबल,युवा जैसा हो जाता है। अपूर्व पुरुषार्थ की वृद्धि होती है। यह मेरा अनुभूत योग है। ये मोदक आमवात, सग्रहणी व वातकफ विकारो मे भी लाभदायक है।

—श्री बाबू हरिदास (चिकित्साचन्द्रोदय से)

नोट—भैषज्य रत्नावली मे जो 'मदन मोदक' का प्रयोग है उसमे उक्त द्रव्यो के अतिरिक्त कायफल, अजमोद, अजवायन और मुलेठी भी ली गई है। गुणधर्म मे कहा गया हे कि इसके सेवन से वातज, कफज रोग, कास, सर्वप्रकार का शूल, वली पलित आदि नष्ट होते है। अग्नि की वृद्धि होती है। यह बहुत अधिक बाजीकरण हे।

न २ मदनप्रकाश पाक या मोदक—भाग (धोकर घृत मे भूनी हुई) तालमखाना, मूसली, विदारीकन्द, सोठ, असगध, बीजबन्द, शतावर, सेमल के फूल, मोचरस, गोखरू तथा उर्द की दाल घृत मे भूनी हुई प्रत्येक का महीन चूर्ण लेकर सबको घृतपक्व उत्तम खोया ½ सेर मे मिला देवे। पश्चात् २ सेर खाड की चाशनी मे मिला पाक जमा दे या मोदक बना लेवे।

६माशा से १ तोला की मात्रा मे इसे नित्य रात्रि के समय दूध के साथ सेवन से बल वीर्य की वृद्धि होती, स्तभन होता तथा प्रमेह का नाश होता है। इसकी मात्रा २ या २½ तोला तक भी ली जा सकती है।

नोट—मदनोदयपाक, बलवर्धक पाक, विजयापाक, महामदनपाक, रतिवल्लभ पाक आदि के प्रयोग हमारे वृहत्पाकसग्रह ग्रन्थ मे देखने योग्य है।

(७) माजून न १—माजून फलकमैर—भाग, अफीम, मीठा बादाम, फिदक, अखरोट, मीठाकद्दू और काहू प्रत्येक की गिरी ६-६ माशा, जायफल जावित्री ४ ४ माशा तथा कस्तूरी, अम्बर ६-६ रत्ती, इन सबसे तिगुना शहद का पाक कर उसमे इनके चूर्ण को मिला यथाविधि माजून बना लेवे।

१ माशा की मात्रा मे प्रात या साय गोदुग्ध के साथ सेवन करने से यह वातसस्थान को उत्तेजित करने तथा रक्त मे शुक्र धातु के घटको की वृद्धि करने के कारण बाजीकर है। इसमें अफीम होने के कारण शुक्र स्तभन का कार्य भी सम्पन्न होता है। यह मैथुनानन्ददायक और बल्य है। प्रमेह मे भी यह लाभकारी है। अम्ल पदार्थों का त्याग करना आवश्यक है।

—यूनानी सिद्ध योग सग्रह, यू चि सा

माजून न० २—भाग के पत्ते २० तोला को ६ सेर ताजे दूध मे औटावे। दो सेर शेषरहने पर छानकर उसका मावा (खोया) बना लें। इसमे १ सेर शहद तथा गुलाब पुष्प, गावजवा, बिल्लीलोटन प्रत्येक ४½ माशा, जायफल, इलायची, केसर, जायपत्री, छोटी इलायची, बसलोचन ९-९ माशा और मस्तगी ७ माशा महीन करके मिलावें। मात्रा ४½ माशा प्रातः साय। यह बाजीकरण एवं स्तंभन के लिये विशेष उपयोगी हे।

माजून न० ३—शुद्ध भाग ६४ तोला, शक्कर सफेद ३२ तोला, गोघृत २४ तोला इन सबको पुष्य नक्षत्र मे एकत्रित कर भाग के चूर्ण को कपडे से छानकर उसमे शेष द्रव्यो को मिला (यथायोग्य शहद मिलाकर) माजून तैयार कर ले। मात्रा १० माशा तक। गुण उपर्युक्त।

—श्री वैद्याचार्य उदयलाल जी महात्मा

माजून न० ४—भाग ५ तोला पीसकर, १ सेर दूध मे पका उसका खोवा कर, उसे घृत मे सेककर शक्कर की चाशनी मे डाल बरफी सी बना लें। कोई-कोई भाग के पत्ते या गाजा को दूध मे उबालते, तथा उसमे घृत, शक्कर, पोस्त के दाने, धतूरा के फूल, कुचिले का चूर्ण मिलाकर माजून बनाते हैं। किंतु इसमे उग्रता और विष की मात्रा मे रहती है। —अ. तंत्र।

न०५—भाग ११½ तोला, जायफल ३ नग, कस्तूरी १½ माशा, अम्बर शहब ३½ माशा, केशर १०½ माशा,

अकरकरा १¾ तोला, मिर्च सफेद, मस्तगी प्रत्येक ३२ तोला, बडी इलायची बीज, बादाम रोगन मधुर प्रत्येक ३¾ तोला यथाविधि त्रिगुण मधु का पाककर औषधि चूर्ण मिला माजून तैयार कर ले।

मात्रा ५ माशा। यह कमर को दृढ करती है पुसक शक्तिवर्धक तथा दीपक पाचक है। इसे यूनानी मे 'माजून मसीह' कहते है। —यू चि सा।

(८) चूर्ण—भाग का चूर्ण २८ तोला तथा जायफल, वायबिडग, चित्रक, तगर, तालीश पत्र, लाल चन्दन, सोठ लौग, कालाजीरा (या कलौजी), शुद्ध कपूर, बडी हरड, आवला, कालीमिर्च, पिप्पली, वशलोचन, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र और नागकेशर १-१ तोला इन सबके महीन चूर्ण के समभाग खाड मिलाकर रक्खे, इसे 'जाती फलादि चूर्ण' कहते है। —भै र

मात्रा १ माशा तक शहद के साथ सेवन से कास, श्वास, क्षय, अरुचि, ग्रहणी, अतिसार, मन्दाग्नि, प्रतिश्याय एव अन्य वातकफ जन्य रोग नाश होते है। कफ या वातकफ जन्य साग्रहणी मे जब कच्चा मल पतला आव से मिला हुआ दिन मे दो-तीन बार प्रात या साय आवे तथा पेट भारी रहता हो, शरीर शिथिल हो, कास, श्वास और प्रतिश्याय हो, भूख न लगे, अरुचि हो, पेट मे शूल हो, आध्मान एव अनिद्रा हो तब इसे देना चाहिये। शार्ङ्गधर के अनुसार, इस चूर्ण मे भाग शेष द्रव्यो के समभाग [या आधा भाग लेना कहा गया है। हमारे मत से आधा भाग ठीक है।] उस अवस्था मे इसकी मात्रा ३ माशा से १ तोला दी जा सकती है। यह क्षय मे भी लाभकर है। पाठानुसार कुछ ग्रन्थो मे भाग के स्थान मे दालचीनी ही १२ तोला मिलाई जाती है।

(९) लाई चूर्ण—शुद्ध पारद, शुद्ध गधक, त्रिकुट, अजवायन, श्वेत व काला जीरा, कालानमक, सेधानमक, हीग (घी मे भुनी हुई), और बिडनमक १–१ भाग तथा भाग घी मे भुनी हुई सबके बराबर लेकर, प्रथम पारे गंधक की कज्जली कर उसमे अन्य द्रव्यो का चूर्ण मिलाकर रखे। १ माशा की मात्रा मे तक्र के अनुपान मे सेवन से सग्रहणी, शूल, आध्मान एव अनेक प्रकार का अतिसार दूर होता है।

नोट—लाई चूर्ण के अन्य प्रयोग ग्रन्थो मे देखिये।

(१०) ज्वालानल रस—सज्जीखार, जवाखार, सुहागा, पारा, गन्धक, पिप्पली, पिपलामूल, चव्य, चित्रक और सोठ १–१ भाग तथा इन सबके बराबर भाग (घी मे भुनी हुई) और भाग से आधी सहजने की छाल लेकर प्रथम पारा गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यो का चूर्ण मिला, ३–३ दिन भाग, सहजना, चित्रक व भागरे के रस की धूप मे भावना देकर उसका एक गोला बना सम्पुट मे बन्दकर लघुपुट मे फूक देवे। स्वाग शीत होने पर उसे निकालकर अदरख के रस की ७ भावना देकर रखे। ½ माशा से १ माशा तक की मात्रा मे, शहद के साथ चाटकर ऊपर से सोठ के चूर्ण को गुड मिला सेवन से अजीर्ण, अतिसार, ग्रहणी, अग्निमाद्य, कफ, हृल्लास [जी मिचलाना] वमन, आलस्य और अरुचि का अतिशीघ्र नाश होता है। —र सा सग्रह।

(११) ज्ञानोदय रस—शुद्ध धोई हुई भाग या गाजा १६ भाग शुद्ध गन्धक ४ भाग, जायफल २ भाग, पारद भस्म या चन्द्रोदय एक भाग तथा कपूर व केशर प्रत्येक ½ भाग सबको एकत्र खरल कर, फिर शहद मिलाकर, खूब खरल कर (शहद लगभग दस भाग) दो-दो रत्ती की गोलिया बना अकरकरे के चूर्ण मे डालते जावे। मात्रा एक दो दिन मे दो बार मिश्री मिले हुए दूध के साथ सेवन करे। यह रस शक्तिवर्धक, क्षुधा वर्धक, आनन्द दायक शान्तिकारक है। मलेरिया से निर्बल बने हुये तथा निर्बल पचन शक्ति एव निर्बल ग्रहणी वालो को यह रसायन शक्तिवर्धक रूप मे दिया जाता है। इससे उत्तम निद्रा आती, चित्तभ्रम दूर होता है। जीर्ण सुजाक के रोगी का मूत्रमार्ग की वेदना शमन करने तथा निर्बलता दूर करने एव वाजीकर शक्ति देने के लिये भी यह अति हितकारक है। स्त्रियो का गर्भाशय शिथिल हो जाने से मासिक धर्म की विकृति हो, या गर्भ धारण न होता हो

तो गर्भाशय को सबल बनाने के लिये इसका उपयोग किया जाता है।

नोट—उक्त प्रयोग रस तन्त्रसार से लिया गया है अन्य ग्रन्थो मे कपूर व केशर नही लिया गया है। तथा शहद के स्थान मे बराबर की खाड मिलाकर चूर्ण रूप मे ही रख लिया जाता है। मात्रा शक्ति के अनुसार दो रत्ती से सात रत्ती तक उचित अनुपान के साथ लेने मे जलदोष, वात कफज विकार तथा ज्वरातिसार नष्ट होते है। वाजीकरण अनुपान के साथ लेने से काम की वृद्धि होती है। इस रस मे चन्द्रोदय के स्थान मे रस सिन्दूर ले सकते हैं। —सम्पादक

(२) त्रैलोक्य समोहन रस–घी मे भुनी हुई शुद्ध भाग की पत्ती १२ तोला, हिंगुल रसायन, रस सिन्दूर, कर्पूर, लौंग चूर्ण, कृष्णाभ्रक भस्म और शंखभस्म १-१ तोला और गोखरू बडे, कौच बीज, काकडासिगी प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोला, लेकर सबको एकत्र खरल मे डाल, भाग के क्वाथ को तथा शतावरी के रस या क्वाथ की ७-७ भावनाये देकर २-२ रत्ती की गोलिया बना ले। इसके सेवन से आनन्द व उत्साह की वृद्धि होती धारणा, स्मरण शक्ति एव शुक्रस्तंभन शक्ति बढ जाती है।

नोट—इसमे हिंगुल रसायन (रसतन्त्रसार प्रथम खड तृतीय विधि) तथा रस सिन्दूर (द्विगुण गन्धक जारित) कौंच बीज दूध मे स्वेदन कर छिलके निकाले हुये लेवें। मात्रा–१ से ४ गोली दिन मे १ या २ बार दूध के साथ लेवे। यह रस दीपन, पाचन, ग्राही एव कफघ्न होने से अर्श, श्वास, कास व क्षय मे भी हितावह है। पित्तप्रधान प्रकृति वालो को यह नही देना चाहिये।

—र तन्त्रसार भाग ३ से साभार।

(३) विजयासव न.१ धनुस्तभादिनाशक–भाग के हरे ताजे पत्ते खूब कूटे हुए १ भाग तथा रेक्टिफाइड स्प्रिट (या सजीवनी सुरा) ५ भाग एकत्र मिला, बोतल मे भर दृढ काग लगाकर रखें। ७ या १५ दिन बाद फलालैन या बन्नात के कपडे मे छानकर उपयोग मे लावें। मात्रा २ से २० बूद तक। धनुस्तंभ के दौरे के बाद कुछ दिन तक इसके सेवन से रोग दूर हो जाता है। हैजे मे इसे कर्पूरासव के साथ देना चाहिये। अतिसार मे कुटजादि क्वाथ के साथ देवें। ठडाई मे इसकी कुछ बूदें मिलाकर सेवन कर सकते है। जिस अतिसारी को रात्रि मे वेग होता हो या अधिक मात्रा मे बार-बार दस्त आ रहे हो उसे इसकी कुछ बू दे अहिफेनासव के साथ देने मे लाभ होता है।

न० २—(अजीर्णादि नाशक) भाग का घनसत्व १ भाग और मद्य (७० से ९० प्रतिशत वाली) २० भाग एकत्र कर बोतल मे या चीनी मिट्टी के पात्र मे भर, मुख अच्छी तरह बन्द कर एक दिन सुरक्षित रखें। बीच-बीच मे हिलाते रहना चाहिए। फिर छानकर रख लें।

मात्रा—५ से १५ बूद तक। अग्निमाद्य, अजीर्ण, अरुचि, ग्रहणी आदि उदर रोगो पर लाभप्रद है। इसके सेवन से कभी-कभी क्षुधा की अत्यधिक वृद्धि हो जाती है। और लगातार एव अधिक मात्रा मे सेवन से मन्दाग्नि हो जाती है। वेदना, अनिद्रा, भ्रम धनुर्वात, उन्माद, अपस्मार एव हिस्टीरिया आदि पर भी यह विशेष लाभदायक है। शिर शूल और बच्चो के आक्षेपको मे इसे देने से तत्काल लाभ होता है। यह कामोत्तेजक भी है, किन्तु अधिक सेवन से नपुंसकत्व पैदा हो जाता है।

नोट–जिन मद्यासवो मे औषधि के घनसत्व ही पडते हैं, वे केवल एक ही दिन मे तैयार हो जाते है।

——बृहदासवारिष्ट सग्रह।

एलोपैथिक प्रयोग——

एलोपैथी मे भाग का बहुत कम तथा गाजे का अधिक उपयोग किया गया है।

(१) एक्ट्रेक्ट केनेबिस इडीसी—यह नो. भाग का एक प्रयोग है जिसकी मात्रा ½ ग्रेन से १ ग्रेन तक है। इसी का दूसरे गाजे का एक्स्ट्रेक्ट आफ इण्डियन हेम्प (गाजे का सत्वसार) है। गाजा या भाग का मोटा चूर्ण तैयार कर अलकोहल (९०%) मे डाल, पार्कोलेशन द्वारा मिलाते है। घुल जाने पर छानकर विविध प्रयोग तैयार किये जाते हैं। अजीर्णजन्य उदर व्याधि, सामान्य उदर विकार तथा क्षुधामाद्य पर यह कैनेप्रिस इण्डिसी १० ३० बू द तक तथा बिस्मथ सबनाइट १० ग्रेन, स्प्रिट

क्लोरोफार्म २० बूद म्युमिल एकेसिमी १/२ ड्राम् और एकोसिनेमोमाई १ औस एकत्र कर एक मात्रा तैयार करते है। साधारणत १ भाग इस मिश्रण मे १९ भाग अल्कोहल मिला साधारण तरल तैयार करते है।

(२) इसका दूसरा मिश्रण–टिंकचूरा केनिविम इण्डिसी हे। इसकी, २२ बूदो मे १ ग्रेन ऊपर का सा एक्स्ट्रेक्ट होता हे। इस टिंक्चर को क्लोरोफार्म एटमार्फिन मे मिलाते है।

गाजे का भी इसी प्रकार टिंक्चर तैयार करते है, जिसे 'टिंक्चर आफ इण्डियन हेम्प' कहते हैं। १ औस गाजे के सार या गाजे के अरिष्ट को १८ औस अल्कोहल (जिसमे ९०% मद्यमार हो) मे मिला व छानकर काम मे लाते है। इसमे यथावश्यक अल्कोहल मिला २ पाइण्ट तक टिंक्चर तैयार कर लेते हैं। इसकी मात्रा ५ से १५ बून्द तक होती है।

आमातिसार पर–टिंक्चर कैनेविस इण्डीसी १० बूद, लाइकर मर्की ५ से १० बूद ओर शुद्ध जल १ औस मिला कर रोग की उग्रता के अनुसार १–१ घटे से देते है।

(३) कैनेवाइली (या कैनेविन) टन्नास (पल्व्हेरिस) यह पीताभ भूरे रङ्ग का चूर्ण है। यह पानी या ईथर मे नही घुलता, सुरावीर्य मे साधारणत घुलता हे। क्षार युक्त जल मे घुल जाता है। मासिक धर्म कठिनाई से होता हो, या अधिक होता हो, तो इसका प्रयोग किया जाता है। यह निद्राकारक है, किन्तु मादक नही है। उन्माद रोग मे निद्रा के लिये यह दिया जाता है। मात्रा २ ग्रेन से १० ग्रेन तक है।

(४) कैनेविनन–यह शुद्ध चरस का बनता है। इसका रङ्ग लाल और कोमल गुड की राव जैसा होता है। यह अवसादक है। पागलपान, मैनिया, हिस्टीरिया तथा अनिद्रा रोग मे व्यवहृत होता है। मात्रा १/४ ग्रेन से १ ग्रेन तक।

(५) अतिसार तथा ग्रहणी पर—एक्स्ट्रेक्ट कैनेविस १/२ ग्रेन, एक्स्ट्रेक्ट ओपिआई सिक्कम १/४ ग्रेन और आयल सिनामम १/२ बूद या १/४ रत्ती, सबको मिला एक गोली बनावे। यह १ मात्रा है, ऐसी ही ८ मात्राये बनाकर ४-४ घटे पर देने से लाभ होता है।

(६) मूत्राशय सकोच, आमाशयक व्रण जन्य शूल, आन्त्रशूल, वृक्कशूल, परिणाम शूल पर–एक्स्ट्रेक्ट केनाविस १/४ ग्रेन एक्स्ट्रेक्ट हायोसिमामाई सिक्कम १/२ ग्रेन, दोनो मिलाकर १ गोली बना ले। ऐसी गोलिया ४-४ घटे पर १–१ देने से लाभ होता है।

(७) कष्टार्त्तव पर—एक्सट्रैक्ट केनाविम १/२ ग्रेन, पल्व रोपियाई १/२ ग्रेन, कैम्फर २ ग्रेन तथा ग्लिसरीन ट्रैगाकेन्थ यथावश्यक मिलाकर गोली बनावे। यह १ मात्रा हे ऐसी ही ४ मात्रा प्रतिदिन मासिक धर्म के शुरू होते ही देने से मासिकधर्म के समय जो कष्ट होता है। वह दूर हो जाता है।

(८) मासिक धर्म के समय अधिक रक्तस्राव या रक्तप्रदर के लिए भी उक्त प्रयोग न ७ लाभकारी है। अथवा–

एक्सट्रैक्ट केनाविस १/२ ग्रेन, हाईड्रैस्टिन हाइड्रोक्लोर ३/४ ग्रेन और कैम्फर ३/४ ग्रेन, इसमे उक्त ग्लिसरीन यथावश्यक मिला गोली बनावे। ऐसी गोलिया ४-४ घण्टे से देवे।

—सकलित।

भांगरा (श्वेत) (Eclipta Alba)

गुडूच्यादिवर्ग एव भृगराज कुल* (Compositae) के इस वर्षायु खडे या जमीन पर फैले हुए २½ फुट तक ऊचे क्षुप के काण्ड व शाखाये श्वेत रोमाच्छादित, शाखाये हरी, काली या बैंगनी चमकीली, शाखा की पर्व सन्धि

*इस कुल के क्षुप के पत्र–एकातर, क्वचित् अभिमुख, उपपत्ररहित, पुष्प रचना–स्तान्याकार, कंदुकाकार, कही-कही प्यालाकार, पुष्पाभ्यन्तर कोष–दल ४–५ पुंकेसर ५ या ४, स्त्री के बीज कोष, फल–शुष्क, अविदारी; बीज–लम्बे, पतली त्वचा वाले होते है।

सफेद भांगरा
ECLIPTA ALBA HASSK.

पर मूल की रचनायुक्त, पत्र–वृन्तरहित, टहनियो पर प्राय अभिमुख, समवर्त्ती, लम्बे गोल किंचित कगूरेकार, लगभग अखण्ड, नोकदार, प्राय दोनों ओर सूक्ष्म श्वेत रोमो से युक्त होने से कर्कश या खरदरे, ऊपर की ओर का रङ्ग गहरा हरित वर्ण का नीचे की ओर का किंचित फीका सा, १ से २½ या ४ इञ्च तक लम्बे, ½ से ¾ तक चौडे होते है। पत्रो को मसलने से कृष्णाभ हरे रङ्ग का रस निकलता है, जो शीघ्र ही काला पड जाता है। स्वाद मे कुछ चरपरा, कडुवा सा होता है। गध अच्छी आती है। कहीं-कहीं ग्रामीण लोग इसकी साग बनाते है। तथा कोकण प्रात मे पत्तो का रायता विशेषत पितृपक्ष या श्राद्ध के दिनो मे बनाते है। इसके पत्र या क्षुप पितृकार्य (श्राद्धादि कर्मो) मे लिये जाते है। इसी से सस्कृत मे इसे 'पितृ-प्रिय' कहा गया है,

पुष्प—पत्र कोण से निकली हुई ½ १½ इञ्च लम्बी, कडे श्वेत रोमो से आच्छादित, नीचे की ओर पतली, ऊपर की ओर कुछ मोटी शलाका के अग्रभाग मे १ से ४ तक चक्राकार पुष्प निकलते है। जो व्यास मे ½ से ¾ इञ्च तक होते है। तथा अग्र भाग पर एक गोलाकार परदा सा होता है। और कोर पर बाहर की ओर ६ १० सफेद रेखायुक्त श्वेत सूक्ष्म केश जैसे अनीदार पुष्प पत्र (पखुरिया) होती है। इन पुष्प पत्रो के भीतरी पर पर चक्र के किनारे किनारे कुछ लम्बी पखुरियों वाले पुष्प होते है। ये प्राय स्त्री पुष्प होते हैं तथा इन पखुडियो बाजू से ही कुछ मध्य भाग मे उभरा हुआ सा स्त्रीकेशर प्रमुख दो भागो मे विभक्त सा दिखाई देता है। इन पखुडियो के मुख पर ४ या ५ कगूरे से होते है जिनके भीतर पुकेशर का पराग कोष पीले रङ्ग का होता है, तथा स्त्री तल भाग मे सूक्ष्म बीज युक्त स्त्री केशर गर्भाशय होता है। उक्त पखुडियो के झड जाने पर बीजो की घुण्डियां रह जाती है। ये घुडिया गोल, किंचित चिपटी होती है जिनमे सुगठित नन्हे-नन्हे बीज रहते है।

बीज—नीचे की ओर सकरे, ऊपरी भाग मे कुछ चपटे, किंचित काले वर्ण के, प्राय पीत वर्ण भांगरे के बीज जैसे ही होते है। गध मे कुछ उग्र, स्वाद चरपरा सा होता है। यह स्वाद तथा बीजो का वर्ण आदि उन श्वेत भांगरा मे देखा गया है। जो उत्तम सजल स्थानो मे उपजते है। अन्य स्थानो के बीजो मे प्राय कुछ भी स्वाद नही होता। वे प्राय हरिताभ कुछ श्वेत वर्ण के होते है।

शरद ऋतु मे पुष्प व फल आते है। विशेषत अगस्त, सितम्बर मे पुष्प व अक्टूबर मे फरवरी तक फल।

मूल—२ से ६ इञ्च लम्बी, मोटी सुतली जैसी झीनी-झीनी रेखाओ से युक्त, तथा असख्य नन्ही उपमूल युक्त होती है। छाल ऊपर से भूरी, कुछ लालिमायुक्त भीतर से श्वेत, गध मे पीसी हुई राई जैसी उग्र, स्वाद कुछ कसैली, चरपरी सी होती है।

रेतीले स्थानो की अपेक्षा नदी या नहर के किनारे के इसके क्षुप विशेष मुलायम और अधिक बढे हुए होते है।

इसके क्षुप विशेषत भारत के उत्तर प्रदेशो मे गगा जमुना के कछारो मे, हिमालय के तराई प्रदेशो मे तथा दक्षिण के मध्य प्रदेशो, कोकण वम्बई आदि प्रान्तो मे एव वगाल व आसाम मे विशेष पाये जाते है। वैसे तो न्यूनाधिक प्रमाण मे जलाशय के समीपवर्त्ती स्थानो मे तथा इतस्तत भी पाये जाते है। वे क्षुप वर्षाकालमे प्राय सर्वत्र तथा सजल प्रदेशो मे सब समय पाये जाते है। इनमे पुष्प भी सदा देखने मे आते हे। किंतु वर्षा काल या शरद ऋतु की अपेक्षा अन्य ऋतुओ मे कम आते हे।

नोट न० १--श्वेत, पीत[पीला]और कृष्ण[काला या नीला] भेद से इसकी ३ जातिया होती है। प्रस्तुत प्रसग मे श्वेत का वर्णन दिया जा रहा हे। यह प्राय सर्वत्र अधिक पाया जाता है। इसकी अपेक्षा पीला भागरा कम प्रमाण मे, तथा काला या नीला तो अत्यल्प प्रमाण मे क्वचित् कही देखा सुना जाता हे। * पीले और काले का सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

पीला भांगरा–

Wedelia calendulacea इसके बहुवर्षायु, अधिक फैलने वाले, सूक्ष्म लोमयुक्त, १ से ३ फुट तक ऊचे या जमीन पर फैलने वाले क्षुप के काण्ड या शाखाये जमीन पर फैलने पर निम्न पर्वसन्धियो से जडे वनती जाती है। काण्ड इसके मुख्य मूल के जैसा ही जाडे, किंतु अन्दर से कुछ पोले होते हे। शाखाये प्राय अभिमुख ६ से १८ इच तक लम्वी, जड की ओर भूमि पर फैली हुई और २ या ४ पर्वसन्धियो से शोरिया निकलकर भूमि मे घुसी हुई रहती है। किन्तु इनका अग्रभाग ऊपर की ओर खडा हुआ रहता हे। काण्ड व शाखाये न्यूनाधिक रोमश, कुछ फीकी पीली, हरी या जामुनी रग की होती है।

पत्र—विषमवर्ती, काण्ड व शाखाओ के मध्य भाग से निकले हुये दोनो ओर कुछ चमकीले, ऊपरी भाग कुछ पीताभ हरितवर्ण का, नीचे का भाग कुछ फीका सा होता है। पत्र पर ४ से ५ तक खडी नसे [शिराये] होती हे। जो ऊपर की ओर के भाग मे अन्दर को धँसी हुई, तथा नीचे की ओर के भाग मे उभरी हुई होती है। पत्र के दोनो सिरे सकरे, एव कोर पर कगूरे से होते हे। कई पत्तो के कगूरे श्वेत वर्ण के होते हे। ये पत्र १ से १½ या ३ इच तक लम्बे, अनियमित चौडे, अण्डाकार, जाडे, खुरदरे होते हे। मसलने पर वे स्वाभाविक ही चिकने एव मुलायम मालूम देते है। गध गाजर जैसी तथा स्वाद मे कुछ कडवापन होता है।

पुष्प—पत्र कोण से पुष्प युक्त घुडियो वाली सलाका निकलती है। ये घुडिया चपटी सी, गोल एव पीले फूलो से युक्त होती हे। पुष्प की पखुडियो के बीज (Achenes) चिपकीले, चमकीले होते हे। बीज सूक्ष्म काले रग के होते है।

श्वेत भागरे की अपेक्षा इसके पत्र अधिक खुरदरे तथा चौडे होते है। पुष्प दण्ड भी अधिक लम्बा होता

---

* आधुनिक अन्वेषको की मान्यता है, कि श्वेत भागरा ही फूलो के झड़ जाने पर काला भागरा कहाता है, कारण उसका फलकोष (Achenes) काला ही होता है। अत जब श्वेत भागरा के फूलो की श्वेत पखुड़िया झड़ जाती है। और बीज की काली घुडी शेष रह जाती है तब उसे ही काला भागरा कहते है–The black Bhangra is a variety of the white one, when it flowers it is called white, when in fruit it is called Kala Bhangra।

I M medica by Khory

किन्तु उक्त मान्यता को हम भ्रमात्मक मानते है। बिल्कुल काले वर्ण का (कृष्ण वर्ण के पत्र, पुष्प, शाखादि युक्त) भागरा हमारे विश्वसनीय आप्त आचार्यो ने केवल देखा ही नही, प्रत्युत उसका सफल प्रयोग भी किया हे, और करते हे। तव हम कैसे मान लें कि वह श्वेत भागरे की ही एक अवस्था विशेष हे। भिन्न नहीं है। हा यह बात निर्विवाद है कि कतिपय विशेष प्रभावशाली वस्तुओ की तरह यह जहा, तहा हर किसी को प्राप्त नही होता।

—सम्पादक

पीला भागरा (पीत भृङ्गराज)
WEDELIA CALENDULACEA, LESS.
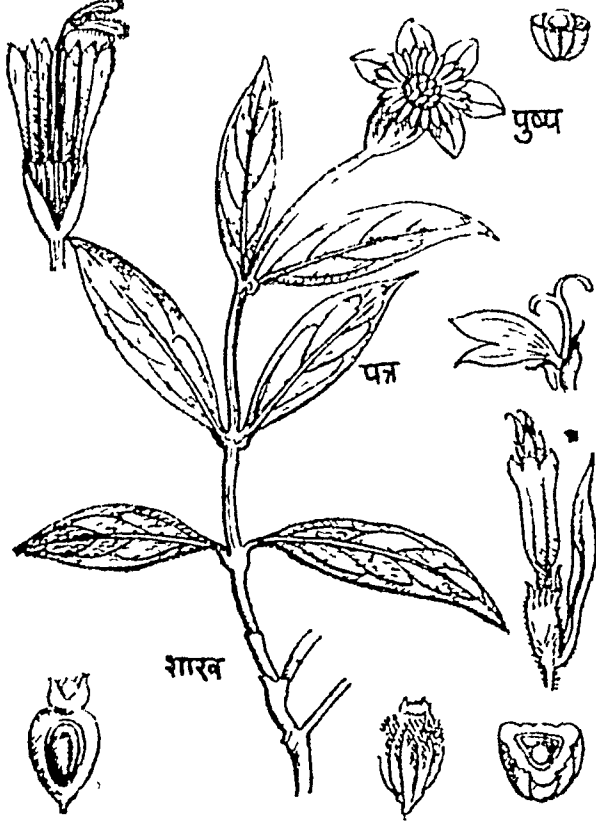
है।

मूल—४–५ इच लम्बी, ऊपर से भूरे रग की भीतर श्वेत, छोटी पेंसिल जैसी मोटी, कडी अनेक उपमूल युक्त गध और स्वाद मे उग्र होती है।

इसमे फूल और फल—मार्च से सितम्बर मास तक आते हे। इसके क्षुप विशेषत बगाल, आसाम, कोकण, मद्रास, सिलहट तथा पूर्व और पश्चिम के प्रायद्वीपो मे पाये जाते है। हिमालय और विन्ध्याचल की तराई की आर्द्र भूमि मे भी कही-कही पाये जाते हे। कही कही बाग बाटिकाओ मे भी यह स्वयमेव ऊगा हुआ मिलता है।

नाम—

स०—पीत भृङ्गराज, देवप्रिय, केशराज, स्वर्णभृङ्गार, हरिवास इ। हि०—पीला भगरा (भगरैया), भागरा इ। म०—पिवला माका। गु०—पीलो भागरो। ब०—हलदी भीमराज, केशराज, बगरा। अ०—फ्लावेरिया रेपाडा (Flavieria Repanda)। ले०—वेडेलिया वयालेंडुलेसी, वेडेलिया स्कयान्डेन्स (Wedelia Scandens)। Verbisina Calendulacea) व्वर्बेसिना केलेडुलेसी।

इसके रासायनिक सगठन तथा गुणधर्म आदि श्वेत-भागरा जैसे ही हे। यह काले भागरे के समान रसायन गुणयुक्त है। आधुनिक मतानुसार यह विशेषत ग्राही हे। शरीर मे इसकी क्रिया पोडोफिलीन (पापरी या गुलककडी) और टेरेक्सेकम (दुधली) की तरह होती हे। आगे श्वेत भागरे के प्रयोगो के साथ ही इसके प्रयोग दिये गये है।

काला भांगरा—

कहा जाता ह, कि इसका क्षुप छत्ता सा लगभग १ बालिस्त का होता हे। पत्र—अतिन्यून, कुछ गोल या अण्डाकार, फूल—इकहरे, दानेदार, नीले एव बेंगनी रङ्ग के होते हे। यह शरद ऋतु मे जलाशय के किनारे पाया जाता हे।

अजमेर, आबू पहाड तथा जयपुर मे सगासहर के पास सलावत ग्राम के निकट के एक तालाब के आसपास यह प्राप्त हो सकता हे। बूटी दर्पणकार प उमाशकर जी त्रिपाठी ने अपने एक लेख मे उपर्युक्तानुसार ही लिखा है।

नाम—

स०—नील भृङ्गराज, महानील, महाभृङ्ग इ०। काला भागरा, काला घमिरा। म—काला माका। गु०—कालो भागरो। ब०—काला भृङ्गराज, केशराज।

गुणधर्म व प्रयोग—कडुवा, उष्ण, नेत्रो को हितकारी, केशो को शीघ्र काला करने वाला, रासायनार्थ उत्कृष्ट तथा कफ, आमदोष, शोथ और श्वेत कुष्ठ का शीघ्र नाशक हे। इसके योग मे कीमिया, सुवर्ण की निष्पत्ति होती हे। शेष गुणधर्म श्वेत भागरा जैसे ही किंतु श्रेष्ठ प्रति के हे। रसायन के लिये विशेषत इसके सेवन का विधान हे। १ मास तक इसके स्वरस पान के साथ दुग्धाहार पर रहने से बल, वीर्य शुद्धि व दीर्घायु प्राप्त होती है।

(१) फिरङ्ग रोग (उपदश) पर—इसके आधा सेर

स्वरस मे कालीमिर्च २ तोला मिला, पत्थर के खरल मे इतना मर्दन करे कि गोली बनने लायक हो जाय। फिर १ से २ मासा तक की गोलिया बना छाया शुष्क कर रखे। १ या २ गोली इसी भागरे के (या श्वेत भागरे के) स्वरस केसाथ या ताजे जल केसाथ सेवन से इस रोग के चट्टे या फुसिया दूर हो जाती है। यह उत्तम रक्त शोधक योग है।

(२) जीर्ण ज्वर या क्षय रोग पर–इस भागरे की जड़ के ७ टुकडे (४ से ८ रत्ती के) कर प्रतिदिन १ टुकडा प्रात या ज्वर आने से पूर्व अदरख के स्वरस के साथ पीसकर खिलाने से ७ दिन मे ही पूर्ण लाभ होता है।

(३) चादी और हरताल भस्म–शुद्ध चादी के पत्रो को तपा तपा कर २१ बार इसके स्वरस मे बुझाकर इसी भागरे की लुगदी मे रख सपुट मे बन्द कर लघु पुट मे आच देने से जो भस्म तैयार होती है वह उत्तम वाजीकरण कही गई है। शुक्रमेह एव स्वप्नदोषादि वीर्य विकारो के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

इसी प्रकार गोमूत्र मे शुद्ध किये हरताल की भस्म तैयार की जाती है, जो श्वेतवर्ण की होती है। श्वास, कास के लिये रामबाण मानी गई है। –सकलित

नोट न. २—चरक और सुश्रुत मे भागरे के औषधि रूप मे कई प्रयोग मिलते है। वाग्भट तथा अन्य आचार्यो ने इसके कल्प लिखे है।

भागरे की विशेष पहिचान यह है, कि हाथ पर मलने से एक मिनिट मे ही हाथ काला पड जाता है। इसके रस मे भिगोया हुआ श्वेत वस्त्र भी काला होजाता है।

नोट न ३—इसी भागरे के ही कुल का एक परदेशी भागरा होता है। इसे लेटिन मे ग्लासोगिनी पिन्नाटिफिडा (Glossogyne Pinnatifida), गुजराती–परदेशी भागरो, बगला—बरागम कहते है।

प्राय जमीन पर फैले हुए इसके कडे रोमश क्षुप २ से ३ फुट तक लम्बे, पत्र गहरे हरे रङ्ग के, कगूरेदार, फूल-पत्रकोण से निकली हुई लम्बी सलाका पर पीले रङ्ग का फूल आता है। बीज-भूरे रग के रोमश होते है।

यह अमेरिका का मूल-निवासी है। भारत के बागो मे भी यह सौन्दर्य के लिये विशेषत लगाया जाता है। तथा पजाब के मैदानो मे गगा के ऊपरी कछार, कुमाऊ, छोटा नागपुर, पश्चिमी बगाल आदि मे पाया जाता है।

प्रयोग–कर्ण शूल पर—इसके पत्तो ० १ रस तैल मे मिलाकर कान मे टपकाते है। अर्श पर पत्तो की पुल्टिस बनाकर बाधते है। शोथ और चर्म रोगो पर इसका रस लगाते है। पहाडी लोग इसकी जड को सर्प और बिच्छू के विष पर लगाते है।

एक परदेशी भागरा (Tridox Procumbens) होता है। यह भागरे के जैसे ही वर्षाकाल मे अधिक पैदा होता है तथा बारहो मास देखने मे आता है। इसका स्वरस माथे पर होने वाले चकत्तो दद्रु आदि पर लगाते है।

नोट न ४—श्लेष्मातक कुल (Boraginaceae) की एक बूटी जिसे हिन्दी मे चितीफूल कहते है, उसे श्वेत भागरा भी कहा जाता है, मराठी मे–मजुवनची वेल, सिताचे केस, पजाबी मे—तिन्दु, सफेद भागरा, गोरख पायो, और लेटिन मे—हेलियोट्रोपियम स्ट्रिगोसम (Heliotropium Strigosum) कहते है।

यह प्रस्तुत प्रसङ्ग के भागरे से बिलकुल भिन्न है। इसका बहुशाखी छोटा पौधा होता है यह हिमालय के पश्चिम प्रदेशो मे विशेष रूप मे तथा साधारणत समस्त भारत मे बलोचिस्थान तक पाया जाता है।

गुणधर्म व प्रयोग—

मृदु विरेचक और मूत्रल है नेत्रो की सूजन, अभिष्यन्द, व्रण, मसूढो के छालो पर इसका रस लगाया जाता है। यह विशेष रूप से फोडो को परिपक्व करता है, पूय को बढाता है। विषैले कीटक आदि के दश पर भी इसका उपयोग करते है।

प्रस्तुत प्रसग के भागरे के नाम, गुणधर्मादि—

नाम—

स०—भृङ्गराज (भृङ्गइव राजते अथवा भृङ्गइव रजोऽस्य' जो भ्रमर जैसा काला है या जिसका चूर्ण

भ्रमर जैसा काले रग का हो जाता है। इसका क्षुप सूखने के बाद काला हो जाने से या केशो को भौरे जैसा शोभायमान करने से), मार्कव—("मारयति मारि केश शौक्ल्य नाशने कुरुते" जो केशो की सफेदी को दूर करता है) केश रजन, भृङ्ग इ। हि —भागरा, भगरैया, घमिरा हटुकेसरी, जल भागरा इ। म —माका। गु —भागरो। ब —केसुरिया, भीमराज, बागरडी। अ —ट्रैलिंग एक्लेस्टा (Trailing Eclista) ले —एक्लिप्टा आलबा। एक्लिप्टा एरेक्टा (Eclipta Erecta), ए प्रोस्ट्राटा (Eclipta prostrata)।

रासायनिक संगठन—

प्रचुर मात्रा मे राल तथा एक्लिप्टिन (Ecliptine) नामक क्षार तत्व इसमे पाये जाते है।

प्रयोज्याग—स्वरस, पत्र, मूल और बीज।

गुणधर्म व प्रयोग—

लघु, रूक्ष, कटु, तिक्त, कटु विपाक, उष्णवीर्य, कफ वातशामक, दीपन, यकृदुत्तेजक (इसकी मुख्य क्रिया यकृत पर होने से, पित्तस्राव ठीक प्रकार से होता एव आमदोष का पाचन होता है) पित्तरेचक, वातानुलोमक, उदरस्थ कृमिनाशक, शूलप्रशमन, शोथहर, वेदनास्थापक, व्रणशोधन रोपण, सवर्णीकरण, चक्षुष्य, केशवर्धन, केशरजन, रक्तवर्धक, मूत्रल, हृद्य, विषघ्न, बलवर्धक, रसायन, स्वेदजनन, कुष्ठादित्वग्रोगनाशक, ज्वरघ्न, दातो के लिये हितकारी, तथा शिर शूल, भ्रम, दृष्टिमाद्यादि नेत्र रोग, अग्निमाद्य, अजीर्णादि मे प्रयुक्त होता है। अधिक मात्रा मे इसका रस वामक है।

आधुनिक मतानुसार—इसकी प्रधान क्रिया यकृत की विकृति दूर करना, पित्तस्राव को यथास्थित करना और आमाशय व पक्वाशय की पचन क्रिया को सुधारना है। जिसमे शरीर मे सर्वाङ्गीण उन्नति होकर तेज एव कान्ति की वृद्धि होती है। इसीलिये यह रसायन माना जाता है। इसके नित्य, नियमानुसार सेवन से 'वृद्धोऽपि तरुणायते' (बूढा भी जवान होता है) यह कहावत चरितार्थ होती है। इससे (विशेषत पीले भागरे मे) दुधली (Taraxacum officinale पीछे दुधली बूटी का प्रकरण देखिये) के समान या उससे भी अधिक, पित्त को शुद्ध करने, बालो को बढाने एव रसायन कार्य मे प्रभावशाली है। इसके द्वारा यकृत का सुधार होने पर कामला रोग स्वयमेव दूर हो जाता है, यकृत एव प्लीहा की वृद्धि कम होती, अर्श, उदर सम्बन्धी विकार तथा अग्निमाद्य भी नष्ट होता है। यकृत की विकृति से शरीर मे एक प्रकार का विष (आम दोष) सचित हो जाने से जो आमवात, भ्रम, शिर शूल, दृष्टिमाद्य एव विविध चर्म रोग पैदा हो जाते हैं, उनमे इसके यथाविधि सेवन से बहुत लाभ होता है। सर्व प्रकार के चर्म रोगो पर इसका भीतरी व बाह्य प्रयोग लाभदायक है।

इसके रस मे हीराकसीम (कसीस Iron Sulphate) मिला कर लेप करने से खिजाब का काम देता है। श्वेत केशो पर काला रग चढ जाता है। बम्बई की ओर इसके रस को अन्यान्य सुगन्धित द्रव्यो के साथ मिलाकर एक पौष्टिक एव वीर्यवर्धक प्रयोग तैयार किया जाता है। कही कही इसके पत्र चूर्ण को प्रसूति के बाद होने वाले रजस्राव के निवारणार्थ तथा रक्त शुद्धि के लिये उपयोग मे लाते है।

पलित [अकाल मे ही केशो का श्वेत होना] और भागरा—पित्त प्रकृतिवालो मे यह रोग विशेष देखा जाता है। वृद्धावस्था मे तो प्राय वात प्रकोप से बाल सफेद होते है। अत यह सिद्ध होता है कि केशो के श्वेत होने मे पित्त और वात ये दोनो दोष कारणीभूत है। चरक ने लिखा है कि पित्त [तेज] वात आदि दोषो के साथ मिलाकर केशो की जडो को दग्धकर खालित्य [केशो का धीरे धीरे झडना Baldness] रोग करता है। [च चि अ २६]। अत जब तक पित्तवृद्धिकारक आहार विहारादि का त्याग नही होता, तब तक केवल बाहर से तैलादि लगाने से कोई लाभ नही होता। वातादि के साथ मिलाकर पित्त का जो विमार्गगमन हुआ है उसको अपने स्वस्थान मे लाना ही इसकी मूलगामी चिकित्सा है।

भागरा जो कि कटु, उष्ण, तीक्ष्ण व रूक्ष है, वह पित्त प्रकोप जन्य पलित रोग कैसे दूर कर सकता है? इसके

ये गुण तो और भी पित्त वृद्धिकारक है। इन शका के समाधानार्थ पलित रोग की सम्प्राप्ति की ओर ध्यान देना आवश्यक है । वातप्रेरित पित्त ही इस रोग को पैदा करता है। वाग्भट का कथन है, कि शोक, श्रम व क्रोध से उत्पन्न शरीरोष्मा मस्तिष्क मे जाकर दोषोसहित केशों को भी पकाकर इस विकार को पैदा करता है [अ. हृ उ. अ २४/२९] । शोक, श्रमादि मे वातोत्पत्ति तथा पित्ताधिक्य भी होता है । बढे हुये पित्त को वात स्थानभ्रष्ट कर शिर मे ले जाता है। भागरा उष्ण व तीक्ष्ण होने से वात का अनुलोमन एव शमन करता है। इससे पलित रोग की सम्प्राप्ति भङ्ग हो जाती है। तथा भागरा रसायन गुणवाला होने से स्रोतो दुष्टि को दूर कर केशो के मूल मे रस रक्तादि धातुओं को यथायोग्य पहुचाने मे सहायता करता हैं। दग्ध हुये केश मूलो मे योग्य परिमाण मे पोषण मिलने से केश अपना प्राकृत रङ्ग फिर से प्राप्त करने लगते है। इसीलिये भागरे के आभ्यन्तर प्रयोग मे उसके साथ दूध या जीवनीय गण के द्रव्यो का उपयोग किया जाता है। चक्रदत्त मे भागरे का एक रसायन का प्रयोग बताया गया है, उसकी फल प्राप्ति मे यही बात कही है। भागरे के स्वरस मे आमला, और तिल मिलाकर पीने वाला कृष्ण केशी, विमलेन्द्रिय व निर्व्याधि होकर सौ वर्ष की आयुष्य प्राप्त करता है। (चक्र रसायनाधिकार अ० २७) वाग्भट्ट ने उत्तरतत्र के अ० ३९ मे नारायण घृत का एक रसायन प्रयोग किया है। उसमे भी अन्य जीवनीय द्रव्यो के साथ भागरे की योजना होती है। इस घृत के प्रयोग से भी पलित रोग दूर होकर मनुष्य शतायु एव स्वस्थ रहता है। इन रासायनिक प्रयोगो के साथ-साथ षड्बिन्दु तैल का नस्य प्रयोग भी करना चाहिये। रुग्ण को पाव उसके सिर मे ऊचे रहे इस प्रकार लिटाकर उसके नासा द्वारोमे इस तैल की २-२ बूदे डालनी चाहिये। कुल मिलाकर ६ बूदो का उपयोग करे। ७ दिन से अधिक इसका प्रयोग नही करना चाहिये। देखो चक्रदत्त शिरोरोग चिकित्सा ३१ से ३३ तक। साथ ही भृगराज तैल का उपयोग शिरोभ्यग के लिये करना हितकर है। 'केवल 'भृगराज' तैल' की ही मालिश से लाभ नही होता, उक्त प्रकार से भागरे के भीतरी प्रयोगो के साथ ही साथ पित्तवर्धक आहार विहार का त्याग करना आवश्यक है।

—श्री गोविन्द दवे (आयुर्वेद विकास)

यूनानी मत से—यह दूसरे दर्जे मे उष्ण व रूक्ष है। इसके पत्तो का स्वरस दृष्टि और ओज को बढाने वाला है। कफज स्निग्धता, प्लीहा का कडापन, कुष्ठ व गुल्म रोग पर लाभकारी है। इसके क्वाथ की कुल्ली करने से मुख रोग एव दातो की पीडा दूर होती है । इसके पत्तो का रस बीनाई और बाह को कुव्वत देता है। यह बालो के रग को बढाता है। यह पौष्टिक, कफ निस्सारक, अग्निवर्धक और ज्वरनाशक है। इसके सेवन से सिर के चक्कर दूर हो जाते है। यह कामोत्तेजक भी है। इसका प्रतिनिधि बैदजीर (रेडी) के पत्र है।

प्रयोग—

(१) केशवर्धन, रजन एव पलित और दारुण व इन्द्रलुप्त विकार पर—बालो को उस्तरे से साफ कर उस स्थान पर भागरे के पत्र स्वरस को मर्दन करते रहने से कुछ दिनो मे अच्छे काले बाल निकलते है। साथ ही निम्न प्रयोग का सेवन भी करे—

भागरा (काला मिले तो उत्तम अन्यथा श्वेत) के पचाग को छायाशुष्क कर लोह खरल मे कूट, चलनी से छान कर काच के पात्र मे रख उसमे भागरे का ताजा रस इतना डाले कि रस ४ अगुल ऊपर तक आ जावे। फिर लोह खरल मे खरल कर सुखा लेवे । इस प्रकार २१ या कम से कम ७ भावनाये देकर यदि यह भावना दिया हुआ चूर्ण २० तोला हो तो उसमे आमला चूर्ण १० तोला, बहेडा चूर्ण ५ तोला और हरड का चूर्ण २० तोला अच्छी तरह मिलाकर बादाम के तैल से उसे तर कर सबके बराबर मिश्री का चूर्ण मिला काच के पात्र मे सुरक्षित रखे। मात्रा—६ माशा प्रात साय ताजे दूध से सेवन करे। ७ दिन के बाद मात्रा ९ माशा और तीसरे सप्ताह से १ तोला रोज सेवन करे। गरम, बादी, खट्टी आदि पित्त वात वर्धक चीजोसे परहेज रखे। निरतर ४१ दिन के सेवन से बाल काले निकलते है, शरीर की शक्ति

बढती हे । अथवा—

त्रिफला के चूर्ण को भागरे के रस की ३ भावनाये देकर, अच्छी तरह शुष्क एव खरल कर रखे । प्रति दिन प्रात १½ माशा सेवन करने से बाल काले निकलने है ।
अथवा—

आवश्यकतानुसार केवल आमलो का ही मोटा चूर्ण कर किसी चीनी मिट्टी के पात्र मे रख, ऊपर से भागरे का रस इतना डाले कि आमले उसमे डूब जावे । फिर पत्थर के खरल मे खरल कर शुष्क करे । इस प्रकार ७ भावनाये देकर सूखने पर महीन चूर्ण कर रखे । प्रतिदिन ३ माशा की मात्रा मे ताजे जल के साथ सेवन से अकाल मे बालो का श्वेत होना रुक जाता हे ।

—सकलित ।

नस्य प्रयोग–तिल तैल आधा सेर मे गोदुग्ध और भागरे का रस २–२ सेर तथा मुलैठी का कल्क १० तोला मिलाकर मन्द आच पर पकावे । तैल मात्र शेष रहने पर छानकर रखले । इसकी नस्य लेते रहने से पलित विकार दूर होता है । –वृ० मा० ।

नोट–इस विकार पर भृगराजादि तैल के प्रयोग आगे विशिष्टयोगो मे देखिये । यहा केश सम्बन्धी इन्द्रलुप्त व दारुण विकारो पर प्रसगानुसार कुछ प्रयोग दिये जाते हैं ।

इन्द्रलुप्त (गज) पर–इसके ४ सेर स्वरस मे तैल १ सेर तथा ५ तोला इसके (भागरे के) ही कल्क को मिला कर पकावे । तैल मात्र शेष रहने पर छान लेवे । इस तैल मे हाथीदात और आमले की भस्म मिलाकर लगाने से गज के स्थान मे भी घने बाल निकल आते हे । अथवा–इसके रस मे लोहे के महीन चूर्ण को पीसकर लेप करे ।

जहा के बाल गिर गये हो, वहा भागरे को पीसकर दिन मे २–४ बार लेप करे । घटे आध घण्टे बाद जब लेप कुछ गीला ही रहे, उसे हटा दिया करे । कुछ दिनो मे पूर्ववत बाल उग आते हैं ।

—अनुभूत योग नामक पुस्तक से ।

दारुण (कफ बात के प्रकोप से सिर पर रूक्षता, खुजलाहट व कठोरता के साथ फटन होना, खौरा (**Seborrhoea**) पर–भागरा, त्रिफला, अनतमूल, मडूर व आम की गुठली इनका कल्क २० तोला को तैल २ सेर व जल ८ सेर मे एकत्र मिला पकावे । तैल मात्र शेष रहने पर छान कर रख ले । इसे सिर मे लगाने से लाभ होता है । तथा बाल घुंघराले व मजबूत हो जाते है ।

(२) यकृत विकार, अग्निमांद्य, पाडु, कामला, विबन्ध, आंत्र विकार तथा अतिसार और अम्ल पित्त पर—

यकृत विकार पर—यकृत वृद्धि हुई हो, क्षुधा न लगती हो, अपचन हो, नवीन रक्त नहीं बनता हो या रक्ताल्पता हो तो भागरे (पीला भागरा हो तो उत्तम) के स्वरस मे थोडा अजवायन चूर्ण मिलाकर पिलाते हैं । इससे पाडु व कामला मे भी लाभ होता है । यह प्रयोग कई दिनो तक करने से ही विशेष लाभ होता है ।

अग्निमाद्य पर—छायाशुष्क भागरे के पचाग के महीन चूर्ण मे समभाग त्रिफला चूर्ण तथा सबके समभाग मिश्री चूर्ण मिला शीशी मे भर रखें । ६ माशा से १ या २ तोला तक उचित अनुपान के साथ सेवन से मदाग्नि व पाडुरोग मे भी लाभ होता है । यदि रसायन की विधि से सेवन किया जाय तो यह अकाल मृत्यु व वृद्धावस्था को दूर करता है । आगे विशिष्ट योगो मे इसके रसायन प्रयोग देखिये । उक्त योग से विबन्ध व आंत्र विकार भी दूर होता है ।

जीर्ण अग्निमाद्य की दशा मे—इसका रस नित्य वर्द्धमान प्रमाण मे सेवन करने से महास्रोतसो को बल प्राप्त होकर आंत्र विकार दूर होकर जठराग्नि की वृद्धि होती है । कोष्ठस्थ आमदोष जन्य आनाह, अलसक आदि विकारो पर इसका उपयोग किया जाता हे । किन्तु अलसक मे इसका व्यवहार करते समय इसे पच कटु (कटेरी) गिलोय, सोठ, कूट व चिरायता, अथवा–नीम छाल, पटोल पत्र, वासा पत्र, कटेरी व गिलोय, अजवायन आदि मे से किसी एक के साथ देने से विशेष लाभ होता है । दण्डालसक चिकित्सा करने मे अत्यन्त कष्टदायक है । किन्तु उसमे भी भागरा स्वरस के साथ हेमगर्भ, सूतशेखर आदि की मात्रा दी जाय तो लाभ होता है ।

—श्री हीरामण जी जगले ।

भागरा के पत्ते और फूलो का छायाशुष्क चूर्णकर थोड़ा सैंधानमक मिला सेवन करने से अग्नि की वृद्धि होती

है, अरुचि दूर होती है।

पाडु व कामला पर—इसके ताजे पत्तो को अच्छी तरह धोकर पीसकर, २ माशे की लुगदी के साथ काली-मिर्च ७ दानो का चूर्ण मिला, नित्य प्रात खाली पेट खट्टे दही या तक्र के साथ देने मे ५ या ६ दिन मे ही पाडु या पीलिया [कामला] रोग मे विशेष लाभ होता है पित्तवाहक स्रोत मे शोथ के कारण हुई कामला शीघ्र दूर होती है । इस प्रयोग की क्रिया ठीक यशस्वी होने के लिये आवश्यकतानुसार रोगी को विरेचन देना चाहिये ।

—श्री डा० कोमान व डा० नाडकर्णी।

यदि ये विकार कफजन्य हो तो पीला भागरा लेना विशेष हितकर होता है । अथवा—

भागरे के स्वरस १ तोला मे १ माशा कालीमिर्च का चूर्ण और मिश्री ३ माशा मिलाकर दिन मे ३ बार सेवन कराने तथा पथ्य मे केवल दही, भात देते रहने मे ४-५ दिन मे कामला कम होने लगता हे । इस प्रयोग मे वैद्य आप्पा शास्त्री साठे (मराठी 'घरगुली औषधि' के सम्पादक) १ तोला स्वरस के साथ ४ तोला कालीमिर्च चूर्ण व १ तोला मिश्री मिलाकर प्रात साय रोगी को दिया करते थे ।

अतिसार पर—इसके १ तोला स्वरस को १० तोला दही मे मिला प्रात साय पिलावें । शीघ्र लाभ होता है । शूल एव रक्तयुक्त आमातिसार हो तो इसके स्वरस को पकाकर गाढा कर १-१ माशे की गोलिया बनाकर सेवन से लाभ होता है ।

—व से

नोट—आमातिसार पर इसकी जड का प्रयोग नीचे देखें ।

अम्लपित्त पर—भागरे के चूर्ण के साथ समभाग हरड़ का चूर्ण मिला, गुड के साथ सेवन से अन्न के विदाह युक्त अम्लपित्त एव वमन दूर होता है ।

—चक्रदत्त ।

(३) ज्वर पर—

भागरा स्वरस और नीम का पत्र रस २०-२० तो लेकर लोहे की कढाई मे धीमी आग पर रख के, उसमे ५ तोला पिप्पली चूर्ण व २ तोला कालानमक मिलाकर खूब घोट कर गोली बनाने लायक होने पर जगली बेर जैसी गोलिया बनाकर सुखाकर शीशी मे रख ले। दिन ३ बार १-१ गोली उष्णोदक से सेवन करने पर ३-४ दिन मे ज्वर छूट जाता हे । मियादी ज्वर हो तो एक मास के सेवन मे निकल जाता है । अथवा—

भागरा स्वरस २॥ तोला गरमकर उसमे पिप्पली चूर्ण व कालानमक ३-३ माशा महीन पीसकर मिलाकर प्रात साय पिलाने से भी लाभ होता हे ।

—गृ चि

अथवा—भागरा पत्र २० तोला और कालीमिर्च २ तोला दोनो को सिल पर खूब महीन पीस, चना जैसी गोलिया बना, छाया शुष्क कर, शीशी मे रख ले । एकाहिका, द्वाहिक, त्रितीयक, चातुर्थिक इन ज्वरो मे, ज्वर वेग के ३ घण्टे पहले से ही प्रतिघण्टा २-२ गोली उष्ण जल या शहद से देने से अवश्य लाभ होता हे । शीतज्वर तथा चातुर्थिक ज्वर पर आगे जड के प्रयोग देखे ।

अथवा—इसके पत्र ११ नग और उतने ही काली मिर्च के दाने लेकर एकत्र सिलपर खूब घोटकर एक वटी बनावें । यह १ मात्रा हे। ऐसी ३ मात्राये ज्वर चढने के एक घण्टा पूर्व ही देते रहने से, ३-४ दिन मे ज्वर दूर हो जाता है ।

जीर्ण ज्वर पर—रोज थोडा ज्वर बना रहता हो, प्लीहा बढी हो, क्षुधा न लगती हो, यकृत का कार्य ठीक न होता हो, पाचन शक्ति मन्द हो गई हो, कफ का प्रकोप मालूम देता हो, थोडी खासी भी हो तो इसका स्वरस ४ मे ६ माशा को ३ तोला दूध मे मिलाकर (यह १ मात्रा है) प्रात और रात्रि के समय सेवन कराने से १४ दिन मे लाभ होता है ।

कई वैद्य शुद्ध हिंगुल आधा रत्ती, शहद के साथ चटाकर ऊपर से इसका स्वरस पिलाते है । इससे शीघ्र लाभ होता है ।

बढे हुये ज्वर, जिसमे ज्वर जोर का हो तथा वात के प्रबल होने के कारण रोगी प्रलाप करता हो ऐसी दशा

मे इसके स्वरस मे थोडी रस सिन्दूर की मात्रा घिसकर देने से शीघ्र ही वात शमन होकर लाभ होता है।

आन्त्रिक ज्वर (टायफाईड) मे आध्मान [अफरा] हो तो इसका स्वरस १-१ चम्मच दिन मे २ या ३ बार देने से आमदोष एव आन्त्रगत कोथ स्वभावी [सडान पैदा करने वाले] द्रव्यो का नाश होकर शीघ्र लाभ होता है।

हाथ पैरो की दाह [जलन] और शोथ पर इसके स्वरस की मालिश करनी चाहिये।

—सकलित

(४) कफ प्रकोप तथा बालको के विकारो पर—

कफ प्रकोप के कारण छाती मे कफ भर गया हो, तो इसका स्वरस शहद मिलाकर बार-बार चटाने से कफ सरलता से बाहर निकल जाता है।

छोटे बालको को या तत्काल के पैदा हुये नवजात शिशु को यदि कफ का जोर हो, कफ प्रकोप के कारण उसके कण्ठ मे अधिक घरघराहट हो, तो इसके ताजे पत्र स्वरस की २ बूदो मे ८ बूद शहद मिला, उस मिश्रण को उगली से मुख के भीतर गले तक पहुचा देने पर सब कफ निकल पडता है। बच्चा चैतन्य लाभ पाता है।

बडे बालक के लिये इसके १ तोला स्वरस के साथ ६ माशा शहद मिला उङ्गली से बार-बार चटाने से कफ प्रकोप शात हो जाता है। इस प्रयोग से बालक या बडो के कफजन्य श्वास रोग मे भी लाभ होते देखा गया है। इसे दिन और रात्रि मे भी थोडा-थोडा कई बार चटाते रहना चाहिये। इससे खासी मे भी लाभ होता है।

यदि कास श्वास का विशेष प्रकोप हो तो इसके १० भाग स्वरस के साथ १ भाग शुद्ध उत्तम तिल तेल मिला कर पकावे (इसमे ४ भाग जल मिला लेवे) तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लेवे। यथोचित मात्रा मे सेवन करावे। —व से

नोट—वगसेन ग्रथ का भृंगराज तेल जिसमे दशमूल आदि द्रव्यो के कल्क की योजना है उसका नस्य एव सेवन कराने से वात, कफज, कास, श्वास, प्रतिश्याय, पीनस तथा अन्य कफज रोग नष्ट होते है। वैसे ही रस रत्नाकर ग्रथ का भृङ्ग राज घृत, शहद के साथ सेवन करने से स्वर भेद और कास पर परम लाभ होता है। घृत व तेल के प्रयोग आगे विशिष्ट रोगो मे देखिये

बालको के अन्य रोगो पर—डकुनिका (डब्बा) पर—इसका स्वरस १ भाग, गरम किया हुआ घृत ½ भाग तथा घृत मे आधा शहद मिलाकर, दिन मे ३ बार चटाने से शीघ्र लाभ होता है।

कृमि रोग हो तो इसके पत्र स्वरस को ३-४ बार गुदा मे लगावे और प्रातः शुद्ध रेंडी के तेल के साथ इसके स्वरस को पिलावे।

बालक को पेशाब करने मे कष्ट हो मूत्रकृच्छ्र हो तो इसके फूलो का क्वाथ, मिश्री या शक्कर मिलाकर पिलाने से शीघ्र लाभ होता है।

बालको के जीर्ण ज्वर पर—इसकी जड का चूर्ण २ या ४ रत्ती की मात्रा मे, मन्दोष्ण दूध के साथ सेवन कराते है।

मुखमण्डिका नामक ग्रहजनित विकार (जिसमे बालक के मुख एव उदर पर नीली नसें उभर आती है, बहुत खाता है, शरीर शिथिल होता है, मूत्र तुल्य गन्ध आती है) पर—इसका रस ८ सेर, तिल तेल २ सेर तथा वच और असगन्ध का कल्क ४-४ तोला एकत्र मिला पकावे। और असगन्ध तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रख लेवे, शरीर पर इसकी मालिश करने से लाभ होता है।

—यो र

नोट—उपरोक्त कफप्रकोपादि के प्रयोगो मे पीला भागरा विशेष उपयोगी है।

—सकलित

(५) नेत्र विकार- शिर शूलादि, शूल, भ्रम, चक्कर आना और शोथ पर—

नेत्र विकार पर—छाया शुष्क इसके पत्तो का महीन चूर्ण १ तोला मे शहद ३ माशा व गोघृत ३ माशा मिला कर (यह एक मात्रा है) नित्य सोते समय रात्रि मे ४० दिन तक सेवन से दृष्टिमाद्यादि सर्व प्रकार के नेत्र रोगो मे लाभ होता है। इस प्रयोग के साथ ही साथ इसका स्वरस २ बूद सूर्योदय से १ घडी के अन्दर या सूर्यास्त के १ घटी पूर्व आखो मे डालते रहने से लाली,

फुली आदि नेत्र विकार शीघ्र ही अच्छे होते है। कोई कोई इसके पत्र रस के साथ मिश्री या नवकर मिलाकर आखो मे डालते है। नेत्रस्राव या नेत्रों की लालिमा या आखें आना [अभिष्यन्द] भी इसमे शमन होता है।

रोहे या पोथकी पर—इसके स्वरस मे साफ मलमल के कपडे को भिगो भिगो कर बार२ धूप मे सुखा ले। फिर उसका एक बालिश्त लम्बा और उतना ही चौडा टुकडा लेकर उस पर ६-६ माशा फिटकरी व कपूर के चूर्ण को फैलाकर व लपेटकर बत्ती बना ले। इस बत्ती को घृत मे भिगोकर तथा जलाकर काजल पार लें। इस काजल का अञ्जन अधिक लाभप्रद होता है।

मामूली आखे आई हो, दर्द करती हो तो इसके पत्तो को पीसकर पुल्टिस जैसा बना आंखो पर बाधने मे शीघ्र लाभ होता है।

दृष्टिक्षीणता पर—इसके दो सेर स्वरस मे, मुलेठी का कल्क ५ तोला, तिल तेल आध सेर और गो दुग्ध २ सेर एकत्र मिला मन्द आच पर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रखले। इसे नेत्रों मे लगाने से तथा इसकी नस्य लेने से, नेत्र शीघ्र ही स्वच्छ हो जाते हैं दृष्टिमाद्य दूर होता है तथा नष्ट हुई चक्षु भी ठीक हो जाती है। एक मास तक लगातार प्रयोग किया जाय तो वलिपलित विकार भी दूर हो जाता है—

—यो र और वृ मा

पलको के विकार पर—इसके रस मे रुई भिगो छाया शुष्क कर, बत्ती बना मीठे तेल मे जला कर काजल तयार करे। इसमे थोडा फुलाया हुआ सफेदा मिलाकर पलको के भीतर लगाते हैं।

नोट—आख की फूली पर इसकी जड का **प्रयोग** आगे देखे।

शूल पर—

शिर शूल पर—इसके पत्र रस को सिर पर मलने तथा उसकी २-२ बून्दे नासिका मे टपकाने से शीघ्र लाभ होता है।

वातज शिर शूल हो तो इसके स्वरस के साथ (२०-२० तोला) धत्तूर पत्र स्वरस और आक के पीले पत्तो का स्वरस एकत्र कर उसमे लाल गुञ्जा (घुघची) ५ तोला, मालकागनी ५ तोला, कुचला २॥ तोला एकत्र ३० तोला जल के साथ पीसकर किया हुआ कल्क और २० तोला तिल तेल मिलाकर मन्द आग पर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रखले। इसे पीडित स्थान पर मर्दन करने से प्राय सर्व प्रकार की वातजन्य पीडा विशेषत सिर दर्द मे लाभ होता है।

पित्तज सिर दर्द हो तो इसके १ सेर स्वरस मे लाल गुजा ५ तोला के कल्क को १ सेर जल मे घोलकर मिलावे और २० तोला तिल तेल मिला, मन्द आग पर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छानकर रखले। इसे माथे पर मर्दन करने तथा इसकी नस्य देने से लाभ होता है। यह तेल ऊर्ध्वजत्रुगत प्राय सर्व विकारो मे हितकारी है।

कोष्ठबद्धता या रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) के बढने मे यदि शीर्षशूल हो तो प्रथम रोगी को स्नेहन देकर २ या ४ बार इसका रस पिलाने मे उत्तम लाभ होता है। यदि इसके साथ शिलाजीत का प्रयोग किया जाय तो विशेष लाभ होता है।

आधाशीशी (सूर्यावर्त) पर—इसके साथ समभाग बकरी का दूध मिलाकर धूप मे रख देवे। **गरम हो जाने पर इसकी** नस्य लेवे। साथ ही साथ इसके रस मे **कालीमिर्च को** पीसकर सिर पर लेप करे। तथा इसके **रसमे समभाग** गौदुग्ध मिला सूर्योदय के पूर्व ही पिलावे। यह सब क्रिया सूर्योदय से पूर्व ही होनी चाहिए। केवल नस्य की क्रिया सूर्योदय के बाद करावे।

नोट—हारीत संहिता ग्रन्थ का भृङ्गराज तेल (जिसमे कटुतुम्बी का रस, दशमूल क्वाथ आदि पडते हैं) भयकर शिरशूल, भौं का दर्द, नेत्र पीड़ा आदि पर उत्तम उपयोगी है। आगे विशिष्ट प्रयोग देखें।

उदरशूल पर—इसके १ तोला पत्र के साथ ३ माशा काला नमक थोडे जल मे पीस छानकर सेवन से जीर्ण शूल भी दूर हो जाता है।

वात शूल (Colic pain) पर—इसके पचाग को जल के साथ खूब महीन पीस छानकर रोगी जितना अधिक

पी सके, कई वार पिलाते है।

दतशूल (डाढ की पीडा) पर–रोगी की जिस ओर की दाढ मे दर्द हो उससे विपरीत (दाहिनी डाढ मे हो तो वाये और वाये डाढ मे हो तो दाहिने) कान के भीतर इसके स्वरस की २-४ बूदे टपका देने से दर्द तत्काल दूर होता है। यदि एक बार के टपकाने से दर्द दूर न हो तो दुवारा इसी प्रकार करने से अवश्य लाभ होता है।

कर्ण शूल पर–पत्र रस को गरम कर थोडा तेल मिला कान मे डालने से लाभ होता है।

नोट–योनिशूल पर—आगे मूल के प्रयोग देखे।

भ्रम (चक्कर आना)–वात प्रकोप से चक्कर आते हो, घर बार घूमता हुआ मालूम पडे, विस्तरे पर शाति से लेटने पर भी मालूम पडे कि खुद चक्कर खा रहे हैं, ऐसी दशा मे इसके १ तोला रस मे नारियल का दूध ५ तोला और मिश्री ३ माशा मिलाकर सेवन करे। २-३ वार के सेवन से भ्रम आदि विकार दूर हो जाते है। इस प्रयोग से वातजन्य सर दर्द भी शात होजाता है।

शोथ पर–अण्डकोप मे सूजन हो तो इसके पचाग या पत्रो को पीस टिकिया बनाकर बाधने से शीघ्र लाभ होता है।

जतु विप जन्यशोथ शरीर के किसी भी भाग मे हो तो इसके रस को मसलने से दूर हो जाती है।

—सकलित

(६) स्वरभेद पीनस, कुष्ठ, विसर्प, छाजन, अपरस कण्डू और पाददारी पर—

स्वरभेद पर–इसके स्वरस द्वारा सिद्ध किये हुए घी का, (या स्वरस को घी मे जलाये हुए घी का) सेवन कराने से कठ शुद्ध होकर स्वरभग दूर हो जाता है।

पीनस (Coryza) पर—इसका स्वरस और काले तिल का तेल १०-१० तोला तथा सेधा नमक १ तोला एकत्र कर मद आग पर पकावे। तेल मात्र शेप रहने पर छानकर रख ले। इस तैल की कुछ बूदे (लगभग १० बूद तक) दिन मे २ वार नाक के दोनो नथुनो मे टपकाने (नस्य देने) से अन्दर का दूपित कफ तथा कृमि बाहर निकलकर थोडे ही दिनो मे यह रोग नष्ट हो जाता है।

पथ्य मे—गेहू की रोटी और मूग की दाल देवे।

कुष्ठ पर–भागरे को लोह पात्र में तेल के साथ भून या सेक कर प्रति दिन प्रात खाने से तथा ऊपर से विजयसार की छाल का चूर्ण डालकर पकाया हुआ दूध पीते रहने से २-३ मास मे जीर्ण श्वेत कुष्ठ भी दूर हो जाता है। लेपार्थ–इसकी जड के साथ हरड वृक्ष की जड समभाग, मिट्टी के पात्र मे वन्द कर जलावे। इस भस्म को काजी मे पीस कर लेप करें। —वृ नि र

गजचर्म कुष्ठ पर–इसके कोमल पौधो को सिल पर महीन पीस कर इस लुगदी को चौगुने तिल तेल मे पका लेवे। इस तेल की मालिश करें।

विसर्प पर–इसकी जड और हल्दी को ताजे जल मे पीस कर लगातार लेप करते रहने से लाभ होता है।

छाजन पर—इसके रस को तुलसी पत्र स्वरस के साथ मिलाकर लगाते है।

कडु (खाज, खुजली) पर–शरीर मे खुजली हो खुजाने से समाधान न होता हो तथा खुजाने के बाद बारीक फुसिया उठ आवें या शरीर मे फुलके की तरह खाल निकले, ऐसी अवस्था मे इसके रस मे कालीमिर्च का थोडा चूर्ण मिला खुजली के स्थान पर अच्छी तरह मलने से शीघ्र ही लाभ होता है। —अथवा

ऊपर शिर शूल के प्रयोगो मे जो पित्तज शूल पर प्रयोग दिया गया है उसके लगाते रहने से कडु, कुष्ठ और शिर दर्द पर भी लाभ होता है। अथवा—

इसके पत्ते और जवासा १-१ तोला, चिरायता व सरफोका ६-६ माशा इनको १० तोला जल मे पीस, छान कर उसमे २ तोला शहद मिला प्रतिदिन ७ दिन तक सेवन करने से शरीर की सूखी या गीली खुजली दूर होती है। शरीर स्वस्थ (आरोग्य) रहता है। फुसियो के स्थान पर इसका लेप करे। अथवा निम्न मरहम का प्रयोग करे।

पारा और सादा गन्धक १-१ तोला की कज्जली कर उसमे आमाहल्दी, अजवायन, हिंगुल १-१ तोला और तूतिया (नीलाथोथा) ३ माशा इनका महीन चूर्ण व गुड १ तोला मिला, उसमे गोघृत १० तोला मिलाकर खूब घोटे; साथ ही भागरे का रस १० तोला थोडा-थोडा

मिलाते जावें। सब एक दिल हो जाने पर शीशी में रख लें। इसे खाज पर लगाने से शीघ्र लाभ होता है।

अपरस (यह त्वग्रोग हाथो की हथेली व पैरो के तलुओ मे होता है, कुछ खुजली होती तथा ऊपर की त्वचा निकलती है।) पर—

इसके ५ तोला स्वरस मे तूतिया ६ माशा मिलाकर गोघृत मे पकाकर मालिश करते हैं।

पाददारी (बिवाई) पर—इसके रस को तैल मे मिलाकर लगाते हैं। —सकलित।

(७) वातज विकार, मेद रोग, श्लीपद, रोहिणी, कठमाला और अर्श पर—

वातज विकार धनुर्वात पर—इसका स्वरस १ तोला, गूमा (द्रोण पुष्पी) का रस ३ माशा, निर्गुण्डी का रस १ तोला, अदरख का रस २ तोला तथा अगस्त के पत्तो का रस २ तोला सबको एकत्र कर, उसमे सबसे चौगुना नारियल का दूध मिला और थोडे से चावल (लगभग २ तोला) और गुड मिला कर मन्द आच पर खीर पकावें। इसी प्रकार प्रात साय बनाकर सेवन करे। यदि इस प्रयोग के सेवन से बेचैनी मालूम हो तो प्याज को भूनकर थोडा घृत मिला खा लेवे।

नोट—कोष्ठस्थ वात दोष जन्य हिस्टीरिया, अपस्मार आदि मे भी इस प्रयोग के सेवन से वातवाहिनियो का क्षोभ नष्ट होकर लाभ होता है।

मासपेशियो मे खिचाव—जिसमे शीत के लगने, अम्ल द्रव्य का अधिक सेवन करने या अन्य कारणो से वात प्रकोप होकर पेशियो मे बाइटे आने लगते हैं। अति वेदना होती है। यदि रोगी सोया हो तो ऐसी अवस्था मे तुरन्त उठकर पीडित स्थान को मसलने लगता है। उसे इसके रस और शहद ४-४ माशा के साथ शुद्ध हिंगुल ½ रत्ती मिलाकर देवे। १-१ घण्टे पर २-३ बार देने से लाभ हो जाता है। यदि यह विकार केवल शीत के लगने से हुआ हो तो थोडा सेककर गरम कपडा ओढा देना चाहिये। —गा औ र.

मेद रोग पर—वादी से शरीर मोटा हो गया हो, अत्यधिक स्थूलता आ गई हो, चमडी मोटी हो गई हो, तो इसके स्वरस को प्रतिदिन रात्रि मे सोते समय सर्व शरीर पर मसलते हुये सुखा देवे। इस प्रकार ४ या ६ मास तक लगातार करते रहने मे शरीर की बढी हुई चर्बी तथा उसके कारण स्थान-स्थान पर उभरी हुई गाठें विलीन होकर त्वचा पतली तथा शरीर फुर्तीला होता है।

श्लीपद पर—इसके पचाङ्ग की लुगदी को मीठे तेल मे मिलाकर मालिश करते हैं।

रोहिणी (Diphtheria बाधी) यह बडा भयकर रोग है। तत्काल ही चिकित्सा करने पर शात होता है। अन्यथा पाश्चात्य चिकित्सा करनी पडती है। अत रोग के प्रारम्भ मे ही इसके १ तोला स्वरसमे समभाग गो घी तथा चतुर्थांश असली जवाखार मिलाकर पकावें। जब खूब खौल जाय तब पिलावे इस प्रकार दो-दो घण्टे पर बार-बार पिलाने से बाधी शात होती है। —चिकित्सादर्श

कठमाला पर—इसके पत्तो को पीस टिकिया बना घी मे पकाकर कठमाला की गाठो पर बाधने से शीघ्र लाभ होता है।

अर्श पर—इसके पत्र ५ तोला और कालीमिर्च ६ माशा दोनो को खूब महीन पीसकर छोटे बेर जैसी गोलिया बना छाया शुष्ककर रखे। प्रात साय १ या २ गोली जल के साथ सेवन करने से वातज अर्श मे शीघ्र लाभ होता है।

अथवा—इसके पत्र ३ माशा व कालीमिर्च ५ माशा दोनो का महीन चूर्ण ताजे जल से दोनो समय प्रयोग करने से ७ दिन मे ही आशातीत लाभ प्रतीत होता है। घी दुग्ध अधिक सेवन करें। लालमिर्च आदि का परहेज करे। —सकलित

अथवा—इसके रस मे गेहू का आटा सानकर गो घी मे पूडी बनाकर मट्ठे मे भिगोकर खावे। ऊपर से १-२ मूली खिलावे। शीघ्र ही लाभ होता है।

—वैद्य नगेन्द्रनाथ दीक्षित आ भिषक् व्यवस्थापक 'आ सन्देश' लखनऊ।

अर्श के मस्सो पर इसके पत्तो का बफारा दोनो समय

देते रहने से विशेष लाभ होता है।

(८) व्रण, भगंदर, उपदंश तथा प्रमेह पिडिका पर—

व्रणो पर—दूषित या दुष्ट व्रणो पर इसके रस का व्रणपट्ट (व्यान्डेज) बाधने से उनका उत्तम शोधन व रोपण होकर वे शीघ्र सुधर जाते है। व्रण का रोपण हो जाने पर इसी के रस का लेप करते रहने से उसका दूषित दाग नही रहने पाता।

बलाय (चिप्प)—हाथ, अगूठे या उगली मे जो व्रण होता है जिसे देहात मे बलाय या घिनही कहते है। उस पर इसे पीसकर मोटा लेप करे तथा उसपर किसी तरह पानी न पड़ने देवे। जलन मिटेगी, पीडा बन्द होगी तथा वह फूटकर भीतर की गाठ निकलकर घाव अच्छा हो जावेगा।

अग्निदग्ध व्रण पर—इसके पत्रो को मेहदी और मरवा के पत्तो के साथ पीसकर लेप करने से दाह नष्ट होकर शीघ्र शोधन व रोपण होता है तथा नवीन आने वाली त्वचा शरीर के वर्ण की होती है।

जब उक्त व्रण कुछ ठीक होने पर आवे तब इसका पत्र रस २ भाग और काली तुलसी पत्र रस १ भाग, दोनो एकत्र मिला दिन मे २-३ बार लगाते रहने से, उस स्थान पर श्वेत दाग नही पडने पाते।

मुख मे व्रण, छाले या मुखपाक पर-इसके पत्तो आधा तोला मुख मे रखकर चबाये तथा लार को बार बार थूकते जावे। इस प्रकार दिन मे कई बार करने से शीघ्र लाभ होता है।

श्लीपद या फीलपाव के व्रणो पर—इसके पचाग को खूब महीन पीसकर तिल तेल मे मिला गाढ़ा लेप करने से लाभ होता है।

भगन्दर पर—इसे पीसकर पुल्टिस जैसा बनाकर बाधते रहने से थोडे ही दिनो मे भगन्दर शुद्ध होकर भर जाता है।

उपदंश पर—इसका चूर्ण ३ भाग तथा कालीमिर्च चूर्ण १ भाग दोनो एकत्र भांगरे के ही स्वरस से खरल कर १-१ माशा की गोलिया बना रखे। प्रातःसायं १-१ गोली सेवन करावे।

अथवा—इसके १ तोला स्वरस मे २ नग कालीमिर्च का चूर्ण मिला, प्रातः साय १०, १४ या २१ दिन तक सेवन कराये। पथ्य मे गोदुग्ध, गेहू की रोटी और शक्कर देवे। उपदंशादि विकार दूर होकर रक्तशुद्धि होती है।

उपदंश के व्रणो को इसके पत्र स्वरस के साथ चमेली पत्र का स्वरस मिलाकर धोवे और इसीका लेप करे। या केवल इसी के पत्र स्वरस से धोकर इसीका लेप करे। शीघ्र लाभ होता है। अथवा—

इसके चूर्ण के साथ हरड, बहेडा, आवला, दन्तीमूल, ताम्र चूर्ण और लोह चूर्ण सब समभाग लेकर खूब महीन पीसकर इसके स्वरस मे थोडा२ मिलाकर लेप करते रहने मे शीघ्र लाभ होता है। —भा भै र

अथवा- धूम्रपान—इसका पञ्चाग ८ तो॰ शुद्ध हिंगुल १ तोला, माजूफल २ तोला और आक की जड की छाल ४ तोला इनको लोह खरल मे एकत्र बिना जल के खूब खरल करें। इसके पञ्चाग मे जलीयाश होने से कुटाई करते करते पिंड सा बन जावेगा, इसमे से २ माशा की मात्रा मे, चिलम मे रख तमाखू की तरह सुलगाकर धूम्र पान करे। यह योग ताजा ही लाभ करता है। इससे उपदंश मे आश्चर्यजनक लाभ होता है। पथ्य मे चने के बेसन की रोटी केवल घृत या मक्खन से खानी चाहिये। —आचार्य चन्द्रशेखर जी गौड

प्रमेह पिडिका पर—इसके १ भाग रस मे तुलसी पत्र, श्वेत सेम [निष्पावक] के पत्र और पटोल पत्र १-१ भाग का चूर्ण मिलाकर तथा काजी मे पीस, लेप करने से वातज प्रमेह पिडिका नष्ट होती है। —हा स।

पित्तज मेह पर—इसका चूर्ण और बबूल फूल चूर्ण १-१ भाग मे मिश्री २ भाग मिला ६ माशा की मात्रा मे बकरी के दूध से सेवन करे।

[९] बल वीर्य वृद्धि, दीर्घायु, वाजीकरण एवं रसायनार्थ—

ज्वरादि रोग जनित या प्रौढावस्था की निर्बलता को दूर कर शारीरिक शक्ति बढ़ाने के लिये—इसके पत्रो का

चूर्ण १½ तोला की मात्रा मे प्रतिदिन घृत, शहद और शक्कर मिलाकर १ वर्ष तक लेते रहने से बल वीर्य की वृद्धि होती तथा बुद्धि व स्मरण शक्ति भी बढ जाती है।

दीर्घायु के लिये– इसका रस नित्य प्रात १ मास तक सेवन करने से और केवल दूध पर रहने से बलवीर्य युक्त होकर मनुष्य १०० वर्ष तक जीवित रहता है

—गा औ र

वाजीकरणार्थ [कामदीपक रस]–१ तोला शुद्ध गधक के बारीक चावल जैसे टुकडे कर उन्हे ७ दिन तक धूप मे इसके रस की भावना देवें। फिर उसमें जायफल, जावित्री, कपूर और लौंग का दो-दो मासा चूर्ण मिलाकर गुड के साथ घोटकर १ से २ रत्ती की गोलिया बना लेवें।

प्रति दिन प्रात सूर्य की वन्दना के पश्चात् १ या २ गोली खाकर थोडा सेंधानमक तथा ७ कालीमिर्च चबाकर १० तोला दूध पीवे। इस प्रयोग मे बूढा भी युवा के समान हो जाता है।

—भा भै र

नोट–इस रसायन के लिये प्रयोग आगे विशिष्ट योगो में देखिये।

(१०) गर्भस्राव या गर्भपात तथा रक्तस्राव पर– गर्भवती स्त्री को इसके ४ माशा स्वरस मे समभाग गौदुग्ध मिला नित्य प्रात पिलाते रहने से अकाल मे ही उसका गर्भस्राव या गर्भपात नही होने पाता।

–वै भ

रक्तस्राव, मूत्र मार्ग या योनि मे होते रहने की शिकायत हो तो इसके पत्रो का चतुर्थांश क्वाथ सिद्ध कर मात्रा २½ से ५ तोला तक, प्रात साय सेवन करने से लाभ होता है। रक्त प्रदर मे भी इस प्रयोग से लाभ होता है।

(११) विषो पर—

पारे के विष पर—कच्चा पारा खाने मे आगया हो तो इसके २ भाग रस में अगस्त (हथिया) के पत्तों का रस और कलमी सोरा १-१ भाग मिलाकर सबको तक्र या दूध जल की लस्सी मे मिला ४-४ तोला की मात्रा मे दिन मे कई बार अथवा प्रतिदिन प्रात १ बार ३ दिन तक पिलाने से पारा मूत्र मार्ग से निकल जाता है।

जमालगोटा (जैपाल) के विकार पर–इसके स्वरस को पिलाने से लाभ होता है। जमालगोटे की शुद्धि के लिये उसे इसके रस मे खूब खरल करने से उसका दूषित विकार निकलकर यह परम शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार इसके रस द्वारा शुद्ध किये हुए जैपाल को चाहे किसी भी प्रयोग मे लिया जाय, कदापि पेट मे ऐठन वगैरा तकलीफो को नही करेगा।

गधक के विकारो पर भी इसके रस को पिलाने से शीघ्र लाभ होता है। गधक मे इसके रस की भावना ये देने से वह परम शुद्ध होकर रसायन कार्य के योग्य हो जाता है।

बिच्छू के विष पर इसके पत्तो को पीसकर बिच्छू के डंक की जगह पर जितने भाग मे सूजन आगई हो या जहा तक वेदना फैल गई हो वहा तक खूब अच्छी तरह मसलने से फैली हुई वेदना डक स्थान मे केन्द्रीभूत हो जाती है। फिर उसी स्थान पर अच्छी तरह मसल कर पत्तो की लुगदी को बाध देने से उस स्थान से भी वेदना निकल जाती है। साथ ही साथ इसके रस को नाक मे टपकाना भी चाहिये।

मूल–भागरे की जड वामक, रेचक, दाहशामक, शोथ प्रशमन, ज्वरघ्न, तथा रसायन है। इसे मूत्रदाह निवारणार्थ उपयोग मे लाते है।

कोथ (सडान) दूर करने के लिये इसका बाह्य प्रलेप व्रणादि पर करते है। उदर विकार निवारणार्थ इसे पेट पर बांधते है।

(१२) गुदभ्रंश पर—इसकी जड और हल्दी के चूर्ण को एकत्र पीस कर लेप करते रहने से वाराह दष्ट्र (गुद-भ्रंश रोग का एक भेद) नष्ट होता है। –भा प्र

(१३) ज्वर पर—जड २ माशा, अदरख १ माशा दोनो को पीस कर उसमे ५ तोला तक जल मिला गरम कर पिलाते है। शीत ज्वर दूर होता है।

चातुर्थिक ज्वर हो तो जड़ को पुष्य नक्षत्र मे लाकर

बाधते है। प्रति तीन दिन के बाद ज्वर के दिन ही प्राय बाधते है।

(१४) आमातिसार पर—छाया शुष्क मूल का चूर्ण १ माशा की मात्रा मे, विकार तेज हो तो २-२ घण्टे पर ३-४ बार जल के साथ देने से तथा विकार मन्द हो तो दिन मे ३ बार देने से शूल सहित इस विकार मे लाभ होता है। —गा औ र

(१५) योनिशूल पर—प्रसव के बाद गर्भाशय मे या योनि प्रदेश मे शूल होने लगे तो इसकी जड के चूर्ण को समभाग वेल की जड की छाल के चूर्ण के साथ मद्य (शराब) मिलाकर उचित मात्रा मे देने से शीघ्र ही शूल शमन हो जाता है। —व से

(१६) आख की फुली पर—(अञ्जन)—जड की छाल को छायाशुष्क कर खूब महीन चूर्ण करले। यह चूर्ण ६ माशा, काला सुरमा १ तोला, सिरस के बीजो की मीग १ तोला, हाथी के नाखून ३ माशा, कपर्द भस्म ६ माशा, हरा तूतिया भुना हुआ १ माशा और गोद बबूल ३ माशा, सब के चूर्ण को एकत्र सिरस के रस मे ८ दिन खरल कर कुछ उत्तम शहद मिला वत्तिया बना लेवे। इसे जल मे घिस कर आख मे अजन करे। फुली के लिये यह लाभकारी है।

—वैद्याचार्य श्री उदयलाल जी महात्मा

(१७) रसायनार्थ—(रसायन के लिये काला भांगरा लेना उत्तम होता है)। अभाव मे श्वेत या पीला भी काम मे लिया जा सकता है। इसकी जड को पुष्प नक्षत्र मे लाकर सूर्य के ताप मे सुखाकर कपडछन चूर्ण करे। यह चूर्ण पुष्प नक्षत्र का सूर्य हो उस दिन १ तोला की मात्रा मे काजी के साथ सेवन से रोग प्राप्ति नही होती है। तैल के साथ सेवन से वृद्धावस्था नही आती। १ महीने तक सेवन से सब रोग दूर हो जाते है। २ मास तक सेवन से खूब स्मरणशक्ति बढती है। ४ मास सेवन करने पर कठ किन्नर के समान हो जाता है। ६ मास सेवन करने पर व्यवहार और परमार्थ दोनो सुधारने की शक्ति आ जाती है। ७ वें मास मे नख व केश गलकर नये आजाते है। ९ मास तक सेवन से प्राणिमात्र मे आत्मभाव आता है। १० मास होने पर अकालमृत्यु की चिंता दूर होती है। १ वर्ष तक सेवन करके मनुष्य दीर्घायु बन जाता है। उसके सेवन काल मे कद्दू, करेला, धनिया और राई से परहेज करे।

—व गु.

बीज—भागरे के बीज बाजीकरण है। इनका प्रयोग काम शक्ति वर्धनार्थ किया जाता है।

नोट-मात्रा—स्वरस अच्छी तरह छाना हुआ ताजा स्वरस १ से २ ड्राम [६० बूद मे १२० तक]। उसका रस निकालकर कुछ देर तक कलईदार पात्र मे रखने से उस पर जो फेन आता है उसे निकाल डालना चाहिये। पात्र को हिलाना नही। बाद पात्र के रस को धीरे धीरे दूसरे पात्र मे निकालकर नीचे की गाद को फेंक दें। यही रस उपयोग मे लावे। इसकी मात्रा अधिक हो जाने से वमन होता है। बालको को इसकी १ या २ बूद शहद के साथ देवें।

पत्र चूर्ण ४ से १५ रत्ती। बीज चूर्ण १ से ३ माशा तक। ध्यान रहे उबालने से या क्वाथ करने से इसका गुण नष्ट हो जाता है। अत जहा तक हो सके इसके स्वरस का ही उपयोग करें। इसका चूर्ण भी विशेष गुणकारी नही होता तथापि रसायनार्थ चूर्ण लिया जाता है।

उष्ण प्रकृति के लिए यह हानिकारक है हानिनिवारक कालीमिर्च, शहद, अदरख है। प्रतिनिधि बिनौला है।

विशिष्ट प्रयोग—

[१] रसायनार्थ—वमन, विरेचन से शुद्ध होकर निम्न प्रयोगो का सेवन करें—

[अ] इसकी पत्ती को छायाशुष्क कर कपड छान चूर्ण बना शीशी मे सुरक्षित रखे। मात्रा—लगभग १ माशा घी ६ माशा और मिश्री ५ माशा एकत्र मिला [यह १ मात्रा है] नित्य सेवन से क्षुधा वृद्धि होती, दस्त साफ आता तथा चित्त प्रसन्न रहता है। यह प्रयोग लगातार ४० दिन तक पथ्यपूर्वक सेवन से शरीर हृष्ट पुष्ट होकर बुद्धि भी बढ जाती है।

[आ] उक्त प्रकार से तैयार किया हुआ पत्र चूर्ण १ भाग, काले तिल का चूर्ण आधा भाग तथा आमला चूर्ण आधा भाग, तीनो को एकत्र मिला, सबके बराबर मिश्री [या गुड] मिला कर, घी के चिकने मृत्पात्र मे

सुरक्षित रखें। मात्रा—१-१ तोला प्रात साय गौ दुग्ध के साथ सेवन से कोई रोग नही होता, अकाल मृत्यु और वृद्धावस्था का विशेष भय नहीं रहता। इस योग को 'भृङ्गराजादि चूर्ण' कहा गया है। स्व कविराज प्रतापसिंह जी का कथन है कि आश्विन शुक्ल पक्ष मे साधारण शरीर को शोधन कर इसे प्रात खाकर ऊपर से २० तोला दूध पीवे। ४ घटे तक कुछ न खावें। फिर यथेष्ट मात्रा मे भोजन करें। रात्रि मे सोते समय पुन इसे लेकर उतना ही दूध पीवें। कोई विशेष पथ्य की आवश्यकता नही। निरतर ३ मास के सेवन से ही शरीर मे परिवर्तन अनुभव होने लगता है। कामशक्ति जागृत होती है। यदि नियमित व सयमित जीवन की विधियो का पालन करें तो १ वर्ष मे शरीर तरोताजा हो जाता है।

—भा भै र

[इ] उक्त पत्र चूर्ण मे समभाग केवल काले तिल का चूर्ण मिलाकर रखे। इसे कम से कम १ मास तक सेवन करने तथा केवल दूध पर ही रहने से मनुष्य रोग रहित एव दीर्घ जीवी हो जाता है तथा उसके केश भौंरे के समान काले हो जाते हैं।

—वृ मा

[ई] अथवा छायाशुष्क किया हुआ इसका पचाग और त्रिफला समभाग का महीन चूर्ण कर उसमे चूर्ण के समभाग मिश्री मिला, नित्य १ तोला की मात्रा मे सेवन से अकालमृत्यु और वृद्धावस्था के कष्ट नही उठाने पडते।

—भा भै र

अथवा—सबसे उत्तम प्रयोग ये है—

[उ] शारीरिक शुद्धि हो जाने के बाद १ तोला ताजे हरे पचाग को थोडे जल के साथ घोट छानकर लगभग १ से ५ तोला तक रस निकाल कर प्रात सूर्य के सामने खडा होकर पी लेवें। ४–५ घण्टे तक कुछ भी न खावें। बाद मे केवल शक्कर मिला हुआ दूध पीवें। इस प्रकार १ मास तक निरंतर नित्य इसका सेवन कर, फिर धीरे स्वल्प प्रमाण मे सात्विक भोजन करे। शरीर मे नवीन शक्ति का सचार तथा बल वर्ण युक्त दीर्घायु प्राप्त होती है, जीर्ण सुजाक समूल नष्ट होता है।

—वृ मा

नोट—उक्त रस निकालने के बाद जो फुजला शेष रहे उसे पुन पानी मे पीसकर सर पर थोप ले। सूखने पर धोकर स्नान करलें। चूर्ण का सयमपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए मुनिवृत्ति का जीवन, औषधि-सेवन काल मे व्यतीत करे। अथवा—

[ऊ] इसके छाया शुष्क पचागके चूर्ण को इसके रस की २१ भावनायें देकर शुष्क होजाने के बाद उसमे दशवा भाग निम्न द्रव्यो का चूर्ण मिला लें। श्वेत चन्दन का बुरादा, वशलोचन, छोटी व बडी इलायची, पिप्पली, सोठ, मीठी वच, नागकेशर, मुलैठी, अकरकरा और लाजवती के बीज सबको समभाग महीन चूर्ण कर एकत्र मिला ले। मात्रा—आधा से १ तोला तक प्रात साय मिश्री मिले हुए बकरी के दूध के साथ सेवन से २० प्रकार के प्रमेह, श्वास, कास, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात नष्ट होकर शरीर मे नूतन स्फूर्ति होती है। पथ्य परहेज मे रहे।

—बूटी चित्राक से

[ए] इसके छाया शुष्क पचाग के २ सेर खूब महीन किये हुए चूर्ण मे आवले का चूर्ण और काले तिल का चूर्ण १–१ सेर मिला शीशी मे सुरक्षित रखे। प्रति दिन प्रात १। तोला चूर्ण मे समान भाग गुड अथवा दुगनी शक्कर मिला थोडा थोडा मुख मे डालकर दूध के साथ निरन्तर १ वर्ष तक सेवन से शरीर निरोग रहता है। वृद्धावस्था व अकाल मृत्यु का भय नही रहता। यह प्रयोग प्रमेह व मूत्राविकय को भी दूर करता है। —भ(ज बू

(२) कल्प प्रयोग—ऊपर जो इसकी जड का योग रसायनार्थ न० १७ मे दिया गया है, वह तथा विशिष्ट योग न० ७ के प्रयोग सब प्राय कल्प प्रयोग ही है। अन्य कल्प प्रयोग इस प्रकार है—

[अ] भृगराज कल्प—इसके बीजो को बोकर त्रिफले के क्वाथ से सीचने से जो इसके पौधे पैदा होगे, वे अत्यन्त कोमल होगे। प्रतिदिन प्रात उसके कोमल पत्तो [कोपलो] को [मुट्ठी मे आ सके उतने] लेकर थोडे से तिलो को साथ मिलाकर चबावे। और ऊपर से दो चुल्लू सभालू का रस, बिना गर्म किये हुये ही पी जावे पश्चात् सुपारी और इलायची आदि सुगन्धित पदार्थ युक्त पान

का बीडा लेवे। इसके ६ घण्टे बाद दूध, भात, खाड, मूग की दाल और घी युक्त भोजन करे। अन्य कोई चीज न खावे। इस प्रकार ६ मास तक सेवन से वृद्ध मनुष्य के केश भी कोमल एव निर्मल हो जाते है। शरीर नवीन, अत्यन्त कातिमान तथा दात सुदृढ हो जाते है।

—र चि म

[आ] भागरा, पिप्पली, पनवाड बीज, चित्रकमूल, शतावर, कृष्ण हरीतकी, आमला, बहेडा, सोंठ और गुड प्रत्येक ३० तोला सबको वारीक कर, गुड का पाककर चूर्ण मिला १-१ तोला की ३०० वटी बनावे। सावन भादो के मास से प्रारम्भ कर १-१ वटी प्रात सेवन करें। यह माजून वृद्धो को युवक तथा युवको को बलवान बनाती है।

इस योग को यूनानी मे माजून भागरा [काया कल्प] कहा गया है।

—यू चि सा

(३) भृगराजादि तैल [अ] इसका स्वरस २५६ तोला, ब्राह्मी स्वरस ६४ तोला, आवले का रस ६४ तोला, तिल तैल १२८ तोला तथा त्रिफला, नागरमोथा, कचूर, लोध, मजीठ, बावची, खरेटी की जड, चन्दन, पदमाख, अनन्तमूल, मडूर [कच्चा लौह किट्ट], मेहदी, प्रियगु, मुलैठी, जटामासी और कूठ प्रत्येक १-१ तोला इनका कल्क मिला, सबको एकत्र तैल पाक विधि से पका, छान कर रख लेवे। यह तैल नित्य सिर पर लगाने से बाल बढते तथा सिर का दर्द, बाल श्वेत होना और झडना ये विकार अच्छे होते है। स्वस्थ स्त्री पुरुष को नित्य सिर मे लगाने के लिये यह तैल उत्तम है।

—सिद्ध योग सग्रह

[आ] इसका रस ४ सेर, गुडहल [जपा] पुष्पो का रस आधा सेर, शुद्ध तिल तैल एक सेर तथा दूध दो सेर एकत्र मिला मन्द आग पर पकावे। पकाते समय उसमे इसका [भागरे का] कल्क २० तोला तक मिला देवे। तैल मात्र शेष रहने पर, छानकर उसमे गन्ध विरोजासत, तगर, दवना मरुवा और पानडी का महीन चूर्ण दो-दो मिला, बोतलो मे भर मुख अच्छी तरह बन्दकर, कुछ दिनो तक धूप मे रखे। यह तैल सुगन्धित एव उत्तम गुण कारी होता है। इसे लगाते रहने से बाल काले होते, झडते हुये बाल फिर से जमते तथा वे लम्बे व मुलायम होते है।

[इ] इसका रस, अदरख का रस और गोमूत्र २-२ सेर लेकर प्रथम दशमूल (समान भाग मिश्रित), कुलथी, सूखी मूली, सहजने की छाल व भारगी २०-२० तोला सब को जौकुट कर ८ सेर जल मे पका, २ सेर शेष रहने पर छान ले। फिर देवदारु, वच, कूट, सोया, सेंधा-काला-बिडनमक, हीग, नेपाली धनिया [तुम्बरु], त्रिकुट, अजवायन, श्वेत व काला जीरा, चित्रक, पीपलामूल, त्रिफला भागरा, कायफल समभाग मिश्रित २० तोला का कल्क बनाकर दो सेर सरसो के तेल मे इस कल्क को तथा उक्त क्वाथ और रसादि द्रव पदार्थ मिलाकर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छान ले। इसे पान एव नस्य द्वारा सेवन से वात कफज कास, श्वास, प्रतिश्याय, पीनस तथा अन्य कफज रोग नष्ट होते है।

—भा भै. र

[ई] इसका रस कडवी तूबी का रस, वस्त्र से छनी हुई स्वच्छ सौवीरक काजी, * दशमूल का क्वाथ, उर्द का क्वाथ, कुलथी का क्वाथ, और बकरी का दही २-२ सेर तथा तिल तेल एक सेर एकत्र मिला मन्द आग पर पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छान ले।

इसकी मालिश करे, कान मे डाले, किंतु पिलाना नही और न वस्ति कर्म मे प्रयुक्त करे। यह तेल कर्णरोग भयकर शिरशूल, आधी शीशी, भौह का दर्द, कनपटी व आखो की पीडा, कुष्ठ, पामा, त्वग्रोग और भयकर अपस्मार का नाशक है।

—हा स०

* गेहूँ अथवा जव भिगोकर छिलका निकाल कूटकर ८ गुने जल मे पका, सन्धान विधि से बन्द करें। शरद व ग्रीष्म मे ६ दिनो में, बसत व वर्षा मे ८ दिनो मे तथा हिम व शिशिर मे १० दिनो सन्धान सिद्ध होकर जो काजी तैयार होती है उसे सौवीरक कहते है। यह ग्रहणी अर्श व कफ विकारो मे लाभकारी है। मल भेदक, अग्नि प्रदीपक तथा उदावर्त्त, अङ्गमर्द, अस्थिशूल, आनाह, शिरो रोग व शिथिलता नाशक है। केशो को हितकारी, बल व. क

[उ] इसके १० सेर रस मे एक सेर तेल मिलाकर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छान लें। इसके यथोचित मात्रा मे सेवन से कास और श्वास मे लाभ होता है। —व से

[ऊ] इसके १ सेर स्वरस मे तिल तेल ७० तोला तथा मण्डूर चूर्ण, त्रिफला, व सारिवा (अनन्त मूल) प्रत्येक १-१ तोला (कुल ५ तोला) का कल्क मिलाकर पकावें। तेल मात्र शेष रहने पर छान ले। यह तेल सिर का दारुणक [शिर से भूसी झडना] असमय मे केशो का पकना, सिर की खुजली, और इन्द्रलुप्त (सिर के बालो का गिरना खल्वाट या गजापन Alopecia) रोगो को नष्ट करता है। —शार्ङ्गधर

[ए] इसके २ सेर रस मे मुलैठी का कल्क ५ तोला और तिल तेल आधा सेर मिलाकर पकावें। तैल मात्र शेष रहने पर छान ले। यह तैल नेत्रो को शीघ्र ही स्वच्छ कर देता है। दृष्टि को बढाता तथा इसकी नस्य लेने से १ मास मे वलि पलित का अवश्य नाश होता है, बाल पकने नही पाते। —व से

नोट—योग रत्नाकर मे इस प्रयोग मे दूध २ सेर मिलाकर तेल सिद्ध किया गया है और कहा गया है कि यह नष्ट हुई चक्षु को भी ठीक कर देता है।

[ऐ] जल प्राय स्थान मे [आनूपदेशज] उत्पन्न हुआ उत्तम पुष्ट भागरे का रस ८ सेर मे २ सेर तिल तेल तथा मजीठ, पद्माख, लोध, लालचन्दन या श्वेत चन्दन, गेरु, खरेंटी, हल्दी, दारुहल्दी, नागकेशर, प्रियगु मुलेठी, पुण्डरिया काष्ठ, श्यामालता (या कमल) ४-४ तो के एकत्र कल्क (दूध मे पीसकर बनाये हुये कल्क) को मिला पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छान लें। इस तेल के नस्य तथा मर्दन करने से केशपात [बालो का गिरना] शिरो रोग, गलग्रह, कर्ण रोग, नेत्र रोग आदि व्याधिया नष्ट होती है। इसके प्रयोग से खालित्य (गन्जापन) एव इन्द्र लुप्त भी नष्ट होकर स्निग्ध, घने एव घुघराले बाल पुन निकल आते है। इस प्रयोग को महाभृङ्गराज तेल भी कहते है। —भै र

नोट—ध्यान रहे शास्त्रो मे इन तेलो की जो महिमा कही गई है वह व्यर्थ कपोल कल्पित नही है। किंतु इनके बाह्य प्रयोगो से ही वह सिद्ध नही होती। भागरे का पथ्यापथ्यपूर्वक एव नियमपूर्वक, सयम के साथ आभ्यतर सेवन की भी आवश्यकता है। यह हमारा खास अनुभव है —सम्पादक

(४) भृङ्गराज घृत—भागरा, गिलोय, अडूसा दशमूल की प्रत्येक औषधि व कसौधी समभाग मिश्रित ४ सेर जौकुटकर ३२ सेर जल मे पकावें। ८ सेर शेष रहने पर छान ले। उसमे २० तोला पिप्पली का कल्क और दो सेर घृत मिला पकावे। घृत मात्र शेष रहने पर छान ले। इस घृत को शहद के साथ सेवन मे स्वरभेद और कास मे लाभ होता है —च द

(५) षड्बिंदु तेल—भागरे का रस ६ सेर ३२ तोला, बकरी का दुग्ध व काले तिलो का तेल प्रत्येक १ सेर ४८ तोला तथा एरण्ड की जड, तगर, सोया, जीवन्ती, रास्ना, सेंधा नमक, दालचीनी, वायविडङ्ग, मुलेठी व सौंठ समभाग मिश्रित ३२ तो का कल्क कर सबको एकत्र पकावे। तेल मात्र शेष रहने पर छान ले इसकी ६ बूंदे नित्यप्रति नासिका मे डालने (नस्य लेने) से समस्त शिरोरोग शीघ्र नष्ट होते, बालो का गिरना नष्ट होकर उनकी जडे मजबूत होती, दात दृढ होजाते है। दृष्टि तीव्र होती और बाहुओ का बल बढता है। —भै र

(६) रसमडूर—शुद्ध पारा २ तोला, शुद्ध गन्धक ८ तोला दोनो की कज्जली कर लोहखरल मे उसे डालकर उसमे हरड चूर्ण १६ तोला, मण्डूर भस्म ८ तोला मिला भागरे का रस १२८ तोला थोडा-थोडा डालते हुये घोटते तथा धूप मे सुखाते रहे। सब रस शुष्क हो जाने पर शीशी मे सुरक्षित रखे। मात्रा एक माशा प्रात साय घृत ३ माशा व शहद १ तोला के साथ सेवन से तथा पथ्य मे केवल दूध भात लेते रहने से कफ पित्तज रोग उदर शूल, परिणाम शूल, अम्ल पित्त, ग्रहणी विकार उग्र कामला, यकृत व प्लीहा वृद्धि का नाश होता है। —भै र.

इस योग मे श्वेत तथा काले भागरे दोनो का रस डालना ठीक होता है । अभाव मे श्वेत भागरे से ही काम चल सकता है, अश्वचोली रस मे भी इसके रस की ७ भावनाये देने से यह विशेप प्रभावकारी होता है ।
—सम्पादक

भृङ्गराजासव–भागरे के स्वरस १३ सेर मे १ सेर गुड और साढे ६ छटाक हरड का चूर्ण मिला चिकने मटके मे भर अच्छीतरह मुख बन्दकर रख दे । १५ दिन बाद छानकर उसमे पिप्पली, जायफल, लौग, दालचीनी, इलायची, तेजपात और नाग केशर का चूर्ण ८–८ तोला मिलाकर पुन मटके मे भर मुख बन्द कर देवे और १५ दिन बाद निकाल छान बोतलो मे भर लेवें ।

मात्रा—१ से ढाई तोला तक । भोजनोपरात यह धातु क्षय, सर्व प्रकार की खासी व कृशता नाशक अत्यत बलकारक एव कामोद्दीपक है । इसके सेवन से वन्ध्या स्त्री को सन्तान होती है । क्षय के रोगीकोइसकेसेवन सेपेशाव मे धातु का जाना शीघ्र बन्द होता है । यह आसव सुस्ती, निर्वलता, २० प्रकार के प्रमेह, स्मरण शक्ति की कमी, नेत्र रोग, श्वास, नजले के कारण होने वाला नेत्र विकार आदि रोगो को दूर करता तथा विगडे हुए रक्त को सुधारता है । —ग. नि.

भाट–देखिये-सोयाबीज । भाटा–देखिये-बेगन ।

भाटिया [Dalbergia volubilis]

अपराजिता कुल [Papilionaceae] की इस बडी जाति के झाडी के पत्र १०-१५ से मी तक लम्बे, अधिक चमकदार होते है । इसे बनखारा म –अलई, बन्दीगरजन और कुमायू की ओर भाटिया कहते हे । यह हिमालय के कुमायूँ प्रान्त के पूर्व की ओर तथा मध्य और दक्षिण भारत मे, कोकण मे अधिक होती है ।

गुण धर्म व प्रयोग--

बलवीर्य, स्नेहन व व्रण रोपण है । जीभ के छाले. फोडे, गले के फोडे व मसूढो की सूजन पर इसके रस के कुल्ले कराते है । छाल को „चबाया जाता है । नूतन सुजाक मे जड का रस २ तोला मिश्री के साथ देते है । पत्तो का रस मुख क्षत पर लगाते है ।

भारद्वाजी–देखो कपास मे । भाभिरग–देखो-वायविडङ्ग मे । भारग मूल—देखो भारगी मे ।
भिरचागन्ध–देखो-रूसा घास ।

भाटी (Fluegga Leucopyrus)

एरण्डकुल (Euphorbiaecae) के इस के क्षुप ३-६ फुट ऊचे, खडी व आडी कई शाखायुक्त, अलग-विखरी हुई टहनिया त्रिकोणाकार पतली पत्तियो से भरी हुई, पत्र-चौडाई लिये हुए गोल, १ ६ से २ ५ सेन्टीमीटर तक लम्बे तथा १ ३ से १ ६ तक चौडे; फूल–गुच्छेदार, पत्रकोण से पुष्प के सूक्ष्म श्वेत गुच्छे निकलते है । फल-गोल पकने पर श्वेत मोती जैसे रस भरे, चिकने, त्रिकोष्ठ-युक्त प्रत्येक कोष्ठ मे २ बीज 1/8 इच लम्बे, गहरे भूरे रङ्ग के चमकीले होते है ।

इसे पाटली भी कहते हैं ।

नाम–

स०—कपियद्रुम, भूरिफल, पाडुफली,श्वेत कम्बोज । म०—पाढरफली । गु०—शेणवी । प०—भाटी, गार्गस, गिर्यान, काकुन, बनूथी । हि०—पाटली । ले०—फ्लुइगा ल्युकोपास ।

यह बूटी पजाव, सिंध, सीलोन, बर्मा आदि प्रातो मे पाई जाती है ।

गुण धर्म व प्रयोग–

मधुर, वलकारक, वीर्यवर्धक, शीतल तथा मूत्राघात, पित्तरोग, मूत्रकृच्छ्र, रक्त विकार आदि नाशक है। इसका पत्र रस अथवा पत्ती को तमाखू के साथ पीसकर तैयार किया हुआ लेप, कुष्ठ युक्त घावो पर लगाते है। यह बूटी मछलियो के लिये विष है।

भांट (Clerodendron Infortunatum)

निर्गुण्डी कुल (Verbenacea) के इसके ३-४ फुट से १२ फुट तक ऊचे क्षुप.झाड़ीदार प्राय सभी स्थानो मे पाये जाते है। इसका प्रत्येक भाग कटु व दुर्गन्धयुक्त होता है। पत्र–विपरीत ४-६ इंच लम्वे, ३-६ इच चौडे; लटवाकार, दोनो ओर रोमश, कटी हुई किनारे के, लम्वी नोक एव लम्वी पत्रनाल से युक्त, वाह्य पृष्ठ भाग स्याई वर्धनशील व लाल तथा आभ्यन्तर भाग रक्ताभ श्वेत होता है। फूल-श्वेत,लम्वे,सुगन्धित, पत्र के मूल भाग से निकलते है।

औषधिकार्यार्थ प्राय: पत्र व मूल का प्रयोग किया जाता है।

नाम–

सं०–कारी, मन्दिरा। हि०–कारू, घटो, थुनेरा, म०–करि, मन्दिरा; बं० भाट, घेंटु; प०–वरंगु, कलीबसुती तथा ले०–क्लोरोडेन्ड्रान इन्फार्चुनेटम कहते है।

गुण धर्म व प्रयोग–

तिक्त, कटुपौष्टिक, उत्तम आनुलोमिक, पित्त सारघ्न, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, तृतीयक व चातुर्थिक ज्वर मे लाभदायक है। इसके गुणधर्म प्राय. चिरायता जैसे है।

वालको के प्राय:लम्वे कृमि (केंचुए जैसे) रोग मे इसके पत्ररस को पिलाते है। उदरशूल व अतिसार मे जड को तक्र मे पीसकर पिलाते है। त्वचा के रोगो मे (खुजली मे) इसका वाह्य त्वचा पर प्रयोग करते हैं। वालको को पत्र चूर्ण २ से ५ रत्ती तक शहद व सुगधित द्रव्यो के साथ देते है।

इस वूटी के क्षुप प्राय: शाल वनो मे, मध्य प्रदेश व सीलोन मे पाये जाते है।

भांड—देखो—भंडा।
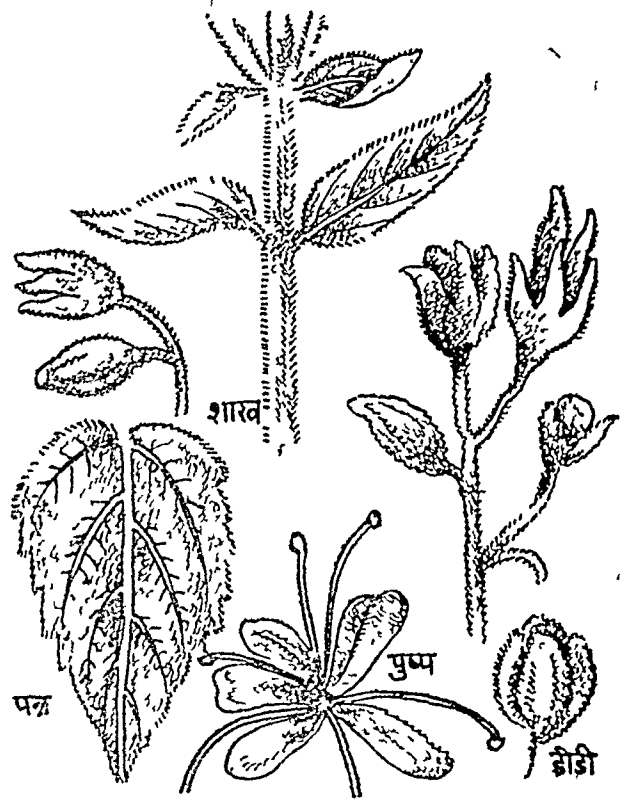
भांवर (Ipomoea Hispida)

त्रिवृत्त कुल (Convulaceae) की इस बूटी के पौधे निशोथ के पौधे जैसे प्राय· समस्त भारत व सीलोन मे पैदा होते हैं।

नाम–

इसे पजाव की ओर भावर, हरनखुरी उत्तर प्रदेश मे हारा तथा ले०—इपोमिया, हिस्पिडा कहते हैं।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसके पचाग को पीसकर तेल मे पकाकर सधिवात, गलित कुष्ठ, व्रण, मृगी, व मस्तक शूल पर लगाने से लाभ होता है।

भारंगी (Clerodendron serratum)

निगुण्डी कुल (Verbenaceae) के इस वहु वर्षायु ५-८ फुट ऊचे शाखा रहित या अत्यल्प शाखायुक्त (जो शाखायें होती है,वे चौपहल.पीले रङ्ग की होती है), पत्र—७-८ इञ्च लम्वे,लम्वगोल १-२ इंच चौडे,नोकदार, रूक्ष, तीक्ष्ण, ऊपर की ओर कुछ काले धव्वो से युक्त, पिछला भाग सूक्ष्म रोमश, पत्र-वृन्त—छोटा अतिदृढ, पुष्प—अग्र-भाग पर गुच्छो मे, वाह्य रूप मे अति सुन्दर दो शाखावाली शिथिल मजरी मे, पुष्प दल ½ से १½ इच लम्वे। पुष्प वाह्य कोप प्याली के आकार का छोटे ३ खण्डयुक्त अन्तर-कोप—हल्का नीला,पुष्प नलिका लगभग आधा इच लम्वी। फल—गोल कडा, पकने पर नारङ्गी रङ्ग का,कुछ रसदार पुष्प काल—मई से अगस्त तक प्राय ग्रीष्म मे फूल व वर्षा मे फल आते है। मूल या जड ग्रन्थियुक्त होती है जो औषधि प्रयोग मे विशेष आती है।

इसके क्षुप हिमालय की तराई मे नेपाल, कुमाऊ, खासिया पहाड और आसाम तक तथा व्रह्मा, नीलगिरी, पश्चिमघाट, दक्षिण भारत व सीलीन मे अधिक पाये जाते है।

नोट न० १—इस बूटी के विषय मे कुछ मत भेद है। अधिकाश विद्वान तो प्रस्तुत प्रसग की भारंगी को ही शास्त्रीय भारङ्गी मानते है। किंतु इसी नाम से निम्नाकित ३ वूटिया भी व्यवहृत होती है। ध्यान रहे प्राय बाजारो मे इसी शास्त्रीय भारगी के नाम से जो मोटी-मोटी छाल विकती है, वह इसकी छाल नही है। कारण इस छोटे से क्षुप की छाल इतनी मोटी नही हो सकती। मालूम होता है यह छाल निम्न नोट न १ करुई-तिथाई (भारगी) की है, जो इससे भिन्न कुल की है।

[I] भारगी न २—Premna Herbacea प्रस्तुत प्रसग की भारगी के ही कुल के ३-८ फुट तक ऊचे इस अनेक शाखायुक्त क्षुप के काण्ड चतुष्कोणाकृति, पत्र-

अभिमुख ६ इच लम्बे ४॥ इच चौडे, दन्तुर, प्राय ३-३ पत्र एक साथ, रुक्ष व भगुर, पुष्प—वडे वडे गुच्छो मे गहरे लाल या कुछ नीले रग के, मूल (जड़)-भूरे रग की टेढी मेढी, लगभग १ इच मोटी, छाल पतली, गधरहित स्वाद मे कुछ कडुवी होती है।
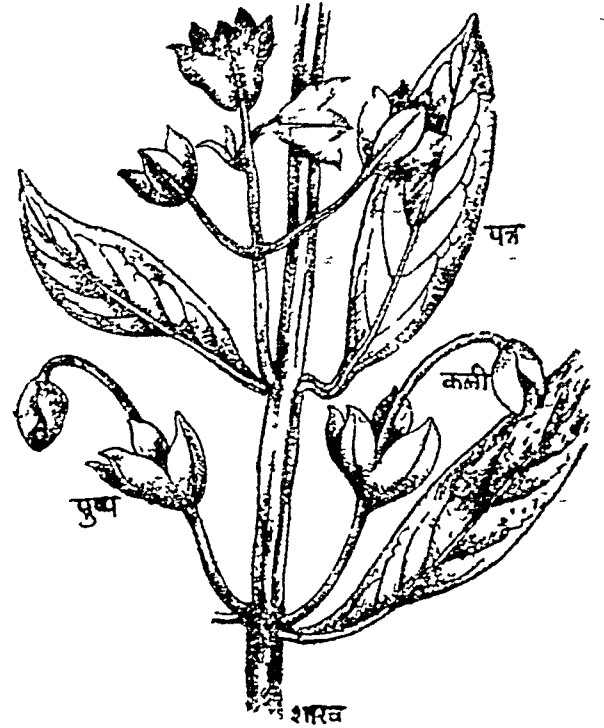
इसके क्षुप हिमालय व दक्षिण मे कोकण की पहाड़ी प्रदेशो मे वर्षाकाल मे पैदा होते हैं। कोकण की ओर इसके जड की छाल ही औषधि कार्यो मे भारगी के नाम से विशेष व्यवहृत होती है।

नाम—

सं—भूमि जम्बूक, भारंगी। हिं०—भारंगी।

म०—गणतु भारगी। गु०—भारगी। व०—भुइजाय, वामन हाटी। लें०—प्रेम्ना हरबेसिया।

रासायनिक सगठन—

जड की छाल मे एक नारगी रग की अम्ल राल तथा अत्यल्प मात्रा मे एक क्षाराभ एव स्टार्च पाया जाता है। इसमे टेनिन नही होता।

गुणधर्म व प्रयोग—

दक्षिण मे यद्यपि भारगी के नाम से इसका व्यवहार होता है तथापि इसमे भारगी के यथार्थ गुण नही है। डा० देसाई लिखते है कि इसका उपयोग करके देखा गया है। इसमें असली भारगी के गुण नही मालूम पडे। प्रतिश्याय आदि कफ विकारो मे इसका उपयोग किया जाता है। तमक श्वास मे इसका कल्क, सोठ तथा उष्ण जल के साथ या जड को अदरख के स्वरस या उष्ण जल के साथ देते हैं।

जड उत्तेजक,धातुपरिवर्तक, दीपक, कटुपौष्टिक तथा कफ विकृति, यकृत विकृति, श्वास, कास, ज्वरादि मे प्रयुक्त होती है।

पत्र—वातुपरिवर्त्तक, ज्वर,कफ, सधिवात मे दिये जाते हैं। व्रणो को पकाने के लिये पत्तो की पुल्टिस बाधते है।

II भारगी—चिगारी, ब्रह्मयष्ठी Clerodendron Siphoneohthus।

उक्त असली भारगी के ही कुल की इस खडे, ४ से १३ फुट तक ऊचे, छोटी शाखायुक्त क्षुप के काण्ड पोले, कुछ रसमय, पत्र—रचना मे चक्राकार, प्रति चक्र मे ३ से ५ तक, ६-९ इच लम्बे, १-१½ इच, लम्ब गोल, पतले कुछ कडे, भालाकार, छोटी नोक युक्त, सकरे, अखड या तरगदार किनारे वाले चिकने; पुष्प—शिथिल मजरी मे प्राय ३-३ एक साथ, आधा इच व्यास के, ३-५ इच लम्बे श्वेत, पुष्प—दल लम्बे,रेखाकार, पुष्पाभ्यन्तर नलिका ३-५ इच लम्बी,मुडी हुई, अति कोमल, फल—आधा अच व्यास के पकने पर गहरे नीलाभ हरित या गहरे लाल वर्ण के हो जाते हैं।

पुष्प—जून, जुलाई मे तथा फल—अगस्त सितम्बर में आते हैं।

इसके क्षुप बगाल, बिहार, कुमाऊं, सिक्किम व आसाम से तेनासरिम तक तथा दक्षिण मे महाराष्ट्र कर्णाटक, मद्रास के पश्चिम घाट मे अधिक पाये जाते है। बागो मे ये सजावट के लिये लगाये जाते है। बगाल मे यह विशेष प्रचलित है। इसके क्षुपो मे एक प्रकार का गोद निकलता है।

नाम—

स—ब्रह्मयष्ठी, ब्राह्मणी। हि—चिगारी भारगी, अर्नाह, दवाए मुबरक। म—भारगी। व.—वामन हाट्टी, बमनोटी। ले—क्लेरोडेंडान सिफोनान्थिस, सिफोनेन्थस इडिका (Siphonanthus Indica)।

गुणधर्म व प्रयोग—

गुणधर्म साधारणत असली (प्रस्तुत प्रसग की भारगी के जैसे ही है। जड—कास, श्वास और कठमाला में उपयोगी है। इसका गोद उपदग जन्य सधिवात पर प्रयुक्त होता हैं। रोगो से बचने के लिये इसके काण्ड के पोले टुकडो को, बगाल की ओर गले मे, बाधा जाता है। राजयक्ष्मा मे जड़ का कल्क और सोठ चूर्ण को उष्ण जल से पिलाया जाता है। मास क्षय वाले बालक को जड के कल्क व क्वाथ से सिद्ध किये हुये तेल की मालिश करते है। छत्तेदार फुसियो के नाशार्थ कोमल पत्र व डालियो का निचोडा हुआ रस घृत मे मिलाकर लगाते है।

भारगी नं० ४ करूई तिथाई Picrasma Quassi Benn।

इगुदीकुल (Simarubacese) के इस बडे, अल्प किन्तु मजबूत प्राय श्वेत दागो से युक्त शाखा वाले क्षुप की छाल बहुत कडवी, पत्र—अयुग्म पक्षाकार, ६-१५ लम्बे, अरलू वृक्ष के पत्तो के समान, रक्त रोमश, पत्रक सख्या मे ९-१४ अभिलट्वाकार, आरा जैसे, अग्रभाग मे लम्बे, सबसे नीचे के पत्रक बहुत छोटे, पुष्प—हलके हरे रग के गुच्छो मे, फल—बहुत छोटे पकने पर काले रग एक बीज युक्त होते है।

इसके क्षुप हिमालय के बाहरी भाग मे चिनाब से

लेकर पूर्व की ओर ३ से ७ हजार फुट की ऊंचाई पर तथा चम्बा, कुल्लू, बशहर, उत्तरी गढवाल मे ६ से ८ हजार फुट की ऊ चाई पर एव नेपाल, भूटान एव आसाम मे खासी व नागा पहाडियो पर पाये जाते है।

इस क्षुप के काण्ड के टुकडो का व्यवहार बगाल मे भारगी नाम से किया जाता है। वे टुकड़े पीताभ श्वेत या चमकीले पीले रंग के, हलके, लचीले, सहज मे ही में टूटने वाले, गन्धहीन और स्वाद मे अत्यन्त कडवे होते है। यह एलोपैथी की क्वाशिया नामक वनस्पति की उत्तम प्रतिनिधि है।

नाम—

हि.—कडूई-तिथाई, भारगी। म.—कर्शशिंग। प.—तिथु, वेरिंग, पुथोरिन। द.—भूरूंगी। अ.—क्वसिया (Quassia)। ले—पिक्रेस्मा क्वसिओइडिसे।

रासायनिक संगठन—

इसमे पिक्रस्पिन (Pirasmin) के सदृश एक क्षाराभ ०.०५%, क्वासिन (Quassin) नामक कडुवा पदार्थ तथा अन्य प्रभावशील एवं क्लोरोफार्म मे घुलनशील कडुवा पदार्थ ०.१५% पाया जाता है।

गुण, धर्म और प्रयोग—

भारगी- रूखी, चरपरी, कडवी, रुचिकारी, गरम, पाचक, हल्की, अग्नि को प्रदीप्त करने वाली, कषैली, गुल्म, रुधिर विकार, सूजन, कोस, श्वास, पीनस, ज्वर तथा वात विनाशक है। —भा. नि.

भारगी को कृमि और दाह नाशक विशेष बतलाया है (रा नि) और भी इसके वात ज्वर, हिक्का, गुल्म, ज्वर, वातरक्त, क्षय तथा पीनस नाशक गुण धन्वन्तरि निघण्टु मे लिखे है।

पत्तो के गुण—ज्वर, हिक्का, दाह और त्रिदोष नाशक लिखे है। यह रस मे तिक्त और कटु है। गुण मे दीपन, रूक्ष और [नि र] लघु है। वीर्य मे उष्ण तथा विपाक मे कटु है। वात कफ दोषो की शामक और फुफ्फुस पर इसका प्रभाव है। खास करके ये प्रतिश्याय, यक्ष्मा, कास, पीनस, वात कफ, ज्वर, नेत्र रोग, जलोदर और गलगण्ड नाशक है।

यूनानी मत से—

यह वनस्पति गरम और खुश्क होती है। यह सूजन को उतारती है। भूख वढाती है। कच्चे दोषो को पका कर निकाल देती है। सूजन, खासी, कफ के उपद्रव और कफ से होने वाले ज्वर को आराम करती है। सांस की तगी को दूर करती है। योनि के दर्द और पेट के दर्द से होने वाले ज्वर को भी यह दूर करती है। दर्पनाशक इसका दर्पनाशक इमली का सत या इमली का निर्यास है।

इसके चूर्ण की मात्रा डेढ से चार माशे है। अनुपान जल, मधु और अदरक का रस है।

प्रयोग—

१ ज्वर और जुकाम—भारगी की जड का क्वाथ बनाकर पिलाने से ज्वर या जुकाम मिटता है।

२ नेत्र रोग—इसके पत्तो को तेल मे औटाकर लगाने से आख के पलको की सूजन मिटजाती है और गीडो का आना बन्द हो जात है।

३ दमा और खासी—भारगी मूल त्वक और सोठ को समान भाग लेकर बनाया गया चूर्ण ३ माशे की मात्रा मे गरम जल के साथ बार-बार लेने से दमा और खांसी मे लाभ होता है।

(च. चि अ २१-२२)

४ श्वास का दौरा—भारगी के मूल का कपडछन चूर्ण ३-३ माशा आधर घण्टे पर २-३ बार शहद के साथ देने पर घबराहट का ह्रास हो जाता है।

५ हिक्का—भारगी मूल का चूर्ण ३-३ माशे आव श्यकतानुसार दिन मे ४-६ बार शहद के साथ चटाने पर हिक्का निवृत हो जाती है।

६. रक्त गुल्म [कुरण्ड]—स्त्रियो के गर्भाशय मे होने

वाला गुल्म बहुत न बढा हो तो भारगी, पीपल, करज की छाल, पिपलामूल और देवदार को समभाग मिलाकर चूर्ण बनावें। इसमे से ४-४ माशे चूर्ण तिल के क्वाथ के साथ दिन मे दो बार देते रहने से रक्त गुल्म नष्ट हो जाता है।

७ वृद्धि रोग—भारगी की जड़ की छाल यव के पानी मे पीसकर गरम करके अण्डकोष की सूजन पर लगाने से अवश्य मिटती है। —वङ्गसेन

विशिष्ट योग--

भार्ग्यादि क्वाथ १—भारगी मूल त्वक्, हर्र, वच, नागरमोथा, हल्दी, मुलैठी और पित्त पापडे का क्वाथ पित्त कफ ज्वर को नष्ट करता है —भा. भै र.

भार्ग्यादि क्वाथ २—भारगी, गिलोय, मोथा, देवदारु, कटैरी, सौठ, पीपल और पोखरमूल का क्वाथ पीने से श्वास और ज्वर नष्ट होने है तथा क्षुधा और अग्नि की वृद्धि होती है। —भा भै. र

भार्ग्यादि क्वाथ ३—भारगी, मोथा, पित्त-पापडा, पोखरमूल, सौठ, हर्र, पीपल,और दशमूल समान भाग लेकर क्वाथ बनावें।

यह क्वाथ विषम ज्वर, सन्निपात, जीर्ण ज्वर, शोथ शीत और अग्नि माद्य को नष्ट करता है।

भार्ग्यादि क्वाथ ४—भारगी, सोठ, कटेरी, कुलथी और मूली समान भाग लेकर क्वाथ बना लीजिये।

इस क्वाथ मे पीपल का चूर्ण मिलाकर पीने से खासी और श्वास का नाश होता है।

भार्ग्यादि क्वाथ ५—भारगी, पित्तपापड़ा, सोठ, वासा, पीपल, चिरायता, नीम की छाल, गिलोय, नागरमोथा और वामन वृक्ष की छाल समान भाग लेकर क्वाथ बनावें।

यह क्वाथ जीर्ण ज्वर, धातुगत ज्वर विषम ज्वर और उपद्रवयुक्त भयकर ज्वरादि समस्त ज्वरो को नष्ट करता है। यदि इस केवल दो दिन ही सेवन कर लिया जाय तो रोगी यमराज के फन्दे से छूट जाता है।

भार्ग्यादि क्वाथ ६—भारगी, मोथा, पित्तपापड़ा धमासा, सोठ, चिरायता, कूट, पीपल, कटेरी, और गिलोय समान भाग लेकर क्वाथ बनावे।

यह क्वाथ जीर्णज्वर, सतत, सन्तत, अन्येद्यु, तृतीयक और चातुर्थिक ज्वर को नष्ट करता है।

भार्ग्यादि क्वाथ ७—भारगी, पोखरमूल, हर्र, कटेरी, सोठ और गिलोय समान भाग लेकर क्वाथ बनावे। यह क्वाथ तन्द्रिक सन्निपात को अवश्य नष्ट कर देता है।

भार्ग्यादि क्वाथ ८—भारगी, अरणी, पोखर-मूल, कटेरी, सोठ, मिर्च, पीपल, जंगली जमीकद, काकडा सिंगी, कुटकी और रास्ना समान भाग लेकर क्वाथ बनावे। यह क्वाथ कर्णक सन्निपात को अवश्य नष्ट कर देता है।

भार्ग्यादि क्वाथ ९—भारगी, पोखरमूल, रास्ना बेल की छाल, अजवायन, सोठ, दशमूल और पीपल समान भाग लेकर क्वाथ बनावे।

इसके सेवन से सन्निपात ज्वर, हृदय और पसली का शूल, आनाह, खासी, श्वास, अग्नि माद्य और तद्रा नष्ट होती है।

भार्ग्यादि क्वाथ १०—भारगी और गज पीपल का मन्दोष्ण क्वाथ पीने से कफ, खासी, प्रतिश्याय, श्वास और हृद्रोग नष्ट होता है।

भार्ग्यादि गण—भारगी, पोखरमूल, नागरमोथा, कटेरी, गोखुरू, बड़ी कटेरी, कर्णिनी, सोठ समान भाग लेकर क्वाथ बनावे।

यह क्वाथ कफ पित्तज ज्वर, हृल्लास, अरुचि, छर्दि तृष्णा, दाह और विबध को नष्ट करता है।

भार्ग्यादि चूर्णम् १—भारगी, सोठ और पीपल का चूर्ण १-१ भाग लेकर उसे ३ भाग गुड मे मिलावे।

यह चूर्ण श्वास और खासी को नष्ट करता है।

भार्ग्यादि चूर्णम् २—भारगी, काकडासिगी, चव्य, तालीस पत्र, कालीमिर्च और पीपला मूल १०-१० तोले, सोठ ३० तोले, पीपल और गज पीपल १०-१० तोले, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर और

खस ५-५ तोले और सफेद खाड २० तोले लेकर यथा विधि चूर्ण बनावे ।

यह चूर्ण आठ प्रकार के ज्वर, भयकर खासी, श्वास, शोथ, शूल, उदर रोग, आध्मान और त्रिदोष को नष्ट करता है । मात्रा-३ से ४ माशे ।

भार्ग्यादि योग—भारगी, रास्ना और काकडा सिंगी के चूर्ण को शहद मे मिला कर चटाने से बालको की खासी और श्वास का नाश होता है ।

भार्गीगुडावलेह—भारगी की जड ६। सेर, दशमूल ६। सेर और हर्र १०० नग (१सेर) लेकर भारगी, और दशमूल को अधकुटा करले और हर्रों को कपडे की पोटली मे बाधले एवं सबको एकत्र मिलाकर १०० सेर पानी मे पकावे २७ सेर पानी शेष रहने पर हर्रों को अलग निकाल ले तथा क्वाथ को छान ले ।

इस क्वाथ मे ६। सेर गुड मिला छाने और फिर उसमे उपरोक्त हर्र डालकर पुन. पकावे । जब लेह के समान गाढा हो जाय तो अग्नि से नीचे उतार लें और ठण्डा होने पर उसमे ६० तोले शहद तथा पाच-पाच तोले सोठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, इलायची और तेजपात का चूर्ण तथा २।। तोला जवाखार मिलाकर चिकने पात्र मे भरकर रख दे ।

इसमे से नित्य प्रति १ हर्र और २।। तोला अवलेह खाने से भयकर श्वास और ५ प्रकार की खाँसी नष्ट होती तथा स्वर वर्ण और जठराग्नि की वृद्धि होती है ।

२३ भार्ग्यादि लेह—भारगी, मुलैठी का चूर्ण, शहद और घी मे मिलाकर चाटने से श्वास नष्ट होता है ।

२४ भार्ग्यादि लेह—भारगी, मुनक्का, कचूर, काकडा-सिगी, पीपल, सोठ के समान भाग मिश्रित चूर्ण को गुड और तेल मे मिलाकर चाटने से वातज खासी नष्ट होती है ।

२४ भार्ग्याद्यवलेह—भारगी, हर्र, वासा और कटेली एक-एक सेर लेकर सबको ३२ सेर पानी मे पकावें और ८ सेर पानी शेष रहने पर छानकर उसमे एक सेर गुड मिला कर पुन पकावे । जब वह गाढा हो जाय तो उतारकर ठण्डा करले । तदन्तर उसमे बीस तोला शहद और २।।-२।। तोले पीपल, जायफल, काकडासिगी, मुलैठी, लौग, वशलोचन और हल्दी का चूर्ण मिलाकर चिकने पात्र मे भर कर रख दे ।

२६ भार्गीषट्पलक घृतम्—कल्क, पीपल, पीपलामूल, चव्य, सोठ, चीता और जवखार पाच-पाच तोले लेकर पीस लें ।

क्वाथ—दशमूल की प्रत्येक वस्तु अरण्डमूल और भारगी समान भाग मिश्रित १।। सेर लेकर सबको अध-कुटा करके बारह सेर पानी मे पकावें और तीन सेरपानी शेष रहने पर छान ले ।

विधि—दो सेर घी, उपरोक्त कल्क तथा क्वाथ और दो सेर दूध तथा तीन सेर दही एकत्र मिलाकर पकावे और घृत मात्र शेष रहने पर छान ले ।

यह घी गुल्म, उदर रोग, अरुचि, भगंदर, अग्निमाद्य, खासी, ज्वर, क्षय, शिरो रोग, ग्रहणी विकार और वात-कफज रोगो को नष्ट करता है ।

२७ भार्ग्यादि घृतम्—भारगी का क्वाथ ८ सेर, घी ४सेर, दही १६ सेर और भारगी का कल्क आधा सेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकावें । जब घी मात्र शेष रह जाय तो छान ले ।

इसे सेवन करने से वातज खासी नष्ट होती है ।

भिण्डी*

यह एक वर्ष जीवी शाक वर्ग एव कार्पासादि कुल (Malvaceae) का पौधा है जो समस्त भारत

* यह श्री त्रिवेदी जी का आखिरी लेख है । जिस समय पर वह मृत्यु शय्या पर पडे थे उस समय उन्होने इसे बोलकर लिखाया था । इससे पूर्व की बनौषधि भारगी से आधा उन्होने स्वय लिखा था तथा "गुणधर्म प्रयोगादि" से आगे श्री उदयलाल जी महात्मा का लिखा हुआ है । इस "भिण्डी" के प्रकरण से आगे सभी बनौषधियो का विवेचन श्री उदयलाल जी महात्मा द्वारा किया गया है ।

—सम्पादक

वर्ष मे पैदा होता है, मुश्कदाना वा लताकस्तूरी इसका ही एक भेद है।

नाम–

इसे स —भेडा, भिडा, करपर्णफल, भिंडिनिका आदि हि —भिंडी, भेडा, रामतुरई, लिलिविग्गा आदि। व —टेडश, धेनुरस। गु —भिंड भिंडा। म —भेडा। त —वेंडाई तै —वेंडा। फा —वामिया। अ —लेडीज फिगर (Lady's Finger) और ले —हिबिस्कस एस्क्युलेटस (Hibiscus Esculentus) कहते हे।

पहिचान—इसका पौवा प्राय ५ फुट तक ऊचा होता है। पत्र दतुर, चमकीले, प्राय कपास के पत्र जैसे, पुष्प–श्वेत वर्ण के कही कही लालामीयुक्त पीतवर्ण के होते है। फल–६ इच से ९ इच तक लम्बे, ½ इच से १ इच तक ६ या ८ पहल मे चौडे होते है। जो नोक की तरफ क्रमश पतले नुकीले होते जाते हे। कोई कोई पौवे व फल रोमश भी होते हे।

नोट न० १—वनभेंडी नाम का एक दूसरा पौधा होता हे जो एक प्रकार का रान का पौधा है। इसके पत्ते, फूल, फल आदि भिंडी के समान ही होते हे। इसे वन भिण्डी भी कहते हे। —आयु० वि० कोष खड ३

नोट न० २—रान भेडी (जगली भिंडी)—इसका पौधा महाराष्ट्र, गोवा, सावतवाडी मे अविकतर पाया जाता है। लॅटिन मे इसे Urena cobeta [युरेना कोवेटा] कहते हे इसका उपयोग स्थानिक जनता पौष्टिक द्रव्य के समान विशेषकर प्रमेहरोग पर करती हे।—ज०गु०भाग ५

नोट न० ३—वचेटा नाम का एक पौधा और होता है जिसे सस्कृत व मराठी मे वनभेडा, काठियावाड मे स्वर्ण भिंडी तथा लैटिन मे युरेना लोबेटा [Urena Lobeta] कहते है। इसका पौवा बरसात के दिनो मे घास के साथ पैदा होता हे जो १ से २ फुट तक ऊचे फूल गुलाबी रंग के और फल ५ खाने वाले होते है जिन पर टेडी नौक वाले काटे होते हे। इसे सधिवात, उदरशूल आदि पर प्रयोग करते है। —व० च० भाग७

नोट न० ४—लोटलोटी नामक उक्त वचेटा जैसे गुण धर्मो वाला १॥ से २ फुट ऊचा एक पौधा और पाया जाता है जिसे लैटिन मे युरेना सिन्यूएटा [Urena Sinuata] कहते हे। इसके पत्र ५ कोने वाले और फूल फीके गुलावी रग के होते है। इसे काठियावाड मे वगडाऊ भिडो कहते है। इसका उपयोग कटिवात, आतो और मूत्राशय की सूजन पर किया जाता है। —व० च० भाग ९

नोट न० ५—माखनियो भिडो–इसका पौधा २ से ६ फुट तक ऊचा भिंडी के समान पत्र-पुष्प-फलयुक्त होता है। इसके पौधे पर मक्खन के समान मुलायम रूये होते है। इसीसे इसका नाम माखनियो भिंडो सार्थक जान पडता है। लैटिन मे हिबिस्कस एन्गूलोसस [Hibiscus Angulosus] कहते है। यह कच्छ मे अधिक होता है। वहा के लोग इसकी शाक बनाकर खाते है और भिंडी के समान औषधि रूप मे व्यवहार भी करते हैं।

प्रयोज्याङ्ग—कच्ची फली, बीज और मूलत्वक्।

रासायनिक सगठन–

ताजी फली मे विपुल लुवाव, श्वेतसार और अविकाविक श्लेष्म नि सारक द्रव्य और सूखी फली मे २% मासल द्रव्य, क्षार मे–यवक्षार और मग्नेशिया तथा सूखे बीजो मे २॥% गोरा जनक सत्व रहता है।

प्रकृति—दूसरे दर्जे मे सर्द एव तर।

गुणधर्म व प्रयोग–

यह चिकनी, लुआवदार, पौष्टिक, कामोद्दीपक, आनाहकारक, स्नेहन और मूत्रल होती है। गरम प्रकृति वालो के लिये पेचिस, अन्त्रव्रण, सुजाक और गरम खासी मे लाभदायक है। पेचिस और सुजाक मे इसका लुवाव निकालकर पिलाना गुणकारी हे। कोमल भिंडी जिसमे वीज न पडे हो का चूर्ण वनाकर खिलाने से शुक्र प्रमेह तारल्य मे उपकार होवा है। इसका काढा मिश्री के साथ देने से मूत्रकृच्छ्र, मूत्रावरोध, पथरी और सुजाक मे हितकारी है।

दोष—यह खासी, मन्दाग्नि, वात और पीनस रोगी को हानिकारक हे।

हानि निवारक—गरम मसाला और अदरख।

मात्रा—औषधि रूप मे ५ से ७ माशे तक।

रोगानुसार विशिष्ट प्रयोग—

१ —मूत्रकृच्छ्र—भिडी और उसके बीजो का चेप निकालकर मिश्री मिला पीने से मूत्रकृच्छ्र की दाह मिटती है।

२ मूत्र और वीर्य की दाह—मूत्र और वीर्य सम्बन्धी अगो की दाह मिटाने के लिये भिडी और उसके बीजो का शरबत बहुत उपकारी होता है।

३ प्रमेह—भिंडी की सूखी जड के चूर्ण मे मिश्री मिलाकर खाने और कच्ची भिंडी के चूर्ण मे मिश्री मिला दूध के साथ फाकने से लाभ होता है।

४ पुरुषार्थ वृद्धि—भिंडी की जड का पा॰ बनाकर खाने से पुरुषार्थ की वृद्धि होती है।

भिंत गलोडी (Linaria Ram osisissima) wall

जल नीम कुल (Scrophulariaceae) की वनस्पति है। इसके पौधे लताओ की तरह दीवालो पर तथा नदी किनारे उगते है। इसकी जड दीवाल के अन्दर रहती हे और उससे बहुत सी पतली-पतली शाखाये निकलकर दीवाल के अन्दर फैल जाती हे। इसके पत्ते छिरेटे (जल जमनी) के पत्तो के मानिद होते है। इसके फूल पीले और फल छोटे-छोटे होते है।

नाम—

हिं०—भीत गलोडी। गु०—भीत गलोडी, कानोटी। कच्छी—भित वल, भीत चट्टी। अ०—Toadflax। लै०—लिनेरिया रिमो सिसिमा (Linoria ramosissima wall) है।

गुण, धर्म और प्रयोग—

वाट के मतानुसार यह वनस्पति मधु प्रमेह के ऊपर काम मे ली जाती है और इसके पत्तो को पीसकर फोडे फु सियो पर बाधते हैं। मुरे के मतानुसार मधु प्रमेह के लिये इस वनस्पति की बहुत प्रशसा है।

भिल्लर (Bischofia Javanica)

यह एरडादि कुल (Euphorbiaceae) का एक बडी जाति का हमेशा हरा रहने वाला वृक्ष होता है। इसकी छाल गहरी भूरी और मुलायम होती है। इसके पत्ते एक के बाद एक लगते है। इसके फल बहुत छोटे होते है। इसके फल भूरे तथा काले रग के और मुलायम होते हैं। हर एक फल मे ३-४ चिकने और चमकदार बीज होते हैं।

उत्पत्ति स्थान—भिल्लर के वृक्ष हिमालय के जगलो मे, दक्षिणी पेनिनसुला, पूर्वी घाट, कोकन, नीलगिरी, छोटा नागपुर, आसाम, अवध, गोरखपुर, बिहार, बङ्गाल, चिटगाव के पास और बरमा के जगलो मे पदा होते हैं।

नाम—

हिं०—भिल्लर, इरम, पनियाला, पान केन। बबई-बोक। नेपाल—कैजल। गढवाल—केन कोट सेमला। आसाम—युरियाना। ता०—मदागिर, वेम्बु, टोडी। ते०—नालूपूमुष्टी। अ०—व्हिनेगरवुड Vinagar wood लै०—बिसचोफिया जावनिका।

गुण, धर्म और प्रयोग—

इसके पत्तो मे विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा मे रहता है अत इसके पत्तो के रस का पूरण सद्योव्रणो को मिटाने वाला है। व्रणोपचार मे अतिशय लाभकारी है।

भिलावा (Semicarpus Ana cordium Linn)

यह हरीतक्यादि वर्ग और भिलावा कुल (Anaca- rdiaceae) के प्रसिद्ध वृक्ष के फल हे।

उत्पत्ति स्थान—इसके वृक्ष समस्त भारत के जगली उष्ण भागो मे खास करके निम्न हिमालय, पजाव, देहरादून, विहार मे हजारी वाग, वीरभूमि, वालेश्वर, पार्श्वनाथ पहाड, बङ्गाल, आसाम, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि मे होते है।

वर्णन–

सेमीकार्पस = भिलावा वाचक ग्रीक शब्द–'सेमियोन-कार्पस' परसे जाति संज्ञा। एनेकार्डियम–फल हृदयाकार। मध्यम ऊंचाई का पतनशील पान वाला वृक्ष। ऊचाई लगभग ३० फीट, इसके पिंड की गोलाई ४ फीट तक होती है। छाल खुरदरी एक इच मोटी धुए के रग की गहरी भूरी। रस तेज (Acrid) नया भाग रुयें दार। पान-अन्तर पर, शाखा के अन्त मे, सादे ८ से २४ इच लम्वे और ५ से १४ इच चौड़े, लगभग लम्व गोल, सारगी के आकार के अखण्ड प्राय चिमडे, निम्न तल मे रुयेंदार भस्मी धूसर रंग के श्वेताभ होते है, पत्र वृन्त-आधा से डेढ इंच लम्वा। पुष्प–२ से ३ इंच आडाई मे हरा, पीला वहुजातीय, [Polygamous] अर्थात् नर फूल अलग, मादाफूल अलग और नर मादा साथ मे भी। कभी नर मादा पृथक-पृथक [dioecioeus]। शाखा के अन्त मे गुच्छो मे लम्वी विभाजित पुष्प रचना पर, लगभग वृन्त रहित। स्त्री पुष्प रचना पुरुप पुष्प रचना से छोटी। पुष्प वाह्य कोष के कोण पर, पखुडी और पुंकेसर ५–५ फल–१ इंच लम्व गोल सा, सतरे के रगका मासल फलवृन्ताग्र प्राय. फल तुल्याकृति पीला और मीठा होता है अतएव इसे खाते है। फल कच्चा होने पर भीतर का रस (तेल) दूध सदृश, पक जाने पर काले रङ्ग का। फूल–मई जून फल–नवम्बर से फरवरी तक। पान रहित वृक्ष–फरवरी से अप्रैल तक। नये पान–मई मे। उपयोगीअङ्ग—पुष्प, फल-फलवृन्त, पके फल के साथ रही हुई प्याली (कर्णिका) कच्ची, सुखाकर और सेक कर खाई जाती है। स्वाद–लगभग मधुर कपैला। फलो के भीतर गिरी (गोडम्वी) रहती है। वह भी खाई जाती है।

इसमे से ३२% तेल भी निकलता है। फलो के भीतर जो विपाक्त, काला तैली रस रहता है, उसका उपयोग धोवी लोग कपडे पर चिन्ह करने मे करते है।
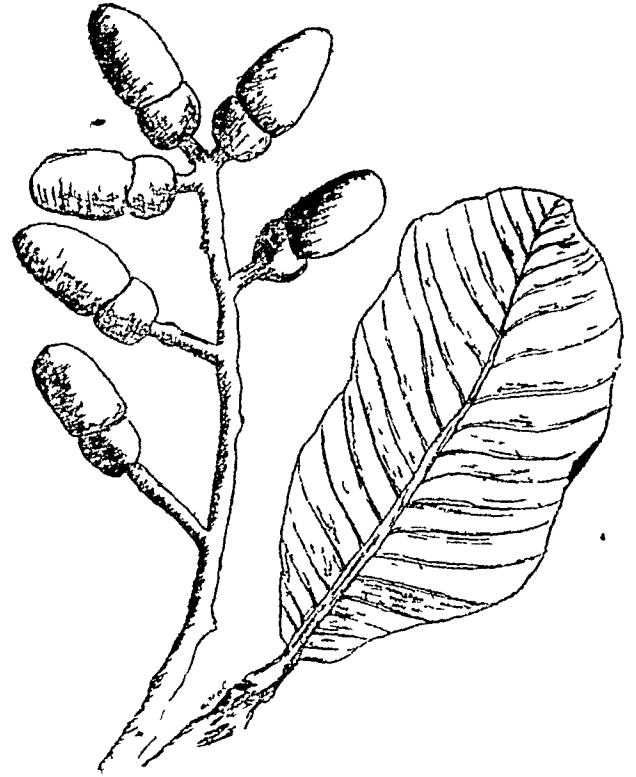
सूचना—पुष्पित वृक्ष के नीचे सोने या अधिक समय तक बैठने, पुष्प पराग के सेवन और भिलावे को उवालने के समय वाष्प लगजाने पर मुंह और तमाम शरीर पर सूजन आजाती है।

नाम–

सस्कृत—भल्लातक, अरुष्कर, अग्निमुखी, तैलवीज हिं०—भिलावा, भिलामा, भेला, भिलोरा। वम्वई–विव्वा भिलामा, विलावी। व०–भेला, भेलागाच्छ। गु०–भीलामा। म० विव्वा (गिरी को गोडम्वी)। नेपाली–भेलाई। आसामी–भीलागुटी। क०–करेवीज। तेलगू–जिडि, चेट्टु, नाला जडि, नल्ड जिडी। ता०—शेन कोट्टाई, तेताकोटे। मल०—चरमारा सोनकीटे। कन्नड-जरकायी। प०–भिला, भिलावा। फा०–भिलादर, विलादर। अ०—हव्वुल कल्व, हुव्वुल फहम, समरुल फहम, इर्म्कादिया। कोल-सोसो, ओवलिया। अं०-Uarking nut tree। लें०—(Semicarpus Anacardium), सेमेकार्पस एनाकार्डियम।

रासायनिक संगठन—

फल के मगज मे काजू की गिरी के समान पौष्टिक द्रव्य और अनुत्पत्त मीठा तेल और फल के रस मे काला दाहजनक तेल ३२% होता है। यह ईथर मे घुलनशील हे।

गुण, धर्म और प्रयोग—

भिलावे के पके फल—रस मे मधुर, विपाक मधुर, उष्ण वीर्य, लघु, अनुरस कपैला, पाचक, स्निग्ध, तीक्ष्ण, गर्म, कफादि मलो का छेदन करने वाला, भेदन (विरेचन कराने वाला), मेदा वर्धक, रसायन, शुक्रल, केश्य, अग्नि-प्रदीपक और दातो को दृढ करने वाले हें तथा कफ वात, उदररोग, व्रण, कुष्ठ, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, शोथ, (वातप्रकोपज या विपज) मलावरोधक, ज्वर, उदर कृमि और कीटाणु विप आदि का नाशक है।

गोडम्वी—मधुर, कामोत्तेजक (वृंहण) मास पौष्टिक, दीपक और वातनाशक है।

कर्णिका (डण्डी)—मधुर, कषाय, वात प्रकोपक, वालो को हितावह, विष्टम्भकारक, दुर्जर, रक्तपित्त प्रकोपक है।

भिलावा वृक्ष की छाल—रस मे कपैली, उष्णवीर्य, शुक्रवर्धक, मधुर, लघु, वात श्लेष्म प्रकोपक, उदर रोग, मलावरोध, कुष्ठ, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, ज्वर, श्वित्र (कुष्ठ के श्वेत दाग), अग्निमाद्य, कृमि और व्रण रोग की नाशक है। चरक मुनि ने लिखा है कि—

भिलावा अग्नि के समान तीक्ष्ण और पाचन है। इसका यथाविधि सेवन किया जाय तो यह अमृत सदृश लाभ पहुचाता है। कफ प्रकोपज ऐसा कोई रोग नही है तथा मलावरोधज वातावरोधज भी ऐसा कोई रोग नही है कि जिसे भिलावा तुरन्त दूर नही कर सके। यह बुद्धिवर्धक और अग्निप्रदीपक हे।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—फल का रस चौथे दर्जे मे गरम और खुश्क, मग्ज—दूसरे दर्जे मे गरम और पहले मे खुश्क है। गुण—फल का रस—व्रण कारक, श्वयथु जनक, उष्णता जनन, श्वयथु विलयन, वातानुलोमन, वातनाड़ी वलदायक, बुद्धि-स्मृति वर्धक, उसकी धूनी अर्शांकुरों को मुरझाने वाली है। मग्ज (गोडम्बी)—शारीरिक और कफ रोग नाशक विशेषकर सर्व रोगो मे गुणदायक है।

नंगे देश पर पछने लगाकर इसे लगाने से सर्वांग भीतर शोषित होने से रुक जाता है। इसके मग्ज (गिरी) को वाजीकरण माजूनो मे डालते है। अधिक मात्रा मे उन्मादजनक है। अहितकर—व्रणकारक। निवारण—तिल का तैल और घी। मात्रा—मग्ज-१ माशा।

डा० वामन देसाई ने लिखा है कि भिलावा तीक्ष्ण, उष्ण, लघु, मलसारक, दीपन, पाचक, स्वेदल, नाड़ी-हृदुत्तेजक, मूत्रल, कुष्ठहर, अर्शोहर, कामोत्तेजक, वातनाडियो को उत्तेजक, रक्ताभिसरणवर्धक, कासहर, उत्तेजक श्लेष्म निस्सारक, शोथहर, ग्रन्थियो को उत्तेजक, आम नाशक, रक्त मे श्वेताणुवर्धक रसायन है।

भिलावा रक्त मे जल्दी मिल जाता है किन्तु देह में से वाहर अति शनै शनै निकलता है। पचन यंत्र के भीतर आमाशय और गुद नलिका पर इसकी क्रिया अधिक प्रबल होती हे। यकृत मे रक्त आवागमन जल्दी और नियम पूर्वक होता है। परिणाम मे गुदा मे स्फीत सिरा (अर्श के मस्से) छोटे पतले हो जाते हैं। एवं गुदा नलिका को उत्तेजना मिलने से मलसाह नही होता। भिलावा क्षुधा-वर्धक हे और यकृतस्राव अधिक करा, मल को अधिक पीला बना देता हे।

त्वचा पर भिलावे की क्रिया प्रबल होती है, त्वचा मार्ग से वह बाहर निकलता हे जिससे स्वेद अधिक आता है। त्वचा उष्ण और रक्त बनती हे, कण्डू उपस्थित होती है। त्वचा मे से बाहर निकलने के समय उसभाग की विनिमय (चयापचय) क्रिया सुधरती हे।

दोनो वृक्को पर भिलावे की क्रिया अति तीव्र और उत्तेजक होती है। पहले मूत्र परिमाण बढाता है, किन्तु थोडे ही समय मे वृक्क थक जाते हे। फिर मूत्रोत्पत्ति कम होजाती हे। इसकी उत्तेजक क्रिया इतनी तीव्र होती है कि कभी कभी मूत्र से रक्त (Haematuria) आजाता है।

वृक्को के समान मूत्र प्रसेक नलिका पर भिलावा उत्तेजक है। इस हेतु से भिलावे का सेवन करने पर मूत्रे-

न्द्रिय मे झनझनाहट होती है। मूत्रेन्द्रिय को दवाने की इच्छा होती है। प्रत्यक्ष क्रिया के अतिरिक्त वातवाहिनियो द्वारा भी मूत्र नलिका और वृष्ण को उत्तेजना मिलती है।

मात्रा—अधिक होने पर गाजा सेवन के सदृश रोगी को घवराहट होती है।

मासपेशियो पर भिलावे की प्रत्यक्ष क्रिया नही होती परन्तु वात वाहनियो द्वारा मासपेशियो को उत्तेजना मिलती है। परिणाम मे उनकी सकोच विकास क्रिया योग्य होने लगती है। भिलावे से नाडी की गति वढती है हृदय स्पन्दन स्पष्ट होने लगता है। रक्त मे श्वेताणुओ की वृद्धि होती है

इस हेतु से (स्थानिक) शोथ आया हो तो दूर होता है। श्वेताणुओ की वृद्धि और सब ग्रन्थिओ को उत्तेजना मिलने से गाठ और अवयवो की वृद्धि हुई हो तो उस का ह्रास होने लगता है। सामान्यत भिलावा शरीर के भागो के लिए उत्तेजक है। छोटी मात्रा मे लेते रहने पर विनिमय क्रिया (Metabolism) सुधरती हे।

(अ)—भिलावा वातज और कफज रोगो मे प्रयुजित होता है। यह अति उष्ण वीर्य है अतएव ग्रीष्म ऋतु मे नही दिया जाता। शीतकाल मे ही देना चाहिए। भिलावा छोटे वालक, सगर्भा और वृद्धो को नही दिया जाता। भिलावे के सेवन काल मे घी, दूध, दही, तैल, मठ्ठा, शक्कर, भात, गेहू का भोजन हितावह है। इन सवमे तैल अधिक है। मिर्च नही देवें या कम से कम देवे। नमक विल्कुल नही दे तो अच्छा, या थोडी मात्रा मे सैंधानमक देवे। मास विल्कुल नही देना चाहिए। मासाहारी भिलावे को सहन नही कर सकते।

(आ)—भिलावा देने के पहले विरेचन लेकर उदर-शुद्धि कर लेनी चाहिए। आवश्यकता हो तो उपवास या मासवर्धक लघु भोजन देना चाहिए। भिलावा लेने के पहले मूत्र परिमाण और मूत्र द्रव्य की जाच कर लेवे। फिर भिलावा देने पर हमेशा मूत्र की जाच करते रहना चाहिए। यदि मूत्र परिमाण कम हो जाता हे या रङ्ग लाल हो जाता है तो दर्पहर औषध रूप मे नारियल-का जल या इमली के पानो का रस पिलाना चाहिए।

(इ)—भिलावे की मात्रा अधिक होती है, तो दाह, तृषा, छोटी-छोटी फुसिया निकलना, त्वचा मे लाली, कण्डू, स्वेद, मूत्र मे लाली और मूत्र ह्रास आदि लक्षण उत्पन्न होते है। ऐसा होने पर भिलावा वन्द कर दे और दर्पहर औपधि देवे।

(ई)—भिलावा व्यक्तियो को प्रवल असर पहुचा देता है। अत आरम्भ मे मात्रा कम देनी चाहिए और उसका परिणाम देखकर फिर उसकी मात्रा कम या ज्यादा करनी चाहिए।

(उ)—भिलावा वाह्य त्वचा पर जहा वाल आते है उस पर लग जाय तो विप प्रकोप दर्शाता है। वहा फुसिया होती है, आग से जलने के समान दाह होता है। इस दोष को ध्यान मे रखकर उपयोग करना चाहिए।

(ऊ)—भिलावे के सेवन काल मे धूप मे घूमना, अग्नि का सेवन और गरम-गरम भोजन के खाने का त्याग करना चाहिए।

(ए)—पित्त प्रकृति वाले, जिनके मुह मे छाले रहते हो, तृषा अधिक लगती हो, निद्रा कम आती हो, स्वेद अधिक आता हो, दाह और घवराहट रहती हो, उनको भिलावा नही देना चाहिए।

(ऐ)—भिलावा खाने वाला धूप सेवन, स्त्री सहवास मास भक्षण छोड देवे। घृत, दुग्ध, दही, तक्र, मिश्री और भात अधिक खाना चाहिए। नमक और पानी का त्याग करने से अल्प काल मे ही फल प्राप्त होता है। भूख लगने पर दूध पिलाना चाहिये। मासाहारियो के लिए यह वहुत हानिकारक है।

भिलावे का शोधन—

जो भिलावे जल मे डालने पर तल मे वैठ जायें उनको ही शुद्ध करना चाहिये। शेप को अलग कर दे।

(१) एक भगोने मे जल गरम करें। जल के उवलने पर उसमे भिलावा डाल दे। १० मिनट चूल्हे पर रहने देवें। फिर नीचे उतार कर ढक देवें, शीतल होने पर जल को निकाल स्वच्छ कपडे मे पौछ लेवें। फिर टोपी को काटकर निकाल देवें। —भावप्रकाश

(२) भिलावो को एक कपडे की पोटली मे बाधें। फिर एक घडे मे गौमूत्र भरे उमके किनारे पर लकडी या लोह शलाका रख उम पर पोटली को लटका देवे। घडे के तल से एक अगुल ऊची रहे, इस तरह लटकावे। इसे दोला यत्र कहते है। इस घडे को चूल्हे पर चढा वारह घण्टे अग्नि देवे। गोमूत्र कम होने पर वार २ डालते जाये। तेज अग्नि लगने पर गोमूत्र मे उफान आता है। अत घडा वडा लेना चाहिये। गोमूत्र मे शुद्ध होने के पश्चात् भिलावा को गरम जल से धोकर दूध मे उसी तरह मन्दाग्नि पर १२ घण्टे उवाले। फिर भिलावो को गरम जल से धो देवे और टोपी काटकर निकाल डाले। इससे भी अधिक शोधन करना हो, (भिलावे की उग्रता को अधिक शान्त करना हो,) तो उस शुद्ध भिलावे को नारियल के जल मे १२ घण्टे तक उसी विधि से स्वेदन करे।

वक्तव्य—जितना शोधन अधिक होता है, उतना ही भिलावा सौम्य (निर्मल) वनता है। उग्रता जितनी सहन हो सके, उतना शोधन करें। केवल गरम जल से शुद्ध किया तत्काल लाभ पहुचाता है, गौमूत्र से शुद्ध हो तो देर मे, गोमूत्र और दूध मे शुद्ध करने पर उससे भी अधिक समय मे तथा गौमूत्र, दूध और नारियल के जल से शुद्ध भलावा शनै शनै लाभ पहुंचाता है। इसके उपयोग मे भय नही रहता। जिनको दूध अनुकूल नही रहता, उनको मट्ठा लेना पडता है। वे मक्खन, दही ले मकते हैं। दूध, दही, दोनो अति मात्रा मे नही लेने चाहिये।

प्राचीन आचार्यो ने कुष्ठ रोगी को दूध सेवन निषेध किया है। दूध से कच्चे सर (आम) और कृमि की उत्पत्ति होने को लिखा है। कृमि होने पर रक्त विकार हो जाता है। इस हेतु से पथ्य दूध रूप से नही देना चाहिये, ऐसी शङ्का कितने ही चिकित्सक करते है।

किंतु भल्लातक सेवनकाल मे दूध को पथ्य माना है। भावप्रकाशकार ने महाभल्लातकावलेह के साथ लिखा है कि "अनुपान प्रयोक्तव्य छिन्ना तोयपयोऽथवा" अर्थात् गिलोय का रस या दूध अनुपान रूप से देना चाहिये। सुश्रुताचार्य ने भी भल्लातक कल्प काल मे 'अपराह्णे क्षीर सर्पिरोदन इत्याहार" इम वचन से दोपहर को दूध और घी भात के भोजन का विधान किया है अनुभव से भी दूध का मेवन हितावह विदित हुआ है।

—(गा औ र.)

सुश्रुताचार्य ने 'सर्वेपातुवरक तैल भल्लातक तैलवेति' इस वचन से सव प्रकार के कुष्ठ की चिकित्सा मे भल्लातक को लाभदायक माना है। यदि पथ्यपालन मे पूरा आग्रह रखा जायगा तो वशागत कुष्ठ भी नष्ट हो जायगा।

भिलावा आयुर्वेद की वहुत प्रसिद्ध, प्रभावशाली और हाजिर जवाव चीजो मे मे एक है। इससे अनेको प्रकार के रोग दूर होते है किन्तु इसके प्रयोग मे वहुत सावधानी रखने की जरुरत है क्योकि क्रिया की तरह इसकी प्रतिक्रिया भी वहुत जोरदार होती है।

भिलावा की मात्रा—मग्ज १ माशा। स्वरस $\frac{1}{2}$ से १ रत्ती। अनुपान—वधा हुआ दही या दूध। तेल २ से ५ वूद। भिलावा गिरी [गोडवी] १ से ३ नग। फल—१-२ वाल।

भल्लातक विष निवारण—

[अ] भिलावा लग जाने पर छाला होजाता है और उस मे जल भर जाता है। एक सुई से उसमे छिद्र कर जल निकाल डाले। त्वचा न निकल जाय, यह सम्हाले। उस पर तिल को दूध, दही या मक्खन मे पीस कर लेप करने से दाह तुरन्त शात होती है और छाला मिट जाता है। अथवा वहेडे की गिरी को पीसकर लेप करे। वरार प्रदेश मे मक्खन मे चूना (पान मे खाने का जल वाला) मिलाकर लेप करने का विशेष रिवाज है।

[आ] भिलावे का धुआ लग जाने से सूजन आगई हो तो तिली वीज, नारियल की गिरी, चिरौंजी, काजू, वादाम, पिस्ता, अखरोट गिरी आदि खावें, खाने मे तिल और नारियल तैल का उपयोग अधिक करे तथा नारियल के तैल की मालिश या लेप करे। —गा औ. भा. ३

प्रयोग—

हैजा (विशूचिका)—हैजे के रोग मे भिलावा बहुत लाभदायक है। एक भिलावा लेकर उसका डठल निकाल

कर उसको आधा तोला इमली के साथ पीसकर दो तोला प्याज के रस के साथ मिलाकर पिला देना चाहिए। यह दवा सिर्फ एक ही बार पिलानी पडती है और पेट मे जाने के बाद ५ मिनट के अन्दर ही अपना असर बतलाकर दस्त और उल्टी को बन्द कर देती है। इमली के साथ भिलावा देने से शरीर पर उसकी प्रतिक्रिया होने का डर नहीं रहता और वह जठराग्नि को प्रदीप्त करके शरीर मे गर्मी बढा कर अदभुत तरीके से हैजे के कीटाणुओ को नष्ट कर डालता है। प्याज का रस भी हैजे के रोग मे बहुत गुणकारी वस्तु है। इसलिये उनका प्रभाव भी अनुकूल होता है।

जगलनी जडी बूटी के लेखक लिखते है कि हैजे के अनेक रोगियो पर इस प्रयोग के अनेक अनुभव किये जा चुके है और दूसरी अनेक औषधियो के असफल हुए, मूर्छित अवस्था मे पहुचे हुये,ठण्डे हाथ पैरो वाले भयकर रोगी भी इस औषधि से अच्छे हुये है। हैजे के सिवाय मरोडी और अतिसार के रोगियो को भी भिलावे को इमली के साथ देने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

मज्जा तन्तु के रोग—भिन्न-भिन्न प्रकार के वात रोगो मे भिलावा बहुत गुणकारी वस्तु है। मज्जा ततुओ की सूजन, पक्षाघात, लकवा, अर्दित, उरुस्तम्भ इत्यादि रोगो मे इसके सेवन से बडा लाभ होता है। मस्तिष्क की थकावट मे भी इसको देने से बहुत फायदा होता है। मज्जा ततु समूह रोगो मे भिलावे को थोडी मात्रा मे अधिक दिन तक देना चाहिये। मद्रास मे ऐसे रोगो मे भिलावे को इमली के पत्ते, लहसुन, वायविडग, नारियल का रस और मिश्री के साथ देते है। नवीन आमवात मे भी भिलावे को देने से बहुत लाभ होता है। जीर्ण आमवात मे इसके प्रयोग से विशेष लाभ नही होता है। नवीन आमवात मे तीन माशे भिलावे का अवलेह दिन मे ३-४ वार देने से २-३ दिन मे ही लाभ दिखाई देने लगता है। फिर भी कई लोगो को भिलावा अनुकूल न पटने से ऐसे रोगो मे वे लोग इससे लाभ नही उठा सकते है। ऐसी स्थिति मे जगलनी जडी बूटी के लेखक ने एक ऐसा प्रयोग लिखा है जो बिल्कुल खतरे से रहित है। उनका लिखना है कि इस प्रयोग से मनुष्य को भिलावे के सब लाभ प्राप्त हो जाते है मगर उसकी प्रतिक्रिया से वह बच जाता है। वह योग इस प्रकार है—

२-३ सेर भिलावो को लेकर उनको कूटकर अधकचरे करके खेत की २-३ क्यारियो मे खाद की तरह बिछा देना चाहिए और फिर उन क्यारियो मे मैथी बो देनी चाहिए। उस मैथी को प्रतिदिन पानी पिलाना चाहिये। इससे ८-१० दिन के अन्दर मैथी की तरकारी तैयारी होजायगी। इस मैथी का साग बनाकर बिना नमक मिर्च के प्रति-दिन खाने से सधिवात, उपदश की वजह से पैदा हुआ पक्षाघात इत्यादि अनेक प्रकार के वातरोग मिट जाते है और भिलावे की प्रतिक्रिया होने का बिलकुल डर नही रहता।

दमे का रोग—दमे के रोग मे भिलावा एक बहुत उत्तम औषधि है। सरदी मे उठने वाला दमा इसके फूलो के उपयोग से चला जाता है। गोआ मे दमे के रोग मे इसको मट्ठे के साथ मिलाकर देते है। ज्वर के साथ होने वाली फेफड़ो की सूजन और कफ के साथ रक्त गिरने की बीमारी मे इसको मुलैठी के साथ लेने से बहुत लाभ होता है।

डाक्टर मुडीन शरीफ लिखते है—भिलावे के काले, गाढे और चरपरे तेल का उपयोग किया जो कि उसको दबाकर निकाला गया था अथवा गर्मी देकर प्राप्त किया गया था। मै यह कह सकता हू कि तीव्र सधिवात मे यह इतना प्रभावशाली है कि इस बीमारी के लिये यह एक विशिष्ट या चमत्कारिक औषधि कही जा सकती है। दमे के अन्दर भी इस औषधि के फायदे बहुत बहुमूल्य है।

भीतरी चोट—कभी कभी आकस्मिक घटना से मनुष्य जब ऊपर या नीचे से कही गिर पडता है तो उसके शरीर के भीतर उस चोट की वजह से बडी जर्जरता हो जाती है और किसी किसी के अन्दर तो यह असर जन्म भर के लिए रह जाता है। ऐसी भयकर चोटो मे भिलावा बडा अदभुत कार्य करता है। इसके सम्बन्ध मे सन् १९१२ के जून मास के वैद्य कल्प तरु मे एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसका साराश नीचे देते है—

गिरनार नामक जैनियो के प्रसिद्ध तीर्थस्थान मे पत्थर

चट्टी नामक एक बहुत प्रसिद्ध है । इस स्थान पर उन दिनो खगेन्द्र स्वामी नामक महन्त रहते थे । एक दिन ये महन्त पहाड की एक टेकरी के ऊपर शौच के लिये गये और वहा से वापस लोटते समय उनका पैर फिसलने से करीब १० हाथ नीचे एक खाई मे गिर गये । दैवयोग से उनके बाहरी शरीर मे तो कोई चोट नही आई मगर उनके भीतर ऐसी पछाड लगी कि उनका हिलना चलना बिल्कुल बन्द होगया और पानी पीने तथा पेशाब करने के लिये भी उनसे उठना बैठना असभव होगया । यह बात जब जूनागढ मे मालूम हुई तब वहा के दीवान साहब और चीफ मेडीकल आफिसर डाक्टर त्रिभुवन दास उनके पास गये और उनको कहाकि आपको ४-६ माह दवाखाने मे रहना पडेगा । आपकी सुविधा की हर प्रकार से व्यवस्था करदी जायगी और आप वहा चलिये । तब महाराज ने कहा कि अभी तो वहा चलना बहुत कठिन है । थोडे दिनो के बाद कुछ आराम होने पर चलेगे । कुछ दिनो तक उन्होने डाक्टर की दवा वहा की, पर चोट इतनी सख्त थी कि उससे कुछ लाभ नही हुआ । तब उन्होने अपने प्राचीन आचार्यो की पुस्तक मे एक योग देखा और उसी योग को प्रारम्भ किया । वह योग इस प्रकार था—

चोट पर भल्लातक योग—७ भिलावे को लेकर उनके टुकडे करके १० तोला घी मे भून लेना चाहिये। उसके बाद उन भिलावो को घी मे से निकाल कर बाहर फेक देना चाहिये और उस घी मे गेहू का आटा डालकर उसको सेककर उसमे गुड डालकर हलवा बना लेना चाहिये उस हलवे को खा लेना चाहिये। इस प्रकार ७ दिन करने से चाहे जैसी भयकरपछाड लगी हो मिट जाती है। भिलावे का हलवा खाने से अगर शरीर मे गर्मी मालूम हो और शरीर फूट निकले तो ४ दिन तक प्रतिदिन भैंस का गोबर शरीर पर चुपड कर ३ घटे तक धूप मे बैठे रहने से भिलावे का सब असर मिट जाता है।

महन्त जी ने इस प्रयोग को शुरू किया। पहले ही दिन उनको रात मे आराम से नीद आई, दूसरे दिन इस हलवे को खाने के बाद वे बिना किसी मदद के अपने आप पखा चलाने लगे । तीसरे दिन उनके शरीर मे कुछ गर्मी मालूम होने लगी और पहले जहा पेशाब को उठते समय वे चार पाच मनुष्यो का टेका लेते थे वहा सिर्फ १ मनुष्य के सहारे से वे उठकर पेशाब करने के लिये नीचे उतरे । चौथे दिन जब उन्होने यह हलवा खाया तब उनका सारा शरीर लाल होगया और बारीक फुंसिया शरीर पर फूट निकली। लेकिन फिर भी उस दिन वे बिना किसी मनुष्य की सहायता से लकडी टेके अपने आप बिस्तर मे से उठ कर सारे कमरे मे फिरने लगे, पाचवे दिन उन्होने यह हलवा नही खाया क्योंकि उनके सारे शरीर मे भिलावा फूट गया था तब उन्होने भैंस का गोबर शरीर पर मलकर धूप मे बैठना शुरु किया । इस प्रकार ४ दिन करने पर भिलावे का खराब असर मिट गया और १० दिन के अन्दर उनके शरीर मे बहुत शक्ति आगई और जठराग्नि भी बहुत प्रदीप्त होगयी । दसवे दिन वे जूनागढ के लोगो से मिलने के लिये अपने आप पैदल गिरनार पहाड से उतर कर जूनागढ गये ।

उपरोक्त वर्णन 'वैद्य कल्पतरु' मे प्रकाशित होने के बाद और भी कुछ वैद्यो ने इस प्रयोग को आजमाया और उसका परिणाम सतोषजनक पाया । यह ख्याल मे रखने की बात है कि रोगी की प्रकृति, ऋतु, देश और बल का विचार करके भिलावे की मात्रा मे कमी-ज्यादा की जा सकती है । सात भिलावे की जगह १-२ या ४ भिलावे भी लिये जा सकते है और ७ दिन की जगह ३ या ४ रोज भी सेवन किया जा सकता है ।

उदर कृमि पर—भिलावे का एक दाना इमली के साथ कूटकर खाने से एक ही दिन मे पेट के कृमि मर जाते है । सुजाक मे भी इससे एक ही दिन मे फायदा होता है । मगर इसके सेवन काल मे नमक बिल्कुल छोड देना चाहिये । इसका छिलका अत्यधिक काम शक्ति वर्धक है । बालो को काले रखने के लिये भी यह बहुत मुफीद है । हकीम शरीफ खा लिखते है कि भिलावे की मगज को कामशक्तिवर्धक माजूनो मे मिलाकर सेवन किया । इससे कामेन्द्रिय और मेदे को बहुत शक्ति मिली तथा वीर्य मे बहुत रुकावट हुई । एक बार सर्दी की वजह से नजला हो गया । कितना ही इलाज किया मगर कुछ फायदा नही

हुआ। कुचले और अफीम मे भी लाभ नही हुआ। उसके बाद भिलावे को मय मगज के शहद के साथ खिलाया जिससे नजला बिल्कुल मिट गया।

नहरुआ—नारू पर भिलावा अच्छा काम करता है। एक छोटा सा भिलावा लेकर बिना उसकी टोपी उतारे हुये उसको गुड मे लपेट कर नारू के रोगी को निगलवा दे। तीन दिन तक इस प्रकार निगलवाने से नारू बिल्कुल मिट जाता है।

अर्श पर—१ माशा गाय के घी मे थोडा सा भिलावे का मगज डालकर उसको घोटकर गुदा के भीतरी भाग मे लगा देना चाहिये और एक घण्टे तक कंडे की आच से इस प्रकार हल्का हल्का सेंक करना चाहिए जिससे अण्ड कोषो को गरमी नही पहुचे। इस प्रकार करने से बवासीर मे गिरने वाला खून दूसरे दिन बन्द हो जाता है और उसका चटका मिटकर आराम से नींद आती है।

कृमि रोग—भिलावे को छोटी मात्रा मे दही के साथ अथवा इमली के साथ खाने से कृमि नष्ट होजाते है।

दात का दर्द—दाढ की पीडा मिटाने के लिये भिलावे की राख से मजन करना चाहिए।

हस्तिमेह (बहुमूत्र Polyuria)—वृद्धावस्था मे या अन्य रोगादि कारणो से पेशाब का परिमाण अधिक होता है और मूत्र त्याग भी अनेक बार होता है। रात्रि को बार बार उठना पडता है जिससे निद्रा भी पूरी नही मिलती। तृषा बहुत लगती है और कृशता आती है। उस पर भिलावे का सेवन आशीर्वाद के समान हितावह है। भल्लातक क्षीर का सेवन करने पर ४-८ दिन मे ही रोग काबू मे आजाता है या प्रतिदिन क्वाथ बनाने के समय १-१ तोला बेलगिरी भी साथ मे मिलाते रहे तो लाभ जल्दी पहुचता है।

जखम—बरार आदि प्रदेशो मे किसान और मजदूर लोग घाव लगकर रक्तश्राव होने या त्वचा खुरच जाने पर वहा भिलावे का तेल लगा फिर उस पर गीला चूना लगा लेते है। भिलावे और चूने के कारण घाव नही पकता एव चूना भिलावे की विष क्रिया नही होने देता।

अर्श रोग पर भिलावा—एक भिलावा के तीन चार तथा पाच छोटे टुकडे करके उन्हे सोलह गुने पानी मे उबाले। आठवा भाग शेष रहने पर छानकर रोजाना रोगी को ४ तोला क्वाथ का सेवन करावे। क्वाथ पीने के पूर्व रोगी के तालु, जीभ, होठोपर घी लगा देवे वा थोडा पी लेवे। क्वाथ प्रात काल मे पीवे। भोजन मे दूध, घी, साठी चावल आदि स्निग्ध पदार्थ लेवे। सुश्रुत ने १ भिलावे से प्रारम्भ करके पाच भिलावा तक लेनेको कहा है। —सुश्रुत चिकि अ ६

कुष्ठ मे—प्रत्येक प्रकार के कोढ मे भिलावा, हरड और वाय विडग का क्वाथ अथवा भिलावे का तैल अकेला सब प्रकार के कुष्ठो को मिटाता है। —सुश्रुत चि अ ९

बादी बवासीर में—शुष्कार्श मे भिलावा उत्तम दवा मानी गई है। —आदर्श निघण्टु

वाजीकरण पर—एक भिलावा को लेकर उसके छोटे छोटे टुकडे करके गाय के ४ सेर दूध में उबाल ले और वह दूध पी लिया करे। इस प्रयोग से शक्ति आती है और चाहे जैसा वृद्ध व्यक्ति भी इसके सेवन से घोड़े के समान बलवान बन जाता है।

कफज गुल्म—भल्लातक के कल्क और कषाय से घी तैयार कर लेवे। यह घी मिश्री के साथ हमेशा सेवन करें। इससे रक्तपित्त, कफ, गुल्मादि मिटते है।

प्लीहोदर—भिलावा, हरड, जीरा ये तीन चीजे सम-भाग लेकर गुड के साथ लड्डू तैयार करे। उन मोदको के सेवन से अति दारुण प्लीहोदर भी सात दिन मे मिट जाता है।

गण्डमाला मे—शुद्ध भल्लातक और अजवायन दो-दो भाग, शुद्ध पारद १ भाग एकत्र खरल कर मटर प्रमाण गोलिया बना रखे। मात्रा १ से २ गोली मलाईदार दही के साथ प्रात साय सेवन करावे।

आमवात मे—नूतन और तीव्र आमवात मे उत्तम लाभकारी है। रोगी को पूर्ण शास्त्रीय विधि से बनाया हुआ भल्लातकावलेह लगभग ८ माशे तक दिया जावे, प्रात काल मे (दिन मे केवल एक बार अथवा रोग की विशेष प्रबलता हो तो २ बार देवे) २ या ३ दिन मे ही रोग भागने लग जाता है।

रोग प्रतिरोधार्थ–प्रतिवर्ष शीत काल मे इसका सेवन कर लेने से कोई रोग नही होने पाता। वगाल मे इसका अत्यधिक सेवन किया जाता है। इसका एक उत्तम पौष्टिक प्रयोग इस प्रकार है–उत्तम वजनदार भिलावो को एकत्रकर १२ दिन तक गोवर मे रखें। गोवर को प्रति दूसरे दिन बदल देना चाहिये। यदि प्रतिदिन गोवर वदला जाय तो और भी अच्छा हे। फिर शीतल जल से साफ कर एक दिन अम्ल तक्र (खट्टी छाछ) मे रक्खे फिर भडभूजो के द्वारा भुनवा लेवे। यह लाही जैसा भुने हुये भिलावा की मात्रा चौथाई भिलावे से १ भिलावा तक, दूध के साथ दोनो समय सेवन करने योग्य है। इसमे वाजीकरण धर्म विलकुल नही रहता, किन्तु शरीर को हृष्ट पुष्ट करता तथा मस्तिष्क की और देह या इन्द्रियो की थकान को शीघ्र दूर कर देता है।

यदि वाजीकरणार्थ ही इसका प्रयोग करना अभीष्ट हो तो उत्तम वजनदार भिलावो को काटकर, ईट के चूर्ण के साथ खरख करे। दो या तीन वार इस तरह ईंट चूर्ण को वदलते हुये खरल करने के पश्चात् ठण्डे जल से साफ धोकर छाया शुष्क कर लेवे। मात्रा आधी रत्ती से १ रत्ती तक, घी और शहद के साथ सेवन करावे। यह उत्तम बाजीकरण होते हुये, वातज और कफज रोगो पर परम लाभदायक है।

—स्व० श्री प० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी

नपुंसकता पर—भिलावा, कालेतिल, अखरोट की गिरी ५-५ तोला। तीनो को खूब कूटे, जब लेहवत् होकर एकजीव हो जावे तो काम मे लावे। इसके व्यवहार से काम शक्ति उत्तेजित होकर नपुसकता का नाश होता है वल बढता तथा शरीर का रग लाल होता है। मात्रा-१ माशे से ३ माशे तक, गो दुग्ध के साथ।

इसके व्यवहारकाल मे तेल, लाल मिर्च, खटाई, गुडादि कच्चा मीठा नही खाना चाहिये अन्यथा हानि होती हे।

काग गिरने की खांसी पर—भिलावे को चिराग की लौ पर जलावे जलने से जो तेल टपक कर निकले उसको सावधानी से ले ले। उस तेल की ३-४ बूद पावभर दूध मे मिलाकर पिलाने से तालू अथवा काग गिरने से खांसी होती है वह तुरन्त दूर हो जाती है।

नपुंसकता पर तेल—भिलावा ५ तोला, तिल तेल २० तोला। दोनो को लोहे की कड़ाही मे उतना पकाव कि भिलावे जल जायें फिर ठण्डा करके तेल छान लें। इसकी मालिश से नपुसकता दूर होजाती है, हस्त मैथुन से निर्वल स्नायु पुन वलवान होते हैं।

—प० युगलकिशोर जी, राजगागपुर

सन्धिवात या गठिया पर—भिलावे की डण्डी, भुने चने की दाल, नारियल की गिरी, गुड और घी इन पाचो को सम भाग एकत्र कूट पीस कर ५-५ तोले वजन के लड्डू वना लेवे। रोज सवेरे एक लड्डू खावें।

अर्श पर-भल्लातक, अर्श (ववासीर) पर वडा हितकारी है, इसी से इसे सस्कृत मे 'अर्शोहिता' भी कहते हैं। यदि वातजन्य अर्श हो, खून न गिरता हो तो क्रमवृद्धि से भल्लातक दुग्ध का इस प्रकार सेवन करावें। प्रथम दिन एक भिलावा को सूजे से टोचकर या सरौते से कतर कर ४० तोला जल मे डाल किसी कलई के पात्र मे पकावे। अष्टमाश क्वाथ शेप रहने पर उसे धीरे से दूसरे पात्र मे (केवल जल मात्र) इस प्रकार ढाल लेवें जिसमे भल्लातक का कचरा उसमे न आने पावे [वस्त्र मे छानने से स्निग्धाश जो उपयोगी है वह वस्त्र मे ही लग जावेगा] फिर उसमे १० तोला दूध मिला पिलावें। इसी प्रकार दूसरे दिन दो, तीसरे दिन ३ आदि वढाते हुये पाचवे दिन ५ भिलावो का भल्लातक दुग्ध पिलावें, फिर घटाते हुये १ पर लावे। इस प्रकार भल्लातक दुग्ध के सेवन से वातार्श दुम दवाकर भाग जाता है।

बल वीर्य बढ़ाने के लिए—वल वीर्य वृद्धि आदि बढाने के लिये भल्लातक मे 'मेध्य' अर्थात् मेधाजनक गुण तथा वह शुक्रल और वृष्य भी है। तरुणावस्था मे किसी भी कारण से वीर्य क्षय होगया हो, अशक्ति एव निर्वलता अधिक वढ़ गई हो, भूख न लगती हो, नित्य ज्वराश बना रहता हो तो उक्त प्रकार से भल्लातक दुग्ध बढाते घटाते रहे तो अग्निमाद्य [डिस्पेप्सिया] क्षय आदि की शिकायत दूर होकर वल वीर्य की वृद्धि होती

है तथा बुद्धि और स्मरण शक्ति भी बढ़ती है। चरकाचार्य जी ने आयुष्यवर्धक कतिपय साधनों मे भल्लातक योग की इसीलिये गणना की है।

जिह्वास्तम्भ और मूकत्व पर—भल्लातक का विधियुक्त चतुर्थांश क्वाथ तैयार कर उसमे घृत,दूध और शक्कर समभाग १-१ तोला और कालीमिर्च का महीन चूर्ण ३ माशा मिला सेवन करावें। इस प्रकार नित्य सवेरे एक मास तक सेवन कराने से लाभ होता है।

कृमि पर—प्राय बच्चो को कृमि का विकार वहुत सताया करता है। वार-वार पेट मे वेदना होकर पतले दस्तों का होना, मुख से लालास्राव अधिक होना, नाक को वार-वार उंगलिये से रगड़ना, ज्वर, अशांति,कान का अधोभाग शीतल होना, पेट का फूलना आदि लक्षण हो तो वायविडंग का महीन चूर्ण ३ माशा से ६ माशा तक लेकर उस पर उक्त विधि नं० १ [वजनदार भिलावों को लेकर,उनमे सूजा या कोई लम्बी लोह शलाका से छेद कर दीपक की ज्योति पर पकडे रक्खें, उनमें से तेल की बूदें टपकने लगेगी, इन बूदों को सेवनीय द्रव्यो पर टपकाकर तथा अच्छी तरह मिलाकर सेवन करें।) के अनुसार भल्लातक तेल टपकावें, चूर्ण के अच्छीतरह भीग जाने पर, जव गोली बनाने लायक होजाय तव उसमे, उतना ही गुड मिला कर छोटी-छोटी गोलिया तैयार कर लेवें। दिन मे ३ वार १-१ गोली निगल जावे। ७ दिन के अन्दर कृमि नाश होकर तज्जन्य विकार दूर होते है।

प्रदर पर—श्वेत प्रदर पर इसका अच्छा उपयोग होता है। दारु हल्दी का महीन चूर्ण २ माशा लेकर थोडे से जल मे भिगो देवें। फिर उसमे उक्त विधि नं० १ के अनुसार भल्लातक तेल की बूदें टपकाकर तथा थोडा घी और शक्कर चटावें। इसी तरह रोज दो वार देवें। ७ दिन मे प्रदर दूर होता है।

भिलावे के विष की शांति—फलो के काटने से उनसे एक प्रकार का रस निकलता है जो शरीर मे लगकर खाज और फोड़े उत्पन्न करता है। उस जगह पर माखन और चौलाई का रस मिलाकर लेप करना और यदि खाने से वेदना हो तो चौलाई के रस मे माखन मिलाकर पिलाना चाहिये। या मक्खन मिश्री चाटकर ऊपर से चौलाई का रस पीना चाहिये।

—[स्व० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी,
अभिनव बूटी दर्पण से साभार]

शोथ के लिए—२ माशा भिलावा खिलाकर ऊपर एक पाव दूध पिलादो, वाद मे प्यास भूख लगने पर दूध ही पिलाओ, आहार पानी मत दो, दश दिन मे शोथ का पता नही लगेगा। इस क्रिया से प्रथम शोथ वढता है फिर एकदम नष्ट हो जाता है, घवडाना नही चाहिये।

व्रण के लिए मरहम—५ नग भिलावा कूटकर १ छटाक तेल कडुआ मे मिलाकर जलादो। जव बिलकुल जल जायें तव उसमे ३ माशा मोम, ६ माशा सगजराहत मिलाकर खूव महीन पीस कर रख छोड़ो आवश्यकता पडने पर व्रण मे लगाओ अच्छा हो जावेगा।

कर्णस्राव पर—वहते हुये कर्ण मे भिलावा ६ माशे को कूटकर १० तोला तिल के तेल मे पका लो, वाद मे छानकर के उसमे १½ तोला कपूर मिलादो। फिर इस तेल को ३-४ बूंद सफाई करके कर्ण मे डालने से कर्ण स्राव चाहे जितना पुराना हो दूर हो जाता है और कर्णनाद भी मिट जाता है।

स्थूलता पर—भिलावा १ माशा, शहद ३ तोला प्रमाण मिलाकर चाटने से और ऊपर से शीतल जल पीने से स्थूलता का पता नही लगता है।

[प्रो० रामकृष्ण शर्मा, सर्प मृत्यु कार्यालय
लखनऊ, अभिनव बूटी दर्पण से]

पामा पर लेप—भल्लातक ५, घी २० तोला, मेनसिल २ तोला, हरताल डली २ तोला, गंधक २ तोला, तूतिया १ तोला, कपूर १ तोला। पहले मनसिला आदि दवाओ को खरल मे वारीक पीस ले। लम्बे वडे वरतन मे घी डालकर स्टोव या सिगडी पर रख देवे। इस घी मे टुकडे किये हुये भिलावे डाल देवे। जव देखे कि भिलावे घी मे जल चुके है और घी पर तैर करके आगये हैं तव घी को उतार कपड़ मे छान लें। भिलावे के टकडो को फेंक देवे और पुन. घी को बरतन मे डाल

स्टोव या सिगडी की आच पर रखे और मनशिला आदि का पाउडर मिला देवें और देखें कि जब घी आग पकड रहा है तो बरतन को थाली आदि से ढकदे और आच सामान्य रखे। जब घी इस प्रकार ३-४ बार आग पकड ले तब नीचे उतारकर कपूर मि । किसी परात या बडे बरतन मे जो पानी से भरा हो कुछ घी ठण्डा पड जावे तब (पानी मे) उलट दे ठण्डा होने पर जल पर जमे हुये घी को लेकर अच्छे चीनी के बरतन मे रख देवें। गुण-इस घी की मालिश से पामा, चर्म रोग आदि शीघ्र और निश्चय रूप से मिट जाते है। परीक्षित है

—वैद्य उदयलाल महात्मा

उपदशारि भल्लातक—शुद्ध रस कर्पूर, विशुद्ध पारा १-१ तोला, शुद्ध भल्लातक ४ तोला, (३० वर्ष से अधिक) प्राचीन गुड १० तोला। प्रथम गुड गरम कर पारद मिलाकर खूब खरल करे या सिल पर पिसवावें। फिर शुद्ध रस कर्पूर डाल यथा शक्ति न्यूनातिन्यून आठ प्रहर कूटें या पिसवावे। गोलिया ४-४ रत्ती की बनाकर उन पर सूक्ष्म कागज आवेष्टित करे या केपस्यूल्स मे भरके बन्द करले। जिसमे मुख, दात, जिह्वा स्पर्श होने से बच जाय। स्मरण रखिये पारद मिश्रित कोई भी औषधि दत स्पर्श नही कर सके। इसका पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। इन गोलियो मे से ३ या देशकाल तथा अवस्थानुसार न्यूनाधिक लेकर दही के साथ निगलवादे तथा ऊपर से भी कुछ दही पिलावे। सात दिन तक वेसनी रोटी और घी खिलावे। अनुमानत प्रथम दिवस ही लाभ प्रतीत होने लगता है। सात मात्राये पूर्ण लाभ प्रदान करती है।

भिलावा विष नाशक—(१) इमली के बीज (चीया या कूवचा) पीसकर खावे।

(२) भैंस की छाछ शरीर पर मलकर या तीन चार घण्टे तक धूप सेवन करे। इससे भल्लातक का दर्पदलन होता है।

(धन्वन्तरि भा १९ अ ११)

काली गोलिया—शुद्ध भिलावा ४ तोला, अजमोद २ तोला, खुरासानी अजवायन २ तोला, कुन्दरुगोद १ तोला, मरागी २ तोला, तिल काला ४ तोला, गोपरा ४ तोला, गुड देशी पुराना ४ तोला, शुद्ध पारा ६ माशा शुद्ध गधक ६ माशा।

विधि—पारा गधक की कज्जली बना उसमे पहले खुरासानी अजवाअन की पिष्टी मिलाना फिर अजमोद, बाद मे दूसरी दवाइया मिला पीसकर अलग रखना।

शुद्ध भिलावे, तिल, गुड, खोपरा के साथ हमाम दस्ते मे एक प्रहर कूट करके फिर ऊपर की दवाइया मिलाकर खूब सूक्ष्म हो जाये तब तक तिल्ली के तेल से हाथो को तर करके सिल पर बहुत बारीक पीस ले। गोली १ तो की बनावें। देने वक्त चने जैसे छोटे टुकडे करके भैंस के बधे हुये दही के अन्दर रखकर निगलवावे। दात नही लगावे। ७ रोज केवल प्रात काल। फिरग के लिये ३ माशा शुद्ध रसकर्पूर मिलाना चाहिये।

गुण—आमवात, फिरग, कुष्ठ, रक्तविकार एवं रक्तार्श मिटे। ये गोलिया परम्परा से काम मे लायी जा रही है और अनुभूत है।

—स्व० वैद्य धूलचन्दजी महात्मा, नगणोर

भल्लातक का प्रयोग बिना उपद्रवी—भल्लातक जलडूब प्रारम्भ मे ५, प्रतिवर्ष २ बढावें। उत्तम घृत १० तोला मे उनकी मुण्डी काटकर आग पर या स्टोव पर छोटी कडाही रख ऊपर थाली ढक कर आधा घण्टा आच देने पर घृत तैयार होजायगा। यानी भिलावे ऊपर जलकर तैर जाये तब भिलावे अलग कर दें और घृत छानकर रख ले।

१ सप्ताह तक इसको सेवन करना है।

१ पाव हल्दी कच्ची को दोलायत्र से दूध मे पकाकर खोया बनाले। प्रातः काल घी ग्वार के रस मे गेहू का आटा चूरमे की पिण्डी का सानकर पिंडी आदमी भर पेट खा सके उतनी तादाद मे घृत मे तल के निकाल कर चूरमा बना ले। पश्चात उस घृत के ७ भाग करे। प्रतिदिन प्रात खाली पेट उस चूरमे मे घृत, मावा २-२ तोला, खोपरा २ तोला, बादाम गिरी १ तोला, पिस्ता, चारोली १-१ तोला, पीपल ४ रत्ती, छोटी इलायची दाना ४ माशा, केसर ४ रत्ती। चूरमे के बराबर शक्कर

मिला लड्डू बनाकर सेवनकरें। मुग शुद्धि के लिए, मूग का पापड ले, भोजन शाम को करे।

नोट—भिलावो को गरम जल मे उबाल कर वीट नाकू से काटकर कपडे से साफ पोंछकर फिर घृत मे पकावे।

—वैद्य माधव लाल जी महात्मा, छोटी सादड़ी

बवासीर नाशक वटी—हरड, काले तिल, शुद्ध भिलावा, नीम के बीजो का मगज, बकायन नीम के बीजो की गिरी कंट करज के बीज की गिरी। ये सब चीजे १-१ तोला, रसोत तथा पुराना गुड ३-३ तोला, इन सब चीजो को खरल मे डालकर लोहे के दस्ते से ही २४ घण्टे तक खूब कूटना चाहिये। फिर उसकी तीन २ माशे की गोलिया बना लेना चाहिये। इन गोलियो मे से सवेरे शाम एक-२ गोली पानी अथवा दूध के साथ लेने से वादी बवासीर मिट जाता है।

विशिष्ट योग—

भल्लातक क्षीर—उत्तम भिलावे जिनको किसी प्रकार की चोट न लगी हो, किसी प्रकार का कीडा न लगा हो, जो रोग रहित हों, रस, प्रमाण और वीर्य से भरपूर हों और पके हुये जामुन के फल के सदृश वर्ण वाले हो उन भिलावो को ज्येष्ठ और आषाढ के महीनो मे सग्रह करके जव के ढेर मे गाडदे। ४ मास तक वहीपडे रहने द पश्चात् अगहन और पौष मास मे उनका सेवन करे। सेवन से पूर्व शीतल, स्निग्ध तथा मधुर आहार विहार और ओषधियो से शरीर को सस्कारित कर लेना चाहिये। उष्ण प्रकृति वाले लोगो को ग्रीष्म ऋतु मे और जिन दिनो मे पित्त का उभाड हो उन दिनो मे इसका सेवन नही कराना चाहिये।

सबसे पहले १ भिलावे को कुचल कर आठ गुने जल मे डालकर हलकी आच से पकावे जब पानी का आठवा भाग शेष रह जाय तब उसको उतार कर छान ले और उसमे दूध मिला दें। उस दूध को पीनेसे पहिले सारे मुह को घी से तर कर देना चाहिये और थोडा सा घी पी भी लेना चाहिये जिससे गले तक सब भाग घी मे तर हो जाय।

उसके पश्चात् उस दुग्ध मिश्रित रस को पीले। जब प्रात काल सेवन किया हुआ यह रसायन पच जाय तब घृत युक्त दूध के साथ साठी चावलो का भोजन पथ्य मे ग्रहण करे। इसे हेमन्त मे कम से कम ४० योम तक सेवन करना चाहिये।

महर्षि चरक लिखते है कि इस योग का सेवन करने वाले मनुष्य का शरीर पर्वत के समान दृढ और गठीला होता है। उसकी इन्द्रिया दृढ और अतिबल सम्पन्न होती है। उसका रूप अत्यन्त सुन्दर और तेजस्वी हो जाता है और उसका वर्ण निर्मल और स्वर मेघ-गर्जन के समान होता है। उसकी काम शक्ति बहुत प्रबल रहती है और नवयुवती स्त्रियो को वह बहुत प्रिय रहता है। उसकी सताने भी बहुत दृढ होती है। यह परम रसायन है।

अष्टाग सग्रह के अनुसार जितने दिनो तक भिलावो का प्रयोग किया जाय उससे तिगुने काल तक दूध, घी, और साठी चावलो के भात को पथ्य मे ग्रहण करना चाहिये।

यह चरक सहिता का प्रसिद्ध योग है। मगर आज-कल के क्षीण वीर्य पुरुष इतनी मात्रा मे भिलावो को सहन नही कर सकते। इसलिये उनको एक भिलावे से यह प्रयोग प्रारम्भ करना चाहिये और ज्यो २ वह सहन होता जाय त्यो-त्यो उसकी मात्रा धीरे धीरे बढानी चाहिये।

भल्लातक क्षौद्र—भिलावे का मशीन द्वारा या पाताल यत्र द्वारा निकाले तेल को भल्लातक क्षौद्र कहते है।

इस तेल को उचित मात्रा मे आठवा भाग शहद और शहद से दूना घी मिलाकर सेवन करने से मनुष्य शतायु हो जाता है वर्त्तमान मे इस तेल की मात्रा २-३ बूद से ज्यादा नही होनी चाहिये।

नारसिह चूर्ण—सोठ, मिर्च, पीपल, हरड, बहेडा, आवला, तिल और भिलावा। इन सब चीजो को समान भाग लेकर चूर्ण बना लेना चाहिए। इस चूर्ण को १॥ ग्राम की मात्रा मे आधा तोला घी, १ तोला शहद और मिश्री १ तोला के साथ सेवन करना चाहिये और

पथ्य मे सिर्फ दूध पर ही रहना चाहिए। अन्न. जल और दूसरी सब वस्तुओ का त्याग कर देना चाहिए इस योग का कुछ दिनो तक सेवन करने से जलोदर की भीपण व्याधि और दूसरे सब प्रकार के उदर रोग मिट जाते है।

भिलावे के फल का पाक—मगसर(पौष)के महीने मे जब नवीन भिलावे आते है तव भिलावो के ऊपर एक प्रकार का फल लगा हुआ रहता है जो पीले रग का होता है और सूखने पर भिलावे की टोपी के आकार मे परिणत हो जाता है। यह फल कुछ चपटा, चिकना, चमकदार, पीले रग का और आकार मे सूरती बोर सरीखा होता है। इसमे बीज नही होता। यद्यपि बहुत से लोग इस फल के सम्बन्ध मे परिचित नही है तथापि यह बहुत कीमती वस्तु है। इसमे पहला गुण तो यह है कि इसमे भिलावे के बराबर गरमी और उग्रता नही होती। भिलावे को व्यवहार करते समय जो भय रहता है वह भय इसमे नही रहता। इसका उपयोग बालक और नाजुक प्रकृति की स्त्रिया भी कर सकती है। दूसरा गुण यह है कि इसमे मिठास रहती है। यह मनुष्य की शक्ति को बढाता है और अनेक प्रकार के वायु रोग और प्रदर रोग मे बहुत फायदा पहुचाता है। इन फलो का पाक बनाया जाता है। यह पाक वायु के रोग मे, काम शक्ति की कमजोरी तथा दूसरे रोगो मे भी फायदा करता है। इस पाक को बनाने की विधि इस प्रकार है—

भिलावे के पके हुये फलो को लेकर उनमे से भिलावो को अलग कर देना चाहिये। फिर उन फलो के दो दो चार चार टुकडे करके छाया मे सुखा लेना चाहिए। बाद मे उनको धूप मे सुखाकर पीस कर चलनी मे छान लेना चाहिए। परचात् चने का आटा या बेसन १ सेर लेकर उसमे पाव भर घी का मोण डालकर घी मे सेक लेना चाहिये। जब तीन चौथाई सिक जाय तब उसमे भिलावे के फल का चूर्ण पाव भर मिला देना चाहिये। जब वह पूरा सिक जाय तब उसमे भाग का चूर्ण ३ माशे, कालीमिर्च का चूर्ण आधा तोला, इलायची चूर्ण आधा तोला. बादाम की मगज का चूर्ण पाव भर मिला देना चाहिये। इसके बाद उसको उतार कर फिर तीन तारी शक्कर की चाशनी मिला देनी चाहिये। बाद मे ५-५तोले से लेकर १०-१० तोले के लड्डू बना लेना चाहिये। इन लड्डुओ मे से प्रतिदिन १-१ लड्डू प्रात काल खाना चाहिये। इस पाक को खाते समय किसी विशेष प्रकार के परहेज की आवश्यकता नही होती।

धात्री भल्लातक वटी—भिलावा ८० तोला, हरड, बहेडा, आवला ४०-४० तोला, सोठ, मिर्च और पीपल ३०-३० तोला, काले तिल १ सेर और पुराना गुड १ सेर ले। सबको कूट कर गुड मे अच्छी तरह मिला २-२ रत्ती की गोलिया बना लेवें।

वक्तव्य—भिलावा कूटते समय हाथो मे तैल लगा लेवें। लोहे की कलछी से चलावें और निकालें तिल और दूसरी औपधिया मिलाकर कूटने पर भिलावे के तेल का भय कम हो जाता है। उक्त गोलियो में से १-२ गोली दिन मे २ वार जल के साथ सेवन कराने से आमाशय के विकार, अग्निमाद्य, अपचन, अरुचि, शूल, आमवात सब प्रकार के वात रोग,उपदश अथवा अन्य रोगो से होने वाला सधिवात, अर्धाङ्ग वात, उरुस्तम्भ और सुजाक जनित उपद्रव दूर होते हैं।

चीचा भल्लातक वटी—भिलावा और इमली समभाग मिला कूटकर २-२ रत्ती को गोलिया बना लेवें। जल न मिलावे। दोनो को मिलाकर कूटने से गोलियां बन सके उतना गीलापन आजाता है। इनमे से १ से २ गोली दिन मे २-३ वार मठा या जल के साथ देवें।

इस वटी से विशूचिका, सग्रहणी, अतिसार, उदरशूल, उपदंशज सधिवात, पक्षाघात, अर्दित वात(मुह रहजाना), मन्यास्तम्भ, कटिग्रह, गृध्रसी, शिरागत वायु आदि दोष दूर होते है। यह विशूचिका की अच्छी औषधि मानी गई है। अन्य रोगो मे भी अच्छा प्रभाव दिखाती है।

चिञ्चिकादि वटी—पकी बीज रहित इमली, मठे मे भिगोकर शुद्ध किया हुआ छिलका रहित लहसुन और भिलावा इन तीनो को समभाग मिलाकर इमली के बीज रहित फली को ८ गुने जल मे भिगोकर निकाले हुए लुआब मे खरल कर २-२ रत्ती की गोलिया बना ले। इनमे से १-१ गोली १५-१५ मिनट पर प्याज के २-२ तोला रस के साथ देते रहने से ३-४ घण्टे मे कालेरा दूर

होजाता है। यह उपचार रोग होने पर तुरंत करना चाहिये। —गा औ. र भा. १

भल्लातक तैल—५-१० सेर भिलावो को कूट चौडे मुह के घड़े मे भरकर मुह पर कपडा बाधें फिर मुह पर भगोना रख चारो ओर सम्हालपूर्वक कपडमिट्टी करें। बाद जमीन मे १ हाथ गहरा गड्ढा कर उसमे भगोना नीचे और घड़ा ऊपर रहे, उस तरह रख चारो ओर मिट्टी दवा दें। घडे का १ अगुल जितना भाग बाहर रहे शेष सब जमीन मे रहे इस तरह योजना करे। फिर घड़े पर तीन घण्टे अग्नि जलावें। तत्पश्चात घडा और जमीन शीतल होने पर भगोने सहित घडे को निकाल लें। यदि भिलावे मे तेल रहा हो तो उसी तरह फिर अग्नि देकर निकाल लें। इस तेल को बोतल मे भर लेवें।

भल्लातक पर्पटी—ऊपर लिखी विधि से तेल निकाल उसे भगोने या कडाई मे भर कर चूल्हे पर चढावें। पहिले तेल पतला होगा फिर गाढा होने लगेगा। गाढा होने पर २-४ बूद जल मे डालें। बाद मे निकाल कर तोड़ें। टूट जाय तो तेल पक्व जाने। फिर सब तेल को जल पर डाल देने पर पर्पटी बन जायगी। उस पर्पटी को जल मे से निकाल सुखाकर बोतल मे भर ले।

—स्व पं सुखरामदास जी टी ओझा

भल्लातकादि मोदक—भिलावे, काले तिल और हरड तीनो को समभाग मिलाकर चूर्ण करे। फिर चूर्ण के समान गुड मिलाकर १॥-१॥ माशे के मोदक बनालें। फिर १-१ मोदक सुबह शाम जल या मठे के साथ खाने से १ मास मे रक्तार्श दूर होता है।

भल्लातकावलेह—शुद्ध पके भिलावे १० सेर ले। सबके सरोते से ४-४ टुकड़े करें। उसमे एक मन जल मिला कर चतुर्थांश क्वाथ करें। उस जल को छान लें। उसमे १ मन दूध मिलाकर खोवा बनावें। पतली रवड़ी जैसी होने पर उसमे २॥ सेर घी मिलाकर पाक करें। फिर पाच सेर शक्कर मिलाकर ७ दिन रहने दे तब ½-½ तोले दिन मे दो बार दूध के साथ सेवन करावे। यह अवलेह कुष्ठ, अर्श, जीर्णवात व्याधि, अपस्मार और पक्षाघात को दूर करता है। नेत्र दृष्टि बढाता है, अग्नि प्रदीप्त करता है और शारीरिक शक्ति बढाता है।

भल्लातकादि लेप—भिलावा, कसीस, चित्रकमूल छाल, थूहर के मूल की छाल, इन चार औषधियो को समभाग मिला आक के दूध मे १२ घण्टे खरल करके ६-६ माशे की लम्बी गोलिया बना ले। उसे गो मूत्र या जल मे घिसकर लेप करते रहे। यह कठमाला और अर्श के मस्सो को दूर करता है।

घाव तेल—भिलावा, लहसुन, प्याज और अजवायन इन सबको ५-५ तोला लेकर ४० तोले तिली के तेल मे भूनें फिर कडाही को नीचे उतार कर दूसरे बर्तन मे तैल डाल देवें। शीतल होने पर तेल छान लेवे। यह तेल छुरी आदि से होने वाले आगन्तुक जखम मे से होने वाले रक्तस्राव को तुरन्त बन्द कर देता है।

—गा. औ र भा. ३

भल्लातकादि क्वाथ—भिलावा, पीपल और पीपलामूल का क्वाथ पीने से कष्टसाध्य उरुस्तम्भ भी अवश्य शीघ्र हीनष्ट हो जाता है। —भा. भै. र

भल्लातकादि चूर्ण—काले तिल और शुद्ध भिलावा समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसे सेवन करने से अग्नि दीप्त होती और कुष्ठ तथा अर्श का नाश होता है।

—भा भै र

भल्लातकादि चूर्ण २—शुद्ध भिलावे के चूर्ण को दही या इमली के पानी के साथ सेवन करने से कृमि रोग नष्ट हो जाता है। भा भै र

भल्लातक मोदक—शुद्ध भिलावा, हर्र और जीरे का चूर्ण १-१ भाग तथा गुड ६ भाग लेकर सबको एकत्र कूट कर या चूर्ण को गुड की चाश्नी मे मिलाकर गोलिया बनावे। इन्हे सेवन करने से ७ दिन मे भयकर तिल्ली भी नष्ट होती है। (मात्रा—१तोला। अनुपान—जल)

भा भै, र

भल्लातक तैलम् १—भिलावा, आक की छाल, कालीमिर्चे, सेधा नमक, वायविडग, हल्दी, दारुहल्दी और चित्रक की छाल का चूर्ण समान भाग मिलित १० तोले, तेल २ सेर और भागरे का स्वरस ८ सेर लेकर

सबको एकत्र मिलाकर पकावे जब रस जलजाये तो तेल को छान लेवे। यह तेल नाडी व्रण (नासूर) कफ वातज अपची (गण्डमाला भेद) और व्रणो को नष्ट करता है। भा भै र

भल्लातक शोथान्तक लेप१—भिलावे के स्पर्श से उत्पन्न हुई सूजन को पीपल वृक्ष की छाल के क्वाथ मे या भैस के दूध मे पीसे हुये तिलो को नवनीत (नौनी घी) मे मिलाकर लेप करने से नष्ट होजाता है। भा भै र

भल्लातक शोथातक लेप२—तिल और काली मिट्टी अथवा जले हुये तिलो को भैंस के नवनीत (मक्खन) मे मिलाकर उसका लेप करने से भिलावे के स्पर्श से उत्पन्न हुई सूजन नष्ट होती है। भा भै र

भल्लातकादि लेप३—भिलावे अथवा कटेरी के फल को अत्यन्त महीन पीस कर अरण्डी के तेल मे मिलाने इसमे शहद मिलाकर लेप करने मे गज (इन्द्रलुप्त) थोडे दिनो मे ही नष्ट हो जाती है। भा भै र

भल्लकादि लेप४—भिलावा, कमीस, चीता, दन्तीमूल और गुड समान भाग लेकर सबको अत्यन्त महीन पीसकर सेहुड [थूहर] और आक के दूध मे मिलाकर लेप बना लें। इसे लगाने से गण्डमाला इस प्रकार नष्ट हो जाती है जैसे पवन के वेग से मेघमाला। भा भै र

भल्लातकामृतम्—शुद्ध भिलावे ४ सेर, दूध ८सेर पानी ३२ सेर लेकर सबको एकत्र मिलाकर पकावे। जब दूध मात्र शेष रह जाय तो उसे छानकर उसमे ८सेर घी और १ सेर मिश्री मिलाकर पुन पकावें और जब वह गाढा हो जाय तो उसमें १ सेर शहद, १ सेर आवले का चूर्ण, आधा सेर हरड का चूर्ण तथा पाव पाव सेर (२०-२० तोला) लोह भस्म और गिलोय सत्व मिलाकर सबको बरनी मे भरकर उसका मुह बन्द करके अनाज के ढेर मे दबादे और ७ दिन पश्चात् निकाल कर काम मे लावे। इसको १। तोले की मात्रा मे सेवन करने से रक्तार्श अवश्य नष्ट हो जाता है। इसके सेवन काल मे क्षार और तीक्ष्ण पदार्थो मे परहेज करना चाहिये तथा शरीर पर तेल मर्दन करना चहिये। भा भै र

भल्लातक सिद्ध हिंगुल—४० तोले भिलावे को २-२ टुकडो मे काटकर लोहे की कडाही मे फैला दे। इस पर ४० तोले हिंगुल के ५-५ तोले वजन के ८ टुकडे कुछ अन्तर से रखदे। इस पर ४० तोला एरड तेल, ४०तोला घृत, ४० तोला मधु डालकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब इसमे से ज्वाला निकलने लगे तब अग्नि देना बन्द करदे और स्वाग शीत होने पर हिंगुल के टुकडोकोवस्त्र से पौछ ले, इसको २-३ दिन खरल मे घोटे। यही है भल्लातक सिद्ध हिंगुल। —वैद्य यादव जी त्रिकम जी

संग्रहणी मे—जायफल, जायपत्री चूर्ण ४०-४० तोला मिला कर देवे। उदर, आनाह, कृमि रोग मे पथ्या, विडग इन दोनो का समभाग चूर्ण मिलाकर देना चाहिये। अनु-

भिलावा
SEMECARPUS ANACARDIUM, LINN.
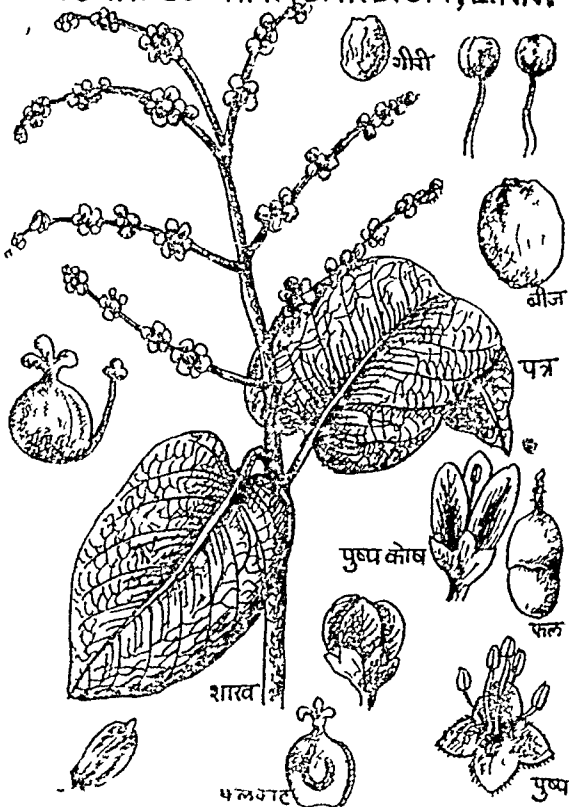
लोमनार्थ दधिजल (मस्तु) के साथ देना चाहिये । एरंड तेल, शहद, घी आदि त्रिदोषघ्न द्रव्यों के संस्कार हिंगुल में होने से त्रिदोषज जीर्ण विकारों में यह अति लाभप्रद सिद्ध होगा । जिन रोगों में भिलावा उपयुक्त माना गया है उन सब विकारों में लाभदायक सिद्ध होगा । मात्रा—१/२ रत्ती से १ रत्ती तक की मात्रा में इसका सेवन करें ।

—आ० पत्रिका

यूनानी माजून बलादर—तेल छिले हुये ८ तोला शीरा भल्लातक, मगज बादाम, मगज चिलगोजा, असगंध अकरकरा, पान की जड़, जावित्री ३-३ तोला, जायफल, सोंठ, साहलब मिश्री २-२ तोला, पिप्पली, मस्तंगी, हालों बीज प्रत्येक १।। तोला, गाजर बीज, अजरा बीज, कौंच-बीज, केशर १-१ तोला, समुद्र शोष, कस्तूरी ६-६ माशा शक्कर औषधि मान के सम भाग, मधु द्विगुण लेकर यथा विधि पाक कर औषध चूर्ण मिलाकर माजून बनावे । मात्रा ९ माशे से १ तोला ।

गुण—पुंसक शक्ति तथा सब शरीर को बल देती है ।

हरड, बहेडा, आवला, २-२ तोला, वालछड, बच, चुकन्दर, कालीमिर्च, सोंठ और भिलावे का शहद (भिलावे के अन्दर रहने वाला काला रस) १।।-१।। तोला । इन सब चीजों को कूटकर इनमें थोड़ा सा बादाम रोगन मिलालें, फिर इसमें भिलावे का शहद मिलाकर सब चीजों में जितना वजन हो उससे तिगुने शहद में माजून बनालें और उसको जौ के ढेर में गाढ़ दें । ६ मास के बाद उपयोग में लेवें । इसकी मात्रा ४ माशे की है ।

तुकरुयाकबीर, अकरकरा, कलौंजी, कूठ, कालीमिर्च पीपल और बच प्रत्येक तीन-तीन तोला । पाषाण भेद हींग, जरावंद मुदहरज, हब्बुलगार, जुन्दबेदस्तर, राई और चित्रक छाल, हरएक १।।-१।। तोला, भिलावे का शहद १। तोला, इन सब चीजों को कूट-छान कर अखरोट और तेल में तर कर लें और फिर तिगुने शहद में माजून बनालें । ६ माह के बाद इसको ४।। माशे की मात्रा में उपयोग में लावें । —व च भा ७

भिलावे के उपद्रव और शांति

भिलावे कोअधिकमात्रा में लेनेसे गर्मी, खुजली, भीतरी सूजन और बैचेनी पैदा हो जाती है तथा हलक और जबान में छाले पैदा हो जाते हैं । इसके उपद्रवों को दूर करने के लिये गाय और बकरी का ताजा मक्खन और तिलों का तेल सिलाना चाहिये और बदन पर मालिश करनी चाहिये । जदवार को गाय के दही में मिला चटाना चाहिये, नाक में रोगन बनफशा और रोगन बादाम टप-काना चाहिये । सिर पर ठण्डी चीजों की मालिश करनी चाहिये । भिलावे की वजह से घाव पडजाय तो उस पर मोम का तेल लगाना चाहिये । अगर सूजन हो तो मरवे के पत्तों का लेप करना चाहिये । इमली के पत्तों का रस पिलाने से भिलावे का जहर मिट जाता है । इमली के दरख्त की अन्तरछाल को दही में पीस कर भिलावे से उत्पन्न फोडे फुंसियों पर लगाने से बहुत जल्दी आराम हो जाता है । इमली की छाल, पत्ते और फल भिलावे के लिये उत्तम दर्पनाशक वस्तुयें हैं ।

भुंइ अरण्डी (Sebastiania Chamaelea)

एरंडादि कुल (Euphorbiaceae) की जाति की एक वर्ष जीवी छोटी वनस्पति है । इसके पत्ते २ से लेकर ५ से १० सें० मी० तक लम्बे और ४ से लेकर १ से ३ सें० मी० तक चौडे होते हैं । इसके फल पीले रंग के होते हैं । इसके बीज पीले दोनों किनारे से गोल और ४ मिलीमीटर लम्बे होते हैं । यह वनस्पति कोकण, विहार और श्रीलंका में पैदा होती है ।

नाम—

हिं०—भुइ अरंडी । कोकण—भुइ अरंडी । लें०—सबस्टेनिया चेमेलिया ।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसके पौधे का रस शराब के साथ मिलाकर एक सकोचक वस्तु की तरह काम में लिया जाता है । इसके रस में सिद्ध घृत पौष्टिक माना जाता है और सिरके चक्कर को दूर करने के लिये इसका लेप मस्तक पर किया जाता है ।

भुंई आंवला (Phyllanthus Niruri Linn)

गुडूच्यादि वर्ग और एरण्डादि कुल (Euphorbiaceae) के भूमि आवले के क्षुप वर्षा ऋतु मे खेतो और जगलो की आर्द्र भूमि मे निकल आते है। यह भारत के सब उष्ण प्रदेशो मे होता है। ऊचाई पौन से डेढ फीट। पान-फीके हरे विविध प्रकार के आवलो के पत्तो के समान लम्ब गोल और सकरे होते है। अत भूम्यामलकी कहा है। पान और फलो का आकार लगभग आवले सदृश किन्तु बहुत छोटा सरसो के बराबर, पत्तो के पिछले भाग मे सीक पर पीले रङ्ग के छोटे छोटे फल आते है जिनका स्वाद आवले के समान होता है। इनकी सख्या बहुत होती है अत 'बहुफला' कहा है। नर पुष्प १ से ३ तक साथ मे। पखडिया ४ से ६। पुकेसर ३। मादा पुष्प एकाकी। गर्भाशय ३ कोष युक्त। फूल–हरे या सफेद प्रभावाले। फूल-फल—वर्षा ऋतु मे। बरसात के अन्त मे यह वनस्पति सूख जाती है। इसलिये इसको कार्तिक मास मे सग्रह करके सुखाकर रख लेना चाहिये।

उपयोगी अङ्ग—सर्वांग। साथ प्रदत्त चित्र अवलोकन करें।

नाम–

स०—भूम्यामलकी, शिवा, ताली, सूक्ष्मफला। हि०—भुई आवला, भद्र आवला, पातल आवला, जराम्ला व०—भुई आवला। बबई—भुई आवला। गु०–भोय आवली। म०–भुई आवला। ता०—कील कायनेल्ली। ते०—नेल नेल्ली। उर्दू–भुई आवला। ले०–फिलेंथस निरूरी (Phyllanthus niruri Linn)।

गुणधर्म व प्रयोग–

भूधात्री रस मे मधुर, अनुरस कडवी, रुचिकर, लघु, शीतवीर्य, पित्तशामक, कफनाशक, रक्त प्रसादन और दाहशामक है। नेत्ररोग व्रण, शूल, प्रमेह, मूत्ररोग, प्यास, कास, पाडु, क्षत और विष को दूर करता है।

भुई आवला वातकारक, कडवा कपैला, मधुर, शीतल और तृषा, खासी, पित्त, रुधिर विकार, कफ, खुजली तथा क्षत नाशक है —भाव प्रकाश।

यूनानी मतानुसार—यह वनस्पति अग्निवर्धक और फोडे फुसी तथा आमातिसार मे बहुत लाभदायक है। इसका फल कडवा होता है और यह क्षयजन्य व्रण, चोट, रगड, खाज और दाह मे उपयोगी है।

डा देसाई के मतानुसार—भूधात्री दीपन, पाचन, मूत्र जनन, स्तंभन, दाह शामक, व्रण रोपण, शोथ हर और नियत कालिक ज्वर प्रतिबन्धक है। ए जे अमादेव ने फरमास्यूट जनरल मे सन् १८८८ के अप्रैल मास के अङ्क मे लिखा था कि यह दीर्घकाल स्थायी पार्यायिक ज्वरो को जिनमे यकृत और तिल्ली की बाधा भी होती है, बहुत लाभ पहुचाता है। यदि इसको ठडी हालत मे बार बार लिया जाय तो यह मूत्रल औषधि का काम भी करता है। इसकी ताजी जड पीलिया की एक उत्तम दवा मानी

मुई आंवला
PHYLLANTHUS NIRURI LINN.
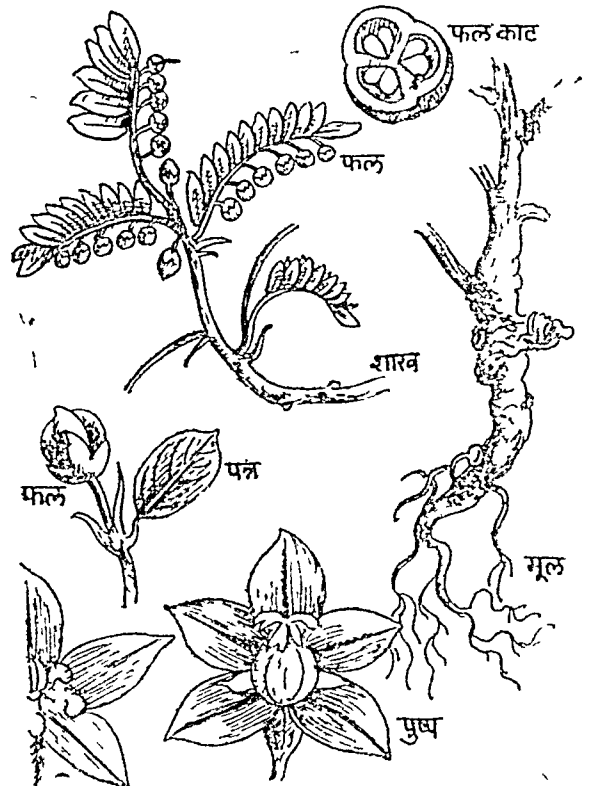
जाती है। कर्नल चोपरा के अनुसार—भुई आवला जीर्ण आमातिसार, जलोदर, अत्यधिक रज स्राव और घावो के ऊपर काम मे लिया जाता है। इसके पत्तो की साधारण मात्रा ३॥ माशे की है। चूर्ण ४ से ६ माशा। क्वाथ ५ से १० तोला।

प्रयोग—

कामला—इसकी १। तोला ताजी जड को दूध के साथ पीस छानकर दिन मे २ वार पिलाने से कामला रोग मिटता है।

जलोदर—इसके पचाग का क्वाथ वनाकर पिलाने से मूत्र वृद्धि होकर जलोदर मिटता है।

रक्तप्रदर—इसकी जड के चूर्ण को चावलो के पानी के साथ २-३ दिन तक देने मे रक्त प्रदर मिटता है।

—वगसेन

मूत्रकृच्छ्—भुई आवले के स्वरस २ तोला को २ तोले गोघृत के साथ मिलाकर प्रात साय पिलाने से मूत्र शुद्धि होती है और मूत्रदाह शमन होता है। इस प्रकार मूत्राशय शोधन से यह हितावह है।

हिचकी श्वास मे—भुई आवले की जड को पानी मे पीसकर उसमे शक्कर मिला लेने से तथा नस्य लेने से हिचकी और श्वास रोग दोनो मिट जाते है।

—चरक चि० अ० २

आख की पीड़ा—तावे के वरतन पर भुई आवला को सेधा नमक के साथ जल मे घिस कर के (जव तक गाढ़ा हो जाय तब तक घिसकर) आख के वाहर लेप करने से आंखे ठीक हो जाती है।

—चक्रदत्त

भुंई आंवला लाल (Phyllanthus Urinaria)

गुडूच्यादि वर्ग और एरडादि कुल (Euphorbiaceae) की भुई आवले की एक दूसरी जाति है। इसके क्षुप भुई आवले से मिलते हुए किन्तु कुछ ललाई लिये हुए होते हैं। जिसमे फल खुरदरे होते हैं। जिसका लेटिन नाम फाइलेन्थस युरिनरिया है। यह भी भारत के समशीतोष्ण प्रदेशो मे सर्वत्र होता है। इसके पान, फूल, ये सव विना डठल के उक्त निरूरि जाति की अपेक्षा वडे-वडे होते है। क्षुप की ऊचाई निरूरि जाति के समान ६ से १८ इच, तना और फूल रक्ताभ होते है। फूलने फलने का समय जुलाई से दिसम्बर तक। चित्र साथ मे प्रकाशित है।

नाम—

हि०—लाल भुई आवला, हजारमनी। गु०—खरसट, भुई आवली। म०—लाल मुडज आवली। पारवन्दर—कडार आवली। लें०—फाइलेन्थस युरि नरिया।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसके गुण धर्म भुई आवले के समान ही होते है। इसके सूखे पौवे का काढा चाय के चम्मच की मात्रा मे कामला रोग को दूर करने के लिये दिया जाता है।

भुई आवला लाल (हजारदानी)
PHYLLANTHUS URINARIA LINN.
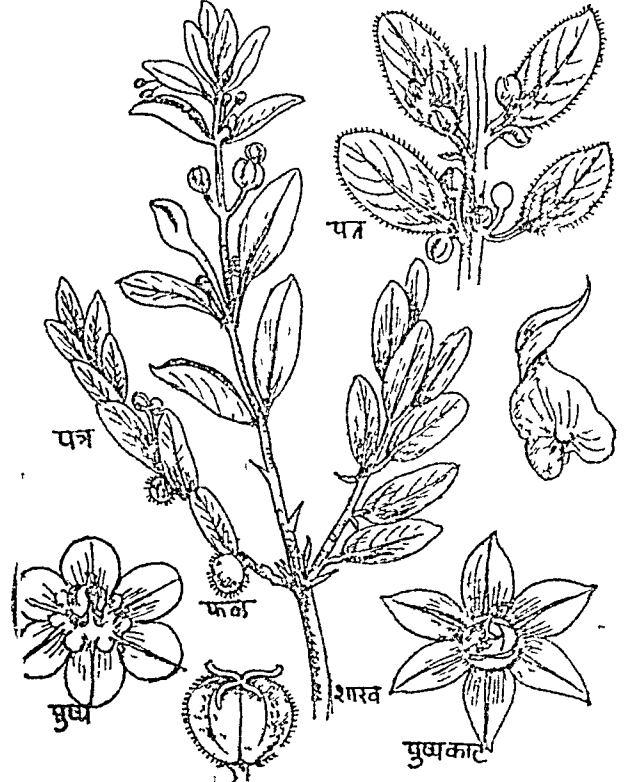
इसका पौधा जलोदर के रोग मे मूत्रल औषधि की तरह बहुत उपयोग मे लिया जाता हे। सुजाक और मत्र सबधी दूसरी बीमारियो मे भी इसका बहुत उपयोग होता है।

भुंई आंवला बड़ा (Phyllanthus Simplese)
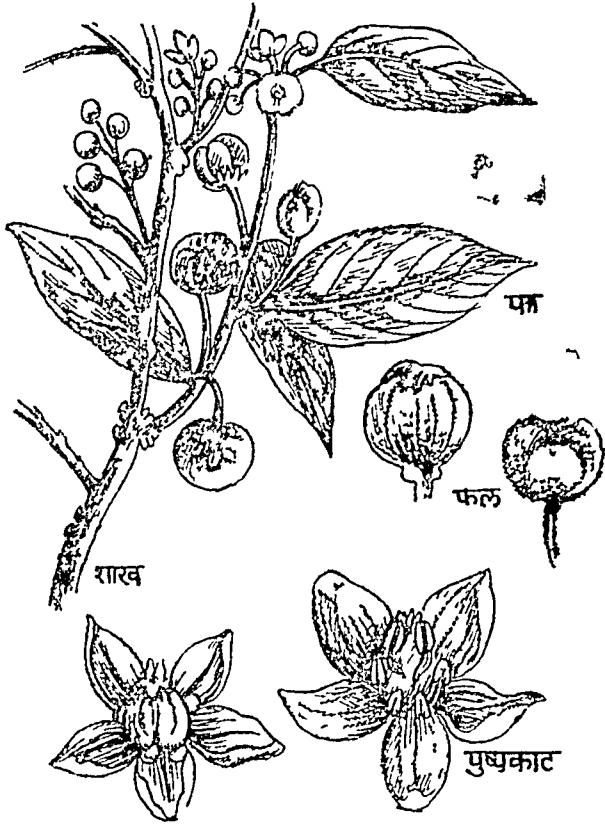
गुडूच्यादि वर्ग और एरडादि कुल (Euphorbiaceae) की भुई आवले की तीसरी जाति का लेटिन नाम फाइलेन्थस सिम्पलेक्स है। इसके पौधे भुई आवला के पौधे से कुछ बडे होते हैं। इसकी ऊचाई १ से ३ फीट। इसकी डालिया कुछ पतली सी और दवी हुई होती हैं। इसके फूल भुई आवला के समान। नर पुष्प २ साथ मे, स्त्री पुष्प का दण्ड प्रत्येक गुच्छे मे से निकलता है। फल-भी भुई आवले के समान ही होते हैं। फूल फल अगस्त से दिसम्बर तक आते हैं। इन तीनो मे पहली जाति जिसका लेटिन नाम फाइलेन्थस निरूरि है गुण मे अधिक मानी गई है। उपयोगी अग पन्चाग। मात्रा—डेढ़ से तीन माशे।

नाम—

हि०—भुई आवला वडा। गु०—मोटी भोय आवली। म०—मोटी भुई आवली। काठियावाडी—मोटी मोइ आवरी। ले०—फाइलेन्थस सिम्प्लेक्स।

गुणधर्म व प्रयोग—

इसका पचाग जीरा और मिश्री इन तीनो को समान लेकर पीसकर एक चाय के चम्मच की मात्रा मे दिन मे २ वार सुजाक को मिटाने के लिये दिया जाता है।

भुई कन्द [पहाड़ी कंद] (Scilla indica)

यह कोल कन्द कुल (Lilicaeac) का एक कन्द है इसका पौधा भी कोल कन्द की तरह होता है। इसका कद कोली कद से कुछ छोटा सफेदी लिये हुये भूरे रग का परतवार और जायफल के आकार का होता हे। इसका कद बहुत मुलायम होता है। पहिचान के लिये चित्र अवलोकन कीजिये।

उत्पत्ति स्थान—यह वनस्पति विहार, मध्यभारत, छोटा नागपुर और पश्चिमी भारत मे पैदा होती है।

नाम—

हि—भुइकद, पहाडी कंद। वबई—भुइकद। ब.—

सुफेदीखस । ले —स्किला इडिका (Scilla indica Baker) ।

गुणधर्म व प्रयोग–

इस वनस्पति के कद मे प्राय वे सब तत्व मौजूद रहते है। जो कोली कद के अन्दर पाये जाते है। चोपरा और दे ने सन् १९२६ मे इस वनस्पति का परीक्षण करके यह सिद्ध किया कि ब्रिटिश फारमाकोपिया मे दर्ज अर्जिनिया स्किला (कोली कदा) और अमेरिकन फारमाकोपिया मे दर्ज अर्जिनिया मार्टिमा (कोली कदा) से यह वनस्पति किसी कदर कम नही है। अन्तर इतना ही होता है कि कोली कद के ऊपर झिल्ली रहती है और भूमिकद मे प्याज के समान ऊपर से नीचे तक परत रहते है। यह रस मे कड़वा और वमनोत्पादक हे। यह कफ को निकालने वाला- हृद्य, वलकारक और मूत्रल है।

भुई कन्द
SCILLA INDICA BAKER

भुइ खाखसा (Cassia Augustifolia)

यह शिम्बी कुल (Leguminosae) की सनाय की एक देशी जाति होती है जो भारत के कुछ भागो मे वोयी जाती है । इसके पत्र उत्तम जाति की सनाय के स्थान पर बेचे जाते हैं।

नाम–

स —मार्कडिका, मृदुरेचनी, पीत पुष्पी । हिं —भुइ खाखसा । गु —मीढ़ी आवल । म —मुह तरवड । ते —नेलापोन्ना । ब.—सैनामकी, सोनपात । फा.—सनाये हिन्दी । अं —Bombay Senna । ले —केसिया ओगस्टीफोलिया ।

गुणध धर्म प्रयोग–

इसका पौधा कब्जियत को दूर करने वाला और भूख बढाने वाला होता है। यह उदरशूल, यकृतरोग, प्लीहा की वृद्धि, अजीर्ण, अम्लपित्त, पीलिया, पाडु रोग, कुष्ठ, विप विकार, खासी, श्वास की दुर्गन्ध, अर्बुद मे लाभदायक है।

भुंई गली (Indigofera Enneaphylla)

यह शिम्वी कुल (Leguminoceae) की वनस्पति है इसके पौधे वरसात मे वहुत पैदा होते हे । इस पौधे की ऊचाई आधे से लेकर डेढ फीट तक होती है। इसके पत्ते शरपखे के पत्तो की तरह होते है । इसके फूल लाल रग के सुन्दर पतग के आकार के और फलिया छोटी होती हैं। हर एक फली मे दो–दो वीज रहते हैं।

नाम–

स —वासुका। हिं —भुईगली। म –भुईगली। गु – भोयगली। ता —चेप्प निरजी । तेल —चेरायेड्‌डमु। ले —इडिगोफेरा इनेफिला (Indigofera Enneaphylla Linn)।

गुणधर्म और प्रयोग–

इसके वीज वहुत पौष्टिक माने जाते है। अकाल के समय गरीव लोग उन वीजो को खाते है। इसके पौधे का रस–मूत्रल, रक्तशोधक और चिरगुणकारी पौष्टिक वस्तु की तरह काम मे लिया जाता है। इसके पौधे का रस रक्तातिसार नाशक, धातु परिवर्तक और मूत्रल वस्तु की तरह उपयोग मे लिया जाता है। मैथुन शक्ति की कमजोरी मे यह धातुपरिवर्त्तक औषधि की तरह काम मे ली जाती है। कुष्ठ रोग मे भी इसका उपयोग होता है।

भुंई चाम्पा (Kaempferia rotunda)

यह सोठ कुल (Zingiberaceae) का विस्तृत सुगधित फूलो का क्षुप होता है। यह वाग वगीचो मे कई स्थानो पर लगाया जाता है। इसके पत्ते १२ इच लम्वे तीन चार इच चौडे, हरे गाढे पीतवर्ण और वैंगनी रग विशिष्ट होते हे। पुष्प दण्ड का पत्र लम्वा, फूल लम्वे गध युक्त श्वेत वर्ण । इसकी जड़ के वीच गोल गोल गठाने होती हैं। उन गठानो मे से वहुत सी मासल और मोटी जडे फूटकर उनके समान कन्द वन जाते हैं। इनका स्वाद कडवा होता है। औषधि प्रयोग मे इसका कन्द काम आता है। ग्रीष्म काल मे फूल और वाद मे फल आते हैं। चित्र इसका साथ दिया गया है।

उत्पत्तिस्थान—छोटा नागपुर, पार्श्वनाथ पहाड, चिटग्राम, समग्र भारत मे लगाया तथा कृषि की जाती है। आदि वास स्थान—दक्षिण पूर्व एशिया।

नाम–

स —भूमि चपक। हि —चन्द्रमूला । व.—भुई-चापा। ते —कोडा कारवा। ले —केंफेरिया रोटुडा।

गुणधर्म और प्रयोग–

आयुर्वेद मत से यह वनस्पति शोथनाशक और व्रण रोपक होती है। इसके कन्द का पुल्टिस बनाकर फोडो को पकाने से लिये उन पर वाधा जाता है। इसके सारे पौधे को पीसकर उसका लेप वनाकर ताजे जख्मो पर वाधने से चमत्कारिक रुप से जख्म भर जाते है । भीतरी प्रयोग

करने मे यह हर प्रकार के रक्त के जमाव को दूर कर देती है। इसकी जड सर्वांगीय शोथ मे लाभदायक होती है। सारे भारतवर्ष मे यह विश्वास किया जाता है कि इसका कद सूजन को दूर करने मे बहुत उपयोगी है।

भुंई जाम (Ardisia Humilis)

यह वायविडगादि कुल (Myrsinaceae) की एक झाडी होती है। इसके पत्ते बडे होते है। यह वनस्पति कमीवेस सारे भारत मे पैदा होती है।

नाम—

हिं०—भुईजाम। बं०—वनजाम। मध्यप्रदेश—मयारवा। मल०—मोलावका। उडिया—भुइजामू, भुइजाम। ता०—मानेपुडवाम। ते०—कोडा मयूरी। ले० अरडीसिया हयू मिलिस।

गुण, धर्म व प्रयोग—

यह वनस्पति उत्तेजक और शातिदायक होती है डा० चोपडा ने ज्वरघ्न, अतिसारघ्न और वातघ्न लिखा है। (व च०)

भुँइ दरी (Tylophora Fasciculata)

यह आक कुल (Asclepiadaceae) की एक छोटी वनस्पति है। इसकी डालिया जमीन से ही फूटती है।

उत्पत्ति स्थान—यह वनस्पति मध्यभारत से लेकर सिलोन और गगा के उत्तरी मैदानो मे होती है।

नाम—

हिं०— भुइदरी। व०—भुइदरी। ले०—टिलोफेरा फेसिक्युलेटा (Tylophora Fasciculata)

गुण, धर्म और प्रयोग—

इसकीजडका रसदूधमे मिलाकर पौष्टिक वस्तुकीतरह दिया जाता है। इसके पत्तो को कुचलकर लेप के रूप मे दुष्ट व्रण और जख्मो मे स्वस्थ मासाकुर पैदा करने के लिये लगाया जाता है।

भूमि कुम्हड़ा (Trichosanthus Cordata)

यह पटोलादि कुल (Cucurbittaceae) की पराश्रयी वेल है। जो गगा के उत्तरी मैदानो मे और हिमालय मे नेपाल से वगाल तक पैदा होती है। इसकी लता बहुत दूर तक फैली हुई होती है। काड मे गहरे रोये होते है। पत्र ६ से ८ इच तक लम्बा, किनारे करोती के दातो के समान होते है। आकडी [तातिये] १ से २ फीट लम्बाई मे। आकडी मे ३ प्रशाखा होती है। फूल-एक लिग विशिष्ट। पुष्प-दण्ड-४ इच लम्बा अतिशय सख्त। पुष्पपत्र पर घने रोये होते है और यह डेढ इच लम्बा होता है। फल—लाल इद्रवारुणि केसमान उज्जवल लाल वर्ण के, मरतक नारगी रग विशिष्ट। इसका कद स्वाद मे तिक्त, कटु और कषाय, देखने मे पीत वर्ण का बडिशालऔर चट ग्राम के लोग इसको भूकामडा कहते है। प्राकृत भूमि कुष्माड स्वाद मे मधुर एव उसके कद मे श्वेत वर्ण का दूध होता है, कद देखने मे श्वेत वर्ण का होता है।

प्राकृत भूमि कुष्माड का लेटिन नाम (Ipomoeadigitata Linn अथवा Convolvulus pauecatala Lim] यह बङ्गाल मे सर्वत्र होता है। शालिग्राम वैद्य कहते है कि इसका कन्द मूली के समानवर्ण–रक्त और श्वेत एव प्रति शाखा के ७-८ पत्र होते है। वही क्षीर विदारी [Ipomoeadigitata] इसका भुई कुम्हडा नाम सार्थक नही है। भूमि कुष्माड [*Ipomoea digitata*] ही है।

नाम–

हि०—भूमि कुम्हडा। स०—विदारी। ब–भुईकामडा ले०—ट्रिकोसेन्थस कोरडेटा।

गुण धर्म और प्रयोग–

इसकी जड का उपयोग पौष्टिक वस्तु की तरह किया जाता है। ढाका मे इसकी जड़को सुखाकर उसका चूर्ण करके ५ रत्ती की मात्रा मे मिश्री, बादाम और आंतो की खराबी को दूर करने के लिये देते है। इसकी ताजी जड को तेल मे मिलाकर उसका लेप कुष्ठजनित व्रणो पर किया जाता है।

भूत केशी (Corydalis govaniana)

यह पर्पटादि कुल (Fumariacae) की वनस्पति हिमालय मे काश्मीर से लेकर कुमायू तक ८ हजार से १२ हजार फीट की ऊचाई पर पैदा होती है। फूल पीले रग के, दूध पीले रग का, स्वाद बहुत कडवा होता है। औषधि मे इसकी जडे काम मे आती है। पहचान के लिये चित्र देखिये।

नाम–

स०—भूतकेशी। हिं०—भूतकेशी, भूतकिस। प०—भूतकेसी। ब०—भूतकेशी। ले०—कोरिडेलिस गोवेनियेना।

गुण, धर्म और प्रयोग–

इसकी जड पौष्टिक, मूत्रल, धातु परिवर्तक और पार्य्यायिक ज्वर निवारक मानी गई है। यह उपदशजन्य विकृति कण्ठमाला और चर्म रोगो मे उपयोग मे ली जाती है।

भूत केशी
ELAEODENDRON GLAUCUM PERS

भूतिया बादाम (corylus colurna)

यह वटादि वर्ग, भोजपत्र कुल [Betulaceae] का छोटा वृक्ष होता है। इसकी छाल गहरे भूरे रग की और पतली होती है।

उत्पत्ति स्थान—यह वृक्ष हिमालय मे काश्मीर से कुमायू तक पाच हजार से दसहजार फीट की ऊचाई तक पैदा होता है।

नाम—

हिं०—भूतियाबादाम । गढवाल—कावसी । कुमायू भूतिया बादाम । काश्मीर—विनरी, थागी । ले०—कोरिलस कोलुर्ना (Corlus colurna Linn)

गुण, धर्म और प्रयोग—

इसके फल पौष्टिक वस्तु की तरह उपयोग मे लिये जाते है ।

भेदस (Eugenia spicata)

यह लवगादि कुल (Uyrtaceae) की एक वनस्पति है। इसका वृक्ष मध्यम कद का और झाडीनुमा होता है । जब इस पर फूलो की बहार आती है तब यह बहुत सुन्दरमालूमहोताहै ।इसकेफूल सफेद रग केहोते है । इसका फल मटर के आकार का बिलकुल सफेद और एक बीज वाला होता है । यह वनस्पति उडीसा, सिलहट और सीलोन मे पैदा होती है ।

नाम—

म०—भेदम । उ०—सागरवटना । ता०—मरूगी म०—नयारा, कन्नड—नेरकल । ले०—युगेनिया स्पिकेटा [Eugenia spicataLam] ता०-मरूगी

गुण, धर्म व प्रयोग—

इसके बीज उत्तेजक, सधिवात को नष्ट करने वाले और उपदशज विष को दूर करने वाले होते है । इन गुणो के कारण इण्डोचायना मे इस वनस्पति का बहुत प्रचार है ।

भेरी—देखो-चिल्ला न० १

भोजपत्र (Betula Bhojapatra)

यहवटादिवर्ग, भोजपत्रकुल (Betulaceae) का एक यह छोटी जाति का झाडीनुमावृक्ष होता है । वृक्ष की छाल को ही भोजपत्र कहते हैं । यह कागज के समान अथवा केले के सूखे पत्ते के समान होता है । पहले जब कागज नही बनता था तब भोजपत्र काही कागज के स्थान पर व्यवहार किया जाता था । पहिचान के लिये चित्र साथ मे दिया जा रहा है ।

उत्पत्ति स्थान—यह हिमालय मे ७ हजार फीटसे १३ हजार फीट की ऊचाई पर काश्मीर से सिकिम तक और ६हजार से १४ हजार फीट की ऊचाई तक भूटान मे होता है ।

नाम—

स—भूर्जपत्र । हिं—भूजपत्र । बबई-भोजपत्र । ब—भूजपत्र । ते—भूजुपत्री । म—भूर्जपत्र । गढवाल—भूज । प—भूज । ले—वेटुला भोजपत्र (Betulabhojpatra wall)

गुण धर्म व प्रयोग—

इसकी छाल कसैली, चरपरी, गरम, पौष्टिक, भूतघ्न, आक्षेप, कास, कर्ण रोग, कुष्ठ और त्रिदोष को दूर करने वाली होती है ।
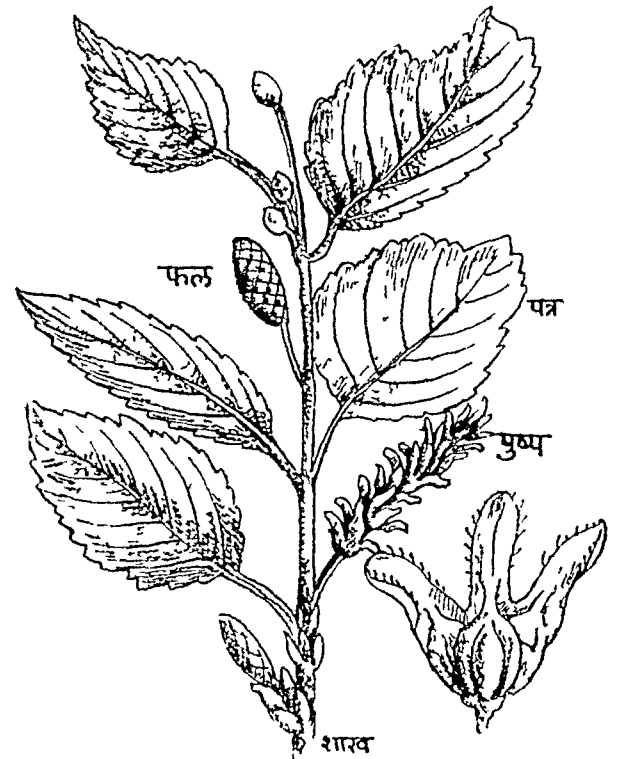
यूनानी मतानुसार—भोजपत्र कर्णशूल मे लाभदायक होता है। इसकी छाल का काढा कान से बहने वाली पीप और जहरीले जख्मो को धोने मे प्रयोग किया जाता है। इसकी छाल का शीत निर्यास हिस्टेरिया मे उपयोगी और शातिदायक माना जाता है। इसमे कुछ सुगधित और कृमिनाशक तत्व रहते है। मलाया मे इसकी छाल का काढा पीलिया या पित्त ज्वर को दूर करने के लिये दिया जाता है।

भोमा (Glochidion Hohenackeri)

यह एरडादि कुल (Euphorbiaceae) का एक मध्यमकद का वृक्ष होता है। इसके पत्ते ६.३ से लेकर १५ सेंटी मीटर तक लम्बे और २.५ से ४.५ सेंटीमीटर तक चौडे होते हैं इसके फूल कुछ हरापन लिये हुये पीले रग के होते है। बीज लाल रग के और मुलायम होते है।

नाम—

म भोमा। मल —कुलुचन। उडिया—कलचिया। ले०—ग्लोचिडिओनहोहेनेकेरी (Glochidion Hohenache Neri Bedd)

गुण धर्म और प्रयोग

इसकी छाल उस समय औषधि के रूप मे दी जाती है। जबकि पेट मे भोजन का पाचन नही होता और पेट भोजन के विरुद्ध विद्रोह करता है।

भोरी लोथ (Combretum Pilosum)

यह हरितक्यादि कुल (Combretaceae) की एक प्रकार की झाडी होती है। यह कच्छार जिला और आसाम मे पैदा होती है।

नाम—

हिं—भोरीलोथ, थूनिया लोथ। ले —कोम्ब्रेटम-पिलोसम (Combretum Pilosum Br)

गुण धर्म और प्रयोग—

इसके पत्तो का काढा कृमिनाशक औषधि की तरह काम मे लिया जाता है।

भोपाथरी देखो वनगोभी

भोलन (भ्रमरछल्ली) (Hymenodictyon Excelsum)

मजीठकुल (Rubiaceae) का यह एक बडी जाति का वृक्ष होता है। इसकी ऊचाई ३० फुट से ५० तक होती है। और इसके पिंड की गोलाई ६ से लेकर ८ फुट तक होती है।। वृक्ष बहुत शाखा प्रशाखा युक्त होता है। अवध और उत्तर प्रदेश मे इसकी लम्बाई और गोलाई बहुत अधिक होती है। इसकी छाल दलदार, पोची, बाहर की ओर भूरे हरे रग की, भीतर की सफेद तथा हल्के लाल रग की होती है। इसके पत्ते आमने सामने ६ से लेकर १२ इन्च तक लम्बे, ३ से ५ इन्च चौडे, डण्ठल की तरफ से गोल और दूसरी तरफ से कुछ लम्बे और मुलायम होते है। कही २ साग के पान के समान १ से १½ फुट जितने लम्बे होते है। उपपान चौडे और दातेदार होते है। इसके फूल शाखाग्र या पत्र कोणोद्भू गुच्छो मे लगते है। ये कुछ हरापन लिये सफेद रग के और सुगन्ध युक्त होते है। पुकेसर ५, छोटी पुष्प नली मे होते है। फल—¾ इन्च लम्बा, देखने मे मटर के समान किंतु लम्बाई मे दुगुना होता है। फल के अन्दर ७ से १२ बीज होते है। इसके वृक्ष मे घाव करने से इसकी नसो से एक जात का प्रवाह झरता है वह भूरे रग का और चिकना होता है। वास मधु के समान और स्वाद कडुवा होता है। उपयोगी अश पत्र, छाल। पहिचान के लिए चित्र अवलोकन करे।

उत्पत्ति स्थान—मध्य भारत, उत्तर प्रदेश, टेनासरिम, चटगाव, तिरुहत, हिमालय की पर्वत श्रेणियो मे एव सूखे प्रदेशो के पहाडी भागो मे होते हैं।

नाम—

स —भ्रमरछल्लिका, भ्रमरछली, भ्रमरा, भृगमूलि-

का, भृगान्हा, छालि, उग्रगन्धा । हिन्दी—भमरछाली, भ्रमरच्छली, वदारु, वौरगा, भेलन, भामिनी, भौलन, भुरकुल, वौली, फलदु । व०—कुकुरकट्ट । वंबई–काला-कडु, काला करवा । मध्यप्रदेश–वोहर, पोतुर, वदारी । मराठी–भवरछाल, भीरछाल, भ्रमरसालि, भुरमाल दोन्द्र कर्णाटिकी–उप्पुशक्के । पजाव–वरथोआ, थाव, भुरकुर । श्री–गुजरात मरसाल, डोड्रो । देहरादून–भौलन। तमिल–विलारी, सगाप्पु । तेलगू–वदारु, वगरु । लै–हिमि-नोडिक्टीअन एक्सेलसम ।

गुण धर्म और प्रयोग––

भ्रमरच्छली की गीली छाल–कटु, गरम, दीपक, रुचिकारक, तिक्त और वल्य है । (शा. नि.)

इसकी छाल का क्वाथ रुचिकारक और भूख को वढाता है । गले के रोगो को दूर करता है और हर प्रकार की गठानो को मिटाता है ।

यह वहुत ही ग्राही और उग्र ज्वर मे सिनकोना के समान लाभ करती है ।

इसकी छाल को औटाकर पिलाने से तिजारी और दूसरे पर्यायिक ज्वर मिटते है ।

डा० ओ० शोगनेशी लिखते है कि ज्वर के लिये यह वहुत उत्कृष्ट और परीक्षित दवा है ।

मक्र [मंडुआ] (Eleusine Coracana Mill)

यह धान्य वर्ग और तृण धान्यादिकुल (Gramineae) का एक जाति का धान होता है जो मारवाड आदि मे कृषि द्वारा पैदा किया जाता है । परिचय के वास्ते चित्र आपके सामने है ।

नाम–

स—वहुपत्रका, भूचरा, गुच्छा, रागी, राजिका । हि—मक्र, मडुआ । म—नाचनी, नागली । गु नागली, नवटोंगली । कोकण—नाचनी । प–कोदा, कोदरा । का–मडुआ । व–मरुआ । ते–रग्गूलू । ले–इल्यूजिन कोरेकेना ।

गुण धर्म व प्रयोग–

आयुर्वेदीय मत से मडुआ कसैला, कडुआ, मधुर, तृप्तिकारक,हलका, वलकारक, शीतल, पित्तनाशक, त्रिदोष निवारक और रुधिर के दोषो को दूर करने वाला होता है । कमर के दर्द मे इसकी पेया वनाकर देने से लाभ होता है । अफ्रीका मे इसके वीजो का काढा गुर्दे के दर्द को दूर करने के लिये उपयोग मे लिया जाता है । —व च

श्री ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी एम ए. आयुर्वेदाचार्य मडुआ के विषय मे लिखते हैं–

इसकी गणना अन्नवर्ग मे की गई है । इसकी उत्पत्ति उत्तर प्रदेश मे प्राय सर्वत्र देखी जाती है । गरीब जनता इसकी रोटी व भात वनाकर अपना जीवन निर्वाह करती है ।
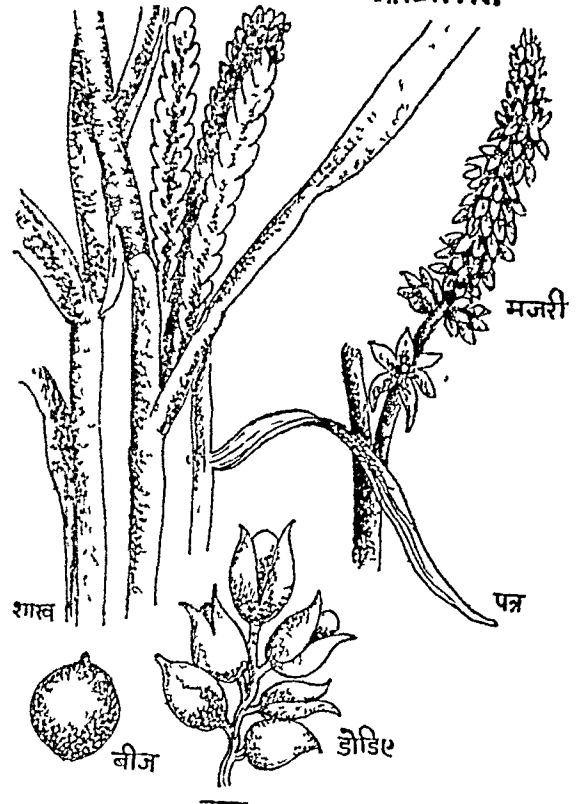
गुण—यह वातल, रूक्ष, ग्राही, उष्ण एव कफनाशक होता है । जगली मडुआ शीतवीर्य होता है ।

प्रयोग—छोटी या बड़ी माता निकलने के वाद, पाडु

रोग के तथा यकृत जन्य विकारो मे पथ्य के रूप मे इसका प्रयोग किया जाता है।

पुल्टिस—महुआ को पीसकर आटा बनालें। इसमे नमक, घी तथा शहद [illegible] कर सान लें। इसको फोडे के ऊपर बांध दीजिये शीघ्र फूट जायगा।

साबुन का प्रतिनिधि—इसकी भूसी को जलाकर उसमे से [illegible] ले। इसको पानी मे घोलकर सिर [illegible] पांच मिनट छोड दें, इसके बाद सिर को मल मलकर धो डालें, ऐसा करते रहने से बाल रेशम के सदृश मुलायम हो जाते है और रूसी भी साफ हो जाती है।

मोटापा मे—शहद के साथ इसकी रोटी खिलाने से लाभ होता हे। इसके साथ मक्खन निकाले हुए दही का मठा लेना चाहिए यह कार्य कठिन अवश्य है पर इससे मोटापा दूर हो जाता है। इसके सेवन काल मे घी, दूध आदि पौष्टिक पदार्थो का सर्वथा परित्याग करना चाहिये। प्रात साय घूमना इसमे लाभदायक होता है।

एक तोहफा—इसकी भूसी बडी मुलायम होती है, अत इसका तकिया बनाया जाता है। यह सेमल की रुई मे भी अधिक मुलायम तथा आराम देह होती है।

मक्का (Zea mays Linn)

यह धान्य वर्ग और तृण धान्यादि कुल (Graminceae) का प्रसिद्ध धान्य है।

मक्का का धान्य हिन्दुस्तान मे सब जगह होता है इसको सब जानते है। इसलिये इसके लिये विशेष वर्णन की आवश्यकता नही।

नाम—

स०—[illegible], [illegible]। हि०—मकई, मक्का, भुट्टे। [illegible]। ब०—भुट्टा, जनार। गु०—मकाई। म०—[illegible]। [illegible]—[illegible], दुराहशमी। [illegible]—[illegible], मकई। उर्दू—मकई। ता०—माकाचोलम [illegible]—[illegible]। अ०—इण्डियन कोर्न मेज (Indian Corn Maize) लै०—[illegible]।

रासायनिक संगठन—

मक्का के [illegible] दानों मे ८।।। प्रतिशत मांसवर्द्धक द्रव्य, ७४ प्रतिशत आटा, ३ प्रतिशत चर्बी, २।।। प्रतिशत [illegible], १२ प्रतिशत पानी और १।। प्रतिशत राख होती है। [illegible] दानों मे ८ प्रतिशत मांसवर्द्धक द्रव्य, ७० प्रतिशत [illegible], २ प्रतिशत चर्बी, १ प्रतिशत राख पाई जाती है।

गुण धर्म व प्रयोग—

[illegible]

यह [illegible] पौष्टिक होता है। [illegible] पौष्टिक

तत्व ओट (Avena sativa) जो गेहू से ऊचा माना जाता है। इसके मखोलिये (डीडू) की राख मूत्रल होती है और वह पथरी रोग मे दी जाती है। इसके भुट्टे के कोमल बाल (corn silk) वेदनानाशक और मूत्रल होते है। इसलिये सुजाक, वस्तिशोथ और पथरी मे इनका काढा बनाकर पिलाया जाता है। ये बाल ताजी हालत मे गुणकारी होते हैं। मक्का के पौधे मे शक्कर रहती है। यह शक्कर ऊख की शक्कर का अपेक्षा कम मेहनत और कम खर्च से निकाली जा सकती है।

ग्रीस मे इसके भुट्टे के कोमल बालो का काढा मूत्राशय के रोगो को दूर करने के काम मे लिया जाता है और कुछ समय से इस वस्तु ने अमेरिका के लोगों का ध्यान भी आकर्षित किया है। वहा ये बाल, कोर्न सिल्क (corn silk) के नाम से प्रसिद्ध है और इनका तरल सत्व वहा के औषधि विक्रेता मूत्राशय की तीव्र वेदना और मूत्र कष्ट को दूर करने की औषधि के रूप मे बेचते है।

फिलिपाइन मे इसका सारा पौधा एक मूत्रल वस्तु की तरह उपयोग मे लिया जाता है। इसके भुट्टे के बालो का अथवा डठलो (Stalk) का काढा मूत्राशय और गुर्दे की सूजन और वेदना को दूर करने के लिये घरेलू औषधि की तरह काम मे लिया जाता है। मक्का का तेल इसके १०० तोले कच्चे मगोलियो (डिट्टुओ) को यत्र मे दबाने से तेरह से पन्द्रह तोले तक तेल निकलता है। इस तेल के गुण [illegible] के तेल से मिलते हुए होते है।

—ब. च

मकाई (Zigyphus OenopliaMill)

मकाई
ZIZYPHUS OENOPLIA MILL.
पुष्प
फल
पत्र

यह फलवर्ग और वदरी कुल (Rhamuaceae) की एक छितराई हुई झाडी होती है। इसके पत्ते वहुत सघन होते हैं। ये २ ५ सेन्टीमीटर से लेकर ६ ३ सेंटीमीटर तक लम्वे और २ से लेकर २ ५ सेंटीमीटर तक चौडे होते हैं। यह वनस्पति हिन्दुस्तान के सभी गर्म प्रातो मे पैदा होती है।

इसका चित्र साथ मे दिया जा रहा है।

नाम–

स –वहुकटका, दुस्पर्शा, कर्क हण्डू, शृगालकोली। हि.–मकाई।म –मकार।व –सियाकुल।मध्यप्रात–रूलन। उड़िया–काटाकोली। ता –अम्वुलम, सुराइ। ते –वाका, पाराकि। ले —झिझीफस ओनोप्लिया।

गुण धर्म व प्रयोग–

इसकी जड की छाल का काढा ताजे जख्मो के भरने के उपयोग मे लिया जाता है। —व च

मकोय (Solanum Nigrum Linn)

यह गुडूच्यादि वर्ग और कटकारी कुल (Solanaceae) की प्रसिद्ध वनस्पति है।

उत्पत्ति स्थान–यह समस्त भारतवर्ष मे वगीचे और जोते हुये खेतो मे होती है। दोनो प्रकार की मकोय के क्षुप दक्षिण भारत मे लगाये जाते हैं। परन्तु काली मकोय अपेक्षाकृत अधिक और सामान्य रूप से मिलती याने सुलभ है।इसलिये प्राय यही प्रयुक्त की जाती है। इनके गुणो मे कोई अधिक अन्तर न होने के परिणामस्वरूप अनेक अवसरो पर इनका एक साथ उपयोग किया जाता है।

वर्णन–

मकोय के स्वावलम्बी परन्तु अनेक शाखाओ वाले, कटकरहित, सरल, वर्षायु, सावधानी से आरोपित होने पर द्वि या वहु वर्षीय १ से ३ फीट ऊचे, छोटे-छोटे क्षुप होते है। शाखाये किंचित कोणयुक्त (चतुष्कोण) और कोणो पर फूली हुई, स्थान–स्थान पर बैंगनी रङ्ग से चिह्नित वहुत वार डडी और शाखाये हरे या काले रङ्ग से लिप्त और चमकती हुई ज्ञात होती है। पत्र लाल मिर्च के समान लट्वाकार, प्रासवत लट्वाकार या आयताकार ४–१० इच तक वडे, पत्राग्र भाग क्रमश सरु, वृन्त की ओर पत्रभाग क्रमश सूक्ष्म होकर दीर्घ पत्र वृन्त के पार्श्व मे क्रमश अवसित, क्वचित व विपमभाव मे अवसित और उनका फलक प्राय. वृन्त पर नीचे तक फैला रहता है।

पत्रोदर मसृण- क्वचित विरल लोमान्वित गाढा हरिद्वर्ण, पत्र पृष्ठ शिराबधुर और फीका हरिद्वर्ण, पत्र प्रान्त अख ण्ड, क्वचित तरगायित (लहरदार) कभी-कभी अगत दतित या खडित, सवृन्त, वृन्त क्षुद्र और क्वचित तटयुक्त पुष्प छोटे देखने मे प्राय लाल मिर्च के फूल के समान सफेद और पत्र कोण से हटकर निकले हुये, पुष्प दण्ड पर गुच्छाकार एव दीर्घ वृन्त पर अधोमुख लवित समस्थ मूर्धज क्रम मे निकले रहते है। प्रत्येक छत्राकार पुष्प दण्ड मे ३-४ पुष्प होते है। पुष्प बाह्यावरण (कटोरी) स्थायी, हरा, पुट पत्र ५, पुष्पाभ्यन्तर कोष (पखडी) सफेद, दल ५, गर्भ केशर ५, फल छोटी गुन्दी के तुल्य, परन्तु उस से छोटे, काली मिर्च के आकार प्रकार के चिकने गोल, लवित, पुष्कल बीज युक्त, रसीले, कच्चे हरे, स्वाद मे तिक्त और पके लाल या पीले, बाद मे काले पड जाते हैं। वे किंचित अम्ल (अम्लतायुक्त मधुर वाग्भट सूत्र १५) बीज—बैंगन के बीज की तरह, किन्तु उससे क्षुद्रतर होते है। यह सदैव विशेषकर भाद्रपद से माघ फाल्गुन तक फूलती–फलती रहती है। यह वर्णन काली मकोय का है जिसे लेटिन मे सोलेनम नाइग्रम (Solanum Nigram Blume not linn) कहते हैं। लाल मकोय जिसको लेटिन मे सोलेनम रूब्रम (Solanum rubrum) कहते है कतिपय निम्न लक्षणो को छोडकर शेष अन्य लक्षणो मे सर्वथा काली मकोय के समान है। लाल मकोय का फल पीला व पिलाई लिये लाल वा लाल और किंचित मधुर, पत्र प्राय स्पष्ट तथा दतित, अपेक्षाकृत वृहत्तर, स्थूलतर, रङ्ग मे हलका, अतिरगायित, किंचित अप्रिय गन्धयुक्त, शाखाग्रे अधिक परिविस्तृत और प्रत्यक्ष तथा कोणयुक्त या जोडो पर फूली हुई नही होती।

वक्तव्य—

यह उभय वनस्पतिया एक दूसरे की भेद मात्र है। और इन दोनो के गुण कर्मो मे कोई विशेष अन्तर नही है। फलत इन दोनो को प्रत्येक दशा मे समान रूप से एक साथ वा पृथक-पृथक व्यवहार होता है। यह दोनो ही सर्वत्र भारतवर्ष मे विपुल होती है और निरापद एव निर्विष होती है। अस्तु, भारतीय हकीम और अन्य देशी चिकित्सकगण बाह्याभ्यन्तरिक रूप से उनका पुष्कल उपयोग करते है। प्रचलित काली मकोय (S nigrum-Blume के रस का हकीमो और वैद्यो द्वारा न केवल एक बार औंसो मे ६ औंस अर्थात् ३ छटाक या अधिक आन्तरिक उपयोग किया जाता है, अपितु भारतवर्ष के अनेक भागो मे उक्त पौधे का प्रायः शाक रूप मे उपयोग होता है। उतने अधिक प्रमाण मे उसके बारबार प्रयोग करने पर कभी कोई दुष्परिणाम देखने मे नहीं आता, प्रत्युत लाभ ही देखने मे आता है। इसके अतिरिक्त लाल मकोय भी प्राय गुण कर्म मे समान होने पर भी यूनानी ग्रन्थों मे वर्णित लाल मकोय नही मालूम पडती है। यूनानी ग्रन्थों मे वर्णित मकोय लाल जिसको भारती बाजार मे उनबुस्सा लब और लेटिन मे (Solanum Dulcamara linn) सोलेनम डलकेमारा कहते हैं, वह भिन्न है।

उपयुक्त अङ्ग—शुष्क अपक्व फल, पत्र और फलयुक्त पञ्चाङ्ग (समग्रक्षुप)।

नाम—

स —काकमाची, ध्वाक्षमाची, काकाह्वा, वायसी। हि —मकोय, कवैया, भट कोवा। राज —कवाई, चिरपोटी, चिरपोटण। मालवा—चरबोटी। ब —काइस्ता शाक, गुडकामाई। म —लघुका वट्ठी, कामोनि। गु-पीलुडी। क —कावई, काको। अ—इनबुस्सालब। द.-कामूनी। प —काकमाच, मको। सिं—कावलि। कच्छ कापेरू। ता —मल०—मणत्तक्कालि, करुप्पुमणत्तक्कालि। ते —काञ्चिटेट्टु, नल काञ्चिचेट्टु। कन्नड—काञ्च। ले —सोलेनम नाइग्रम। वक्तव्य—उपर्युक्त नाम काली मकोय के हैं। लाल और काली उभय प्रकार की मकोय के विभिन्न देशी भाषाओ मे प्राय एक सामान्य नाम से बोली जाती है—प्रसिद्ध है। किन्तु आवश्यकता होने पर अपने फलो के रग के द्वारा पहिचानी जाती है जैसे काली और लाल। जिसके लिये लेटिन शब्द क्रमश. नाइग्रम (Nigrum) और रूब्रम [Rubrum] है।

(वैद्य दलजीत सिंह जी)

भावप्रकाश निघण्टुकार पूज्य विश्वनाथ जी द्विवेदी

ने मकोय के दो भेद लिखे हैं। (१) बडी (२) छोटी। बड़ीमकोय—के बीज एक सूखे छिनके से आवृत बृहती के बराबर होते हैं इसकी खेती बनारस, लखनऊ इत्यादि जिलों मे अधिक होती है, इसे 'रस भरी मकोय' कहते हैं। इससे छोटी इनी जाति की मकोय और होती है जिसे बलिया—छपरा के जिलो मे भट कोवा कहते हैं यह जगलो मे अपने आप होती है।

छोटी इसके फल काली मिर्च से कुछ बडे बडे काले लाल, भूरे इन तीन रगो के छिलकेरहित होते हैं। यह जगल मे ही होती है या अपने आप वर्षा ऋतु मे उगते हैं। इसका शाक बहुत ही उत्तम होता है। लेखक ने इसका पुष्कल उपयोग किया है और शोथघ्न गुण इसी मे पाया है।

रासायनिक संगठन–

इसके समस्त अगो विशेषकर फल मे काकमाचीन (सोलेनीन Solanin) नामक एक मणि भीय क्षारोद पाया जाता है जो शर्करा एव सोलेनिडीन का एक यौगिक [समास] है।

गुणधर्म व प्रयोग–

मकोय—कटु, तिक्त, अनुष्णाशीत, भेदन [सारक], वृष्य, चक्षुष्य, स्वर्य, रसायन, त्रिदोष प्रशमन, कुष्ठ, शूल, अर्श, शोथ, कफ और कडू को मिटाने वाली एव ज्वर, प्रमेह, हिचकी, वमन और हृद्य रोग को हरने वाली है।

—भा० नि०

मकोय—चरपरी, तिक्त रसान्वित, गरम, कफनाशक, शूल, बवासीर, सूजन, कोढ़ और कडू का नाश करती है।

—रा० नि०

मकोय—सारक [दस्तावर] स्वर को उत्तम करने वाली, वीर्यक, त्रिदोष नाशक, न अत्यन्त उष्ण है और न अत्यन्त शीतल है, कुष्ठनाशक और रसायन है।

—शो० नि०

मकोय—तिक्त रसान्वित, गरम, चरपरी, रसायन, वीर्य-वर्धक, स्निग्ध, स्वर को उत्तम करने वाली, हृदय को हितकारी, धातुवर्धक, नेत्रो को हितकारी, रुचिकारी, दस्तावर, हल्की तथा कफ, शूल, बवासीर, सूजन, त्रिदोष, कोढ कण्डु, कर्ण कीट, अतिसार, हिचकी, वमन, श्वास, खासी, ज्वर और हृदय रोग को [हरने वाली है।

(नि० र०)।

देशी चिकित्सा विज्ञान मे सूजन को दूर करने वाली जितनी वनस्पतिया प्रधान मानी जाती हैं उनमे मकोय भी एक है। इसकी प्रधान क्रिया यकृत के ऊपर होती है। इसके सेवन से यकृत की सब क्रिया सुधरकर उसमे उचित रूप से रस की उत्पत्ति होने लगती है और विषैले उपरसो की उत्पत्ति बन्द हो जाती है। यकृत की क्रिया बिगडने मे जो सूजन, बवासीर, उदररोग, अतिसार या कई प्रकार के चर्म रोग हो जाते हैं वे सब इस औषधि के सेवन से धीरे-धीरे मिट जाते है। (व० च०)

सुश्रुत ने काकमाची के शाक को मटर के शाक के समान लिखा है। चरक ने वातरक्त, अर्श, उरुस्तंभ आदि मे मकोय शाक को गुणप्रद माना है।

मकोय और मधु मिलाकर खाने से विष होकर मरण की आशका रहती है। उनके मत से मकोय का बासी शाक खाने का निषेध है। (काकमाची मधु च मरणाय) (च० सू० २६-१६-२२)। यहा मकोय और मधु का मेल सयोग विरुद्ध और बासी शाक कर्म विरुद्ध है।

यूनानी मतानुसार—प्रकृति—दूसरे दर्जे मे सर्द एव खुश्क (आयुर्वेदीयमत से अनुष्ण शीत च० सू०) और उष्ण वीर्य (वा० रा० नि०) है।

गुण-कार्य—

सग्राही, दोष विलोम कर्त्ता, उपशोषण, तारल्य जनन, सतापहर, लेपतः और पानत उष्णश्वयथु विलयन है।

उपयोग–कोपस्थ अङ्गो की सूजन विशेषत यकृच्छोथ, अन्त्रामाशय, शोथ और जलोदर मे सूखी मकोय पान और लेपत उपयोग की जाती है। उक्त रोग मे इसके पत्र स्वरस का फाडकर (मुरव्वक) लिया हुआ पानी पिलाते

है या अन्य औषधियो के साथ पीसकर मकोय का लेप करते है। इसके विरेक एव मूत्रोत्सर्ग द्वारा दोषोत्सर्ग होता है प्रारम्भ मे लेप करने से यह दोष विलोम करण और उसके बाद श्वयथु विलयन कर्म करती है। अग्नि-दग्ध विष्फोट जन्य व्रण, परिसर्पी व्रण और व्रणित-कर्कट (सर्तान-केसर) रोग मे इसका अकेला अन्य औषधियो के साथ लेप किया जाता है। जिह्वा शोथ और कण्ठ शोथ-खुनाक मे इसका अकेला या अमलतास की गुद्दी डालकर बनाये हुये काढे से गण्डूष कराते है। नासिका एव कर्ण रोग मे मकोय के पत्तो का कुनकुना रस कान के भीतर टपकाया जाता है। यह उष्ण रस कर्णशूल का प्रशमन एव सूजन उतारने वाला है। अहितकर वस्ति रोगो मे। निवारण—मधु। प्रतिनिधि-काकनज। मात्रा-सूखी मकोय २ माशे से ७ माशे तक। मकोय की पत्ती का फाडा हुआ (मुरव्वक) रस ४ से ७ तोले तक।

प्रयोग—

इसके फूलो के खाने से पेशाब साफ आता है। ४० माशे रोजाना सेवन-करने से पेशाब काफी तादाद मे होता है। मसाने के जख्म, गुदो का वरम और विद्रधि के वास्ते यह बहुत मुफीद है।

अर्क मकोय—मकोय १ पाव, शाहतरा आधापाव, कासनी के बीज ५ तोला मिलाकर सबका अर्क तीन बोतल अर्क विधि से निकाल लेवे। यह अर्क रक्त शोधक है। रक्त विकार सम्बधी रोगो को ठीक करता है। प्यास को शान्त करता, कलेजे की गर्मी को मिटाता तथा ज्वर को कम करता है।

मात्रा—६ से १० तोला तक।

शर्बत मकोय—मकोय का स्वरस निकाल कर मामूली आच पर गरम करे इससे वह अर्क फट जायगा और हरा गाढा मेल अलग हो जायगा और साफ पानी अलग। साफ पानी को लेकर इससे दूनी मिश्री मिलाकर शरबत की चाशनी बना लेवे। शरबत तैयार होने पर रख लेवें। ये शरबत अन्दरूनी और बाहरी सूजन को दूर करता है। पीलिया, कलेजे के वर्म और जख्मो को मिटाता है। मात्रा—३ तोला सुबह और ३ तोला शाम को।

[रहनुमाए अकाकीर]

नव्यमत—डा० आर० एन० चोपरा—मकोय का क्षुप-रसायन, अवसादक, मूत्रप्रद, शोथहर तथा कफ नाशक है। इसका प्रलेप वेदनाहर है। रसायन होने से यह विविध चर्म रोगो मे तथा फिरग रोग मे एव मूत्रप्रद होने से यह विविध वात, शोथ, सोजाक, कफ रोग, प्लीहा वृद्धि मे सेव्य है। काकमाची (मकोय) का शर्बत तथा शीत पानीय ज्वर रोग मे सेवन करने से घर्मप्रद है। इसके पत्र गरम करके वेदना स्थान पर तथा शोथयुक्त अण्डकोषो की सूजन पर तथा हाथ पैरो की सूजन पर लगाना फायदेमन्द है।

(मे० मे० आ० उ० भा० २ पृ० ४५१)

मोहीदीन शरीफ लिखते है कि "मकोय या अकोय चिरकालानुबन्धी यकृद् वृद्धि मे काली और लाल दोनो प्रकार की मकोय के पत्र स्वरस के फाडे हुए पानी तथा पत्र स्वरस की रस क्रिया का बहुत बड़ी मात्रा मे मैं स्वय प्रयोग कर चुका हू और इनमे अत्यन्त उत्साहवर्धक परिणाम प्राप्त हुये है। कतिपय यकृद्विकारो मे वास्तव मे यह औषधि अतीव गुणकारक सिद्ध हुई है

डा० डी० बी० मास्टर—इसके ताजे पत्र के रस से तैयार किया हुआ क्वाथ (फाडकर लिया हुआ मुरव्वक पानी और रस क्रिया काम मे ली जाती है) इसके रस को अग्नि पर पका छानकर प्राप्त किये हुये पानी को ३ से ४ छटाक की मात्रा मे प्रतिदिन प्रात काल देने से इसका जलवत विरेचक तथा मूत्रजनन कार्य होता है। इसकी रस क्रिया को २॥ माशा की मात्रा मे दिन मे २-३ बार देने से इसका मूत्रजनन और मृदु विरेचन कर्म होता है। यह यकृत वृद्धि एव अन्य चिरकालनुबधी यकृत रोगो मे इसका बडा अच्छा प्रभाव होता है। विशेष चर्म रोग (Psoraisis) मे काकमाची का व्यवहार कराकर विशेष लाभ प्राप्त किया है। डा० वामन गणेश देशाई-मकोय—शीतल, मूत्र जनन, रेचन, वेदना स्थापन, श्लेष्महर, स्वेदजनन और कुष्ठघ्न है। मकोय की मुख्य क्रिया यकृत पर होती है। यकृत की क्रिया बिगडने से जीर्ण यकृद वृद्धि, अर्श, उदर, आव और नाना प्रकार के चर्म रोग उत्पन्न होते है। मकोय के पत्र स्वरस से दस्त साफ होकर अन्त्रगत विष निकल जाते है। जल शोथ मे

स्वरस बडी मात्रा मे देते है । ज्वर, जल शोथ, हृद्रोग और नेत्र रोग में लाभप्रद है । —(ओ० स०)

कर्नल चोपरा के मतनुसार—इसके काले फल एक मूत्रल और पसीना लाने वाले द्रव्य की तरह हृदय रोग मे जबकि टागो और पजो पर सूजन आ गई हो तब दिये जाते है।

मुरब्बा बनाने की विधि—

एक मिट्टी के वर्तन मे इसके रस को गरम करना आरम्भ करें। और रसके सब्ज वर्ण के ईषत लाल होने पर उतार लें। शीतल होने पर कपडे से छानकर सेवन करावें। ऊपर लिखित प्रणाली मे पकाकर सेवन कराने से विशेष गुण कर होता है। आधी छटाक से १ छटाक की मात्रा मे विविध चर्म रोगो मे हितकारक हे ।

(फा इं)

प्रयोग—

१ कुष्ठ में—काकमाची (मकोय) के पत्र का कल्क प्रलेप कुष्ठ मे हितकर है । (च० चि० ७ अ० ९३)

२ विसर्प में—मकोय के पत्र स्वरस मे घृत मिलाकर लेप करना चाहिये ।

३ शोथ मे—मकोय का शाक शोथ रोगी को खाना चाहिये । —च० चि० १७ अ० ६० ।

४ उरुस्तम्भ मे—विना नमक केवल जल और तेल के योग से बनाया हुआ इसका शाक खाना चाहिये ।

—च चि २७ अ. २५

५ वातज खासी मे—मकोय का शाक खाना चाहिये

—च चि २२ अ ७९

६ पिल्ल (कृमि रोग) मे—मकोय के फल चूर्ण मे घृत मिलाकर धूम (धूनी) देने से पिल्ल रोग मिटता है अर्थात् नेत्रो के भोओ के बालो के समस्त कीडे गिर पडते है। —चक्रदत्त नेत्र रोग चि

७ यकृत की वृद्धि—इसके पौधे का १५ से २० तोले तक फाडा हुआ रस पिलाने से बहुत दिनो की पुरानी यकृत वृद्धि मिट जाती है ।

८ लाल चट्टे—इसको थोडी मात्रा मे देने से शरीर पर पडे हुये बहुत दिनो के लाल चट्टे मिट जाते हैं ।

९ जलोदर और हृदय रोग—इसके पत्ते, फल और डालियो का सत्व निकालकर उस सत्व को २ से ८ माशे तक की मात्रा मे दिन मे २-३ बार देने से जलोदर और सब प्रकार के हृदय रोग मिटते है। व च०

१० शोथ—मकोय के पत्तो को पीसकर लेप करने से तमाम प्रकार की सूजनें मिट जाती हे । —उ० वर्णन

११ चूहे के विष मे—मकोय के स्वरस से सिद्ध घृत उपयोग मे लेवें । —सु क ७

१२ गर्भ मुक्ति हेतु—मकोय की जड पानी के साथ पीसकर टुडी के नीचे पेडू पर लेप करने से तुरत गर्भ बाहर आजाता है । —आदर्श निघण्टु

मकोय के विशिष्ट योग--

१ अर्क मकोय—मकोय शुष्क १ पाव को ४ सेर जल मे भिगोकर दूसरे दिन प्रात दो सेर अर्क निकाले, अर्क निकालते समय प्रारम्भ मे अग्नि कम होनी चाहिये मात्रा १० तोला।

गुण–पित्त तथा यकृत रोगो मे उपयोगी है ।

२ कैरुती मकोयवाली—मकोयशुष्क, अलसी, खतमी के बीज प्रत्येक ६ तोला, सबको एक पाव जल मे उबाले। आधा भाग रहने पर छानकर मोम सफेद और गुलाब तेल डालकर पकाये, क्वाथ के जल जाने पर उतार ले ।

गुण—निमोनिया मे लाभप्रद है ।

३ शरबत मकोय—बरजासफ, शकाही, बादावरद, मकोय, अफसनतीन, सौंफ की जड, कासनी जड, कसूसबीज (पोटली मे बाधकर), करफसमूल, अजखरमूल, गुलाब पुष्प, अलसी बीज १-१ तोला, द्राक्षा बीजरहित १ तो कासनी, बथुआ, मकोय, मूली इनका रस १०-१० तोला, पुराना गुड १ सेर शरबत तैयार करें।

मात्रा—२-४ तोला ।

गुण—यकृत रोगो मे अति उत्तम है ।

—यू चि सार

४ काकमाची तैलम्-कल्क द्रव्य–मनसिल, बावची, सिंदूर और गन्धक प्रत्येक ४–४ माशा । उक्त कल्क को मकोय रस आधा सेर, सरसो का तेल १ पाव मे पकावे । तेल सिद्ध होने पर रख लेवे । इसकी मालिश करने से

अर्हंषिका, पामा, विचर्चिका और सिरके घावो का अवश्य नाश होता है।

५. मकोयमाका—मकोय स्वरस १ किलो, दुग्ध १ कि० मधुयष्टी १/१६ किलो लेकर ¼ कि तिल तेल मे सिद्धकरके शीशी मे भरके रखे। इस तेल का अञ्जन करने से गयी हुयी दृष्टि पुन. प्राप्त होती है। उसके अतिरिक्त इस तेल का नस्य करने मे अकाली हुये सफेद बाल (केश) काले होते है और ऊपर ज्ञानेन्द्रियो और मस्तिष्क को बल मिलता है। परीक्षित है। —प्रेषक

—श्री द रा डायलकर अमरावती

मखाना (Euryal Ferose salisb)

यह फल वर्ग और कमलादि कुल (Nymphaceae) की एक जाति है। इस शाखारहित जलज छोड के खूब काटे होते है। इसके पत्ते ढाल सदृश झुर्रीदार अण्डाकार कमल के समान १ से ८ फीट व्यास के रहते है। ये ऊपर की ओर से हरे और नीचे की तरफ से किरमिजी रङ्ग के होते है। कद छोटा होता हे। इसके फल नीले, लाल, गुलावी १से२ इच लम्बे होते हे। ये भीतर से तेजस्वी लाल और बाहर से हरे तेजस्वी रहते है। इसका फल गोल नारगी के समान २से४ इच व्यास का चिकना होता है। फल के अन्दर से ८ से २० तक बीज निकलते हैं। ये मटर से झाडी बेर तक की कद के होते हैं। इसके ऊपर का छिलका कठोर व काला होता है। कच्चे मखाने का सफेद मगज निकालकर खाते हे। इनको भाड मे भून ने से फटते है। उपवास मे ये बीज काम मे लेते हैं।

आपकी जानकारी के वास्ते चित्र साथ मे दिया जा रहा है। विशेष प्रकार से कमलगट्टे (मखाने) को भूनकर ही मखाना तैयार किया जाता है। खील मखाने की सफेद हल्की छोटे बताशो की तरह होती है। यही मखाना है।

उपयुक्त अङ्ग—बीज। फूलने का समय वर्षाकाल।

उत्पत्ति स्थान—यह वनस्पति काश्मीर, अवध, पू० बगाल और विशेषकर दरभगा मे पैदा होती है।

नाम—

स०—मखानाना, पद्म, मखान्न, पानीय फल। हि०—मखाना, मचना। प०—जेबार। गु०—मखाना। ब०—माखाना। म०—मखाना। उ०—मखाना। राज०—फूल मखाना। उडिया—कुतले, कुतापद्म। ०—मल्लनिपद्मन् देह०—गीलागिची। अ०—फोक्स नट [Fox Nut]।
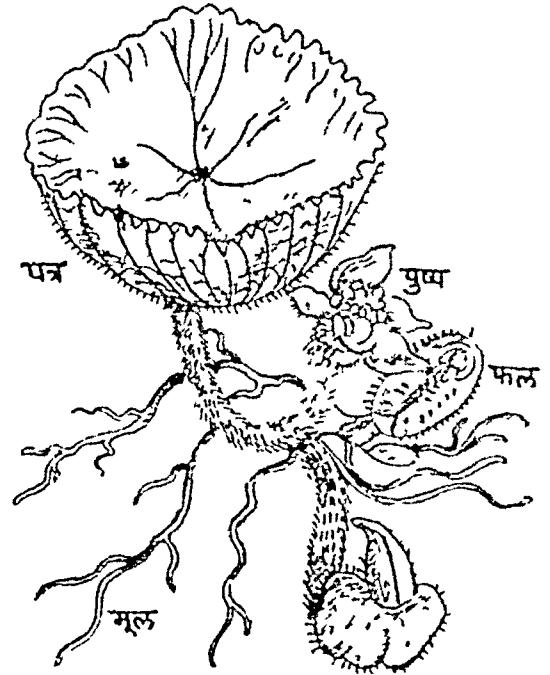
ले०—इयूरियल फेरोक्स।

प्रयोग—

यह रस मे मधुर, तिक्त, कषाय, वीर्य मे शीत, विपाक मे कटु, मधुर और शुक्र दोषो को नष्ट करता है। मखाना विष्टम्भी, वृष्य, रूक्ष, परम गर्भ सस्थापक, कफ वात नाशक बल्य, ग्राहि, रक्त पित्त और दाह नाशक है।

—भा० प्र०

मखाने के गुण कमल बीजो के समान है।

—शा० नि०

मात्रा—आधा से एक तोला।

प्रसवान्तर दौर्बल्य, शुक्रस्राव, वीर्याल्पता मे मखाना

उपयोगी है। मखाना बल्य और वाजीकर है। मखाने के लावे को थोडे घी मे भून कर खिलाने से अतिसार शमन होजाता है। यह वीर्य स्तम्भक और धातु वर्धक होने से शुक्र की निर्बलता वालो के लिये भी हितावह है। इसके आटे मे घी शक्कर मिलाकर स्त्रियो को पिलाने से गर्भाशय की उष्णता शांत हो जाती है, प्रदरादि विकार दूर होते है और गर्भाशय गर्भधारण के योग्य बन जाता है। हृदय गति बढजाने पर कमल के समान फूलो की पखुडियो का १ से २ तोले का फाण्ट पिलाया जाता है। ज्वर बेग बढने से होने वाली व्याकुलता के शमनार्थ छाती पर इसका मोटा लेप भी कराया जाता है। इसकी केशर दाहशामक रक्तसंग्राहक है। सब प्रकार के रक्तस्रावो मे निर्भयतापूर्वक उपयोग होता है। —गा. औ. र

इसको लेने से रात मे भयानक सपने आना बन्द हो जाता है। इसके बीज पौष्टिक, सकोचक और पीडा निवारण गुणो की वजह से बहुत उपयोग मे लिये जाते है। (व० च०)

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—पहले दर्जे मे गरम और तर। ताजे मखाने बल्य वाजीकर और शुक्रल है। सूखे भुने हुए मखाने सग्राही है। मखाने से पुष्टि भी प्राप्त होती है। इनको अधिकतया स्त्रिया प्रसवोत्तर दौर्बल्य को दूर करने के लिये हलुओ मे डालकर खाती है। इसके अतिरिक्त शुक्र प्रमेह एव कामावसाद के लिये इसे चूर्णों मे डालकर उपयोग करते है। यह विशेष रूप से बृहण है। अहितकर शीतल प्रकृति केलिये। निवारण—इसको भ्रष्ट करना मात्रा—७ माशे से १ तोला तक (यू० द्र० वि०।)

मजीठ (Rubia Cordifolia Linn)

यह हरितक्यादिवर्ग, मजीठ कुल (Rubiaceae) की एक बडी बेल है। ये बहुवर्षायु होती है। मूल लंबी और मोटी होती है। इसकी लता बहुत लम्बी बढती है और झाड़ों पर भी अपना फैलाव करती है। शाखा-चार कोन विशिष्ट खर स्पर्श और श्वेत वर्ण। मृदुलता की डाडी की प्रत्येक ग्रंथी केऊपर चारचार पानो का एक चक्र आया हुआ होता है। इन चार मे से दो मोटे और दो छोटे होते हैं। पत्र देखने मे अति सुन्दर होते है। पत्र दो से चार ईंच लम्बे डिम्वाकृति, मूल की ओर हृत्पिण्डाकृति देखने मे छोटे पानों के समान। किनारों पर छोटे सफेद टेढ़े काटे होते है। इसके फूल छोटे और सफेद होते हैं। जो झुमकों में लगते हैं फूल की पखड़ी ५। इसके फल काले और मटर के समान होते हैं। इसकी जड़ें शुरू शुरू मे ललाई लिये हुए सफेद रग की होती है। इनको तोडने से इनके अन्दर लाल रग का गर्भ दिखलाई देता है। रंग के काम में यह आता है। इसीलिये इसका नाम 'वस्त्र भूषणा' भी है।

उत्पति स्थान—

देहरादून, काश्मीर, हिमालय के उत्तर, पूर्व और पश्चिम भाग मे ८००० फीट की ऊचाई के स्थानो पर, दक्षिण मे सिंहल, छोटा नागपुर, चित्रकूट, बिहार मे पार्श्वनाथ पहाड, ईरान अफगानादि देशो मे होती है।

नाम—

स०—मजिष्ठा, समगा, भडीरी। हि०—मजीठ। वं०—मजीठ, मजिष्ठ। म०—मजिष्ठा। गु०—मजीठ। मजीठ। रा०—मजीठ। कुमाऊ—मजेठी। काश्मीर—डाहू, फहारगस। प०—मजीठ। ता०—मजीठी। ते०—मजिष्ठातिगे। अ०—फोव्व.। फा०—रूनास। इ०—हार्ट लीव्हडमीडर (Heart leaved madder) ले०—रुबिया कार्डिफोलिआ।

रासायनिक संगठन—

जड मे रालदार एव तद्भव पदार्थ, निर्यास, शर्करा, रजक द्रव्य और चूने के लवण होते हैं। रंजक द्रव्य मे पर्प्युरीन (Purpurin) नामकएक लाल स्फटिकीय सत्व, मजिष्टीन नामक एक पीला सत्व प्रभृति सत्व होते है

गुणधर्म व प्रयोग—

मजीठ—मधुर, कडवी, कसेली गरम, रक्तातिसार नाशक, स्वर को शुद्ध करने वाली, कान्तिवर्धक, भारी तथा विष, कफ, सूजन, योनिरोग, नेत्ररोग, कर्ण रोग, कुष्ठ, रुधिर विकार, विसर्प, व्रण और प्रमेह को नष्ट करने वाली होती है। —भा० प्र०

मजीठ—कसैली, गरम, वर्ण्य, भारी, कडवी, हलकी, मधुर, घाव, प्रमेह, कफ, नेत्ररोग, सूजन, योनि दोष, ज्वर, कामला, पक्षाघात, शूल, कर्णरोग, कुष्ठ, ववासीर, कृमि, रक्तातिसार और विसर्प रोग को नष्टकरती है। —शा० नि०

मजीठ मे स्तम्भक, पौष्टिक, आर्तव-प्रवर्त्तक, वेदना-नाशक, शोथघ्न, चर्म रोग नाशक, व्रण रोपक और गर्भाशय को सकुचित करने के धर्म रहते है। इसकी प्रधान क्रिया मस्तिष्क और मज्जा ततुओ पर होती है। इसको थोडी मात्रा मे देने से सारे शरीर मे शाति पैदा करती है। मगर अधिक मात्रा मे देने से यह मस्तिष्क मे विकृति पैदा करके भ्रम उत्पन्न करती है। इसकी दूसरी क्रिया गर्भाशय के ऊपर होती है। इससे गर्भाशय का सकोचन होता है। उसमे होने वाली वेदना बन्द होती है और मासिक धर्म साफ होने लगता है। इसकी तीसरी क्रिया त्वचा के ऊपर होती है। इससे त्वचा की रक्ताभिसरण क्रिया वढकर विनिमय क्रिया के द्वारा रक्त की शुद्धि होती है। —व० च०

मजीठ के पत्तो का शाक हलका, स्निग्ध, दीपक और वातपित्त नाशक है। —शा० नि०

इसके फल यकृत-प्लीहा की वेदना के लिए एक आवश्यक औषधि है। मजीठ की जड चर्म रोग और तिल कालक को दूर करती है। —शा नि

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—दूसरे दर्जे मे गरम और खुश्क। यकृत और प्लीहा के अवरोध का उद्घाटन कर्त्ता तथा उनका सशोधन कर्त्ता, मूत्रार्त्तव जनन, लेखन, उष्णता जनन है। अहितकर-वस्ति को, निवारण कतीरा और अनीसू। प्रतिनिधि-कवाव-चीनी और तज। मात्रा ३ माशे से ५ माशे तक।

(१) मजिष्ठ मेह मे—मजीठ और चन्दन का क्वाथ पिलाना। —मु. चि. ११

(२) व्यग मे-मजीठ का चूर्ण मधु मे मिलाकर लगावें। —नागदत्त

विशिष्ट योग—

मजिष्ठादि क्वाथ—मजीठ, नीम की छाल, लाल चन्दन, नागर मोथा, गिलोय, इन्द्रायण की जड, अनीम, त्रायमाण, निसोत, असना वृक्ष की छाल, हल्दी, दारुहल्दी, चिरायता, पाठा, वासा, खैर की छाल, हर्र, वहेडा, आवला, पटोल, कुटकी, वायविडग, पित्तपापडा, वच, वावची और इद्र जौ समान भाग लेकर क्वाथ वनावें।

यह क्वाथ कण्डू (खाज) मण्डल, पुण्डरीक, कुष्ठ, किटिभ कुष्ठ, पामा, विर्चचिका (खुजली), व्रण, सिध्म, श्वित्रकुण्ठ, विसर्प, दाद और रकसा तथा सुन्नवहरी (सुप्तता) आदि समस्त कुष्ठो को नष्ट करता है। —भा भै र

मजिष्ठादि क्वाथ (लघु)—मजीठ, हर्र, वहेडा, आमला कुटकी, वच, देवदारु, हल्दी, गिलोय और नीम की छाल समान भाग लेकर क्वाथ बनावें।

यह क्वाथ वातरक्त, पामा, कपालिका कुष्ठ और रक्त मण्डल को नष्ट करता है। —भा० भै० र०

मजिष्ठादि क्वाथ (वृहत)—मजीठ, नागरमोथा, कुडे की छाल, गिलोय, कूठ, सोठ, भारगी, वहेडा, आमला, पटोल, कुटकी, मूर्वा, वायविडग, असना वृक्ष की छाल, चीतामूल, सतावर, त्रायमाण, पीपल, इन्द्रजो, वासा, भागरा, देवदार, पाठा, खैरसार, लाल चदन, निसोत, वरना, चिरायता, वावची, अमलतास, शाखोट वृक्ष (सिहोडा) की छाल, वकायन की छाल, करज की छाल, अतीस, सुगन्धवाला, इन्द्रायण की जड़, अनन्तमूल, सारिवा और पित्तपापडा समान भाग लेकर क्वाथ वनावें।

इसमे शुद्ध गूगल और पीपल का चूर्ण मिलाकर पीने से अठारह प्रकार के कुष्ठ, वातरक्त, उपदश, श्लीपद, प्रसुप्ति (सुन्नवहरी), पक्षाघात, मेदोदोष और नेत्र रोग नष्ट होते हैं। भा० भै० र०

मञ्जिष्ठाभया योग—मजीठ, कुड़े की छाल, नागर-

मोथा, गिलोय, हल्दी, दारु हल्दी, कटेरी, वच, सोठ, कूठ, नीम की छाल, परवल, वाझ ककोडे की जड, वायविडग, मकोय, मूर्वा, पिलखन की छाल, देवदारु, इन्द्रजौ, भागरा, त्रायमाना, पाठा, गम्भारी की छाल, अरणी, खैरसार, हर्र, बहेडा, आमला, कुटकी, सारिवा, करज की छाल, वासा (अडूसा), खस, सेहुड (सेंड–थूहर) का डण्डा, वावची, फूल प्रियङ्गु, लाल चन्दन, पित्त पापडा, अनन्तमूल, इन्द्रा, यण की जड, निसोत, सुगन्धवाला, सोठ, मिर्च, पीपल और खुरासानी अजवायन ५–५ तोले तथा हर्र ११० तोले लेकर हर्र के सिवाय सब चीजो को अधकुटा करके और हर्र को साबित ही डालकर ३२ सेर पानी मे पकावे। जब ४ सेर पानी शेष रहे तो हर्रो को निकालकर उन्हे सूजे या लोहे की सीख से बार्धें और फिर शहद मे डाल दे। २१ दिन पश्चात् पुराने शहद को फेक दे और उनमे नया शहद डाल दे।

इस क्रिया से हर्रें अत्यन्त स्वादिष्ट हो जाती हैं। इनमें से नित्यप्रति प्रात काल १–१ हर्र सेवन करनी चाहिये। इन्हे सेवन करने से समस्त प्रकार का विसर्प, अठारह प्रकार के कुष्ठ, खुडवात, पामा, खाज, दाद, विस्फोटक, विद्रधि तथा अन्य त्वग्रोग और विकार नष्ट हो जाते हैं। —भा भै. र।

मञ्जिष्ठादि घृतम्–मजीठ, सफेद चन्दन और मूर्वा पाच–पाच तोले लेकर सबको पीस ले। और १२० तोले घी मे यह कल्क तथा ६ सेर पानी मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब पानी जल जाय तो घी को छान ले।

इसे लगाने से समस्त अग्नि दग्ध व्रण नष्ट होते है। —भा भै र

मञ्जिष्ठादि तैल–कल्क—मजीठ, पद्माक, कूठ, सफेद चन्दन, गेरु, खरैटी, हल्दी, दारु हल्दी, फूल प्रियगु, हाथी दात का चूर्ण, मुलैठी, वावची, देवदारु और पुण्डरिया २॥-२॥ तोले लेकर सबको पीस लें।

२ सेर तेल मे गाय का दूध, असना का क्वाथ, भागरे का रस या क्वाथ समान भाग-मिश्रित ८ सेर [प्रत्येक २ सेर ५३। तोले] तथा उपरोक्त कल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब जलाश शुष्क हो जाय तो तेल को छान ले।

यह तेल गिरते हुये बालो को रोकता और शिर शूल, मन्या [गरदन की नस] का स्तम्भ, हनु ग्रह, दन्तशूल, कर्ण शूल और आख के दर्द को नष्ट करता है।

इसके व्यवहार से केश स्निग्ध और घुघराले होते तथा बढ़ते है। यह तैल पलित (बालो का सफेद हो जाना) और इन्द्रलुप्त (गज) रोग मे अत्युपयोगी और शिरोरोगनाशक है। इसकी नस्य लेनी और मालिश करनी चाहिये। —भा भै र।

मञ्जिष्ठा तैलम्–कल्क—मजीठ, हल्दी, दारु हल्दी, लोध, गोपी चन्दन, हरताल, मनसिल, लाख, गोलोचन, कूठ, दो प्रकार की केशर, गेरु,तूतिया, पारद, गधक,तेजपात और दालचीनी १।–१। तोला लेकर पारे गन्धक को घोटकर कज्जली बना ले और अन्य पदार्थो को पीस लें। ३ सेर तिल के तेल मे १२ सेर गाय का दूध और उपरोक्त कल्क (पारे गन्धक की कज्जली समेत) मिलाकर मदाग्नि पर पकावे। जब दूध जल जाय तो तैल को छान ले। इसे सात दिन तक मुह पर मलने से माक्षिक (मुह के मस्से) का नाश होता और मुख चन्द्रमा के समान कान्तिमान हो जाता है। —भा. भै. र

मञ्जिष्ठाद्य तैलम् द्वितीय–मजीठ, केशर, लाख, सरसो, लोध, सफेद चन्दन, पुण्डरिया, मुलैठी, पतङ्ग, गेरु, बच, बिनौला (कपास का बीज) मनसिल और माजूफल का चूर्ण २॥-२॥ तोले। ४० तोले तिल के तैल मे उपरोक्त कल्क और २ सेर (१६० तोले) बकरी का दूध मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब दूध जल जाय तो तैल को छानकर उसमे २० तोला मोम मिलाकर सुरक्षित रक्खे। इसे सात दिन तक मुख पर मलने से मुख की पिटिकायें, तिल, व्यङ्ग, कालक, कलोस, जन्तुमणि और पद्मिनी कण्टक इत्यादि नष्ट होकर मुख का रङ्ग निखर जाता है। —भा भै र

मञ्जिष्ठादि लेप–मजीठ, नागकेशर, तेजपात और हल्दी समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसका लेप करने से मकडी का विष नष्ट हो जाता है। —भा भै र

स्वानुभव—

मञ्जिष्ठादि शीत कषाय—मजीठ, हरड, वहेडा, आमला, सनाय समान भाग लेकर शाम को जव कुट करे। इसमे से १ तोला दवा को लेकर शाम को मिट्टी के वरतन मे भिगो देवे। सुवह सिल पर जल मे घोट छानकर ३ तोला स्वरस पिला देवें। इसी प्रकार सुवह-शाम वा दिन मे ३ बार पिलाने से पुराना शीतपित्त कुछ ही दिनो मे नष्ट हो जाता है। परीक्षित है।

मञ्जिष्ठादि चूर्ण—मजीठ, हर्र, वहेडा, आमला, शुद्ध गन्धक, मिश्री समान भाग लेकर चूर्ण वना लें। इसमे से १ तोला चूर्ण जल के साथ दिन मे ३ वक्त लेने और पथ्य मे केवल छिले हुए चने खाने से चर्म रोग नष्ट हो जाते हैं। इस दवा को १ सप्ताह प्रयोग करना चाहिये। अनुभूत है।

मभेरी यून (Daphne Mejhreon)

रामेठादि कुल (Thymelaeaceae) की यह वनस्पति भारतवर्ष मे वाहर से विकने को आती है। इसकी छाल के टुकडे पतले और चपटे होते है। ये बाहर से और भीतर से सफेद होते है। इनका स्वाद तीक्ष्ण होता है।

नाम—

हि०—मभेरीयून। ले०—डेफन मभेरीयून।

गुण धर्म और प्रयोग—

मभेरीयून मूत्रल, स्वेदजनक और शोणित स्थापक होता है। शरीर के अन्दर इसकी क्रिया अनन्तमूल और अपराजिता की जडकी क्रिया की तरह होती है। इसमे रहने वाले तत्व पसीने के जरिये त्वचा के मार्ग से निकलते है। जिससे त्वचा की विनिमय क्रिया सुधरती है। इसका वाह्यलेप करने से चमडी लाल हो जाती है, जलन होती है और छोटी छोटी फुंसिया हो जाती हैं। चर्म रोगो मे, उपदश मे और गण्डमाला मे इस वनस्पति को देने से अच्छा लाभ होता है। पुराने आमवात मे इसको पेट मे देने से और इसकी छाल से सिद्ध किये हुये तेल की जोडो पर मालिश करने से लाभ होता है। —व० च०

मटर (Pisum sativum Linn)

यह वाकवर्ग और शिम्बीकुल (Leguminocae) का पौधा है। मटर की शाक भारतवर्ष मे प्रसिद्ध है। इसका पौधा दो तीन फीट ऊचा होता है। कुछ वडा होने पर यह लता की तरह पराश्रयी हो जाता है। इसके पत्ते छोटे-छोटे और गोल होते है। इसके फूल सफेद और गुलाबी रग के होते है। इसकी फलिया २ इन्च से ३ इन्ची तक लम्बी होती है। हर एक फली मे ५-६ दाने मटर के रहते है। इसकी छोटी और बडी दो जातिया होती है। उपयुक्त अङ्ग—वीज।

उत्पत्ति स्थान—भारत के सब प्रदेशो मे इसकी कृषि होती है। शिमला के मटर प्रसिद्ध है।

नाम।

स—वर्तुल, कलाय, खीडक, कटी, मुंड चणक, हरेणु रेणुक, सतीन, मौलक।

हि० मटर, वडा मटर, वटला। व—वडामटर, वाटूला मटर। वम्बई—वटाणा। म०—वाटाण। गु०—वटोना, मटाना। प०—वडामटर, खाडा, मटर, सेन। ता०—पट्टानि बेलापट्टानि। ते०—पैटालु। अ०—हुम्मस। अ०—Garden-pea ले०—पीसम सेटियम।

गुण धर्म और प्रयोग—

मटर-मधुर, खाने मे स्वादिष्ट, रुखी, शीतल, रक्तशोधक मृदु विरेचक, भूख वढाने वाली, वातवर्धक और खासी पित्त विकार तथा दाह को शान्त करने वाली

होती है। इसको कच्ची हालत मे अधिक खाने से अतिसार होने का भय रहता है। स्पेन मे इसके बीजो का आटा चमडे को मुलायम करने वाला और फोडे को गलाने वाला माना जाता है। वहा इसका पुल्टिस बनाकर फोडो पर बाधा जाता है।

सौन्दर्य वर्द्धक प्रयोग—भूनी हुई मटर और नारगी के छिलको को दूध मे पीसकर उबटन करने से शरीर का वर्ण सुन्दर हो जाता है।

आग से जल जाने पर—हरी कोमल मटर को पीसकर लगाने से बहुत शान्ति मिलती है।

शीतकाल मे उगुलियो के सूज जाने पर—मटर से चौगुना पानी डालकर क्वाथ तैयार करले। उक्त गरम क्वाथ मे ही मीठा तेल मिलाकर धोने से बहुत लाभ होता है। (वैद्य के फल और अङ्क से साभार)

मछेछी

भाव प्रकाश के अनुसार मछेछी के छत्ते छोटे-छोटे जलासन्न या आर्द्र भूमि मे अधिक होते है। ये जमीन पर फैले रहते हैं। इसके पत्ते इमली के पत्तो से छोटे-छोटे होते हैं। फूल सफेद और गुलाबी रङ्ग के होते है। प्रत्येक पत्र मूल के साथ अनेक पुष्प तथा इनमे मछली के समान गन्ध आती है। यह शीत ऋतु मे फूलती हैं।

नाम—

स०—मत्स्याक्षी, वालिका, मत्स्यगधा, मत्स्यादनी। हि०—मछेछी। गु०—व०—म०—मत्स्याक्षी।

गुण-धर्म व प्रयोग—

मछेछी सकोचक, शीतल, हलकी, कड़वी, कसैली, स्वादिष्ट, पचने मे चरपरी तथा कोढ, पित्त, कफ और रुधिर विकार को दूर करने वाली होती है। (भा० नि०)

१ मत्स्याक्षी—घोटकर पीने से नेत्रो की अनेक बीमारियो को नष्ट करती है, नेत्रो को बल देती है।

२. मत्स्याक्षी का कल्क दही के साथ मिलाकर खाने से अतिसार, सग्रहणी नाशक है।

(धन्वन्तरि बूटी चित्राक)

ममीरा [Coptis teeta wall]

यह वत्सनाभादि कुल (Rananculaceae) का काण्ड हीन छोटा क्षुप होता है। क्षुप वर्षायु परन्तु मूल बहु वर्षायु होती है। पत्ती देखने मे हन्सराज की पत्ती सी मालूम होती है। मूल (पाताली जड) १ से ३ इच लम्बे गिरहदार और टेढा, ऊपर से श्याम वर्ण वा कालाई लिये पीले और भीतर से पीले, स्वाद मे तिक्त होते है। ये मूल ही औषध के काम मे ली जाती है। फूल नियमित, छोटे सफेद, कोमल, मूलोद्भव पत्रहीन पुष्प दण्ड ऊपर आये हुये। पुष्प वाह्यकोष के पत्र ५ से ६, पुष्प अन्दर कोष के पत्र ५ से ६ नाग फणाकार या पजा के समान होते है। इसके फल छोटी फलियो की तरह होते है और उनमे बहुत छोटे-छोटे तिल के समान बीज रहते है। ममीरा आख के रोगो पर अकसीर माना जाता है। इसको लेते समय पीले रङ्ग की कठिन जडो को ढूढ कर लेना चाहिये। इसकी नर मादा दो जातिया होती है। नर जाति को ममीरा और मादा को ममीरी कहते है।

वक्तव्य—

आसाम के मिष्मी नामक पर्वत मे यह होती है वहा की मिष्मी जाति के लोग इसको बेचने के लिये आसाम के कस्बो मे ले आते हैं। स्वाद मे तिक्त होने से आसाम मे यह मिष्मी तीता नाम से पहिचानी या जानी जाती है।

उत्पत्ति स्थान—काबुल से लेकर आसाम तक ५००० फीट की ऊचाई पर समशीतोष्ण हिमालय के प्रदेश मे विशेषत आसाम के पूर्व के देशो के पहाडी स्थानो मे तथा चीन मे होता है।

व्यवहार्य अङ्ग—मूल । सग्रहकाल—ग्रीष्मकाल ।

नाम—

स—महातिक्ता, ममीर, पीतमूला । हिं—ममीरा, ममीरी । ववई—ममीरा । गु—ममीरो, ममीरी । सिंधी—महमीरा । आसाम—मिष्मीतीता । फा—मामीरान । अ—कोप्टीसगोल्ड थ्रेड । ले—कोप्टीसटीटा ।

रासायनिक संगठन—

मूल मे दारुहारिद्रिक [बर्बेरीन] नाम का एक पीला तिक्त वीर्य होता है जो जल और सुरासार मे विलेय है ।

गुण धर्म व प्रयोग—

ममीरा रस मे तिक्त, वीर्य मे उष्ण, विपाक मे कटु और दोषघ्नता-वातकफ है ।

ममीरा—रस मे तिक्त, वीर्य मे उष्ण, लेखन, शोथहर चक्षुष्य, ज्वरहर, दीपन, पाचन,सर, वृक्कशूल और आख के रोगो को आराम करने के लिये लब्ध प्रतिष्ठ, मलरोध का नाशक और कल्याणकर है । ममीरा उत्तम कटु पौष्टिक और आमपाचक औषधि है । किसी प्रकार की अशक्ति मे, ज्वर की विमुक्तावस्था मे, शरीर की शक्ति का ह्रास करने वाले अन्य विविध प्रकार के रोगो मे यह उत्तम औषधि है । —आ० निघण्टु

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—तीसरे दर्जे मे गरम और खुश्क । ममीरा लेखन और दृष्टिबलवर्धक है । आतरिक उपयोग से वातानुलोमन और मूत्रल है । इसको अकेला या उपयुक्त औषध द्रव्य के साथ खरल करके दृष्टि दौर्बल्य, जाला, फूली ओर धूम्रदर्शन [गुब्बार] प्रभृति जैसे नेत्र रोगो के निवारण के लिये नेत्र मे लगाते हे । यह नेत्र रोगो मे विशेप गुणदायक हे । लेखन होने के कारण नखो का सफेद होना, श्वित्र, छीप वा झाई कच्छू तथा त्वचा के दाग [धब्बे], मे मधु और सिरके के साथ इसको पीसकर लेप करते हैं । मूत्रल होने के कारण इसे अवरोधजन्य कामला मे अनीसून के साथ पीसकर पिलाते है तथा उपयुक्त औषधि के साथ इसे सुजाक मे खिलाते हैं । अहितकर-वृक्क रोगो मे । निवारण—मधु । प्रतिनिधि—हल्दी और

मुरमक्की । मात्रा १ से २ माशे तक ।

प्रयोग—

नेत्रशोधक सुर्मा—उत्तम जाति का सुर्मा, भीमसेनी कपूर, केशर, विना विंधे हुए मोती और कल खपरिया, ये सब चीजे समान भाग लेकर इन सबके वजन के वरावर ममीरा मिलाकर सात दिन तक सफेद पुनर्नवा के रस मे खरल करके शीशी मे भर लेना चाहिए । आख के हर किस्म के रोग मे इस औषधि को आजने से वडा लाभ होता है ।

सावधान—

मादा जाति अर्थात् ममीरी के पौधे ४ से लेकर ८ फीट ऊचे होते है । इसके फल फीके लाल रग के अथवा कुछ बेंगनी रङ्ग के होते है । इसकी जडो का रग भी पीला होता है । यह वनस्पति कुमाऊ मे पैदा होती है और वहा से वाहर निकल कर ममीरे के नाम से विकती है मगर यह ख्याल रखना चाहिये कि ममीरे के गुण ममीरी के समान नही होते ।

ममीरी देखिये पियारागा भाग ४ मे

मदनघंटी (Spermacoce Hispida Linn)

मदन घटी
SPERMACOCY HISPIDA LINN

यह हरितवर्यादि वर्ग और मजीठ कुल (Rulelaceae) का एक छोटी जाति का क्षुप होता है। इसके क्षुप जमीन पर छत्ते की तरह फैलते हैं। इनकी डालिया १ से ३ फीट खुरदरी, चौधारी और कुछ लाल होती है। इनके पत्ते आमने-सामने लगे रहते है। ये खुरदरे दलदार और गोलाई लिए हुए होते है। इसके फूल आधे से डेढ इच लम्बे, ¼ से ½ इच चौडे, धौले, नीले और बैंगनी रङ्ग के होते है। ये पत्र कोण मे गुच्छियो की मुवाफिक आये हुए होते है। ये ३ लाइन मे २ इञ्च लम्बे होते है। इनकी सपाटी पर बहुधा खुरदरे रोये होते है। इसके फल खुरदरे होते हैं और जब ये पक जाते हैं तब उनके दो पडदे खुल जाते है। यह वनस्पति बरसात के दिनो मे बहुत पैदा होती है।

व्यवहार्य अङ्ग—सर्वाङ्ग ।

उत्पत्ति स्थान—

हिमालय की तराइयो मे शिमला से आसाम, दक्षिणी क्षेत्र मे लङ्का तक बहुत पायी जाती है। नदियो के रेतीले ढालो पर पहाडो मे और कीचड वाली जमीन मे भी चौमासे मे बहुत उगते है। ये समग्र भारत वर्ष में होते है। (व० वर्णन)

नाम—

स०-मदनघटी। हि०—मदनघटी। व०मदचबुन्तकडु। गु०—मधुर जडी, खर सर शख लो। कच्छी बनकजो-भाड। सथाल-पिटवारा। ता०—नुवटेचुगी। ते०—मदन ग्रन्थी। ले०—स्परमेकोसी हिस्पिडा, बोरेरिया हिस्पिडा।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसकी जडे पौष्टिक, उत्तेजक और रक्तशोधक होती है। बीज—शीतल और स्नेहन होते है। इसकी जडे अपने रक्त शोधक गुणो की वजह से सार्सापरिला या अनन्तमूल की जगह पर उपयोग मे ली जाती है। इसके बीज काफी की तरह उपयोग मे लिये जाते हैं। इस औषधि का पौधा दुग्धवर्धक होता है इसे घास की जगह भैंस को खिलाने से भैंस का दूध बढता है। घी मे इसका शाक बनाकर खिलाने से स्त्रियो के स्तनो मे भी दूध बढता है। (व० च०)

मयूरशिखा नं. १ (Adiantum Caudatum Linn)

यह हंसराज कुल (Polypodiaceae) की एक वनस्पति है जो प्राय सारे भारतवर्ष मे आर्द्र स्थानो मे जहा जल

बहता रहता है, मिलती है ।

यह पत्र उद्भिद है, पत्र–२ से ४ इच लम्बे और गुच्छ बद्ध होते हैं । पत्र दण्ड के दोनो ओर पत्ते होते हैं । पान पाच भागो मे विभक्त होते हैं । प्रत्येक अश का अगला भाग बड़ा होता है । किनारो से जड़ें निकलती हैं ।

विशेष परिचय—एडिएण्टम–बाल सदृश शिखा वाले पर्ण । कौडेटम–काण्ड के अन्त मे पुच्छ सदृश मृदु, सकरा, उपागयुक्त । डोरे सदृश मूलो के गुच्छयुक्त क्षुद्र क्षुप । कोमल मध्य दण्ड युक्त छोटा क्षुप । मध्य दण्ड के दोनो ओर अन्तर पर रचना । पर्ण दण्ड २ से ४ इन्च लम्बा । गुच्छेदार, पर्णयुक्त, तार जैसा फैला हुआ, तेजस्वी काले गहरे धूसर । पानमध्य दण्ड के दोनो ओर अन्तर पर ६ से १६, लम्बे, या रेखाकार रेखाकार लम्ब गोल, पक्षाकार, बहुधा तेजस्वी हरे । पक्षयुक्त, छोटे वृन्त युक्त । रचना चर्म सदृश । मध्यदण्ड और पर्ण दण्ड लम्बे कोमल बालों से आच्छादित । बीज समूह पानो के अन्त मे । बीज जुलाई से दिसम्बर तक । जनवरी मे क्षुप सूख जाते हैं ।

उत्पत्ति स्थान—भारत मे सर्वत्र, सीलोन, मलाया, पेनिनसुला, दक्षिण चीन, अफ्रीका का उष्ण प्रदेश, मलाया, जावा द्वीप । बगाल के प्राचीन देवालयो, शिवपुर, चन्दन-नगर आदि मे यह तालाबो के किनारे पर और दीवारो पर एव तरी वाले स्थानो मे उत्पन्न होती है ।

नाम—

स. ब.—मयूरशिखा । हि—मोरशिखा । गा. म. गु. फ.—मोरशिखा । ले.—एडिएण्टम कौडेटम ।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसके पत्र सर्दी और ज्वर रोग मे व्यवहृत होते है । इसके पत्ते पीसकर चर्म रोगों पर लगाने से चर्म रोग आराम हो जाते है । यह बहुमूत्र रोग में हितकारी है ।

—भारतीय वनौ० बगला

मोरशिखा नं. २ (Celosia Cristata)

यह अपामार्गादिकुल [Amranthaceae] की एक क्षुप जाति की छोटी वनस्पति है । इसका क्षुप वर्षायु, खडा शाखायुक्त, सूक्ष्मरूयेंदार या चिकना क्षुप । ऊचाई १ से ४ फीट । पान–रेखाकार या बल्लमाकार, नोकदार, क्रमान्तर, ६ इन्च लम्बे और २ इन्च चौडे । पुष्पदण्ड नलिकाकार, कठोर, कभा-कभी शाखायुक्त मजरी तेजस्वी गुलाबी लगभग १ से ४ इन्च लम्बी, प्रारम्भ मे नोकदार । पुष्प छोटे [¼ इच के], सफेद, पीले, गुलाबी होते हैं वैसे बहुधा पीले रग के । बीज–छोटे, काले तेजस्वी । फूल और बीजकाल अगस्त से दिसम्बर तक । इसके कोमल पत्तो की तरकारी बना कर खायी जाती है ।

उत्पत्ति स्थान–बगाल, बिहार, काश्मीर, उत्तरी भारत, उत्तर प्रदेश के पूर्ण गिरी, नैनीताल, अलमोडा की पर्वत शिलाओ पर अधिक और राजस्थान मे विशेषतौर से पैदा होती है ।

नाम—

सं.–मयूरशिखा, केकिशिखा । हि–मोरशिखा. मोर पखी, लालमुर्गा । ब–लालमुर्गा, हलदीमुर्गा, गु–मोरशिखा । म-मयूरशिखा । काश्मीर–मावेल । कर्णा०–होरेयसूसुव । ते०–मयूरशिखियनेक्षुप विशेषमु । प०–मावल । फा०–असनाने, असलान । अ०–[Cock's Comb] कोकसकोम्ब । ले०–सेवोसियाक्रिस्टेटा ।

गुणधर्म और प्रयोग—

मोरशिखा–हलकी तथा पित्त, कफ और अतिसार को दूर करने वाली है ।

मोरशिखा–स्वादु, रसान्वित, मूत्रकृच्छ्रनाशक, बालग्रहादि दोष निवारक और वशीकरण कर्म मे प्रशंसा योग्य है ।

मोरशिखा–शीतल, कषैली, खट्टी, पचने मे भी खट्टी, हलकी तथा पित्त, कफ और अतिसार निवारक है ।

—नि० र०

लाल मुर्गा (मायूरशिखा)
CELOSIA CRISTATA LINN
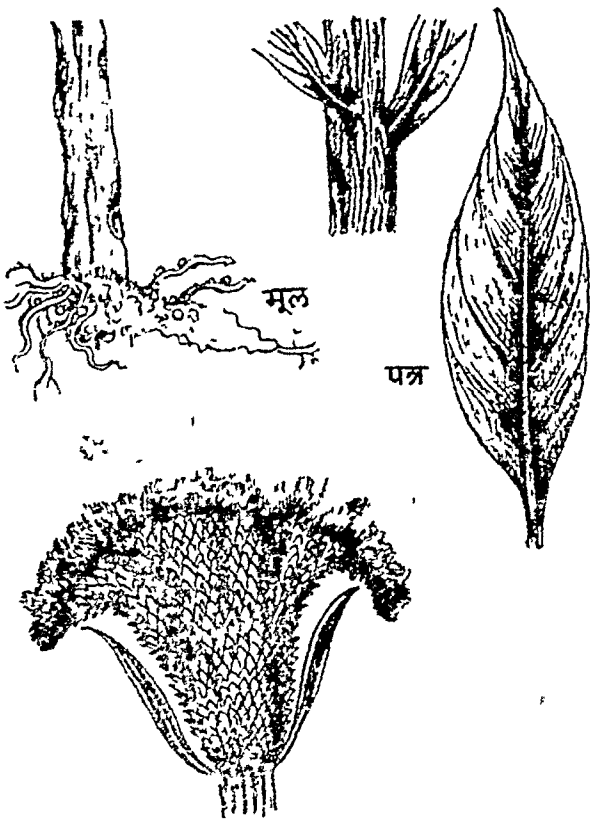
मयूर शिखा सबधी जयकृष्ण इंद्रजी ठाकुर के विचार Polycarpoca corymbosa नामक वनस्पति को अधिकतर सज्जन मयूर शिखा कहते है किन्तु उत्तर-भारत, मारवाड, मेवाड और कोकण मे हसराज की जाति की एक वनस्पति जिसको Asplcrıeem radıat-um कहते है वो मानी जाती है और वही मुझको खरी (सत्य) "मयूर शिखा" लगती है। नाथद्वारा मे इसके सैकड़ो छोड मैंने देखे है और इकट्ठे भी किये थे। यह कुल Felıces की वनस्पति है। देखिये—Dalget Bomby flora P 307 और गुजराती मे "छोगालो हंसराज" भी कहते हैं। इसलिये मयर शिखा का लेटिन नाम Asplenıum radıatum है और नोट करें कि Celosıa cristata को कलगी मुर्गा अथवा लाल मुर्गा भी कहते हैं।

—आदर्श निघण्टु

मयूर शिखा के सम्बन्ध मे कैयदेव निघण्टु का मतव्य—मयूर शिखा के क्षुद्र मृदु हरित क्षुप भारत मे सर्वत्र मिलते है। पत्र लम्बे और कटे हुये। क्षुप के शिखर पर एक गोल नील वर्ण मुण्डाकार पुष्प होता है जो मोर की शिखा के समान होता है और इसी कारण से इस क्षुप को मयूर शिखा कहा गया है। पुष्प शीत ग्राही और रक्त स्तम्भक होते है, जिन्हे अतिसार, प्रवाहिका, रक्त-प्रदरादि मे प्रयोग किया जाता है। बीज-पिच्छिल होने से कास, मूत्रकृच्छ्रादि मे काम आते है। —कै. नि.

वक्तव्य--

मयूर शिखा के नाम से Adiantum caudatum Lınn (Polypodıaceae) यह वनस्पति हसराज कुल की है और दूसरी Celosıa Crıstata (Amranthaceae) कुल की है जिसका क्षुप १ से ४ फीट ऊचा होता है। भा नि शा० नि०, रा०नि०, कैयदेव निघण्टु मे एक ही मयूरशिखा के गुण लिखे हैं। आदर्श निघण्टु मे आदरणीय जयकृष्ण इन्द्रजी का मतव्य Asplenium-Radiatum के वास्ते है। इस वनस्पति का चित्र भी पहिचान के लिये दिया जा रहा है। अन्वेषक बन्धु इन तीनो वनस्पतियो का परीक्षण कर परिणाम प्रकट करावे कि शास्त्रो मे लिखित गुण किसमे है और वास्तविक मयूर शिखा कौन सी है?

डा आर एन चौपडा अपनी पुस्तक मे लिखते है कि एकटिनोप्टेरिस डिचोटोमा का प्रयोग रक्त शोधक और कृमिनाशक है। (२) एडिएण्टम कोडेटम' का गुण—चर्म रोग नाशक, मधुप्रमेह, कफ और ज्वर नाशक है। (३) 'सेलोसिया क्रिस्टेटा' का प्रभाव-ग्राही अतिसार नाशक और अधिक मासिक श्राव का रोधक है। शास्त्र मे लिखित अतिसार नाशक और अधिक रक्तस्राव स्तम्भक गुण सिलोसिया क्रिस्टेटा नाम की वनस्पति मे ही लिखित हैं। फिर भी परीक्षण कर परिणाम पर पहुचना चाहिये।

योग--

मयूरशिखा मूल योग—मयूर शिखा की जड़ को

दूध मे पीसकर ऋतुमती स्त्री को पिलाने से वह गर्भ-धारण कर लेती है। भा भै र

मासिक धर्म की अधिकता—इसका शरवत पिलाने या जल मे घोट छानकर स्वरस मे मिश्री मिलाकर पिलाने मे मासिक धर्म मे प्रमाण से अधिक रुधिर का निकलना बन्द हो जाता है।

पथरी पर—मोर शिखा की जडो को चावलो के धोवन के साथ पीने मे और पथ्य मे सिर्फ दूध का आहार लेने मे कुछ दिनो मे पथरी गल जाती है।

—गा० औ० र०

मयूर पंखी (Actinopteris dichotoma Bedd)

यह हसराजकुल (polypodiaceae) की एक वनस्पति है। इसके पत्र दण्ड सघन सन्निविष्ट और गुच्छबद्ध होते है। पत्र लम्बे, दण्ड सलग्न पत्राश चौडा, बहुत भागो मे विभक्त होते है। कई एक तालपत्रो के समान विस्तृत। बीजवाही पत्राश बीजहीन पत्रो की अपेक्षा बडे होते है। उपयोगी अग—पत्र।

उत्पत्ति स्थान—भारतवर्ष मे सर्वत्र। ३००० फीट से नीचे शुष्क और पर्वतमय स्थानो मे। फारस, काबुल, खान्दार लकाद्वीप, महाबलेश्वर रोड के कातराजघाट, बम्बई के विक्टोरिया उद्यान, कुमायू और नीलगिरी मे विशेष रूप से होते है।

नाम--

स०—मयूर शिखा। हि०—मोरपखी, मयूरपखी। बम्बई—मयूर शिखा। गु०—भूर्तार। ले०—ऍक्टिनोप्टेरिस डिचोटोमा।

गुण, धर्म और प्रयोग--

यह कृमिनाशक और रक्तस्राव निवारक है।

—भा व बङ्गला भा ३ मे

मजनूं (Salix Babylonica Linn)

यह गुडच्यादि वर्ग और हसराजादि कुल [poly-podiaceae) का एक मध्यम कद का वृक्ष होता है।

उत्पत्ति स्थान—हिमालय और उत्तरी हिंदुस्तान मे यह बहुत पैदा होता है।

नाम--

हि०—मजनू। प०—बेद, बोसू, विदाइ, कतीरा, लैला-मजनू, वाला इत्यादि। बङ्गला—तिस्सी। काश्मीर—गुद्रु, बिसा। अ०—weeping willow। ले०—सेलिक्स बेबीलोनिका।

गुण, धर्म और प्रयोग--

इसके पत्ते और इसकी छाल सकोचक होती है। पार्यायिक ज्वर और अविराम ज्वर मे इसका विशेष तौर मे उपयोग होता है। इसकी छाल कृमिनाशक होती है।

—व च

इडियन मेटेरिया मेडिका मे इसमे विशेष तत्व (Salcine) और प्रभाव कृमिघ्न, कोथप्रशमन और बल्य लिखा है।

मरूल (Sansevieria Roxburghiana)

यह घणसपातादि कुल [Heemodoraceae] का एक बडी जाति का क्षुप होता है। इसके पत्ते १ से ४ फीट तक लम्बे होते है। इनका रग हरा होता है और बीच मे सफेद धारिया होती है। इसकी जड बहुत मोटी होती है। ताजी जड मे सोठ के समान गन्ध आती है। इसके पत्तो से रस्सिया बनाई जाती है।

इसके बीच तलवार के आकार की शाखा निकलती है जो पहले पीलापन लिये हरे रग की होती है। पत्तो के बीच से एक डडी निकलती है जिस पर फूलो के गुच्छे लगते है। गुच्छे वाली डडी की लम्बाई १ से २ फीट की

और गोलाई डेढ से दो इन्च की होती है। फूलो से आनन्द दायक सुगध आती है। फल—बहुत कम आता है और यह एक बडे और दो छोटे छिलके के भीतर गोलाकार तिहाई इन्च के घेरे का होता है। इसके अन्दर सफेद रग का एक बीज होता है जो सफेद रोवो से घिरा रहता है।

उपयोगी अङ्ग—मूल।

स्वर्गीय परम श्रद्धेय लाला रूपलाल जी वैश्य बूटी विशेषज्ञ ने सदिग्ध बूटी चित्रावली के पृष्ठ २१ पर इसको मूर्वा न० ५ लिखा है और चित्र भी दिया है तथा इसीको श्रेष्ठ गुणकारी माना है।

उत्पत्ति स्थान—

कोरोमण्डल के किनारे, पश्चिमी प्रायद्वीप और सिलोन के जगलो मे पाया जाता है तथा यह वहा रोपन भी किया जाता है। डिडिगल प्रात के वसिनन्द पहाडो पर और कम्बकम मे इसकी खेती बाहुल्यता से की जाती है।

नाम—

स०—मूर्वा। हि०—मुरहरी, मरुल, मूर्वा। बबई—घणसपात, मूर्वा, मुर्गली। ब०-गोराचक, मूर्गावी, मुरगली। गु०—मुरवेल। दक्षिणी—मुरगली। म०—घणमपात, नागफण। क०—माहगा। मल०—कटुकापेल। कन्नड—हेग्गुरुठिके। ता०—मरुल, कालाग। ते०—चागा। अ०—बोस्ट्रिंग हेम्प [Boustring hemp] ले०—सेन्सेवेरिया राक्स बर्घियाना।

गुण धर्म—

पुरानी और हठीली खासी मे इसकी जड के रस को चाय के छोटे चम्मच की मात्रा मे थोडी शहद मिलाकर दिन मे दो बार देने से बहुत लाभ होता है। बच्चो के गले मे जमे हुए कफ को छुडाने के लिये भी इसके पत्तो का रस दिया जाता है।

के एम. नादकर्णी महोदय ने इण्डियन मेटेरिया मेडिका मे इसको दस्तावर, भारी, मीठे, बलकारी, स्वाद तथा गन्ध मे तीक्ष्ण, हृदय को हितकारी, क्षय, रुधिर की उष्णता, सुजाक, उन्मत्तता, तृष्णा, हृदयरोग, खुजली, कोढ, ज्वर, आमवात और मास वृद्धि का नाशक है। यह क्षय रोग और पुरानी खासी मे बहुत लाभदायक है। इसके रस को आधे छोटे चम्मच की मात्रा से बालको को देने से उनके गले मे जमा हुआ कफ सहज मे निकल जाता है।

—स० बू० चि०

मधुक (Cyanometra Ramiflora Linn)

यह शिम्बी कुल (Leguminosae) का एक छोटी जाति का झाडीनुमा वृक्ष होता है जो समुद्र के किनारो पर पैदा होता है।

उत्पत्ति स्थान—दक्षिण भारत के पर्वतो मे, सुन्दर वन, आडमन, सिलोन मे पाया जाता है और बगीचो मे कृषि की जाती है।

नाम—

स०—मधुक। हि०—मधुक। ब०—शिंग्र। मल०—इरीया। ता०—इरुदवू। ले०—सिनोमित्रा-रमिफ्लोरा।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसकी जड विरेचक होती है। इसके पत्तो को गाय के दूध मे उबाल कर उनका लोशन बनाकर उसमे शहद मिलाकर गीली खुजली, गलित कुष्ठ और दूसरे चर्म रोगो पर लगाया जाता है। इसके बीजो से तैयार किया हुआ तेल भी सब प्रकार के चर्म रोगो मे लाभदायक होता है।

—व० चं०

मरचुला (Murraya Paniculata)

य सदापादि कुल (Rutaceae) का एक हमेशा हरा रहने वाला झाडीनुमा पौधा होता है। इसकी छाल

मुलायम चिकनी और कुछ पीलापन लिये सफेद होती है इसके फूल सफेद रग के अत्यन्त खुशबूदार होते है। यह एक सुगन्धित फूलो वाली वनस्पति है।

उत्पत्ति स्थान—

यह पाच हजार फीट की ऊचाई पर आसाम, पेनिनसुला की सतपुडा पर्वत श्रेणियो, पश्चिमी घाट और जमुना के उद्गम से हिमालय से बाहर पर्वत श्रेणियों मे पाया जाता है।

नाम—

हि०—मरचुला। बं०—कामिनी। बम्बई—चुलाजुति। कन्नड—पाटरी। ता०—निमाळक कोजी। ते०—नागा गोलुगा। कुमाऊ—मरचोव। म०—कुन्ति, मरचुला जुति। नेपाल—सिमाली। उत्तरपश्चिमी प्रदेश-मरचूला। उडिया—चीरी जुग्गी। ले०—मुरैया पेनिक्यूलेटा।

गुणधर्म व प्रयोग—

शरीर के किसी भी स्थान के दर्द को दूर करने के लिए इसकी जड की छाल को पिलाते हैं और दर्द के स्थान पर इसकी मालिश करते हैं। इसके पत्तो का चूर्ण ताजे घावो पर लगाने के लिये काम मे लिया जाता है। इसके पत्तोका काढा जलोदर रोग मे पिलाने के काम मे लिया जाता है।

मरेडी (Erigeron Asteroides Roxb.)

यह भृङ्गराजादि कुल (Compositae) की एक वर्ष जीवी क्षुप जाति की बनस्पति होती है। इसका पौधा बालिस्त भर लम्बा और रुयेंदार होता है। इसके फूल पीले रंग के होते है जो जाड़े के दिनो मे आते है। औषधि प्रयोग मे इसका पचाग काम मे आता है।

उत्पत्ति स्थान—

यह वनस्पति सारे भारतवर्ष मे तथा सिलोन मे पैदा होती है।

नाम--

हि०—मरेडी, मारेडी। गु०—मारेडी। बं०—मारेढी, सोनसली। ले०—इरिगेरोन एस्ट्राइडस।

गुणधर्म व प्रयोग

इसका पौधा मूत्रल और उत्तेजक होता है। ज्वर की हालत मे पेशाव कराने के लिये अथवा रोगी को उत्तेजना देने के वास्ते इसका व्यवहार कराया जाता है।

मरोडफली (Helicteris Isora Linn)

यह मुचकदादि कुल (Sterculiaceae) का एक छोटी जाति का झाडीनुमावृक्ष ८-६ फीट ऊचा झोपडाकार पत्तों करके सघन किंचित अनीदार होता है। इसके पत्ते गोलाकार २ से ४ इच तक लम्बे और २ से ३ इच तक चौडे होते हैं। चैत्र से वर्षा काल के शेष तक यह वृक्ष फूलता फलता है। इसके फूल लाल रग के होते है। इसकी फलियां एक दो इच लम्बी रस्सी की तरह बल खाई हुई होती है। इन फलियो के गुच्छे लगते हैं। हरी हालत मे ये हरी और सूखने पर काली होजाती है। फलियां शीत काल मे पक जाती है।

उपयुक्त अग—फली।

उत्पत्ति स्थान—समस्त मध्य और पश्चिम भारतवर्ष, जम्बू तक के सूखे (निरस) जगलो मे, विहार, मेवाड तथा अवध के जगलो मे एव पश्चिमी प्राय द्वीप मे होते हैं। सिवालिक पहाड की घाटी पर यह स्वयं उत्पन्न होती है और सीलोन के नीचे के प्रान्त मे भी यह पायी जाती है।

नाम—

स.—आवर्त्तकी, आवर्त्तनी, आवर्त्त फला, रङ्गलता। हिं—मरोड फली, मरोर फली, मुर्रा, ऐंठी जोइठो। बं—आन्तमोरा। प—मरोड फली। मा—मरोडा फली। गु—मड्डासिगी। मल.—केवणीवाशेंगा। म—मुरडशेग। तैं—कवची शामली गुवदर्रा। क—कवगी। द्रा-वलुवेरी। सिध—मुरकटी। दक्खनी—वामिनी। मु.—कउन। गौडी—ऐंता। ता—विरकई। ले—हेलिक्टेरस

आइसोरा ।

रासायनिक संगठन—

फली मे थोडी मात्रा मे एक स्निग्ध पदार्थ होता है ।

गुण धर्म व प्रयोग—

ग्राही, पौष्टिक, उपलेपक और ज्वरघ्न । वातकारक, कास, श्वास, नेत्र, शूल, व्रण, कोढ, प्रमेह, कृमि और विष नाशक है ।

इसके मूल की छाल का काढा मिश्री के साथ प्रमेह रोगी को पिलाते हैं ।

प्रमेह और गरमी की व्याधि से ज्वर आता हो उसके लिये इसकी मूल की छाल का काढा थोड़ा भुना सुहागा मिलाकर पिलाने से लाभ हो जाता है ।

मरोड़फली का चूर्ण मिश्री के साथ अतिसार और सग्रहणी मे दिया जाता है ।

पेचिस मे मरोड़फली का चूर्ण व सोठ का चूर्ण मिला नमक का अनुपान देकर देते है । बच्चो के दस्तो मे मरोडफली का चूर्ण दही मे देते हैं । मरोड़फली का चूर्ण बहुत से पौष्टिक पाको मे काम मे लिया जाता है ।

प्रयोग—

अतिसार में—अतीस या इन्द्रजव के साथ अथवा दोनो के साथ इसके चूर्ण का सेवन करे ।

पेचिस मे—कफ और रुधिर की दस्त पर इसकी १॥ तोले की मात्रा जल मे भिगो मल छानकर पिलावे ।

कर्णस्राव पर—कान बहने पर इसको एरण्ड तेल के साथ तैल साधितकर कान मे डालना चाहिये ।

—स० बृ० चि०

बालातिसार पर—इसकी फलिया शान्तिदायक, सकोचक, आतो के दर्द को रोकने वाली और बच्चो के कोष्ठ वायु को नष्ट करने वाली होती है ।

यूनानी मतानुसार—

पहले दर्जे मे गरम और खुश्क, शोथ विलयन, तारल्य जनन, दोषो को स्वच्छताकारक, पिच्छिल, कफ को अतिसार द्वारा शोधन करने वाली, लेखन, सशमन (अवसादक) और प्रवाहिकाहर है ।

विलयन और तारल्यजनन होने के कारण यह श्लेष्म विकृति को दूर करती और उदर स्फीति मे गुणकारी है । अरतिकर—पुस्त्वोपघाति है । प्रतिनिधि—एलुवा । मात्रा—५ माशे से ७ माशे तक । जो दिन मे ३ या ४ वक्त दी जाती है ।

—यू० द्र० वि०

मसूर (Lens esculenta Moench)

यह शाक वर्ग, शिम्बीकुल (Leguminosae) का द्विदल धान्य है जो चपटा, ऊपर से मटमैला और भीतर लाल होता है । इसकी दाल पका कर खाई जाती है । इस का झाड़ हाथ डेढ हाथ ऊचा होता है । इसके तने का बाहरी रग काला होता है किन्तु शाखो का रग ताम्रवर्ण का होता है । मसूर की दाल प्राय सारे भारतवर्ष मे खाने के काम मे ली जाती है । इसको सब कोई जानते हैं इसलिये विशेष विवेचन की आवश्यकता नही है ।

व्यवहार्य अङ्ग—बीज ।

उत्पत्ति स्थान—समस्त भारतवर्ष मे कृषि की जाती है ।

नाम—

स०-मसूर, मङ्गल्यक, मङ्गल्या। हिं-मसूर । ब-मसूरी मसूर दाल । म०-ममूरी । प०-मसूर । कर्णाटक-चणर्ग । ता०-मिस्सूर पर पर । तै०-मिसूर पप्पू । अ०-अदस । फा०-नशिक । अ०-lentle, लेटिन । लें०-लेंस एस्क्युलेंटा मोइन्च ।

रासायनिक संगठन—

इसमे जल, मॉसवर्धक और पिष्ट द्रव्य, तेल, ततु, राख और भाखराम्ल ये तत्व होते है ।

गुणधर्म व प्रयोग—

रस-मधुर । वीर्य-शीत । विपाक-मधुर । दोषघ्नता-

मसूर

LENS ESCULENTA MOENCH.
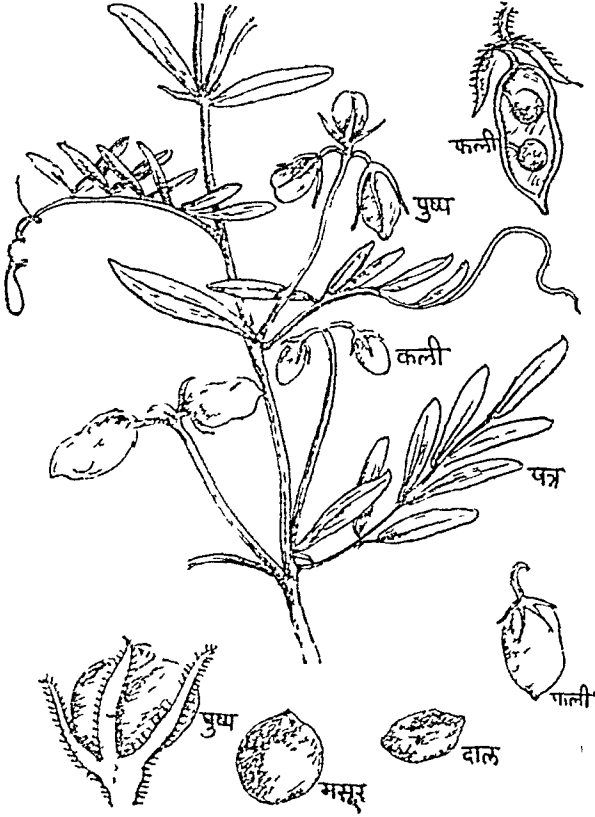
कफपित्त है ।

मसूर—लघु, शीत, मधुर, कषाय, रुक्ष, विपाक मे मधुर, सग्राही है। मसूर कफ पित्त मे उपयोगी है। (यूप तथा बाह्योपचार मे यह काम मे आती है ।

—भा० प्र० नि० ।

मसूर—रूखी, विशोषक, मधुर तथा शूल, गुल्म और सग्रहणी रोग को उत्पन्न करने वाली है, वातरोगो को बढाने वाली तथा रक्त पित्त और मूत्रकृच्छ्र रोग को हरने वाली है।

—हा० स०

मसूर—हलकी, अत्यन्त रूखी, विशद, नेत्रो को हितकारी, ग्रहनाशक, श्लेष्म पित्त नाशक, रुचिकारक, वातरोग कारक, विष्टम्भ जनक, मलरोधक, मूत्रकृच्छ्र, पथरी और सर्व प्रकार के पित्त विकारो को दूर करती है, हृदय को हितकारी और मधुर है ।

—शा० नि०

मसूर का लेप—वर्ण को सुन्दर करने वाला और त्वचा के रोगो को हरने वाला है। मसूर—रूखी, मलवर्धक, शीतल, वातकारक, किंचित आध्मानकारक, रक्तपित्त और कफनाशक, हलकी, कषैली, मधुर, मेद नाशक है। इसके पत्तो का शाक कषैला, हलका और कडवा है ।

—शा० नि०

डाक्टरी मतानुसार— —

मसूर मे गन्धक नही है इसलिये अन्य द्विदलो के समान यह पेट मे वायु नही करता है। अर्थात् गैस होता हो उनके लिये यह उत्तम है । भावमिश्र जी ने ऐसा होते हुए इसको वातल कहा है । यह भूल है । मसूर मे नाइट्रोजन (प्रोटीन) का प्रमाण बहुत है और यह ऊची जात का है । मसूर सग्रहणी, अतिसार, गैस मे उत्तम धान्य है । मसूर रक्तवर्धक भी है !

मसूर—चणा और उडद के बाद पोषण की दृष्टि से दूसरे नम्बर की है। इसका नेत्रजन ऊची जाति का सुपाच्य और पौष्टिक है । इसमे बी' ग्रुप विटामिन्स बहुत सारे प्रमाण मे है । थियेमिन ०-२६, रिबोफलेवीन ०-२१, निकोटिनिक एसिड १-७, चोलाइन २२३, फोलिक एसिड १०६, नीसिटोल १६०, पेन्टोथिथिनिक एसिड १-६, आयोडिन १३-२, पाइरीडोक्सीन ०४० (प्रत्येक १०० ग्राम मे इतने मिलीग्राम्स है) इसके अलावा अन्य विटामिनो केरोटीन १-६, एस्कोर्बिक एसिड ४-२, विटामिन 'के' ०-२५, टोकोफेरोल २० मिलिग्राम प्रत्येक १०० ग्राम मे है । फूलते-फलते समय विटामिनो का प्रमाण बढता है । नीचे के एमिनो एसिडो मसूर के नेत्रजन मे है आर्जीनीन, हिस्टिडिन, मेथियोनीन, लाइसीन, नेलिन, फेनिलेलि नाइन, ट्रीप्टोफन, ल्युसाइन, आइसोल्युसाइन, थ्रेओनाइन ।

नीचे के खनिज पदार्थ—

केल्सियम ३८.६, फास्फोरस २४२ ०, मेग्नेसियम ७६ ५, सल्फर १२२-०, क्लोराइन ६३ ६ मिलीग्राम प्रति १०० ग्राम मे है ।

आयोडीन, ब्रोमीन, मेगेनीज, अ्ल्यूमिनियम्, कापर, जिक, आर्सेनिक भी है। फूलते-फलते समय लोहे का प्रमाण ज्यादा बढता है । (नि० आदर्श

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति-समता के साथ उष्ण और दूसरे दर्जे मे खुश्क है। समूचे मसूर के काढे से गल शोथ और कठ शोथ मे गण्डूष कराते है। यह सूजन उतारती और वेदना शमन करती है। चेहरे का रङ्ग निखारने के लिए इसका आटा उवटन मे डालते हैं। मुख पाक और कठ शोथ मे यह विशेष गुणकारी है। अहितकर अर्श के लिये। निवारण बादाम का तेल, घी और पकाना। प्रतिनिधि उडद-और बाकला। (यू० द० वि०)

प्रयोग—

रक्तार्श मे—मसूर की दाल खट्टी छाछ के साथ खाने के लिये देवे।

सग्रहणी मे—सोठ, बिले का घर दोनों को समान लेकर मसूर के यूप के साथ लेने से सग्रहणी मिटती है। (शार्ङ्गधर)

वमन मे—मसूर का आटा, अनारका रस और मधु समान भाग मे लेकर थोडा पानी या छाछ मिलाकर लेने से त्रिदोषज उल्टी मिटती है।

अतिसार मे—मसूर १०० पल का १ द्रोण पानी मे क्वाथ करे। चतुर्थांश रहने पर ८ पल बेल का चूर्ण डालकर १ प्रस्थ घी तैयार करे। इस घी को खाने से सर्व अतिसार मिटते हैं। ग्रहणी, अतिसार, प्रवाहिका भी मिटती है। मात्रा—१ तोला।

मसूर के विशिष्ट योग—

मसूर घृतम्—सोठ, जीरा और बेलगिरी प्रत्येक ३। तोले लेकर सबको एकत्र पीसले। क्वाथ २-सेर मसूर को १६ सेर पानी मे पकाकर ४ सेर शेष रहने पर छानलें।

१ सेर घृत मे उपरोक्त क्वाथ और कल्क मिलाकर मदाग्नि पर पकावे जब क्वाथ जल जाय तो घी को छानले। यह घी सग्रहणी को नष्ट करता है।

—भा० भैं० र०

मसूरादि घृतम्—४ सेर मसूर को ३२ सेर पानी मे पकाकर ८ सेर शेष रक्खें और फिर उसे छानकर उसमे २ सेर (१६० तोले) घी तथा १०-१० तोले पीपल और सेधानमक का चूर्ण मिलाकर पुन पकावे। जब पानी जल जाय तो घी को छानलें। एव ठडा होने पर उसमे (½ सेर) शहद मिलाकर सुरक्षित रक्खे।

यह घृत समस्त प्रकार के तिमिर रोगो को नष्ट करता है।

मलाड़ी (Canngeum odoratum Hook)

यह सीताफलादि कुल (Anaceae) का एक ऊची जाति का वृक्ष होता है। इसकी छाल मुलायम होती है। इसके पत्ते ५॥ इच लम्बे और २ इच चौडे होते हैं। इसके फूल पीले रङ्ग के होते हैं। इस वनस्पति की भारत वर्ष मे खेती की जाती है।

नाम—

हि०—मलाडी। ता० मलाडी, करुमुगाई, सादी। ते०—चेट्टु समपागी। बरमी—कदातम्यन। ले०—कैनेन्जियम ओडोरेटम।

गुण धर्म और प्रयोग—

इसके फूलो से एक प्रकार का खुशबूदार तेल तैयार किया जाता है। इसका यह तेल मस्तक शूल, नेत्राभिष्यन्द और सधिवात के ऊपर लगाने के लिये काम मे लिया जाता है। (व० च०)

महुआ (Bassia Latifolia Roxsb)

यह फलवर्ग और मधुकादि कुल [Sapotaceae] का महुआ का वृक्ष भारतवर्ष भर मे प्रसिद्ध है, कोई-कोई किसान अपने खेतो के आस पास या बीच मे, खलियानो मे या सडको के किनारे-किनारे लगाते है। बाकायदे वृक्ष
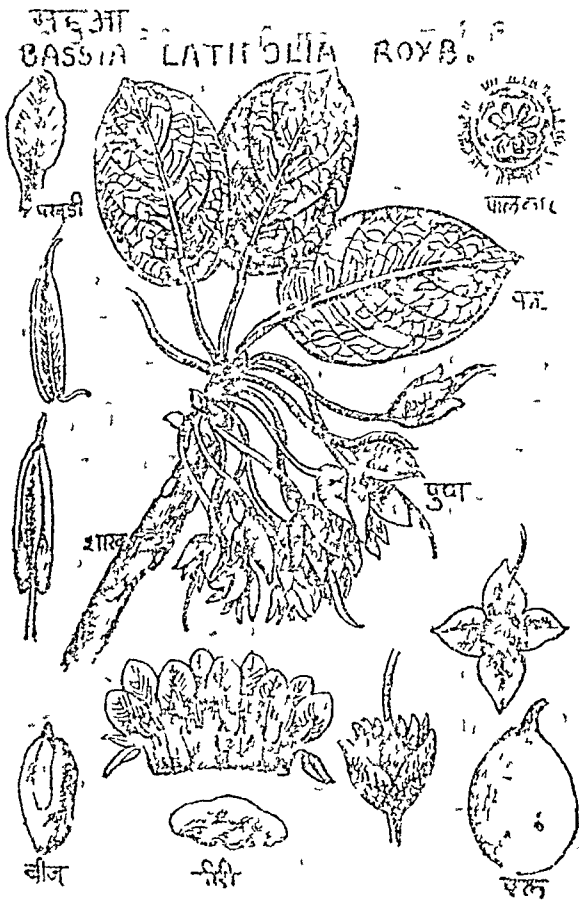
के तने की जडो मे चारो तरफ गड्ढा खोदकर पानी दिया जाता है। इस प्रकार सिंचित महुआ के पुष्प-फल आदि एव पत्ते बडे-बडे होते है। पर्वतीय स्थानो मे जायमान महुआ के वृक्ष मे भी पुष्प फल उत्तम प्रकार के होते है। पर्वतो मे लगभग तीन हजार फीट से अधिक ऊचाई पर महुआ का वृक्ष नही पाया जाता। बिना सिंचित महुआ के पुष्प फल बहुत ही छोटे-छोटे होते है। महुआ पुष्पके पीली झाई लिये हुये श्वेत वर्ण के रसदार, ठोस और बीच मे खोखलापन लिये होते है। इस खोखले भाग मे जीरे के समान छोटे-छोटे पुष्प पराग होते है। इन पुष्पो से मीठी-मीठी, भीनी-भीनी सी गध आती रहती है। खूब रसदार होने पर पुष्प नीचे गिर जाते है। कृषक बालाये इन पुष्पो को एक टोकरी मे एकत्र करती है और खलिगान या आगन मे सुखाती है। सूखने पर ये लाल वर्ण के मुनक्का के समान हो जाते है। गरीब ग्रामीण जनता अपने दुर्दिनो मे इन महुआ पुष्पो से ही जीवन रक्षा कर लेती है।

इनसे शराब भी बनती है। पर्वतीय स्थानो मे जहा जहा जगल के जगल महुआ के होते है। सरकार ठेकेदारो के हाथ बेच देती है। ठेकेदार इन महुआ पुष्पो को सुखाकर बडे-बडे शहरो मे जैसे उत्तर प्रदेश का प्रमुख शहर कानपुर आदि स्थानो को निर्यात करते है।

कानपुर मे महुआ की शराब काफी तादाद मे बनती है। महुआ के फल डेढ दो इच लम्बे और एक इन्च मोटे होते है। इनकी आकृति अण्डे के समान होती है। फल पकने पर मीठा हो जाता है। गरीब लोग इन फलो को भी खाते है। फल के अन्दर से लाल आवरण युक्त १ या २ बीज निकलते है। इन बीजो की मीगी के कोइआ, ठोइया, डोलमा आदि अनेक नाम है। मालवा, मेवाड, नीमाड आदि गुजरात पार्श्ववर्ती स्थानो मे इसे गुल्ली कहा जाता है। इस मीगी से तेल निकाला जाता है जिसको डोरिया, टोइया या डोलमे का तेल कहा जाता है। बीजो का तेल जल्दी खट्टा हो जाता है। इस हेतु से उसका उपयोग औषध रूप से नही होता। इस तेल का औद्योगिक महत्व बहुत ही अधिक है। कपडे धोने के साबुन बनाने मे महुआ का तेल एक प्रमुख उत्पादन है। तेल निकाल लेने के बाद महुआ की खली बच जाती है। इस खली का उपयोग किसान लोग गाय भैसो को खिलाने मे करते है। महुआ की खली खिलाने से गाय भैस के दूध की मात्रा डेढ दो गुनी बढ जाती है।

उत्पत्ति स्थान—मध्यप्रदेश, पश्चिम बगाल से पश्चिम घाट तक, राजस्थान, बिहार, गुजरात, दक्षिण आदि अनेक प्रदेशो मे पाया जाता है।

महुआ की दो किस्म है। १ [Bassia Latifolia] चौडे पानवाला २ [Bassia Longifolia] लम्बे पान वाला।

सक्षिप्त विवरण—पहली जाति के वृक्ष की ऊचाई लग भग ५० फीट। शाखा के अन्त मे पानो का गुच्छा। नया भाग ऊन सदृश रुयेदार। पान की लम्बाई ५ से ६ इच, चौडाई २॥ से ३॥ इच। पुष्प मासल, मलाई के सदृश रग के। (पीताभ सफेद), पुकेसर सामान्यत २४ से २६

दूध्य महुआ

BASSIA LONGIFOLIA LINN.
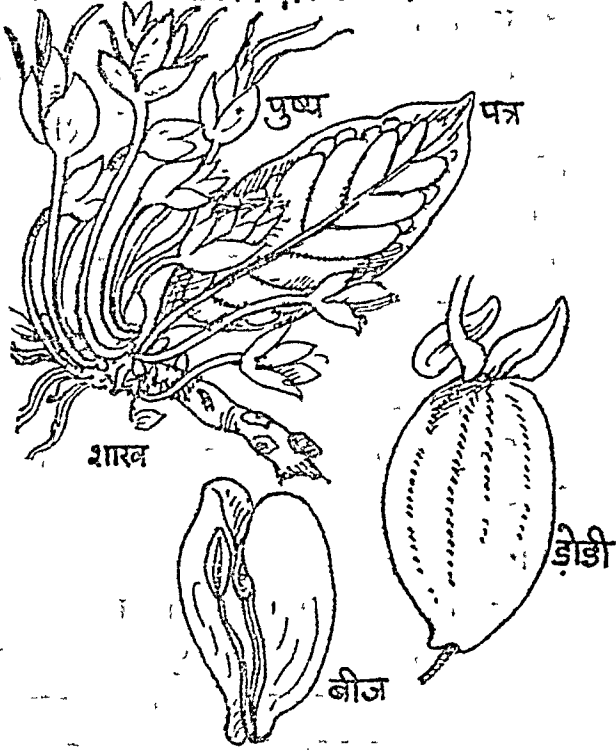
पराग कोप पीछे की ओर रुयेदार, क्रमश तीन प्रकार के, नीचे चौडा, ऊपर तग। फल १ से २ इच लम्बे, हरी आभा वाले, अण्डाकार, १ से ४ वीज युक्त। फूल जनवरी ने अप्रैल तक।

दूसरी जाति के वृक्ष विशेपत दक्षिण (मद्रास, कर्णाटक, मैसूर, सीलोन आदि) मे होते है। ऊचाई ५० फीट, सव नया भाग रुयेदार। पान चार से पाच इच लम्बे, १॥ इन्च चौडे। फूल शाखा के अन्त मे पानो के नीचे। पुकेसर १६ से ३०, दो पक्ति मे, ३ दात वाले आधार स्थान पर हृद्याकृति। फल १ से १॥ इन्च लम्वे, पकने पर पीले, १ से २ वीज युक्त (क्वचित ३-४)। पुष्प नवम्बर से जनवरी तक। छाल—ग्राही। छाल का दूध ग्राही।

औपधि रूप से फूलो का अधिक उपयोग होता है। फलो का स्वाद मधुर हे, फल पकने पर गिर जाते है फल खाने के काम आते है तथा औपध रूप से भी उपयोग होता है। इसके फलो का तेल–जलाने, नकली, घी वनाने और सावुन आदि वनाने मे व्यवहृत होता है।

उपयुक्त अङ्ग—पुष्प, तेल, छाल, मधुकसार।

नाम—

स.–मधूक, गुड पुष्प, माधव, मधुस्रव। हि–महुआ, महुवा। व–महुल, मौआ। ता–मधुकम्। ते–इप्पचेट्ट। गु–महुडी। म–मोहडा। क–महुइप्ये। फा,–चका। अ–इलूपाट्री Elloopatree। ले–वेसिया, लाटिफोलिया, वेसिया लोगि फोलिया। फल को वनारस मे—कोइन्दा, फतहपुर जिला उत्तर-प्रदेश मे–गुल्हु। गु–डोलिया। म–टोलवी। राजस्थान में–डोलमा।

रासायनिक संगठन—

वीज मे एक वसामय अनुत्पत्त तेल ५० से ५५%, फूल मे काफी प्रमाण मे शर्करा, अभिपवजनक द्रव्य (Enzymes) और किण्व (Yeast) होते है। वायु शुष्क फूल मे ईक्षु शर्करा २ २%, इन्वर्ट शर्करा ५२ ६, अन्यान्य जल विशेष पदार्थ ७ २%, काष्ठोज २ ४%, मासवर्धक द्रव्य (Albuminoids) २ २%, राख ४ ८% प्रभृति द्रव्य होते हे। राख मे सिलिसिक अम्ल, भास्वराम्ल, सुधा, लोह, पोटास और अशत सोडा प्रभृति द्रव्य होते हे।

विशेष विवरण—फूलो मे ६०% एक प्रकार की शर्करा होती है, उसकी शराब जल्दी होती है। फूलो से कुछ अश मे सर्वदा शराव वन जाती है। इस हेतु से पुष्प खाने पर कुछ नशा आता हे।

निम्न कोष्ठ मे शराव कितनी और जल कितना तथा उसे कितने प्रतिशत की शराव कहते है, यह दर्शाया है—

सज्ञा	शराव	जल	उपयुक्त नाम
९९%	९९	१	पवित्र
९०%	९०	१०	औपधि के लिये शुद्ध
७०%	१००	३१	
६०%	१००	५३½	
५०%	५०	५०	आवकारी बिभाग का निर्णीत
४५%	१००	१०५½	
२०%	१००	३५५	

गुण, धर्म और प्रयोग–

महुये के फूल के गुण–मधुर, शीतल, भारी, पुष्टिकारक, बल तथा वीर्यवर्द्धक, और वात तथा पित्त नाशक है।

फल—शीतल, भारी, मधुर, वीर्यवर्द्धक, हृदय को अप्रिय और वात पित्त, तृषा, रक्त विकार, दाह, श्वास, क्षत तथा क्षय नाशक है।

महुये का वृक्ष—मधुर शीतल, कफकारक, वीर्यवर्धक पुष्टिकारक, कषैला, कडवा तथा पित्त, दाह, व्रण, श्रम कृमि दोष और वात का नाश करने वाला है।

महुवे की छाल—रक्त पित्त नाशक, व्रण शोधक और व्रण रोपण है।

तेल के गुण—महुवे का तेल मधुर, पिच्छिल, कषैला तथा कफ, पित्त ज्वर, दाह और पित्त का नाश करता है।

सार के गुण—महुवे के सार की नाश लेने से भूताभिवाधा, कफ और वात दूर होती है। –शा नि

पाश्चात्यमत–महुवे के फूल का रस-रसायन है गण्ड, माला वो वात मे प्रशस्त है। इसके मीठे फूल का निकाला हुआ रस–उष्ण, क्षुधावर्धक और रम नामक मद्य के प्रतिनिधि स्वरूप दिया जाता है। –भा नि

शराब अन्त्र मे पहुंचने पर वहां पर पचन क्रिया सुधारती है। वायु उत्पन्न नही होती एव होने पर भी सरलता से निकल जाती है। तथा मल गाढा हो जाता है। रक्ताभिसरण पर शराब की अति उपयुक्त क्रिया होती है। इससे हृदय की क्रिया बढती है, और उसी समय त्वचागत रक्त वाहिनियो का विकास होता है और देह मे अन्यत्र रही हुई रक्त वाहिनियो का आकुचन होता है। इन दो क्रियाओ का परिणाम ऐसा होता है कि रक्त दवाव बढ जाता है और प्रवाह जल्दी चलता है, शराब से हृदय का प्रत्यक्ष पोषण होता है। यह अति महत्व का लाभ हे।

यूनानी मतानुसार–

प्रकृति—दूसरे दर्जे मे गरम और खुश्क । महुआ (गुले महुआ) बाजीकर, शुक्रल और स्तन्यजनन है। इससे काफी पुष्टि प्राप्त होती है। इसका हलुवा बनाकर खाया जाता है तथा मद्य खीचा जाता है। यह विशेष कर वात विलयन और शीतल वेदनाहर है।

फल—उदरावष्टभकारक और मूत्रजनन बतलाया जाता है। इसकी गुठली के मग्ज का तेल आमवात, कटि शूल आदि दर्दों पर मर्दन करते हैं और इसमे सुहागा मिलाकर दद्रु पर लगाते है। महुए के बीज के मग्ज को आर्तवजनन और सारक वर्णन किया जाता है। उक्त गुणो के लिए इसकी वर्ति या फलवर्ति बनाकर उपयोग करते है।

अहितकर—सिर. शूल जनक है। निवारण—शीतल और स्निग्ध पदार्थ। प्रतिनिधि-वूरए अर्मनी। मात्रा-४-५ तोले से अधिक नही खाना चाहिए।

प्रयोग

हिक्का—महुए के साथ नागकेशर, मिश्री और शहद मिलाकर पिलावें या महुए की पुरानी शराव मे जल मिलाकर आधा आधा घटे पर थोडा-थोडा पिलाते रहने पर हिक्का शमन हो जाता है। एव महुये का रस और शहद मिलाकर नस्य भी कराया जाता है।

रक्तपित्त—महुआ की छाल का अन्तर्धूम दग्ध क्षार मधु के साथ चाटने से रक्तपित्त मिटता है।

चरक चि ४-७९

संग्रहणी—महुआ का स्वरस १६ किलो लेकर मदाग्नि पर उबालें। ८ किलो रस के शेष रहने पर उतार ठडा करलें इसमे २ किलो मधु मिलाकर बरनी मे रख धान्य मे रख देवें १-२ मास के बाद प्रयोग करने से सग्रहणी रोग मिटता है। —च चि. ४-७९

आख के फूले पर–महुये का सार (धड़ को बीच मे से फाड़ने से कत्था जैसा पदार्थ मिलता है, वह सार) शहद मे मिलाकर अञ्जन करें।

—सुश्रुत उ० १२. १२

विशिष्ट योग—

मधूक कन्द–जिस तरह गुलाब के फूलो से गुलकन्द

तैयार किया जाता है, उसी तरह महुये के फूलो की एक तह और मिश्री की एक तह अमृतवान या काच तथा चीनी की बरनी मे भरकर मधुक कन्द बनाया जाता है। मात्रा–१-१ तोला। यह प्रमेह, मूत्रदाह, निर्बलता और अग्निमांद्य पर व्यवहृत होता है।

मधुकादिनस्य—महुये की लकडी का सत्व अथवा फल १० तोले, वच, काली मिर्च, पीपल और सेंधा नमक चारो २॥-२॥ तोले लेकर मिलाकर कपडछान चूर्णकर बोतल मे भर लेवें। कण्ठरोहिणी, कफ प्रकोप, सन्निपात मे कास प्रकोप, मूर्छा और अपस्मार मे सुघाया जाता है। एव इसका उदर सेवन भी कराया जाता है। यह अति निर्दोष और उत्तम औषधि है।

मधुकामृत—महुये के तने को चीरने पर बीच मे से कत्थे जैसा मृदु सत्व मिल जाता है, उसे कूट चूर्ण कर दूध की भावना देकर छाया मे सुखावें। सूखने पर पुन भावना देवे। इस तरह ७ या २१ भावना देने से चूर्ण मक्खन सदृश बन जायगा। फिर चूर्ण से चौगुना शहद मिलाकर अमृतवान या काच की बरनी मे भर देवे।

मात्रा—६-६ माशे। अनुपान—१ तोला गोघृत मिलाकर २१ दिन तक रोज सुबह सेवन कराते रहने से नपुन्सकता दूर होती है। पाचन शक्ति बलवान बनती है तथा वीर्य शुद्ध और गाढा बनता है। —गा औ. र.

पित्तज्वर—महुआ के पुष्पो का फाट पित्त ज्वर मे उपयोगी है। यह ठण्डा और दाह का शमन करता है।

महुआ के फूल, शीवण (गंभारी) की छाल, लालचंदन, घनिया और मुनक्का दाख समान भाग लेकर यवकुटकर फिर इसमे से २ तोला वजन का लेकर फाट तैयार करें। इस फाट मे मिश्री मिलाकर पीने से तृषा, दाह, भ्रम आदि शात होते है। मात्रा–फाट २ से १० तोला।

—आर्य औषध

महाभरी वच (Zingiber Zerumbet)

यह हरितक्यादि वर्ग और सोठकुल (Zingibera ceae) की वनस्पति है। इसकी मूल की गाठ अदरक से बडी होती है और उसका स्वाद अदरक की तरह चरपरा और खुशबूदार होता है मगर इसके स्वाद मे कुछ कडवापन भी होता है। इसके फूल पीले रङ्ग के होते है। इसके बीज काले होते है। इसका पौधा करीब २½ फीट तक ऊचा होता है।

उत्पत्ति स्थान–इसकी भारत मे कृषि की जाती है। यह कोकण मे विशेष रूप से पैदा होता है।

नाम—

स०–स्थूल ग्रथी। हिं०, व०–महाभरीवच। प०–नर कचूर। मल०—काट्टिनजी। ता०—सतापासुपु। कन्नड काल्लुसुठी। ले०—झिंझिबेर झेरम्बेट।

गुणधर्म और प्रयोग—

महाभारी वच सुगन्ध और उग्रगन्ध युक्त है। विशेष करके कफ तथा खासी को दूर करती है, स्वर को उत्तम करने वाली, रुचि को वढाने वाली और हृदय, कठ, मुख को शुद्ध करने वाली हैं। (भा० नि०)।

इसके कन्द का उपयोग अदरक के समान होता है। यह खासी और दमे मे गरम औषधि की तरह दी जाती है। कुष्ठ और दूसरे चर्म रोगो मे भी इसका उपयोग किया जाता है। फुफ्फुस सम्वन्धी विकृति मे भी इसके कन्द को उबाल कर देने से लाभ होता है।

—व० च० से साभार

माजूफल (Quercus Infectoria oliv)

यह माजूफलादि कुल (Cupliferae) के वृक्ष भारतवर्ष मे पैदा नही होते। इसके झाडीदार वृक्ष की आकृति सरू के वृक्ष के समान होती है। इस वृक्ष के फलों मे एक प्रकार की मक्खी के समान नीले रग के कीड़े छेद करके घुस जाते है और उसके गूदा को साफ करके उसमे बच्चे दे देते है। ये बच्चे उसी फल मे बढते रहते हैं और

पूर्ण होने पर निकल जाते है। इसलिये माजूफल के हर एक फल मे एक छेद होता है। किन्तु यथार्थ मे ये फल नही है। वृक्ष मे ही फल से दीखते है। इस कारण इनकी छाल और बीज नही होते। एक विशेष प्रकार की मक्खिया (*Cynips gallel tinctoria*) पतली टहनियो ओर शाखाओ को कुतरकर उसमे अपने अण्डे रख देती है। फिर शाखा मे वेदना या उत्तेजना होकर रस स्राव होता है, जो अण्डे को चारो ओर से घेर लेता है। परिणाम मे वह उन्नाव जितना बडा कृत्रिम फल (Gall) बन जाता है। इन फलो के भीतर अण्डे या भ्रूण का विविध रूपान्तर होता है। जब उसके पंख आ जाने पर वह तोडकर बाहर निकल जाता है, तब रूपान्तर बन्द हो जाता है। जो माजूफल मक्खी निकलने के पहले इकट्ठे किये जाते है, वे उत्तम माने जाते है। छिद्रयुक्त सफेद या हल्के रङ्ग का माजूफल कम गुणवाला होता है। माजूफल का आकार उन्नाव के बराबर और रङ्ग बाहर से पीलापन लिये गहरा हरा और धरातल पर छोटे-छोटे उभार तथा अन्दर से पीला या सफेदी लिये भूरा, मध्य मे किंचित पीला निर्गन्ध और स्वाद मे अत्यन्त कषाय होता है। रग के विचार से ये चार प्रकार के होते है। १ नीला २ काला, ३ हरा और ४ सफेद।

उपयोगी अंग-माजूफल। मात्रा—२ से ८ रत्ती तक।

उत्पत्ति स्थान—यूनान, एशिया माइनर, सीरिया और फारस। वही से इसका आयात भारतवर्ष मे होता है।

नाम—

सं०—मायाफल, मायिफल। हि व०—माजूफल। म०—मायफल। गु०—काटा वाला माया, माया फा०—माजू क—मायूफल। ता०—माचकाय। तै०—माचकाय, मशीकाया कन्नड—मचीकायी मल०—मासीकाय। अ०—अफ्स। ब्राह्मी—पिजा कनीसी। अं०—(oak galls) ओकगाल्स ले०—क्वेर्कस इन्फेक्टोरिया।

रासायनिक संगठन—

इनमे मायाफलाम्ल (गैलिक एसिड (gallic acid)) ६० से ७०% और कषायाम्ल (टेनिक एसिड (Tannic acid) २ से ५ प्रतिशत। ये दोनो अम्ल होते है।

गुण धर्म और प्रयोग—

माजूफल—शीतल, रूखा, कसैला, हलका, अग्नि-दीपक, पचने मे चरपरा, मलरोधक और कफ पित्तनाशक है। [शो नि]

माजूफल—गरम, तीक्ष्ण, शिथिलतानाशक, प्रशस्त और वात विनाशक है। [नि० र०]

माजूफल—वातनाशक, चरपरा, गरम, शिथिलता को सकुचित करने वाला और केशो को काला करने वाला है। [रा० नि०]

यह रक्तस्राव रोधक, श्वेतप्रदर हर, अर्शोघ्न गुणयुक्त भी है।

यूनानी मतानुसार-

प्रकृति—पहले दर्जे मे शीत और दूसरे दर्जे मे रूक्ष, मतातर से दूसरे दर्जे मे शीत और तीसरे मे रूक्ष। गुण कर्म सग्राही, उपशोषण, रक्त स्तभन, कोथ प्रतिबन्धक और बालो को काला करने वाला है।

उपयोग—यह सग्राही और उपशोषण होने के कारण स्वेदाधिक्य को रोकने और स्वेद की दुर्गन्ध दूर करने के लिए माजू के वस्त्रपूत चूर्ण का शरीर पर अवधूलन करते है। अन्त्रव्रण, पुराना अतिसार और श्वेत प्रदर मे इसका आन्तरिक उपयोग करते है। कर्णस्राव मे इसके चूर्ण को कुलफा के रस मे मिलाकर कान मे डालते है। सग्राही और उपशोषण होने के कारण दातो और मसूढो को दृढ करने, उनके रक्तस्राव को बन्द करने और मुख से पानी आने को रोकने के लिये इसको चूर्णो मे डालते है। और अकेले भी काम मे लाते है। इसके काढे से गण्डूष भी कराते है। गल शुण्डिका व कंठशोथ, मुखपाक और दतवेष्ठ के प्रकोप मे इसका अवचूर्ण तथा गण्डूष कराते है। यह किसी कदर कोथ प्रतिबन्धक भी है। अत-एव मुख की दुर्गन्ध को दूर करता है। सग्राही, उपशोषण और कोथ प्रतिबन्धक होने के कारण परिसर्प व्रण, कक्षा और गोश्त खोरा मे यह अवचूर्णन की भाति उपयोग

किया जाता है। सिरके के साथ लेप करने से यह दर्द खालित्य और झाई आदि के लिए गुणकारी है। नेत्रस्राव, पद्मशात और नेत्रगत कण्डू मे इसका अञ्जन [सुरमा] गुणकारी है। रक्त स्तंभन होने के कारण सद्य व्रणों पर इसका अवचूर्णन किया जाता है और नकसीर बन्द करने के लिये इनका नस्य दिया जाता है।

इसी प्रकार अतिरज स्राव, रक्त मूत्र और रक्तातिसार मे इनकी फलवर्ती या पिचुवर्ती योनि मे स्थापन की जाती या इसके काढे की वस्ति दी जाती है तथा चूर्ण वनाकर खिलाया जाना है। गुद भ्रंश, गुदशोथ और गुद व्रण मे इसका अवचूर्णन किया जाता है तथा इसके काढे से गुद प्रक्षालन कराते हैं। यह वालो को काला करता है इसलिये खिजावो (केश कल्प) में प्रयुक्त होता है अहितकर—उर, कठ रोगो के लिये। निवारण—कतीरा, ववूल का गोद। प्रतिनिधि—छोटी मायी और अनार का छिलका। मात्रा—१ से २ माशे तक।

आधुनिक मतानुसार–

नव्य मतानुसार माजूफल मे उत्तम स्तभन, श्लेष्महर, वातनाडी आकुचन, शोणितस्रावरोधक है। एव इसमे विपघ्न और ज्वरघ्न औषधियो के सहायक गुण भी अवस्थित है।

गुण धर्म व प्रयोग–

माजूफल का उपयोग विशेषत. ग्राही और स्तभन गुणो के लिये होता है यह अतिसार, रक्तातिसार, अर्श-प्रदाह, मसूढे की शिथिलता, गुद भ्रंश, योनि भ्रंश, श्वेत प्रदर आदि रोगो मे प्रयुक्त होता है।

जीर्ण अतिसार और संग्रहणी—इसके चूर्ण के साथ दालचीनी मिलाकर शहद के साथ दिन मे दो वार देते रहना चाहिये। यदि उदर मे पेचिस सदृश वेदना होती हो तो चौथाई रत्ती अफीम भी मिला लेना चाहिये। अथवा फाण्ट ४-४ तोले जल मे वनाकर लेना चाहिये।

जीर्ण आमातिसार—माजूफल १॥-१॥ माशे दिन मे तीन वार देते रहने से आन्त्र की शिथिलता और उग्रता दूर होती है, तथा आम प्रकोप शमन होता है।

रक्तातिसार—माजूफल और मोठ का चूर्ण तीन-तीन माशे, घी और मिश्री मिलाकर उसमे से दिन मे ४-४ वार चटाते रहने से दो तीन दिन मे रोग निवृत्ति हो जाती है छोटे वालक को यदि रक्तातिसार हो तो उसे भी वार-वार एक-एक अगुली चटाने पर रक्तातिसार दूर हो जाता है।

वक्तव्य--

रक्तातिसार होने पर आम न गिरता हो और ४-६ दिन हो गये हो, तो माजूफल के चूर्ण मे ¼ रत्ती अफीम मिला देना चाहिए।

अपचन—आमाशय का चिरकारी प्रदाह होने से अपचन वना रहता हो तो वह माजूफल के सेवन से दूर होता है।

जीर्ण सुजाक (पूयमेह)—माजूफल दस-दस रत्ती की मात्रा मे दूध की लस्सी के साथ प्रातःकाल को एक-एक घण्टे पर तीन वार देना चाहिए। इससे मूत्र प्रसेक नलिका पर ग्राही असर पहुचने से पूयस्राव कम हो जाता है। विना कष्ट जव अतिशय पूयस्राव होता रहता है, तव इसका व्यवहार किया जाता है।

जीर्ण-श्वेतप्रदर—माजूफल का चूर्ण १-१ माशा दिन मे दो वार शहद के साथ सेवन कराया जाता है। तथा माजूफल के फाण्ट की उत्तर वस्ति दी जाती है।

योनिभ्रंश—प्रसवावस्था मे योग्य सम्हाल न रहने पर गर्भ कमल शिथिल होकर वाहर निकल आता है उसे योनिभ्रंश कहते है। इस पर माजूफल के फाण्ट की उत्तर वस्ति दी जाती है। एव माजूफल के चूर्ण मे ८ वा हिस्सा फिटकरी का चूर्ण मिला जामुन सदृश पोटली वना, योनि पथ्य मे धारण करायी जाती है। पोटली के साथ लम्वी लटकती डोरी रहनी चाहिए। जिससे पोटली इच्छानुसार वापस खींच सकें। यह उपचार रोग नया होने पर लाभ पहुचा सकता है। प्रसूता को पूर्ण आराम देना चाहिए।

स्तनो पर घाव—स्त्रियो के स्तनो पर घाव हो जाने पर माजूफल का मरहम लगावे। माजूफल को जल मे घिसकर लेप भी किया जाता है। इस तरह माजूफल अन्य

स्थानो के व्रणो पर लगाने से उन व्रणो का भी सकोच करके जल्दी रोपण करता है।

आगन्तुक घाव—शस्त्र जनित घाव पर लगाने से छोटी-छोटी रक्त वाहिनियो के मुख बन्द हो जाते है इनके कुछ अश का सकोच होता है तथा चारो ओर की वात वाहिनियो का आकर्षण होता है। इन तीन हेतुओं से रक्तस्राव पर माजूफल, अनार की छाल और कपूर का चूर्ण लगाने से तुरन्त लाभ पहुचता है।

मसूढो से रक्तश्राव—मसूढे सूजकर उनमे से शोणित स्राव और लालास्राव होने पर माजूफल के चूर्ण का मजन रूप से उपयोग किया जाता है।

गल ग्रन्थि प्रदाह (Tonsillitis)—माजूफल को सिरके मे पीसकर लगाने से वढी हुई गल गन्थियां घट जाती है। इस तरह गल शुण्डिका शिथिल हुई हो तो उसका आकुचन हो जाता है। फिर उससे उत्पन्न शुष्क कास शमन हो जाती है। इसके अतिरिक्त गलग्रथि और गल शुण्डिका पर लाभ पहुचाने के लिये माजूफल के फाट मे फिटकरी डालकर कुल्ले भी कराये जाते हैं। मसूढो मे से रक्तस्राव होता हो तो वह भी कुल्ले कराने पर दूर हो जाता है।

दातो का हिलना—मसूढे शिथिल होने से दात हिलते हो, तो माजूफल, कपूर, सफेद कत्था और फूली हुई फिटकरी का चूर्ण १-१ भाग और सेलखडी का चूर्ण १२ भाग मिलाकर दन्त मजन रूपसे उपयोग करने से दात दृढ वन जाते है।

गुदभ्रंश—वालको के अन्त्र मे उष्णता वढजाने पर गरम गरम पतले दस्त वार वार होते रहते है और गुदा निकल आती है, उस पर वाहर उपचार रूप से माजूफल का चूर्ण लगाते रहे, माजूफल के फाट से रोज धोते रहे और फाट मे कपडा भिगोकर गुदभ्रश पर रखते रहने पर भी जल्दी लाभ पहुच जाता है। खाने के लिये पिप्पल्यादि चूर्ण या इन्द्र जौ का चूर्ण देते रहना चाहिये।

वृषण वृद्धि—माजूफल और असगध को जल के साथ पीस गरम कर लेप करने से वृषण वृद्धि का निवारण होता है।

रक्तस्राव—स्थानिक लेप करने पर जिस तरह बाह्य रक्तश्राव बन्द होता है, उस तरह कफ मे रक्तस्राव, आमाशय या अन्त्र मे से रक्तश्राव, मासिक धर्म मे अतिरिक्त रक्तश्राव, रक्तप्रदर और मूत्र के साथ रक्तस्राव आदि मे इसका उदर सेवन कराया जाता है। माजूफल की क्रिया श्लैष्मिक कला पर अधिकाश रूप मे होती है। जिससे उसका आकर्षण होता है और श्लेष्म का ह्रास होता है। कफ रोग मे जब अधिक मात्रा मे पतला कफ स्राव होता रहता है तब माजूफल और उसके समान काकडासिंगी आदि स्तम्भन द्रव्यो का उपयोग किया जाता है।

स्थानिक शिथिलता सह रक्तप्रदर होने पर उदर सेवन की औषधि के साथ माजूफल के फाट की उत्तर बस्ति भी देते रहना चाहिये।

प्रयोग—

मायाफलाम्ल (Gallic acid)—मायाफलाम्ल सौम्य होने से कोमल प्रकृति के रोगी को निर्भय रूप से दे सकते हैं। राजयक्ष्मा मे उर क्षतज कास, रक्त वमन और रक्त श्राव का निरोध करने के लिये यह हितावह है। मात्रा ५ से १० ग्रेन।

जीर्ण अतिसार रोग मे अफीम मिलाकर देने से सत्वर लाभ पहुच सकता है। अर्श के प्रदाहयुक्त मस्से पर इसका अफीम मिश्रित मलहम लगाने से वेदना शमन हो जाती है और थोडे ही दिनो मे सूजन दूर हो जाती है।

इसके सेवन से स्तन्याधिक्य का ह्रास होता है। एव रक्त प्रदर और श्वेत प्रदर पर स्राव के दमनार्थ इसका व्यवहार किया जाता है। मूत्र मे एल्ब्युमिन (लस्सीका) जाने पर मायाफल के सेवन से अच्छा लाभ पहुचता है। यह जीर्ण प्रमेह रोगो पर उपयोगी है। यदि मूत्र मे रक्त जाता है तो उसे भी बन्द कर देता है। एव वहुमूत्र मे (वार वार) पेशाव अत्यधिक आने पर इसका उपयोग अफीम के साथ किया जाता है।

कषायाम्ल (Tannic acid) के प्रयोग—यह सामान्यत आगन्तुक घाव, रक्तस्राव और क्षतपर सूखे चूर्ण या

मलहम या द्रव रूप मे प्रयोजित होता है। मलहम मे १० प्रतिशत और द्रव मे ३ से ६ प्रतिशत मिलाया जाता है। यह अधिक रक्तस्राव पर अत्यन्त उपयोगी है। इस हेतु से फूटे हुए फोड़े और जीर्ण एव चिरकारी प्रदाह के स्राव को दूर करने के लिये व्यवहृत होता है। शय्याक्षत और जूते मे हुये पैरो के फाले पर ग्लिसरीन के साथ और चूर्ण रूप से भी लगाया जाता हे। त्वचा पर आघात लग जाने आदि किसी भी हेतु से स्राव का ह्रास कराना हो, और फाले या क्षत का रोपण कराना हो तो उन पर उपयुक्त है।

अन्तर क्रिया—मुह के भीतर इसको लगाने से स्थानिक सकोच होता है। शुष्कता आना, जिह्वा और कठ नलिका का अकड जाना तथा प्यास लगना आदि लक्षण उत्पन्न होते है। सब स्थान सकुचित होते हैं, चेतना कुछ कम होती है। मसूढ़े मे से रक्तस्राव, गलग्रन्थि प्रदाह, गले मे घाव हो जाना, ग्रसनिका प्रदाह आदि पर इसके १० से १५ प्रतिशत के कुल्ले कराए जाते है। एव १६% ग्लिसरीन या कषायाम्ल, मधु या जल मे मिलाकर लेप किया जाता है। प्रतिश्याय और नासारक्त स्राव मे इसे सुघाया जाता है, और पिचकारी रूप से भी उपयोग किया जाता है। कषायाम्ल विविध प्रकार के रक्त स्राव पर महोपकारक है। यथा थूक या कफ के साथ रक्त आना, रक्त वमन, रक्तातिसार, रक्त प्रदर और मासिक धर्म मे अतिरज स्राव आदि पर यह अफीम के साथ प्रयोजित होता है। मसूढे मे से रक्तस्राव होने पर उस पर घर्षण किया जाता है। नासिका मे से रक्तस्राव होने पर इसको सुघाया जाता हे। एव बाह्य प्रदेश मे किसी स्थान से रक्तस्राव होने पर इसका स्थानिक प्रयोग किया जाता हे। रोमान्तिका और शोणित ज्वर के बाद बहुधा नासिका से अधिक प्रमाण मे तरल रस या गाढा पूयमय श्लेष्म निकलता है। ये सब रक्त सूखने पर छिद्र रुक जाते है। एव सामान्यत ओष्ठ पर व्युची हो जाता है। उस स्थान को अच्छी तरह साफकर उसपर ग्लिसरीन मिश्रित कषायाम्ल लगा देने से श्लेष्मस्राव बन्द हो जाता है।

व्युची (एक्जीमा) पर—व्युची रोग में ऊपर की पतली त्वचा निकाल प्रदाहमय लाल त्वचा पर ग्लिसरीन मिश्रित कषायाम्ल लगा देने से रसस्राव, लाली, उष्णता और शोथ आदि पर आश्चर्यकारक लाभ पहुच जाता है।

उस स्थान पर रात्रि को पुल्टिस बाधनी चाहिए। यदि कषायाम्ल से दर्द होजाय, तो दिन रात पुल्टिस बाधते रहने से व्युचीकी जलन, खुजली और वेदना सत्वर शान्त होजाती है।

कषायाम्ल कल्प—ग्लिसरीन मिश्रित कषायाम्ल [ग्लिसरिनम एसिडी टेनिसी] १ औंस को उतने ग्लिसरीन मे मिलावे कि मिश्रण ५० औंस तैयार हो दोनो मिला मर्दनकर मिश्रण बना लेवे। मात्रा १० से ३० बूद।

कषायाम्लवर्ति—कषायाम्ल १ भाग और कोकम का तैल ४ भाग लें पहले तैल को गरम करें। फिर उसमेसे थोडे तैल मे कषायाम्ल मिला ले। फिर शेष तैल मिला मर्दन कर शीतल होनेपर १–१ माशे की वर्त्ति बना लेवें।

—गा औ र

विशिष्ट प्रयोग—

माजूफल का मलहम—माजूफल के चूर्ण को ४ गुने धोये घी मे मिलाकर मर्दन कर लेने से मलहम तैयार हो जाता है। यह मलहम स्थानिक आकुचन और रोपण कार्य के लिये हितावह है। यदि इस मलहम मे ९२॥ भाग के साथ ७॥ भाग अफीम का चूर्ण मिला लेवे, तो माजूफल अहिफेन मिश्रित मलहम बन जाता हे। इस मलहम के १०० भाग मे ७॥ भाग अफीम रहती हे। यह वेदना वाले भाग पर लगाया जाता हे। यह मलहम अर्श के मस्से पर वेदना होने पर लगाया जाता है।

माजूफल फाट—१ सेर जल को उबालें। उफान आने पर उसमे १ छटाक माजूफल का चूर्ण डाले। फिर मन्दाग्नि पर ५ मिनट उबाले। नीचे उतार कर ढक देवें। १५–२० मिनट बाद कपडे से छान लेवे। यह फाट कुल्ले करने, व्रण धोने तथा बस्ति और उत्तर बस्ति कराने के लिये उपयुक्त हे।

दन्त मञ्जन—हरड, बहेड़ा, आवला, सोठ, मिर्च,

पीपल, नीलाथोथा भुना, सैंधव, सचर, साभर नमक, पतग लकड़ी का चूरा, माजूफल इन सब को समान भाग लेकर वस्त्र पूत कर रखलेवे। इस मजन को करने से दात वज्र के समान दृढ होते हैं।

यूनानी विशिष्ट योग—

नफूख हाबिसरु आफ [रक्त पित्त पर]–द्रव्य और निर्माण विधि–जलाया हुआ कागज,जलाया हुआ रेशम का वस्त्रखड,जलाया हुआ चमडा,हरामाजूफल,कुदुर,सगजराहत दम्मुल अरख्वैन (खून खरावा, हीरावोल) गिलअरमनी अकाकिया, चक्की की झाडन (गुब्वार आसिया) प्रत्येक समभाग इनको महीन पीस कर वस्त्र पूत करलें।

मात्रा और सेवन विधि–इसमे से एक चुटकी लेकर प्रधमन यत्र मे रखकर नासिका मे प्रधमित करें अथवा वकरी के दूध मे हल करके नासिका मे टपकावे।

गुण तथा उपयोग–नासागत रक्तपित्त [नकसीर] के रोकने के लिये आशु प्रभावकारी एव सिद्ध भैषज है।

सुनून गोश्त खोरा–द्रव्य और निर्माण विधि—जलाई हुई सीप,जलाईप्रवाल शाखा,दम्मुलअरख्वैन(खून खराबा) प्रत्येक २ माशा, हल्दी, हरामाजू, भुनीहुईफिटकरी प्रत्येक४ माशा,भुना हुआ तूतिया ६ माशा,गिल अरमनी३माशा। इन सबको महीन पीसकर कपडछन चूर्ण वनालें।

उपयोग–इसमे से आवश्यकतानुसार मजन लेकर सवेरे और सायकाल दातो पर मलें।

गुण–महाशोथिर (गोश्त खोरा) और मसूड़ों मे खून वहने (दत वेष्टक) मे लाभकारी है।

—यूनानी सिद्ध योग संग्रह

हब्ब पेचिश [प्रवाहिकाहर वटी]–कर्पूर, हरड, माजू, आमला, अहिफेन, केशर, समभाग लेकर अर्क गुलाब मे खरल कर चने समान वटी वनावें। मात्रा-१-१ वटी प्रात, मध्याह्न, साय प्रयोग करें, यदि आत्र मे अशुद्धि हो तो पहिले एरण्ड तेल का प्रयोग रोगी को करा के दस्त आजाने पर इस वटी का प्रयोग करें।

गुण–प्रवाहिका, शूल, मरोड और खून आने मे लाभप्रद है।

संग्राही चूर्ण—माजूसव्ज, सगजराहत, माई छोटी, कत्था सफेद समभाग लेकर कूट छानले। मात्रा २ माशा शीतल जल के साथ प्रयोग करें। गुण—रक्त अतिसार को वन्द करता है।

पीत मञ्जन—अनार का छिल्का, गुलनार, हल्दी, समाक, माजू, फिटकरी भुनी हुई, समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करें।

गुण–दन्त पीडा के लिये उत्तम है, दातो को चमकाता तथा दृढ करता है।

—यू०चि०सा०

मरियाद बेल [Ipomoea Biloba Fossk]

यह त्रिवृत्तादि कुल [Convolvulaceae] की लता विशेषत समुद्र तटवर्ती प्रदेशो मे होती है। मूल लम्बी, मोटी भूरी छालयुक्त। तना-कई, वहुत लम्बे, सछिद्र, ग्रंथिमय, श्यामशीखा युक्त। शाखा निकलती हे वहा जमीन मे नयामूल लगता रहता है। इस तरह लता चारो ओर विस्तृत भाग मे फैल जाती है। पान वकरे के खुरके समान [Goats foot creeper] दोधारे युक्त [द्वि विभाजित] अश्मन्तक वृक्ष के समान दो-दो एकत्र होते हैं। अन्तर पर, मोटे, चिकने, चमकीले, नरम १से २ इच लम्बे, २ से ३ इच चौडे। [सामान्यत लम्वाई से अधिक चौड़े], स्पष्ट शिरा युक्त पान का डण्ठल १ से ४ इन्च लम्बा, चिकना। पुष्प बड़े, सामान्यत. एकाकी, [क्वचित २–३] घण्टाकार, लाल बैंजनी। पुष्पवृन्त–१ से ४ इच लम्बा, फल–गोल, नोकदार। उपयोगी अग–पान और मूल।

उत्पत्ति स्थान–वङ्गाल, उडीसा, मद्रास, बम्बई, सौराष्ट्र, कच्छ आदि मे समुद्र के समीप होती है। मरियाद वेल समुद्र का पानी जहा तक चढता है वहीं तक अपनी मरियादा मे ही होती है। इसलिये इसका नाम मरियाद वेल पडा है। कच्छ काठियावाड मे समुद्र की

भरती को 'वीर' और ओट को 'आर' कहते हैं।

इस 'आर' पर से इसको आरवेल भी कहते हैं। इसका अंग्रेजी नाम [Goeats foot Creper] वकरा की खुरी के समान है इसके पान दो चीरे हुये सिरे पर आते हैं। उडती हुई रेती की रोक करने के लिये यह वेल अति उपयोगी है और इसीलिये इसका नाम सेंड वीडक्रीपर रेती को वाघने वाली वेल ऐसा रखा गया है।

नाम—

सं०—मर्य्यादालता। हिं०—मरजादवेल। दक्षिणी—दोपाती लता। म० गु०—मरजादवेल। पोरवन्दर—आर-वेल। कच्छी—रावरपत्री। वगला—छागल खुरी। कोकनी—मर्य्यादा वेल। मल०—अतम्पा, युवन्नाटम्पु। ता०—आदापुकदी। ओ०—कसारी नाटा। ते०—चेवुला-पिल्ली निगि। ले०—आईपो मोईया पेश कपराई और पुरानी सज्ञा आईपोमिया वाईलोवा है।

गुण, धर्म और प्रयोग—

मरजाद वेल—शीतल, मलरोधक, सारक, भारी, पचने मे चरपरी, वातकारक, गर्भ को आकर्षण करने वाली तथा विमूचिका, शूल, वमन और आम को दूर करती है। —नि० र०

वाहर लगाने मे गाठो और शोथ को दूर करती है। इसको रसरक्त विकार मे देते है। नहरुये पर मूल को जल मे घिसकर लेप करते है।

सूजन और गांठ—पत्तो की पुल्टिस वाधते हैं। सूजन अधिक भाग मे फैली हो तो पानो के रस से चतुर्थांश तेल सिद्ध करके लगाते रहने से लाभ हो जाता है आमवात की सूजन पर पुल्टिस वाधी जाती है। रस लगाया जाता है एव तेल की मालिश कराई जाती है। सूजन वालो को और साधे जकडे हो उनको पत्तो को जल मे उवाल उस पानी से स्नान भी कराया जाता है। कफ प्रमेह पर पत्तो को शक्कर के साथ सुवह शाम सेवन कराने पर कफ प्रमेह दूर हो जाता है।

कर्ण पाक—मर्याद वेल के पानो से सिद्ध किये हुये तेल की बूंदें कान में डालने से पूय दूर होकर कान ठीक हो जाता है।

मरवा (origanum Majorana Linn)

यह पुष्प वर्ग और तुलसी कुल [Labiatae] का मरुवे का क्षुप अधिकतर पीली धूसरी मिट्टी मे अधिक होता है। इसकी ऊंचाई एक फुट से लेकर ढाई फुट तक होती है। पत्ते—लम्बे-लम्बे अगुली की तरह, अत्यन्त सुगधित होते हैं। इसमे तुलसी के समान मजरिया निकलती हैं। जिसकी खुशवू भी तुलसी के समान ही उग्र होती है। वीज—काले गोल छोटे उन्नतोदर होते है। जिस प्रकार तुलसी हिन्दुओ मे पूजनीय है उसी तरह मरवा मुसलमानो मे आदरणीय है। और इसीलिए प्रत्येक कब्र पर इसके क्षुप लगाये जाते हैं। पुष्पकाल शिशिर ऋतु है।

व्यवहार्य अङ्ग—पचाग।

मात्रा-चूर्ण—१ से ६ माशा। वीजक्वाथ ५ से १० तोला।

उत्पत्ति स्थान—यह प्राय. समग्र-भारत मे घरो एवं वगीचो मे लगाया जाता है।

नाम—

स०— मरुवक., मरुत, मरु। हिं०—मरुवा, मरुआ व०—मरुवा। म०—सब्जा मर्वो। गु०—मरवी। ते०—रुद्रजाड। ता०—मरु। कुमाऊं—वन तुलसी। फा०—मर्जगुस। अ०—मर्ज जुम। अ०—[स्वीट मर्ज औरान] ले०—ओरिग्येनम मार्ज ओराना।

गुण धर्म और प्रयोग—

मरुवा—अग्नि प्रदीपक, हृदय को हितकारी, तीक्ष्ण, गरम, पित्तजनक, हलका तथा विच्छू इत्यादि का विष, कफ, वात, कुष्ठ और कृमि नाशक है। पाक और रस मे चरपरा, कडवा, रूखा, और सुगधित है। —भा० नि०

मरुवा—चरपरा, गरम, दीपन, कडवा, तीक्ष्ण, हृदय

मरुवा

MONOCHORIA VAGINALIS PRESL
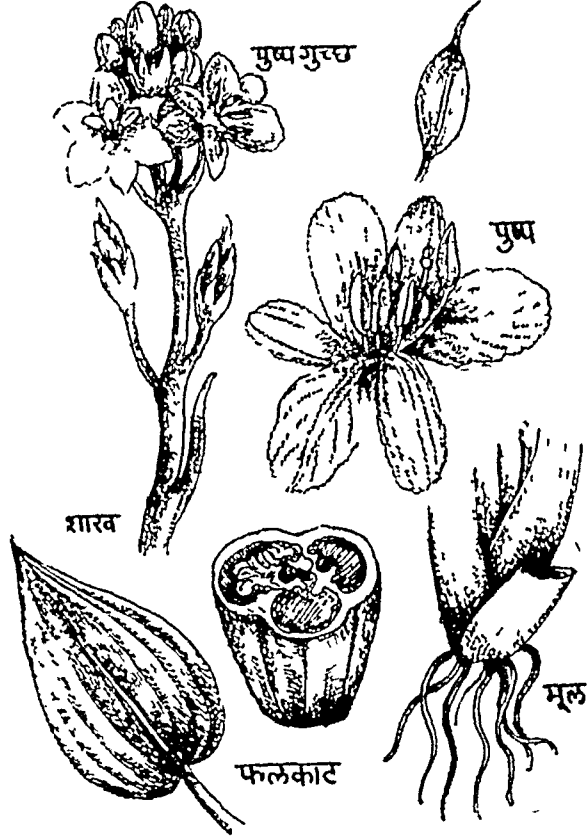
को हितकारी, पित्तकारक, रुचिकारी, रुखा, हलका सुगन्धित, पाचक तथा पित्त, कफ, रक्त विकार, विषम ज्वर कोढ, कण्डू, अरुचि, वात, श्वास, सूजन, कृमि, हृदय रोग, विच्छू का विष, मलवद्धता, पेट का फूलना, शूल, मदाग्नि और त्वचा के विकारो को दूर करता है। नि र

मरुवा श्वेत और कृष्ण इन भेदो से दो प्रकार का है। इनमे सफेद मरुवा औषधि के प्रयोग मे लिया जाता है इसे गुणो मे तुलसी के समान समझें। यह दतशूल और उदरार्ति मे भी लाभकारी है। [कैं० नि०]

पाश्चात्यमते—मरुवा, शीत, स्निग्ध और वायु नाशक है। अन्यान्य कफघ्न औषधियो के साथ यह कफ रोग मे व्यवहृत होता है। यह सुजाक,सदाह मूत्रकृच्छ्रादि रोगो मे व्यवहृत होता है।

हाथ पैरो की सूजन मे इसका प्रलेप हितकारक है मरुवा के क्वाथ मे स्नान मरुआ का धूम ग्रहण करना आमवात मे हितकारक है।

[आर० आन० खोरी भाग दो]

यूनानी मत—

यूनानी मत से मरुवा शान्तिदायक, कफनिस्सारक, यकृत को शान्ति देने वाला, सूजन को दूर करने वाला। मस्तिष्क और आतो के लिए लाभदायक तथा वमन और वेदना को रोकने वाला होता है। यह शराब की बेहोशी को दूर करता है। [ख० च०]

मरेठी [बाबूना] (Matricaria Chamomilla)

यह सेवत्यादि कुल [Compositae] की वनस्पति है। इसको हिन्दी मे मरेठी कहते है। मरेठी के बडे-बडे क्षुप होते है, पत्ते तुलसी के समान और इसमे पीले तथा लाल रग के डोडे लगते है। यह अकरकरे के समान चरपरी होती है।

उत्पत्ति स्थान—गमलो तथा बगीचो मे बोयी जाती है।

नाम—

स०—महाराष्ट्री, राष्ट्री, तीक्ष्णा,मरहट्टिका। हि०—मरेठी, [बाबूना]। म०—मराठी। गु०—मरेठी। फा०—बाबूने गाव, अर०—उकहोवान। ले०—मेट्रिकेरिआकेमोमिला।

प्रयोज्याङ्ग—पञ्चाङ्ग।

गुणधर्म और प्रयोग—

मरेठी—चरपरी, तीक्ष्ण, गरम तथा वात और कफ की पीडा को दूर करती है। [शा० नि०]

उक्त विवरण शालिग्राम निघण्टु भूषण से दिया है। इसके सम्बन्ध मे विशेष जानकारी और चित्र बाबुना गाव के प्रकरण मे देखने का कष्ट करें।

मस्तगी (Pistacia Lentiscus)

यह भल्लातक्यादिकुल (Anacardiaceae) की एक झाडी होती है । जो पिस्टेसिया लेन्टिकस (Pistacia lentiscus) नामक पिस्तावा वुत्म अर्थात् हब्बतुल खजरा की जाति की एक सदा बहार झाडी के तने और बडी-बड़ी शाखाओ मे आड़े चीरा देने या उनको पाछ कर निकाला जाता है । इसके छोटे, गोल, वेकायदा,लवोतरे या अश्रुवत दाने होते हैं । जिनका रग पीलाई लिए सफेद होता है स्वाद किंचित मधुर और सुगधित होता है । यदि इसको खरल मे लोढे से बलपूर्वक रगड़ा जाय तो यह बारीक नही होती, अपितु चिपट जाती है भारत वर्ष मे इसका आयात एशिया माइनर से होता है । इसमे बीस वर्ष तक वीर्य रहता है । यह एक प्रकार का जमा हुआ रालदार गोद है । विशेप परिचय के लिये चित्र अवलोकन करें ।

उत्पत्तिस्थान–तुर्कस्तान, दक्षिण यूरोप, उत्तरी अफरीका, लीवाट, श्याम, रोम तथा अरमीनिया आदि भूमध्यसागर के आस पास के प्रदेशो में होने से इसे रूमी मस्तगी कहते है ।

नाम—

हि —रूमीमस्तगी । भ —रूमा मस्तकी । गु –रूमी मस्तगी । अ —मस्तको, अलकरूमी । फा —कुदररूमी । ले —पिस्तेसिया लेन्टिस्कस

रासायनिक संगठन–

इसमे अत्यल्प प्रमाण मे एक उत्पत् तैल, मस्टिकोनिक और मस्टिकोलिक ये तीन सुरासार विलेय अम्ल, राल, मस्तकीन (मस्टिकीन) १०% जो सुरासार मे अविलेय है तथा एक ओर सुरासार विलेय, राल ३०% ये द्रव्य होते हैं ।

प्रकृति—दूसरे दर्जे मे गरम और खुश्क है ।

प्रयोज्याङ्ग –गोद।

गुण धर्म और प्रयोग—

रूमी मस्तङ्गी–सुगधित, उत्तेजक, कफघ्न, मूत्रजनन, ग्राही हे । फेफडो के रोगो मे कफ अधिक गिरता हो तब ये दी जाती है। इससे श्वास मार्ग की श्लेष्म कला को शक्ति मिलती है। मुख की दुर्गन्ध दूर होती है । दातो को मजबूत बनाती है । आमाशय रस बढाने के लिए मुह मे रखकर उसको चवाई जाती है। (नि आ) यकृदामाशय बलदायक, वातानुलोमन, कब्ज के साथ, मृदुसारक, श्लेष्म नि सारक, दोप तारल्य जनन, श्वयथु विलयन । द्रवाभि शोषण कर्त्ता, लेखन, रक्त साग्राहिक रुधिर स्तभन, विशेपकर मूत्रार्त्तत जनन और विभिन्न अनुपानो के साथ विभिन्न दोषो का विरेचन है ।

उपयोग–

दीपन और वातानुलोमन होने के कारण मन्दाग्नि आदि मे मस्तगी का उपयोग करते हैं । मृदुकरण के निमित्त इसे गुलकद के साथ मिलाकर खिलाते हैं । सूजन उतारने के लिये इसे लेपो मे डालते है । द्रवाभि शोषण कर्त्ता होने के कारण इसे विस्मृति रोग मे उपयोग कराते है । लेखन, सग्राही और रक्त स्तभन होने के कारण इसे मजनो मे डालते है । रक्तस्तभन होने के कारण रक्तष्ठीवन और अन्य अगजात रक्तस्राव मे इसका उपयोग कराते है ।

दोप तारल्य जनन और श्लेष्मनि.सारक होने के कारण खासी को दूर करने और फुफ्फुस प्रणाली के शोधन के लिये इसका उपयोग करते हे । यह गारीकुन के साथ कफ विरेचन, एलुआ के साथ पित्त विरेचन और हरडो के साथ सौदा विरेचन है । लेखन होने के कारण इसे उबटन मे मिलाकर चेहरे पर मलते है ।

अहितकर—गुर्दा के रोगो मे अहितकर है तथा रक्त मूत्र उत्पन्न करता हे । निवारण—सिरका और विलायती मेहदी (मूरद) का रस। प्रतिनिधि–श्वयथु विलयन मे पुदीना । मात्रा १ से २ माशा तक । —यू द्र वि

नोट—रूमीमस्तङ्गी चिकनी होने से पिसाती नही है, श्री यादव जी त्रिकम जी आचार्य का कहना है कि रूमी-

मस्तगी को एक कपडे की पोटली मे बाधकर पानी में डुबो दे। तुरन्त पानी से बाहर निकाल के कपडे से पोंछ देने से सहज ही इसका चूर्ण हो जाता है। हकीम लोग इसका विशेष उपयोग करते है।

यूनानी विशिष्ट योग-

ज्वारश मस्तगी—मस्तगी रूमी २। तोलो, गुलाबअर्क ८ तोले, खाड १ सेर, अर्क तथा खाड को मिला कर पाक करे। पाक सिद्धि होने पर मस्तगी को बारीक खरल कर के इसमे मिला दें।

मात्रा—७ माशे, अर्क सौफ से दें।

गुण—आमाशय के दूषित स्राव को शुष्क करती है, लालास्राव को नष्ट करती है, मूत्र की अधिकता को रोकती है, आमाशय और आत्र को बल देती है।

ज्वारस मस्तङ्गी (बृहत)—मस्तङ्गी रूमी, काली-मिर्च, अजवायन, कबाबचीनी, कृष्ण जीरक शुद्ध, श्वेत जीरक शुद्ध, अनीसून, फूल गुलाब, नारज के ऊपर का छिलका शुष्क, कासनी बीज, सौफ, कुन्दर, धनिया बाद-रज बोया (बिल्ली लोटन) गाऊजवान पुष्प, कचूर, बाल छड,केशर प्रत्येक ५ तोले, दालचीनी,सोठ, छोटी इलायची बीज,प्रत्येक २ तोले,मधु उत्तम सबके समान,खाड़ दुगनी, मधु तथा खाड का पाक करें, बाकी औषध का चूर्ण मिलावें, केशर और मस्तङ्गी को भी औषध के चूर्ण के साथ खरल करें।

मात्रा—५ माशे, अर्क सौफ १२ तोले के साथ प्रयोग करे।

गुण—आमाशय दुर्बलता, यकृत की सरदी, कफज दोष, लालास्राव, मूत्र अधिकता, अतिसार मे लाभप्रद है।

रोगन मस्तङ्गी—मस्तङ्गी ३ तोला, बोतल मे डाल-कर तीन छटाक रोगन जैतून इसमे भर दें और बोतल एक देगची मे जल डालकर उबाले, जब मस्तङ्गी पिघल जाय तो बोतल को निकाल लें और काम मे लावें। तैयार है नीम गरम मालिश करें।

गुण—पट्ठे तथा आमाशय को बल देता है, कटिशूल मे उपयोगी है।

प्रमेह हर [सफूफ सोनफ]—सिंघाडा शुष्क, गोंद कतीरा प्रत्येक ६ माशा, निशास्ता, तालमखाना, नाह-लव मिश्री प्रत्येक ४ माशा, माजू, मस्तगी प्रत्येक तीन माशा, खाड सफेद सबके सम भाग कूट छान कर चूर्ण करें।

मात्रा—५ माशा, दूध के साथ प्रयोग करें, वा जल से।

गुण—प्रमेह, वीर्य का पतलापन तथा शीघ्र पतन में अपूर्व है।

कुरस मस्तगी—ऊदरवाम [अपक्व], मस्तगी प्रत्येक ७ माशा, पोस्त बीरून पिस्ता [पिस्ता के बाहर का छिलका] १४ माशा, गुलाब पुष्प, आमला घन सत्व प्रत्येक १७॥ माशा, सबको कूट छानकर कुरस [टिकिया] बनावें। मात्रा—७ माशा, शीतल जल से।

गुण—वमन तथा हिक्का मे लाभप्रद है।

माजून—कस्तूरी ९ रत्ती, बालछड, छडीला, अगर, मस्तगी रूमी प्रत्येक ९ माशा, कुरफत लतीव १३ माशा, जायफल, कोकनार [पोस्त डोडा] प्रत्येक १८ माशा, भाग पत्र ५ तोला १० माशा, कालादाना सफेद १०० नग, मधु औषधिमान से त्रिगुण, प्रथम औषध को कूटछान कर बादाम तैल से स्निग्ध करें, फिर मधु का पाक करके औषध चूर्ण मिला कर माजून तैयार करें। मात्रा-३ से ९ माशा।

गुण—शीघ्र पतन मे उत्तम है।

माजून रशीदी—बेरका आटा, छालीया,लौग, सहलब मिश्री, बालछड, मस्तगी अजवायन प्रत्येक ३५ माशा, मधु आधा सेर का पाक करके औषध का बारीक चूर्ण करके अच्छी तरह से मिलाकर माजून तैयार करें। मात्रा–६ माशा। गुण–शीघ्र पतन तथा बिन्दु-बिन्दु मूत्र आने मे लाभप्रद है।

माजून फालिज द्रव्य तथा निर्माण विधि—ऊदब-लसा, हब्बबलसा, तगर, ईरसा, रूमीमस्तगी, कलमीतज जरा बिन्द गोल ६-६ माशा, जुन्दबदस्तर, केशर ३-३ माशा, मधुर सुरजान, बोजीदान, बाबूना मूल, सोठ १-१ तोला, हरमल, अकरकरा,लौंग, दालचीनी,जायफल,मिरच,

पिप्पली, कालाजीरा, पान की जड़ १-१ तोला, हरड का मुरब्बा [गुठली निकाला-हरीतकी फल-खण्ड],बीज रहित द्राक्षा प्रत्येक ६-६ तोला, मधु तथा खाण्ड १५-१५ तोला मधु और खाड का अर्क सौंफ [मिश्रेयार्क] मे पाक करे, [मिश्रये अर्क आवश्यकतानुसार ले लेवें], बाकी औषध का बारीक चूर्ण कर पाक सिद्ध होने पर पाक मे मिला लेवें। पीछे उत्तम कस्तूरी ३ माशा बारीक पीसकर मिला दें, तैयार है।

मात्रा तथा अनुपान—३ माशा, मधु या जल से ले।

गुण–वातरोग, वातकफरोग, पक्षवध, अर्द्धाङ्ग आदि मे अत्यन्त उत्तम है।

रेवन्द वटी—सक मूनिया, जलापा, रेवन्द असारा, मस्तङ्गी रूमी, इन्द्रायण का गूदा, मुसब्बर २–२ तोला, सोठ, मुरमक्की १–१ तोला, सबको पीसकर जल से २–२ रत्ती की वटी बनावें।

मात्रा—१ से २ वटी रात्रि को सोते समय दूध वा जल से प्रयोग करें।

गुण—कोष्ठबद्धता नाशक है, यकृत विकारो मे अत्यन्त उत्तम है। आन्त्र का शोधन कर आरोग्य प्रदान करती है, शीघ्र प्रभावी विरेचन है।

यूनानी अन्य योग—

ज्वारश आमला [आमाशय यकृत रोगे]
ज्वारश जरहूनीसादा [बाजीकर]
,, सफरजली मुमहल [आन्त्र आमाशय रोगे]
,, तवासीर [आमाशय-अजीर्ण रोगे]
,, ऊद मुलैयन [मलावरोध]
हब्ब अम्बर मोमयाई [हृदय मस्तिष्क रोगे]
,, मरवा रीदी [श्वेत प्रदरे]
हब्ब मुमस्क [स्तम्भक वटी] [बाजीकर]
,, मोमियाई [क्षीणता निवारणे]
,, नजात [विबन्धे]
,, मक्कल [गुग्गुल वटी] [अर्श रोगे]
खमीरा आबरेशम ऊद मस्तङ्गी वाला [वातिकअर्श]
रोगन गेलानी [इन्द्र लुप्त रोगे]
सनून कलान [मजन] [दत वेष्ट रोगे]
मस्सी मजन ,,
सुपारी मंजन ,,
मुफरह मतहदिल [प्रसूती रोगे]
,, याकूति ,,
,, बगयान [बाजीकर]
,, हारसादा [वात रोगे]
माजून अलकली [वृक्क-मूत्राशय रोगे]
,, बोलस [मस्तिष्क रोगे]
,, तलख [वात व्याधि रोगे]
,, जालीनूस लोलवी [बाजीकर]
,, चोबचीनी [विशेष योग] बाजीकर
,, दीवदल वरद [यकृत रोगे]
,, केशर [वृक्क-मूत्राशय एव यकृत रोगे]
,, कलान [बाजीकर]
,, लना [वात व्याधि रोगे]
,, मक्कवी वाह [बाजीकर]
,, फाईक [शिर. शूले]
,, मुफरह [उदरज उन्मादे]
,, सुकरात [वात कफ रोगे]

—यूनानी चिकित्सा सार [मशाराम शुक्ल]

महामेदा [Polygonatum verticilltaum Allioni]

यह हरितक्यादि वर्ग के अन्तर्गत अष्टवर्ग की एक महौषधि है और इसका रसोन कुल (Liliaceae) है। यह हिमालय मे उपलब्ध आरोही लता जाति की वनस्पति है। आरोही क्षुप पाच फुट से लेकर ६–७ फुट तक लम्बा होता है, मूल से ही लता सीधी ऊपर को निकलती है। लता पीलापन लिए होती है। पत्र काण्ड से ही जुड़े रहते है। एव पत्र आकृति मे भालाकार तथा सूच्याकार होते है। ये पत्र काण्ड से जुडे हुए एव क्रमानुसार होते है।
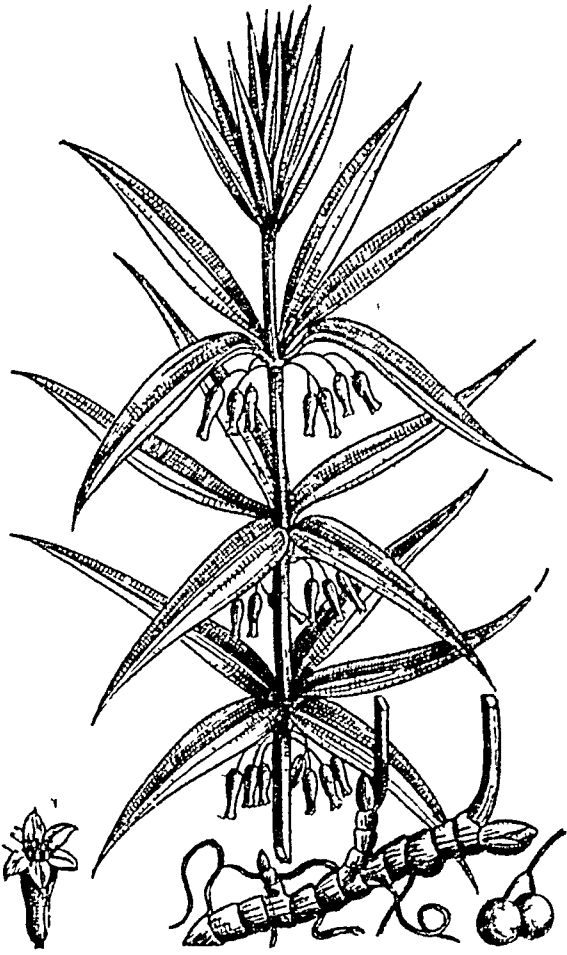
POLYGONATUM VERTICILLATUM MOCNCH

फल-कच्चे हरे वर्ण के तथा पकने पर गोल लाल वर्ण के होते है। मूल-शुष्क आर्द्रक सदृश होती है। कन्द-सुपाण्डुर है। अथवा महामेदा पीलापन युक्त सफेद रङ्ग का होता है। यद्यपि पाण्डुर का अर्थ "श्वेत" भी हो सकता है, पर यहा उसे श्वेत से भिन्न समझना चाहिये क्योकि इन दोनो के भिन्न करने का यही एक भेद है। मेदा और महामेदा दोनो एक ही कुल की वनौषधिया है। महामेदा के म दाग [चिन्ह] होते है, अथवा इतने ही कन्द एक साथ जुडे हुए होते है। महामेदा—मेदा से किंचित बडा होता है। पुष्प काल, फलकाल, ग्राह्य अङ्ग और औषध संग्रह काल मेदा के समान है। विशेष परिचय के लिये चित्र अवलोकन करिये ।

उत्पत्ति स्थान—मेदा के वर्णन मे लिखित उत्पत्ति स्थान ही महामेदा का भी उत्पत्ति स्थान है। विशेषकर गौरीकुण्ड, रामवाडा, मन्दाकिनी छोटी, मसूरी, चकरौता आदि उत्तराखण्ड मे पायी जाती है।

नाम—

स०—महामेदा, देवमणी, वसुच्छिद्रा, विपाण्डुरा, जीवनी, महामेद, सुरमेदा, त्रिदन्ती। हि०, प०, व०, म० गु०, राज०—महामेदा। मन्दाकिनी घाटी उत्तरा खण्ड मे रीगाल वोता। ले०—पोलिगोनेटम वरटिसिलेटम आलिओनी।

गुण धर्म और प्रयोग—

महामेदा—शीतल, रुचिकारक, कफ और शुक्र को बढ़ाने वाली तथा दाह, रक्तपित्त, क्षय, वात और ज्वर का नाश करने वाली है। यह रस और पाक मे मधुर होती है। [रा० नि०]

महामेदा—स्निग्ध, शुक्रजनक, मेदोवर्द्धक, रस और पाक मे मधुर, वात पित्त नाशक है।

नोट—चरक सहिता, अष्टाङ्ग सग्रह मे जहा-जहा मेदा का उपयोग हुआ है। वहा-वहा महामेदा का भी हुआ है अत मेदा के प्रकरण मे उसके समान इसके गुण भी समझ लिये जावे।

माईमूल [Coleus Barbatus]

यह शाकवर्ग और तुलसी कुल (Labiatae) की एक शाक है। माईमूल खेत और वागो मे वोई जाती है। इसके क्षुप होते है। नीचे अगुली के समान जड होती है, इसकी डडी और कन्द दोनो का शाक वनाते है।

उत्पत्ति स्थान—वडोदा, वाम्वे प्रेसिडेसी मे इसकी कृषि की जाती है। यह आलू के समान स्वाद मे होती है।

[वोम्वे गवर्नमेंट ऐग्रीकलचर डिपो. वुलेटिन]

नाम—

स —माकन्दी, बहुमूला, मादिनी, गधमूलिका, एक विशति मूली, श्यामला, गिरिकन्दका, मायिनी, वराहेष्टा हि —माई मूल । व —माद्राणी । म —मायमूले, माईनी मोगिनी, मायणी । गु —गरमल, गरमालु, । ले —कोलियस वारवेटम ।

प्रयोज्याङ्ग शाख और कन्द ।

गुण धर्म और प्रयोग—

माकन्दी या माईमूल—मधुर, तिक्त, कटु, अग्निदीपक रुचिकारक, अल्प वात करक, पथ्य, उदर रोग को दूर करती है । [शा, नि] माई-तिक्त, तीक्ष्ण, मधुर, अग्निप्रदीपक, रुचिकारक, बलकारक तथा प्लीहा, वात, कफ, गुल्म, उदर रोग, आनाह और शीत ज्वर को नष्ट करती है । इसका कन्द पाक मे मधुर, विकाशी तथा पाण्डुरोग और सूजन को दूर करता है । तथा कृमि, प्लीहा पाण्डु गुल्म, सग्रहणी, उदर रोग और बवासीर को दूर करता है । [नि र.]

मातीसूल (Leonotis Neptaefolia R. Br)

यह तुलसी कुल (Labiatae) की वर्ष जीवी वनस्पति है । इसका पौधा ३ फीट तक ऊचा होता है । इसके पत्ते आमने सामने लगते है । ये लम्बे, गोल, कटी हुई किनारो के और रुयेंदार होते है । इसके फूल नारगी रङ्ग के होते हैं जो झुमको मे लगते है ।

उत्पत्ति स्थान—उत्तरी कोकण और भारत वर्ष के गरम प्रदेशो मे विशेष रूप से पैदा होती है ।

नाम—

हि —मातीमूल, हेजुरचेइ ब —हेजुरचेइ । व —माटी जेर, मातीसूल । गु —मातीमूल । म —मातीसूल, दीपमाल, एकरी । सथाल—दरेघोपो, जोनमघोपो । ते —वेरी ले —लीओनोटिस नेपेटीफोलिया ।

गुण धर्म और प्रयोग—

यह वनस्पति ज्वर नाशक और कटु पौष्टिक होती है । इसके पत्तो का काढा अथवा स्वरस नीम के रस के साथ शराव मिलाकर पारी से आने वाले मलेरिया ज्वर मे दिया जाता है । और ज्वर उतरने के पश्चात् शक्ति को फिर मे प्राप्त करने के लिये इसका काढा चालू रखा जाता है । ज्वर मे अगर पेशाव थोडा और जलन युक्त होता हो तो इसके पत्तो के रस मे भुई आवला का रस मिलाकर दिया जाता है । इसके फूलो की राख दही मे मिलाकर दाह और सूखी खुजली पर लगाने के काम मे ली जाती है । इससे बहुत लाभ होता है ।

मेडागास्कर मे यह पौधा ऋतुस्राव नियामक, ज्वरहर, नीद लाने वाला, कडुआ, मृदु विरेचक और शोधक माना जाता है । वहा के लोग ज्वर, चर्म रोग और नष्टार्त्तव की बीमारी मे इसको प्रयोग मे लेते है ।

ब्राजिल मे इसके पत्ते सधियो की सूजन को दूर करने के लिये काम मे लिये जाते है । [ब. च]

माधवीलता (Hiptage madablota)

यह पुष्पवर्ग और माधवी लतादि कुल (Malpighiaceae) की एक बडीजाति की झाडीनुमा वेल होती है जो काष्ठमय अनेक शाखा प्रशाखा युक्त, चढने वाली सर्वदा हरी बहुत लम्बी झाडी, नयाभाग रेशम सदृश रुयेंदार । काण्ड की लकडी पीली । काण्ड कभी-कभी जाघ सदृश मोटा हो जाता है ।

पत्र—चम्पा के समान कोमल और रुयेदार, अभिमुख, चर्म सदृश ४ से ७ इञ्च लम्बे और २ से ३ इञ्च चौडे, अण्डाकार, लम्बे, गोल, तीक्ष्ण नोकदार, अखण्ड चिकने, निम्न और दृढ शिरायुक्त, नोकदार आधार

माधवी-मदमालती-वसंती
HIPTAGE BENGHALENSIS KURZ.
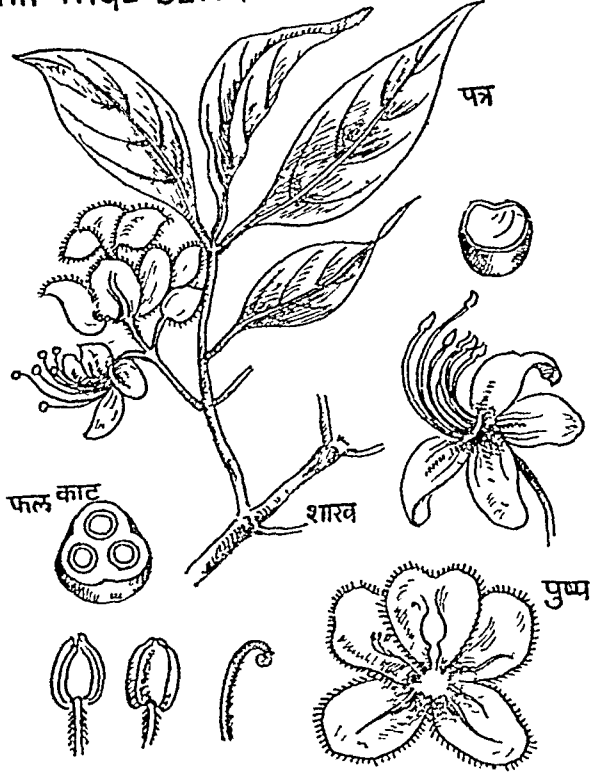
स्थान युक्त। पत्रवृन्त—छोटा रुयेदार। पुष्प—½ से ¾ इन्च व्यास के अति सुगधदार, सफेद, तिल फूलो के समान होते है। और गुच्छो मे आते हे पान जितनी लम्बी रुयदार, मजरी मे। इसके सफेद फूलो पर कुछ पीले रङ्ग के छीटे होते हैं। पुष्प पत्र भालाकार। पुष्प वाह्य कोष दृढ ५ विभाग युक्त सघन रुयेंदार वाहर की ओर झुके हुए। पुष्पान्तर कोष के दल ५, एक पीला, पुकेसर १० उनमे से १ औरो से लम्बा, छाल-पीली, पतली और मुलायम होती है, फल—पक्ष युक्त, पुष्पकाल-फरवरी, मार्च, फल काल अप्रैल, मई, वहुधा इसकी लता मडप के सदृश अपनी रचना करती हे। जिससे उसकी पहिचान सरलता मे हो जाती है।

पुष्प—वसतोद्‌गम से पूर्व ही यह फूलती है फूलने के कारण ही ग्रन्थान्तरो मे 'मधुदूती' 'वसत दूती' नाम दिये गये है, पुष्प हजारो की सख्या मे फूलते हैं, फूलने से पूर्व ही गुच्छो मे जब कलिया रहती है तब वे मुक्ता की तरह भरी हुई दिखाई पडती हैं और पुष्पित होने पर प्रात काल झड जाती है, अत इसका एक नाम विमुक्तक और अतिमुक्तक है, भ्रमर इसको वहुत पसन्द करते है, अत इसे 'भ्रमरोत्सव' भी कहते है। इसकी पुष्पित लता कामदेव को प्रज्वलित करने वाली है, अत इसका 'कामुक' नाम है। पुष्पादि सवके सव चमेली से प्राय मिलते जुलते है।

व्यवहार्य अङ्ग—पत्र, पुष्प और लता।

उत्पत्तिस्थान—सौराष्ट्र, कोकण, पश्चिमीघाट, मद्रास इलाका, कर्णाटक, सीलोन, आवू, सिवालिक, कुमाउन, नेपाल, वगाल, वर्मा, आसाम, अण्डमान, मलायाद्वीप, श्याम चीन, मलाया से फारमोसा और फिलीपाइन तक।

नाम—

स—माधवी, वासन्ती, अतिमुक्ता, भ्रमोत्सव। हि—माधवी, मदमालती, वसन्ती। व—माधवीलता, वोसन्ती गु—माधवी, रक्तपित्तो। म—हलद वेल, पिवली वेल, माधवी। नेपा—चरपरे लहर। पं—वेकोर, चत्रुक, चोयर। सन्ता—सेगकरला। कना—आतिमुर्ति, आदिर्गति, माधवी, वसन्त दुति। मल—सीतामपु। ता—आदिगम, आदिगन्दी। ते—अतिमुतम। ओ—वोशेमालती। कर्णा.—इन्द्रगोच्चे विखन्तिग। अ—कलस्टर्ड हिप्टेज (Clustered Hiptage)। ले—हिप्टेज मैडब्लोटा।

गुण धर्म और प्रयोग—

माधवी रस मे कड़वी, विपाक मे चरपरी, अनुरस कषेला तथा पित्त, कास, व्रण, दाह और शोफ की नाशक है। —रा नि

माधवी शीतल, लघु और त्रिदोष हर है। —भा नि

नव्यमतानुसार—

माधवी की छाल और पान उग्रताप्रद, उष्ण, कडवी, कृमिघ्न, सधानक, त्रिदोषहर तथा पित्त प्रकोप, कास, दाह तृषा, प्रदाह, चर्म रोग और कुष्ठ को दूर करने वाली है मात्रा—क्वाथ २ से ५ तोला। पुष्प चूर्ण १ से तीन माशे।

पानो का रस कृमिघ्न है और फोडे पर लगाने मे अति लाभप्रद हे। प्रदाह पीडित स्थान पामा और कन्दू

पर बारबार इसका मर्दन करने पर प्रदाह दूर हो जाता है।

चिरकारी आमवात और श्वास रोग मे पानो के रस का सेवन हितावह है। एव छाल भी सुगन्धित कडवी आमाशय पौष्टिक रूप से गुण दर्शाती है।

मुलैठी, माधवी फूल का क्वाथ स्त्रियो की स्तन की व्याधि मे लेपन करने से स्तन की कण्डू आराम होती है।

रक्तपित्त मे—माधवी के कोमल पत्तो का घी मे बनाया हुआ शाक रक्तपित्त मे बहुत उत्तम है।

—सुश्रुत

स्त्रियो का कटि प्रदेश—पतला करना हो तो माधवी के मूल का चूर्ण मट्ठे के साथ रोज पीवे।

—चक्रदत्त

गठिया—इसके पचाग को तेल मे सिद्ध करके उस तेल की मालिश करने से गठिया मे लाभ होता है।

दमा—इसके पत्तो को औटाकर इनका क्वाथ पिलाने से दमे मे लाभ होता है।

मानकन्द (Alocasia Indica schott)

यह शाकवर्ग और सूरणादि कुल (Araceae) का कन्द है। इसका क्षुप कन्दमय होता है। कन्द १ से २ फीट लम्बा। काण्ड ८ फीट ऊचा, सुदृढ, १ से ८ इच व्यास का, अनेक प्ररोहिणी शाखायुक्त। पान-२ से ३ फीट लम्बे, तेजस्वी, हरे, श्वेत सिरा युक्त। पत्र वृन्त-पान से लम्बा, पुष्प वृन्त से छोटा, सर्वदा जोडे मे। आच्छादक पुष्प कोष ८ से १२ इच लबा, हलका पीला-हरा कुछ खराब गन्धवाला। स्त्री पुष्प रचना पीली, १ इच लबी। नर पुष्प रचना-सफेद १½ से २ इच लबी। फल—लाल सूक्ष्म। इसकी जड मे एक कद रहता है। यह औषधि के काम मे आता है तथा इसकी साग बनाकर भी बगाल मे खाते है। पुष्पकाल अक्टूबर। फलकाल नवम्बर।

वक्तव्य—मानकद में मीठी और कड़वी दो जातिया होती है। इनमे से मीठी जाति का उपयोग किया जाता है।

उत्पत्ति स्थान—

एशिया के उष्ण प्रदेश मे नैसर्गिक। भारत के अनेक प्रान्तो मे बोया जाता है। बगाल मे यह अत्यधिक होता है।

नाम—

स—मानकद, माणक, महापत्र, महाकद। हि—मानकद। ब—मानकच्चू। म—कासालू। गु—माणकन्द। ले—एलोकेसिया इन्डिका।

मानकन्द
ALOCASIA INDICA SCHOTT.
पत्र
पुष्प
कन्द
मूल
फलकाट
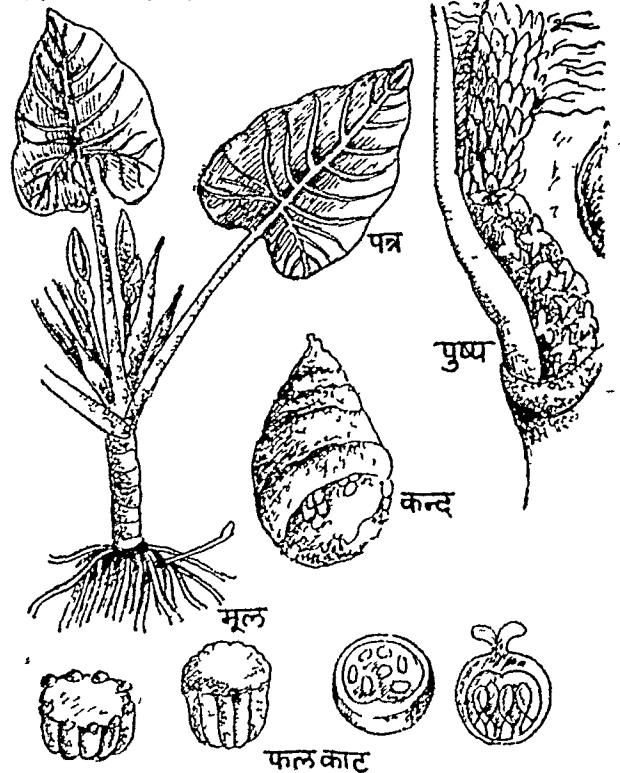
रासायनिक संगठन—

मानकद मे श्वेतसार और चूना मिश्रित ओक्जलिक क्षार मिलता है। यह ओक्जालिकाम्ल के कारण उग्रता दर्शाता है।
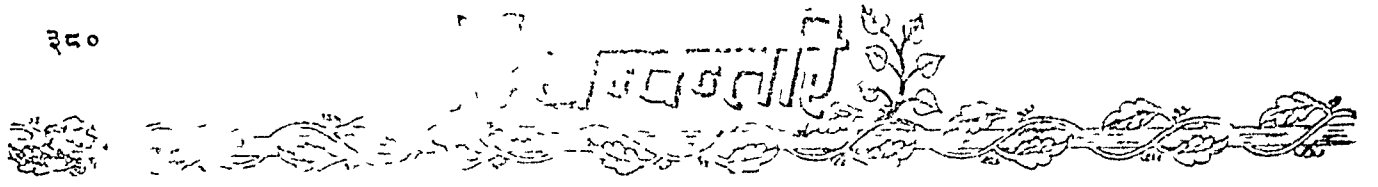
उपयोगी अङ्ग—कन्द ।

गुण-धर्म व प्रयोग—

मानकन्द—सूजन को दूर करने वाला, शीतल, रक्त-पित्त नाशक और हलका है ।

मानकन्द—स्वादिष्ट, शीतल, भारी, सूजन को दूर करने वाला और चरपरा है । --रा नि

मानकन्द—लघु, सुपाच्य और पुष्टिकर व्यञ्जन है, जो दुर्बल रोगियो को तथा जलोदर शोथादि मे दिया जाता है । --क नि

मानकद का उपयोग सुश्रुत सहिता मे हुआ है । बगाल की यह घरेलू औषधि है । कन्द का शाक अर्श और मलावरोध वालो को दिया जाता है ।

उदर रोग—पुराने मानकंद का आटा १ भाग और २ भाग चावल को दूध और जल मे मिला खीर बनाकर देने से वातोदर, शोथ, सग्रहणी और पाण्डु आदि रोग दूर होते है । आचार्य चक्रदत्त ने इसे सिद्ध योग कहा है ।

सर्वाङ्ग शोथ के रोगी को केवल मानकन्द की खीर अथवा चूर्ण का माण्ड देने से मूत्र मार्ग से सग्रहित विकार निकलकर शोथ बहुत जल्दी दूर हो जाता है । नमक का विल्कुल त्याग करा दिया जाता है ।

प्लीहोदर और शोथ—मानकन्द के चूर्ण को दूध मे घोलकर पिलाने से प्लीहोदर और सब प्रकार के शोथ रोग दूर होते है ।

जिह्वा जाडच—मानकन्द भस्म के साथ थोडा नमक और तैल मिलाकर रोज सुबह जिह्वा पर घर्षण करते रहने के जीभ पतली और मुलायम हो जाती है ।

कर्णपाक—पत्र बृन्त अथवा शाखा के टुकडे की सीक का रस निचोडकर २-४ बूद बालको के कान मे डालने से लबे समय का कर्णपाक भी इस उपचार से अच्छा होजाता है । यह ग्राही तथा रक्त स्तम्भक है ।

सन्धिशोथ—ताजे कद को पीस सेक, पुल्टिस बनाकर बाध देने से घुटने और अन्य सधिस्थानो की सूजन वेदना-सह दूर हो जाती है । —गा० औ० र०

सर्वाङ्गीण शोथ को दूर करने मे इस वनस्पति की बहुत कीर्ति है । इसके कन्द को सुखाकर उसका चूर्ण कर चावल के आटे के साथ उबालकर कपडे मे छानकर ४ से २० औस तक की मात्रा मे सर्वाङ्गीण शोथ के रोगियो को देते है और दूसरा कोई खाद्य पदार्थ नही देते । इसके देने से पेशाब की राह से शरीर के भीतर जमे हुए नमक का बाहिर निकलना प्रारभ होता है नमक के शरीर से बाहिर निकल जाने से सूजन की कमी होने लगती है, क्योकि यह मानी हुई बात है कि शरीर के भीतर भागो मे अधिक मात्रा मे नमक जम जाने से ही सूजन की उत्पत्ति होती है । इसीलिये सूजन मे नमक का देना मना है ।

बदगाठ—छोटा मानकन्द ठण्डे पानी मे पीसकर उसका दिन मे ३-४ बार लेप करने से बदगाठ फूट जाती है । —व० च०

मानकन्दमूलादि योग (विद्रधि चि०)—मानकंद के चूर्ण को शहद मे मिलाकर चावलो के पानी के साथ पीने से कष्ट साध्य अन्तर्विद्रधि भी शीघ्र ही नष्ट होजाती है । मात्रा १ तोला ।

मारवेल (Cosmostigma recemosa wight)

यह अर्कादिकुल (Asclepiadaceae) की बडी जाति की बेल होती है जो ऊचे-ऊचे झाडो पर फैलती है । इसके पत्ते मोटे गोल और नोकदार होते है । इन पत्तो के डण्ठल पर छोटी, भूरे रग की गाठ होती है । इसके फूल छोटे और पीले रग के होते है । इसकी जड करीब एक इंच मोटी, फीके भूरे रग की और ऊबड-खाबड होती है । इसके फल बडे और चिकने होते है । औषधि मे इसके पत्ते और जड काम मे आती है ।

उत्पत्ति स्थान—

सिलहट, चिटगाव, कोकण, पश्चिमीघाट, दक्षिणी कर्णाटक और लका मे अपने आप पैदा होती है ।

नाम–

हि०—मारवेल। म०—शेडवेल, मारवेल, मारवीवेल कन्नड–धराहुवू। मल०–वट्टवली। गोआ—वरफूल। ले०–कास्मोस्टिग्मा रेसिमोसा।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसके पत्तो मे व्रण शोधक और व्रणरोपक धर्म रहता है इसकी जड की छाल पित्त द्रावी होती है मगर उसमे आनुलोमिक और स्तम्भन धर्म नही होता। इसके पत्तो को कुचलकर पुराने व्रण और फोडो पर बाधते है।

अपचन रोग मे जबकि रोगी को दस्त साफ नही होता और पित्तभाव युद्धन होने से दस्त का रग फीका रहता है और उसमे गठाने बधी हुई रहती है, अन्न की रस क्रिया बराबर नही होती। ऐसी स्थिति मे इस वनस्पति को तीन रत्ती तक की मात्रा मे देने से बहुत लाभ होता है।

फरमाकोपिया इण्डिका के लेखको ने ऐसे अजीर्ण के रोगियो पर इसकी जडकी छालको ५ ग्रेन की मात्रा मे दिन मे ३ बार दिया, जिसके परिणामस्वरूप उनकी पित्त निस्सारण क्रिया पर बहुत उपयोगी असर पडा। यह औषधि बिना किसी प्रकार का विरेचक प्रभाव बतलाये मल को अपने प्राकृतिक रग मे बदल देती है।

—व० च०

मालती नं० १ (Aganosma dichotoma)

यह कुटजादि कुल (Apocyanaceae) की एक लता होती है। यह वेल हमेशा हरी रहती है। इसकी डालिया रुयेदार पत्ते, जीवन्ती के समान लम्ब गोल, लाल सिरे वाले और फूल सफेद रग के होते हैं। इसके फूलो मे अत्यत खुशबू आती है। गर्मी के दिनो मे ये अत्यन्त मनमोहक रहते हैं। व्यवहार्याग-मूल-छाल और पुष्प।

उत्पत्ति स्थान–

यह बङ्गाल के नीचे के भाग मे, मुगेर, पूर्वी दक्षिण कर्णाटक, गंजाम से रम्पा पहाडो और नेल्लोर, वेलिगोण्डस मे पाई जाती है।

नाम–

सस्कृत–मालती, सुमना, वासन्ती। हिं०–मालती। व,–मालती। म –, गु –मालती। ते –मालती। ले,–एगेनोस्मा डिकोटोमा।

गुण, धर्म और प्रयोग–

यह वनस्पति वमन कारक, कृमिनाशक, कुष्ठ, चर्मरोग, व्रण, सूजन, कान से पीव बहना, मुख क्षत तथा कास मे लाभदायक है। इसके फूल नेत्र रोगो मे लाभदायक होते है और इसके पत्ते—कफ और पित्त को दूर करने वाले होते हैं। इसके फूलो के चूर्ण मे ६ माशे
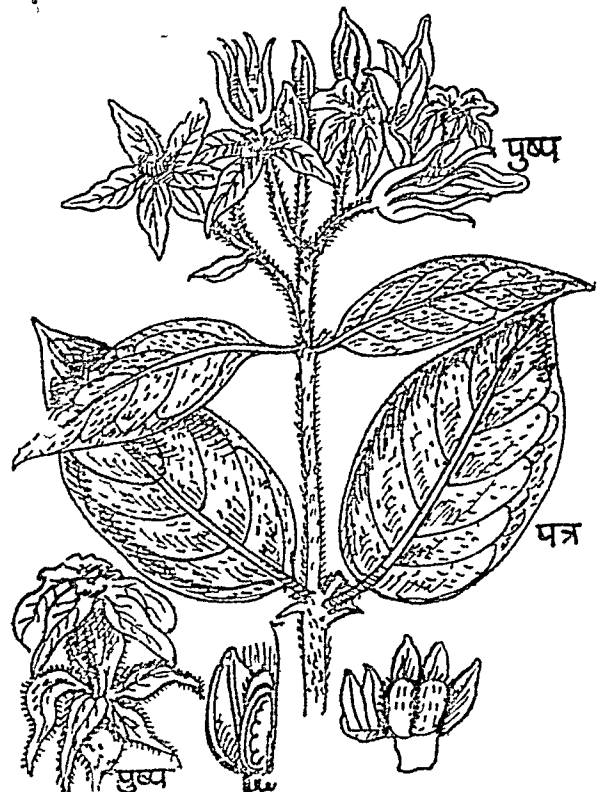
शक्कर मिलाकर लेने से मासिक धर्म मे प्रमाण से अधिक रुधिर का निकलना वन्द हो जाता है। रुधिर दोष और चर्म रोगो मे इसका उपयोग विशेष हितकारी होता है।

—व० चं०।

मालती नं० २ (Aganosma calycina)

यह कुटजादि कुल (Apocyanaceae) की मालती की एक दूसरी जाति होती है।

उत्पत्ति स्थान—ब्रह्मा।

नाम

स०—मालती। ते०पालामल्ली। ले०—एगेनोस्मा-केलिसिना।

गुण, धर्म और प्रयोग—

इसकी लता गरम और पौष्टिक होती है। यह पित्त और रक्त की दूपिता को दूर करती है।

मासपर्णी (Teramnus labialis)

यह गुडूच्यादि वर्ग और शिम्वी कुल (Leguminosae) की उडद की एक जगली जाति होती हे। इसका पौधा, फूल, फल सव उडद के ही समान होते है।

व्यवहार्य अङ्ग-पचाङ्ग।

नाम—

स०—मापपर्णी। हिं०—मषवन, वनउर्दी, जगली उड़द। व०—मापाणी। म०—रानउडीद। गु०—अडवाड, अडद वेल। कर्णाटकी—रानोडिडका उटटु। तैं०—कारुमीनुरु। ले०—टेरामनस लेबियालिस।

गुण, धर्म और प्रयोग—

मषवन—शीतल, कडवी, रूखी, शुक्रजनक, कफकारक, मधुर, ग्राही तथा सूजन, वात, पित्त, ज्वर और रुधिर विकार को दूर करती है। —भा० नि०

मषवन—तिक्त, रसान्वित, वृष्य, दाह, ज्वर नाशक, शुक्रवर्धक, वलकारक, शीतल और पुष्टिवर्धक है। —रा० नि०।

मषवन—महावृष्य, पुष्टिकारक, वलकारक, वलवर्धक वर्ण को सुन्दरतादायक, स्तनो मे दूध उत्पन्न करने वाली केशो को उत्पन्न करने वाली, स्निग्ध, वात पित्त नाशक और शीतल है। —शो० नि०

मपवन—शुक्रवर्धक, वृष्य, कडवी, वलदायक, पुष्टिकारक, शीतल, रूखी, कफकारक, रक्तरोग नाशक, मलरोधक तथा त्रिदोष, ज्वर, पित्त, रक्तपित्त, क्षय, खासी, वात, शोष, दाह, वात पित्त, और रुधिर विकार को हरने वाली है। माषपर्णी की वेल उडद के समान होती है।

मात्रा—चूर्ण ३ माशा।

मूषक विष मे—मापपर्णी, मुग्दपर्णी और निर्गुण्डी इन सवका रस शहद मिलाकर चाटे।

—सुश्रुत क अ ६

वातज लोहीवा मे—जगली उडद के रस मे तैल को पकालेवे। इस तेल मे मुलायम कपडा भिगोकर योनि मे रखने से रक्त जाना मिटता है और मृदु होती है।

वक्तव्य—चरक ने जीवनीय दशेमानियो मे मुग्दपर्णी और माषपर्णी दोनो को गिनाया है, मूग और उडद की यह जगली जातिया है।

मारी का झाड़ (Caryota urens)

यह ताडकुल (Palmae) का वडा वृक्ष होता है। ऊचाई ३० से ४० फीट। पान—१० से २० फीट लम्वे, १० से १५ फीट चौडे और द्वि भग्न होते है। पत्रिका ५ से ६ फीट लम्वी, वक्र और अवनत। पान के विभाग अधिक करके त्रिकोणाकार और किनारे दातेदार होते हे। पत्रदण्ड वहुत मजवूत होता है। ऊपर के पत्रमूल से फूल निकलते

मारी का झाड़
CARYOTA URENS LINN.
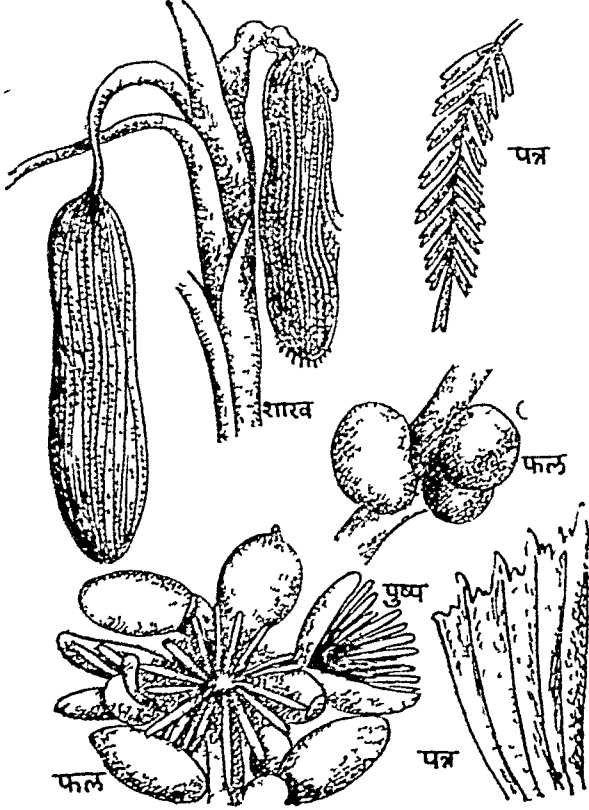
है ।

पुष्पदण्ड–फुट से डेढ फीट लम्बा श्वेत वर्ण होता है किन्तु इन से निकलने वाली पुष्प धारण करने की लटाये या जटाये ८ से १२ फीट तक लम्बी और नीचे झुकी हुई होती है । इन पर तीन-तीन फूलो के झुमके आये हुये होते हे। पुष्पपत्र ⅓ से ⅙ इच गोलाकार होते है । पुष्प मे एक ओर २ नरफूल लम्बे और बीच मे एक मादाफूल जो कुछ छोटा होता है, होते हैं । फल—गोलाई लिए हुये लगभग १ इन्च लम्बा और १ से २ बीज वाला होता है । रग इसका ललाई लिये हुये जामुनी होता है । इसके दो परत अलग होते हे तब आधी सुपारी जैसा दिखाई देता हे । अप्रैल मे फूल और अगस्त मे फल लगते हे ।

प्रयोज्याङ्ग—रस, माडी और फूल ।

उत्पत्ति स्थान—आसाम, पश्चिमी घाट, महाबलेश्वर, बगाल, उडीसा, सिक्कम । साधारणत ६०००|फीट की ऊचाई पर पाया जाता है । उत्तरबग, तिरुहुत, मद्रास प्रेसीडेसी मे भी पाया जाता है ।

नाम–

स०माड, धोजावृक्ष, दीर्घा, मदद्रम, मोहकरी, राजू । हि-मारी, मारीका झाड । म०—अरधी सुपारी, माड, भीरलीमाड, भरेली माड । गु०—शकरजटा, शिवजटा । पोरबदर—भैरवजटा । बगाल—बन खजूर, गोल सागु । बम्बई—बिरली महार । दक्षिण—मारीकाझाड । ता०—कोडापान, अदम । ते० कोडाजिलुगु । उडिया–श्यालोपा । अ०—जग्गेरीपाम, । मलबार–सेगोपाम, हिलपाम, घाटपाम, वस्टर्ड सेगो । ले०—करेओटायुरेन्स ।

गुणधर्म व प्रयोग–

माड स्वाद मे कडवा और शीतल है । प्यास को मिटाता है । वातकारक, श्रमहर, कफ कारक और मादक है । यह अर्ध शिर शूल पर उपयोगी है ।

ताजा रस १ गिलास प्रात काल पिलाने से मृदु विरेचन करता है । इसकी जड से मादक रस निकालने मे आता है उसको माडी कहते है । माडी ऊची जाति की शराब बनाने मे काम आती है । ताजी माडी सारक मानी जाती है । रोक्षवर्ग लिखते हे कि गरमी के मौसम मे इसके अच्छे मूल से २४ घण्टो मे अन्दाजन १०० बोतल माडी निकलती है । यह ताजी हो उस समय पीने मे स्वादिष्ट लगती है किंतु इसमे तुरन्त खमीर पैदा होकर खट्टी हो जाती है । इसकी माडी से गुड बनाया जाता है । पुराने वृक्ष के गूदे से साबूदाने बनाये जाते है । इसके काड के गूदे से गरीब लोग रोटी और काजी बनाते है । इसके बीज बाजार मे सच्ची आधी सुपारी के नाम से बिकते है । यह पानी मे घिसकर आगी शीगी के दर्द पर लगाया जाता है । अदर से सुपारी जैसा ही होता हे ।

मालकांगनी (Celastrus Peniculatus)

यह हरितक्यादि वर्ग, ज्योतिषमत्यादिकुल (Celastraceae) की एक बडी लता होती है। माल कागनी की पराश्रयी लता बहुत लम्बी होती हे और यह ऊचे वृक्षो पर चढ जाती है। किसी किसी वक्त इसकी शाखाये एक दूसरी से रस्सी के समान बट जाती है। इसकी कोमल शाखाये पतली फलियो जैसी लम्बी निकलती है। ये शाखाये बहुत बार ऊपर चढकर फिर नीचे झुकती हुई होती हैं। इन शाखाओ के सिरे पर फूल और फल का भार आता हे तब तो ये ज्यादा नीचे झुक जाती और सामान्य हवा लगने से इधर-उधर झूलती रहती है। यह दिखावा सुन्दर लगता है। मोटी शाखाये भूरी या सफेद रग की होती है, इन पर चीरे पडे होते हे, अन्दर से लाल होती है।

पान—एकान्तर २ से ४ इच लम्बे १ से ३ इन्च चौडे लम्ब गोल, नीचे सकडे, ऊपर चौडे और चमकते हुये होते हैं, पत्र दड के पास पान का किनारा गोलायी लिये होता हे, पुष्प दण्ड—लम्बा।

फूल—१ से ६ छोटे, पीलास लिये हुए हरे रग के चौडाई $\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{4}$ इच की और मधुर सुगध वाले होते हे। पुकेशर ५, स्त्रीकेशर १ होती हे।

फूल—वैसाख-ज्येष्ठ मास मे आते हे और आषाढ-श्रावण मे फल पक जाते हे, ये फल खुलकर इसके अदर से केसरिया रग के बीज जब अपने आप बाहर दिखाई देते हैं उस समय बहुत सुदर लगते है। इनके लाल झुमके लता के नीचे झूलती शाखाओ की शोभा मे अधिक वृद्धि करते हैं। फल-छोटी गूदी के फल के समान पहले हरे और पकने पर पीले रग के हो जाते हे। बीज ३ से ६ होते हैं। बीज $1\frac{1}{2}$ से २ लाइन लम्बे और $\frac{3}{4}$ से १ लाइन चौडे होते है। ये रग और आकार मे मुनक्का के बीज से मिलते हुये आच्छादन से आच्छादित होते हे। यही बीज मालकागनी नाम से बाजार मे मिलते है। इनमे से फीके भूरे रग का तेलिया मगज और पीले रग का तैल निकलता है।

मालकांगुनी
Celastrus peniculatus Willd.

पत्र
फल
कटाफल
शाख
पुष्प

प्रयोज्याग—पत्र, बीज और तैल।

उत्पत्तिस्थान—समस्त भारतवर्ष की पहाडी भूमि मे झेलम से पूर्वीय हिमालय प्रदेश मे ६००० फीट की ऊचाई तक, पूर्व बग, बिहार, आसाम, दक्षिण भारत एव राजस्थान की अरावली पर्वत श्रेणियो मे प्रचुर मात्रा मे होती है। भारत के पडोसी देश ब्रह्मा, लका, मलाया मे भी मिलती है।

नाम—

स०—ज्योतिष्मती, ज्योतिपलता, सरस्वती, पूतितैला, स्फुटबन्धनी, पिण्या, पीततैला, कगुनी।

हि०—मालकागनी, मालकागुनी, मालकौनी, मालकगुनी, मलकोनी, मालटागुन, मालटागुनी, उमिजिनी, मालकागनी। ब०—लताफटकी, मालकागनी। म०—मालकां-

गोनी, काकामर्द्द निका, ककुन्दलीतिड, कंगोनी, पिगावी, पेंगी। पं०मालकागनी मखु। पोरबन्दर—मालकाकनी, मालकान, कनिनवेलो।गु० राज०—मालकागनी। द्रा०—काणि। अवध-मालकाकनी। कुमाऊं—मालकाकनी। मध्य प्रदेश—कहुन्दन रगुन। जामनगर—वलुलुवउ, अति परिच्चम। खानदेश—करिगनुई। दक्षिण—मालकागनी का जतर। को०करडकागोनी, पिगवी। क०—कौनुएरडु, गंगुगे। तं०-वेककुटुनोगे, मलकंगनी, ववज ता०—क्लिगम। सिंहली-डुहुडु। सिरचा०-रुगलिम। उर्दू-मालकागनी।फा०-काल। ज०-हुव्वेकिज किल। अ०--Staff tree लें०--सिलेस्ट्रस पेनिक्युलेटा।

रासायनिक संगठन—

बीज मे ३०%एक गाढा ललाई लिये पीला, तिक्त एवं गधयुक्त तेल, एक तिक्त राल युक्त वीर्य कषायिन और राख ५% होती है।

गुण धर्म और प्रयोग——

मालकागनी—-चरपरी, कडवी, दस्तावर, कफ और वायु को जीतने वाली, अत्यन्त उष्ण, वमनकारक, तीक्ष्ण, अग्निवर्धक, बुद्धि तथा स्मृति को तीव्र करने वाली है।

मालकांगनी -सुस्निग्ध, तिक्त, उष्ण, चरपरी, दस्तावर,कर्पैली, वामक, तीक्ष्ण, मोहकारक, मेध्य, अग्निवर्धक, वर्ण को सुधारने वाली, कफ, वातनाशक, व्रण, विसर्प और पाण्डु रोग की नाशक है। (कै० नि०)

मालकांगनी -चरपरी, कडवी, रुखी, किंचित चरपरी, कफ वातनाशक, दाहजनक अग्नि प्रदीपक और मेधा तथा प्रज्ञाकारक है। (रा० नि०)

मालकागनी—चरपरी, कटवी, अग्निदीपक,, अत्यन्त उष्ण, दाहकारक, मेधाजनक, प्रज्ञाकारक, पुष्टिदायक, वीर्यवर्धक, वमन कारक, तीक्ष्ण, शरीर के रग को उज्जवल करने वाली, कपैली तथा उदरपीडा को हरती है, घाव, पाण्डु रोग और विसर्प को दूर करती है। इसका अर्क-वमनकारक, अग्नि और स्मरण शक्ति को वढाने वाला है।

यूनानी मतानुसार गुण दोष-

तीसरे दर्जे मे गरम और रुक्ष, मस्तिष्क को बलकारी, धारणा शक्ति, वुद्धि, आमाशय, ओज को वलकारी, गठिया, पसली का दर्द, मस्तिष्क सबन्धी स्नायु के रोग, पक्षवध और अर्दित वात को इसका तेल गुणकारक, कफ और वायु के विकार को हरने वाला, कमर पीडा को गुणकारक है। यह उष्ण प्रकृति वालो को और जवान मनुष्यो को हानिकारक है।

प्रतिनिधि—तिल और मधु। मात्रा-१ माशा।

माल कागुनी तेल के गुण—कडवा, दस्तावर, अत्यन्त गरम, तीक्ष्ण, वमनकारक, लेखन, पित्त जनक, स्मरण शक्तिवर्धक, बुद्धिदायक, मेधाकारक, रसायन, अग्निदीपक तथा कफ, त्रिदोष, अनेक प्रकार के वात रोग और गुजली का नाश करने वाला है।

यूनानी मतानुसार—यह तेल गरम और ओज, मस्तिष्क और धारणाशक्ति को वलकारी, गठिया, कमर, और कूल्हे की पीडा को लाभकारी। इसका मर्दन ओज को वलकारी, चालन कर्त्ता, स्नायुओ की ऐंठन और प्राय मस्तिष्क सम्बन्धी रोग जैसे अर्दित, पक्षवध इत्यादि को गुणकारी, हथेली मे इसकी मालिश दृष्टि को वलकारी तथा यह उष्ण प्रकृति वालो के लिये हानिकारक है।

मालकागनी और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान—मालकागनी के बीजो से पाताल यत्र के द्वारा एक प्रकार का काला तेल प्राप्त होता है, जिसको अग्रेजी मे ओलियम नाइग्रम या ब्लेक आइल कहते है। यह तेल आधुनिक चिकित्सा विज्ञान मे बेरी बेरी नामक महा भयकर रोग मे वडा उपयोगी और लाभदायक सिद्ध हुआ है। गत ३०-४० वर्षो मे इस तेल ने इस रोग पर काफी विजय प्राप्त की है।

नोट—माल कागुनी के बीजो से कोल्हू द्वारा तिली के तेलवत् निकाला तेल भी मिलता है और मशीन मे दवाकर भी निकाला जाता है। तथा बीजो को कूटकर पानी मे औटाकर के भी तेल प्राप्त किया जाता है।

इस तेल की मात्रा १० बूद मे ३० बूद तक है। यह औषधि प्रयोग मे अधिकता से आता है। गुणो मे अग्रेजी औषधि "क्रियाजूट" की क्षमता रखता है। इसमे तीव्र मूत्रल और तीव्र जन्तु नाशक शक्ति है। स्वाभाविक दुर्ब-

लता मे रोग के आक्रमण होने पर इस तेल का उपयोग अत्यन्त फलदायक है ।

डाक्टर मुडीन शरीफ लिखते है कि विजिगापट्टम, और एलोर मे मालकागनी की काली जाति का तेल बहुत उत्तम तरीके से तैयार किया जाता हे । यह तेल मूत्र निस्सारक, स्वेद जनक और ज्ञान ततुओ को उत्तेजन देने वाला होता है । बेरी बेरी नामक महा भयकर व्याधि के लिये यह एक उत्तम और सुनिश्चित इलाज हे । अनेक औपधियो का लम्बे समय तक उपयोग करने पर भी जिन बीमारो को कोई लाभ नही हुआ, उनको इस तेल को देने के साथ ही आश्चर्यजनक लाभ दिखलाई दिया । इस औषधि को देने के साथ ही रोगी के पेशाब की मात्रा बढने लगती है । जिससे उसकी सूजन नष्ट हो जाती है । इसी लक्षण को देखकर मैने यह तेल जलोदर के रोगियो पर भी व्यवहार किया और उसका परिणाम अत्यन्त सतोपजनक रहा । इस तेल की मात्रा मूत्र वृद्धि के लिये दस से लेकर तीस बू द तक, पसीना लाने के लिये पाच से लेकर पन्द्रह बूद तक और ज्ञान तन्तुओ को उत्तेजित करने के लिये १० से १५ बूद तक व्यवहार की जाती है ।

मेजर बसु और कर्नल कीर्तिकर लिखते है कि—हम इस ब्लेक आयल (Blaek oil) को गत ३९ वर्षो से प्रयोग मे ले रहे है । शुरू के १५ साल तक तो इसकी चिकित्सा विपयक उपयोगिता का विश्वास हमे नही हुआ किंतु गत २५ सालो से विजिगापट्टम, मछली पट्टम और एलोर से प्राप्त की हुई वनस्पति का प्रयोग करने से हमे यह विश्वास हो गया कि यह बेरी बेरी रोग की सर्वोत्तम औषधि है । डाक्टर हरक्काडस ने जो भी इसके विपय मे प्रशसा की हे उस सबसे हम सहमत हे, बेरी बेरी के कई रोगी जो कि महीनो तक अन्य औपधियो के प्रयोग से लाभान्वित नही हुए थे, ब्लेक आयल के प्रयोग से दुरुस्त हो चुके है। इसका सबसे पहला असर यह होता हे कि यह मूत्र की वृद्धि करता है । इससे जो भी जल की अधिकता होती है वह दूर होना शुरू हो जाती है । इसके बाद और भी दुश्चिन्ह गायब होते नजर आते है । देशी वैद्य इस वस्तु के उपयोग को नही जानते करते हे, वह यह हे कि वे लोग बीमार को खाने के लिये कुछ भी नहीं देते हैं । वे सिर्फ जल और गेहू की बनी हुई एकाध चपाती देकर रह जाते हैं, यह हमारे मत से एक भारी भूल है । बेरी बेरी के रोगी को बहुत पौष्टिक खाने की आवश्यकता रहती है, मैने जलोदर के बीमारो को यह वस्तु बहुत ही सादे रूप मे दी और उसके परिणाम बहुत ही उत्साह जनक रहे ।

फारमाकोपिया इण्डिया नामक ग्रथ मे डाक्टर बेडन पावेल लिखते है कि यह "बेरीबेरी" के लिए सर्वोत्तम औषधि है । सन्धिवात और पक्षाघात मे भी यह उपयोग मे लिया जाता है । इसकी १० से लेकर १५ बूद दिन मे दो बार देने से शरीर पर अत्यन्त उत्तेजक असर होता है और बहुत पसीना आता है । फिर भी कमजोरी बहुत कम आती है । नवीन रोगो मे तो खास तौर से यह असर कारक हे ही पर जब ज्ञान ततुओ की व्याधि और पक्षाघात के चिह्न पूर्ण रूप से दिखाई देते हो तब भी यह खास तौर से फायदा करता है ।

डाक्टर देसाई के मत से मालकागनी कडवी, गरम, उत्तेजक, पसीना लाने वाली, मूत्रल, वातनाशक और चर्म रोगो को दूर करने वाली होती है । इसकी प्रधान क्रिया मस्तिष्क और मज्जाततु पर होती है ।

वातरक्त, आमवात, वातरोग विशेपकर जलवात और चर्म रोगो मे यह बहुत उपयोग मे ली जाती है । इसके तेल की मालिश करने से आमवात की पीडा और पित्त ज्वर की पीडा मे बहुत लाभ होता है । नवीन जल वात रोग मे इसका काला तेल लाभ पहुचाता है । इस रोग मे इसका तेल पाच से लेकर पन्द्रह बू द तक की मात्रा मे दिया जाता है । साथ ही इसके बीज दश की सख्या से शुरु करके क्रमश. बढाते हुए पचास की सख्या तक बढा दिये जाते है । जो सोठ के साथ दिये जाते है । इनसे पहले पेशाब की तादाद बढती है, फिर जल शोथ की मात्रा कम होकर दर्द बन्द होता हे और अन्त मे ज्ञान शक्ति ठीक होती है ।

प्रयोग—

क्षयरोग—इसको चादी की भस्म के साथ सेवन

करने से क्षयरोग मे बहुत लाभ होता है।

जलोदर—इसके काले तेल की दस से लेकर तीस बून्द तक देने से पेशाब की वृद्धि होकर जलोदर का नाश हो जाता है।

मूत्रवृद्धि—इसके तेल को दूध की लस्सी मे डालकर पिलाने से मूत्रवृद्धि होती है।

नाडीव्रण—नासूर और घाव पर इसको लगाना गुणकारी है।

नपुसकता—१०-१० बूंद पान मे लगाकर दिन मे ३ बार खिलाना और घी दूध का अधिक सेवन करना चाहिए।

पाडुरोग—ज्वरयुक्त शोथ मे इसके सेवन से बहुत लाभ होता है।

वातबलासक ज्वर (बेरीबेरी)—में भी इसका तेल दस से लेकर तीस बूद तक की मात्रा मे दिया जाता है। जिसका विवेचन ऊपर हो चुका है।

बुद्धि वृद्धि—२-२ बू द प्रतिदिन इस तेल का सेवन करने से बुद्धि बढती है। २ मास पर्यन्त सेवन करना और पथ्य मे चावल और गाय का घी रखना चाहिए।

अर्द्धाङ्ग वातपर—पहले दिन ५ रत्ती तेल गोदुग्ध मे मिलाकर पिलाना फिर प्रतिदिन पाच-पांच रत्ती बढाते हुये ३० रत्ती तक पहुचा, २८ वें दिन ३० रत्ती की मात्रा से सेवन कर पाच रत्ती घटाते हुए, पाच रत्ती आने पर छोड़ देना चाहिये। लवण वर्जित और दूध जितना पचे सेवन करना चाहिए। —स० बू० चि०

मालकागनी पोमेटम—१ भाग तेल, ७ भाग मक्खन मिश्रित करके इसका पोमेटम बनाते हैं यह पोमेटम मस्तिष्क शुद्धि के लिये प्रसिद्ध है।

विशिष्ट योग—

ज्योतिष्मती पत्रयोग—ज्योतिष्मती (मालकगनी) के पत्र, राई, वच और असना वृक्ष की छाल को ठण्डे पानी मे पीसकर तीन दिन तक पिलाने से स्त्रियों को रजोस्राव (मासिक धर्म) अवश्य होने लगता है।

ज्योतिष्मती गुटिका—१ सेर माल कंगनी को ८ सेर पानी मे पकाइये, जब १ सेर पानी शेष रहे तो उसे छान कर उसमे १-१ पल (५-५ तोले) त्रिकुटा (सोठ, मिर्च, पीपल), हर्र, सोया, वायविडग, चीता, पीपलामूल, अजमोद, वच, कूठ, असगन्ध, देवदारु और शुद्ध वच्छनाग चूर्ण मिलाकर गोलिया बना लीजिये। इन्हे घी और शहद के सेवन करने से समस्त वातरोग नष्ट होते है।

नोट—यदि १ सेर पानी अधिक मालूम हो तो उसे पकाकर गाढा करके चूर्ण मिलाना चाहिये मात्रा १ माशा —भा. भै र.

ज्योतिष्मती तैलम्—अपामार्ग (चिरचिटे) के क्षार के पानी मे सात बार पकाया हुआ मालकागणी का तैल लगाने से श्वेत कुष्ठ मिटता है।

ज्योतिष्मती तैल प्रयोग—१ रत्ती मात्रा से प्रारंभ करके प्रतिदिन १-१ रत्ती बढाकर १ कर्ष (सवा तोले) की मात्रा पर पहुचने तक ज्योतिष्मती (माल कागनी) का तैल पीने से बुद्धि अत्यन्त तीव्र हो जाती है।

तेल पीने के पश्चात् थोडे समय तक नदी या तालाव के भीतर छाती से ऊचे पानी मे बैठना चाहिये।

ज्योतिष्मती तैल द्वितीय प्रयोग—दूध मे मिलाकर माल कागनी का तैल पीने से विरेचन होकर समस्त उदररोग नष्ट हो जाते है।

ज्योतिष्क बीज लेप—माल कागनी के बीजो को पानी मे पीसकर मस्सो पर लेप करने से रक्तार्श (खूनी बवासीर) नष्ट होती हे।

ज्योतिष्मत्यादि लेप—माल कगनी, कलिहारी, काला निसोत, दती, सफेद निसोत, तिल, कूठ, मोथा, वच और मूर्वा। समान भाग लेकर पीसकर लेप करने से भगदर का घाव शुद्ध होता है।

ज्योतिष्मती तैल नस्यम्—पिण्डारा की जड को ज्योतिष्मती (माल कगनी) के तेल मे घिसकर नस्य देने से ज्वर मे होने वाली तन्द्रा का नाश होता है'

ज्योतिष्मती कल्प—आषाढ के प्रथम पक्ष मे इसके उत्तम बीज लेकर तिलो की भाति उन्हे कोल्हू मे पिरवा कर अथवा कूटकर मुट्ठी से या मशीन मे दबाकर उनका तैल निकलवाना चाहिये। इस तेल को समान भाग दूध और चतुर्थांश मधु मिलाकर तेल मात्र शेष रहने तक

मन्दाग्नि पर पकाइये और फिर उसमे थोडा-थोडा कपूर, दारचीनी, और जायफल का चूर्ण मिलाकर मिट्टी के चिकने पात्र मे (अथवा काच या चीनी आदि की बरनी मे) भरकर मुख बन्द करके अनाज के ढेर मे दबा दीजिए। (२१ दिन पश्चात् निकालकर काम मे लाइये।

इसमे से पाच तोले तैल सूर्योदय के समय पीना चाहिये। इसके पीने से मनुष्य बेहोश हो जाता है और जब होश मे आता है तो बेचैनी के मारे चिल्लाता और रोता है। जब तक तैल सात्म्य नही हो जाता तब तक नित्य यही दशा होती हे। इस प्रकार इस तैल को एक मास पर्य्यन्त सेवन करने से मनुष्य श्रुतधर हो जाता हे अर्थात् वह जो कुछ सुनता है वह उसे कठस्थ हो जाता है दो मास सेवन करने से सूर्य के समान काति हो जाती है। तीन मास सेवन करने से उसे देवता भी अपना पूज्य मानने लगते है। चौथे मास मे उसका शरीर अदृश हो जाता है अर्थात् उसे अन्य मनुष्य नही देख सकते।

पाचवे मास मे आकाश गमन की शक्ति प्राप्त हो जाती है। छठे मास मे सिद्ध पुरुषो से भेट होती है सात मास तक सेवन करने से विष्णु के १ दिन के समान आयु प्राप्त होती है और यदि आठ मास तक इसका सेवन किया जाय तो मनुष्य जीवन मुक्त हो जाता है।

नोट—लेखक ने देखा है कि मधुर भाई मुसलमान पेर मे अजमेर होने से वादी समझ १ तोला के करीब माल कागणी का तेल किसी के कहने से पी गया। काम को इस कदर उत्तेजित हुआ कि उसको काबू करना कठिन हो गया। उसे उल्टी करा करके और घी आदि पिलाकर के बडी कठिनाई से काबू किया गया। अत एकदम अधिक मात्रा कदापि नही देवें। अधिक मात्रा विष है। —सपादक

ज्योतिष्मती रसायन—ज्योतिष्मती (माल कागनी) का तैल, घी और शुद्ध आमलासार गधक समान भाग लेकर एकत्र मिलाकर १ रत्ती की मात्रा से सेवन करना आरभ करें और प्रतिदिन १ रत्ती बढाते जायें। इस प्रकार १ मास तक सेवन करे। इस प्रयोग से मेधा वृद्धि होती है। दृष्टि दिव्य हो जाती है तथा यक्ष्मा रोग नष्ट होता है। —भा भै र

मिर्चीलाल (Capsicum Annunum Linn)

यह शाकवर्ग की और कटकारी कुल (Solanaceae) का लाल मिर्ची का पौधा मकोय के क्षुप के समान होता है, फूल सफेद रङ्ग के आते है, फल अपक्व अवस्था मे हरे और पकने पर पीले होकर लाल हो जाते है। जो सारे भारत वर्ष मे हरी हालत मे तरकारी और अचार के लिये और सूखी हालत मे मसाले के लिए उपयोग मे ली जाती है। इसको सब कोई जानते है। इसलिये इसके विशेष विवेचन की आवश्यकता नही। इसकी तीन चार जातिया होती है। एक जाति बहुत पतली होती हे जो बहुत तेज और चरपरी होती है। दूसरी जाति उससे मोटी होती है जो जयपुर और अजमेर की तरफ पैदा होती है। यह बहुत अधिक सुर्ख होती है मगर इसमे चरपरापन कुछ कम होता है। यह सिर्फ शाग बनाने के काम मे आती है। इसमे तेजी या चरपरापन बिल्कुल नही होता।

उत्पत्ति स्थान—

सारे भारत मे इसकी खेती की जाती है।

नाम—

स०—मिरची फला, तीव्र शक्ति, ब्रह्मऋचा, अजडा, कुमऋचा, कटुबीरा, रक्त मरिच। हि०—लालमिरच, लका मिर्ची। ब०—लका मुरिच, लालमरिच बम्बई लाल मिरची। गु०—मिरची। म०—मिरची, लाल मिरची। ता०—मुलागे। ते०—गोलकोदा, मीरापकँया ओत्कली नोकोमरिच। अ०—फिलफिले अह मर। फा०—फिल्फिने [पिल्पिले] सुर्ख। उर्दू—सुर्ख मिर्च। अ०—रेड चिलीज (Red chilies) ले०—केप्सिकम् फ्रूटेसेन्स

रासायनिक सगठन—

इसमे [१] केप्सिसीन नामक एक उत्पत्त क्षारोद,

मिर्चीलाल
CAPSICUM FRUTESCENS LINN.
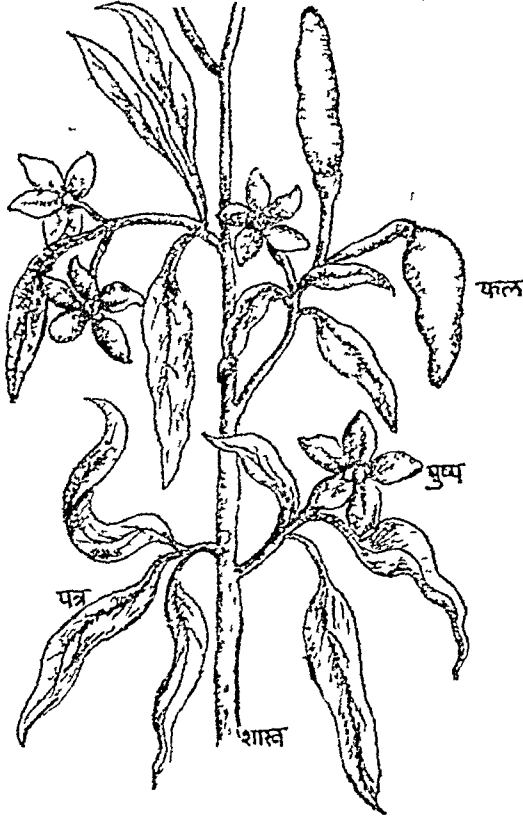
[२] एक स्फटिकीय कटुक पदार्थ केप्सेसीन [३] एक उत्पत्त तैल, [४] एक अनुत्पत तैल, [५] राल, [६] लाल रजन द्रव्य और [७] राख प्रभृति द्रव्य होते हैं। इसकी चरपराहट का कारण इसमे वर्तमान केप्सिसीन नामक रालदार तैल है।

उपयोगी अङ्ग—पत्र और फल।

गुणधर्म और प्रयोग–

लाल मिरच–अग्नि प्रदीपक, दाह जनक, अजीर्ण, विषूचिका, दारुण व्रण, तन्द्रा, मोह, प्रलाप, स्वरभग और अरुचि को दूरकरती है। [शा० नि०]

यूनानी मत से—प्रकृति–तीसरे दर्जे मे गरम और खुश्क। वाहरी तौरपर उपयोग करने से लालमिर्च श्वयथु विलयन, शोणितोत्क्लेशक और सक्षोभजनक है। मुख मे चवाने से यह लाला स्राव को वढाती, अन्त्र और आमाशय पर उद्दीपक एवं वातानुलोमन कर्म करती है। अधिक प्रमाण मे खाने से यह अन्त्र और आमाशय मे सक्षोभ करके रगड उत्पन्न कर देती है, हृदय और वाहिनियो को उत्तेजित करती, किसी प्रकार मूत्रल और वाजीकर भी है। यह विशेष कर दीपन, पाचन और हृदयोत्तेजक है। [यू० द्र० वि०]

प्रयोग –

विच्छूके डकपर–इसको पानी मे पीसकर लगाने से शीघ्र फायदा होता है अगर किसी को साप ने काट खाया हो और वह जाच करना हो कि साप जहरीला था या नही अथवा जिस व्यक्ति को साप ने काटा है उस व्यक्ति पर जहर का असर हुआ कि नही, तो उसे लाल मिरची चवाने के लिये देना चाहिये। अगर उसको जहर का असर हुआ होगा अथवा वह साप विषैला होगा तो वह लाल मिरच उसको विलकुल चरपरी नही लगेगी। अगर चरपरी लगे तो समझना चाहिये कि जहर का असर नही हुआ। मौसम मे होने वाले फोडे फुसियो पर लाल मिरची को तेल मे पीसकर लगाने से वे फौरन भर जाते हैं।

सन्निपात पर–आत्रेय सहिता मे इसके आश्चर्यजनक गुण को वतलाया गया है। "जिसकी देखने की, सुनने की और बोलने की शक्ति नष्ट हो गई हो, जिसकी नाडी डूव गई हो ऐसे सन्निपात के रोगी को मृत्यु के मुख मे से छुडाकर मिरची जीवनदान देती है।

लाल मिरची और हेजा—हैजे के ऊपर भी यह वस्तु वहुत आश्चर्यजनक प्रभाव दिखलाती है। हैजे मे इसको देने का तरीका इस प्रकार है–

लाल मिरची के वीज निकालकर उसके छिलको को वारीक पीसकर कपड़े मे छान लेना चाहिये। इस चूर्ण को शहद के साथ घोट करके २-२ रत्ती की गोलिया वना कर छाया मे सुखा लेना चाहिये। हैजे के रोगी को विना किसी अनुपान एक गोली वैसी की वैसी निगलवा देनी चाहिये। जिस रोगी का शरीर ठण्डा पड गया हो, नाडी की गति डूवती जारही हो और ठण्डा पसीना चल रहा हो तो उसके शरीर मे १० मिनट मे ठण्डा पसीना वन्द हो कर गरमी पैदा होने लगती है और नाडी नियमित रूप से चलने लगती है। इस रोग मे हींग और कपूर के साथ मे

भी लाल मिरची की गोली बना कर दी जाती है।

पेट दर्द—हैजा के अतिरिक्त इसको सोठ के साथ देने से उदर शूल, अजीर्ण और पेट का अफरा मिटता है। मलेरिया बुखार मे इसको कुनैन या सिनकोना के साथ देने से लाभ होता है। दात मे कोचर पडने से अगर दाढ मे बहुत दर्द हो रहा हो और किसी दवा से बन्द नही होता हो तो एक अच्छी पकी हुई लाल मिर्च लेकर उसके ऊपर का डठल और भीतर के बीज निकाल कर शेष रहे हुए भाग को पानी के साथ पीसकर कपडे मे दबाकर रस निकाल लेना चाहिये। यह रस जिस तरफ की दाढ दुखती हो उस तरफ के कान मे दो तीन बूद डालने से दाढ का दर्द तुरन्त दूर हो जाता है। मिर्च का रस कान मे टपकाने से कुछ देर तक जलन होती है। अगर यह जलन जल्दी शात न हो तो थोडी सी शक्कर को पानी मे डालकर उसके २-३ बूद कान मे टपकाने से जलन शात हो जायगी।

लाल मिरची और प्रमेह—लाल मिरची के ½ सेर बीजो मे ६ तोला पानी डालकर रात को भिगो रखना चाहिये। फिर पाताल यन्त्र के द्वारा उनका तेल निकाल लेना चाहिये। उस तेल की १ बूद बतासे मे लेकर दूध की लस्सी के साथ खाने से प्रमेह मे बहुत लाभ होता है।

—जगल नी जडी बूटी

सन्निपातिक ज्वर—लाल मिरची के बीजो का बारीक चूर्ण १० ग्रेन की मात्रा मे १ औंस गरम पानी के साथ दिन मे दो तीन बार देने से सन्निपात और मद्यपान जनित सन्निपात मे आश्चर्यजनक लाभ होता है। —व० च०

श्वान दश पर—कुत्ते के काटे हुये स्थान पर इसको जल मे पीसकर लगाते है। इससे प्रथम तो दाह प्रतीत होता है और द्रवो का उत्सर्ग बहुत होता है। इसके उपरान्त वास्तविक वेदना और मिर्चो का दाह मिट जाता है और जख्म मे पीव नही पडती, अपितु वह बहुत शीघ्र खुश्क हो जाता है। —यू० द्र० वि०

खुजली फुसी पर—शरीर पर छोटी फुसिया हो जाने पर, कडू होने पर मिर्च को तेल मे पीसकर लगाना चाहिए अत्यन्त फायदा होता है। —स्व भागीरथ जी स्वामी

सखिया की भस्म—शुद्ध किया हुआ सखिया १ तोला लेकर उसको हरी मिरची के रस मे १ दिन भर खरल करके टिकिया बनाकर उन टिकियो को छाया मे सुखा लेना चाहिए। फिर कपड मिट्टी की हुई एक हाडी मे मिरची के पौधो को जलाकर की हुई सफेद राख आधे हिस्से तक दबा दबाकर भर देना चाहिए। फिर उस पर उस सखिया की टिकिया को रखकर उसके ऊपर भी हाडी के मुह तक मिरची के पौधो की राख दबा दबाकर भर देना चाहिए। तत्पश्चात् उस हाड़ी को चूल्हे पर चढाकर बेर की लकडी की आच देना चाहिए। दो पहर तक यह आच मद,दो पहर तक मध्यम और फिर दो प्रहर तक तीव्र रहना चाहिए। इस छ पहर की आच मे सखिया की निर्धूम भस्म बनकर तैयार हो जाती है। इस भस्म को ½ चावल की मात्रा मे उचित अनुपान के साथ देने से वायु, कफ और सरदी के अनेक रोग दूर होते है।

—जगलीनी जडी बूटी

मिरच तेल—अनुभूत योग प्रकाश मे डा० गणपति सिंह जी वर्मा लिखते है कि वास्तव मे लाल मिरच विसूचिका के लिए बहुत ही लाभदायक औषधि है। लाल मिरचो के जितने भी योग हमने अजमाये वह सब ही सद्यः फलदायक निकले। उन्ही मे से दो अनुभूत योग नीचे दिये जाते है—

तेल—लाल मिरच सूखी आधा पाव लेकर एक पौड तिल के गरम तेल मे डाल दे जब मिरचे काली पड़जाय तब तक अग्नि पर रखा रहने दे। फिर कढाई नीचे उतार कर उसमे से मिरचे अलग निकाल दें और तेल को कपड़े मे से छानकर शीशी मे भरले। मिर्च तेल तैयार है।

सेवन विधि—प्रत्येक उल्टी और दस्त के बाद इस तैल मे से १ चम्मच पिलाते रहे। २-३ बार देने से ही विसूचिका के रोगी को आराम हो जाता है अनुभूत है।

मिरच गुटी—लाल मिरचें आवश्यकतानुसार लेकर खूब बारीक पीसकर जगली बेर के बराबर गोलिया बना लें और छाया मे सुखाकर शीशी मे भर ले। आवश्यकता के समय १-१ घण्टा के अन्तर से १-१ गोली ७ लौंग के

क्वाथ के साथ देते रहे। विसूचिका की प्रत्येक दशा मे ईश्वर कृपया आप इस साधारण योग को अकसीर पायेंगे —अ० यो० प्र०

अहितकर—उष्ण प्रकृति को। निवारक-दूध और घी प्रतिनिधि-काली मिर्च। मात्रा ४ रत्ती से १ माशा तक।

मिरंजान जोश (Origanum vulgare)

यह तुलसी कुल (Labiatae) की एक वनस्पति होती है। इसका पौधा और इसके पत्ते मरवे के समान ही होते है। इसके फूल छोटे और गुलावी रग के होते हैं। इस सारे पौधे मे एक उग्र गध रहती है। उपयुक्त अङ्ग—पचाङ्ग।

उत्पत्तिस्थान—

यह वनस्पति हिमालय मे काश्मीर से सिक्किम तक ७००० से १२००० फीट की ऊचाई तक मिलती है।

नाम—

हि—मिरजान जोश, साथरा। प और उर्दू—मिरजान जोश। अ—मिरजान जोश। ते—म्रिडुमारु वामु। अ-Common Marjoran कोमोन मारजोरान ले—ओरिजेनम व्हलगेर।

गुण धर्म और प्रयोग

यूनानी मत से इसका पौधा कडवा और उग्र गन्ध वाला होता है। यह सूजन, जुकाम, मस्तक शूल और लकवे मे उपयोगी होता है। इसके पत्ते कर्ण प्रदाह, ब्रोकाइटीज, दमा और रक्त की खरावी मे लाभ पहुचाते हैं इसके फूलो को पीसकर मस्तक पर लेप करने से आधाशीशी मे लाभ होता है। इसका तेल सधिवात मे उपयोगी होता है इसके सारे पौधे से वाष्पीकरण क्रिया के द्वारा एक प्रकार का उड़नशील तेल प्राप्त किया जाता है। सरदी की वजह से जब स्त्रियो का मासिक धर्म रुक जाता है। तब इस पौधे का गरम निर्यास बनाकर देने से वह फिर जारी हो जाता है। इसका तैल उत्तेजक और चर्म दाहक होता है
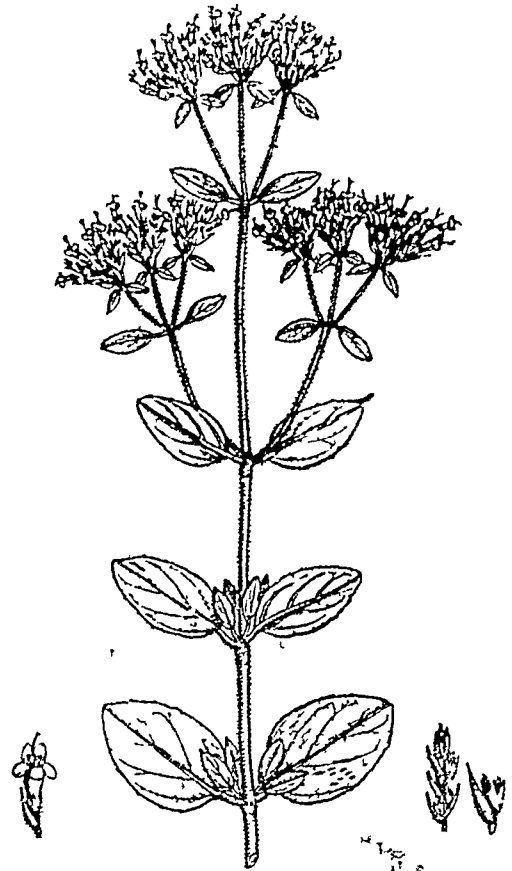
मिरजान जोश
ORIGANUM VULGARE LINN.

यह कालिक (उदरशूल), प्रवाहिका और हिस्टिरिया मे एक उत्तेजक और पौष्टिक वस्तु की तरह दिया जाता है पुराने सधिवात, दन्तशूल और कर्णशूल मे इस तैल का वाह्य प्रयोग लाभदायक होता है। —व० च०

मिश्के तरामशीअ (Ziziphora tenuior)

यह तुलसी कुल (Labiatae) का २ से ३ इच या १ फुटतक ऊचा बहुत छोटा पौधा है। तना काष्ठमय, नीचे की ओर जमीन पर बिछा हुआ, गोल, पतली शाखा युक्त और किंचित रोम युक्त होता है। पत्र—छोटे वृन्ता·

मिस्फेतरामशीश्र
ZIZIPHORA TENUIOR LINN

कृति लगभग वेनोक और लोम रहित, पुष्प—बहुसख्यक बारीक और लोमयुक्त, गध और स्वाद तीक्ष्ण और मनोरम, पिपरमेट की तरह, किंतु उससे मधुरतर होता है। व्यवहार्याङ्ग-पचाग।

उत्पत्ति स्थान—नेफा, फारस और बलूचिस्तान।

नाम—

हि०—(भा० बाजार) मिश्केतराशीअ। अ०—मिश्केतरामशीअ, फूदनज जबली, वकल तुल गजाल। फा—पूदन कोही, पूदन केक। ले०—जिजिफोरा टेन्युइअर। अ०—वाइल्ड थाइम, फ्ली-मिंट।

वक्तव्य—इसकी गध से पिस्सू और मक्खिया भाग जाती हैं, इसलिये इसको लेटिन मे पाली जिअम् (पिस्सू नाशक) भी कहते है।

रासायनिक संगठन—

एक उत्पत्त तेल जिसमे पामी गोन नामक एक कीटोन या सत्व होता है।

उपयुक्त अङ्ग—पचाग।

गुण धर्म व प्रयोग—

प्रकृति—तीसरे दर्जे मे गरम और खुश्क। यह वातानुलोमन, मूत्रार्त्तवजनन और उदर कृमि नाशक है।

इसको अधिकतया आर्तव प्रवर्तन और अमरा एव गर्भ नि सारण के लिए क्वाथ की भाति उपयोग किया जाता है। उदर कृमि नाशन के लिये इसको पान और वस्ति की भाति उपयोग करते है। कर्ण एव नाशिका आदि के व्रणो मे इसका निचोडा हुआ स्वरस डालने से उनमे उत्पन्न हुए कृमि नष्ट होजाते हे। मात्रा ५ से ७ माशे तक।

—यू० द्र० वि०

मुश्कदाना देखो कस्तूरी दाना भाग २

मुखजली (Drosera Lunata)

यह मुख जली कुल (Droseraceae) की बहु वर्ष जीवी क्षुद्र वनस्पति होती है। इसका पौवा ३ से १२ इच ऊचा होता हे। यह पोधा रुएंदार होता है। इसके पत्ते लम्बे चम्मच के समान और फूल पीले होते है। ग्लोमरी आफ इण्डियन मेडिसनल प्लाण्ट्स मे Droscra burmanni, Drosera Indica, Droserapeltata or Drosera Lunata के समान गुण माने हे। साथ ही दोनो के हिन्दी नाम मुखजली ही है। व्यवहार्य अङ्ग—पत्र।

उत्पत्ति स्थान—यह वनस्पति समग्र भारतवर्ष कुमायूं हावडा, वर्धमान, गोघाट छोटा नागपुर के बालुमय या प्रस्तर युक्त जमीन और धान्य क्षेत्रो मे शीतकाल मे होती है। नागपुर मे सर्वत्र पायी जाती है और हिमालय मे १०००० की ऊचाई पर और नील-गिरी मे ८००० फीट की ऊचाई पर पैदा होती है।
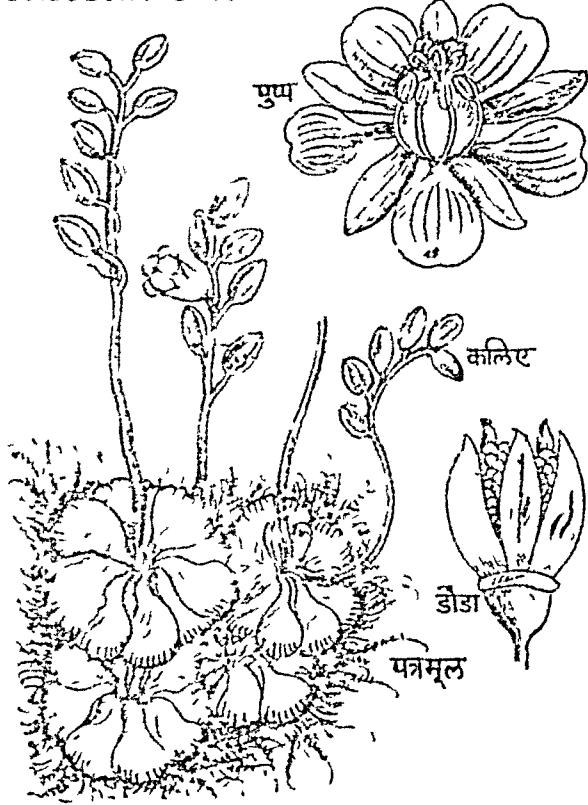
नाम—

हि०—मुखजली। प०—चित्रा। कन्नड-पुप्प कासीस। अ०—पेल्टेटा मड्यू, ले०—ड्रोसेरा ल्यूनेटा।

गुण धर्म और प्रयोग—

इस वनस्पति के पत्तो को कुचलकर उनमे थोडा नमक मिलाकर छाला उठाने के लिए बाधते है। इस वनस्पति के योग से सोने की भस्म बहुत जल्दी और बहुत उत्ताम बन जाती है।

इसके पौधे की राख कुछ लाल रग की होती है और इसमे लोह का काफी अश रहता हे।

मुंजाल (Casearia tomentosa)

यह गुडूच्यादि वर्ग—एव सप्त चक्राकुल (Samydaceae) का वृक्ष होता है। वर्त्तमान मे आयुर्वेद अनुसधान शाला उदयपुर (राजस्थान) के भवन के बायीं ओर मुजाल का वृक्ष है। ठाकुर जयकृष्ण इन्द्र जी ने अपनी वनस्पति वर्णन नामक पुस्तक के पृष्ठ स० २५८ पर लिखा है कि मुन्जाल का वृक्ष १५ से २० फीट ऊचा होता है। इसका काण्ड मनुष्य की साथल (जाघ) के समान मोटा होता है। धड और शाखाओ पर की छाल चिकनी और भूरे धौले रग की होती है। कोमल शाखाओ पर भूरे वालो की रोमावलि आयी हुई होती है। शाखाओ पर ऊपर की छाल के नीचे हरे रग की और इसके नीचे धौली छाल देखने मे आती है। मूल और धड की लकडी मजबूत होती हे।

पान—३ से ५ इच लम्बा और १ मे २ इच चोडा होता हे। पान लम्ब गोल और इनकी कोर पर करोत के दातो के समान दाते होते है। पान के दोनो तरफ भूरे वालो की रोमावलि आयी हुई होती है। नीचे की ओर विशेष होती है। पान के अन्दर की नमे ऊची चढती हुई पान के कोर की ओर गयी हुई होती है किन्तु ये कोर तक पहुची हुई नही होती है। पान का टोरवा मोटीअणी वाले होते हे। कभी गोल और कभी अन्दर वैठते खाचे वाले होते हैं। फल—पत्रकोण से अथवा गिर पडपान के कोने पर छोटी गाठ वधकर उन पर फूल निकले हुये होते हैं। फूल हरे रग के और उन पर वालो की रोमावलि आयी हुई होती है। पुकेसर ८ होते हैं। स्त्री केसर बीचो-बीच हरे रग की रोमावलि मे भरी हुई होती हे। फूल का व्यास १½ से २ लाइन जितना होता हे।

फूल—फाल्गुन-चैत्र मे आते हैं। फल—वैशाख,

जेष्ठ मे पक जाते हैं।

फल—कच्ची अवस्था मे हरे, चिकने और चमकते हुए होती है और उन पर सफेद वालो की अच्छी रोमावलि होती हे। फल का आकार हरड से मिलता हुआ होता हे। फल ३/४ इच से १ इच लम्बा और १/४ से १/२ इच चौडा। जब यह पकता है तब मालकागनी के फल की तरह अलग हो जाता हे और इसमे लाल रग का गूदा दिखायी देता है। इस गूदे मे बीज आये हुए होते है।

उपयोगी अङ्ग—पान, मूलत्वक और त्वक्।

उत्पत्ति स्थान—पहाडी जमीन मे इसके वृक्ष उगते है। यह हिन्द के अधिकतर भागो मे होता है।

नाम—

स०—सतगण्ड। हि०—मुजाल, चीलर। पोरवदर—धौलोउम। गु० मुँजाल। म०—मर्सइकरई। ते०—गाम गादु। सथाली—कर्क। ले०—केसिएरिया टोमेन्टोसा।

गुणधर्म और प्रयोग—

गुण—जन्तु नाशक और दाहक।

रोक्सवर्ग लिखते है कि पश्चिम भारत मे इसको यकृत्वृद्धि और अर्श रोग पर विशेष लाभकारी माना जाता है। छाल ६० से १२० ग्रेन १ पाइन्ट जल मे सिद्ध करके ५ तोला शेप रहने पर उतार छानकर दिन मे ३ वक्त सेवन करावे और मूलको पीसकर अर्श की वली पर लेप करने से अर्श आराम होता है। छाल का क्वाथ सेवन करने से यकृत की शक्ति वढ जाती हे। इसकी जड मे ७ पदार्थ है यह बहुमूत्र रोग की एक उत्कृष्ट दवा हे। मूल का अरिष्ट १० से २० वूद तक सेवन करने से पुरानी यकृत की व्याधि मिटती है।

(वनस्पति वर्णन गुजराती, भा वा वगला)

पूज्य त्रिवेदी ने भा० ३ के पृष्ठ १०८ पर चिल्ला न० १ (*Casearia tomentosa*) का वर्णन और चित्र दिया है और वर्णन मे झाडीदार क्षुप वर्णन किया है जवकि यह वृक्ष है। गुजराती मे इसको धौलो उम और हिन्दी मे मुन्जाल कहते है और पहाडी जमीन मे यह होता है। विशेप वर्णन चिल्ला न० १ के प्रकरण मे देखे।

पहली मुखजाली वनस्पति मुखजाली कुल की है, जवकि मुजाल वनस्पति सप्त चक्राकुल की है। दोनो भिन्न वनस्पतिया है।

मुचकंद (pterospermum suberifoliumLinn.)

यह पुष्प वर्ग और मुचकन्दादि कुल (Sterculiaceae) का मध्यम कद का मुचकद का प्रसिद्ध वृक्ष होता है। इसकी छाल लम्बी उतरती है। छाल का वर्ण लाल होता है। छाल काटने पर लाल वर्ण का स्राव होता है कपडे पर लगने पर भी लाल दाग होते है। शाखा प्रशाखाये घनी और वहुत होती है। पत्र-इसके पत्ते वडे और अखरोट के समान होते है। पत्र २ से ४ इच लम्बे, पत्र मूल के पास गोलाकार, अगला शिरा लवा डिम्बाकृति, सूक्ष्म लोमयुक्त, नीचे की ओर रूयेदार श्वेत वर्ण अयवा कुछ पीत वर्ण, ४-५ कोन युक्त, ऊपर की ओर से कुछ हरे रग के, नीचे की तरफ रुयेदार तथा तरह-तरह की आकृति के होते है। पान वडे और सुन्दर होते है।

पुष्प-रग।। फूल श्वेत वर्ण, सुगन्ध युक्त, पीतरग मिश्रित उभयलिंग विशिष्ट। वहिर्व्वास लम्बा, लोमावृत ४-५ इच लम्बा, १/४ से १/२ इच विस्तृत। बीज कोप २-३ इच लबा व्यास ३/४ इची, बीज पक्षयुक्त अनेक होते है। फूल भी सुन्दर और वडे होने से गोरख इमली के समान गोल-गोल किंतु उसमे छीटे होते हैं। फल-लम्वे वडे होते है वे तोरी कीतरह चार उभारो से युक्त होते हे। अन्दर बीज वहुत होते है। इसके वृक्ष रास्ते के दोनो ओर लगाये जाते है। फूलने का समय-दिसम्वर मास। फल पकने का मे एक वर्प का समय लग जाता हे।

औषधि मे पत्र और फूल लिये जाते है। बाजार मे इसके फूल मिलते है।

उत्पत्ति स्थान—

उडीसा के जगल, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, ब्रह्मा तथा भारत मे सर्वत्र मिलता हे।

मुचकन्द
PTEROSPERMUM SUBERIFOLIUM LAM.
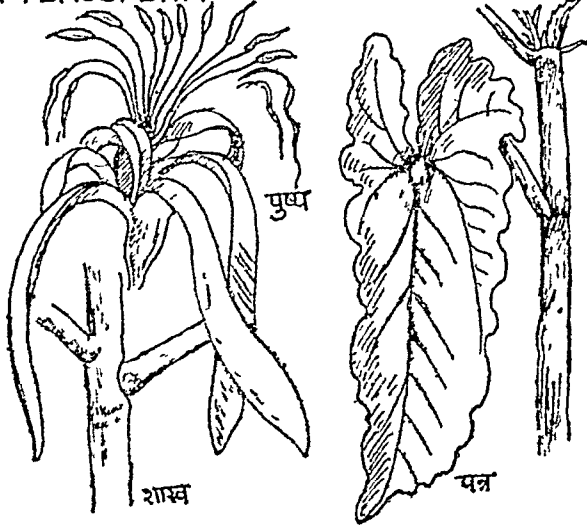
नाम—
स०—मुचकद, छत्र वृक्ष। हि०—मुचकद। गु०, ब०, म०—मुचकन्द। ता०—सेम्बोलऊ। ता० लोलेवू। ब०—मुचकद चांपा। फा०—गुलेमुचकुन। ल—टेरोस्प रमम सुबेरिफोलियम।

रासायनिक संगठन—
फल मे एक सुगधित उत्पत्त तेल होता है। इस तेल का प्रधान धर्म वेदनानाशक होता है।

गुण, धर्म और प्रयोग—
यह रस मे कटु, तिक्त, वीर्य उष्ण, विपाक-कटु, दोपघ्नता- त्रिदोष।

मचकन्द—चरपरा, कडवा तथा कफ,खासी, कठ रोग, त्वचा रोग, सूजन, व्रण और पामा रोग विनाशक है।
—शा० नि०

मुचकद—शिर की पीडा, रक्तपित्त और विष विनाशक है। —भा० नि०

मुचकन्द—चरपरा, गरम, कडुआ, स्वर को सुन्दर करने वाला, कफ, खासी, त्वचा के विकार, सूजन, त्रिदोष शिर दर्द, पित्तविकार, रक्तविकार नाशक है।—नि० र०

यूनानी मतानुसार—
प्रकृति-गरम और खुश्क। अर्शोजात रक्त वन्द करने के लिये समपरिणाम वारीक किया हुआ मुचकद, घी और चीनी का हलुआ गुणकारी है। सर्दी के शिरः शूल मे यह जल के साथ पीसकर मस्तक पर लेप किया जाता है। यह विशेप रूप से अर्शोजात रक्त स्तभन है।

अहितकर—उष्ण प्रकृति को। निवारण—काहू का तेल। मात्रा—७ माशे से १ तोला तक। —यू० द्र० वि०

प्रयोग—
शिर.शूल मे—शिरदर्द मे मुचकद का फल काजी मे पीसकर ललाट पर लगाने से सिर पीडा मिटती है।
—चक्रदत्त

बवासीरमें—इसके फूलो के चूर्ण को घी और शक्कर के साथ हलवा बनाकर १तोले की मात्रा मे प्रतिदिन खाने से ववासीर से खून गिरना बन्द हो जाता है। —व० च०

गुद भ्रंश पर—मुचकन्द के फूलो की राख लगाने से मिटती है। —वनौषधि गुणादर्श

मुलेठी (Glycyrrhiza glabra)

यह हरितवयादि वर्ग और शिम्बीकुल (Leguminosae) का एक गुल्म वहुवर्प जीवी होता है। मुलेठी का क्षुप ५ से ६ फीट ऊचा होता है। इसका क्षुप देखने मे कसौंदी के समान। इसकी जड-लम्वी गोल एव फैली हुई होती है। इसके पत्ते कसौंदी के पान से सकडे और सयुक्त छोटे छोटे गोल होते है। पत्र-पत्र दड के दोनो ओर समान्तर भाव से पत्रिका पक्षाकर ४ से ७ जोडें मे और अग्रभाग मे एक पत्र होता है।

फूल—इसका फूल लाल रग का होता है। इसमे छोटी और वारीक फली लगती है जिसमे २ से ५ तक

बीज होते है। चुक्रोईड्रगफार्म (जम्बू-काश्मीर) मे इसकी खेती होती है। ४ वर्ष बाद मूल को खोद लिया जाता है। परन्तु मूल निकालने के बाद भी कुछ श श जमान मे रह जाता हे उसमे से नया क्षुप पैदा होजाता है और खेत को छा देता है। जड पीले रग की और खुरदरी होती है। इसका स्वाद मीठा, कुछ चरपरा और कडवा होता है। इसकी गव अच्छी नही होती। इसके मार्च मास मे फूल और अगस्त मास मे फली आती है। मुलेठी की मुख्य दो जाति होती है। एक जल जाति देशो मे पैदा होने वाली और दूसरी मरु देश जाति की जमीन पर पैदा होने वाली।

जातिया—

(१) Glycyrrhizaglabra vartypica Regard Herd इसका क्षुप ४ से ६ फीट ऊचाई मे होता है। इसके फूल जामुनी रगयुक्त भूरे आते हे। यह वनस्पति स्पेन मे होती है। इटली, इग्लेण्ड, फ्रास, जर्मनी और अमेरिका मे भी होती हे। इसको स्पेन की मुलेठी कहते है।

(२) Glycyrrhizaglabvraglanduliferawald,s Kit, गेलेसिया, दक्षिण और मध्य रूस मे जगली रूप मे मिल जाती हे। इसकी मोटी जड होती है। जिसमे से चारो ओर वडे वडे मूल निकले होते है। इसको रसिया की मुलेठी कहते है।

(३) lycyrrhiza glabravai violaca Boiss, ईरान, ईराक मे टाइग्रीस और युफ्रेटीस घाटी मे होती है इसके नाम के अनुसार इसमे वायोलेट रङ्ग के फूल आते है। दूसरी जातियो के मुकाबिले मे इसकी जड वहुत मोटी होती ह। इसको ईरानी मुलेठी कहते है।

इन तीनो जातियो की जम्मू और काश्मीर राज्य के चुक्रोई ड्रग फार्म मे कृषि की गई हे। काश्मीर की जमीन मे मुलेठी भली प्रकार उगती हे और फूलती फलती है। यह वारा मुल्ला मे भी होती है। मुलेठी के लिए काश्मीर की जमीन वहुत ही अनुकूल हे। यह देखते हुए भारत मे वाहरी देशो से मुलेठी मगाने की आवश्यकता नही रह सकती है।

उत्पत्ति स्थान—उत्तर अफ्रीका, ग्रीस, सीरिया,

मुलेठी
GLYCYRRHIZA GLABRA LINN.
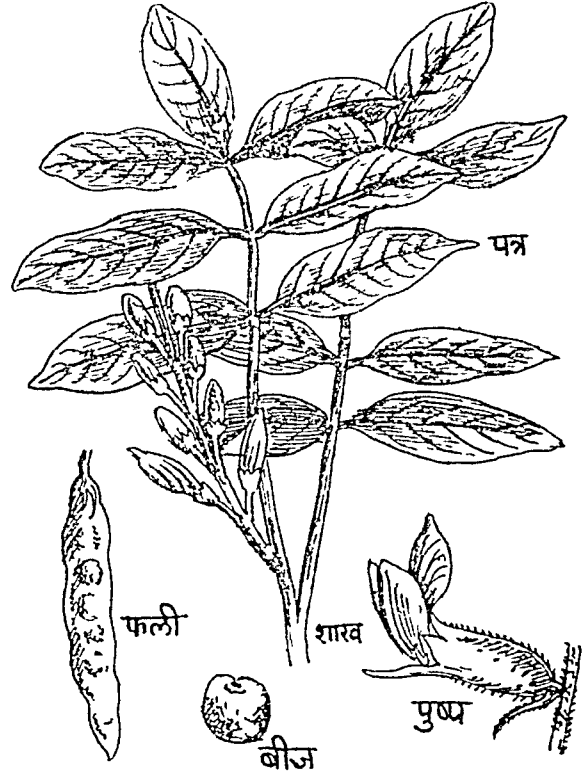
एसिया माइनर, परसिया, अफगानिस्तान, दक्षिणीरूस, चीन, तुर्की मे उगती हे। यहा पजाव, जम्बू और काश्मीर मे खेती होती हे।

नाम—

स व—क्लीतनक, यष्टि मधु, मधुयष्टी। हि—मुलैठी, मीठी लकडी, जेठीमद। म—ज्येष्ठी मद। व—वोम्वे-ज्येष्टी मधु। ते—यष्टि मधुकम्। ता—अति मधुरम। अर्वी—अस्लुस्सूस, इर्कुस्सूस। फा—वेख महक, महक मतकी। यू—मेयन (meyan)। प—मुलैठी, जेठी मध। अ—लिकोरिस (Liqourica)। ले—ग्लीसी रहा इज ग्लव्रा (Glyeyrrhisa glabra)।

रासायनिक संगठन—

जड मे मधु यष्टीन वा सूसीन (ग्लीसीरहाइजीन Glycyrr hizin) नामक एक पीला रूप रहित चूर्ण (ग्ल्युको साइड), अस्परागीन, द्राक्षशर्करा, राल, श्वेतसार और सेवाम्ल (malic acid) प्रभृति पदार्थ होते हैं।

व्यवहार्याङ्ग—छिलका उतारी हुई जड के टुकडे और मुलैठी का सत ।

गुण धर्म व प्रयोग–

मुलैठी रस मे मधुर, वीर्य मे शीत, विपाक मे मधुर और दोपघ्नता—त्रिदोपनाशक है ।

मुलैठी—मधुर, किंचित कडवी, शीतल, नेत्रो को हितकारी, पित्त नाशक, रुचिकारी तथा शोप, तृपा और व्रण को दूर करती है । —रा० नि०

मुलैठी–शीतल, भारी, मधुर, नेत्रो को हितकारी, वलकारक, वर्ण को सुन्दर करने वाली, स्निग्ध, वीर्यजनक केशो को सुशोभित करने वाली, स्वर को सुधारने वाली तथा पित्त, वात, रक्त, घाव, सूजन विप, वमन, तृपा, ग्लानि और क्षय रोग का नाश करती है । इसका सत (रुव्वसूस) मीठा है और मुलेठी की अपेक्षा अधिक गुण वाला है । –भा० नि०

मुलैठी शुष्क कास के लिए बहुत लाभकारी है । —कै नि०

यूनानी मतानुसार–

प्रकृति—समिश्र वीर्य । मतान्तर से पहले दर्जे मे गरम और तर और अन्य मत से पहले दर्जे मे गरम और खुश्क ।

गुण कर्म—साद्र दोप पाचन, तृट् प्रशमन, वात नाडी वलदायक, अवसादक, सर, उत्क्लेश कारक, छर्दिजनन, विलयन, श्लेष्म नि सारक, अन्तरावयव प्रक्षालक, लेखन वल्य, वातानुलोमन, मूत्रार्त्तवजनन, जीर्णज्वर नाशक तथा फुफ्फुस रोगो मे विशेप गुणकारक है । उपयोग—साद्र दोप पाचन होने के कारण यह प्राय सौदा एव श्लेष्म रोगो मे प्रयुक्त पाचन योगो मे डाली जाती है । साद्र दोप पाचन होने के अतिरिक्त यह विलयन, मार्दव कर और श्लेष्म नि.सारक भी है, अतएव फुफ्फुस तथा फुफ्फुस प्रणाली के शोथ और खरत्व को दूर करती है तथा स्वरघ्न श्वास, कृच्छ्र श्वास और कास मे प्रयुक्त होती है । यह यकृत, प्लीहा के कतिपय रोगो मे गुणकारी है लेखन और अन्तरावयव प्रक्षालन होने के कारण यह सदाह मूत्र, सुजाक, व्रण और वस्ति सक्षोभ के लिये उपकारक है । वातनाडी वलदायक होने से यह प्राय. वात व्याधियो मे उपयोग की जाती है । यह वातनाडी शूल को भी नष्ट करती है । अन्जनत दृष्टि वर्धन और नेत्र शुक्ल के लिये हितकर है । उत्क्लेश कारक एव छर्दि जनन होने के कारण इसका काढा श्लैष्मिक द्रवो को आमाशय से उत्सर्गित करने के लिये पिलाते है । यदि इस प्रकार सम्यक् उत्सर्गित न हो, तो कुछ विरेक और कुछ मूत्र मार्ग से उत्सर्गित होता है । शहद के साथ इसका लेप विप गाठ (दाखिस) के लिये उपादेय है ।

अहितकर—वृक्क और प्लीहा के लिये । निवारण—वृक्क मे कतीरा और प्लीहा मे गुलाव का फूल ।

प्रतिनिधि—वक्ष तोद मे इस का प्रतिनिधि कतीरा है । मात्रा २ से ७ माशा तक ।

मुलेठी का सत—

प्रकृति–दूसरे दर्जे मे गरम और खुश्क । गुण इसके मुलेठी के समान है । उपयोग–यह अधिकतर काम के योगो मे प्रयुक्त किया जाता है तथा कास के और मिथ्या कास के अपहरण के लिये इसको मुख मे रखकर चूसते है । यह विरेचन औपधियो के दोष परिहार के लिये विरेचन गुटिकाओं मे भी डाला जाता है और कास के लिये विशेप गुणकारक है । अहितकर-वृक्क के लिये । निवारण कतीरा और गुलाव के फूल । प्रतिनिधि-मुलेठी । मात्रा–४ रत्ती से १ माशा तक । —यू० द्र० वि०

डाक्टरी मतानुसार—

यष्टीमधु- स्निग्ध, कफ निस्सारक, मृदुरेचक व स्थानीय उत्तेजनोत्पादक है । चवा कर खाने मे यह लालास्राव की वृद्धि करती है । अतएव यह कण्ठ को स्निग्ध करने वाली है । भक्षित यष्टिमधु श्लेष्म धराकला मे उत्तेजना पैदा करती है । यष्ठिमधु–प्रदाह शूल पीडा,प्रतिश्याय,कास स्वरभेद, श्वास प्रणाली और मल प्रणालीय नाडियो मे उत्तेजना पैदा करती है एव उन स्थानो के रोगो के लिये हितकारी है । यह साधारण रेचक है और सनाय के साथ देने से यह रक्तार्श मे उपयुक्त है । —डा०आर०एन०खोरी

सुश्रुत ने इसको मनुष्य की जीवनी शक्ति वढाने वाले प्रधान द्रव्य की तरह बतलाया है।

डा० कोथ ने बतलाया है कि वेदना को कम करने मे व पेट के अन्दर क्षारीय तत्व जमा होने से जो बीमारिया और जो लक्षण पैदा होते है उनको दूर करने मे मुलेठी आश्चर्यजनक काम करती हे। एसिड्स को लेने से पेट मे जलन होती है उसको यह अलकेलीज की अपेक्षा भी ज्यादा अच्छी तरह दूर करती है। इस वनस्पति के सम्बन्ध मे जो लोग खोज कर रहे हैं उनका कथन है कि ज्यो-ज्यो इस वनस्पति के सम्बन्ध मे जानकारी वढती जायगी त्यो-त्यो यह वनस्पति चिकित्सा के क्षेत्र मे अधिकाधिक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करती जायगी, आधुनिक चिकित्सा के क्षेत्र मे यह वनस्पति एक पौष्टिक और मूत्रनली सम्बन्धी बीमारियो मे शातिदायक तथा मृदु विरेचक औषधि की बतौर काम मे ली जाती है।

मात्रा—चूर्ण ३ माशे से ६ माशे तक, मुलेठी सत-२ से ४ माशा तक।

उपयोग—

रसायनार्थ—रसायन के लिये मुलेठी का चूर्ण दूव के साथ सेवन करे। -चरक चि०१

क्षत क्षीणता मे—सोठ और मुलेठी के चूर्ण का प्रयोग उत्तम है। -च० चि० अ० १६

हृदयरोगे—मुलेठी और कुटकी का चूर्ण मिश्री और पानी के साथ सदैव लेना चाहिये। —च० चि० अ० २६

शुष्क गर्भ तथा वाल शोप मे—गभारी के फूल, मुलेठी व मिश्री का यवकूट चूर्ण लेकर दूध मे उवालकर यह दूध माता तथा वालक को पिलावे। —चरक चि० अ० २८

वात रक्त मे—मुलेठी और गभारी के रस मे साधित तेल वातरक्त को मिटाने वाला है। —चरक चि० अ०२६

अर्ध शिर शूलमे—मुलेठी का क्वाथ करके उसमे थोडा मधु मिला कर नस्य लेने से अर्ध शिर शूल मिटता है। —सु० उ० अ० २६

पाडु रोग मे—सदैव मुलेठी का क्वाथ या चूर्ण मधु के साथ लेवे। -सु० उ० अ० ४४

अधोगत रक्त-पित्त मे—(१) दस्तो मे जिनके रक्त गिरता हो उनको मुलेठी के क्वाथ मे शहद मिलाकर उल्टी कराना हितकारी है। —सु० उ० अ० ४५

(२) मुलेठी का चूर्ण १ तोला पानी के साथ पिलाना चाहिये।

उलटी मे रक्त गिरने मे—मुलेठी और चन्दन को वरावर लेकर दूध मे पीसकर वस्त्रपूत कर यह दूध पीने से उलटी मे गिरता हुआ रक्त वन्द हो जाता है।

सद्योव्रण मे—ताजा हुये घाव मे जिसमे वेदना होती हो ऐसे मे मुलेठी सिद्ध घृत का मन्दोष्ण सिचन करे।

आध्मान मे—मुलेठी का चूर्णऔर मिश्री पानी के साथ पिलावे। —चक्रदत्त

पेशाव रुकने से आध्मान मे—पेशाव की रुकावट से अफरा हुया हो तो उसे मुनक्का और मुलेठी के चूर्ण से दूध सिद्ध कर पिलावे। —भा०प्र०

शिर शूल मे—मुलेठी चूर्ण जितना हो उससे चौथा भाग शुद्ध वच्छनाग चूर्ण को भली प्रकार मिलाकर इस चूर्ण मे से सरसो के समान चूर्ण नाक मे फूकने से प्रत्येक प्रकार का शिर शूल मिटता है। यह अनुभूत प्रयोग है।

फुफ्फुस रोग—मुलेठी का चूर्ण पेठा के रस के साथ ३ दिन लेने से फुफ्फुस रोग मिटते है। —वगसेन

पित्तज कर्ण रोग मे—मुलेठी और दाख से सिद्ध दूध से कर्ण पूर्ण करने से कान के रोग मिटते है। पान करने से मूत्र रोग मिटते है। —वगसेन

दृष्टि की कमजोरी मे—आवला और मुलेठी मिला पानीआखो पर छीटने और पीने से दृष्टि की कमजोरी मिटती है।

उपपक्ष्म नामक नेत्र रोग मे—मुलेठी से सिद्ध घृत से सेक करने से वेदना तुरत मिट जाती है। —वगसेन

भिलामा से उत्पन्न सूजन मे—मुलेठी, दूध और तिल इनको वारीक पीसकर मक्खन मे मिलाकर लगाने से

भिलावा से उत्पन्न शोथ मिट जाती है। -शोढल

पित्तज स्वर भग-मुलेठी क्वाथ मे घी मिलाकर पिलावें। -शोढल

वाजीकरणार्थ--मुलेठी का चूर्ण १ तोला मधु और घी के साथ चाटकर ऊपर से दूध पीने से सदा भोगने की शक्तिवाला व्यक्ति हो जाता है। --शोढल

हिक्का में—मुलेठी का सूक्ष्म चूर्ण शहद मे मिलाकर नाक मेटपकाने से हिचकी मिटती है।

स्त्री के दूध वढाने हेतु—मुलेठी का चूर्ण मिश्री के साथ लेकर ऊपर से दूध पीने से स्त्री के स्तनो मे दूध वहुत वढता है।

—वैद्य मनोरमा

सहस्र योग—मुलेठी और तिलो को भैस के दूध मे पीसकर शिर पर लेप करने से शिर से उडते हुये वाल रुक जाते हैं। मुलेठी का चूर्ण नीवू के रस से लेने से सर्दी मिटती है। मुलेठी का क्वाथ, स्वरस, अरिष्ट श्वास यत्र, मूत्रयत्र और पाकस्थली के रोगो मे विशेष उपकारी है। यह श्वास, स्वरभग, मूत्र रोग नाशक और मूत्र का सशोधक है।

पित्त ज्वरे—मुलेठी, धनिया, मोथा और गिलोय का क्वाथ सेवन करने मे पित्त ज्वर मिटता है।

—भा० प्र०

यकृतरोगे—८ तोला मुलेठी, ४८ तोला दाख, खाड ३२ तोला, हरीतकी २ तोला, वहेडा २ तोला, लौंग २ तोला, जायफल २ तोला, हल्दी २ तोला, दालचीनी २ तोला, आवला २ तोला। पहले मुलेठी का क्वाथ तैयार करे। दूसरी दवाओ का चूर्ण वनाले। इनको चीनी और दाख के साथ मिलाकर गोलिया वनावे। इसमे से ½ से १ तोला दिन मे दो वक्त १ मास तक सेवन करने से सर्दी, खासी, मलेरिया ज्वर, वर्द्धित प्लीहा और यकृत रोग मिटते है। —भा व वगला

विशिष्ट प्रयोग——

(१) मधुकादि क्वाथ—मुलैठी, गिलोय, कुटकी, इलायची और पित्तपापडा ५-५ माशे, कुटकी २½ माशे और सनाय १½ तोला लेकर क्वाथ बनावे। इसमे १तोला खाड मिलाकर पिलाने से भयकर वात पित्त ज्वर अवश्य नष्ट हो जाता है। जो ज्वर रसायन प्रयोगो से भी नही मिटता वह इससे अवश्य नष्ट हो जाता है।

(२) मधुक चूर्णम्—मुलैठी का चूर्ण १। तोले की मात्रानुसार घी और शहद मे मिलाकर दूध के साथ सेवन करने से अत्यन्त कामवृद्धि होती है। (घी ६ माशे। शहद ३।४ तोले ले।)

(३) मधुकादि चूर्णम्—मुलैठी, पीपल, मुनक्का, कचूर, काकडासिगी और शतावर का चूर्ण १-१ भाग, वसलोचन का चूर्ण १२ भाग और खाड ७२ भाग लेकर सवको एकत्र मिला ले। इसे शहद और घी मे मिलाकर सेवन करने से क्षतज खासी नष्ट होती है। (मात्रा १ तोला। घी ६ माशे। शहद ३-४ तोला)।

(४) मधुयष्टिकादि चूर्णम—मुलैठी, लाख, सौफ काकडासिगी, मुनक्का और शतावर १-१ भाग, वसलोचन १२ भाग और खाड १८ भाग लेकर चूर्ण वनावे। इसे शहद और घी के साथ सेवन करने से क्षतज खासी और रक्तपित्त तथा विशेपत राजयक्ष्मा का नाश होता है। (मात्रा ६ माशे।) —भा भै. र

(५) मधुविरेचन चूर्ण—मुलैठी २ भाग, सनाय २ भाग, सौफ १ भाग, शुद्ध गधक १ भाग और मिश्री ६ भाग ले। सवको एक साथ कूट वस्त्रपूत चूर्ण करके रखले। इस चूर्ण का कई वैद्यो ने 'मधुकादि चूर्ण' नाम रक्खा है। कई फार्मेसी वाले इसको स्वादिष्ट विरेचन के नाम से वेचते है। डाक्टरी मेटेरिया मेडिका मे इसको 'पल्विस 'ग्लिसराइजा क' नाम दिया है। मात्रा ४ से ६ माशा। गुन गुने पानी के साथ। अर्श वाले को कब्ज दूर करने के लिये इसका प्रयोग करना अच्छा है।

—सि० यो० स०

(६) मधुकाद्या गुटिका—मुलैठी, महुआ, मुनक्का, वसलोचन, पीपल, दालचीनी तेजपात और इलायची १।-१। तोला, खाड १० तोले तथा मुनक्का, मुलैठी और खजूर ५-५ तोले लेकर कूटने योग्य चीजो को कूट छानकर चूर्ण वना ले और शेष चीजो को पत्थर पर वारीक

पीसले और फिर सबको शहद मे मिलाकर १-१ तोले के मोदक बनाले। इसके सेवन से रक्तपित्त, खासी, श्वास, छर्दि, अरुचि, मूर्च्छा, हिचकी, मद, भ्रम, क्षत क्षय, स्वर-भग, पुरानी वात व्याधि, रक्त थूकना, हृदय और पसली की पीडा, तृष्णा और ज्वर का नाश होता है।

[७] मधुकादि तेलम्—१ सेर तिल के तैल मे ४ सेर गाय का दूध और ५ ५ तोले मुलैठी तथा आमले का चूर्ण मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब दूध और रस जल जाय तो तेल को छान ले। इसकी नस्य लेने से केश और दाढी के बाल निकल आते है।

[८] मधु यष्ट्यादि तैलम्—५ तोले मुलैठी को ४ सेर पानी मे पकावे। जब १ सेर पानी शेष रह जाय तो छान ले। तत्पश्चात् २० तोले तिल के तेल मे यह क्वाथ और २।।-२।। तोले काली मिर्च तथा मजीठ का चूर्ण मिला कर मन्दाग्नि पर पकावे। जब क्वाथ जल जाय तो तेल को छान ले। इसकी मालिश से मुख का रग निखर आता है।

[९] मधुकादि लेप—मुलेठी, स्थल पद्म, मूर्वा, तिल और भागरे के समान भाग मिश्रित चूर्ण को घी और दूध मे मिलाकर लेप करने से केश शीघ्र ही घने, दृढ, लम्बे और सीधे हो जाते है।

[१०] मधुयष्ट्याद्य घृतम्—मुलैठी, मोम, लोध, राल मजीठ, सफेद चदन और मूर्वा के कल्क तथा ४ गुने पानी के साथ घृत सिद्ध करे। इसे लगाने से हर प्रकार का अग्निदग्ध व्रण भर जाता है। (मोम और राल के चूर्ण का घी तैयार होने के पश्चात् मिलाकर थोडी देर पुन पका लेना चाहिये)। —भा० भै०

यूनानी विशिष्ट योग—

[१] तरयाक नजला—उस्तोखद्दूस ५ तोले, गाऊ जवान पुष्प, धनिया, मोडीयो बीज, प्रत्येक १० तोले, काहु बीज, अजबायन खुरासानी, डोडा पोस्त प्रत्येक ३० तोले, खशखश सफेद ४० तोले, इन औषधो को अर्धकूट करके रात्रि को पानी मे भिगोवे। प्रात जोश देकर छानले। और खाण्ड ३।। सेर मिलाकर पाक करे, और अन्त मे फत गुलाब, धनिया, रबुलसूस (मधुयष्टिघनसत्व) निशास्ता, गोद कीकर, गोद कतीरा, मुरमक्की प्रत्येक ५ तोले खूब बारीक करके पाक मे मिलावे।

मात्रा—७ माशे, अर्क गाऊजवान १२ तोले और शरबत खश-खाश दो तोले के साथ प्रयोग करे।

गुण—पित्त प्रतिश्याय, कास मे लाभप्रद है, चिरकाल तक सेवन करने से इसका प्रयोग जीर्ण प्रतिश्याय को नष्ट करता है।

[२] हब्ब जीकल नफस [श्वास हर वटी]—पिप्पली काकडासिगी, मधुयष्टि, लौंग, मधुर अनार का छिलका, यवक्षार प्रत्येक ९ माशे कूट छानकर मधु से चने समान वटी करें।

मात्रा—१-१ वटी, प्रात साय जल से दें। ८ गोली तक दिन मे चूसे। गुण—कास, श्वास मे उत्तम है।

[३] कास हर वटी—बादाम मगज २५ नग, मुनक्का ३ तोला, मधुयष्टि ६ माशा, पिप्पली ४ नग काकडा सिंगी ३ माशा, शकर तैगाल ३ माशा, बसलोचन ३ माशा, छोटी इलायची ३ माशा, गोद कीकर, गोद कतीरा, भूना सुहागा ३-३ माशा, अद्रक रस से चने समान गोलिया बनाले। मात्रा—१ से ४ वटी। गुण—प्रत्येक प्रकार की खासी मिटती है।

[४] शरबत सदर—गाऊजबान ८० तोला, गाऊ-जबान पुष्प ४० तोला, खतमी बीज ४० तोला, अलसी ४० तोला, सौंफ ५० तोला, पोस्त डोडा २५ तोला, अज-वायन देशी ५० तोला, मधुयष्टि ४० तोला, हसराज ४० तोला, आब रेशम कतरा हुआ २५ तोला, बिहिदाना २५ तोला इनका २० सेर जल मे क्वाथ करे। आधा भाग रहने पर १० सेर खाण्ड मिलाकर पाक करे। मात्रा २ से ५ तोला। गुण—कास श्वास और प्रतिश्याय मे उत्तम और विशेष योग है।

[५] लहूक सदर—गोद कतीरा, निशास्ता, गोद कीकर, रबुलसूस, खशखाश बीज २०-२० तोला, बिहि-दाना १६ तोला, गाऊ जवान पत्र, अजवायन खुरासानी ४-४ तोला, बादाम मगज, मधुर मगज कद्दू, मधुयष्टि १६ १६ तोला, हसराज १२ तोला, सरतान जला हुआ १२ तोला, खाड ६ सेर, मधु १२ सेर। क्वाथ वाली औषधियो

का क्वाथ करके उसमे खाड तथा मधु का पाक करे। पाक सिद्धि पर वाकी ओपवियो का चूर्ण मिलाकर अवलेह तैयार करें। मात्रा ½ से १ तोला। गुण—प्रत्येक प्रकार की कास तथा श्वास की महौषध है, क्षय कास मे उत्तम हैं।

[६] सरतानी [द्रव्य तथा निर्माण विधि]—कीकर गोद, कतीरा गोंद, श्वेत गुलाब पुष्प, वसलोचन प्रत्येक ४ माशा, मधुयष्टि ५ माशा, निशास्ता, कुलफा प्रत्येक ७ माशा, रक्तचदन, श्वेत चदन, २-२ माशा, काहुवीज ३ माशा, खुब्बसूस ५ माशा, कपूर १ माशा, मधुर कद्दू-वीज गिरी, खश-खाश वीज श्वेत, खयारैन बीज गिरी प्रत्येक ६ माशा, जलाया हुआ केकडा १ तोला इन सबको कूट छानकर ईसबगोल के जलीय रस की सहायता से टिकिया ८-८ रत्ती की बनावे। मात्रा—६ माशा, अर्क गाऊजबान के अनुपान से प्रयोग करे।

गुण—राजयक्ष्मा, कास, उर क्षत तथा हृदय रोगो मे अति प्रभावशाली औषध है।

—यूनानी चिकित्सा सागर से

मुखतरी [मुस्तरू] (Grangea Moderaspatana Poir)

यह भृङ्गराजादि कुल (Compositae) का एक क्षुप होता है। इसका पौधा जमीन पर फैला हुआ तथा कभी खडा होता है। इसकी वहुत डालिया होती है और हर डाली पर सफेद रग के रुये होते हैं। इसके क्षुप शर्द ऋतु मे वहुत देखने मे आते है। पौधे ४ से ८ इच लम्बे तथा कभी इससे अधिक लम्बे भी पाये जाते हे। पत्र—इसके पान बनकाऊ से थोडे मिलते हुए होते हैं। पान—एकान्तर १ से ३ इच लम्बे, आधा से एक इच चौडे. रग मे हल्के हरे और दोनो ओर सफेद रुओ से युक्त होते हैं। पत्र दण्ड नही होता हे। शाखा के पास पत्र सकडे, पत्र के किनारे सूक्ष्म दातेदार होते हैं। फूल—पुष्प की दण्डी ½ से ¾ इच लवी और सफेद लवे बालो से गहरी भरी हुई होती हे। प्रत्येक पुष्प के नीचे ६ से १० हरे रग के पुष्प पत्र होते है, ये भी सफेद बालो से युक्त होते है। प्रत्येक फूल मे सूक्ष्म बहुत ही फूललडिया (Florates) होती हैं। ये पीले रग की होती हैं। फूल अर्ध गोलाकार होता है। फूल का व्यास २ से ३ लाइन जितना होता है। फल-बीज भूरे रग के, चपटे किनारे और वीच से धार वाले ½ लाइन लम्बे होते है।

व्यवहार्याङ्ग—सर्वाङ्ग।

उत्पत्ति स्थान—इसके क्षुप गोरखमुण्डी जैसे दिखाई देते है और गोरखमुण्डी की तरह सर्दी के मौसम मे खेतो और नमी वाले स्थानो मे होते है परन्तु गोरखमुंडी से छोटे होते हैं। इसलिये उसको छोटी गोरखमुण्डी भी कहते है।

नाम—

हि०—मुखतरी, मुस्तारू। व०—नमूती। गु०—भीणकी मुण्डी, नहानी गोरखमुण्डी। म०—मागीपत्री, माचिपत्री। ते०—सेवी। ता०—माशी पत्री। उर्दू—अफसतीन।

फा०—वरजासिफ, कोही। ले०—ग्रेजिया मेडरासपटना।

गुण धर्म व प्रयोग—

सारक, वेदनाशामक, चिरगुणकारी, पौष्टिक, पाचक और मूत्रल है।

यूनानी मतानुसार—इसका पौधा बहुत कडवा और खराब स्वादवाला होता है। यह ज्वर नाशक होता है। आख और कान के दर्द मे लाभ पहुचाता है। यह आतो के दर्द, छाती और फेफडे की तकलीफ, मस्तकशूल, अर्धाङ्ग, घुटने के जोडो का दर्द, बवासीर, मास पेशियो की वेदना, तिल्ली और यकृत के रोग, कान, मुह तथा नाक की तकलीफो मे लाभ पहुचाती है। यह पसीने को कम करती है।

इसके पत्ते एक उत्तम अग्निवर्धक औषधि का काम करते है। इनमे बाधानाशक और आक्षेप निवारक तत्व रहते है। इनका निर्यास हिस्टिरिया को दूर करने और रुके हुए मासिक धर्म को जारी करने के लिये दिया जाता है। वेदना और कृमियो को नष्ट करने के वास्ते इसके पत्तो का सेक किया जाता है। —व च.

प्रयोग—

(१) इसके पत्तो का रस गरम करके थोडा तेल मिलाकर इस तेल को कान मे डालने से कान का दर्द मिटता है।

(२) उदरशूल—हैजा और ताण पर इसके पत्तो का क्वाथ दिया जाता है। मात्रा ½ तोला से १ तोला तक।

—वनस्पति वर्णन

मुसना (Saponaria vaccaria linn)

यह साबूनी कुल (Caryophyllaceae) की एक वर्ष जीवी वनस्पति होती है। इसका पौधा १ फुट से लेकर २ फुट तक ऊचा होता है। गेहू के खेत मे इस वनस्पति के पौधे बहुत पैदा होते है। इसके पत्ते लम्बे गोल ३ इची लम्बे और ½ से ¾ इच चोडे विस्तृत अग्र भाग नुकीला, शिरा लम्बा, पत्ते के दण्ड छोटे, मूल की ओर गोलाकार एव हृत्पिण्डाकृति। फूल गुलाबी रग के, पु केशर १०, गर्भकेशर २, बीज बडे और कृष्ण वर्ण। जड–लम्बी और गोल, जड की छाल मोटी और लाल रग की होती है। इस क्षुप का स्वाद कडवा और खारा होता है। औषधि प्रयोग मे इसकी जडे काम मे ली जाती है।

उत्पत्ति स्थान—

यह भारत मे सर्वत्र होती है, हुगली जिले मे शीत ऋतु के अन्त मे देखी जाती है।

नाम—

हि०—मुसना, साबूनी। पंजाब—मुसन। ब०—साबूनी अरबी—साफिन। फारसी—गुले साफिन। अ०—सोपवोर्ट ले०—सेपोनेरिया वेकेरिया।

उपयोगी अंग—जड और मूल।

रासायनिक संगठन—

इस वनस्पति की जडो मे सेपानिन नाम झागदार तत्व पाया जाता है। इसी प्रकार का तत्व शीकाकाई और अरीठे मे भी पाया जाता है। इसी तत्व के ऊपर इस वनस्पति के गुण धर्म अवलम्बित रहते है। यह पानी मे घुल जाता है और हिलाने से साबुन के समान फेन देता है, कफ छूटता है, पेशाब अधिक होता है। इसको बहुत थोडी मात्रा मे लेना चाहिये। अधिक मात्रा मे लेने से यह अपना जहरीला असर बतलाता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

यूनानी मत से इसका पौधा कडवा और खट्टा होता है। इसके सेवन से बढ़ी हुई तिल्ली दुरुस्त होजाती है। यह कष्टदायक मासिक धर्म, व्रण तथा जख्म मे भी लाभ पहुचाती है। इसके पत्ते गीली और सूखी खुजली मे लाभदायक होते है।

इस वनस्पति की प्रधान क्रिया श्वासोच्छ्वास, रक्താभिसरण और मज्जा ततुओ पर प्रधान रूप से होती है। इसके लेने से ज्ञान वाहक और क्रियाशील दोनो ही प्रकार के मज्जा ततुओ मे जडता पैदा होजाती है। श्वासनलिका से यह कफ को बढाती है। इसके सेवन से मूत्र और दस्त

की मात्रा बढती है। यह एक जोरदार विरेचक पदार्थ होता है। पुरानी खांसी मे इसको देने से लाभ होता है। हृदय को यह उत्तेजना देता है। सूखी और गीली खुजली मे इसका लेप करने से लाभ होता है।

मुँज (Sacchrum munja Roxb.)

यह तृण धान्यादि कुल (Graminea) का एक ऊंची जाति का घास होता है। इस घास से लंबे लंबे रेशे प्राप्त किये जाते हैं और उन रेशो से रस्सिया बनाई जाती हैं। मूज की ये रस्सिया सारे भारत मे चारपाई बनाने के काम मे ली जाती है। यह दो प्रकार की होती है, एक को मूज और दूसरी को रामसर कहते हैं। पत्र–हरिताभ, लम्बे, बाणवत्, तीक्ष्णाग्र, काण्ड १२ फुट लम्बा, अधोभाग पर्वयुक्त, ऊर्ध्व भाग पर्व रहित और शिखर पर श्वेत पुष्पो की दीर्घ मजरी, पुष्प हरे रहने पर उपरक्त तथा सूखने पर सफेद हो जाते हैं। काण्ड वल्कल को कूटकर मूज तैयार होती है जिससे मूज सूत्र (मूज की रस्सी) बनती है, जो चारपाईयो के बुनने मे काम आती है।

सर [सर] पत्र का नाम है और जो छपड़ो के बनाने मे लगता है। काण्ड (काना, सिरकी) से सिरकिया और उत्तम स्थूल काड की कलमे भी बनती हैं। भद्रमूज साधारण मूज की अपेक्षा बडा होता है। सितंबर-अक्टूबर मे फूल आते हैं। गुणो मे दोनो समान हैं।

उत्पत्ति स्थान—

राजस्थान मे रेगिस्तानी क्षेत्र, पजाब मे नदियो के निकट बहुत होती है। उत्तरी भारत, गङ्गा के ऊपरी मैदानो मे भी बहुत पैदा होती है।

नाम—

स०–मुञ्ज, भद्रमुञ्ज। हि०–रामसर, मूज, सरकंडा सरपत, सरपट्टा। राज०–बाण। गु०–मुज। म०–मोल। ब०—मुंच, रामशर, सरपत। तें०–मूज गड्डि, अनस्फुलिग लें०—सेकेरम मुज। भद्रमुज को लेटिन मे (Sacchrum Sara Roxb) कहते हैं।

व्यवहार्य अङ्ग—मूल।
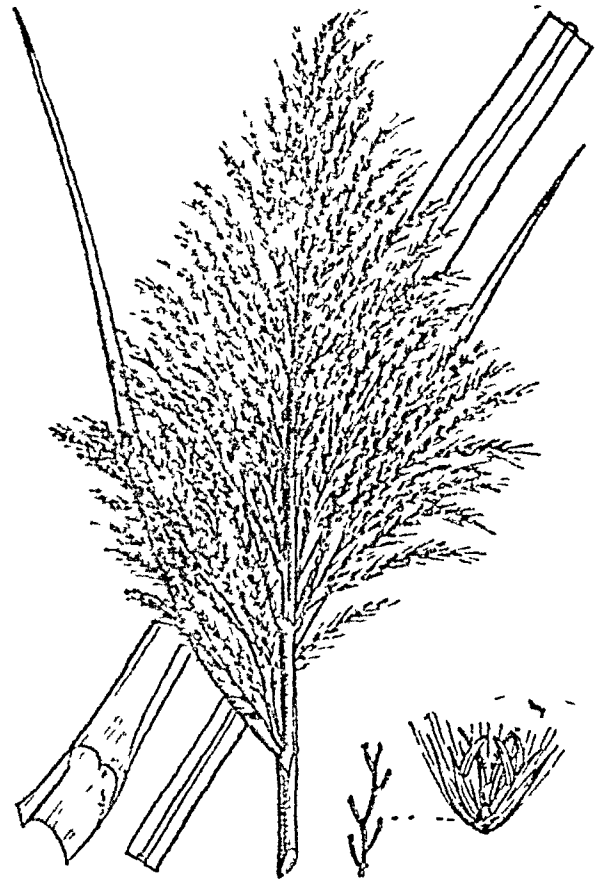
मुन्ज
SACCHARUM MUNJA ROXB

गुण, धर्म और प्रयोग—

दोनो प्रकार की मूज-मधुर, कसैली, शीतल और कामोद्दीपक होती हैं।

यह दाह, तृषा, रुधिर विकार, विसर्प, मूत्र रोग, नेत्र रोग और त्रिदोष को नष्ट करती है।

मूज—मधुर, शीतल, कफपित्त के दोषो को नष्ट करने वाली, ग्रह रक्षा और दीक्षा मे पवित्र तथा भूत-बाधा नाशक होती है।

भद्र मुँज [रामसर] (Sacchrum Sara Roxb)

रामसर या सरपत ठीक गन्ने के झाड की तरह ही होती है। दूर से देखने पर गन्ना और इसमें कोई अन्तर नही पाया जाता। इसके पोरवे बडे, पतले होते है।

मूज की भी शक्ल ठीक इसकी ही तरह किन्तु आकार प्रकार मे क्षुद्र होती है। पोरवे छोटे छोटे होते है। पोरवों के ऊपर एक आवरण रहता है। इसे बटकर रस्सी बनाते है। इस आवरण को जन साधारण मे मूंज कहते है तथा झाड को सरकंडा या पतारो कहते है। —आ० नि०

मूंग (Phaseolus mungo Linn)

यह शाक वर्ग और शिम्बी कुल (Leguminosae) का प्रसिद्ध शाक का पौधा है। यह एक प्रसिद्ध अन्न है। मूग की दाल सारे भारतवर्ष मे आम तौर से खाई जाती है। इसको सब कोई जानते हैं। इसका पौधा शुरु मे क्षुप के रूप मे पैदा होता है। और बडा होने पर लता के रूप मे बदल जाता है। इसके पत्ते उडद के पत्तो के समान मगर उनसे कुछ बडे होते हैं। इसके पौधे मे तीन-तीन इच लबी फलिया लगती हैं। हर एक फली मे सात-आठ दाने मूग के रहते हैं। रग के भेद से मूग की कई जातिया होती हैं। जैसे काले, हरे, पीले इत्यादि। मूगो मे सबसे उत्तम हरे मूग होते है। सुश्रुत और चरकादि हरी मूग मे ही अधिक गुण कहते है।

उत्पत्ति स्थान—मूग की कृषि सारे भारत मे होती है। इसकी कृषि सियालु फसल मे की जाती है।

नाम–

स —मुग्द, सूपश्रेष्ठ, भुक्तिप्रद, हयानद, सुफल। हिं —मूग। ब —मुग, बुलट, खेरूया। म —मूग। गु -मग। प.—मूग। ते —पाटचा। ता —पाटचाई। अ— माष, मुन्ज़' फा —वनोमाप, मापे सब्ज। इ —ग्रीन-ग्राम। ले —फेसिलोअस मुगो।

रासायनिक संगठन–

मासवर्धक द्रव्य २२%, पिष्ट५४%, तेल २%, ततु ५% और राख ४%। ततु छिलके मे अधिक होता है, इस लिये छिलका वर्जित है। इसमे भास्वराम्ल भी होता है।

पौने दो छटाक मे १५८ यूनिट विटामिन (ए), १५५ यूनिट विटामिन (बी), ८.४ मिलिग्राम लोहा, १४ ग्राम कैलशियम, २६ ग्राम फास्फोरस आदि पदार्थ पाये जाते है। इससे पता चलता है कि जीवन रक्षा के लिए उपयोगी विटामिन (ए), विटामिन (बी), लोहा, कैल्-शियम और फास्फोरस मूग के अन्दर बहुत काफी मात्रा मे पाये जाते है। इसलिये पथ्य के रूप मे यह एक उत्तम वस्तु है। लेकिन यह ख्याल रखना चाहिये कि ये सब तत्व इसकी छिलके वाली दाल मे ही पाये जाते हैं। छिलका निकाल डालने पर इसके बहुत से तत्व नष्ट हो जाते हैं।

गुणधर्म व प्रयोग—

मूग रस मे कषाय और मधुर है, ठडा है, विपाक मे कटु है, पचने मे हलका है। कफ पित्त नाशक है। मूग का यूप (मूग का ओसामण) द्विदल मात्र मे उत्तम है। मूग वायुकारक नही है, आख की रोशनी बढाती है। लम्बे समय के व्रण मे मूग उपयोगी है। उर्ध्व जत्रुगत विकारो मे अर्थात् आख, कान, नाक, भौ के रोगो, दाह मे, ज्वर मे रक्त दोष मेउपयोगी है। ताप वाले को मूग का यूप देना हितकारी है।

मूग, शीतल, कपैली, मधुर, हलकी, पित्त और रक्त के दोष को दूर करने वाली सारक, विपाक मे कटु और रमणीक है। —हा० स०

मूग अनेक प्रकार की होती है, जैसेकृष्ण मुग्द,'अरुण, मुग्द, गौरवर्ण मुग्द, हरितमुग्द, रक्तवर्ण मुग्द इनमे पूर्व से पूर्व मूग लघु है। अर्थात् रक्त मूग से सफेद मूग,सफेद मूग से पीले मूग और पीले मूग से हरी मूग हलकी है; इत्यादि। सर्व मूगो मे हरी मूग प्रधान है। वन मूग (मोठ) के गुण भी मूग के समान है। मूंग–कपैली,

मूंग
PHASEOLUS MUNGO LINN.

मधुर, कफनाशक, रक्तपित्तनिवारक, हलकी, मलरोधक, शीतल, पचने मे कटु, नेत्रो को हितकारी और अत्यन्त वातकारक नही है। (रा० नि०)

मूग—रुखी, हलकी, मलरोधक, कफपित्तनाशक, शीतल, स्वादिष्ट, अल्पवातकारक, नेत्रो को हितकारी और ज्वर को दूर करती है। वनमूग (मोठ) के गुण भी मूग के समान है। मूगो मे हरा मूग उत्तम होता है क्योकि पचने मे बहुत हलका होता है। (भा० प्र०)

मूग—पित्तकफनाशक, व्रणविनाशक, कठरोगनिवारक, हलकी तथा वातरक्त, कृमिरोग और नेत्र रोग मे हितकारी है, आध्मानकारक नही, वातहारक भी नही, मन्दाग्नि को दूर करने वाली, भोजन के ऊपर भी पथ्य, स्वर को श्रेष्ठ करने वाली और मूत्र रोग को हरने वाली है। यह एक उत्तम पथ्य है। भोजनोपयोगी सूप (दाल) बनाने के काम मे आने वाले सब धान्यो मे मूग श्रेष्ठ है। (अ० स० सू०)

यूनानी मतानुसार—यूनानी मत से मूग स्वादिष्ट, पौष्टिक, आतो का संकोचन करने वाला, खून को बढाने वाला, तथा ज्वर मे लाभदायक होता है। आख के रोग, नाक के रोग, मस्तक शूल, गले की सूजन, ब्रोकाइटीज, गुर्दे के रोग, पित्तविकार और रक्त सम्बन्धी रोगो मे यह लाभ पहुचाता है। मूग की दाल—ठण्डी, हलकी और सकोचक मानी जाती है। आखों की ज्योति बढाने और ज्वर के अन्दर एक उत्तम पथ्य के रूप मे इसका व्यवहार होता है।

मूग या मूग की दाल औषधि की अपेक्षा पथ्य के रूप मे ही विशेष उपयोग मे लिये जाते है। ज्वर के अन्दर एक उत्तम पथ्य के रूप मे इसका यूष बनाकर दिया जाता है।

विशेष विवरण—चरक से वाग्भट की कितनी विशेषता है उसको बताने के लिए स्वय की टीका मे अरुणदत्त ने छः उदाहरण दिये है उसमे से एक यह है कि चरक ने मूग को ग्राही गिना नही है (सू० अ० १ ऊपर की टीका) जैसा कि वाग्भट ने स्पष्ट कहा है। यहा अरुण दत्त ने ग्राही का अर्थ–'केषा विवन्ध करोति ? साम र्थ्यातस्रोतसाम, नतु पुरीषादीनाम्।' अर्थात् मूग ग्राही है स्रोतो के मुख का विबध करता है, मल का नही। हेमाद्रिने 'विबंधकृत' का अर्थ 'वातावरोधकम' ऐसा दिया है अर्थात् मूग वायु का अवरोध करने वाला है। स्रोतो का अवरोध करने वाला जो मूग हो तो मूग को 'सूप्योत्तम' कैसे कहा जावे ? यह देखते हुए तो वाग्भट ने मूग का महत्व ही ले लिया है। (आ० नि)

प्रयोग—

स्तनो मे दूध का जमाव—मूग और सांठी चावलो को पीसकर गरम कर स्तनो पर लेप करने से दूध का जमाव बिखर जाता है।

अतिसार—सिके हुए मूग और चावलो की खीलो का क्वाथ बना उसमे शहद और शक्कर डालकर पीने से अतिसार मिटता है।

विशिष्ट शास्त्रीय योग—

मुद्गयूषयोग.—लोहे को अग्नि मे तपाकर मूग के यूष

मे बुझावे, यह यूप प्रसूता स्त्री को पिलाने से उसके समस्त रोग नष्ट होते है ।

मुग्दादिकपाय मूग की दाल के क्वाथ मे पीपल का चूर्ण तथा शहद मिलाकर पीने से छर्दि (वमन) तुरन्त रुक जाती है ।

मुग्दादिकपाय द्वितीय—मूग को भाड़ मे भुनवा कर उसका क्वाथ बनावे । इस क्वाथ मे धान की खील, शहद और खाड मिलाकर पिलाने से छर्दि, अतिसार, दाह और ज्वर का नाश होता है ।

मुग्दादिक्वाथ—मूग और मुलैठी का क्वाथ या शीतकपाय पीने से पित्त ज्वर नष्ट हो जाता है ।

मुग्दादिशीतकपाय—५ तोले खरैटी को ४० तोले पानी मे पकावे जव २० तोले पानी शेप रहे तो छानकर उसमे रात को मूग, धान की खील, इन्द्रजौ, पीपल, खस, नागरमोथा और लाल चदन समान भाग मिश्रित ३ तोले लेकर कूटकर भिगो दे और दूसरे दिन प्रात काल मल कर छान ले । इसे पीने से प्रवल रक्तपित्त भी नष्ट हो जाता है ।

मुग्दामलक यूप—मूग और आमले के क्वाथ मे घी तथा सैंधानमक मिलाकर पीने से छर्दि (वमन) रुक जाती है —भा० भै० र०

मूंग की खाद्य बनावटें—

मूग पाक—मूग की दाल को पानी मे गलाकर उसका छिलका निकाल कर उस को सिल पर बारीक पीस लेना चाहिये । फिर उसको समान भाग गाय के घी मे डालकर हल्की आच पर सेकना चाहिये । जव उसमे खूशवू आने लगे तव उसको उतार कर उसमे दुगुनी शक्कर की चाशनी वनाकर मिला देना चाहिये और साथ ही वादाम पिस्ते, इलायची, केशर, खोपरा और वशलोचन भी उसमे मिलाकर लड्डू वाध लेना चाहिये । इन लड्डूओं को पाचन शक्ति के अनुसार उचित मात्रा मे गरम दूध के साथ खाने से वीर्य वढता है और काम शक्ति, स्मरण शक्ति तथा मनुष्य की जीवनी शक्ति सतेज हो जाती है ।

मूंग घी दाल की पूडियें—आघा सेर मूग की दाल को धफाकर पीस लें फिर इसमे खाण्ड आधा सेर इलायची ६ माशा मिला लेवे, वाद मे चावल का आटा ½ सेर, उडद का आटा ½ सेर इन दोनो को एकत्रित करके घी का मोयण डालकर कडा गौंध लेवे । और ऊपर का पूरण इसमे मिला देवे । कठिन हो जाय तो थोडा पानी डालकर ठीक करले । फिर इच्छानुसार पूडिया वनाकर घी सवा सेर मे तल लेवे । ये पूडिया वलवान व्यक्तियो के लिये वडी स्वादिष्ट है ।

मूग की दाल को तलने का तरीका—मूग की दाल २ किलो लेकर शाम को जल मे भिगो दे प्रात धोकर पीछे कडाही मे ½ किलो तेल डालकर गरम करें वरावर गरम हो जाय तव उसमे दालचीनी के टुकडे ४, लौंग ३०, कालीमिर्च १६ को पीसकर डाले और दाल छौंक दे । पीछे जरूरत अनुसार नमक और २ चम्मच हल्दी डाले । वाद ढक्कन ढककर धीमी आच पर पकने दें, जव वरावर तैयार हो जाय तो उतार कर काम मे लेवे । यह दाल स्वादिष्ट और पाचक है ।

मूग की गाढी दाल-१ किलो मूङ्ग की दाल लेवे वाद मे धोकर साफ करे अव एक तपेली मे २ किलो पानी रखे और उवाल आ जावे तव दाल डाले और अच्छी तरह पकने दे । पकने के वाद जरूरत अनुसार नमक, मिर्च, हल्दी डाल दे । फिर १५० ग्राम तेल लेकर एक कडाही मे गरम करे और ½ तोला राई, ½ तोला सूखी मिर्च १ माशा हीग का वघार देवे और दाल डाल दे । और धीमी आच पर पकने दे वाद मे काम लेवे । यह स्वादिष्ट और पाचक है ।

मूग के अकुर फूटी हुई दाल—मूगो को लेकर साफ करे । वाद एक तपेले मे पानी डालकर भिगोदे और ढकदे । २४ घण्टे वाद निकाल कर एक छवडी मे डालकर ऊपर एक कपडे का टुकडा भिगोकर ढकदे जिससे उस रात मे या दूसरे दिन सुवह उसमे अकुर फूट जावे । कभी छावडी के वदले एक साडी या कपडे के टुकडे मे डालकर पोटली वाधकर उसको खूटी पर लटका के रखे तो भी अकुर निकल आते है । इस प्रकार अकुर निकल आने के वाद, दूसरे दिन उनको पोटली से वाहिर निकाल कर धो डाले और एक तपेली मे एक तोला तेल डालकर

चूल्हे पर चढावे। जब वह तप जावे तब ५ सूखी मिर्चियो का चूर्ण ५ तोला राई और १ माशा हींग डालकर सेके, बराबर बघार आने पर उसमे मूगो को डाल दे। और जब वे ठीक तौर पर पकजावे तब नीचे उतार कर फिर करछी से उस दाल को खूब घोटकर एक रस करे। फिर उसमे हरी मिर्च ४, जीरा ५ तोला, दालचीनी ५। तोला, लौंग ६ माशा, लहसन ५। तोला, हल्दी १ तोला धनिया पिसा २½ तोला, काली मिर्च बराबरी १ तोला आखा धनिया २ तोला, जीरा २½ तोला, सौंफ ५ माशा इलायची ५ माशा। इस प्रकार मसाला बारीक पीसकर मिलावें। पावभर कांदे को बारीक पीसकर ३ तोला घी मे तलकर उसमे डाले पीछे उसमे ½ से १ सेर पानी डाल कर और पाव से आधा सेर तक इमली का रस डालकर एक दो उफान आने देकर उतार के खाने के काम मे लेवे यदि इस दाल मे बघार करने की इच्छा हो, तो लहसन को घी मे तलकर बघार देवे। यह दाल भी स्वादिष्ट और पाचक है।

मूग की दाल—एक तपेली मे तीन सेर पाणी का आवण रखकर बराबर उफान आवे तब उसमे मूग की साफ धुली दाल १ सेर सीजने देवे। जब वह बराबर बन जावे तब उसमे नमक ८ तोला, हल्दी १॥ तोला, धनिये की पत्ती २ तोला और हरीमिर्च नग २० का पीसकर डाले। इसी प्रकार लहसन डालना हो तो उसको भी पीसकर डाले। फिर उसमे १ पाव इमली का रस डालकर थोडी देर उकलवा देवे। एक करछी मे १ तोला घी, एक टुकडा दालचीनी, १ लौंग और पाच सूखी मिर्चो का बघार तैयार कर उस दाल मे करछी को डुबोये और उसके बाद उस दाल को उबलवा देवें। यदि इमली नही डालना हो तो पीछे से नीबू का रस भी डाला जा सकता है। यह दाल स्वादिष्ट और रुचिकर है।

मूग की दाल की खिचडी—चावल एक सेर लेकर भली प्रकार धोकर पानी मे पौन घण्टा भिगो देवें फिर एक पीतल की चलनी मे डालकर पानी निकाल लेवे। बाद मे चूल्हे पर पतीली रखकर उसमे एक पाव घी डालकर इसमे डेढ तोला पियाज पीसकर या बारीक कतर कर डाले, ४ माशा दालचीनी के टुकड़े डालकर सेके, लाल होने आवे या अच्छा पक जाय तब उसमे ६ छटाक मूग की दाल डालकर फुरती से हिलाते हुये दाल पकने पर उसमे २ माशा लौंग डालकर हिलावे। इस दाल मे धोकर रखे हुये चावल डाले और फुरती से हिलाते हुये तीन सेर के अन्दाज गरम किया हुआ पानी डाले। ½ तोला नमक और आधा सेर दूध डालकर ढक्कन ढक कर मन्द आच से पकने देवे जिस मे तपेले का जल उफनाकर बाहर नही निकल जाय। खिचडी के दाने को दबाकर देखे जब तैयार हुई मालूम हो तब उसमे ३ तोला घी २ माशा इलायची का चूरा डालकर फुरती से हिलावे और ऊपर नीचे करके उतार कर थोडी देर अग्नि पर रखकर फिर गाढी होने पर खाने के उपयोग मे लेवें।

नोट—जितने पकवान और शागे चने से बनती है। वे सब मूग से भी तैयार होती हैं।

मूँगफली (Arachis hypogaea Linn)

यह तेल वर्ग और शिम्बी कुल (Leguminoae) का एक क्षुप होता है जिसकी शियाल फसल मे कृषि की जाती है। यह तिल्ली के बाद तेल की पूर्ति मे दूसरे नम्बर की चीज है। अधिक तर खाने मे और वेजीटेबिल घी के निर्माण मे इसी का तेल काम मे आता है। मूंगफली या चीना बादाम भारत वर्ष मे सभी और खाने के काम मे आती है। इसके पत्ते मैथी के पत्तो की तरह मगर उनसे कुछ बडे होते है। इसके पौधो मे से बारीक बारीक ततु छूटकर जमीन के अन्दर घुसते है और जमीन मे इन्ही ततुओ के ऊपर मूगफली तैयार होती है। जिसको पकने के बाद खोदकर निकाला जाता है। मूगफली की भी देश के भेद से कई जातिया होती है। जैसे मारवी,

मूंगफली

ARACHIS HYPOGAEA LINN.
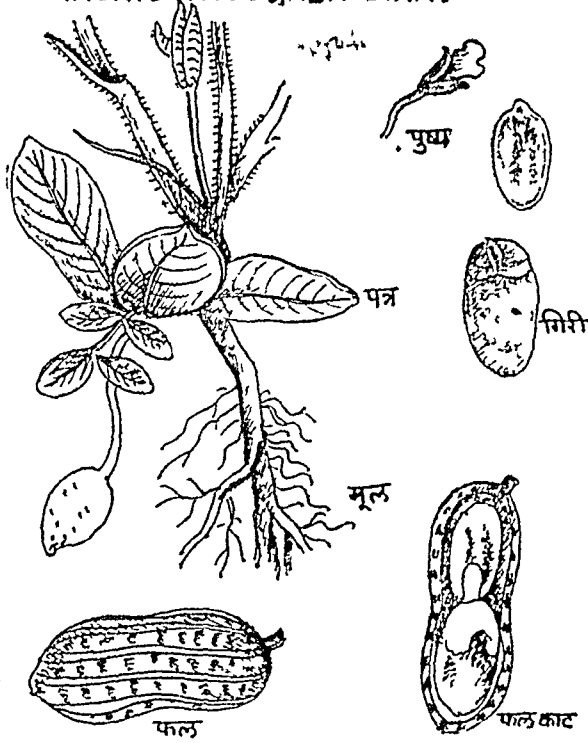
बरारी, विदेशी इत्यादि ।

उत्पत्ति स्थान—

सर्वत्र कृषि की जाती है ।

नाम—

स०—भूशिम्बिका, रक्तबीज, मडपी, भूमिजा । हि०—मूगफली, चीना बादाम । मराठी–भुइमूंग, भुइ मुगाची शेग । गु०—माडवी, भुइचना, चीनीमुग । ब०—विलायतीमुग, चीनी बादाम । ता०—नीलाकदाई, बेर कद लाई । ते०–वेरूषनागूल । फा०–मुलीयन बेल । अ०–शेप बानी अ ०—(Pea nut or Ground nut) पीनट या ग्राउण्ड नट ले०—एराचिस हाइपोजिया ।

रासायनिक सगठन—

मूगफली मे–एमिनो एसिड–आर्चीनीन १३ ६, हिस्टिडिन २ ०, लाइमिन ४ ४, सिस्टाइन १ २, टाइरोसिन ५ ४, ट्रिप्टोफेन ० ७ हे ।

मूगफली के तेल से जो खली निकलती हे उसमे अच्छा प्रोटीन का प्रमाण है । प्रत्येक खली मे पोषण की दृष्टि से मूगफली की खली उत्तम है। इस खली से बहुत पौष्टिक पेटेट खाद्य बनते है । यह खली खाद तरीके से चाय काफी आदि के बगीचो को बहुत मूल्यवान है । पशुओ को खिलाने के काम मे भी यह खली आती है । खली पौष्टिक है । मू गफली मे चर्वी, प्रोटीन, बी. १, बी. २ विटामिनो, निकोटिनिक एसिड, विटामिन ड, पाइरो डोक्सिन, लिसिथिन जैसे उपयोगी पदार्थ हैं ।

लाल छाल वाली मूगफली मे बी १ विटामिन ठीक होता है । शर्मा ने तो बी ६ (पाइरोडोक्षिन) भी मूगफली मे देखा है । मूगफली मे लिसिथिन (मगज का उपदान तत्व) बहुत है। अमेरिका मे [Pea nut Butter] मूगफली का मक्खन खुराक की एक सदैव की वस्तु ही बन गया है । यह मक्खन सेंडवीच, कैंडी आदि बनाने मे उपयोग होता है । चरवी और बत्रिल से भरपूर यह उपयोगी खाद्य सुपाच्य भी है। ९६ प्रतिशत जितने पोषक पदार्थ पच जाने वाले हैं । गाय के मास से मूगफली की कैलोरी कीमत ५ गुनी ज्यादा हैं। मूगफली पचने मे भारी है । यह बात सही नही है। चरबी का प्रमाण इसमे ज्यादा है। इसलिए मूगफली गुरु तो है, परन्तु भली प्रकार चबाकर खाने से, सेककर खाने से यह सुपाच्य है । मूगफली के प्रोटीन ९७.४ प्रतिशत जितने पच जाने वाले हैं । सोयाबीन और दूध की प्रोटीन की तुलना मे मूगफली की प्रोटीन ऊंची जाति की है । उपयोगी अङ्ग—फल, तेल और खली । (आ० नि०)

गुणधर्म व प्रयोग—

यह रस मे मधुर, वीर्य मे उष्ण, विपाक-मधुर, दोषघ्नता–वातपित्त है ।

मूगफली—मधुर, स्निग्ध, वादी, कफ कारक, मलरोधक, मल को बाधने वाली है, इसके तेल के गुण इसी के समान जाने । (शा० नि०)

मूगफली का तेल—यह कुछ पीला, गन्ध रहित तेल है । इसे मधुमेह, शुक्र विकृति मे देते है, यह आतो के लिये बलकारक है ।

हाथ पैर मे होने वाले उकवत, अपरस मे मालिश करने से लाभ होता है तथा प्रत्येक चर्म रोग मे इसका व्यवहार होता हे। १-२ तोले तक मात्रा मे अन्त प्रयोग करते है, इससे अधिक मात्रा मे दस्त होने लगते है। (भा० नि०)

आयुर्वेदिक मत मे मूगफली का तेल मीठा आतो के लिये सकोचक, वात कफ को पैदा करने वाला और खासी को उत्पन्न करने वाला होता है। मूगफली के तेल का धर्म जैतून के तेल के समान होता है।

यह आनुलोमिक, व्रणरोपक, काति वर्धक और पौष्टिक होता है। भोजन के अन्दर इसका उपयोग करने से दस्त साफ होता हे।

इसकी कच्ची फलिया दुग्धवर्धक होती है जिन माताओ को अपने बच्चो के लिये पर्याप्त मात्रा मे दूध नही उतरता है उनको इसकी कच्ची फलिया खिलाने से पर्याप्त मात्रा में दूध उतरने लगता है। (व० च०)

मूगफली पौष्टिक हे। इसमे बहुत ही पोषक पदार्थ है। बालको को रोज २ तोला मूगफली दी जावे तो उनको खुराक की कमी अधिक महसूस नही होगी। मूग फली और चना बालको को छूट से देना चाहिये।

इसका तेल ओलिव आयल (Oelive oil) की जगह काम मे लाया जा सकता हे। हाल मे विदेशो से जो ओलिव आयल आता है वह मूगफली का ही रिफाइन्ड बनाया हुआ तेल है। ऐसा डा० आर० एन० चोपडा कहते है। ओलिव आयल की कीमत खर्च करके मूगफली ही का तेल खाना, इसके एवज मे मूगफली का तेल खाना विशेष उत्तम है।

मूगफली का तेल खाने मे तिली के तेल के समान ही गुण वाला है। कोल्ड प्रोसेस से निकाला हुआ तेल बिना रङ्ग का ओलिव जैसा स्वाद मे उत्तम, अच्छी सुंगन्धयुक्त होता हे। गरम करके निकाले तेल की अपेक्षा यह तेल कम निकलता है। (आ० नि०)

मूली (Raphanus sativus Linn)

यह शाक वर्ग और राजिकादि कुल (Crucifereae) की प्रसिद्ध शाक है। मूली भारत के सब जिलो मे होती है। यह वर्षायु और द्वि वर्षायु है। इसका पौधा १ फीट से १½ फीट तक ऊचा होता है। इसके पत्तो पर बारीक बारीक रुयें होते है। इसकी जड जमीन मे सीधी जाती है यह अधिकतर सफेद रग की होती है। इसकी जड और पत्तो की तरकारी बनाकर सब जगह खाई जाती है। इसकी सफेद बडी जाति, सफेद छोटी जाति और लाल गोल आदि कई जातिया है। यह विशेषत शीतकाल मे होती हे, किंतु कितनेक स्थानो मे सब ऋतुओ मे मिलती रहती है। इस के क्षुप पक्व होने पर उसमे फली आती है उसे मोगरी कहते है, उसमे बीज रहते है। बीजो को मक्खन मे डाल कर बोने मे मूली कोमल और बडी होती है। कोमल कद का अचार और रायता बनता है। कोमल कद, पान और और कोमल फली का शाक भी किया जाता है। कद और बीजो मे से तैल निकलता है। तेल की सुगन्ध और स्वाद मूली के समान हे। यह तैल जल मे भारी और रग रहित होता है। इस गाढे तैल के अतिरिक्त इसमे से उडनशील तैल, गन्धक और फासफारिक एसिड भी मिलता है चरक सहिताकार ने अहिततम आहार के भीतर मूली को अति अधिमथ कन्द कहा हे।

उत्पत्ति स्थान—इसकी सारे भारत मे कृषि की जाती है और यह सर्वत्र खूब होती हे।

नाम—

स०—मूलक, हस्तिदन्तक, हरिपर्ण। व० गु० म०—मूला। सिंधी—मूरे। प०—मूली। फा०—तुर्ब। अ०—फुज्ल। क०—मूलगी। ता०, ते० मल०—मुल्लगी। अ०—Radish। ले०—रेफेनस सेटिवस।

रासायनिक संगठन—

नव्य अनुसधानानुसार मूली मे प्रथिन ½, मेद ⅛ और कर्बोदक ७½% है तथा रवट ४६, स्फुर १७ और लोह ४७ प्रति दश सहस्त्र हे। उष्मांक प्रति १०० ग्रामो मे ३५ होती है। जीवन तत्व अ (करोटिन) ३ व ६० और क

मूली

RAPHANUS SATIVUS LINN.
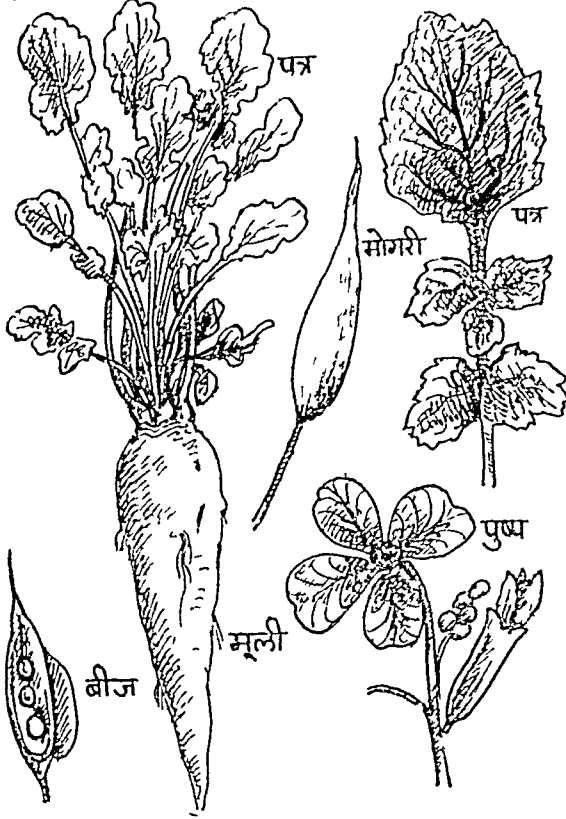
१७ प्रति १०० ग्रामो मे अवस्थित है इनके अतिरिक्त पालाश और ताम्र भी सूक्ष्म परिमाण मे मिलते हे । जलाने पर राख क्षारीय होती है ।

उपयुक्त अङ्ग—कद (मूली), पत्र और बीज ।

गुणधर्म और प्रयोग-

सक्षेप मे-रस-कटु, वीर्य-उष्ण, विपाक-कटु; दोषघ्नता-वात हे ।

मूली—तीक्ष्ण, गरम, कटु, उष्ण, ग्राही, ववासीर, गुल्म, हृद्‌रोग और वात का नाश करती है, रुचिकारक और भारी है । —शा० नि०

वडी मूली—गरम, चरपरी, रुचिकारक, दीपन, कफ वात नाशक, कृमिघ्न, गुल्म नाशक, ग्राही और भारी है । —रा० नि०

छोटी मूली-गरम, रुचिकारक, हल्की, पाचक, त्रिदोष नाशक, स्वर शोधक, ज्वर, श्वास, नासिका रोग, कठरोग नेत्ररोग को दूर करती है ।

बडी मूली-भारी, विष्टम्भकारी, तीक्ष्ण और त्रिदोष जनक है । वही तेल वृत्तादि मे पकाई हुई-कफकारक और साग-पित्ताहारक हो जाती है । —शा० नि०

वडी मूली—रुखी, गरम, भारी, त्रिदोपकर है वही मूली तेल मे सिद्ध की हुई त्रिदोपनाशक हो जाती है । —भा० नि०

सूखी मूली-त्रिदोप नाशक, शोथ निवारक, विपनाशक और हलकी है । मूली के फूल—कफ पित्त नाशक और मूली की फली कफवात नाशक है । —रा० ब०

कच्ची मूली—कडवी, चरपरी, गरम, रुचिकारक, हलकी, अग्नि प्रदीपक, हृदय को हितकारी, तीक्ष्ण, पाचक सारक, मधुर, वल्य, मूत्रदोप, ववासीर, गुल्म, क्षय, श्वास खासो, नेत्ररोग, नाभिशूल, कफ, वात, कठरोग, त्रिदोष, दाह, शूल, उदावर्त्त, पीनस और ब्रण का नाश करती है । पुरानी मूली-उष्ण वीर्य, शोष, दाह, पित्त और रुधिर के विकारो को उत्पन्न करती है । पकी मूली—चरपरी, गरम, अग्निजनक है, यह भोजन से प्रथम भक्षण की हुई बलकारक और हितकारक है । मूली की फली—किंचित गरम और कफ वातनाशक है ।

मूली के फूल—कफकारक और पित्तजनक है । —रत्नाकर

कच्ची कोमल मूली—रस मे चरपरी और तिक्त, हृद्य, रोचक, दीपन, सर्वदोष हर, लघु और गले के लिये हितकारी है ।

पकी मूली—गुरु, विष्टम्भि और तीक्ष्ण है ।

पुरानी मूली या सख्त हुई मूली—पचने मे भारी, पेट मे गुडगुडाहट पैदा करने वाली और तीनो दोषो को कुपित करने वाली है । कोमल मूली को स्नेह मे पकाकर शाक खाने से वात, पित्त, कफ तीनो दोषो को जीत लिया जाता है । सूखी मूली त्रिदोप हर, विषहर और लघु है । मूली के सिवाय अन्य सूखी शाके विष्टम्भि और वातल मानी जाती है ।

मूली के पुष्प, पत्र और फल (मोगरी) कफ और वायु को नाश करते है । —सु सू. अ ४६

कोमल मूली त्रिदोषहर है । पकी मूली त्रिदोष कारक है । स्नेह सिद्ध मूली का शाक वातहर और सूखी मूली का कफ वातहर है । —चरक

मूली उष्ण वीर्य और तिक्त रस वाली होती है इसके ताजे पत्तो का रस और इसके बीज मूत्रल, ानुलोमिक और पथरी को नष्ट करने वाले होते है ।मूत्रेन्द्रिय पर भी इनकी थोड़ी बहुत क्रिया होती है । जिन लोगो को हमेशा आदतन कब्जियत की शिकायत रहती है, उनको प्रतिदिन मूली की तरकारी खाने से लाभ होता है ।

इसके पत्तो का रस —उदरशूल, अफरा और अर्श रोग मे लाभ पहुचाता है । आनाह रोग मे यह एक उत्तम औषध है । अनार्तव रोग मे इसके बीजो को ३ माशा की मात्रा मे देने से लाभ होता है । पुराने सुजाक मे इसके बीज ६ माशा की मात्रा मे दिये जाते हैं । —व. च.

यूनानी मतानुसार—प्रकृति–मूली पहले दर्जे मे उष्ण और दूसरे मे रुक्ष है ।

गुण–कर्म—मूली मे दोवीर्य (जौहर) एक दूसरे के विपरीत पाये जाते है । एक वीर्य पार्थिव है जो सान्द्र (गलीज) और चिरपाकी होता है और दूसरा उष्ण एव प्रवाही (लतीफ) है और इसी वीर्य के आधार पर मूली तारल्यजनन, पाचन, वातानुलोमन, मूत्रल और प्लीहा शोथविलयन है । जब इसको भोजन के साथ खाया जाता है तब यह उसको शीघ्र पचाकर भूख लगाती है किन्तु अपने पार्थिव वीर्य के कारण स्वयं देर मे पचती है । यही कारण है कि भोजन पच जाने पर भी पीछे तक डकारें आती रहती हैं, जिनमे मूली की गध होती है । मूली के पत्तो मे मूत्रजनन शक्ति अत्यधिक होती है । फली—पाचन होने पर गुरु एव ग्राही होती है । मूली के पत्तो और जडो को जलाकर बनाया हुआ क्षार (मूली क्षार) पाचन एव मूत्रल है । यह अर्श रोग मे हितावह है । शाक–मूत्रल है, वृक्क और मूत्राशय की अश्मरी का भेदन कर देती है । मूली के बीज–दूसरे दर्जे मे गर्म, खुश्क, वृक्क और यकृत को हानिकर है । दर्पहर–सपिस्ता (लिहसोडा), कतीला और शक्कर है ।

डाक्टर वामन देसाई के मतानुसार—मूली उष्णवीर्य है । ताजे पानो का रस और बीज मूत्रल, आनुलोमिक और अश्मरी हर है । ताजे पान रक्त पित्त शामक है । इसकी क्रिया प्रजनन सस्थान पर भी होती है ।

मात्रा—स्वरस ४ तोले से ६ तोले तक । बीज—विशेषकर मूत्रार्तव जनन और वात विलयन हे । मात्रा–१ से ३ माशा तक । वमनार्थ—६ माशे तक ।

उपयोग–

मूली का उपयोग प्राचीन काल से हो रहा है । चरक और सुश्रुत सहिता मे अनेक रोगो पर मूली का उपयोग हुआ है । अग्निमाद्य, अरुचि, पुराना कब्ज, अर्श, अफरा, मासिक धर्म मे कष्ट होना, पुराना सुजाक, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कफवात ज्वर, श्वास, हिक्का और शोथ इन सब रोगो मे लाभदायक है । अफरा, अपचन और वातिक कास पर मूली का शाक हितकर है । पित्ती (शीतपित्त) के जीर्ण रोगी को सूखी मूली के यूप का सर्वदा सेवन करते रहना चाहिये ।

आचार्य चक्रदत्त जी ने कफ वात ज्वर, अर्श, अतिसार, प्रवाहिका, श्वास, हिक्का, और शोथ आदि पर मूली के यूप की योजना की है । अफरा, अपचन और वातज काम पर मूली का शाक हितावह है । जीर्ण शीतपित्त रोगी को मूली का यूप सर्वदा देते रहना लाभदायक है ।

यूनानी मतानुसार उपयोग–कच्ची मूली को काटकर नमक के साथ खाते तथा तरकारी पकाकर सेवन करते है । प्लीहा, शोथ मिटाने के लिए मूली को सिरके मे डाल कर खिलाते है । इसके स्वरस मे अर्शोघ्न औषधियो को गूथकर गोलिया बनाते है । इसके स्वरस मे चौथाई भाग तिल का तेल मिलाकर मदाग्नि पर पकाते हैं । जब केवल तेल रह जाता है तब उसको छानकर रख लेते हैं । और कर्ण शूल एव कर्ण क्ष्वेड (तिन्नीन व वदी) नष्ट करने के लिए कान मे टपकाते हैं । कामला रोग मे मूली की पत्तियो का रस शक्कर व बूरा मिलाकर पिलाते है । इसी हेतु जलोदर मे भी इसका सेवन गुणदायक है वस्तिवृक्का श्मरी के उत्सर्ग के लिए इसका क्षार खिलाते हैं । अहितकर सिर, कठ, दत को और उत्क्लेश कारक है, निवा-

रण जीरा और नमक। प्रतिनिधि— शलगम।

प्रयोग—

शुष्कार्श मे—सूखी मूली की पुल्टिस करके मस्मे पर सेक करना चाहिए। —चरक चि अ ६।

अर्श मे—सूखी मूली का यूप पानी अथवा बकरी के मास के यूष मे मिलाकर पीवे। —च० चि० अ० ६

अतिसार मे—मूली का यूप पिलाना।

ग्रन्थि विसर्प मे—सूखी मूली की लुगदी को कुछ गरम करके लेप करें। —च० चि० अ० ११

कफज शोथ मे—मूली के गरम रस का सीचन करना। —च० चि० अ० १७

हिचकी और श्वास मे—मूली का यूष पीने से हिंचकी और श्वास मिटते है। सूखी मूली का निवाया ५ से १० तोले क्वाथ १-१ घण्टे पर पिलावे।

वातज कास—मूली का शाक खाना उत्तम है। —च० चि० अ० २२

कफ वातात्मक ज्वर मे—कोमल मूली का यूष कफ वातात्मक ताप मे उत्तम है। —चक्रदत्त

सिध्म कुष्ठ मे—मूली के बीज अवेडा के रस मे पीसकर लगाने से मिटता है।

कालेरा के समान अतिसार मे—कोमल मूली के क्वाथ मे पीपर का चूर्ण मिलाकर पिलावे। —भा० प्र०

सर्व प्रकार की शोथ मे—तिलो के साथ मूली का सेवन करने से प्रत्येक प्रकार की सूजन मिट जाती है।

रक्तार्श मे—रसाजन को मूलक स्वरस से ३-४ बार भावना देकर चने के समान गोलिया बनालें। यह गोलिया प्रतिदिन प्रात मक्खन से खिलावे, तो रक्तार्श दूर हो जाता है। —कै० नि०

अथवा—४-६ या अधिक मूली के कन्द मे से ऊपर का सफेद रेशेवाला भाग और पानो को अलग कर शेष कन्द को कूटकर रस निकाले। इस रस मे ६ माशे घी मिलाकर प्रतिदिन सुबह सेवन कराने से रक्तार्श दूर हो जाता है। एव शुष्कार्श मे लाभ पहुचाता है। —गा० औ० र०

अम्लपित्त मे—कोमल मूली को मिश्री मिलाकर खिलावे या पानो के रस मे मिश्री मिलाकर पिलावे।

मूत्र शुद्धि के लिये—मूली के पानो के रसमे कलमी शोरा मिलाकर पिला देने से मूत्र साफ आ जाता है। मूत्रावरोध दूर हो जाता है। अर्श रोग मे भी आवश्यकता पर प्रात साय दिन मे २ बार यह पिलाया जाता है।

मुर्दाशख (ककुष्ठ) का विष—मूली और सोया खिलाने या मूली का स्वरस पिलाते रहने से शीशा और मुर्दासख का विष जो रक्त आदि धातु मे लीन हुआ है, वह नष्ट हो जाता है। (गा० औ० र०)

मूत्रावरोध—गुर्दे की विकृति से यदि पेशाब का बनना बन्द हो जाय तो मूली का रस पीने से वह फिर से बनने लगता है।

बिच्छू का विष—मूली के टुकडो पर नमक लगाकर बिच्छू के डक पर रखने से वेदना शान्त होती है। जो लोग हमेशा मूली खाया करते है। उन पर बिच्छू का विष कम असर करता है।

पाण्डु रोग—मूली स्वरस (पत्तो सहित निकाले) दिन मे ३ बार २-२ तोला पीने से पाण्डु रोग मे लाभ होता है। अथवा मूली स्वरस ७ तोला मे शक्कर ४ तोला मिलाकर पीना लाभ करता है। अथवा मूली पत्र स्वरस ६ तोला व खाण्ड १½ तोला मिलाकर प्रतिदिन पिलाया करे।

यकृतरोग—मूली का उत्तम क्षार १ माशा की मात्रा मे छाछ के साथ लेना लाभकारी है।

जलोदर—मूली का रस ७ तोला, खाड ३ तोला मिलाकर सुबह के वक्त लेना लाभकारी है।

जलोदर रोग—मूली का क्षार १ माशा को अर्क मकोय या मकोय के फाडे हुए आधा पाव स्वरस के पानी के साथ दिन मे ३ वक्त लेने से यकृत या वृक्क से उत्पन्न सोजा मिट जाता है।

प्लीहा रोग मे—मूली के १० तोला जल मे मूली का क्षार १ माशा मिलाकर दिन मे ३ वक्त पिलाने से तिल्ली का दर्द मिट जाता है।

यकृत-प्लीहा रोगो मे—मूली को चीर कर चार चार फाके बनाले और चीनी की रकाबी मे रखकर उन

पर ६ माशा नौसादर पीसा छिड़क कर रात को ओस मे रख दें। सुबह इससे जो पानी निकले उसको पीकर ऊपर से मूली की फाके खालें। इस प्रकार १ सप्ताह सेवन करने से कलेजे और प्लीहा के रोग मिट जाते हे। मूली के बीज १ माशा, सुबह और शाम को खाना प्लीहा और यकृत के रोगो मे मुफीद हे।

मूत्राघात रोगे—मूत्राशय के रोगो मे मूली को खाने से बन्द हुआ या रुका हुआ पेशाव खुल जाता है।

पथरी पर—मूली की शाखो का रस पत्तो को छोड़कर १० तोला निकाल कर पीने से पथरी के टुकडे हो जाते है।

पथरीपर न०२—मूली के पत्तो का रस ८ तोला में अजमोद ३ तोला मिला कर पीने से पथरी गल जाती है।

अश्मरी पर न–३—मूली मे गड्ढा खोदकर उसमे शलगम के बीज डालकर के गुंधा हुआ आटा ऊपर लपेट कर भूभल मे सेक कर जब भरता हो जाय या पक जाय तब निकाल आटे को अलग करके खा लेवे। इसमे पथरी के टुकडे-टुकड़े होकर निकल जाते है।

सुजाक पर—मूली की ४ फाके करके उन पर भूनी फिटकरी का चूर्ण ६ माशा छिडक करके रात्रि को ओस मे रख देवे। सुबह वे फाकें खाकर ऊपर से जो पानी निकला है उसको पी लेवे। सुजाक मे लाभ होता हे और पथरी गल जाती है।

रुका हुआ ऋतु—मूली के बीज ६ माशे दिन मे ३ बक्त कुछ दिन खाने से रुका हुआ मासिक धर्म जारी हो जाता है।

दर्द गुर्दा—कलमी शोरा १ तोला खरल मे डालकर मूली के रस के साथ घोटे जब तक १२ तोले रस खत्म न होजावें। बाद मे झडबेरके समान गोलिया बना लेवे। मात्रा—१ से २ गोली।

रक्तार्श पर—फिटकरी १० तोला, मूली की शाखो का रस १ सेर मे औटावें गाढा होने पर जगली बेर के समान गोलिया बना लेवें। मात्रा–१ गोली मक्खन मे लपेटकर निगलवा देवें। ऊपर से आधा पाव दही पिला दे। रक्तार्श पर उत्तम योग है।

मूत्राघात और अश्मरी पर—मूली का क्षार, गोखरु का क्षार, यवक्षार १-१ माशा, कलमीशोरा ३ माशा, सोडा बाई कार्ब १ तोला लेवें। अर्क कासनी १ पाव मे हल करके रख लेवे। मात्रा—२-३ तोला, २-३ बार पिलाने से पेशाव जारी होगा और गुर्दे तथा मूत्राशय की पथरी मिटेगी।

सग यहूद भस्म—सग यहूद, सग सरमाही बराबर लेकर मूली के रस मे खरल करके टिकिया बना के विधिवत् भस्म करे। मात्रा—२ रत्ती। अनुपान–शरबत बजूरी। —र० अ० ला०

अचार मूली—उम्दा मूलियो के छिलके उतार करके छोटे–छोटे टुकडे कर इन टुकडो पर नमक और कालीमिर्च चूर्ण छिडक दे और बरनी मे रखकर धूप मे रख देवें और हिला दिया करे उम्दा अचार तैयार हो जायगा।

गुण—तिल्ली, बवासीर, बन्द पेशाब के लिये मुफीद है। —रहनुमाए अकाकीर लाहौर से

मूली के विशिष्ट योग—

मूलकाद्य घृतम्—सूखी मूली और हरा पुनर्नवा तथा लघु पचमूल (शालपर्णी, प्रश्नपर्णी, कटेरी, कटेरी बडी, गोखरु) और अमलतास की फली का गूदा १–१ सेर लेकर सबको ६४ सेर पानी मे पकावे। जब ८ सेर पानी शेष रह जाय तो छान ले। २ सेर घी मे उपरोक्त क्वाथ मिला कर मन्दाग्नि पर पकावे।

गुण—इसे पीने से उदावर्त अवश्य नष्ट हो जाता है। —भा भै र

मूलकाद्य तैलम्—(१) खरेटी की जड, चीतामूल सेंधा नमक, पीपल, अतीस, रास्ना, चव्य, अगर, चीतामूल (पाठभेद के अनुसार सहजने की जड), भिलावा, वच, गोखरु, कूठ, सोंठ, पोहकर मूल, कचूर, बेल की छाल, सोया, तगर, देवदारु। प्रत्येक २ तोला लेकर सबको एकत्र पीसले। ४ सेर तिल के तेल मे, ४ सेर मूली का रस, ४ सेर गो दुग्ध, ४ सेर खट्टा दही, ४ सेर काजी और ऊपर लिखित कल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावे। जब पानी जल जाय तो तेल को छान ले।

इसे पीने से अत्यन्त प्रवल वात व्याधिया भी नष्ट हो जाती है।

मूलकाद्य तैलम्—(२) छोटी कच्ची मूली का स्वरस ८ सेर, खट्टा दही ८ सेर, काजी ८ सेर, दूध आठ सेर।

कल्क—रास्ना, भिलावा, सहजने की छाल, सैंधव, गज पीपल, खरैटी, अतिवला (कघी), सोठ, पीपल, चीता मूल, वच और गोखरू। प्रत्येक ५-५ तोले लेकर सवको एकत्र पीस ले तथा ८ सेर तेल मे उपरोक्त द्रव्य अर्थात कल्क मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जव पानी जल जाय तो तेल को छानले। यह तेल वात कफज रोगो को नष्ट करता है। इसकी मालिश से वृद्धि, व्रध्म, गृध्रसी, पगुता, खञ्जता, अपतानक, कटि स्तम्भ, उरुस्तम्भ, शोप, सन्ध्य स्तभ, प्रकम्पन और वातज गुल्म नष्ट होता तथा वर्णं और अग्नि की वृद्धि होती है। इसके प्रभाव से वध्या स्त्री को पुत्र प्राप्त हो सकता है।

मूलक क्षारादि लेप—मूली का क्षार, हल्दी का क्षार और शख का चूर्ण समान भाग लेकर सवको एकत्र मिला कर लेप करने से अर्वुद (रसौली) का नाश होजाता है।

मूलक वीजादि लेप [१]—मूली के वीजो को खट्टी छाछ मे पीसकर लेप करने से गण्ड माला, अर्वुद और गल गण्ड का नाश होता है।

मूलक वीजादि लेप [२]—चिरचिटे के पत्ते के रस मे मूली के वीज पीसकर लेप करने से अथवा केले के क्षार और हल्दी का लेप करने से सिध्म नष्ट हो जाता है।

मूलक वीजादि लेप [३]—मूली के वीज, नीम के पत्ते, सफेद सरसो और घर का धुआ समान भाग लेकर सवको पानी मे पीसकर सिध्म पर लेप करें।

फिर [दूसरे दिन] उस स्थान पर नवनीत [मक्खन] मलकर गर्म पानी से धो डालें। तीन दिन तक यही उपचार करने से सिध्म नष्ट हो जाता है।

—भा० भै० र०

यूनानी विशिष्ट योग—

हव्वा ववासीर वादी [वातिक अर्श हरवटी]—ढाक की जड, जदवार १-१ तोले, हव्वुजत्याना २ तोला, हालो वीज, रसोत, हरडे, वहेडा, आवला, रस कर्पूर, रक्त चदन श्वेत चदन २-२ तोले, कत्था श्वेत, नीम पत्र स्वरस, मुण्डी रस, महन्दी पत्र स्वरस, वडी इलायची वीज, काली मिर्च जीरा सफद, गुलाव पुष्प, तवसीर, रेवन्दचीनी १-१तोला मूली पत्र स्वरस डेढ सेर, मधु उत्तम २४ तोले सव औपधियो को वारीक करे, दो दिन तक औपधियों को स्वरस मे खरल करे, फिर मधु मिलाकर वटी करें।

मात्रा—प्रात साय १-१ वटी अर्क केवडा, अर्क सौंफ के साथ प्रयोग करे।

गुण—यह वटी वातिक अर्श मे लाभप्रद है।

रोगन तुरव (मूली तैल)—मूलियो को कुचलकर स्वरस निचोड लें और इसमे सम भाग तेल डालकर पाक करें, तेल शेप रहने पर छान ले।

मात्रा—२-४ वूद उष्ण कर कान मे डाल।

गुण—कर्ण शूल तथा वात शूल मे उत्तम है।

हिजरल यहूद भस्म—हिजरल यहुद ५ तोले, कलमी शोरा १० तोले, मूली स्वरस ३ सेर, मिट्टी के प्याले मे नीचे एक छटाक कलमी शोरा डालें, और कलमी शोरे के ऊपर हिजरल यहूद के टुकडे रखे, ऊपर वाकी का कलमी शोरा डाल दे और आधा सेर मूली का रस डाल कर कपरोटी कर १० उपलो की आच दे, शीतल होने पर निकाल कर फिर आधा सेर मूली का रस डालकर ५ सेर उपलो की आच दे, इसी तरह से ४ और पुट दे, ६ पुटो मे सुन्दर भस्म वन जायेगी।

मात्रा—१ रत्ती भस्म मे २ रत्ती यवक्षार मिलाकर जल के साथ प्रात दोपहर और साय, प्रयोग मे लावे।

गुण—सप्ताह भर मे वृक्क तथा मूत्राशय की अश्मरी के टुकडे करके निकाल देता है।

—यू०सि०यो०स० एव यू०चि०सा०

हिजरल यहूद भस्म [विशेप]—हिजरल यहूद, अभ्रक भस्म [जो दुगना कलमी शोरा डालकर वनाई गई हो] विच्छू प्रत्येक ३ तोला, इनको मूली पत्र स्वरस निथारे हुये मे ३-४ प्रहर खरल करें, तत्पश्चात् ५ सेर उपलो की आच दे। इसी प्रकार मूली पत्र रस से भावित

करके ३० आच दे, परन्तु अन्त की पुट कम उपलो की हो।

मात्रा—४ चावल, योग्य अनुपान से।

गुण—उपरोक्त।

हिजरल यहूद भस्म—५ तोला हिजरल यहूद को मूली के रस मे खरल करें, जब १ सेर मूली का रस समाप्त हो जाये, तो टिकिया बनाकर कुलथी के नुगदा के मध्य मे रखकर ७ सेर उपलो की आच दे, शीतल होने पर निकाल लें।

मात्रा—१ से २ रत्ती। गुण—उपरोक्त।

अकसीर दर्द गुरदा—हिजरल यहूद, सगमकनातीस २॥—२॥ तोले, सग सरमाही १॥ तोला, सग लाजवर्द १ तोला, सग रासख १ तोला, मूली का रस १ पाव सब ऊपर के पाषाणो को वारीक पीसकर मूली के रस से खरल कर टिकिया बना सुखाकर यथाविधि १० सेर उपलो की आच दें, इस प्रकार दश पुट दें, तैयार है। मात्रा—२ रत्ती। विजय चूर्ण (यवक्षार, पपडीया क्षार अजवायन खुराशानी, सुहागा अपक्व, नौसादर, कालमिर्च सैंधव, शुद्ध हीग, कलमी शोरा १-१ तोला मिला कर वारीक चूर्ण करें) ३ माशा मे मिलाकर उष्ण जल से प्रयोग करे। गुण—दर्द गुरदा की अकसीर औषध है, मूत्रावरोध को नष्ट करती है, वायुनाशक तथा पीडा शामक हें।

—यू० चि० सा०

हब्ब बवासीर—रसौत ५ तोला और चाकसू २॥ तोला को मूली मे बन्द करके उसपर मोटे कपडे की ७ तह लपेट देवें। फिर उसे कपड मिट्टी करके तीन सेर जगली उपलो की अग्नि देवें। स्वाग शीतल होने पर औषध निकाल कर चना प्रमाण की गोलिया बनावे।

मात्रा—१ से २ गोली।

गुण तथा उपयोग—यह अर्श मे परमोपयोगी हे। हकीम नुरुद्दीन साहब भैरवी इसका प्रयोग किया करते थे। —यू० मि० यो० स०

श्वेताभ्रक भस्म—श्वेताभ्रक पाव भर को कैंची मे वारीक कतर कर बडी खरल या कूडी मे डालें और उसमे लाल अरड के पत्तो का रस डाल-डाल कर खूब घोटे कि सूक्ष्माति सूक्ष्म हो जावे। फिर गीली दवा को ही अर्क पत्रो (आक के पत्तो) पर थोडी-थोडी डालकर ऊपर से दूसरा आक का पत्ता ढकते जावे। चाहे कितने ही पत्ते लगें इसका अनुमान नही। इसके वाद एक गड्ढा खोदकर उसमे १० सेर उपले बिछा दे और उन पर वह दवाई वाले आक के पत्ते चुन-चुन कर रख दे। फिर उनके ऊपर १० सेर उपले (कण्डे) बिछाकर अग्नि दे। दूसरे दिन स्वाग शीतल होने पर धीरे-धीरे राख हटाकर सावधानी से श्वेताभ्रक भस्म को चुनले। यह भस्म गुलाबी मायल डलियो के रूप मे होगी। जिसे बारीक पीसकर शीशी मे सुरक्षित रखें। यह पथरी के लिये अकसीर भस्म है।

सेवन विधि—हजरूलयहूद भस्म २ रत्ती, श्वेताभ्रक भस्म २ रत्ती, यवक्षार ८ रत्ती, मूलीक्षार ८ रत्ती मिलाकर पुडिया बनावे। यह एक मात्रा है। प्रतिदिन दिन में ३ बार ऐसी मात्रा शर्बत बजूरी मोत दिल ४ तोला के साथ दिया करे। इसको १ सप्ताह प्रति दिन सेवन करते रहने से पथरिया गलकर मूत्र मार्ग से निकलने योग्य हो जाती है। और फिर २-४ दिन मे बिना किसी कष्ट से मूत्र के साथ निकल जाती हे।

—अनुभूत योग प्रकाश

मूली का अचार—मूली का अचार बडा स्वादिष्ट और गुणकारी होता है। ताप तिल्ली वाले रोगियो के लिए यह रामबाण का काम करता है जिगर को भी कम करता हे। इसे तरकारी की तरह भी इस्तेमाल कर सकते हैं और दवा की भाति भी। इस लिए यह अचार प्रत्येक घर मे होना आवश्यक है।

तैयार करने की विधि—

इच्छानुसार मूलिया बाजार से मगवालें, पानी से खूब धोकर, कपडे से साफ करके चाकू से उन्हे छीलकर उनकी फाके करले। किसी बरतन मे डालकर ऊपर से नमक मिर्च और हल्दी डालकर हिलाये ताकि मसाला मूलियो मे मिल जाय। फिर बरतन का मुँह बन्द करके रखदे। बन्द करने से पहले तेल का डोरा दे देना आवश्यक है।

तीन चार दिन के बाद निकाल कर देखे, अचार उठ गया होगा । जब अचार उठ जाय उसमे और तेल आवश्यकतानुसार डाल दें । अब अचार तैयार है । प्रयोग मे लावें परन्तु ध्यान रखे गन्दे हाथो मे बचते रहे और हिलाते रहे वरना जाला पड जायगा ।

मूली का अचार बिना तैल का—मूलिया धोकर साफ करले और चाकू से छीलकर उनकी फाके बनाले, अब तेज सिरका आवश्यतानुसार लेकर इसमे नमक डाल ले ।

मोगरी का अचार—मोगरी को लेकर नरम-नरम साफ करके बारीक-बारीक काट ले अब उन्हे किसी अमृतबान मे डालकर ऊपर मे सिरका डाल दें तथा नमक मिर्च भी पीसकर मिला दे । अचार तैयार होगा। सिरके के बजाय अचार मे खालिस सरसो का तैल भी डाला जाता है, जो अधिक स्वादिष्ट और स्थायी होता है । यदि ऐसा करना हो तो मोगरियों को पहले हलका सा जोश देकर पानी मे निकाल कर और फैलाकर सुखालें फिर नमक, मिर्च, ममाला डालकर तीन चार दिन धूप मे रखें और हिलाते रहे । चार दिन के बाद तेल डालकर कुछ दिन और धूप दिखलाये ।

—अचार, मुरब्बे, चटनी बहार से

मूर्वा नं० १ (Clematis Triloba)

यह वत्सनाभादि कुल [Ranunculaceae] की एक लता है । इसकी लता दूर तक बढ जाती है । इसका वैज्ञानिक नाम क्लिमेटिज = द्राक्षके समान वृक्ष पर चढने वाली बेल । ट्राइलोवा = तीन खण्ड युक्त । बहुत लम्बी अन्य वृक्ष पर चढने वाली बेल । उत्पत्ति—वर्षा ऋतु मे । नया भाग रेशम सदृश मुलायम, रुयें से आच्छादित । तना-धारीदार पान-१ से २ इच के घेरे मे, अण्डाकार, हृदयाकार, गोलाकार, अनीदार, कगूरेदार, तीन नस वाला, तीन पान साथ मे और रेशम के समान कोमल होते हैं । पान आमने सामने आये हुये होते हैं । पत्र दण्ड—पौन इच से तीन इच या इससे भी लम्बे होते है । पान सादे नीचे की ओर गोलाई लिये हुये चौडे और सिरे पर सकडे होते हुये होते है । ३-३ पान मूग, पारिभद्र की तरह ३ पत्ते एक साथ आये हुये होते हैं । इसका पत्र दण्ड भी लबा होता है । तीन पत्तो मे का प्रत्येक पान १ से ३ खाचे वाला अधिक करके होता है । पत्र दण्ड के सिरे से तीन उभी या सीधी नसे निकलकर गई हुई होती हैं । पान १ से २½ इच लबे और ¾ से १½ या २½ इच चौडे होते हैं । इन पत्तो के नीचे की ओर रोये विशेष होते हैं ।

फूल—पुष्प धारन करने वाली शाखाये विशेष कर पत्र कोण से निकली हुई होती है । इन पर रोये बहुत आये हुये होते है । पुष्प पत्र विशेष करके पान जैसे होते है । फूल-चमेली के फूल जैसे सफेद [यथार्थ मे अनेक रग के] १½-२ इच व्यास के होते है ।
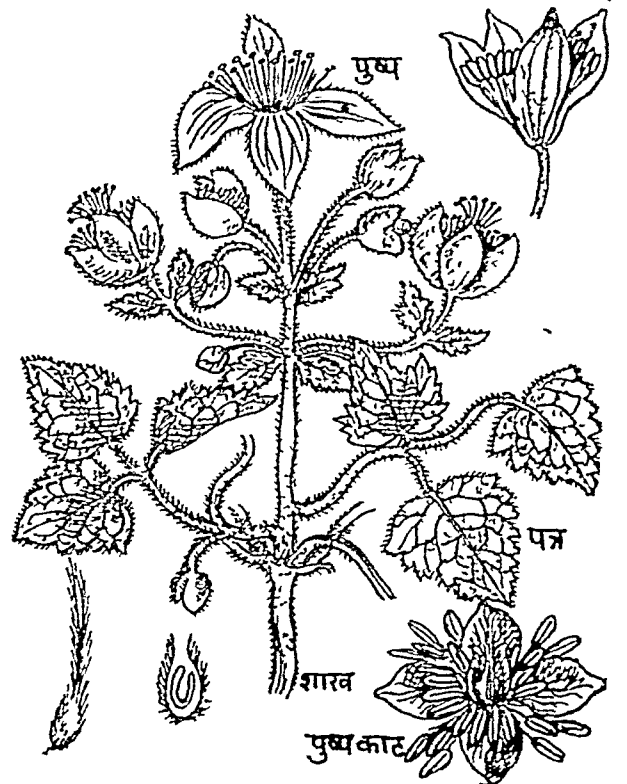
फल—गोलाकार लगते है। बीज—फल के सदृश अडाकार, दवा हुआ, मुलायम, रुयेंदार और लम्बी पूछसह। बेल के जमीन पर फैलने पर सधि-सधि से अकुर निकलते है काड और शाखा भूरे लाल रग के फीके हरे, रेखा युक्त मूल—लम्बा, उपमूल युक्त।

प्रयोज्याग—पचाग।

उत्पत्ति स्थान—

यह मूर्वा दक्षिण के पहाडो पर, मध्य प्रदेश, पश्चिमी कोकण मे, गुजरात, काठियावाड के पहाडी प्रदेशो मे, झाडी वाले स्थानो मे ऊगता हे। दक्षिण के कोकण मे विशेष होता है।

नाम —

स०—मूर्वा, त्रिपर्णी, स्निग्धपर्णी, मोरटा। हिं०—मूर्वा, मोरवेल, चूरनहार, घन्तियाली, मुरहरि। गु०—मोरवेल। काठि०—त्रेखण्डोवेलो। क०—नाडीमोरहरी सि०—मरुवा। म०—रानजाई। ले०—क्लिमेटिज ट्राइलोबा।

गुणधर्म और प्रयोग—

विदाही, जन्तुघ्न और ज्वर नाशक।

इसके पत्तो का रस दाद पर लगाया जाता हे। गाव के लोग जिस जगह दभ देना होता हे उस स्थान पर मूर्वा या मोरवेल के पत्तो के रसका निशान करते हैं, इससे उस पर दिया हुआ दभ इसके रस के निशान से वढकर वाहर नही फैलता है, ऐसा कहा जाता है।

मूर्वा की वेल दस्तावर है, गरम है, कफ, वायु, उल्टी, छाती के रोग,प्रमेह, कोढ, मेद रोग, ज्वर, मुखशोष, भ्रम, खुजली, तृपा, रक्त रोग, इन सबको मिटाता है।

—वैद्य रुगनाथ जी जूनागढ

नेत्र की पीडा मे इसके रस का उपयोग किया जाता है। इसका पचाग दस्तावर होता है। वातरक्त, कुष्ठरोग रुधिर विकार और ज्वर मे लाभकारक हे।

—स० वू० चि०

इस मूर्वा के कोमल पान और कुडे के पान को समान वजन मे मिला रस निकाल एक दो बूद दिन में एक वार नेत्र मे डालने से नयी फूली और श्वेत पटल या शुक्ल मडल के वहिर्गमन मे लाभ पहुचाता है। रस डालने के समय एक सेकण्ड झटका वैठता है, परन्तु लाभ होता है। शुक्ल मण्डल की स्थान भ्रष्टता की पीडा भी कम हो जाती है।

इसका स्वरस दाद, व्यूची आदि चर्म रोगो पर लगाने से चर्म रोग निवृत होते है। इसके स्वरस और कल्क के साथ सरसो को सिद्ध कर मालिश करने से सधिवात दूर होता है।

नोट—मूर्वा विनिश्चय शीर्षक के नीचे वैद्य श्री महेन्द्रकुमार जी शास्त्री, सचित्र आयुर्वेद पत्र के अप्रैल १९४९ अक १० पृष्ठ ६८२ के पहले कालम मे लिखते है कि 'मोरवेल [Clematis triloba] नामक वनस्पति मे मूर्वा का कोई लक्षण नही मिलता।

मधुरसा, मधुश्रवा, गोकर्णी, तेजनी, कोई भी तो लक्षण नही मिलता। 'धनुर्गुणोपयोग्या' तो क्या साधारण रस्सी के भी काम की नही हे। फिर डल्हन ने तो स्पष्ट ही लिख दिया है "कन्दली कद सदृश स्वल्प विटप" अत मूर्वा लता तो हो ही नही सकती। इन समस्त निघण्टुकारो से डल्हन प्राचीन है। उसका समय चक्रपाणि दत्त के आसपास [१०६० ई०] है। जो मूर्वा को स्वल्प विटप मानता है और लता विशेष नित्यन्ये कहकर "लता" के प्रति उदासीनता प्रदर्शित करता है तो मूर्वा को लता बताना ठीक नही। अत मोरवेल तो मूर्वा नही हे यह सर्वथा सत्य है। श्री वापालाल जी भी इसी से सहमत हैं।

—सचित्र आयुर्वेद

मूर्वा नं० २ (Clematis Gouriana)

यह वत्सनाभादि कुल (Ranunculaceae) की एक लता है। इस लता का प्रसार बहुत दूर तक होता है। डण्ठल मोटा होता है और शाखाओ का फैलाव विस्तार से होता है। नयी शाखा के अतिरिक्त सब भाग

मूर्वा नं॰ २
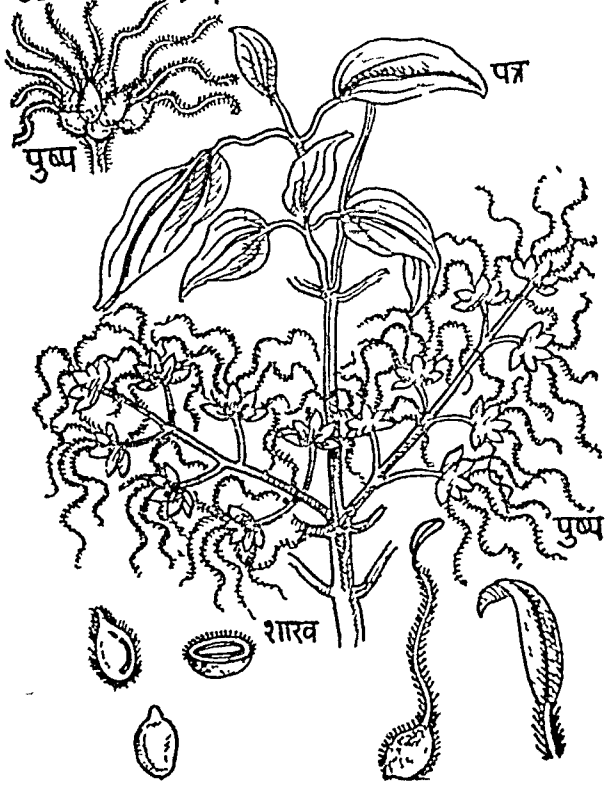
रूयेंदार। तना मोटा, झुर्रीदार, पिंगल। शाखायें बैंजनी पत्ते–पख के समान गोलाई लिये हुये २ से ३½ इच लबे किंचित् नोकदार और चमकीले होते हैं। फूल-पीलापन लिये या हरापन लिये सफेद पौन इच के घेरे मे आते हैं और फल-पतले १½ से २ इच लबे सूक्ष्म रोयेंदार लगते हैं। फलोत्पत्ति दिसबर-जनवरी।

उत्पत्ति स्थान—

हिमालय पहाड के पहाडी प्रान्तो मे पश्चिम से पूर्व तक देहरादून, बिहार, भारत के अनेक प्रदेशो मे १ हजार से ३ हजार फीट की ऊचाई तक और सीलोन मे यह अधिक होती है।

नाम—

हिं॰—मोरबेल। ब—राजाई, मोरियल। पश्चिमोत्तर प्रदेश–बेलकगउ। म॰–वेलकन या वेलकुन। कनड–तेलेजादारी। ल॰ – क्लिमेटिस गाउरियाना (Clematis gouriana Roxe)

गुण धर्म व प्रयोग–

इसके पत्ते औषधि प्रयोग मे आते हैं पत्तो मे एक प्रकार का विष होता है। नवीन शाखो के पत्ते मसलकर शरीर पर लगाने से फफोले पड जाते है।

नोट—उपरोक्त वर्णन से सुस्पष्ट है कि यह आयुर्वेदीय शास्त्रोक्त मूर्वा नही है।

मूर्वा नं॰ ३ (Sansevieria Roxburghiana)

यह घणसपातादि कुल [Haemodoraceae] का खड़ा मासल क्षुप। ऊचाई १२ से १८ इच। चौडा १ १¼ इच। पान नये ४ से ८ इञ्च लम्बे। पक्व पान ऊपर मुलायम, नीचे खुरदरे, १ से २ फीट लबे, सकरे। पुष्प आध इञ्च लम्बा। कलगी [पुष्प दण्ड] १२ से १८ इञ्च लम्बी।

पानो के बीच से एक डडी तलवार के आकार की निकलती है जो पहले पीलापन लिये हरे रग की होती है जिसके ऊपर पुष्प गुच्छ लगते है। १ गुच्छ मे लगभग ४ पुष्प हल्दी की आभायुक्त श्वेत वर्ण। फल–गोलाकार, पक्वावस्था मे नीम के समान पीत वर्ण के। बीज–एक एक डिम्बाकृति और श्वेत वर्ण का होता है।

यह क्षुप जहा वोते हैं, वहा बड़े परिमाण मे हो जाते हैं। काठियावाड मे-पान ३ फीट तक लम्बे हो जाते हैं। पुष्प दड २ फीट लम्बा। पुष्प ४ से ६ तक पास-पास इसके पानो मे से रेशा केतकी की अपेक्षा अतिमुलायम तेजस्वी सुदृढ निकलते हैं। इन से बनी हुई डोरी अति टिकाऊ होती है। एव इन मे रग लगा के झाडू (Brushes) चटाई आदि बनाते है।

उत्पत्ति स्थान—

कारोमण्डल, बिहार, काठियावाड, पश्चिमी प्रायद्वीप

मुर्वा नं. ३
SANSEVIERIA ROXBURGHIANA.
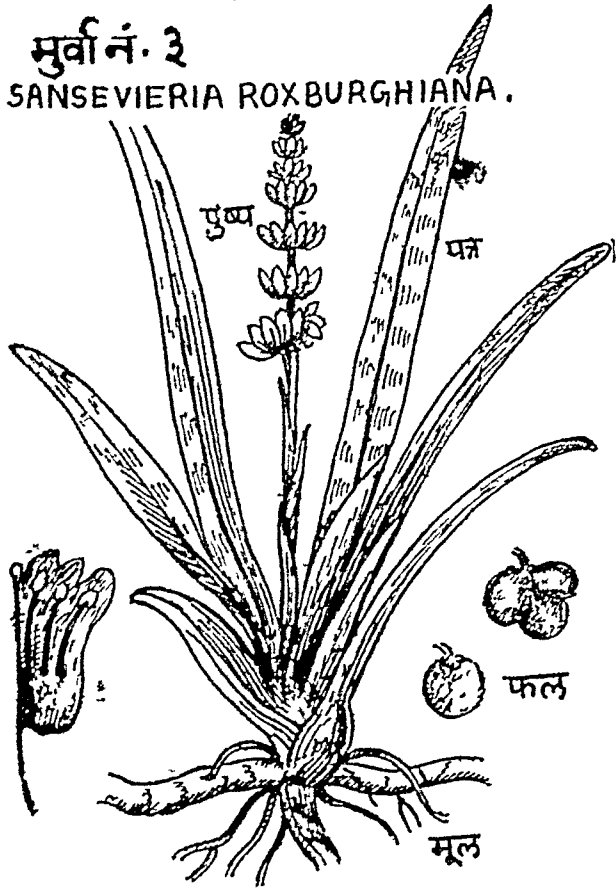
सीलोन के जगलो मे पाया जाता है तथा यह वहां रोपण भी किया जाताहै। डिंडिगल प्रदेश के वर्तिनन्द पहाडो पर और कम्बकम मे इसकी खेती बाहुल्यता से की जाती है।

नाम—

स०—मूर्वा। हिं०—मूर्वा, मरूल। ग०—गोराचक्र, मुरहरा, मूर्वा, मुर्गा, मुर्गली। वम्बई—मोर्वी। कन्नड़—मरुगा। काठियावाडी—नागफणी केतकी। म०—घणसाफण नागफण, मुदा हरिंग कोगा। ता०—मकल। ते०—चमकड साग। ले०—सेंसिविरिया रोक्स वर्गियाना।

मूर्वा पर विद्वानों के विचार—

सचित्र आयुर्वेद पत्र अप्रैल, १९४९ के पृष्ठ ६८५ मे मूर्वा निश्चय शीर्षक के नीचे कविराज महेन्द्र कुमार जी शास्त्री लिखते हैं कि "इसके तेजनी सुवा, मधुरसा, पृथक्त्वचा, गोकर्णी स्निग्धपत्रा, कदली कद सदृश वहु—पुट श्लक्ष्ण कन्दा, मधुर, तिक्त रस, सद्यदि लक्षण देख लिये हैं।" इस लता का रेखाचित्र इण्डियन मेडीकल प्लाटस की प्लेट से हमने उद्धृत किया है। उसे देखकर पाठक स्वय निर्णय करले कि गोकर्णी, पीलुकर्णी, तेजनी आदि नाम इसमें कहां तक घटते है। इसका पत्ता पीपल या गुड़ूची के पत्र के समान हे। इससे यह भी स्पष्ट हो जायेगा कि नन्द प्रयाग के वैद्यवर्य्य श्री नौटियाल जी की भेजी, मालुआवेल' और आपकी मालुआवेल मे कितना अन्तर है।

पत्रो का वर्णन करते हुये आप लिखते है कि "गढवाली 'मालुआवेल' यह मोटी बेल है, आखी बेल ऊपर मृदुरुवाटी (मृदु रोग) आयी हुयी होती है। पान नीचे हृदयाकृति, अण्डाकार और पत्राग्र अणीदार होता है। जिस पत्र पर रोमावली होगी क्या वह स्निग्ध हो सकेगा ? पीपल का पत्र स्निग्ध है परन्तु उस पर रोमो का नाम निशान भी नही। वह स्निग्ध (चिकना) है।

'रोम युक्त पत्र भी स्निग्ध होते है'। इस नवीन आविष्कार के लिये वैद्य समाज आपका अनुग्रहीत रहेगा आप लिखते हैं कि "ऐसो मजवूत रेशाओ- प्रचुर दुग्ध स्राव गायके कान जैसेपत्र, स्निग्ध पूर्ण,पृथक्त्वचा एनु सवेष्टन (मुरति सवेष्ट यति इति मूर्वा) यह सब बराबर लागु पडेछे" ऊपर दिखाया गया है कि केवल दुग्ध स्राव ही नही अपितु मधुर स्राव होना आवश्यक है, रेखा चित्र से पाठक स्वय देखले कि यह कहा तक गाय केकान से मिलते है। स्निग्धपण के विषय मे पहले ही लिखा जा चुका है। 'मूरतिसवेष्ट यति" से यह अभिप्राय नही है कि लता रूप मे वृक्षादिक का सवेष्टन करती है। पत्र स्वउद्गम स्थान पर घोडे के नाल की समान आकृति वनाकर काड को घरे [सविष्ट] किये नही रहते यह शब्द इसकी रेशाओ की उपयोगिता का द्योतक है। क्योकि यदि लता रूप मूर्वा होती तो डल्हणाचार्य कभी भी उसे "स्वल्प विटप" नही कहते। मूर्वा [सूची मुखी] इस प्रकार फैलती हे कि चारो ओर से अपने आस पास के स्थल अधिकृत करती जाती है और मध्य मे इसकी वल्ली या पुष्प दड रहता है। मूल स्थान घेरता हे, उससे कई गुना अधिक फैलाव ऊपर हो जाता है। जैसा कि

चित्र से स्पष्ट है। तीक्ष्णाग्र होने के कारण इसके पुष्प दण्ड तक पहुचना अत्यन्त कठिन होता हे। इसके फैले हुये पत्तो के कारण इसे "गोपवल्ली" कहा गया है [गुप्तावल्ली वेल्लरी यस्य] और इसके रेशा भी बन्धन के काम मे आते है। उक्त उद्धरण से स्पष्ट हे कि श्री वापालाल जी लिखित "गढवाली मरुआ वेल" जिसे गलती से वे इण्डियन मैडीकल प्लांटसIndian Medicinal Plants को अनुसारण कर Marsdenea Roylei कहते है और जो वस्तुत Bauhimia mravahli है, मूर्वा नही हो सकती। यदि श्री वापालाल जी अव भी इसे ही मूर्वा समझते हो तो उन्हे उसे स्वय देखकर एव आतुरालय मे प्रयोग कर उसके गुणो आदि का परीक्षण कर वैद्य समाज के सामने फल घोपित करना चाहिए। मूर्वा को मुहरी, चूरनहार मोरहरी कहना भी गलत है। डल्हण ने स्पष्ट ही यह नाम एक दूसरी वनस्पति का दिया हे । जैसा पहले लिखा जा चुका है।

जिन कारणो से श्री वापालाल जी प्रतिपादित "मारुआवेल" मूर्वा नही हो सकती, उन्हीकारणो से डल्हणाचार्य उद्धत दूसरे मत की "कोविदार सदृश युग्म पत्रा लता विशेपा" (वास्तविक मारु आवेल) भी मूर्वा नही हो सकती।

इस प्रकार–(१) मोरवेल (त्रिपर्णी) Clematis triloba N o Ranunculaceae वत्सनाभ कुल ।

(२) "मारुआवेल" और कोविदार सदृश युग्मपत्रा Baeehimi vahli No Legaminosae शिम्बीकुल ।

(३) मालुआवेल (श्री वापालालोक्त) Marsedenea Roylei No Asclepiadceae अर्क कुल। यह तीनो ही मूर्वा सिद्ध नही होती हे। शेप रह जाती हे सूची मुखी चित्र से उसकी आकृति स्पष्ट है। इसी वनस्पति के विपय मे वनस्पति विशेपज्ञो की सम्मति हे कि यही वास्तविक मूर्वा है।

साराश यह हे कि यह वोस्टिंग हेम्प उद्यानो मे भी कभी-कभी शोभा के लिए लगाई जाती है। बम्बई प्रान्त मे यह वीज नही देती। इसका ततु वहुत उत्तम और दृढ होता है तथा मछलिया पकडने को जाल और धनुप की डोरी के काम आता है। देशी भापाओ मे इसे मूर्वा मरवा या नाघिन कहते हे।

यह एक झाटी हे जिसके काण्ड रहित पत्ते पृथ्वी से सीधे निकलते है और उलटी छत्री के समान फैल जाते है इनमे आर्द्र गूदा भी भरा रहता हे पत्राग्र तीक्ष्ण होता है कुछ वनस्पति शास्त्री इसे विदेशी (अफ्रीका का) वताते है। तथा कुछ स्वदेशी । यदि विदेशी हो तो मूर्वा शव्द किसी अन्य वनस्पति के स्थान पर इसे दिया गया हे जो किसी समय 'मौर्वी' (धनुप की डोर) वनाने के काम आता होगा। इसके रसदार पत्तो से एक ततु निकलता है जो अपनी स्थिति स्थापकता (elasticity) के कारण धनुप की मौर्वी के लिये अति उत्तम हे। और राम वास (यू पी मे) इस वनस्पति का नाम मूर्वा, मरवा या नाघिन है यह Haemodoraceae कुल की Samseviera Roxburghiana नामक वनस्पति है । मूर्वा के गुण लक्षणादि का वर्णन हो चुका हे। इतना ही कहना पर्याप्त है कि इसमे प्राय सभी नामे गुण सार्थक होते है । इस वनस्पति का रस मधुर, कटु, तिक्त होता है, पत्र के मासल, नोकदार और उनके ततु (श्वेत वर्ण) मास के अन्दर छिपे रहते है। अत डल्हणाचार्य का "चोरस्नायु" परिचय इसमे पूर्णत चरितार्थ होता हे। काण्ड को सवेष्टन करने से मूर्वा, मोरटा एव मधुरसा, अतिरसा, तेजनी-स्रवा, गोकर्णी, पृथकात्वचा, स्निग्धपर्णी, (ऊपर की ओर सर्वथा स्निग्ध किन्तु अध पार्श्व मे कुछ स्निग्ध) आदि नाम सार्थक है।

धनुर्गुणोपयोग्या, कन्दली कन्दवत वहुपुट श्वेत श्लक्ष्ण कन्दादि लक्षण एव कफ-वात-कास आदि नाशक गुण इसमे स्पष्ट है।

मासल प्रतान रूप मूल स्वल्प कटु (आधुनिक वैज्ञानिक कटु रस नही मानते अपितु मरिचादि कटु द्रव्यो से उत्पन्न उत्तेजना और उष्णता के अनुभव को एक प्रकार का भाव शीतादिवत्) ही मानते है। तथा अवाछित गन्ध से रहित होता है। यह अवलेह के रूप मे शरीर को क्षीण करने वाले रोगो मे (अतएव वाग्भट्ट का अष्टाग सग्रह का वल्य गुण सार्थक है) एव जीर्ण कास मे दिया

जाता है। इसके मृदु अकुरो का रस बच्चो के गले में अटके हुए कफ को निकालने के लिये दिया जाता है।

अस्तु हमारे विचार मे तो मूर्वा यही पदार्थ है। वास्तविक निर्णय के लिये आवश्यक है कि मूर्वा नाम से ग्रहण किये जाने वाले समस्त द्रव्यो को एकत्र कर उनके रस, आकृति और गुणादि की परीक्षा की जाय। जो भी मूर्वा के शास्त्रोक्त गुणो और लक्षणो से युक्त हो, उसे ही मूर्वा समझना चाहिये अन्त मे विद्वज्जनो मे यही प्रार्थना है कि इस विषय मे स्वानुभव प्रकाशित करे।

—म० आ० अप्रैल १९४९

सदिग्ध बूटी चित्रावली नामक पुस्तक मे आदरणीय स्व० लाला रूपलाल जी वैश्य बूटी विशेषज्ञ ने मूर्वा न० ६ के सबध मे पृष्ठ २१ के दूसरे कालम मे लिखा है—

"इसका क्षुप रामवास के क्षुप से बहुत कुछ सामान्यता रखता है, मुझे तो यही जान पडता है कि यह छोटी जाति का राम वास ही है अथवा रामवास का नवीन क्षुप है।" अब पाठक स्वय विचार करे कि उक्तछ प्रकार की मूर्वा मे सर्वोत्तम कौन है ? आयुर्वेद विज्ञान मे मूर्वा न० ५ का बहुत छोटा चित्र दिया गया है और वास्तव मे यही श्रेष्ठ गुणकारी है। किसी आचार्य की सम्मति मे मूर्वे की बेल होती है, किसी के सम्मति मे इसका क्षुप होता है। उपरोक्त लेख से सिद्ध होता है कि मूर्वा दो प्रकार की होती है। एक की लता होती है और दूसरे का क्षुप। लता जाति की मूर्वे मे जिसका वर्णन पहले हुआ है उसी को व्यवहार मे लेनी चाहिये किन्तु इसमे मूर्वा न० ५ याने (Sansevieria Roxburghiana) उत्तम है। कैय देव निघण्टु के सशोधन कर्त्ता आचार्य सुरेन्द्र मोहन जी मूर्वा के सबध मे अपने विचार कैयदेव निघण्टु के पृष्ठ १७५ पर निम्न रूप मे प्रकट करते है—

मूर्वा को कई वैद्य मरोटफली [L Helcteres Isora] समझते है जो सर्वथा अशुद्ध है। (मरोडफली का वर्णन इसी अक मे मरोडफली शीर्षक के नीचे किया गया है। कई ग्रंथो मे मरोड़फली का जिक्र भी मूर्वा के साथ किया गया है परन्तु यहा इसका वर्णन करना उचित नही समझ, नही किया गया है। पाठक यथा स्थान देखने का कष्ट करें।)

—सं०

श्री डल्हणाचार्य ने निबन्ध सग्रहाख्य सुश्रुत टीका मे आरग्वधादि गण की टीका करते हुये, जिसमे मूर्वा का पाठ आया है, यह लिखा है, "मूर्वा धनुर्गुणोपयोग्या, दूधउड इति लोके, अन्ये चोर स्नायु माहु। (सु० सू० अ० ३८), और उन्होने पुन अगले अध्याय के पित्तसशमन वर्ग की टीका मे यह लिखकर उसकी आकृति और भी स्पष्ट करदी है "मूर्वा कन्दली सदृश स्वल्प विटपा 'हघोड' इतिलोके।" (सु० सू० अ० ३९)। इन प्रमाणो से कुमारी सदृश विटप की सिद्धि होती है, जिसके नाम ऊपर दिये गये है। यह पजाब मे बहुत कम होता है, उद्यानो व कोठियो मे सौन्दर्य के लिये लगाया जाता है। कोकणदेश (Coromandel Coast) मे बाहुल्यता से मिलता है। काण्ड अतिक्षुद्र व अविद्यमान, पत्र भूमि से निकलते हुए, दीर्घ, कुमारी की अपेक्षा पतले, कम मासल व ईषत् कठोर, कम चौडे, पाण्डु तथा घन हरित व श्याम रेखाकित, पत्राग्र (Apex) सूचक (सूए) के तुल्य दीर्घ तीक्ष्ण (अत वगीय नाम सूच मुख), पत्राकार बहुत कुछ सिक्खो की कृपाण (किरपान) के तुल्य पत्र धारा (किनारे) अन्दर को मुडे हुए, मूल कोषाकार, गोल, स्थूल, मासल (Fleshy) यह भूमि मे अपनी गौण शाखाओ द्वारा शनै शनैः फैलती जाती है। अत एक विटप (क्षुप Clump) लगादेने से मूर्वा बढकर अनेक विटप बन जाते है। पत्र मूल से ही निकल आते है। पुष्प—कभी-कभी देखने मे आते है, वे शुभ्र हरित वर्ण के होते है, गोल, लम्बे गुच्छाकार। फल—विरल, गोल, बीज कलायाकार क्षुद्र, श्वेताभ। पत्रो को भूमि मे दबाकर गलाने से दृढ सूत्र वा ततु मिलते है। जो धनुष के गुण (तदी, स्नायु Bowstring) बनाने मे काम आते है, जो धनुर्गुणोपयोग्या' मूर्वा का यथार्थ लक्षण है।

कन्दला एक छोटा सा कन्द है "कन्दली श्वेत श्लक्ष्ण बहुपुट कन्द विशेष सर्पछत्रक मितिलोके" (सु सू अ ३९) और मूर्वा के कन्द वा मूल की तुलना श्री डल्हण ने कन्दली कन्द से की है, न कि कदली कन्द से, जैसा कि श्री उमेश चन्द ने वैद्यक शब्द सिन्धु मे लिखा है। दृढ सूत्रिका,

गोकर्णी, धनुर्माला, धनुर्गुणा, धनुशाखा, मधु रसा, अति रसादि पर्याय उपरोक्त मूर्वा को ही सिद्ध करते है, श्री शालिग्राम जी "मूर्वा की बेल वन मे होती हे" ऐसा लिखते हैं। मूर्वा को बेल कहना अशुद्ध है। रूपलाल ने जी लिखा है कितने वैद्य भ्रमवश मरोड फली को मूर्वा मानते हे।

मूर्वा का कन्द, स्वरस वा कल्क मधु मिश्रित–ज्वर, क्षय, कास तथा राजयक्ष्मा मे लाभकारी हे। मात्रा १ छोटा चम्मच दिन मे २ बार। कन्द क्वाथ ज्वरादि एव रक्तपित्त और सुजाक, कुष्ठ, कण्डू, आमवातादि मे दे सकते है। स्वरस स्वाद मे मधुर, तिक्त और मधु गन्ध युक्त होता है। शुष्क कन्द चूर्ण सुदर्शन चूर्ण वा अन्य योगो मे पडता है। डाक्टरोने उसका एक सत्व Sanseviermne निकाला है। चरक ने इसे स्तन्य शोधक और सुश्रुत ने रेचक, कफहर, और पित्त शामक माना हे। पत्रो का प्रयोग बिदित नही। —कैयदेव निघण्टु

लेखक भी उपरोक्त विद्वानो के निर्णय से सहमत है किन्तु मूर्वा का निर्णय जिस प्रकारश्रीमान एस पी कनौजिया महोदय ने 'रास्ना-विनिश्चय' करके सचित्र आयुर्वेद मेअपना निर्णय दिया हे उसी प्रकार १-१, २-२ वनस्पतियो पर वैद्य समाज या अनुसघान शालायें तथा आयुर्वेद के प्रतिष्ठान जैसे-डाबर, वैद्यनाथ, धूतपापेश्वर, भ्रण्डू, ऊंभा, धन्वन्तरि आदि करे तो सदिग्धता समाप्त होकर वास्तविक द्रव्य का निर्णय शीघ्र हो सकता है। आशा है वैद्य समाज और उक्त प्रतिष्ठान इस ओर अवश्य ध्यान देगे। —सम्पादक

मूर्वा के संस्कृत नाम—

मधुरसा, देवी, गोकर्णी, दृढ सूत्रिका, तेजनी, पीलुपर्णी, पृथकत्वचा, धनुर्माला, धनुर्गुणा।

गुणधर्म और प्रयोग—

मूर्वा—सारक (दस्तावर), स्वादिष्ट, कडवी तथा रक्तपित्त, प्रमेह, त्रिदोष, हृदयरोग, कण्डू, कुष्ठ और ज्वर को हरने वाली है। —धन्वन्तरि नि०

मूर्वा—कड़वी, कपैली, गरम तथा हृदयरोग, कफ, वात, वमन, प्रमेह, कोढ और विषम ज्वर को दूर करने वाली हे। —राजनिघण्टु

मूर्वा—कपैली, कडवी, स्वादिष्ट, गरम, भारी, पचने मे चरपरी, दस्तावर, त्रिदोष नाशक तथा रुधिर विकार, मेदोरोग, कोढ, वात और विषम ज्वर को दूर करने वाली है। इसका कन्द कृमि कीलक रोग और विष विकार को दूर करता है। —शा नि

मूर्वा के निर्णायक गुण—

मूर्वा का प्रयोग अति प्राचीन है। चरक-सुश्रुतादि सहिता ग्रन्थो मे अनेक गणो मे इसका पाठ है। उनके वर्णन से यह एक महत्वपूर्ण वनस्पति सिद्ध होती है। चरक मे स्तन्य शोधक गण। (सू. अ ४ पद्य १८) मे पित्त, पाडुरोग और विष नाशन मे (अमृत घृत)–च चि अ २३ पद्य २४३ एव रेचनार्थ भी प्रयोग किया गया है। चरक चतुरानन चक्रपाणी दत्त ने मूर्वा का कोई पर्यायवाची नही लिखा है और न उनका उल्लेख ही किया है; इससे ज्ञात होता है कि उन्हे या तो मूर्वा का निश्चय था या वे मूर्वा से बिल्कुल ही अज्ञात थे। दूसरी वात की अपेक्षा प्रथम वात ही अधिक सभव है। मूर्वा का चरकापेक्षा अधिक वर्णन सुश्रुत सहिता मे मिलता है और उसके प्रसिद्ध टीकाकार महामति डल्हन ने उस पर प्रकाश भी डाला है। प्राचीन टीकाकारो मे केवल 'डल्हन' ने ही मूर्वा या अन्य औषधियो पर देश भेदादि से नाम तथा मतान्तर देकर अधिक प्रकाश डाला है। अत डल्हन के महत्व पूर्ण उल्लेख का मत हमने प्रथक ही दिया है।

सुश्रुत मे पित्त शमनार्थ [सू० ३९।८] सौवीर मद्य मे रेचनार्थ [सू० ४४।३५], आरग्वधादि गण मे [सू० अ० ३८।७] श्लेष्म, विष, मेह, कुष्ठ, ज्वर, वमी, कडूघ्न और व्रण शोधनार्थ उल्लेख किया है।

मुनिकल्प वागभट्टाचार्य ने अपने दोनो ग्रथो मे प्राय उपर्युक्त रोगो मे ही मूर्वा का प्रयोग लिखा है। किन्तु उन्होने "अष्टाग सग्रह" मे मूर्वा का उल्लेख वल्य के रूप मे भी किया है। जैसा कि राज वल्लभ ने अपने निघण्टु मे भी लिखा है। अतिरसा मूर्वा आचार्य हेमाद्रि.

अस्तु सहितोक्त वर्णन से मूर्वा के निम्न लिखित गुणो का पता चलता है—

[१] स्तन्य शोधक। [२] पित्त कफ नाशक। [३] रेचक (साधारण) [४] विष नाशक। [५] पाडु कुष्ठ, ज्वर, वमन, अरुचि, प्रमेह, पीनस, शूल, अर्श नाशक एव व्रण शोधक तथा वल्य, मधुर रस, कटुरस, तिक्तानुरस उष्ण वीर्य, मधुर विपाकी [राज निघण्टु मे कषाय रस भी इसे कहा गया है।] सक्षेपतः यह पित्त, कफ रोग नाशक, आम पाचन, सर, रक्त शोधक [कडु, कुष्ठादि नाशक] तथा पौष्टिक है। प्रमेह तथा पुष्टिकर के रूप मे इसका प्रयोग अब बहुत कम होता है। उपरोक्त गुणों और नामो को सार्थक करने वाली वनस्पति ही मूर्वा हो सकती है। [सचित्र आयुर्वेद] सदिग्ध बूटी चित्रावली मे मूर्वा को विषहर और कफघ्न लिखा है तथा इसके मूल का क्वाथ राजयक्ष्मा और कफ कोप मे व्यवहृत होता है। कोमल शाखा का रस बालको के कण्ठ शोधनार्थ तथा कफ प्रयोग मे दिया जाता है। पानों का स्वरस क्षय रोगी को दिन मे दो बार १-१ ड्राम दिया जाता है। मूल का स्वाद कुछ उग्र है। यह क्षय रोग और पुरानी खासी मे बहुत लाभदायक है। इसके रस को दो छोटे चम्मच की मात्रा से बालको को देने से गले मे जमा हुआ कफ सहज मे निकल जाता है। —स०बू०चि०

मूर्वा का क्वाथ सब प्रकार के ज्वरो को नष्ट करता है, विशेषत विषम ज्वर मे अतिशय हितकर है।

—सुश्रुत, भा० व० बगला से

इसकी जड औषधि प्रयोग मे ली जाती है। डाक्टरी मतानुसार यह दस्तावर, भारी, बलकारी, स्वाद मे मधुर तथा गन्ध मे तीक्ष्ण, हृदय को हितकारी, क्षय, रुधिर की उष्णता, सुजाक, उन्मत्तता, तृषा, खुजली, कोढ, ज्वर, आमवात और मामवृद्धि नाशक है।

—अ० बू० द० स०

मूर्वा के विशिष्ट योग—

मूर्वादि चूर्णम्—मूर्वा, धनिया, नागर मोथा, मुलैठी समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। इसे शहद मे मिलाकर चाटने से जिसमे डकार भी आती हो ऐसी भयकर छर्दि नष्ट हो जाती है। मात्रा—१ से १॥ माशा।

मूर्वाद्य चूर्णम् [१]—मूर्वा, बला (बीजबन्द) और चीता समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसे प्रातकाल उष्ण जल के साथ सेवन करने से पाडु रोग नष्ट होता है। मात्रा—३ माशे।

मूर्वाद्य चूर्णम् [२]—मूर्वा, पीपल, चीतामूल वच, पाठा, सिरस की छाल, भारगी, पीपलामूल, नागरमोथा, कालीमिर्च, सौठ, वायविडग, इलायची, इन्द्र जौ, अजवायन, कुटकी, जीरा, रेणुका, अतीस और भुनी हुई हीग समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। यह चूर्ण कफज खासी को नष्ट करता है। [मात्रा ३ माशे] शहद के साथ मिलाकर चाटें।

मूर्वाद्युद्वर्तनम् १—मूर्वा, खरैंटी की जड़, असगध सतौने की जड की छाल और चोरक समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। इसे पानी मे मिलाकर बालको के शरीर पर मलने से उनका शरीर पुष्ट होता और ग्रह दोष दूर होते है।

मूर्वाद्युद्वर्तनम् २—मूर्वा की जड, हल्दी, सतौने की जड की छाल और सरसो समान भाग लेकर चूर्ण बनावें। इसे पानी मे मिलाकर बच्चो के शरीर पर मलने से ग्रह दोष दूर होते है।

मूर्वाद्य घृतम्—कल्क-मूर्वा, कुटकी, हल्दी, धमाशा पीपल, सफेद चदन, पित्त पापडा, त्रायमाण, कुड़ेकी छाल चिरायता, पटोल, नागरमोथा और देवदारु का चूर्ण १¾-१¾ तोला। २ सेर घी मे उपरोक्त कल्क और २ सेर दूध मिलाकर मन्दाग्नि पर पकावें। जब दूध जल जाय तो घृत को छान लें।

यह घृत—पाडु, ज्वर, विष्फोटक, अर्श, शोथ और रक्त पित्त को नष्ट करता है।

—भा० भै० र०

मूर्वा ४ (Sanseviera Zeylancia)

यह वणसपातादि कुल (Haemodoraceae) का एक क्षुप होता है। इस मूर्वा के काड नही होते।

मूल कोपाकृतिपदार्थ मे आवृत रहता है, शाखा मूल-कनिष्ठागुलिवत् स्थूल एव माटी के भीतर दूर तक फैला होता है।

पत्र—१॥ से ३ फीट लबे होते है। पत्र-फीके कालासयुक्त हरे रग के दीर्घ, अप्रशस्त तथा पत्राधार सकुचित होते हे अत पत्र समतल नही होता। पत्र का अग्रभाग कटकाकृति होता है तथा गोलाकार और क्रम से सूक्ष्म होता जाता है अतएव इसे सूचीमुखी भी कहते है। इसके ऊपर गाढे वा फीके हरिद्वर्ण की चित्तिया वा धारिया दिखाई पडती हैं। पुष्पदड-पत्र समूह से १ से २ फीट लबा निकलता है। पुष्प—हरिद्राभ शुभ्र, मध्माकृति का १ मे १॥ इच लम्बा होता है। पुष्प कलगी के समान ४ से ६ पास पास होते हैं। बहुत से लोग इसे नागदमन के नाम से भी पुकारते हैं। इसकी पत्तियो के रस को सर्पदश मे देने से बहुत लाभ होता है। इसके पत्ते नागफण जैसे दिखायी देने मे लोग इसे नागफणी केतकी भी कहते है।

—व व गुजराती से

प्रयोज्याङ्ग—कन्द।

मात्रा—क्वाथ ५ से १० तोला। करक १ से ४ माशे तक। स्वरस आध से १ तोला।

उत्पत्ति स्थान—लका, दक्षिणी अफ्रीका, समुद्र के निकट पर्वतो पर, बगाल से मद्रास तक। यह कृषि द्वारा भी उत्पन्न की जाती है।

नाम—

स०—मूर्वा, मधुरसा, देवी, मोरटा, तेजनी, स्रुवा, मधुलिका, मधु श्रेणी, गोकर्णी, पीलपर्णी ये मूर्वा के सस्कृत नाम है। हि०—मूर्वा। ब०—मूर्वा। बो०—मोर्वा। म०—मारुन कालुग, नागफण, घोनमाकन। पो० गु०—नागफणी केतकी। ते०—सेमेचाउरा जोलेसिया।

रासायनिक संगठन—

इसमे सेसिमिरिक एसिड, पीत वर्ण का तिक्त सार जो शीत तीव्र सुरा मे घुल जाता है, कुछ क्षारीय सफेद रग की पदार्थ जिसे सेसिमेरिन के नाम से पुकारते हैं—होता है।

मूर्वा नं ४ (मालजन)

BAUHINIAVAHLII, W. & A.

पुष्प

पत्र

फली

बीज

लता

नोट—मूर्वा की इस जाति का उक्त वर्णन भाव प्रकाश निघण्टु मे श्रद्धेय विश्वनाथ जी द्विवेदी कृत टीका मे है और ग्लोसरी आफ इण्डियन मेडिसनल प्लान्टस मे भी। अत भावप्रकाश निघण्टु से पाठको की जानकारी एव मूर्वा के निर्णयार्थ वर्णन और इसका चित्र भी दिया जा रहा है। पाठक परीक्षण कर परिणाम धन्वन्तरि मे प्रकाशित करावे।

गुण धर्म और प्रयोग—

इसकी जड क्षय और कफ रोगो पर प्रयोग की जाती है। कोमल डठल का रस बालको की कफज व्याधियो पर पिलाया जाता है।

मूर्वा नं० ५ (Bauhinia Vahlii)

यह गुडुच्यादि वर्ग और शिम्बी कुल (Leguminosae) की कचनार के समान जुडे हुए पान वाली लता है। अन्य वृक्ष पर चढने वाली, सर्वदा हरी, अति बडी वेल। लम्बाई २० से ३०० फीट। तने का घेरा १ से ८ फीट तक। पहले १०-१५ फीट ऊचा पेड, फिर दूसरे वृक्ष पर चढने वाली वेल वन जाती है। छाल–खुरदरी, गहरी रक्ताभ पिंगल या काली आभायुक्त तथा त्रिमडी, तेजस्वी रेशेवाली, रग सफेद या पीले पट्टेसह, तेजस्वी गुलावी, अलगकर लेने के पश्चात धीरे धीरे रग नारगी भूरा होजाना। प्रशाखा के अन्त मे प्राय परिवर्तनशील, युग्म अकुर होता है। नया हिस्सा पीताभ पिंगल या मैला रुयेंदार पान ४ से १८ इञ्च लम्वे, लगभग उतनेही चौडे, ऊपर विभाजित, तृतीय भाग तक, तलभाग मे हृदयाकार, गहरे हरे, ऊपर चिकने, नीचे रुयेदार, कचनार के अनुसार दो गोल विभागयुक्त, ११ से १५ नस वाले। वन्त—३ से ६ इञ्च लम्वा, दृढ रुयेंदार। पुष्प—१॥-२ इञ्च चौडे, श्वेत वर्ण गुलावी मायल वैंगनी शाखा के अन्त मे तुर्रे मे। पुष्प वृन्त—१ से २॥ इञ्च लम्वा। पुष्प वाह्यकोष नलिका २ से ३ इञ्च लम्वी। पखुडी पीने से पौने दो इञ्च लम्वी। पु केसर ३। फली-कठोर, चपटी, ऊपर मखमल सदृश, ९ से १८ इञ्च लम्वी, २ से ३ इञ्च चौडी। वीज ६ से १२ चपटे, १ इञ्च व्याम के, गहरे भूरे, चिकने लगभग गोलाकार। इस मूर्वा की ओर लक्ष्य श्री वैद्यराज कृष्णदत्त जी गुप्त (कटनी) के लेख पर से गया है। धन्यवाद। अभी तक इस मूर्वा का उपयोग नही होता, किन्तु यह सच्ची हो सकती है, उन्होने लिखा है कि मध्य प्रदेश के वनुहार लोग इसे मोर वालेन, मु ह लाइन, मोहर लाइन, मूर्वारोइन कहते हैं। वे लोग अव भी इसकी छाल के रेशे मे से धनुप की डोरी वनाते हैं। ग्रीष्मकाल मे प्यास शमनार्थ पके फलो को भून या उवाल कर खाते है। इसका स्वाद शहद जैसा लगता है। सुबह उदर शुद्धि हो जाती है। पान, फूल और कच्चे फल का स्वाद कडवा होता है।

उत्पत्ति स्थान—भारत के सब पहाडी जिले, लगभग २५०० से ४००० फीट ऊचाई तक। पजाब, चेनाव, देहरादून, विहार, वगाल, आसाम, मद्रास, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश मे। पुष्प अप्रैल से जून। फली दिसम्बर से मार्च। नये पान मई मे आते है। पान–छोटे वडे अनेक प्रकार के।

नाम—

स०—मूर्वा, दृढमूत्रिका, धनुर्गुणा, सुरगिका, मधुलिका, युग्म पत्रिका। हि०–महोलन, मालजन, महूल। सभाली–गोमलार। देहरादून- मालजन, मालो। अल्मोडा–मओ। व०—चेहुर, कल्का–टोर। गढ०—मलू। गौडी—वेला, पावुरतिगे। क०—अनेपादु, कम्बीहू। ते०– अड्डतिगे, परद, मद्दुपु। ता०—मदौरइले, आड्डा। मला०–मोट्टन वल्ली। ओ०–सिउली, पैर मल। मध्यप्रदेश—महूल। अ०–Enormous Camels foot Climber। ले०—वोहिनिया वाहुली।

रेवरण्ड नैर्न साहिव ने लिखा है कि सरकार की ओर से पान वेचने का कण्ट्राक्ट दिया जाता है कोमल फल का शाक वनाते है। पके बीज भी खाने मे आते है। फली को कोल और सथाल लोग लम और लमक कहते है। अन्तरत्वचा मे से कोमल ततुओ के गुच्छ मजीठ के रग के या भूरे निकलते है। उनसे धनुप की डोरी वनायी जाती है। एव खाट और छीके बाधने की डोरी तथा रस्से वनाते है। ट्रेजरी आफ वोटनीकार ने (१८७० ईस्वी मे प्रकाशित ग्रन्थ के भीतर) लिखा है कि "इसके रस्से अति दृढ होते है। इस हेतु से जमना जी को पार करने के लिये अस्थायी पुल (Suspension bridge) के रचना कार्य मे उपयोग होता है तथा खानो मे वारुद जलाने और देशी वन्दूको को चलाने के लिये इसके रस्से की वत्ती वनाते है।" छाल मे टेनिन (टेनिकाम्ल) रहता है, किन्तु साथ मे गोद सदृश रस रहने के हेतु से वह नही निकल सकता।

शार्ङ्गधर के टीकाकार ने उस समय का प्रचलित

नाम मोरहरी, और भानुजी दीक्षित ने 'मुहार' लिखा है, ये दोनो नाम—मध्यप्रदेश के धनुहारो मे वर्त्तमान के प्रचलित मोहर लाइन, मुहलाइन तथा मराठी नाम "मूहर" से मिलते है। मूर्वा के स्थान पर इसी मूर्वा का उपयोग करना चाहिये। नकसीर मे इसे (पान-फूलो को) पीसकर शिर पर लेप करते है। और कोई-कोई पिलाते भी है। —गा० ओ० र०

इसके सम्बन्ध मे स्वर्गीय वैद्य भागीरथ जी स्वामी का मत वैद्य कृष्णदत्त जी गुप्त भिषगरत्न कटनी (म प्र) की प्रेषित बूटी दर्पण मे मुद्रित चित्रवाला मूर्वा मे गोकर्णी गोपार्णी (गो के कान के समान पत्र वाली) इस बात मे साधारण सदेह होता है, परन्तु मूर्वा के जितने लक्षण होना चाहिये वह सब लक्षण वैद्य कृष्णदत्त जी की मूर्वा मे मिलते हैं। स्वर्गीय वैद्य कृष्ण प्रसाद जी त्रिवेदी जी ने भी लिखा है कि अभिनव बूटी दर्पण के पृष्ठ १५६ द्वितीय भाग प्रथम कालम मे 'भिषग्रत्न कृष्णदत्त जी ने अपने अथक परिश्रम से मूर्वा' विषयक विवादग्रस्त प्रश्न को सफलतापूर्वक हल कर डाला है। ऐसी हमारी स्पष्ट धारणा है। आपने वहा के जगली लोगो से पूछकर उसके कतिपय गुणधर्म भी लिखे है। जो प्राय शास्त्रोक्त गुणो से बराबर मिलते हैं।

गुण, धर्म और प्रयोग—

इसके मूल या छाल का उपयोग ज्वर, सग्रहणी, अरुचि, उदावर्त, कास, श्वास, पाण्डु, अपस्मार, कुष्ठ, व्रण रोपण, वात रोग, वात रक्त, उरुस्तभ, विष प्रकोप, नेत्र-पाक, पीनस, शिरदर्द, प्लीहावृद्धि और मलावरोध आदि रोगो पर होता है। छाल के भीतर स्नेहन और ग्राही गुण रहता है। इस हेतु से मूर्वा अन्त्रस्थ मल को आगे सरकाकर आकुंचित कर लेती है। पान और फूल मे शामक, स्नेहन और वान्तिहर गुण रहता है। अत वान्ति शमनार्थ पान और फूल का उपयोग अधिक हितावह माना जायगा।

मूषाकानी (Ipomoea Raniformis Chois)

यह गुडूच्यादि वर्ग और त्रिवृत्तादि कुल Convolvulaceae) की एक वनस्पति होती है। मूषाकर्णी के क्षुप पृथ्वी पर फैले हुए अधिक पाये जाते है। यह वर्षा तथा शरद ऋतु मे अधिक पैदा होती है। पत्रो का आकार ठीक चूहे के कानकी तरह कडा, उतना ही वडा, उसी आकार का होता है। काण्ड पतले लाल वर्ण के ग्रंथियुक्त होते है। ग्रथिस्थल से जडे निकलती है। इस तरह यह लता की तरह बहुत दूर तक फैल जाती है।

फल—मिर्च की तरह लगते है। प्रत्येक ग्रथि जहा से पत्र निकलते है, वहा पर सफेद पक्ष की तरह उभय पार्श्व मे कुछ पखुडियो की तरह लगा होता है।

उत्पत्ति स्थान—यह हर प्रकार की भूमि मे पायी जाती है और भारत के प्रत्येक प्रदेश मे होती है।

नाम—

स०—आखुकर्णी, आखुकर्ण पर्णिका, मूषाकर्णी। हि०—मूसाकानी, मूसाकन्नी, मूसाकानी। ब०—इन्दुर काणी, बुडिगयापान। म०—उन्दिर कानी। गु०—उन्दरकर्णी

क०—वल्लिहरुहे । ते०—एलुक चेविचेट्ट । फा०—गोरोमप तर । अर०—आजानुलफार । ले०—आइयोमियारेनिफोरमिस । व्यवहार्याङ्ग—सर्वाङ्ग ।

गुण, धर्म और प्रयोग—

मुख, जिह्वा के क्षत में इसके पत्रो को पान के साथ चवाते हैं । इससे पर्याप्त लाभ होता है । पुराने गलित क्षत मे मूषाकर्णी के पत्तो का लेप उन्हे शुद्ध करता है । मात्रा—½ से २ माशे । स्वरस १ से २ तोला । क्वाथ-५ से ६ तोला ।

मूषाकानी नं• २ (Lactuca Runcinata)

यह भृङ्गराजादि कुल (Compositae) का एक क्षुप होता है । लेक्टुका=दुग्ध सदृश रस युक्त, ऊंचा, चिकना, दूध जैसे रसयुक्त क्षुप । रन्सिनेटा=वडिश सदृस मुडे हुए । ऊंचाई १ से ५ फुट तक । काड सीधा, नलिकाकार, नीचे पोला, प्राय अतिदृढ और बहुत शाखा युक्त । पान—वृन्तहीन, बहुधामौलोद्भूत, गोजिह्वाकार (Runcinata) या कटे हुए विभाग युक्त (Pinnatifid) कोमल, दोनों ओर चिकने, किनारा केश सदृश, कण्टकयुक्त और दन्तुर । मूलोदभूत पान ४ से १२ इन्च लम्बे, ऊपर मे चौडे, नोकहीन, आधार स्थान पर सकरे, काण्डोदभूत पान थोडे छोटे (१½ से ६ इन्च लम्बे) सकरे, कर्ण सदृश । पुष्प की गुण्डी ½ इन्च लम्बी, पीली या गुलाबी सफेद नलिकाकार सामान्यत· वृन्तहीन, एकाकी या थोडी दूर पर गुच्छ मे (पत्रहीन शाखा के ऊपर) पुष्प के वाह्य कोप के पत्र थोडे, अण्डाकार, नोकदार, अन्तरोपकोष के पत्र वाह्य उपकोप से दूने लम्बे, रेसाकार लम्बगोल वालो की दाढी (Pappus) श्वेत, कोमल वीज फली की अपेक्षा लम्बा वीज । फल दवा हुआ, किंचित धारीदार ⅛ इन्च लम्बा । पुष्पकाल दिसम्वर । शाखा तथा पान तोडने पर दूध निकलता है ।

उत्पत्ति स्थान—पजाव, गगाजी का उर्ध्व प्रदेश, विहार, सिन्ध, कच्छ, गुजरात, सौराष्ट्र, मद्रास, राजस्थानादि ।

मूसाकर्णी नं. २
LACTUCA RUNCINATA, D C.
कली
पत्र
पुष्प
शाख
मूल

नाम—

हिं०—मूषाकानी, महाराष्ट्र की मूषाकानी । म०—उन्दिरकानी । गु०-सौ०—सोनकी । कच्छी—अछा कडेरी, परदेशी कडेरी, गडवल । गौआ (टेरेक्स को) ब—पाथरी । ले—लेक्टुका रुन्सिनेटा ।

मूषाकानी नं. ३ (Lactuca Remotiflora)

यह भृङ्गराजादि कुल[Compositae] का एक क्षुप होता है । लेक्टुका—दुग्ध सदृश श्वेत रसमय । रिमोटी फ्लोरा—दूर दूर चौडे, पृथक पुष्प । ८ से १८ इन्च ऊचा कोमल क्षुप । काण्ड कोमल शाखामय, पान-बहुधा मूलो

भूत, अखण्ड, वृन्त हीन, २ से ४ इन्च लम्बे, १ से १½ इन्च चौडे लम्ब गोल या ऊपर से चौडे, किनारे कटे हुए ऊपर मे गोल, सुन्दर पतले, दातादार, चिकने। पुष्प शिर सामान्यत एकाकी, क्वचित गुच्छमय। पुष्प के वाह्योपकोप के पत्र पुष्प, बालो की दाढी बीज फल ये सब पहली जाति के अनुरूप। बीजफल काले से खुरदरे।

उत्पत्ति स्थान—बादा, सिंध, सौराष्ट्र, कच्छ, दक्षिण, अरबस्तान।

नाम—

हिं—मूसाकानी, महाराष्ट्र की दूसरी मूसा कानी। गु—पाथरडी। कच्छी—छतरडी और छत्री। गोआ—टेराक्सको (Teraxco,)। लं—लेक्टुका रिमोटी फ्लोरा (Lactuca Remotiflora D c),

गुण धर्म व प्रयोग

उक्त दोनो प्रकार की आखु पर्णी मे निघण्टु रत्नाकर कथित गुण—'रसबन्धकरी, नेत्र्य, रसायनी, शूलनुत, ज्वर, कृमि, व्रण चाखुविष चैव विनाशयेत्।' सम्भावित है। उक्त आखु पर्णी स्वाद मे कडवी, रसायन और सारक है। अपचन, जीर्ण मलावरोध और यकृद् विकार को दूर करने के लिये व्यवहृत होती है। इसके पानो का उपयोग व्रणो के शोधनार्थ पुल्टिस रूप से होता है।

नव्यमतानुसार क्षुप मे शामक गुण है। सुखाये हुये दूध मे शामक और निद्राप्रद गुण अवस्थित हैं। बीज

मूषाकर्णी नं० २
LACTUCA REMOTIFLORA DC.
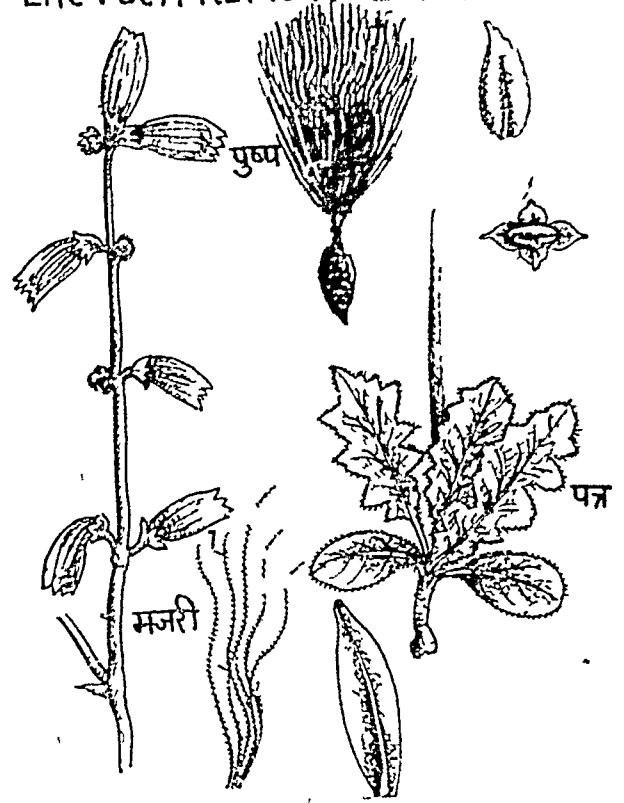
मे स्नेह गुण है। सूखे दूध का उपयोग अफीम के स्थान पर हो सकता है। टेरेक्सेकम के प्रतिनिधि रूप से ये दोनो आखुपर्णी प्रयोजित होती है।

देखिये—टेरेक्सकम (प—दूदली, गु—कानफूल) का वर्णन—वनौषधि विशेषाक भाग ३ पृष्ठ ४६२ पर।

मूसली सफेद नं० १
(Chlorophytum Arundinaceum Baker)

यह गुडूच्यादि वर्ग और पलाडु कुल (Liliaceae) की एक क्षुप जाति की वनस्पति है जो चतुर्मास मे पहाडो के ढालो मे उत्पन्न होती है। यह क्षुप आध फुट से दो फुट तक ऊचा होता है। पत्ते—लहसुन के पत्तो के समान परन्तु उनसे किन्चितमात्र दलदार [Rather thick] होकर रग किंचित् पीलासालिये दिखता है। पत्तो का स्वाद किंचित् मधुर, खट्टा और चिकनाहट लिये होता है। निचले डण्ठल मे प्याज के जैसे अनेक पतले-पतले छिलके रहते है। श्रावण-भाद्रपद मास मे क्षुप के मध्यभाग से जैसी ग्वार पाठे मे सिंदूरा निकलती है इसमे भी वसी एक बारीक पुष्प मन्जरी निकलती है, जिसमे ६ पखडी वाले सफेद फूल लगते है। फल का आकार छोटी इलायची के समान त्रिकोणाकार होता है, इन फलो मे से काले रग के चिपटे बीज निकलते है। क्षुप के पूर्ण अवस्था मे
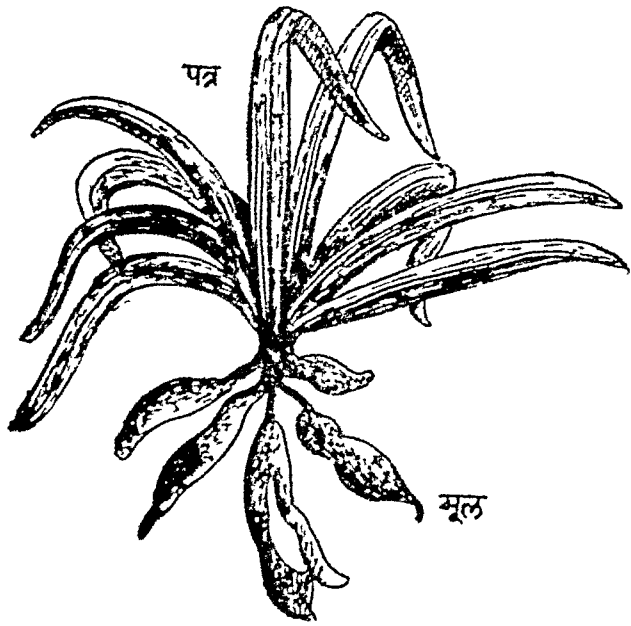
पहुंचने पर पत्ते अपने आप पीले होकर गिर पडते है। मूसली सफेद की जड ३ इञ्च से ५ इञ्च तक लम्बी और प्रत्येक क्षुप के नीचे से ५-७ मूसली के कन्द निकलते हैं। कदो का रग सफेद चिकना होता है। मार्ग शीर्ष माम मे समग्र क्षुप सूख जाते है। औषधि सग्रहकाल-भाद्रपद मास है।

व्यवहार्य अङ्ग—कद।

उत्पत्ति स्थान—

भारतवर्ष के पहाडो मे तरी वाले स्थानो मे सर्वत्र होती है। हिमालय, विन्ध्य, सतपुडा और अरावली की पर्वत श्रेणियो मे खूब मिलती है।

नाम—

स०, हिं०—मूसली सफेद। गु०—मुसली। राज०—मूसली धौली। म०—श्वेत मूसली। लें०—क्लोरोफाइटम अरुडिनेमियम।

गुण, धर्म व प्रयोग—

मूसली मधुर, वृष्य, पाक समय गरम, पुष्टिकारक, पचने मे गुरु, कडवी, सप्त धातुओ को वढाने वाली, गुदा सम्वन्धी विकार और वात रोगो को नष्ट करती है।

प्रयोग—

वीर्य वृद्धि हेतु—मूसली सफेद और मिश्री समान भाग लेकर चूर्ण तैयार कर ६ माशा सुवह-शाम गाय के दूध से लेने से शरीर में वल का संचार होता है।

वीर्यवर्धक—मूसली सफेद, सत गिलोय, कौच की गिरी, गोखरू, तालमखाना, नागोरी असगध और शतावर को समभाग लेकर और सबके समान मिश्री मिलाकर चूर्ण तैयार करले। मात्रा—६ माशा चूर्ण सुवह शाम लेकर ऊपर से गाय का गरम दूध सेवन करे।

सन्धिवात पर—मूसली सफेद आधा तोला, घी एक तोला दोनो को मिला आधापाव गरम दूध के साथ सोते समय लेना चाहिये।

वाजीकरण योग—गोद ववूल, फली ववूल, छाल ववूल, गोद पलाश, मूसली सफेद, मूसली काली, सेमर की मूसली, तालमखाना, इन्द्र जी मीठा, वहमन सुर्ख सम भाग ले। कपडछन चूर्ण कर वरावर मिश्री मिला १ तोला लेकर ऊपर से ताजा दूध पीवे।

प्रमेह पर—जहर मोहरा खताई, प्रवाल भस्म, ववूल की फली, मोचरस, शिलाजीत, वशलोचन, शकाकुल मिश्री, वग भस्म १-१ तोला। मूसली सफेद, मूसली काली, वहमन सफेद, वहमन लाल, शतावर, ईसवगोल, गोद ववूल, सालम मिश्री प्रत्येक २ तोला और मिश्री सवके वरावर, खुराक ६ माशा। —अभिनव वूटी दर्पण

मूसली सफेद नं० २ (Asparagus Abscendens Roxb.)

यह गुडूच्यादि वर्ग और पलाडु कुल (Liliaceae) की पतली शाखा और ऊपर चढने वाली, लगभग खडी काटेदार झाडी होती हैं। मूल—सफेद गाठ युक्त। काड ऊचा, सुदृढ लगभग खडा नलिकाकार चिकना, सफेद, अनेक शाखा और चढने वाली उपशाखा युक्त, सूक्ष्म, खुरदरी छालवाला, काटे—आधे से पौन इञ्च लम्वे, सुदृढ, सीधे। चपटी शाखामे पानो का कार्य करती है। पुष्प मुकुट १ से २ इञ्च लम्बा अनेक पुष्प युक्त। पुष्प १

इञ्च व्यास का। पुष्पदल-सूक्ष्म। फल-लाल, काला, बहुत छोटा एक बीज वाला। पुष्पकाल-अक्टूबर, नवम्बर। मूसली कद जिसकी छाल उतारकर सुखालेते हैं। यह बाजार मे मिलती है और झुर्रीदार, स्वच्छ, हस्ति दन्त तुल्य श्वेत, २ से २½ इञ्च लम्बी, ¼ मोटी, कडी, भग प्रवण, स्वाद फीका, लुआवदार होता है। मूल (कद) जल मे भिगोने पर फूलता और शतावरी सरीखा दिखता है।

उत्पत्ति स्थान—

पश्चिम हिमालय, पजाब से कुमायू तक ५००० फीट की ऊचाई पर अफगानिस्तान, गुजरात प्रदेश, मध्य प्रदेश, रुहेल खण्ड, अवध, राजस्थान आदि मे पैदा होती है।

नाम—

स०-श्वेत मुसली, ताल मूली। हिं०-मूसली सफेद व०—श्वेत मुसली। म०—पाढरी मूसली। गु०-धोली मुसली। अ०, फा०—सकाकुले हिन्दी। ता०—तान्निर विटेग। ते०—तसाल्लोगड्डा। गढवाली—झिरना। उत्तर प्रदेश, प०—खेरुवा। मल०—शेदेवेलि। ले०—एस्पेरेगस ऐक्सेंडेन्स।

रासायनिक सङ्गठन—

अल्ब्युमिन्स पदार्थ, लुवाव और काष्ठोज। कद चूर्ण मे जलीय सत्व, काष्ठोज, आर्द्रता और राख होती

गुणधर्म और प्रयोग—

मूसली—मधुर, वीर्य वर्धक, वृहण, भारी, कडवी, रसायन तथा ववासीर और वातनिवारक है।

—भा० नि०

मूसली—रस और पाक मे मधुर, शीतल, अग्नि-वर्द्धक, वातनाशक, पित्तनिवारक, वीर्यवर्द्धक तथा स्थिरता और मृदुतादायक है। —शा० नि०

मूसली—मधुर, वीर्यवर्द्धक, धातुवृद्धिकारक, भारी, कड़वी, पुष्टिकारक, वलवर्द्धक, पिच्छिल, कफनाशक,

सफेद मूसली नं・२

ASPARAGUS ADSCENDENS, ROXB.
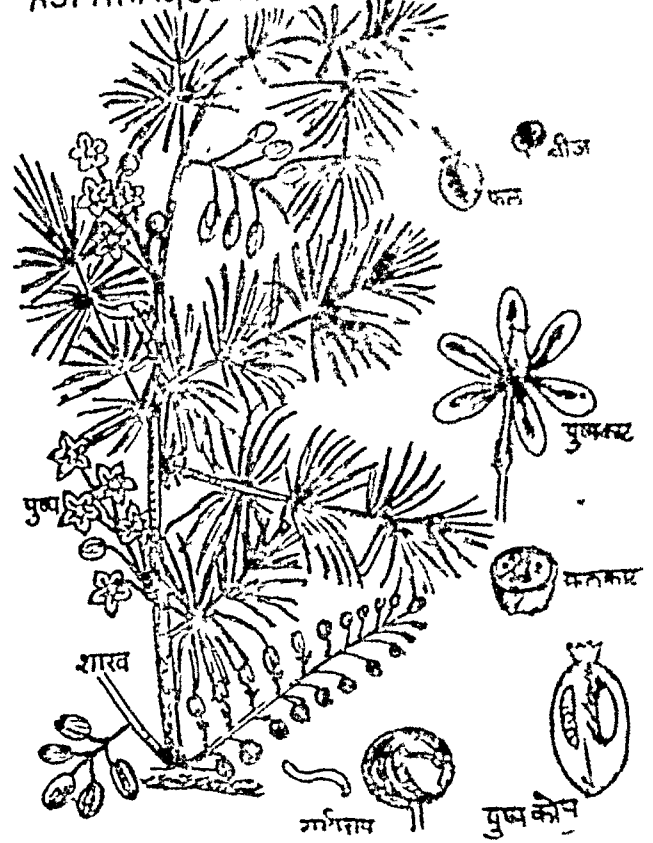
रसायन, शीतल तथा पित्त, दाह, रुधिर विकार और श्रम को हरने वाली है।

विशेष विवेचन—

धातु पुष्टि के लिये मूसली बहुत प्रसिद्ध दवा है। तमाम प्रकार के पुष्टिकारक पाक और चूर्णो मे मूसली आती है। यह वाजीकर है। इस मूसली को जल मे भिगोकर रखने से भी इसका चिकना लुवाव हो जाता है। दूसरी पौष्टिक दवाओ के साथ मिला चूर्ण करके लेकर ऊपर से दूध पीने से कमर का दर्द, कुजन, कमजोरी, शिर का दर्द आदि दूर होते हैं और शरीर मे विशेष शक्ति आती है। इसके सिवाय यह प्रमेह, सुजाक और पीड़ितार्तव मे उपयोग की जाती है। इसके सेवन से पेशाव साफ उतरता है और जलन वद हो जाता है। स्त्रियो को यह दवा प्रदर के लिये दी जाती है।

पुष्टि के लिये दो तरह की दवाइया प्रयोग में आती है एक स्तम्भन और दूसरी वृष्य। जैसा कि कई जगह पुष्टि हेतु स्तभन दवा प्रयोग मे ली जाती है पर सब स्थानो पर ऐसा योग्य नही। हा धौली मूसली वृष्य होने से तमाम प्रकार का पुष्टि के लिये काम मे लाना योग्य हैं। मूसली का चूर्ण धातु पुष्टि के लिये अधिक दिनो तक सेवन करने की जरूरत नही है। शीघ्र ही इसका भली प्रकार प्रभाव मालूम होता है। इस पर दूध आदि उत्तम खुराक की जरूरत है।

मात्रा—मूसली चूर्ण और मुसल्यादि चूर्ण आधा तोला। मूसलीपाक—२ से ५ तोला।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—पहले दर्जे मे गरम और दूसरे मे खुश्क है।

गुण धर्म—

वाजीकर, शुक्रल और वीर्य पुष्टिकर।

उपयोग—कामावसाद और शुक्र प्रमेह मे इसके चूर्ण मे समभाग चीनी मिलाकर खिलाते है। इसके अतिरिक्त इसे बाजीकर और शुक्रमेहघ्न माजूनो और चूर्णो मे उपयोग करते है।

अहितकर—चिरपाकी है। निवारण—नमक, शहद और सोठ। प्रतिनिधि—एक भेद दूसरी का। मात्रा—५ से ७ माशे तक।

डा० वामन देसाई के मतानुसार—इसमे प्रथिनाश और श्वेत सारका अभाव होने से यह मधु प्रमेह वालो के लिये उपयोगी है। यह शीतवीर्य, स्नेहन और उत्तम बल्य है। निर्वलता दूर करने के लिये दूध के साथ दी जाती है। मूसली जननेन्द्रिय और पेशाव के रोगो के ऊपर खास प्रभावकारी है।

डा० क्षौरी ने लिखा हे कि यह तिक्त, सुगधित, वलदायक व चिकनी होती है। यह साधारण कमजोरी, मूत्र सम्बन्धी रोग और नपुन्सकता आदि मे लाभ करती है, सास, बवासीर, मूत्रकष्ट से आना, दस्त, अधिक मासिक श्राव और सुजाक मे लाभकारी है। आम तौर पर इसे पुरुषत्व बढाने मे प्रयोग करते है।

विशिष्ट प्रयोग —

शुक्रवद्धि के लिये—मूसली चूर्ण को शक्कर के साथ मिलाकर दूध के साथ प्रात काल और रात्रि को लेते रहने से सब प्रकार की निर्वलता दूर हो जाती है। शुक्र स्राव बन्द होता है और बल की वृद्धि होती है।

मूसली चूर्ण—सफेद मूसली, बड़े गोखरू, तालमखाना और सतावरी चारो समभाग मिलाकर ४-४ माशे समान शक्कर और दूध के साथ दिन मे २ बार सेवन करते रहने से शुक्रमेह, कटि वेदना, मूत्र कृच्छ्र, मूत्रदाह और शिर दर्द आदि दूर होकर शरीर सबल बन जाता है।

मूसली पाक—मूसली के १० तोले चूर्ण को ५ सेर दूध मे उबाल कर उसका खोवा (मावा) बनावें। फिर उसको आधा सेर घी मे सेक लेवें। बाद सवा सेर शक्कर की चाशनी कर मावा मिलाकर थाल मे जमा लेवें। इसमे केशर, इलायची, जायफल और प्रबाल, मोती, बंग भस्म आदि इच्छानुसार मिला लेवे। इसे जमाने के समय कितनेक श्री मन्त और आधा सेर घी मिला लेते है। इस पाक मे से ५-५ तोले रोज सुबह लेकर ऊपर से दूध लेते रहे। इस तरह इस पाक का सेवन शीतकाल मे १ मास तक करने से कृशता और निर्बलता दूर हो जाती है।

—गा औ र.

मुसल्यादि चूर्ण—धौली मूसली, काली मूसली और गोखरू प्रत्येक ५-५ भाग, ताल मखाना, शतावर, बलदाना, बहुफली प्रत्येक ३-३भाग, कौच, मोचरस, अकरकरा, नागकेसर २-२ भाग। तज, तमाल पत्र, जावित्री और इलायची १-१ भाग। इन सबके बराबर शक्कर मिलाकर वस्त्रपूत चूर्ण बनावें।

मुसली पाक—धौली मूसली १ सेर लेकर उसको साफ करके पीस छान लें। बाद मे १ मन दूध लेकर उसमे धौली मूसली डालकर मावा बनाले। बाद मे मावे को ३ सेर घी मे सेक ले। फिर १२½ सेर खाड की चासनी मिला देवें। ऊपर ५ सेर घी डालकर रखले। गुण—धातु-पौष्टिक।

—आर्य औपधि

मूसली चूर्ण—सफेद मूसली चालीस तोले लेकर,

कूटपीस कर छान लो और शीशी मे रख दो इसकी मात्रा ६ माशे से १ तोले तक है। एक मात्रा सवेरे-शाम खाकर ऊपर से पाव आध सेर गाय का दूध पीने से, वीर्य खूब ताक्तवर और स्त्री प्रसग मे आनन्द देने वाला हो जाता है। कम से कम ६ महीने खाना चाहिये। अगर कोई इसे साल भर तक खा ले तो वह दश स्त्रियो को सतुष्ट कर सकेगा। इसके खाने वाले के जो पुत्र होगा वह भीम के समान बली होगा, इसमे शक नहीं। परीक्षित है।

नोट—धातु पौष्टिक दवाये अक्सर कठिनाई से पचती है। जिनकी अग्नि मन्द होती है, उन्हे और भी ज्यादा दिक्कत से पचती है। इनके सेवन से दस्त कब्ज हो जाता है। अगर ऐसा हो, तो मात्रा ३ माशे की कर लेनी चाहिये। जब दवा का असर होगा, पाखाना आप ही साफ होता रहेगा। कोई ४० दिन के बाद लाभ मालूम होता है, अत नाउम्मेद होकर दवा खाना बन्द न कर देना चाहिये। मूसली "रसायन" है। इसके सेवन से बुढापा और रोग पास नही आते। सेमल की मूसली और चूर्ण खाकर, घी मिला दूध पीने से पुरुष चिडे की तरह मैथुन करने वाला हो जाता है। सुपरीक्षित है।

मूसली चूर्ण—सफेद मूसली एक छटाक, ताल मखाने के बीज आध पाव और गोखरू तीन छटाक लाकर महीन पीस छानलो। इसकी मात्रा ६ माशे से एक तोले तक है। एक मात्रा चूर्ण को पाव भर दूध मे डालकर औटाओ। जब आधा दूध रह जाय, उसमे २ तोला मिश्री मिलाकर पी लो। इस तरह का दूध दो तीन महीने पीने से खूब रतिशक्ति बढती है। परीक्षित है।

मदनानन्द चूर्ण—सकाकुल मिश्री, सालिम मिश्री, स्याह मूसली, सफेद मूसली, शतावर प्रत्येक ४-४ तोले। बहमन सुर्ख, बहमन सफेद, तोदरी छोटी, तोदरी बडी प्रत्येक २-२ तोले, सुरवारी के बीज, इन्द्र जौ मीठे, जावित्री, जायफल, सोंठ, कुलीजन प्रत्येक १-१ तोला।

बनाने की तरकीब—इन सब दवाओ को अलग-अलग कूट पीसकर छान लो। फिर चार-चार, २-२ और १-१ तोले तौलकर मिलाओ।

सेवन विधि—इसकी मात्रा ६ माशे की है। एक मात्रा १ तोला शहद मे मिलाकर चाटलो, ऊपर से मिश्री मिला दूध पी लो। अगर मौसम गरमी का हो तो दूध मे दवा न खाकर अर्क गावजुबा मे मिश्री मिलाकर, उसी से दवा खानी चाहिये।

रोगनाश—इस मदनानन्द चूर्ण के सेवन से स्त्री प्रसग की इच्छा खूब ज्यादा होती है, धातु की क्षीणता और थोडे दिनो की नामर्दी जाती रहती है तथा वीर्य मे स्तम्भन-शक्ति आती है, इसलिए स्त्री भोग मे बडा आनन्द आता है। इस चूर्ण की जितनी तारीफ करे थोडी है। काम को उत्तेजित करने मे यह रामबाण है।

जिनको स्त्री प्रसग की इच्छा कम होती हो वे इसे कम से कम तीन मास सेवन करें। और देखे क्या मजा आता है। अगर स्त्री प्रसग से परहेज करके ६ महीने यह चूर्ण खा लिया जाय, तब तो कहना ही क्या! सुपरीक्षित है।

किशमिशादि मोदक—किशमिश ८ छटाक, स्याह मूसली, सफेद मूसली, सालम-मिश्री, समन्दर शोप, मोचरस, बादाम की मीगी, शतावर प्रत्येक २-२ तोले, कुलीजन ६ माशे, मिश्री १ सेर।

बनाने की तरकीब—किशमिश, बादाम और मिश्री को अलग रखो और बाकी सब दवाओ को अलग। किशमिशो को पानी मे धोकर, काटे वगैरह निकाल कर, साफ करलो और सुखा दो। बादामो को जरा उबालकर चाकू से कतरलो। मूसली प्रभृति सातो दवाओ को पीस कूटकर छानलो। मिश्री को कलईदार कढाही मे रख थोडा सा अन्दाज का पानी डाल, गाढी-गाढी चाशनी बनालो। जब कुछ ठण्डी हो जाय तब उसमे दवाओ का चूर्ण जो तैयार रखा है, तथा किशमिश और बादाम सबको डालकर मिला लो और आधी-आधी छटाक के लड्डू बनाकर चिकने पात्र मे रख दो।

सेवन विधि—सवेरे-शाम, एक-एक लड्डू खाकर ऊपर से मिश्री मिला दूध पीने से वीर्य खूब गाढा और पुष्ट होता तथा शरीर तैयार होता है। इसको हमने अनेक

रोगियो को सेवन कराया । परमात्मा ने सभी को फायदा पहुचाया । जाडे मे खाने योग्य चीज है । इसके सेवन करने से एक बूढे को खूब फायदा हुआ । सुपरीक्षित है ।

—चि० च० भाग ४

पुष्टिकर चूर्ण—सालिम मिश्री, सकाकुल मिश्री, तोदरी सफेद, कौंच के बीजो की गिरी, इमली के बीजो की गिरी, तालमखाना, सरवालीके बीज, सफेद मूसली, काली मूसली सेमल की मूसली, बहमन सफेद, बहमन लाल, शतावरी, कीकर का गोंद, कीकर की कच्ची या सूखी फली, कीकर का सत्व, ढाक की नरम कली प्रत्येक १-१ तोला ।

इन सबको पीस छानकर चूर्ण बनालो । फिर उस चूर्ण मे १८ तोले "देशी मिश्री" पीसकर मिला दो, बस चूर्ण तैयार है । इसकी मात्रा १ तोले की है । सवेरे-शाम एक-एक मात्रा फांक कर ऊपर से पावभर धारोष्ण दूध पी लो। अगर ऐसा दूध मुवाफिक न आवे या पसन्द न हो, तो आधसेर गाय के दूध को इतना औटाओ कि तीन उफान आ जावे । फिर, उसमे एक छटाक सफेद देशी चीनी मिलादो । दवा फाककर, ऊपर से यही दूध पीओ । इस पुष्टिकारक चूर्ण से नये पुराने प्रमेह, धातुक्षीणता स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, सिर का दर्द, कमर का दर्द, दिल और दिमाग की कमजोरी, वातो का याद न रहना वगैरह सारे ही रोग आराम हो जाते है । पर इसे कम से कम ८० दिन तक लगातार पथ्य सहित सेवन करना आवश्यक है । यह चूर्ण श्रीयुत पण्डित शम्भूदत्त कौपिक मिश्र का अनेको बार का परीक्षित है । वास्तव मे यह ऐसा ही है । हमने स्वय चन्द रोगियो पर परीक्षा करली है, अत सुपरीक्षित है । सेवन करने वाले को इस दवा के खाते समय गुड, तेल. खटाई और स्त्री प्रभृति से परहेज रखना परमावश्यक है ।

नपुसक रञ्जन अवलेह—असगध, सफेद मूसली, स्याह मूसली, कौंच के बीज शतावर, तालमखाना, बीजबन्द, जायफल, जावित्री, ईसबगोल, नागकेशर, सोंठ, गोल मिर्च, पीपर, लौंग, कमल गट्टे की गिरी, छुआरे, बादाम, मुनक्के, चिरौंजी प्रत्येक ५-५ तोले, मिश्री २॥ सेर घी आधा सेर ।

बनाने की विधि—मिश्री और घी को छोड, सब दवाओ को कूट पीसकर कपडछन करलो और घी मे भून लो । पीछे मिश्री की ढीली चाशनी जो न जमे, बनाकर उतार लो और सब दवा मिला दो । पीछे से चादी सोने के वरक मिलाकर रख दो ।

सेवन विधि—इसमे से एक या दो तोले लेह चाटकर ऊपर से मिश्री मिला दूध पीने से नपुसकता जाती है, वीर्य गाढा और पुष्ट होता तथा अनेक स्त्रियो से भोग करने की सामर्थ्य होती है, इनके सिवा पेशाब की जलन, पथरी और वायु रोग आदि अनेक रोग भी नाश होते है । परीक्षित है ।

पुरुपवल्लभ चूर्ण—सफेद मूसली, स्याह मूसली, गिलोय का सत्त, सोंठ, पीपर, मुलहठी, ईसबगोल, तालमखाना, मूर्वा, बबूल का गोंद, रूमी मस्तङ्गी, बीजबद, लौंग और जायफल सब ४-४ तोले लेकर, कूट पीसकर छान लो । फिर केशर ४ तोले और धुली भाग १० तोले भी पीस छानकर मिला दो । अन्त मे ७० तोले मिश्री पीसकर मिला दो और रख दो ।

सेवन विधि—इसमे से १ तोला चूर्ण गाय के अधौटे दूध मे मिलाकर रात को सोते समय पी जाने से शरीर खूब पुष्ट और बलिष्ट हो जाता है । इस नुस्खे से बदन के सारे हिस्सो मे ताकत आती और शरीर फौलाद के समान मजबूत हो जाता है । बल-वीर्य बढाने मे यह नुस्खा एक नम्बर है ।

मूसली पाक—पहिले सफेद मूसली तीन पाव लाकर पीस कूटकर छान लो । बबूल का गोद १॥ पाव दरदरा करके रखलो ।लौंग, छोटी इलायची, नागकेसर, सोंठ, पीपर, कालीमिर्च, तेजपात, जावित्री, जायफल १॥-१॥ तोला, सबको कूट पीसकर कपडछन करलो ।

उत्तम वग भस्म १॥ तोले, चादी के वर्क ६ मा. और सोने के बरक ३ माशे इनको भी रखलो ।

मिश्री ४ सेर और घी आध सेर भी तैयार रखो। इतनी सब तैयारी कर लेने पर कलईदार कढाई मे १॥ पाव घी डालकर मूसली के पीसे छने चूर्ण को भूनो। आग मन्द रखो। चूर्ण जलने न पावे। जब वह सूखा हो जाय, उतार लो। फिर 'घी' चढाकर, गोद को भूनलो जब गोद फूलकर लाल हो जाय उतार लो।

अब मिश्री को कढाई मे डालकर पानी के साथ पकाओ। चाशनी होने पर आवे तब उसमे खोआ और गोद डाल दो और चलाओ। जब चाशनी पाक के लायक होने मे १०मिनट की देर रहे दवाओ का मसाला और वगभस्म तथा वर्क मिला दो और उतार कर घी लगी कासे की थाली मे फैला दो। शीतल होने पर चाकू से वरफी काट चीनी या काच की वरनी मे भर मुह बाध कर रख दो।

सेवन विधि—इस पाक की मात्रा २ तोले की है। वलवान इसे ३ तोले तक खा सकता है। पाक खाकर, मिश्री मिला दूध पीओ। इसके सेवन से वीर्य की कमी के कारण हुई नामर्दी निश्चय ही चली जायगी और खूब वीर्य वढेगा। इससे प्रमेह, धातुक्षीणता और नानाकृती नाश होकर मैथुन शक्ति खूब वढेगी। कामियों को यह पाक हर जाडो मे खाना चाहिये। अगर कोई सवेरे 'गोखरु पाक' और शाम को 'मूसली पाक' खावे तो क्या कहना ? चार महीने खाने मे ६० साल का वूढा भी जवान की तरह मैथुन कर सकेगा। परीक्षित है।

अनुभूत वाजीकरण योग—ववूल का गोद २ तोले, ढाक का गोद, शतावर, काली मूसली, सफेद मूसली, असगध नागौरी, मुलहठी, (छिली), ताल मखाने के बीज प्रत्येक २-२ तोला। मिश्री १६ तोला। मिश्री छोड, सब दवाओ को कुटी छनी २-२ तोले मिला लें। फिर उनमे चूर्ण के समान १६ तोले मिश्री मिला १-१तोला प्रात साय गरम दूध से लें। मैथुनशक्ति वढाने मे यह योग परमोत्तम है। लगातार ६० दिन खा देखें। फल न होगा। परीक्षित है। —चि च भाग ४

मूसली स्याह (Curculigo Orchiodes)

यह गुडूच्यादि वर्ग एव नागदमनी कुल (Amaryllidaceae) का एक क्षुप होता है। काला मूसली के क्षुप चातुर्मास मे वहुत उग आते है। इसका क्षुप १ से १॥ फीट ऊचा। इसके क्षुप का ऐसा स्वरूप दिखता है जैसा ४-५ पत्तो वाला खजूर का नवीन वृक्ष होता है। क्षुप के नीचे उंगली के समान मूल होता है। उसके ऊपर की छाल काले ताम्र रङ्ग की होती है। भीतर का गर्भ सफेद रङ्ग का होता है। मूल सख्त, यहा से नरम तीखे तीखे मूल होते है। पत्र वृन्त छोटा, पत्र—६ से १८ इन्ची लवा, आध से एक इन्ची चौडा, घास के पत्र के अनुसार अगला भाग तीखा, इनका ५ शिराये होती है। पत्र के अग्रभाग को मिट्टी से ठोकने से कभी कभी जड वाहर होती है। पुष्प मजरी एव गर्भ कोप के मध्य मे, सकुचितता होती है, मजरी का दण्ड चपटा। फूल—पान के घड मे पीले रङ्ग के लम्बे सूक्ष्म फूल आते है जो उज्वल पीतवर्ण के होते है। पुकेसर छोटा, गर्भाशय ५ से ८ भागो मे विभक्त। फल—लम्बाकृति आध इन्ची। वीज—१ से ४ तक होते हैं। वीज का त्वक कृष्ण। ग्रीष्म एव वर्षा काल मे फूल इसके वाद फल लगते हैं। पुष्पकाल—वर्षाऋतु आगे फल काल। औषधि मे दो वर्षीय झाड़ का कन्द काम आता है।

उपयुक्त अङ्ग—कंद।

वक्तव्य—इस पौधेके फूलका रङ्ग सोने के समान होने से इसको हेम पुष्पी कहते हैं वाजार मे कृष्णवर्ण मूसली विक्रय होती है। काली मूसली विशेष गुणकारी है। इसका मूल मूसली के आकार के लम्बे और काले होने से काली मूसली कहते है।

उत्पत्तिस्थान—यह समस्त भारतवर्ष और लका के पहाडो मे आबू पर्वत श्रेणियो की आर्द्र भूमि मे काली मूसली खूब होती है। वगाल, आसाम, पश्चिमी घाट

सियाह मूसली

Aneilema scapiflorm Wight.

जावा आदि के उष्णतर छायान्वित स्थानो मे पायी जाती है।

नाम—

स०—तालमूली, तालपत्री, हिरण्य पुष्पी, हेम पुष्पी। हि०—काली मूसली, सिया मूसली। गु०—काली-मूसली। बं०—तालमूली। म०—काली मूसली। कर्णा.—नलताडी। ता०—निलपथनैक किज हेगु। ते०—निलत तलिगडूलु। मल्ल०—नेल्ला पाना किलोगु। कन्नड—नेलाडाली। अं०—Black musle। ले०—क्युर-क्युलिगो आर्चीओइड्स्।

रासायनिक संगठन—

राल, कषाय द्रव्य, लुवाब, वसा, पिष्ट और सुखाये हुए कद की राख मे चूना होता है।

गुण धर्म और प्रयोग—

राजनिघण्टु के मतानुसार मूसली रस मे मधुर, (स्वाद मे कडवी), शीतवीर्य, कामोत्तेजक, पौष्टिक, बल-वर्धक, पिच्छिल, कफकारक, पित्तहर, वातशामक और श्रमहर है। कैयदेव जी ने इसे उष्ण वीर्य माना है।

वृहन्निघण्टुकार ने काला मसली को सफेद मसली की अपेक्षा अधिक पौष्टिक माना है।

यूनानी मतानुसार—मूसली कडवी, मधुर, उदर वातहर, पौष्टिक, कामोत्तेजक, ज्वरहर तथा कास, नेत्रा-भिष्यन्द, वमन, अतिसार, कटिवात, श्वास कृच्छता, सुजाक, सुजाक जनित जीर्ण मूत्र प्रसेक नलिका प्रदाह, अलर्क विष और संधि पीड़ा आदि रोगो मे हितावह है।

नव्यमतानुसार—काली मूसली स्नेहन, मूत्रजनन, बल्य और कामोत्तेजक है। श्वास, अर्श, कामला, अतिसार, शूल और सुजाक पर व्यवहृत होती है। यह सुगन्धित
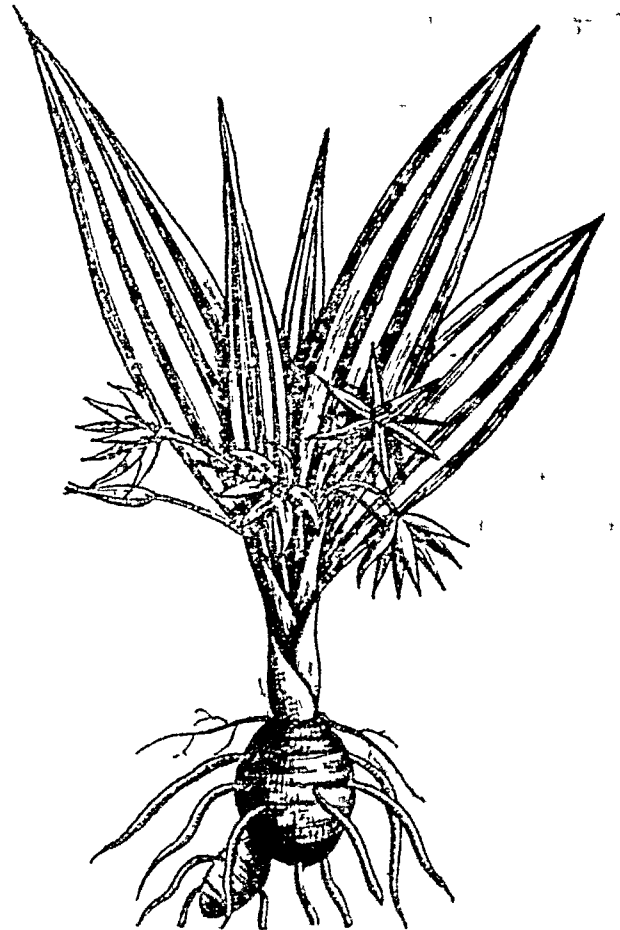
मूसली काली
CURCULIGO ORCHIOIDES GAERTN

और कडवे द्रव्यो के साथ मिलाई जाती है।

मात्रा—४ से ८ माशे।

काली मूसली का उपयोग सुश्रुत सहिता मे अश्मरी, विद्रधि और श्वास रोगो के प्रयोगो मे किया गया है। वर्तमान मे शुक्रवर्धक और कामोत्तेजक औषधियो के साथ इसका उपयोग हो रहा है।

प्रयोग—

अतिसार पर—काली मूसली के चूर्ण को मठ्ठे के साथ दिन मे ३ बार देते रहने से और मठ्ठा भात का सेवन करने पर थोडे ही दिनो मे अतिसार दूर हो जाता है।

सुजाक पर—काली मूसली के ६ माशे चूर्ण को उबलते हुए दूध मे थोडा-थोडा डालकर मिला लेवे। फिर मिश्री मिलाकर सेवन करने से पुराना सुजाक दूर होता है। इस प्रकार से मूसली का चूर्ण मूत्र कृच्छ्र और अत्यार्तव की रुग्ण को भी दिया जाता है।

(आ) मूसली ६ माशे, शक्कर ६ माशे और चदन का तैल ३ से ५ बूद डालकर दूध जल की लस्सी से ३ दिन तक लेते रहने से सुजाक जनित तीव्र वेदना सह मूत्र-कृच्छ्र दूर हो जाता है।

वीर्य वृद्धि के लिये—२० तोले दूध मे १ तोला मूसली का चूर्ण मिलाकर रबडी जैसा गाढा करे। फिर २-३ तोले मिश्री, २ तोले बादाम और ६ माशे घी मिलालें। पश्चात् जायफल, केशर और इलायची का चूर्ण थोडा डालदे। इस तरह बनाकर रोज सुबह २१ दिन तक सेवन करने से वीर्य गाढा बन जाता है।

प्रदर पर मूसली का चूर्ण और कुसुमजपा की २-३ कली को शक्कर के साथ मिलाकर खा लेवे। ऊपर से दूध पीवें। —गावो मे औ० रत्न भा० ३

मेढ़ासिंगी (Dolichenbrone falcata)

यह गुडूच्यादि वर्ग और शोनकादि कुल [Bigonia-ceae] का मध्यम कद का वृक्ष १० से २० फीट तक ऊचा होता है। इसके पत्ते ७ ५ से लेकर १५ सेंटिमीटर तक लम्बे होते है। इसके फूल सफेद रङ्ग के होते है।

उत्पत्ति स्थान—यह वनस्पति राजस्थान, बुदेलखण्ड, बिहार, मध्यप्रदेश, बरार, कोकण, दक्षिण, मैसूर और मद्रास प्रेसिडेंसी मे पैदा होती है।

नाम—

हि०—मेढासिंगी। बबई—कसेरी, मानचिंगी, मेढल, मेसर्सिगी। म—मेढासिंगी, मेरसगी, मेवाड़—केमेरी अवधहावर मध्य प्रदेश—मेडासिंगी, मिल, दुदगी। ता०—कदालेट्टि। ते०—चित्तीवोदी। ले०—डोली चेन्ड्रोनफेलकेटा।

गुण धर्म और प्रयोग—

इस वनस्पति के फल का काढा गर्भपात को रोकने के लिये काम मे लिया जाता है।

वाद में प्राप्त

वनौषधि-विशेषांक
के
कुछ चित्र
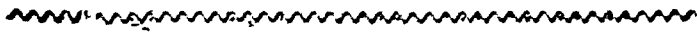
(विवरण वनौषधि विशेषांक भाग १ पृष्ठ ५५७ पर देखें)

चोरक
ANGELICA GLAUCA EDGEW
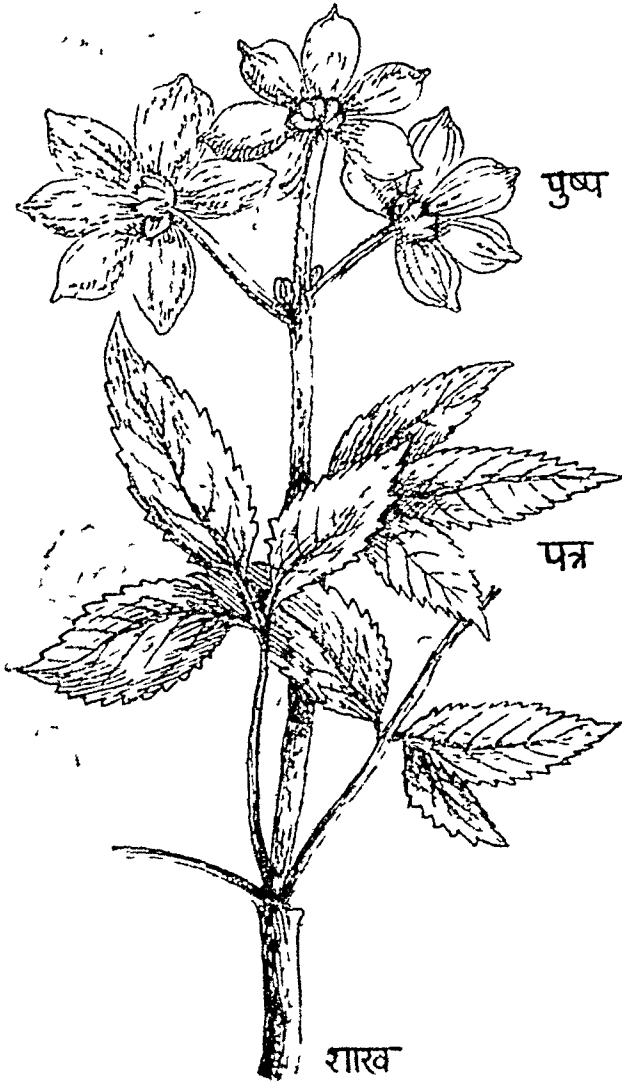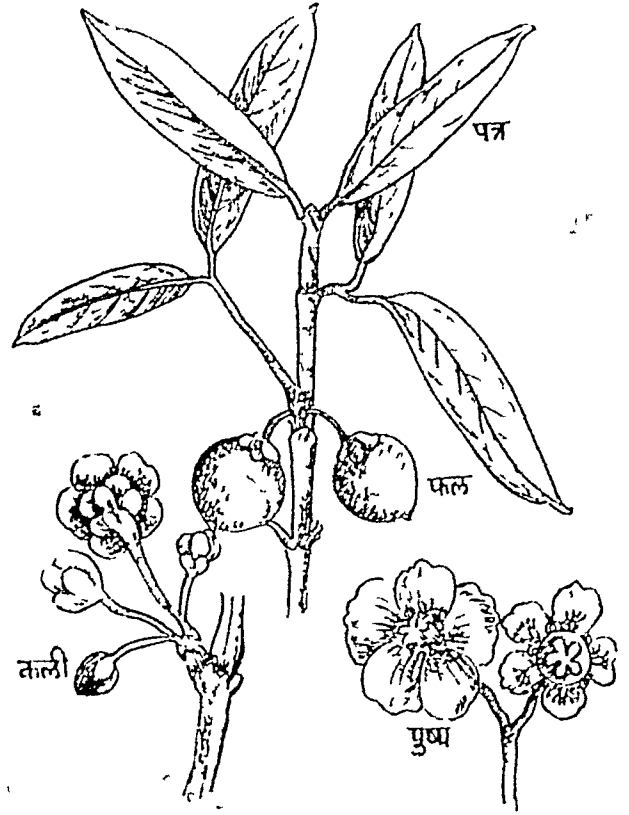
तेदूंजाति (आबनूस)
DIOSPYROS EBENUM, KOENIG.

(विवरण वनौषधि विशेपाक भाग २ पृष्ठ ३१६ पर देखें) ++ (विवरणवनौषधि विशेपाकभाग १ पृष्ठ ३४१ पर देखें)

भूमि बला (खरैंटी लता)
SIDA VERONICAEFOLIA LAMK.
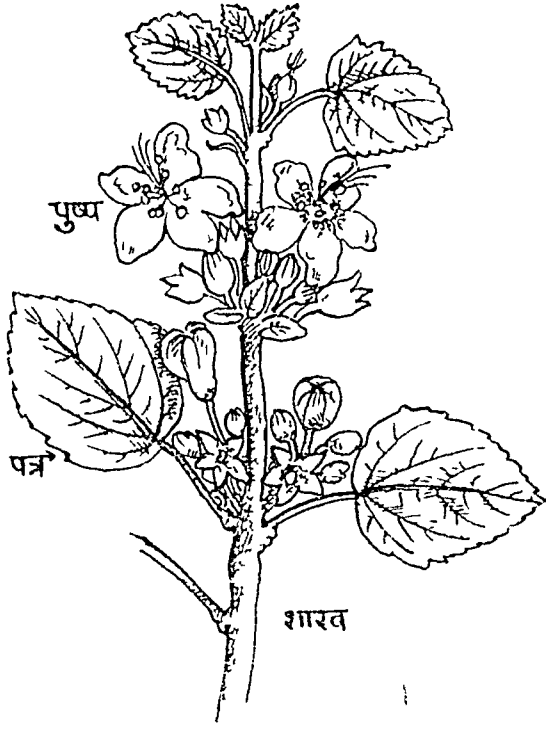
(विवरण बनौषधि विशेषाक भाग २ पृष्ठ ३६७ पर देखें)

मयूर-शिखा
ADIANTUM CAUDATUM LINN.

(विवरण पृष्ठ ३५५ पर देखे)

कोकीना
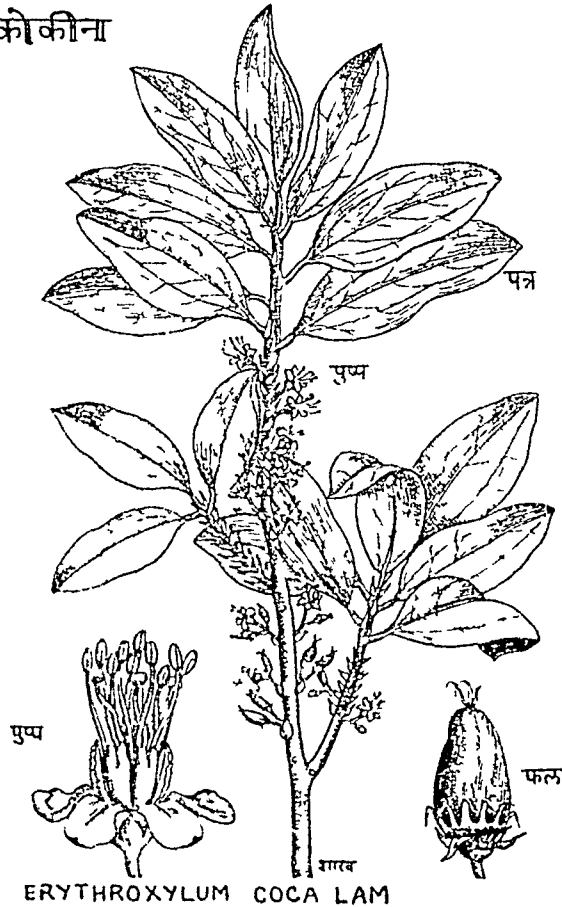
ERYTHROXYLUM COCA LAM

(विवरण बनौषधि विशेषाक भाग २ पृष्ठ १३८ पर देखें)

नरमोली—जड़-वृन्त-पत्र

(विवरण पृष्ठ ३४ पर देखें)

माठ

AMARANTHUSTRISTIS LINN.
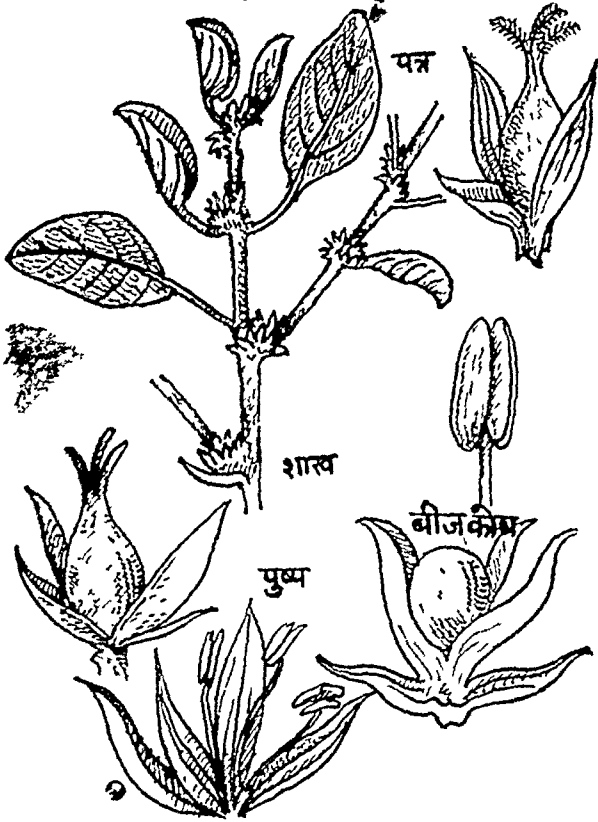
(विवरण वनौषधि विशेषाक भाग १ पृष्ठ १३७ पर देखें)

काक माची (मकोय)

SOLANUM NIGRUM LINN.
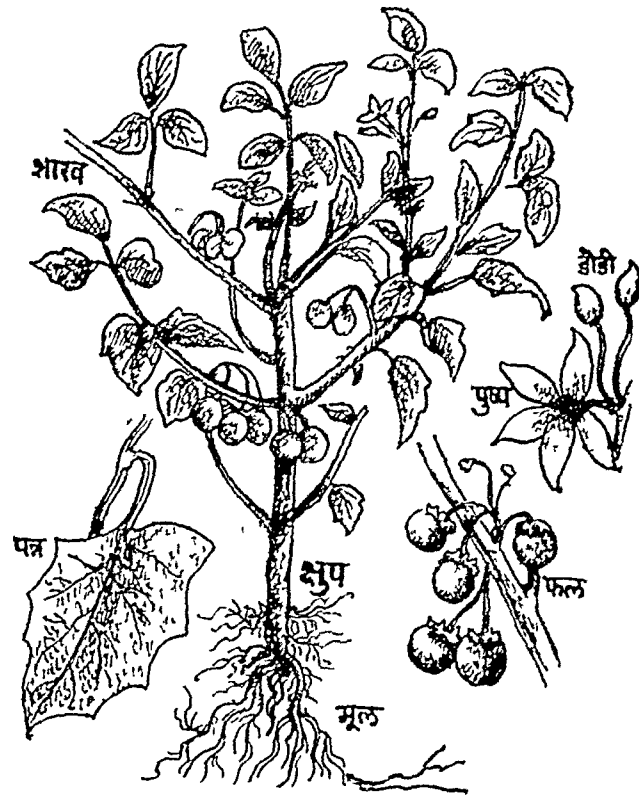
(विवरण पृष्ठ ३४१ पर देखे)

मटर बडामटर घटला

PISUM SATIVUM LINN.

(विगरण पृष्ठ ३५० पर देखें)

भिण्डी.

HIBISCUS ESCULENTUS LINN.
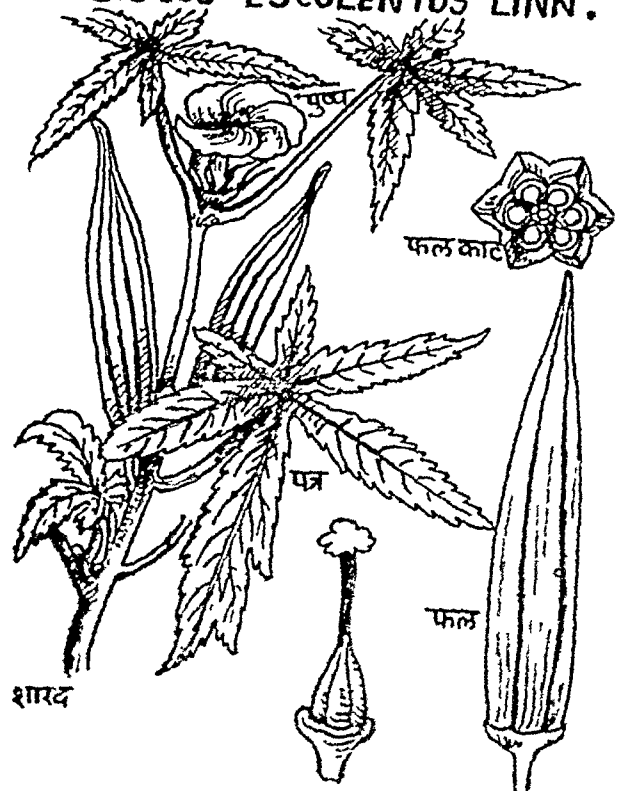
(विवरण पृष्ठ ३१२ पर देखे)

मजीठ
RUBIA CARDIFOLIA, LINN.

(विवग्ण पृष्ठ ३४७ पर देख)

मक्का (मकई)
ZEA MAYS LINN
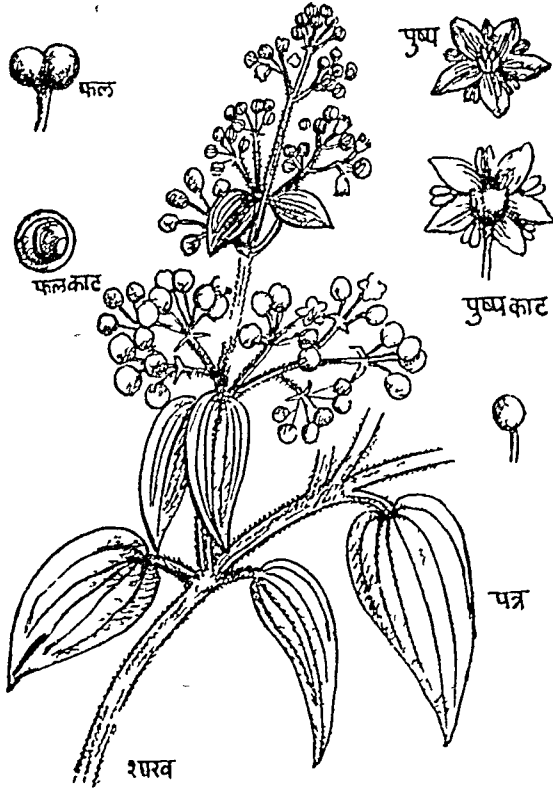
(विवरण पृष्ठ ३४० पर देखे)

मकोय
Solanum dulcamara Linn.
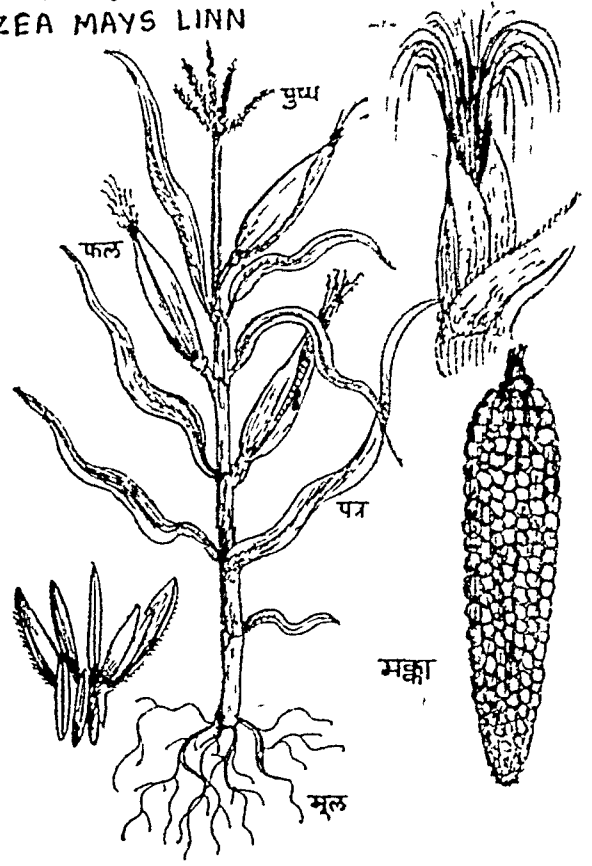
(विवग्ण पृष्ठ ३४१ पर देखे)

मरोड़ फली
HELICTERS ISORA LINN.
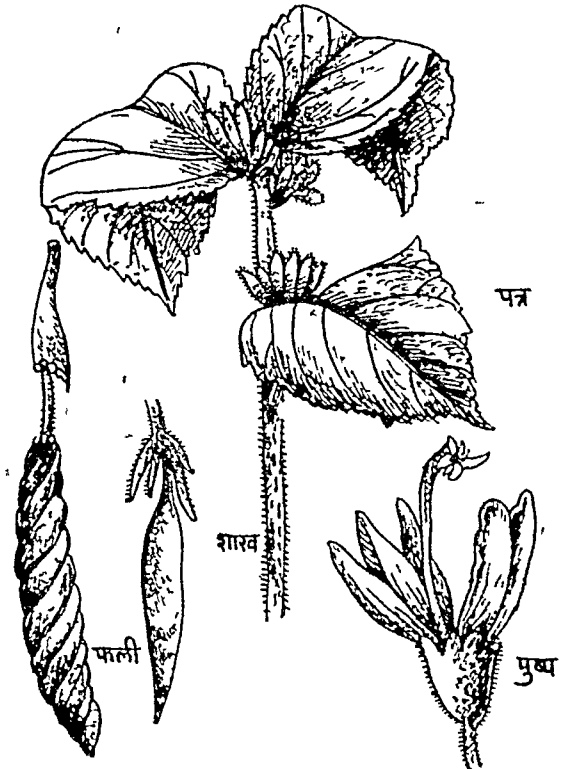
(विवरण पृष्ठ ३५८ पर देखे)

धन्वन्तरि

[बनौषधि विशेषांक पंचम भाग]

। विपरीत क्रम यानी ऊपर से नीचे की ओर जाने वाला।

४ अस्त-व्यस्त, बिखरा हुआ।
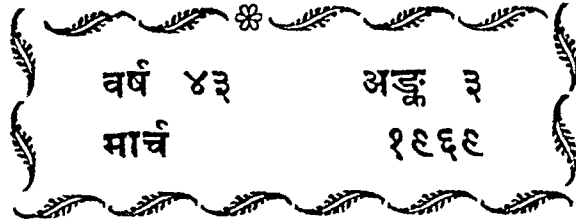
मेथी (Trigonella foenum graecum Linn)

यह हरितक्यादि वर्ग और शिम्बी कुल (Leguminosae) का एक क्षुप होता है, जिसकी फसल उनालु मे भारत के अनेक प्रदेशो मे कृषि की जाती है। इसके क्षुप की ऊचाई १ से २ फीट। पान—तीन पर्ण युक्त। पर्ण-½ से १½ इच लम्वे, कुछ लम्व गोल दातेदार। उपपान—दाते रहित। फूल पत्र कोण मे, पीले रग के वृन्त रहित। फली २ से ४ इन्च लम्वी, ८ से १० दाने वाली। वीज पीले, हरे होते हे जिनको मेथी दाना कहते है। मेथी का शाक भारतवर्ष मे सर्वत्र रुचिपूर्वक खाया जाता है।

व्यवहार्याङ्ग—पत्र, फली और वीज।

उत्पत्ति स्थान—

मूल स्थान मिश्र और भूमध्य प्रदेश। भारत के अनेक प्रदेशो मे वोयी जाती है। कोमल पानो का शाक वनता है। वीजो का औपध रुप से प्रयोग होता है।

नाम—

स—मेथिका, मेथी, दीपनी, वहु पत्रिका, कुञ्चिका, पीत वीजा। हिं०, व०, गु०, प०—मेथी। राज.—मेथी दाना, दाना मेथी, मेथी। क—मेथिया, मेन्ते। ता०—वेन्याम। मेन्ती कुरा। फा०—तुख्मे शम्लीत। अ०—वजरूल, हुल्वह। अ—फेनूग्रीक (Fenul greek) ले—ट्रिगोनेला फोइनम ग्रीकम।

रासायनिक संगठन—

वीजावरण के कोपो मे कपाय द्रव्य (Tannin), दालो मे शर्करारहित एव पीत रजन द्रव्य और वीजो मे एक दुर्गन्धित तिक्त, वसामय तेल ६% तथा राल और लुआव २८%, एल्व्युमिन २१%, कोलीन और मेथीन [ट्रिगोनेलीन] यह दो क्षारोद होते है। इसमे कई अन्य क्षारोद भी होते हैं। वीजो की राख मे २५% भास्वराम्ल होता हे। इसका रासायनिक सगठन काड-लिव्हर आयल के समान होता है। इसमे शरीर मे शीघ्र अभिशोपित होने योग्य काफी प्रमाण मे सैन्द्रियक स्वरूप का

लोह भी होता है।

गुण-धर्म व प्रयोग—

रस—तिक्त, कटु। वीर्य—उष्ण। विपाक—कटु। दोपघ्नता—कफवात।

मेथी—वात को शान्त करती, कफ और ज्वर का नाश करती है, वनमेथी—इसकी अपेक्षा स्वल्प गुण वाली है और घोडो के लिये अत्यन्त हितकारक है। —भा प्र

मेथी—चरपरी, गरम, रक्त पित्त नाशक, अरुचिहारक, दीप्तिकारक, वातदिनाशक और अग्नि को दीपन करती है।

—राज निघण्टु

मेथी—चरपरी, गरम, रक्त पित्त को कुपित करने करने वाली, दीपन, रस मे कडवी, मलावष्टम्भक, हलकी, रूखी, हृदय को हितकारी, वलकारक तथा ज्वर, अरोचक वमन, वातरक्त, कफ, खासी, वादी, ववासीर, कृमि और

मेथी का पाक—मेथी, सोठ और घी ४०-४० तोले, दूध ४ सेर, पीपल,पीपलामूल, अजवायन, जीरा, धनिया, कलौजी, सौफ, दालचीनी, जायफल, शठी, तेजपात, कालीमिर्च १२॥-१२॥ तोले लेवे। दूध को उवाले । पतली रवडी जैसा वनने पर सोठ और मेथी का चूर्ण मिलावे। फिर मावा तैयार कर घी मे भून लेवे। इसके साथ और औपधियो का कपडछन चूर्ण मिलावे । तत्पश्नात् ४ सेर शक्कर की चाशनी कर गरमी कम होने पर मावा और औषधियो का चूर्ण मिलाकर पाक बना लेवे। इसमे से ४-४ तोले सुवह-शाम सेवन करे।

गुण—यह पाक आम प्रकोप से पीडितो के लिये हितावह है। वात और कफ प्रधान रोगो पर प्रयोजित होता है। जीर्ण आमवात, सव प्रकार के वातरोग, विषम ज्वर जाने के पश्चात् की निर्बलता, पाण्डु,कामला,उन्माद, अपस्मार, सव प्रकार के प्रमेह, वातरक्त, प्राथमिक अम्लपित्त, शिरोरोग, नासारोग, नेत्रदाह, प्रदर और सूतिका रोग के उपद्रव रूप वातरोग इन सवके लिए हितावह हैं। यह शरीर को पुष्ट करता है, वल वढाता है और वीर्य वृद्धि करता है। —गा० औ० र० से

मेथिकाद्य चूर्णम्—मैथी, सोया, अजवायन, मुलेठी, सोठ, मिर्च, पीपल, हर्र, वहेडा, आमला, नागरमोथा, तेजपात, दालचीनी, इलायची, पुनर्नवा, शतावर, लज्जावन्ती, सफेद चदन, लालचदन, मुनक्का, पोखर मूल और मजीठ समान भाग लेकर चूर्ण वनावे।

इसमे घी और खाड मिलाकर गरम करके सेवन कराने से वन्ध्या स्त्री गर्भ धारण करती है। इसके अतिरिक्त यह वातरक्त, पित्त विकार और त्रिदोपजन्य गर्भावरोध को भी नष्ट करता है। इसके सेवन से स्त्रियो की बलवृद्धि भी होती है।

मेथी मोदक (वृहत्)—हर्र, वहेडा, आमला, धनिया, नागरमोथा, सोठ, कायफल, कालीमिर्च, पीपल, सैंधानमक, ककडासिंगी, सफेद जीरा, कालाजीरा, पोखर मूल, अजवायन, नागकेसर, तेजपात, तालमपत्र, वायविडग जायफल, दालीचीनी, इलायची, जावित्री, कपूर, लौंग, सोया, मुरामासी, मुलेठी, पद्माक चव्य, सौफ और देवदारु चूर्ण १-१ तोला तथा मेथी का चूर्ण ३२ तोला और खाण्ड १२८ तोले लेकर खाड की चाशनी वनाकर उसमे कपूर के अतिरिक्त अन्य समस्त चीजो का चूर्ण मिलादें और जब वह ठण्डा हो जाय तो उसमे कर्पूर तथा थोड़ाथोडा घी और शहद मिलाकर मोदक वनायें। इन्हे प्रात काल यथोचित अनुपान के साथ सेवन करने से अग्निमाद्य और विशेपत आम का नाश होता और अग्नि की वृद्धि होती है। यह मोदक आमवात, ग्रहणी, अर्श, प्लीहा, पाण्डु, २० प्रकार के प्रमेह, भयकर खासी, तथा श्वास, छर्दि, अतिसार और हर प्रकार की अरुची को नष्ट करता हे एव वृष्य है। मात्रा—१ तोला।

मेथी पाक—मेथी १ सेर, शतावर १० तोले, दालचीनी, तेजपात, चीतामूल, सोठ, जीरा, पीपल, द्राक्षा हर्र, गोखरु, आमला, गजपीपल, फूल प्रियगु, मूसली सफेद और कौच के वीज काले छोटे ५-५ तोले। सवका महीन चूर्ण लेकर उसे उससे ४ गुने (८ सेर) दूध मे मन्दाग्नि पर पकावे। जव खोवा हो जाय तो उसे गाय के घी मे भून कर ठण्डा करके सवसे २ गुनी खाड की चाशनी मे मिलाकर उसमे निम्नलिखित द्रव्यो का प्रक्षेप दे—

प्रक्षेप द्रव्य—छोटी और वडी इलायची, पिस्ता, लौग, खजूर (छुहारा), वादाम गिरी और जावित्री का चूर्ण तथा वग और अभ्रकभस्म २॥-२॥ तोले सवका महीन चूर्ण उपरोक्त पाक मे मिलाकर मोदक वनावे। इन्हे अग्नि बलोचित मात्रानुसार सेवन करने से वृद्ध पुरुष भी युवा के समान स्त्री समागम कर सकता है।

—भा० भै० र०

मेदा (Polygonatum cirrifolium Royle)

यह हरितक्यादि वर्ग के अन्तर्गत अष्टवर्ग की महौपधि है और इसका रसोन कुल (Liliaceae) है। यह हिमालय मे उपलब्ध आरोही लता जाति की वनस्पति है। आरोही क्षुप पाच फुट से लेकर ६-७ फुट तक लवा होता है। मूल से ही लता सीधी ऊपर को निकलती है। लता पीलापन लिये होती है। पत्र काण्ड से ही जुड़े
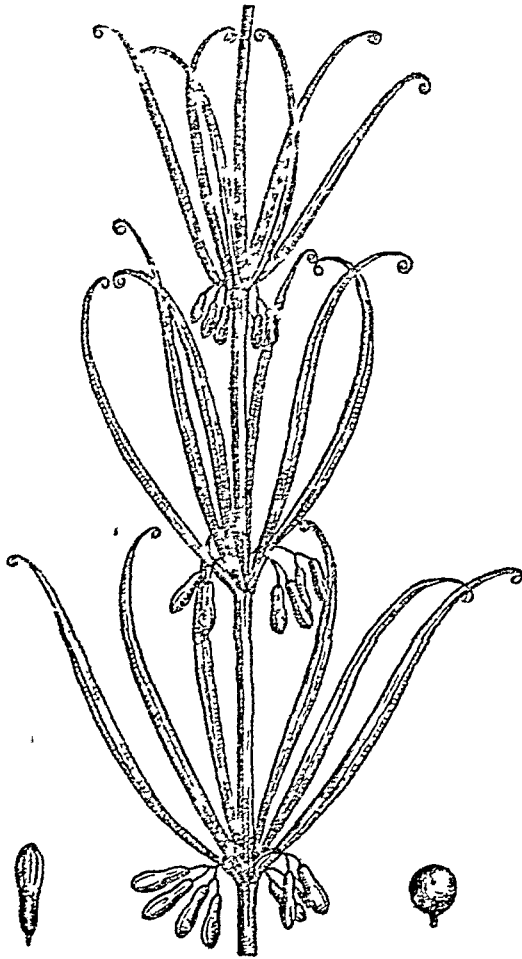
मेदा
POLYGONATUM CIRRIFOLIUM ROYLE

रहते है एव पत्र आकृति मे भालाकार तथा सूच्याकार होते हैं। ये पत्र काण्ड से जुडे हुये एव क्रमानुसार होते है। पुष्प पत्रो के आधार पर खिलते है। खिलने पर ये पुष्प श्वेत वर्ण के होते है। फल-कच्चे हरे वर्ण के तथा पकने पर गोल लाल वर्ण के होते है। मूल आर्द्रक सदृश होता है। कन्द आकृति मे मधुर होता है। मेदा के अग्र-भाग मुडे हुये तथा कन्द कुछ छोटी आकृति वाले होते है इन कन्दो को नख के द्वारा कर्त्तन करे तो मेदा धातु की तरह इसमे से रस निकलता है, अत इसे मेदा कहते हैं। यह इसकी परीक्षा हे। कन्द मे विचित्र प्रकार के दाग अथवा पुरानी शाखो के चिह्न पाये जाते है। यही कारण है कि ये "मणिच्छिद्रा" और "वसुच्छिद्रा" कहे जाते है।

मेदा ५ दाग (चिह्न) होते है, अथवा इतने ही कद एक साथ जुडे होते है। भिन्न-भिन्न भाग त्रिकोणाकार होने से मनुष्य अथवा छोटे पशुओ के दातो से उपमा देते हुए इनका त्रिदन्ती अथवा तीन दाना या कोण वाले कह कर उचित प्रकार से वर्णन किया गया है। काण्ड के चारो ओर पत्ते, इस प्रकार एक के बाद दूसरे चक्कर मारते हुए लगे रहते है कि छठा पत्ता पहले पत्ते के ठीक सामने ऊपर की ओर जाता है। इसी जगह से पत्तो का दूसरा चक्कर आरम्भ हो जाता है। इसलिये "स्वल्पपर्णी कहलाते है। वलिष्ठ पहाडी लोग इसको खूब खाते है। अकुर जाडे के दिनो मे मुर्झाए से जान पडते है। और ज्यो ही वसन्त ऋतु का आगमन होता है, डण्ठल पूरे वल के साथ निकल पडते है। पुष्पकाल जून, जुलाई। फलकाल अगस्त, सितम्बर। ग्राह्य अग—मूल कन्द। औषध सग्रह काल—सितम्बर, अक्टूबर।

उत्पत्ति स्थान—

मेदा मोरग मे और मोरग के आस पास हिमालय मे होती है। मोरग नेपाल के एक निकटवर्ती स्थान का नाम है और वह हिमालय के उसी प्रदेश का है। यह उत्तराखण्ड की प्राय सभी घाटियो से सुलभ हे। भागीरथी घाटी मे, रैथल, वक्सया, गगोत्री, सुक्की आदि छायादार ढलानो मे एव भिलग घाटी मे, धुत्तू, गजी, पवाली गेगाणा, पौवागी, मन्दाकिनी घाटी मे, गौरी कुण्ड, रामवाडा, केदारनाथ, मद महेश्वर आदि स्थानो के ८ हजार फीट से लेकर बारह हजार फीट की ऊचाई तक उपलब्ध है। इन स्थानो मे यहां के स्थानीय लोग सालममिश्री के नाम से इस वनौषधि का सग्रह करते है।

-कवि मायाराम जी उनियाल शास्त्री

नाम—

स—मेदा, मेदोद्भवा, सुरमेद, शाल्यपर्णी, धरा, पुरुष दन्तिका, धीरा, मणिच्छिद्रा, मधुरा, जीवनी, रसा, शल्य पर्णिका, नेदसारा, मेदिनी, स्निग्धा, द्रवा, शल्यदा, बहुरन्ध्रिका, मेदोवती, शल्य पर्णी, भव्या, जीवनिका। हि.—मेदा। बा०, गु०, म०, प०, राज—मेदा। मन्दाकिनी घाटी उत्तरा खण्ड मे—रोगाल धोता। ले—पोलिगोनेटम सिरिसीफोलियम रोयली।

गुण धर्म और प्रयोग—

मेदा—मधुर, शीतल, पित्त, दाह, खासी, राजयक्ष्मा और ज्वर को नाश करती हे और वात को उत्पन्न करती है। —निघण्टु चूडामणि

मेदा—मधुर, शीतल, वीर्यजनक, स्वादु, भारी, धातुवर्द्धक, स्तनो मे दूध उत्पन्न करने वाली, स्निग्ध, कफकारक तथा वात पित्त, रक्तविकार, क्षय, ज्वर, दाह और खासी को दूर करती है। —नि० र०

चरक एव अष्टाग सग्रह मे वर्णित मेदा का आमयिक प्रयोज्य स्थल—

जीवनीय गण की दश औषधियो मे च० सू० अ० ४।१, शुक्रज जननगण की दश औषधियो मे च० सू० अ० ४।१६, स्नेहोपगगण की दश औषधियो मे च० सू० अ० ४।२१, मधुर स्कन्द की औषधियो मे च०वि० अ० ८।१४६, ब्राह्म रसायन के योग मे च चि अ १।४२, च्यवनप्राश, रसायन के योग मे च चि अ १।६३, रसायन के योग मे ज्वर चिकित्सा मे बलाद्यघृत के योग मे च चि अ ३।२५७, शतमूल्यादि घृत योग मे रक्तपित्त चिकित्सा मे च चि अ ४।९५, महाकल्याण घृत योग के उन्माद चिकित्सा मे ज्वर चि. अ ९।५०, श्वदष्ट्रादिघृत योग के क्षतक्षीण चिकित्सा मे च चि अ ११।४५, तृतीय सर्पिगुडिका योग की क्षतक्षीण चिकित्सा मे च चि अ ११।६३, त्र्यूष्णादिघृत योग कास चिकित्सा मे च चि अ १८।३९, पित्तकास चिकित्सा मे काकोल्यादि योग च चि अ १८।१८, द्विमेदादि धूमवर्ती च चि अ १८।१४४, व्रण चिकित्सा के चन्दनादि योग मे च चि अ २५।८७, हृद्रोग चिकित्सा के त्र्यूष्णादिघृत योग मे च चि अ २६।८७, हृद्रोग चिकित्सा के द्राक्षा घृत योग मे च चि अ २६।९२, महामयूर घृत योग मे च. चि. अ २६।१६१, वातव्याधि चिकित्सा के अमृताद्य घृत योग मे च चि अ २८।१५८, वात शोणित चिकित्सा के बलादि घृत योग मे च चि. अ २९।५६, एव चरक चि अ २९-६१, ६४, ७२, ९३, ११२ के योगो मे मेदा महामेदा का पाठ आया है। धामार्गव कल्प चिकित्सा मे च क अ ७।१७, चन्दनादि वस्ति योग मे च सि अ ३।४७, जीवन्त्यादि अनुवासन योग मे च सि ४।८, सैन्धवाद्यनुवासन च सि ४।१३, महास्नेह योग चिकित्सा मे च सि. अ १२।५४, एव च सि अ १२।५५,५६ के स्नेह योग चिकित्सा मे मेदा महामेदा का पाठ आया है।

अष्टाग सग्रह अ सू अ १५।२ द्वय, २४, २६, १९। ९, १२, शा अ ४।५१, चिकित्सा अ २।१४, ६२, ३।७१, ४।९, ४६, द्वय, ५२, ५।३८, ७३, युग्म, १०४, द्वि, २३।४१, ४६, २४।५, द्वि, २२ द्वि, कल्प अ. ५।२४, ३०, ३३, उत्तर अ अ १।६६, ६८, ९।२० द्वि, १६।४, २२।६, २८।६२, ३०।६५, ३७।२८, द्वि, ३९-८१, ४९।२९, १९३ 'युगल' ५०।१६, द्वि, १७, १८, २८ द्वि, ३६, ५८, ६१ आदि प्रयोग मेदा-महामेदा के अष्टाङ्ग सग्रह मे मिलते है।

अष्टवर्ग—

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीर काकोली, ऋद्धि, इन आठ औषधियो के सम्मिलित योग को अष्टवर्ग कहते है। —मा नि.

मैदा लकड़ी (Litsea Chinensis Lam)

यह कर्पूरादि कुल (Lauraceae) का एक छोटी जाति का हमेशा हरा भरा रहने वाला वृक्ष होता है, इसके पत्ते मोटे और लम्बे होते हैं। छाल-पीली, भूरी, मोटी, मुलायम, कार्कयुत और ऊबड खावड काले धूसर या गदले लाल रग की होती है। इसके पत्तो मे दालचीनी के समान गध आती हे। फूल कुछ पीलापन लिए हुए होते है। फल-काली मिर्च के समान होते हैं। इसके बीजो मे सफेद रङ्ग का तेल होता है। इस वृक्ष की छाल को मैदा लकडी बोलते हैं। यह पुरानी होने पर खराब हो जाती है। छाल पानी मे डालने से चिकनी और पिच्छिल हो जाती है।

उत्पत्ति स्थान—

मैदा लकडी के वृक्ष पजाब, मध्यप्रदेश, सतपुडा, उत्तर-भारत, राजस्थान विशेषत बगाल, मिर्जापुर, सहा-

मैदा लकडी,
LITSEA-SEBIFERA PERS.
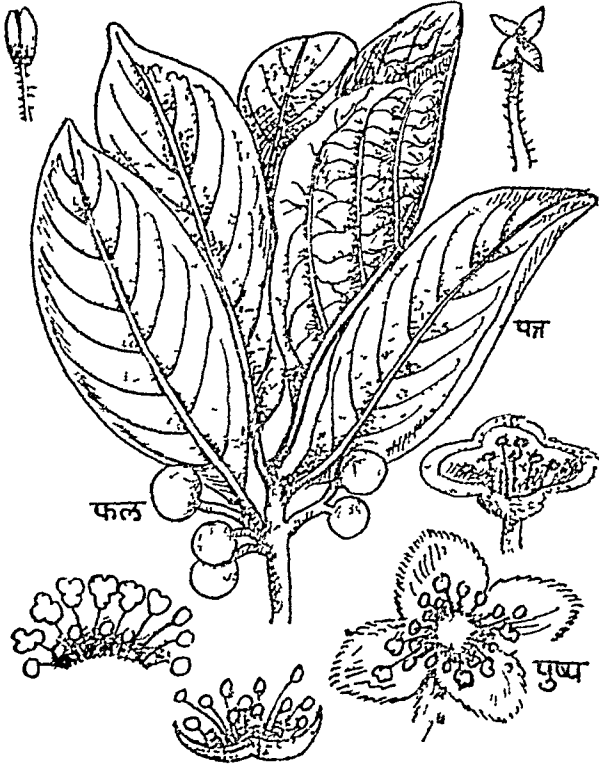
रनपुर और दून आदि के जगलो मे प्राय. छायादारनालो मे होते हैं।

नाम–

स०—मेदा, मेदिनी, मेदसरा, मनिच्छदा, मधुरा, जीवन, साध्वी, स्वल्प पर्णी। हि०–मैदा लकडी, गरवी-जोर, मेदा, मेध। ब०—मेदालकडी, कुकुरचित, गरुड। बबई–चिकना, मेदालकडी। प –मेदालकडी, चमन, मेदा साक, मेदा चोव। म०–मेदालकडी। ते०–मेदानरा। ता०—अमा। को०—मेदालकडी, मेद। अ०–मगासे हिंदी। फा०–किल्ज। अ०–(Common Tallow Lawrel) कामन टेलो लारेल। ले०–लिटासिया चाय-नेनसिस, लिटासिया सेबिफोरा।

रासायनिक संगठन–

इसमे लुवाब या लारोटिटैनीन (Laurotitanine) नामक क्षारोद होता हे।

व्यवहार्याङ्ग–त्वक्।

गुण धर्म व प्रयोग–

ईषद् स्वादु, शीतल, कामोद्दीपक, दूधवर्धक, पित्त, दाह, काम, क्षय,ज्वर, कुष्ठ और वात मे लाभदायक है।

यूनानी मतानुमार–प्रकृति—दूसरे दर्जे मे उष्ण और पहले मे रूक्ष है।

गुण कर्म—यह विलयन, सग्राही, नाडीवलदायक, दीपन, कामोत्तेजक और श्वयथु विलयन है। इसकी जड कुछ मीठापन लिए हुये कडवी, सकोचक, पौष्टिक, कफ निस्सारक और कामोद्दीपक होती हे। यह सूजन, मस्तिष्क की गर्मी, जोडो का दर्द, प्यास, गले की शिकायत, तिल्ली के रोग और अर्द्धाङ्ग वायु मे लाभदायक होती है। इसके बीज कामोद्दीपक होते है।

इसकी चिकनी ओर लुआवदार छाल एक शातिदायक और मृदु सकोचक पदार्थ की तरह वहुत वडे परिमाण मे काम मे ली जाती है। पटना मे यह कामोद्दीपक भी मानी जाती हे। चोट और मोच के ऊपर इसकी ताजी छाल को पीसकर अथवा सूखी छाल को पानी या दूध के साथ पीसकर शान्तिदायक लेप के रूप मे लगाया जाता है और जख्म से वहने वाले खून को रोकने के लिये भी इसका उपयोग किया जाता है। यह वेदना-नाशक भी मानी जाती हे। विषैले प्राणियो के काटने पर विष नाशक पदार्थ की तरह इसका लेप किया जाता है। इसके बीजो से एक प्रकार का तेल प्राप्त किया जाता है जो जोडो के दर्द मे मालिश करनेके काम मे लिया जाता हे। यह अस्थि भग्न, आघात, प्रत्याघात, (जरवा व सकता) नाडियो मे वल पड जाना (इल्तिवाए असव) और कडाई के विलीन एव मृदु कारणार्थ गिल अरमनी के साथ इसका लेप करते हैं तथा कटिशूल, आमवात, गृध्रसी, वातरक्त, आक्षेप, कामावसाद और अस्थिभग्न जैसे कफ एव वात रोगो मे तथा कडाई को दूर करने के लिए इसे शहद मे मिलाकर खिलाते है।

अहितकर—वस्तिरोगो मे। निवारण—शुद्ध मधु।

प्रतिनिधि–सुरजान। मात्रा—३ माशे से ५ माशे तक।

आधुनिक मतानुसार–डा० देसाई के मतानुसार—

मैदो लकडी स्नेहन, सूजन को नष्ट करने वाली और कुछ स्तम्भक होती है। इसके लेप से त्वचा के भीतर की बारीक रक्त वाहिनियो का संकोचन होता है और त्वचा मे कोमलता आ जाती है तथा वेदना कम हो जाती है। चोट, मोच और सूजन पर इसको ठण्डे पानी मे पीसकर गरम करके लगाते है। बगाल और मध्यप्रदेश के किसान लोग अतिसार और प्रवाहिका मे इसको खाने को देते हैं।

प्रयोग—

अतिसार और प्रमेह—मैदा लकड़ी की ६ माशे छाल पानी मे पीसकर देने से अतिसार और प्रमेह मे लाभ होता है।

चोट और मोच—मैदा लकडी, सज्जीखार और आबी हल्दी इन तीनो चीजो को पानी मे पीसकर लेप करके सेंकने से रक्त का जमाव बिखर जाता है जिससे चोट और मोच की पीडा दूर हो जाती है।

कामोद्दीपन—मैदा लकडी का चूर्ण ६ माशे की मात्रा मे दूध, मिश्री के साथ १ मास तक सेवन करने मे मनुष्य की कामशक्ति की शिथिलता दूर होती है।

अस्थिभग्न पर—मैदा लकडी के चूर्ण १ तोला को लेकर गुड के पानी, या गुड के हलुवे के साथ मिलाकर सेवन करते हैं। इसी प्रकार गरम शक्कर मिले दूध के साथ भी १ सप्ताह या १० रोज सेवन करने से हड्डी जुड जाती है। —सि प्र स

मूढमार नाशक लेप—एलवा, फिटकरी, हीराबोल, गूगल, कुदरू, मैदालकडी, उसारे रेवन्द, सज्जीक्षार, माजूफल, पठानी लोध, ये १० औषधिया ५-५ तोले और आमा हल्दी १० तोले लेवे। इन सबको मिला कूटकर कपडछान चूर्ण करें।

आवश्यकता पर थोडे या ज्यादा चूर्ण को गरम जल मिला लेप कर ऊपर रुई चिपकाकर पट्टी बाध देवें। गरम जल के स्थान पर धतूरा के पान का रस निकाल गरम कर उसमे लेप बना हलवा के सदृश बनाकर लगाने से सत्वर फल दर्शाता है। इस औषधि के प्रयोग से एक, दो या तीन लेप से चाहे जैसी चोट आई हो या हड्डी टूटी हो, वह दोष निवृत हो जाता है, और तीव्र वेदना सत्वर शमन हो जाती है। अनेको को केवल एक ही लेप से आराम हो गया है। इस लेप को ४८ घण्टे तक रहने देना चाहिये। फिर निकाल सम्हालपूर्वक धोकर नया लेप लगाना चाहिए।

डाक्टरी प्लास्टर बेलाडोना, एक्स्ट्रैक्ट बेलाडोना आदि-आदि औषधियो की अपेक्षा इस औषधि से सत्वर लाभ होता है। लाठी की मार से गाठ हो जाना, वेदना होना, सूजन आजाना या किसी स्थान मे मास कुचल जाना इन सब पर यह लेप रामबाण के सदृश फलप्रद है।

सूचना—यदि लेप खोलने पर त्वचा लाल हो गई हो तो दूसरा लेप १२ घण्टे बाद लगाना चाहिए। तब तक उस भाग को खुला रखना चाहिये। —[रस० त० सार]

अस्थि सधानक लेप—एलुवा, हीराबोल गूगल, कुदरू, गुजर [अन्जरूत गुजद], उसारे रेवन, मैदालकडी, आमा हल्दी, सज्जीखार, लोध और सरेश सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करें। इसका लेप मूढमार, शूल, शोथ, हड्डी टूटना, अथवा हड्डी उतर जाना, रक्त इकट्ठा होना आदि दोष दूर करने मे बडा उपयोगी है। टूटी हुई हड्डी को जोड देता है। मास मे होने वाली वेदना को दूर करता है हमने इसका हजारो बार उपयोग किया है।

विधि—थोडे से चूर्ण को गरम जल मे मिला लेप कर ऊपर रुई लगाकर कपडा लपेटें। जरूरत हो तो लकड़ी की पट्टी रखकर ऊपर कपडा बाधे। आवश्यकता पर ३ दिन बाद दूसरा लेप करें। ३ दिन पहले पट्टी को नही खोलना चाहिए। —आ० नि० मा०

मैदा लकड़ी नं. २ (Litsea Polyantha guss)

यह कर्पूरादि कुल [Lauraceae] का एक छोटा हराभरा वृक्ष होता है। जो हिमालय मे ३००० फीट
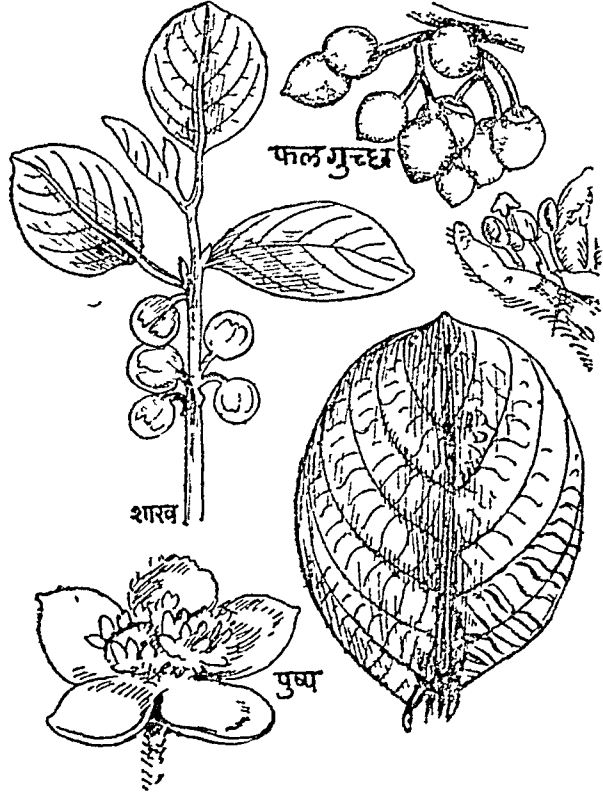
की ऊचाई पर असम, शतापुडा रेज, कारोमडल मे वहुत अधिक पाया जाता है।

नाम-

स०—गजपीपली। हिं०—मेदा। व०—वडा कुकुर चिता। म०—राना अम्वा। प०—रायन। ता०—पिसिन वट्ट। ते०—नारा। ले०—लिटसिया पोलिएन्था।

रासायनिक संगठन-

बीज मे २१% तेल और करनेलस ३३% होती है।

गुण धर्म और प्रयोग-

छाल—ग्राही है जो अतिसार, मैदे के रोगो मे व्यवहार की जाती है। तना—छिले हुए जख्मो मे ताजा या सूखे का प्रयोग करें। वारीक चूर्ण का लेप चोट, मोच, अधिक कार्य से दर्द होने पर प्रयोग किया जाता हैं। पशुओ की हड्डी टूटने पर छाल का लेप भी किया जाता है। शेष गुण मैदा लकडी न०१ के समान जानकर प्रयोग करे।

मेनफल (Randia Dumetorum Lam)

यह हरितक्यादि वर्ग और मजिष्ठादि कुल (Rubiaceac) का वृक्ष छोटा और झाडीनुमा होता है। वृक्ष ६ से १५ फीट ऊचा होता है। यह अधिक विस्तार वाला नही होता है, परन्तु ऊचे वढे हुए होते हैं, तो भी इसमे छोटी छोटी अक्सर करके आमने सामने आडी शाखायें निकली हुई होती है जिससे इस झाड के ऊपर थोड़ा भराव दिखाई देता है। मेनफल के झाड का काण्ड हाथ की भुजा जैसा मोटा होता है। छाल-खडवचडी और इस पर से पतली छाल उतरती दिखायी देती है। शाखा को आडा काट करके देखने से चार चक्र दिखाई देते है। अन्तर छाल हरे रग की और टूटने वाली होती है। वृक्ष लबे काटो द्वारा आवृत्त होता है। काटे १ से २ इन्च लबे, अतिशय तीक्ष्ण, सरल और धूसर वर्ण। काष्ठ श्वेत वर्ण और सख्त।

पान—अपामार्ग अथवा चिरचिरे के पत्तो के समान होते है। पत्र दड छोटा, १-२ इन्च लबा होता है। पान आमने सामने आये हुए होते है और पत्र दड के पास से सकरे होते है। पत्र ऊपर की ओर से चौडे, किनारे पर गोलाई लिये हुये एक से दो इन्च लबे, $\frac{3}{3}$ से १-१$\frac{1}{2}$ इन्च चौडे होते है। पान के दोनो ओर धौली रोमावलि होती है। सुवास और स्वाद अरुचिकर होता है।

फूल—फूल सफेद पीली आभायुक्त, सुगन्धित और ५ पखडी के होते है। फूलो का व्यास १ इन्च, प्रत्येक शाखा के मूल से १ से ३ तक फूल होते है। पुष्प सत्वक लोम युक्त। पुष्पो में मोगरा जैसी मधुर गन्ध आती है।

फल—एक से डेढ इन्च तक लबा, $\frac{3}{4}$ से १-१$\frac{1}{4}$ इच चौड़ा गोल और अखरोट के आकार का होता है। इस फलके भीतर दो खाने होते हैं। उनमे बीज रहते हैं। जेष्ठ

मैनफल

RANDIA DUMETORUM, LAMK.

मे फूल आते है और शीत मे फल पकते है ।

उपयोगी अङ्ग—मूल, छाल, पान और फल ।

उत्पत्ति स्थान—

यह वनस्पति सारे भारतवर्ष के पहाड़ी प्रान्तो मे पैदा होती है । जैसे—हिमालय प्रदेश, सिंधु नदी के निकट स्थानो मे बहुत परिमाण मे होता है । पश्चिम बग, महाबलेश्वर, बोटेनिकल गार्डन, शिवपुर, विन्ध्याचलादि मे, राजस्थान के अरावली पर्वत श्रेणियो के पर्वतो मे झरनो, तलेटी और गहरे जगलो की छायावाली जगहो पर पैदा होते है ।

नाम—
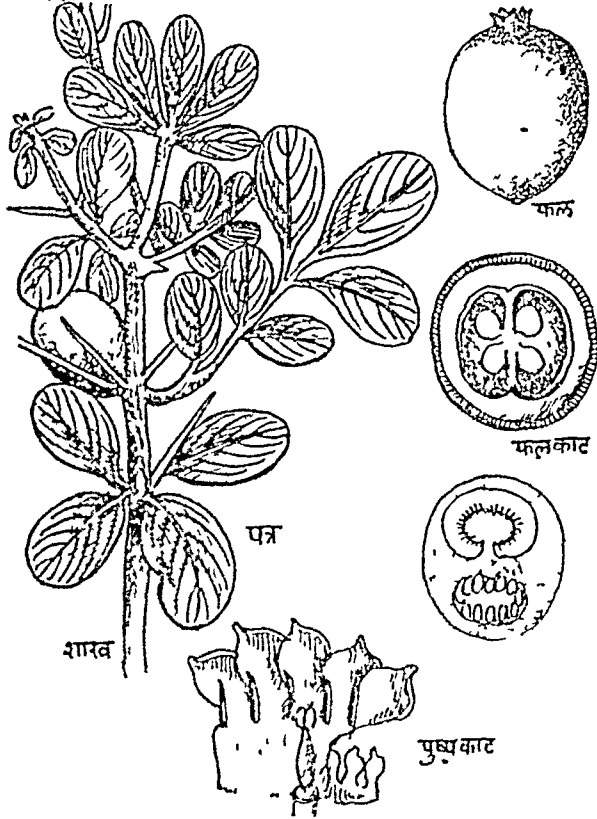
स—वस्ति शोधन, छर्दन, वाराफल, गेला, ग्रन्थिफला, मदन । हि—मदन, मैनफल, मैन हुरी । व—मदन, मैनफल । बम्बई—मैनफल, घेला । गुजराती—मिंढल, मिंढोल म०—गेलफल । प—मिंडल, मेद कोला, आगर । ते—मदनम । ता०—मधु कारय । कर्णा०—वोनगरेरणय । औत्कली—पातर । नेपाली—मैदल । दक्षिणी—मणाहल । उर्दू—मेनफल । अ०—जोझुल कोसुल । अ—Common emetic Nut (कामन इमेटिक नट) ले—रेंडिया डयूमेटोरम । बुशी गार्डेनिया (Bushy gardenia)

रासायनिक सगठन—

इसमे साबूनीन (सपोनीन Saponin) नामक एक वीर्य (प्रत्येक फल मे लगभग २ गुजा बराबर), जटामास्यम्ल, मोम, राल और रजन द्रव्य प्रभृति होते है ।

व्यवहाराङ्ग—फल का गर्भ ।

गुण, धर्म और प्रयोग—

मैनफल—मधुर, कडवा, उष्णवीर्य, लेखन, हल्का, वमनकारक, विद्रधि नाशक, रूक्ष, प्रतिश्याय नाशक, व्रण, कोढ, कफ, अफरा, सूजन, गुल्म तथा व्रण को नष्ट करता है । —भा० प्र०

मैनफल—वमनकारक, भेदक, पक्वाशय और आमाशय शोधक तथा त्वचा के रोग, वात, कफ और विष विकार को दूर करता है ।

मैनफल—कटु रस युक्त, तिक्तरसान्वित, मधुर, उष्ण, लेखन, रूक्ष, वमनकारक, वस्तिकर्म मे उत्तम, कफ, वात, घाव, सूजन, आनाह, विद्रधि, गुल्म, प्रतिश्याय, विष, बवासीर और ज्वर को हरता है ।

दोनो मैनफल—(एक काले रङ्ग का दूसरा सफेद रङ्ग का) शीतल, मधुर, कटु तिक्त, कषैले, वान्तिकारक, कफ नाशक, पक्वाशय और आमाशय को शोधने वाले तथा पित्त और हृदय रोग का नाश करने वाले है । यह पहले मैनफल की अपेक्षा अधिक गुण वाले है । सक्षेप मे—रस कटुतिक्त, वीर्य उष्ण, विपाक कटु । दोषघ्न—कफवात है ।

चरकनुसार (१) वमन—आस्थापन और अनुवासन के लिये मैनफलके समान दूसरा एक भी फल नही है । —सू २५

(२) रक्तपित्त मे—टट्टी या पेशाब की तरफ रक्त जाता हो तो मैनफल के बीजो मे उबाले हुए दूध मे राब तैयार कर रोगी को खिलावें । —क. अ १

वैद्यक मत से—मैनफल-एक उत्तम वमनकारक है। मदनफल खाने से शरीर मे चक्कर और वमन के समान मालूम होता है। फोडो पर मदन फल का प्रलेप करने से वह बैठ जाता है। फलको पानी मे पीसकर नाभि के चारो ओर लेप करने से नाभिशूल मिटता है।

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति-दूसरे दर्जे मे उष्ण एव रूक्ष। गुण-कर्म—यह व्रण शोथ विलयन, पाचन और दारण है। आतरिक उपयोग से यह श्लेष्म-वमन-विरेचन है। कफज रोगो मे वमनार्थ इसे नमक के साथ पीस, शहद मे मिलाकर खिलाते और ऊपर से उष्ण जल या सोये की पत्तियो का काढा शहद मिलाकर पिलाते है। अहितकर–उष्ण प्रकृति के लिये। निवारण–कतीरा एव शीतल पदार्थ। प्रतिनिधि–बूरये अरमनी और राई। मात्रा–३ माशे से ६ माशा तक।

देशी चिकित्सा विज्ञान मे जितनी वामक औषधियो का उल्लेख है उनमे मैनफल सर्वोत्कृष्ट है। बिना किसी प्रकार की हानि व उपद्रव के इसके फलो का गर्भ देने से मनुष्य को वमन होता है। वामक धर्म के अतिरिक्त इसमे कफनाशक और सकोचक धर्म भी रहते हैं। इन गुणो के कारण से यह खासी, जुकाम, विद्रधि, सूजन इत्यादि रोगो मे भी प्रयोग किया जाता है।

नव्य मतानुसार—

मैनफलके फल नही प्रत्युत इसके भीतर का गर्भ ही असली वामक पदार्थ होता है। वमन के वास्ते तो इसके फल का गर्भ ही उपयोगी होता है।

डा० नादकर्णी लिखते है कि एक पके हुये फल का गर्भ वमन के लिये काफी होता है। फल मे से गर्भ को निकालकर उसे सुखाकर, बारीक पीसकर वमन लाने के लिये १० से २० रत्ती तक की मात्रा मे और पसीना लाने के वास्ते अथवा कफ निकालने के लिये २॥ से ५ रत्ती तक की मात्रा मे देना चाहिये।

अगर दो फलो का गर्भ एक साथ दिया जाय तो तत्काल अर्थात् १० मिनट मे उल्टी हो जाती है। एक वार उल्टी होने पर अगर फिर गरम पानी पिलाया जाय तो फिर से उल्टी होती है। इस प्रकार ज्यो ज्यो गरम पानी पिलाते जायेंगे त्यो त्यो उल्टियो की सख्या बढती जायगी।

डा मुडीन शरीफ के अनुसार–रक्तातिसार को रोकने के लिये यह वनस्पति इपिकेकोना की उत्तम प्रतिनिधि है। इसके गर्भ का चूर्ण इस काम के लिये बहुत उत्तम होता है। इसका चूर्ण १५ से ३० ग्रेन की मात्रा मे और वमन कराने के लिये ४० ग्रेन की मात्रा मे दिया जाता है।
—व० च०

मैनफल और बन्ध्यत्व—

जगलनी जडी बूटी नामक ग्रथ मे इस औषधि के अन्दर एक और आश्चर्यजनक गुण का उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ के लेखक का कथन है कि मैनफल के बीज का चूर्ण करीब ३ माशे की मात्रा में लेकर दूध, शक्कर और केशर के साथ पीने से अथवा कसार [एक प्रकार की मिठाई जो गेहू के आटे और गुड के मेल से बनाई जाती है।) मे मिलाकर खाने से जिस स्त्री के सतान न होती हो वह गर्भ धारण करती है। जब यह प्रयोग चलता हो तब आठ दश रत्ती मैनफल के बीजो का चूर्ण गुड मे मिलाकर उसकी बत्ती बनाकर स्त्री की योनि मे रखना चाहिये। इस बत्ती के रखने से गर्भाशय मे रहने वाले वे सूक्ष्म जन्तु जो वीर्य कीटाणु का भक्षण कर जाते हैं उनका नाश हो जाता है। इसके अतिरिक्त गर्भाशय मे वायु, सरदी अथवा जल का भाग अधिक हो तो वह भी दूरहो जाता है। इसी प्रकार अगर गर्भाशय मे मास बढगया हो अथवा मस्से हो गये हो तो वे भी गल जाते है। अगर मासिक धर्म अनियमित आता हो अथवा कम आता हो या मासिक धर्म के समय बहुत वेदना होती हो तो वह भी इससे दूर होकर मासिक धर्म नियमित होने लगता है क्योकि मैनफल उष्ण वीर्य होने से वायु और सरदी को दूर करता है। कृमि नाशक होने से गर्भाशय के सूक्ष्म जन्तुओ का नाश करता है। वस्ति और रजोशोधक होने से यह मासिक धर्म को नियमित करता है। और शोथघ्न एव व्रण नाशक होने की वजह से यह

गर्भाशय की सूजन आदि को दूर करता है।

इन्ही अत्युत्तम गुणो की वजह से विवाह सस्कार के समय नव दम्पति के हाथ मे इस फल को देने का रिवाज है। यह रिवाज नव दम्पति को इस बात का सकेत करता है कि कदाचित अगर वे विवाह के चरम लक्ष्य सतानोत्पत्ति मे समर्थ न हो तो इस फल का उपयोग करें।

मात्रा—वमनार्थ ३ से ६ माशा।

प्रयोग—

दमा—मैनफल, अर्कमूल त्वक, मुलैठी का समान भाग मिश्रित चूर्ण प्रतिश्याय और दमा की एक उत्कृष्ट महौषधि है। —भा० ब० बगला

शूल मे—मैनफल के बीज का चूर्ण काजी अथवा छाछ मे पीसकर गरम करके नाभि के चारो ओर लेप करने से शूल मिटता है।

विष मे—एक फल के गर्भ से भी उल्टी हो जाती है १० तोला जल मे दो फलो का गर्भ घोल (मसलकर) कर इस पानी को छानकर रोगी को पिलादेवें। १०-१५ मिनट मे रोगी को उल्टी हो जाती है। यदि उल्टी बहुत जल्दी और विशेष करानी हो तो ऊपर से गरम जल पिला देवे।

वमनार्थ—दो तीन मेनफल की गिरी और बीजो को १०-१५ मिनट पानी मे भिगो के १०-११ तोले जल मे पीस मल छानकर पिला देने से प्राय: ८-१० मिनट मे हृल्लास और वमन होने लगतो है। मेनफल के छिलके की गिरी दूर कर और बीजो को कूटकर चलनी मे छान कर बीजो के छिलके पृथक कर डालें। फिर उसको मैंदे को छलनी से छानकर चूर्ण तैयार कर कागदार शीशी मे रखलें। आवश्यकता के समय इस चूर्ण को प्रयोग मे लाना उत्तम है।

कफ निकालने के लिये—१ तोला मेनफल चूर्ण, ६ माशा सैंधव और १॥ माशा पीपल के चूर्ण को गरम जल के साथ दिया जाता है।

वमन विधि—५ तोला मुलहठी को यव कुटकर २ सेर जल मे औटावे, जब १ सेर जल बचे तब मलकर छानले और ६ माशा मेनफल की मीग का चूर्ण फाककर वही मुलहठी क्वाथ ४-५ तोला, १ तोला शहद और १ तोल सैंधानमक डालकर पिलावें। इसी प्रकार दो तीन वा पीने पर खूब वमन होगे।

अन्यान्य उपयोग—चौमाशे मे भरकर रखे हुए गेहू चावल आदि अनाज मे प्राय कीडे पड जाते है, ये कीः नही होने पावे ऐसी इच्छा हो तो मदनफल के कच्चेफल (कच्चे न मिलने पर सूखेफल) अनाज के ढेर वे अन्दर रख दीजिये। हरगिज कीडा नही लगेगा, अनाज जैसा का तैसा रखा रहेगा। —अभिनव बूटी दर्पण

विशिष्ट योग—

मदनफलादियोग—कफज विसर्प रोग मे मैनफल मुलैठी, नीम की छाल और कड़वे इन्द्र जौ से वमन करानी चाहिये।

मदनादिलेप (१)-१२ तोले भैंस के नवनीत (नौनी घी) को गरम करके उसमे १ तोला मोम मिलादे और जब वह पिघल जाय तो उसमे १-१ तोला मैनफल और समुद्र लवण का चूर्ण मिलाकर सुरक्षित रखे। इसे निरन्तर १ सप्ताह तक लगाने से दाह शात होती और फटे हुए पैर कमल के समान मुलायम हो जाते है।

मदनादि लेप (२) मैनफल और कुटकी का समान भाग चूर्ण एकत्र मिलाकर, उसे काजी मे पीसकर, जरा गरम करके नाभि पर लेप करने से शूल शात हो जाता है।

नोट—मदन कल्प—यह चरक कल्पस्थान प्रथम अध्याय पर है। वहा मदन के १३३ प्रयोग बताये गये है। सुश्रत सहिता मे—आरग्वधादि और मुष्कादिगण मे 'मदन' का उल्लेख किया गया है। —भा भै र.

कफ पित्त के विकारो पर—अच्छे मेनफल २ या तीन नग लेकर उनके ऊपर की त्वचा निकाल डाले और यव कुटकर जल ५ तोला मे रात को भिगो देवे, सवेरे अच्छी तरह मसल और छानकर पिला देवें, तत्काल वमन होकर विकार शात हो जावेगा।

अर्धावभेदक पर—मदनफल और मिश्री समभाग किंचित् प्रमाण मे गौ दुग्ध के साथ पीसकर सूर्योदय के

पहिले ही नस्य देना चाहिए।

शीघ्र प्रसूता के लिए—किसी भी कारण विशेष से प्रसूति वेदना बहुत देर तक होने पर भी यदि शीघ्र प्रसूति न हो तो शुष्क मदन फलो की धूनी योनि को देवें।

—प० युगल किशोर जी दभिस्थ

मेंहदी (Lawsonia Inermis Linn)

यह मेहदीकादि कुल (Lythraceae) की एक प्रसिद्ध झाडी होती है। मेहदी एक मगल द्रव्य के रूप मे तथा स्त्रियो की उंगलियो और नाखूनो के शृगार के निमित्त सारे भारत मे आर्य जाति के अन्दर बहुत प्राचीन काल से काम मे ली जाती है। मेहदी का झाड ४ से ८ फीट और कही पर १६ फीट तक ऊचा देखा जाता है। इसकी शाखायें पतली, गोल, सीधी लंबी लकडी जैसी निकलती है। किसी किसी वक्त इसकी कोमल और छोटी शाखाओ की नोक काटे के समान तेज होती है।

पान—छोटे सनाय के पत्ते के समान अण्डाकृति के होते है जो आमने सामने आते हैं। पान-चिकना, चमकता, हरा रग का $\frac{1}{2}$ से $1\frac{1}{2}$ इन्च चौडा होता है। इसमे बीच की नस साफ दिखाई देती है। पत्र दण्ड बहुत छोटा होता है। पान-आगे से कुछ तीखे और पत्र दण्ड की ओर चौडे होते है। पत्तो को मलने से बहुत चिकने लगते है। पान-दलदार लाल किनारी वाला और कोमल पान दोनो ओर लाल होते हैं। पत्तो को छाया मे सुखाकर उनको पीस लिया जाता है। यही चूर्ण बाजार मे मेहदी के नाम से बिकता है। इसको जल मे भिगोकर हाथो पैरो मे लगाने मे वे लाल हो जाते हैं। फूल—शाखाओ के किनारे पुष्प धारण करने वाली सलिया आती हैं। इन पर फूल सफेद खुशबूदार छोटे और आम की बौर की तरह के झुमको मे आये हुए देखे जाते है। फूल-फीका, पीला धौला ललाई लिए हुए रग का सुवासित होता है। पुष्पदण्ड बहुत छोटा और फूल $\frac{1}{4}$ इन्च व्यास का होता है।

पुष्पवाहनकोप—चार पत्रो का बना हुआ होता है। ये पत्र नीचे से जुड़े हुए और सिरे पर इसके ४ दाते अलग दीखते हैं। पुष्पाभ्यन्तरकोपकी पंखडियां ४ होती है।
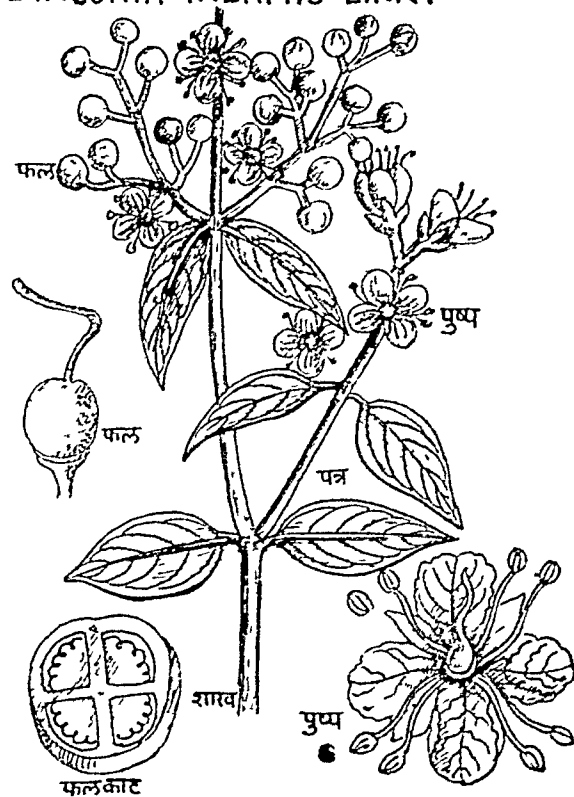
यह पुष्प बाह्यकोप के पत्रो से बाहर निकल कर करचली वाला हो जाता है। पुकेशर ८, स्त्री केशर १ होती है। फल—पहले फीके जामुनी रग के, चिकने और अत्यन्त चमकीले गोल होते है। कच्ची हालत मे हरे और पकने पर लाल होजाते है। फल का व्यास $\frac{1}{8}$ इन्ची फल देखने मे काली मिर्च के समान होते है। फल के चार खण्ड होते है।

बीज—गहरे भूरे रग के $\frac{1}{2}$ से $\frac{3}{4}$ लाइन लबे और $\frac{1}{2}$ लाइन चौड़े होते है। मेंहदी के झाड की डाली काटकर लगाने मे यह जल्दी बड़ी हो जाती है। फूलने का समय—वर्षा काल है।

व्यवहार्याङ्ग—पत्र, छाल, पुष्प और बीज।

उत्पत्ति स्थान—

समस्त भारतवर्ष मे विशेषकर बाड के रूप मे लगाई जाती है।

नाम—

स—रक्त रगा, रागगर्भा, रजका, नखरजनी, मदयन्तिका। हि—मेहदी, हिना। ब—मेदी ग्रुदी। गु—मेदो म—मेदी। प—हिना, मेहदी, पनवार। ता—कुरिजी पिदाई। ते—गोराता। उर्दू—मेहदी। अ—हीना, अलहीना। फा—हिना। यू—किप्रोस। अ—हेना (Henna)। ले—लासोनिया आल्बा।

रासायनिक संगठन—

पत्र मे एक रजक द्रव्य १२ से १५%, हेन्नो टेनिक एसिड नामक एक कषाय द्रव्य और एक जैतूनी हरे रग का ईथर-सुरासार विलेय राल होता है। बीज मे एक प्रकार का तेल और फूलो मे एक प्रकार का सुगन्धित इत्र (Otto) या तेल (रोगन हिना) होता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

यह रस मे—कषाय, वीर्य मे—शीत, विपाक मे—कटु, दोषघ्नता-वात कफ है।

आयुर्वेदिक मत से मेहदी के पत्ते वमनकारक, कफ निस्सारक, शरीर की दाह को शान्त करने वाले और श्वेत कुष्ठ मे लाभदायक होते है।

इसके फूल उत्तेजक और हृदय तथा मज्जा ततुओ को बल देने वाले होते है। इसके बीज मलरोधक, ज्वरनाशक और उन्माद मे लाभ पहुचाने वाले होते है। --भा नि

मेहदी हाथ पैरो पर लगाने से दाह मिटती है मेहदी शीतल है।

यूनानी मतानुसार—

मेहदी शीत और उष्ण इन उभय वीर्यो का यौगिक है उनमे उष्णवीर्य प्रधान है। किन्तु शीत वीर्य की शक्ति बहुत शीघ्र प्रगट होती है। इसलिये इसकी प्रकृति दूसरे दर्जे मे शीत और रूक्ष वर्णन की जाती है।

यह वेदना स्थापन और उपशोषण है। लेप करने से बालो को सुर्ख कर देती है और सूजन उतारती है। यह मूत्रल, विशेषत. रक्त प्रसादन एव त्वचा रोग नाशक है।

अहितकर—कण्ठ और फुफ्फुस के रोगो को। निवारण—कतीरा और ईसबगोल। प्रतिनिधि—मुण्डी और शाहतरा। मात्रा—३ माशे से ५ माशे तक।

नव्यमत—

तेल और थोडी राल डालकर मेहदी के पीसे हुए पत्तो का लेप गरमी के सिर दर्द मे करना अकसीर है। मेहदी के पान शीतला मे पावो के तलुओ मे जल मे पीस कर बाधने से आखो पर का शीतला का भार कम हो जाता है। शिर के बाल और नख बढाने मे भी मेहदी के पानो की ख्याति है। मेहदी के पान का क्वाथ गण्डूष के लिये उत्तम है।

कामला, प्लीहा वृद्धि, पथरी और रसायन रूप मे कुष्ठ मे, इसी प्रकार चमडी के हठीले दर्दो मे मेहदी की छाल उपयोगी है। छाल का क्वाथ जले हुये जख्मो को भरने मे उत्तम है। इसके फूलो का हिम शिर दर्द को कम करने के लिये काम मे लिया जाता है। इसी प्रकार पिच्चित या खरोच व्रणो पर भी पत्तो का लेप उत्तम है। फूलो से तकिये को भरकर वह तकिया लगाकर सोने मे अच्छी नीद आ जाती है।

मात्रा—छाल का चूर्ण ½ से १ आने भर। छाल क्वाथ ५ से १० तोले। पत्ररस—½ से १ तोला। पिष्ट पत्र कल्क—१ से ४ आने भर तक।

अष्टाङ्ग हृदय की रक्तपित्त चिकित्सा मे और सुश्रुत के महानीलाद्य घृत मे मदयन्तिका का उपयोग हुआ है।

प्रयोग—

केश रञ्जन—मेहदी के पत्तो का चूर्ण और नील के पत्तो का चूर्ण समान भाग लेकर पीसकर शिर पर बाधने से सफेद बालो को काला करता है, किन्तु पीछे से लाल हो जाते है।

इत्र मेहदी के फूलो से इत्र निकाला जाता है, जिसको

हिना का इत्र कहते है। यह गरम तर गिना जाता है। और शरद ऋतु मे विशेष प्रयोग मे आता है।

नेत्र रोगो पर—मेहदी के पान की टिकिया दूध मे गरम करके आख पर वाधने से नेत्र की पीडा और दाह मिटती है। —वनस्पति वर्णन

गर्मी का शिर. शूल—मेहदी के फूलो को सिरका तथा जल मे पीसकर मस्तक और तलुये के स्थान पर लेप कर दे। पीडा शीघ्र शान्त हो जायगी।

नोट—मेहदी के फूल नही मिले तो हरे या शुष्क पत्तो का लेप कर देने से भी कार्य चलेगा।

शिर पीडा पर पीने की औषधि—मेहदी के फूल ४॥ माशा को पानी मे पीसकर कपडे मे से छानकर उसमे मधु ७ माशा मिलाकर पिलाये, इसके कुछ दिनो तक पीने से गर्मी से पैदा हुई सिर पीडा शीघ्र शान्त हो जाती है।

नोट—जिस मनुष्य को गर्मी के कारण से सिर मे पीडा रहती हो, तो उसको उचित है कि समस्त तैलो को छोडकर केवल मेहदी का तेल लगाया करे।

मेहदी का तेल—मेहदी के आध सेर पत्ते लेकर पौने दो सेर पानी मे उबाले। जब आधा पानी शेष रह जावे तो उतार कर छान ले और फिर उसमे आधा सेर तिलो का तेल मिलाकर पुन आग पर रखकर औटाये। यहा तक कि समस्त पानी जलकर केवल तेल मात्र ही शेष रह जावे। तेल तैयार है। इसे किसी बोतल मे भरकर सुरक्षित रखे।

सिर की जलन—मेहदी के फूल ४॥ माशा, कनीरा ३ माशा। रात्रि के समय पानी मे भिगोदे और प्रात मिश्री मिला कर पिलावे कुछ दिनो के सेवन से अवश्य आराम हो जायगा। यह सिर के जलन की अचूक औषधि है।

नीद नही आना—मेहदी के फूल लेकर तकिया मे रुई के स्थान पर भरकर रोगी के सिरहाने रख दे। इससे ईश्वर की कृपा से अति शीघ्र रोगी को सुखपूर्वक निद्रा आने लगती है।

सिर का चकराना—मेहदी के वीज ७ माशा, वारीक पीसकर मधु मे मिलाकर रोगी को चटाये और फिर शीघ्र गेहू की रोटी खाड तथा घी मिलाकर खिलावे। इससे सिर का चकराना दूर होगा।

नेत्र रोग—मेहदी के हरे पत्ते लेकर खरल मे डालकर पीसे और घोटकर टिकिया वना ले और रोगी को आदेश करे कि रात्रि को सोते समय गुदा पर इस टिकिया को वाध कर सो रहे। पीडा, टीस, लालिमा दूर हो जायगी अनुभूत है।

नेत्रो की लाली—सुनहरी बिन्दु—मेहदी १ तोला, जीरा १ तोला इन दोनो को दरदरा करके गुलाव जल मे रात्रि के समय भिगोकर रखे और प्रात काल छानकर स्वच्छ शीशी मे रख ले और १ माशा भूनी हुई फिटकरी वारीक पीसकर मिला ले और आवश्यकता के समय २-२ बूदे नेत्रो मे डाला करे। आखो की ललाई दूर करने के वास्ते उत्तम है।

मुह के छालो के लिये—मेहदी को पानी मे भिगोकर रख दें थोडी देर के वाद उसको छानकर उस सुनहरी पानी से छाले वाले रोगी को कुल्ले कराये। गुण—छाले शीघ्र शात होगे।

नकसीर पर-मेहदी, जौ का आटा, धनिया, मुलतानी मिट्टी, सवको समान मात्रा मे लेकर वारीक पीसें और पानी मिलाकर लेप वना ले। आवश्यकता के समय मस्तक और ललाट पर लेप करे और ऊपर से मलमल का कपडा पानी से तर करके रखते रहे। पाव के तलवो पर भी मेहदी लगावे। कुछ दिन के प्रयोग से स्थायी लाभ होगा।

पीलिया पर अद्वितीय योग—मेहदी के पत्ते ५ माशा लेकर रात्रि को मिट्टी के वरतन मे भिगो देवे और प्रात-काल मल छान रोगी को पिला दें। ३ मिनट के वाद लोह भस्म १ रत्ती पान मे खिला दे। एक सप्ताह के सेवन से पुराना पीलिया रोग समूल नष्ट हो जायगा।

तिल्ली की सूजन पर—मेहदी की छाल वारीक पीसी हुई ३ तोला, नौसादर १ तोला, दोनो को मिला वारीककर सुरक्षित रखे।

विधि—प्रात सायकाल ३ माशा की मात्रा लेकर गर्म पानी के साथ दे। दो सप्ताह के सेवन से तिल्ली की सूजन जाती रहेगी।

पथरी को दूर करने वाला योग—मेहदी के पत्ते व लकडी ३ तोला रात्रि के समय पानी मे भिगोकर प्रात -काल इसका पानी निथार कर पृथक रखें। पहले जौ क्षार असली २ माशा लेकर मक्खन मे लपेट कर खिलाये ऊपर से उस पानी को पिलायें। कुछ दिनो के निरन्तर प्रयोग से पथरी मूत्राशय द्वारा रेत बनकर निकलती है।

पेशाब बन्द होना—मेहदी के हिम मे कलमीशोरा मिलाकर पिलावे। सुजाक, कुष्ठ मे केवल हिम ही पिलावें।

विलायती मेंहदी (Myrtus Communis)

यह कर्पुरादि वर्ग और लवगादि कुल (Myrtaceae) की एक छोटी जाति की झाडी जो १० से ३० बार ऊची होती है। यह सुगधीपान, फूल और फलो के लिये उद्यानो मे लगायी जाती है। पत्र—मेहदी की तरह सुगधित और गहरे हरे रग के होते है। कितनेक स्थानो पर यह सुगधित पान तालीस पत्र की तरह वेचे तथा व्यवहार किये जाते है।

फूल—सफेद, सुगधित, स्वाद मे किंचित तिक्त और फीके होते हैं।

फल—छोटे, कालीमिर्च से कुछ वडे, जामुनी रग के और स्वाद मे कुछ फीके होते हे और उनके भीतर सात-आठ छोटे छोटे चिकने बीज होते हैं ये फल 'हब्बुलआल' के नाम से बिकते है।

उत्पत्ति स्थान—

समस्त भारतीय उद्यानो मे यह लगाया जाता हे।

नाम—

हि०, प०—विलायती मेहदी। फा०-आस, दरख्ते हब्बुलआस, दरख्ते मूरद। ब०—सूत्रसोवा। गु०—विलायती मेदी। अ०-Common Myrtle कोमन मार्टल। ले०—मिर्टस कम्युनिस (Myrtus Commun s Linn)।

बीज-अरबी—हब्बुलआस। फा०-तुख्मे मूरद, मूरद दाना, पिस्ते गालिय। अ०-बर्कुल आस। फा० वर्गे मूरद।

रासायनिक संगठन—

पके फल मे एक प्रकार का उत्पत्त तेल, राल, कपाथिन, निब्बम्ल, सेवाम्ल और शर्करा आदि पदार्थ पाये जाते ह। पत्र, पुष्प और फल से एक प्रकार का उत्पत्त तेल परिश्रुत किया जाता है। यह पीला या हरापन लिये पीले रग का होता है।
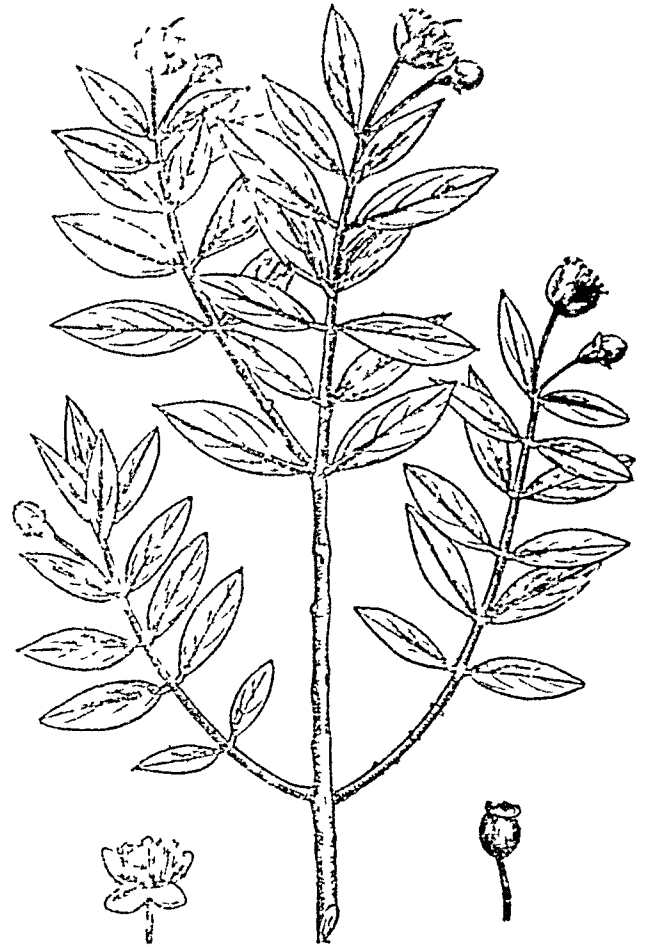
विलायती मेंहदी
MYRTUS COMMUNIS LINN

प्रयोज्याङ्ग—फल और पत्र। —यू द्र वि

गुण धर्म और प्रयोग—

पान की सुगन्धि—उत्तेजक मानसिक विकारो मे खास करके अपस्मार मे उपयोगी है। छाती के विकारो मे अजीर्ण, उदर और यकृतरोग मे उपयोगी हे। मुखपाक (ओष्ठी) मे पान का क्वाथ उपयोगी है। व्रण और

विलायती मेंहदी

Myrtus communis Linn.
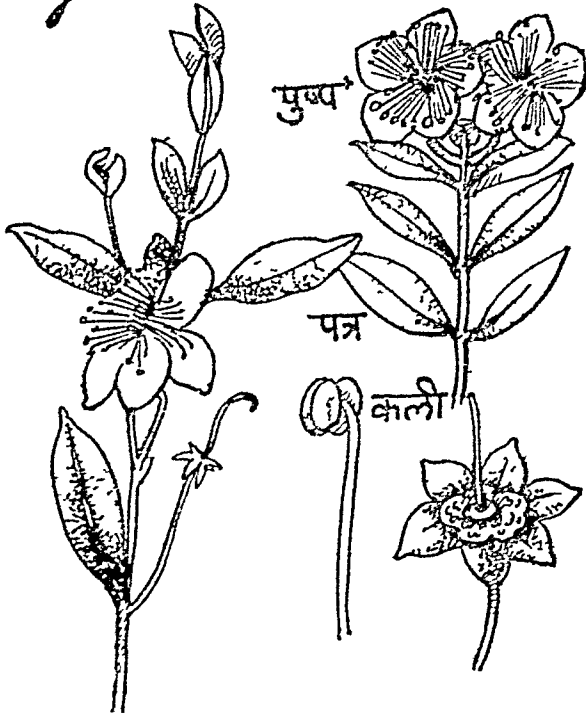
जख्मो मे भी यह लगाया जाता है। फल–सुगंधित, वातहर कफहर, दुर्गन्धनाशक, अतिसार, पेचिस और ग्रहणी मे उपयोगी है। आंतो मे पडे हुए घाव और उनसे होने वाले स्राव मे भी यह उपयोगी है। फल–मूत्र जनन, दुर्गन्धहर कफ हर है। खूब कफ पडता हो उसे यह दिया जाता है। गूगल के बराबर इसको लेकर फिर इनकी गोली बना कर सेवन करने से पुराने कफ के रोगो मे उपयोगी है। मूत्र के रोग, मूत्रमार्ग मे जलन, पुराना प्रमेह आदि मे ये गोलिया हितकारी है। मूल, पान दण्डी ये सब ग्राम पोजिटिव और ग्राम नेगिटिव जीवाणुओ, इसी प्रकार क्षय के कीडे या जीवाणुओ का मारक है। पान-फल मे से एक उडनशील तेल निकलता हे जो मिर्टल आयल के नाम मे प्रख्यात है। तेल सुगधित, पूतिहर, कफघ्न, उत्तेजक है। पान, फूल, फल के अभाव मे यह तेल दवा मे प्रयोग कर सकते हे। कालन वाटर की बनावट मे यह तेल काम मे लाया जाता है। तेल–मूत्रल, कफहर और वातहर हे।

—नि० आदर्श

यूनानी मतानुसार–

प्रकृति–पहले दर्जे मे शीत और दूसरे मे रूक्ष है। गुण–कर्म–हब्बुल आसग्राही—रक्तस्तंभन, स्वेदापनयन, दीपन, हृद्य, बलदायक और वर्ग (पत्ते) अवसादक, केशरंजन तथा बालो को दृढ करने वाला हे। उपयोग–अतिसार और रक्तस्राव बन्द करने के लिये हब्बुल आस का उपयोग करते हैं। पसीना रोकने के लिये इसको बारीक पीसकर शरीर पर मलते हैं। हृदय दौर्बल्य और हृत्स्पदन दूर करने के लिये इसका उपयोग करते है। अग्निदग्ध, उष्णशोथ और शिर शूल मे वेदना स्थापनार्थ इसके पत्तो को पीसकर लेप करते है। बगलगत स्वेद रोकने और उसकी दुर्गंध निवारण के लिये इसे बगल मे मलते हैं। बालो को मजबूत और काला करने या उनको काला रखने के लिये इसे खिजाबो मे डालते है। शर्बत हब्बुल आस इसका एक प्रसिद्ध योग हे। जो अतिसार एव रक्तस्राव बन्द करने और आमाशय तथा हृदय को शक्ति देने के लिए प्रयुक्त होता हे।

अहितकर–शिर.शूल और अनिद्राजनक। निवारण–रसवत और तूत की पत्ती। प्रतिनिधि–वेख अजबार।

मात्रा—३ माशे से ५ माशे तक। —यू द्र वि

मोखा SchreberaSwiete nioides

मोखा—वटादि वर्ग और हार सिंगारादि Oleaceae कुल का १५ से २५ फीट ऊचाइ का जगली वृक्ष होता है। किन्तु भारत के अन्य प्रदेशो मे यह ४०से५०फीट तक ऊचा बढ़ता हैइसके पिंड की गोलाई ४ से ५ फीट तक होती हे। इसमे छोटी-छोटी बहुत सी शाखायें निकल कर चारो ओर फैली हुई हाती है। इसकी छाल खाकी रङ्ग की होती है। इसक पत्र चैत्र-वैशाख मे आते हैं। जब नवीन पत्र आये हुये होते हें तब कुछ दूर से यह वृक्ष एक हरे

मोखा

SCHREBERA SWIETENIOIDES ROXB
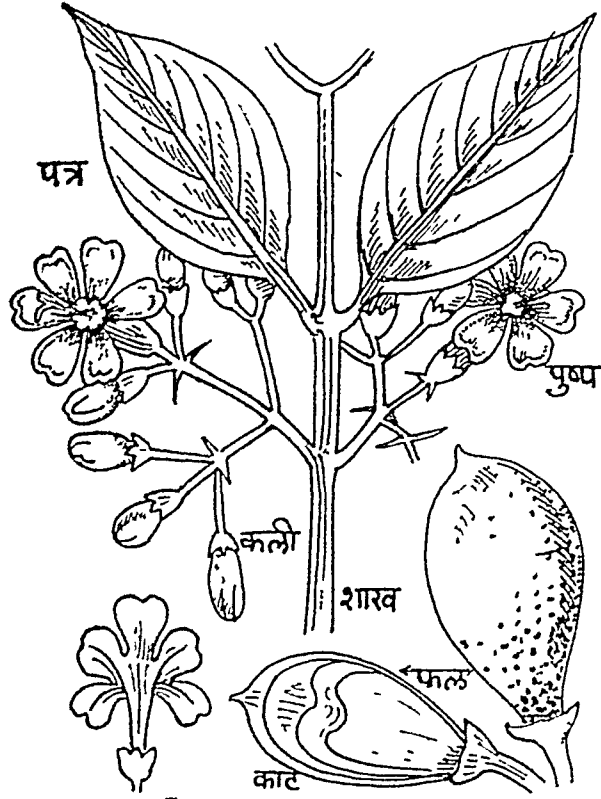
गुम्बज जैसा सुन्दर दिखाई देता है । पत्र—लवे मुख्य शलाका पर सयुक्त आते है । पत्र द्विभग्न, आमने-सामने ३ से ४ जोडे मे आक के पानो के समान आकृति वाले । पूरा पान ३ मे ५ फीट लम्वा होता है पान का डठल १ मे १½ फीट लम्वा होता है । और वह सुतली सा स्लेट पेन जैसा जाडा होता है । एक डठल पर छोटे पानो की ३ मे ५ जोडी आई हुई होती हैं और एक पान सिरे पर आया हुआ होता है।

फूल—भूरे सफेद रङ्ग के वसत की मौसम मे आते है । पुष्प मधुर सुगध युक्त होते है । पुकेसर २ और स्त्री केसर १ होती है । पुष्पाकृति घटाकार [Bell Shaped] पुष्प—फरवरी से अप्रैल तक आते है ।

इसकी टोटी २ इन्च तक लम्बी और ऊपर मे जरदरी होती है। इस टोटी पर कुछ सफेद दाग होते हैं। इसके पत्ते बडे-बडे होते है और उनमे आक के समान दूध निकलता है ।

फल—भल्लाकृति, द्विभागयुक्त २ से ३ इच लम्वे और ¾ से १½ इच चौडे होते हैं। मोखा के फल का आकार पेर अथवा घटा जैसा होता है जब यह पककर सूखता है । तव इसकी दो फाडे अलग हो जाते हैं । इसको घण्टा पाटला भी कहते है । इसमे बीज आठ होते हैं ये गहरे भूरे रङ्ग के १ से १½ इच लम्वे और २½ से ३ लाइन चौडे होते हैं । काले और सफेद भेद से यह वृक्ष दो प्रकार का होता है । वृक्षाकृति वहुत कुछ पाटला से मिलती है अत इसे घटा पाटली कहा गया है । क्षार वनाने के लिये यह वृक्ष प्रसिद्ध है ।

उत्पत्ति स्थान—

छोटा नागपुर, उडीसा, कुमाऊ का पूर्वी प्रदेश, राजस्थान और मध्य हिन्दुस्तान, ब्रह्मा, पश्चिम द्वीपो मे होते हे । इसके वृक्ष हिमालय और दक्षिण मे विशेष करके होते हैं।

नाम—

स०—मोक्षक, मुष्कक, क्षीरी, मुष्टि क्षार श्रेष्ठ हि०—मोखा, वन पलाश, घट । राज०—मोका । व०—घटा पारुल । वम्बई—मोका घटा । वुँदेल खण्ड घाटपटाली गु०—मोखो, नवटीनु झाड, मरखो । म०—मोका, मोकडी, नेखती । ता०—मोगालिगा । ते०—मगलिगा । क० - कालघटे । वर्मी—यीत स्वेल्वे । कर्णाटकी—मोखाद लाई ले० – स्क्रेवरास्वेटे निआइडस् ।

व्यवहार्य अङ्ग—त्वक, क्षार ।

मात्रा—त्वकक्वाथ ५ से १० तोला । क्षार ½ से १½ माशे ।

गुणधर्म और प्रयोग—

दोनो प्रकार के मोखा चरपरे, खट्टे, रोचन, पाचक, प्लीहा, गुल्म और उदर रोग को दूर करते है ।

मोखा—चरपरा, कडवा, मलरोधक, गरम तथा कफ, वात, विष, मेद, गुल्म, कण्डू, वस्तिरोग, कृमि और शुक्र को नष्ट करता है । —र० नि०

मोखा—कफवात नाशक, मलरोधक, गुल्म, विष और कृमि नाशक हे, गरमी, वस्तिरोग और कण्डू को दूर करता है । इसका फूल—कफपित्त नाशक है, इसका गोंद

अत्यत वीर्यवर्द्धक तथा शोप, पित्त और वात विनाशक है। —म० नि०

मोरवा वृक्ष—चरपरा, खट्टा, रुचिकारक, पाचक, मलरोधक, गरम, नमकीन, कडवा तथा प्लीहा, गुल्म, उदररोग, विप विकार, कफ, वात, मेदरोग, वस्तिशूल, शुक्रदोप, कर्ण रोग, पित्त, कण्डू और कृमि को दूर करता है। इसका फूल—कुष्ठ, वात, पित्त, कफको दूर करता है।

इसका फल—अग्नि प्रदीपक, दस्तावर, रोचक तथा गुल्म प्रमेह ववासीर, पाण्डु रोग शुक्र दोप और उदर रोग को दूर करता है। इसकी जड श्वेत कुष्ठ मे बहुत लाभ पहुचाती है। —नि० र०।

प्रयोग—

कुष्ठ मे—मोखा के मूल की छाल से सिद्ध घृत कुष्ठ को मिटाता है। —सुश्रुत चि० ९-४९

आखो मे—आखो मे जहरी अंजन लगाया हो तो मोखे के पुष्पो को पीसकर अजन करे।

—सु० क० १-७१

कफ पित्त पर—मोखा के पुष्पो को सुश्रुत ने कफ पित्तहर माना है। —सु० सू० ४६—२८४

मोखा क्षार—क्षार श्रेष्ठ होने से इसकी लकडी को जलाकर क्षार बनाने की विधि सुश्रुत जी ने दी है।

—सु० सू० ११-११

मुखरोग—मुख रोग मे मोक्ष क्षार उपयोगी है ऐसा प्रकट होता है। ग्रहणी रोग मे भी इसकी योजना हुई है। —च० चि० १९-१८१

मोखा नं० २ (Momordica Balsamina)

यह पटोलादि कुल[Cucurbitaceae] की एक लता होती है, जो चातुर्मास मे बहुत उगती है। इसके पान एकातर, ५ से ७ नस वाले तथा कोण और खाचे वाले होते है। साधारणत इसके पत्तो का आकार चिभडी के पत्तो के समान होते है। पान १½से ३इच लबे और १¼ से २ तथा २½ इच चौडे होते है। पान डठल के पास विभाजित और सिरे पर अणी वाले होते हैं। पत्र दण्ड १½ से २ इच लम्बा होता है। पत्तो के मलने से मूली के पान से मिलती वास आती है। और स्वाद थोडा कडवा लगता है। फूल—सफेद होते हैं। इसके फल करेले के समान दोनो तरफ नोकदार होते है और इन फलो के ऊपर तरोई के समान खडी धारी रहती है।

उत्पत्ति स्थान—यह सिंधु, गुजरात, दक्षिण, पजाव और देहरादून क्षेत्र मे तथा पुराने खडहरो मे इस वनस्पति की वेलें बहुत पैदा होती है।

नाम—

हिं०—मोखा। गु०—छोछिडा। मध्य प्रदेश—मोख। सिंधी—कारेलो जागरो। अरवी—मोकाह। अं०—Balsamina (वालसेमिना) ले०—मामोर्डिका वालसेमिना।

प्रयोज्याग—पान और फल।

गुणधर्म व प्रयोग—

सक्षेप मे—शोथघ्न और सारक है।

इसका फल मृदु विरेचक होता है और इसका शाक बनाकर खाया जाता है। इसके फूल को काट कर मीठे तेल मे डाल दिया जाता है और उसी हालत मे उसको कुछ दिनो तक सूरज की धूप मे रखा जाता है। जब उस तेल का रङ्ग लाल हो जाता है तब उसको बोतल मे भर लिया जाता है। यह तेल ताजे घावो के लिए बहुत लाभदायक माना जाता है। इसकी कुछ बूदे रुई के फाये पर टपकाकर उस फाये को ताजे जख्म पर बाध दिया जाता है जिससे घाव कुछ दिनो मे अच्छा हो जाता है

—व० च०।

उक्त तेल सीरिया देश मे जख्मो को भरने के वास्ते बहुत प्रसिद्ध है

नोट—शास्त्र मे मोखा का क्षार और विप निवारण मे वर्णन हुआ है वहा मोखा न १ का ही प्रयोग है जो वृक्ष है। इसका नही।

मोंगरा (Jasminum sambac)

मोगरा पुष्पवर्ग और हारसिंगारादिकुल (Oleaceae) का क्षुप होता है जो आगे चलकर बहुवर्षायु झाड़ी में परिणित हो जाता है। मोगरा प्रत्येक बगीचे में लगाया जाता है। पत्ते बेरी के पत्तों से कुछ छोटे और विशेष रंग वाले होते हैं। मोगरे के पुष्प अपनी खुशबू के कारण से सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। इसकी कई जातियां होती हैं जैसे—बेलिया मोगरा—जिसकी बेल चलती है। बटमोगरा—जिसका फूल गोल होता है। सादामोगरा—जिसका झाड़ीनुमा क्षुप होता है। इनके पत्ते गोल और चमकीले हरे होते हैं। इनके फूल अत्यन्त सुगन्धित और सफेद होते हैं। मोतिया के फूल—अधिक गोल होते हैं। इनकी भी सुगन्ध अत्यन्त मनमोहक होती है। ये पुष्प भारत के प्राय सभी बगीचों में लगाए जाते हैं।

उत्पत्ति स्थान—भारत के प्राय सभी बगीचों में इसको लगाया जाता है या कृषि की जाती है।

नाम—

सं—मुद्गर, मल्लिका, [illegible], शीतभीरु, भूपदी, [illegible], [illegible], राजपुत्री, अनग, गन्धराज आदि। हि—मोगरा, मोतिया, बट मल्लिका। गु—मोगरो। बं—मोगरा, बेला, वन मल्लिका। म—मोगरा। काठियावाड़—मोगरो। क—[illegible], [illegible]। ता—[illegible]। तेलगु—मल्ले। [illegible]—[illegible]। उर्दू—[illegible], रायबेल, [illegible] [illegible]। —Arabian Jasmine [अरेबियन जेसमिन]। [illegible]—[illegible]।

प्रयोज्यांग—पत्र एवं पुष्प।

गुण धर्म और प्रयोग—

[illegible]—[illegible] मधुर है, वीर्य में—शीत, [illegible]—[illegible] है।
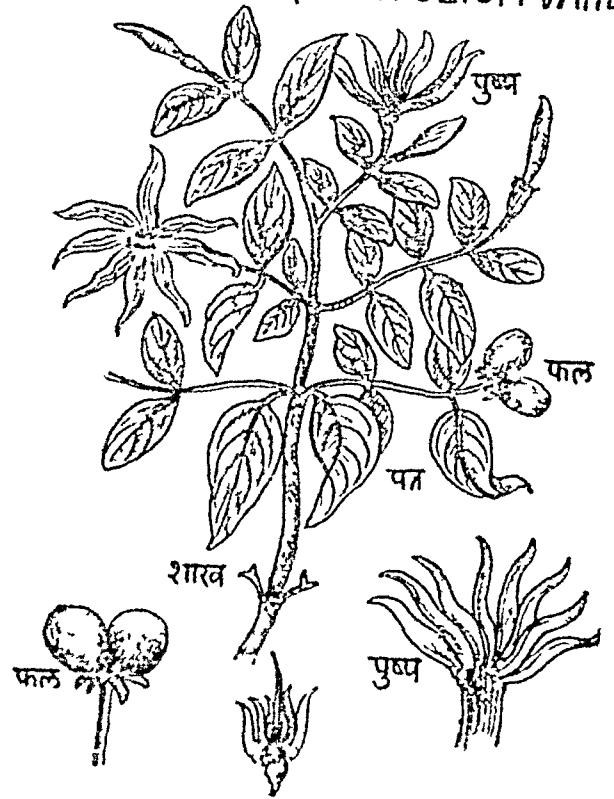
मल्लिका के गुण—मल्लिका [एक प्रकार का मोतिया] गरम, हलका, वीर्यजनक, कड़वा, चरपरा तथा वात, पित्त, नेत्ररोग, कोढ़, अरुचि, विष और व्रण को नष्ट करता है।

मुद्गर के गुण—

मोतिया—मधुर, शीतल, सुगन्धित, सुखदायक, काम को उत्पन्न करने वाला, भौंरों को आनन्दजनक और पित्त के दोष को दूर करता है। —रा० नि०

बेला के गुण—शीतल, हृदय को हितकारी, सुगन्धित, पित्त नाशक तथा कफ, वात, विष, स्फोट, कृमि और आम को दूर करने वाला है। —रा० नि०

मल्लिका (मोतिया भेद) के गुण—

मल्लिका—[illegible], हलका, नेत्रों को हितकारी, मुखपाक नाशक तथा कुष्ठ, विस्फोट, कण्डू, विष और व्रण

को हरने वाली हे ।

मल्लिका के फूल-कडवे और वात को जीतते हे ।

—शो० नि०

यूनानी मतानुसार—यूनानी मत से इसके फूल कडवे और खराव स्वाद वाले होते है। ये मस्तिष्क को शक्ति देने वाले, ज्वर को दूर करने वाले और वमन तथा हिचकी को वन्द करने वाले होते हे। इसका पौधा शीतल और मधुर होता है। पागलपन की वीमारी मे इसका उपयोग किया माता है। दृष्टि की कमजोरी और मुख रोगो मे भी यह काम मे आता हे।

नवीन मतानुसार–मि जे वुड मोगरा के फूल को उत्तम स्तन्यशोधक [Lactifuge] है। प्रसव के वाद स्तन के ऊपर कही क्षत या विटनी के पास जख्म हो जाता है और दूध पिलाना वन्द करने की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है ऐसे समय मोगरे के फूल सुन्दर काम करते हे। फूलो को पीसकर दोनो स्तनो पर वाधे जाते है। कितनी ही वार तो १४ घटो मे ही दूध अदृश्य हो जाता है जव कि साधारणतया दो से तीन दिनो मे ही दूध वन्द होता है। मद्रास की ओर इस वात को जानते हे। ऐसा मि० वुड वताते है।

उपयोग—

मूखे पानो को जल मे पीसकर वनाई हुई लुगदी पुष्ट व्रण ऊपर वाधने से घाव मिट जाता है। (वोट) आ नि से

गोआ मे इसकी जगली जाति की जड़ ऋतुस्राव नियामक औषधि की तरह काम मे ली जाती है।

स्त्रियो की जननेन्द्रियो पर विशेषकर गर्भाशय और स्तनो पर मोगरे की क्रिया होती है। प्रसूती काल मे अगर स्तनो मे दूध की गाठें जमकर पीव पैदा होने लग जाय तो ऐसे समय मे मोगरे के फूलो का प्रयोग करने से तुरन्त लाभ होता है।

१ तोला मोगरे के फूलो को लेकर कुचलकर स्तनो पर वाधते हे और ७-८ घण्टो के पश्चात पुराने फूलो को निकालकर उसकी जगह पर नये फूल वाध देते है। इस प्रयोग से स्तनो मे जमी हुई दूध की गठाने विखर जाती है। स्तनो की सूजन उतर जाती है और पीव पैदा होने की क्रिया रुक जाती है।

प्रसूति के समय मे प्रसूति श्राव अनियमित और थोडा पडता हो तो तीन मास मोगरे की जड का काढा वनाकर देने से प्रसूति स्राव साफ होकर गर्भाशय शुद्ध हो जाता हे।

रक्त मिश्रित अतिसार मे मोगरे के दो चार कोमल और थोडा ताजे पत्तो को लेकर दो तीन तोले ठण्डे पानी मे उनको घोटकर कपडे मे छानकर उसमे थोडी सी मिश्री मिलाकर दिन मे ३ वार देने से मल के अन्दर रक्त जाना वद होता हे और दस्तो की सख्या भी कम हो जाती है।

—व च

मोटा तरवड़ (Cassia Glauca)

यह शिम्वीकुल (Leguminosae) का एक छोटी जाति का वृक्ष होता हे। इसके पत्ते ५ से लेकर ९ इञ्च तक लवे होते है। इसके फूल पीले रग के होते है।

उत्पत्ति स्थान—यह वनस्पति सारे भारत मे पैदा होती हे।

नाम—

म०—मोटा तरवड। ता०—कोवालाई। ले०—केसिया ग्लोका (Cassia glauca Lam)।

गुण-धर्म व प्रयोग—

इस वनस्पति की छाल और इसके पत्ते मधुमेह और सुजाक मे लाभ पहुचाते है। सुजाक और मूत्रकृच्छ्र के अन्दर इसके पत्तो को कुचलकर दूध और शक्कर के साथ मिलाकर देने मे बहुत जल्दी लाभ होता हे।

मोठ (Phaseolus Aconitifolius)

यह शाक वर्ग और शिम्वीकुल (Leguminosae) का एक प्रसिद्ध अन्न हे, जिसकी दाल खाई जाती हे।
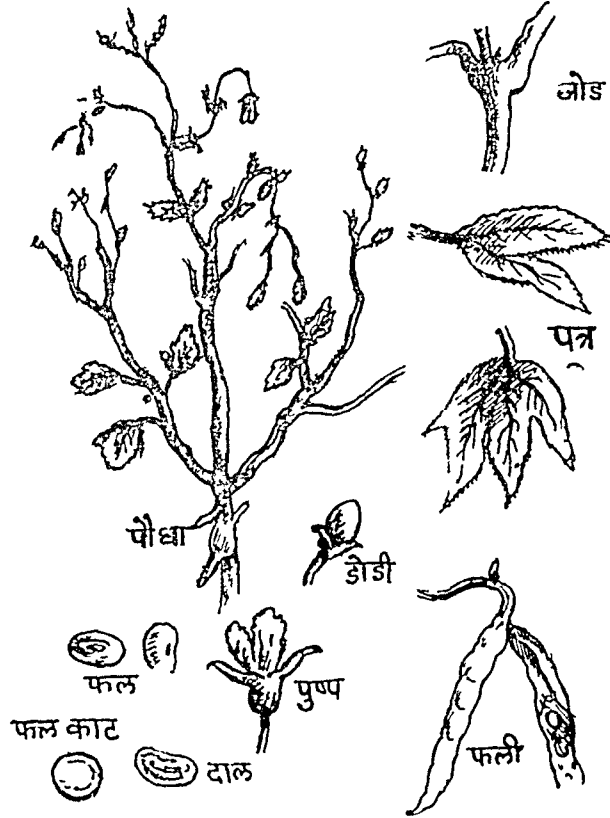
आकृति मे यह मूग के समान किन्तु भूरा होता है। इसका पौधा, पत्ते और फूल सब मूग के समान होते है। इसके दाने मूग से कुछ लम्बे और गुलाबी मायल होते है। यह अन्न राजस्थान मे बहुतायत से पैदा होता है। किसी भी रोग के पथ्य मे इसकी दाल मूग की दाल की अपेक्षा उत्तम और हल्की समझी जाती है।

उत्पत्ति स्थान—

समस्त भारतवर्ष मे खेतों की जाती है या जगली होती है। राजस्थान के बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर के क्षेत्र मे मोठ बहुतायत से पैदा होता है।

नाम—

म०—मकुष्ठ, अमृता, अरण्यमुद्ग, वसन्ता। हि०—मोठ, भीरगा। म०—मठ, मटकी। ब०—वन मुद्ग, गेगी। गु०—माट, मठ। मध्य-प्रदेश—मोठ। प—मोठ। कच्छी—कोयेड। सिंधी—मोहर। ता०—तुलक प्यराई ते०—कुन कम्पेसाल। अ०—Kidney bean (किडनी बीन) ले०—फेसिओलस एकोनिटी फोलियस (Phaseolus aoonıtı folius gacg)।

रासायनिक संगठन—

मोठ के अन्दर मास वर्द्धक द्रव्य २३%, आटा ५६%, ततु ४%, राख ३½% और तेल बहुत कम मात्रा मे रहता है।

गुण धर्म व प्रयोग—

मोठ—रस मे-मधुर, वीर्य मे-शीत, विपाक-मधुर दोषघ्नता—कफ-पित्त है।

आयुर्वेदिक मत से मोठ—कपैला, मीठा, रक्त पित्त नाशक, ज्वरघ्न, दाह नाशक, पथ्य, रुचिकारक और सब दोष नाशक है। —रा० नि०

मोठ की दाल कुछ बलकारक, दीपन, पाचन, हलकी, नेत्रो को हितकारी, वीर्य वर्द्धक तथा पित्त, कफ और रुधिर के दोषो को दूर करती है।

मोठ—वातकारक, ग्राही, कफ पित्त नाशक, हलकी वमन को जीतने वाली, पाक मे मधुर रस युक्त, कृमि कारक और ज्वर को नष्ट करने वाली है। —भा० प्र०

इसकी जड नशीली होती है और इसकी दाल ज्वर के अन्दर पथ्य के रूप मे ली जाती है। ज्वर, मन्दाग्नि और पेट के रोगो मे यह एक उत्तम पथ्य है।

मोठ—रक्तपित्त, कफ और वात नाशक है, गरम, कपैली, मधुर, मलरोधक, शीतल तथा गुदकील, गुल्म रोगो को दूर करती है। —शा नि.

मोठ—शीतल, ग्राही, कफ, पित्त और क्षय नाशक है। —रा. नि

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—पहले दर्जे मे गरम और खुश्क।

गुण कर्म तथा उपयोग—

यह स्वल्प पुष्टिकर और सग्राही है अधिक तया इसकी दाल पका कर खाई जाती है। शीतल कफज रोगो मे इसका उपयोग गुणदायक है। यह विशेष रूप से

अतिसारघ्न है। अहितकर—वायु कारक। निवारण—गरम मसाला और स्नेह द्रव्य। प्रतिनिधि—मूग।

गुण—मोठ—सग्राही अर्थात् अतिसार, सग्रहणी रोगो मे हितकारक, पित्त, कफ और ज्वर नाशक, पचने मे हलका, सतर्पणकर, हृदय को हितकारी, पुराना दुष्ट प्रतिश्याय और कास हर है।

सुश्रुत जी ने मोठ को कृमिकारक कहा है। चरक को सुश्रुत जी का यह मत मान्य नही है, कारण चरक मोठ को रस और विपाक मे मधुर, सग्राही, रूक्ष, शीत, रक्तपित्त, ज्वरादि मे हितकारी बताया है। वाग्भट्ट ने मोठ को मेद मे हितकारक माना है। [सू०–६–१७]

—आ नि

अतिसार या अन्यत्र रक्त जाता हो उसमे मोठ का यूप हितकारी है। 'पीनस कास जीत' कहकर मदनपाल जी ने मोठ का गौरव बढाया है। मोठ मे 'लिसिथिन' काफी प्रमाण मे है।

मठ के मठिये खाने की चाल गुजरात मे है, वह प्रशसा करने के योग्य है। मोठ सेक करके भी खाये जाते है।

मोठ का यूप—कफ, पित्त को हरने और पचने मे लघु, ज्वर, रक्तपित्त आदि रोगो मे हितकारक है।

मोठ की दाल या साबत मोठ विशेष खाने मे आवे तो पेट मे दर्द होता है। किन्तु मोठ का ओसामण अजीर्ण ऊपर पाचक माना जाता है। कच्छ मे बहुत से गरीब लोग मोठ की दाल और इसके आटे की रोटिया बनाकर खाते है। और कई वक्त मोठ का आटा बाजरे के आटे के साथ मिलाकर इसकी रोटिया बनाई जाती है। मोठ की दाल अथवा इसके साबत दाणे कच्चे अथवा भिगोकर नमक के साथ कमजोर घोडे और बैलो को देते है किन्तु दूधारू पशुओ को यह नही दिया जाता है क्योकि इससे दूध कमती हो जाता है।

मोठ के आटे का बड़ा, बडी, पापड और पूडिया बनाई जाती है। यह खाने मे थोडा आवे तो पौष्टिक माना जाता है। परन्तु ज्यादा खाने मे आने से वायु कर्त्ता माना जाता है।

—वं० वर्णन गुजराती

मोथा (नागर) (Cyperus Scariosus)

यह कर्पूरादिवर्ग और मुस्तादि कुल (Cypraceae) की एक क्षुद्र वनस्पति होती है। नागरमोथा—यह जलीय भूमि मे अथवा जलाशयो के करीब की भूमि मे उत्पन्न होता है। यह लम्बा सूक्ष्म लोम युक्त नरम घास १ से २ फीट तक लम्बा होता है इसके बीच से एक तिकोनी डडी निकलती है जो २ से ४ फीट तक ऊची होती है। इसका काण्ड पत्तो के द्वारा आवृत्त होता है। ऊपरी भाग मुलायम, पत्र सब समान नही होते पत्ते घासकी तरह के लम्बे होते है। पुष्प दण्ड नोकीला और लम्बा, कभी ३ इच, कभी ४ इच की अपेक्षा बडा नही होता है। इसका मूल सख्त एव दूषित लाल वर्ण एव गन्ध श्वेत वच के समान होती है। यह मोथा जल मे पैदा होता है, कभी तालावो और मिलो मे भी होता है। महाराष्ट्र भाषा मे इसको "लावाला" कहते है, यह अग्रेजी [Rush] नाम के समान है। गीली जमीन मे भी यह भली प्रकार पैदा हो जाता है। मूल—अगुलीवत, इसके कदपर कृष्ण वर्ण लोम होते है। वर्षा काल मे फूल और बाद मे फल लगते हैं।

उत्पत्ति स्थान—सुन्दर बन, पेगू, ब्रह्मदेश, हुगली, हावडा, वर्धमान जिला (बगाल) मे तथा सारे भारतवर्ष मे उत्पन्न होता है उपरोक्त वर्णित नम तथा जलीय जमीन मे।

नाम--

स०—नागर मुस्तक। ब०—नागर मुथा। हि०—नागरमोथा, मोथा। मध्य प्रदेश—नागर मोथा। महा०—लावाला गु०—नागर मोथा। क०—नागर मुस्ता। ते०—टुगोगान्धालाविम। फा०—मुश्क जमीन। अ०—शाद कफी। ले०—साईपेरसस्केरियोसस (Cyperus Scariosus R, Br,)

प्रयोज्य अङ्ग—मूल।

मात्रा—मूल चूर्ण १ से ४ माशा। क्वाथ ५ से १० तोला।

गुणधर्म और प्रयोग–

इसके गुण भद्रमोथे के तुल्य है।

नागर मोथा, गिलोय, अद्रक और हरीतकी प्रत्येक २-२ तोला लेकर चूर्ण बनावे। ५ भाग करले। प्रतिदिन प्रात साय एक-एक भाग का क्वाथ पीपल चूर्ण और मधुयुक्त पीने से ज्वर आराम हो जाता है।

नागर मोथा, मोचरस, लोध, धाय के फूल, अपक्व बेल और इद्रयव (कुटजबीज) ये सम परिणाम लेकर चूर्ण करे और तक्र व गुड के सहित ६ माशा की मात्रा मे सेवन करने से रक्त आमाशय आराम हो जाता है।

मोथा की जड पेट के रोगो को मिटाती है एव केश धोने के समय व्यवहृत होती हे। मोथा धर्म्मकर और मूत्र कारक है। इसका मूल उग्र एव धारक है, यह अतिसार रोगो मे प्रयोग क्यिा जाता है। एव क्वाथ उपदश, सुजाक मे भी लाभकारी हे।

श्रेष्ठ मोथे के लक्षण–अनूपदेश (सजल स्थान) मे उत्पन्न होने वाला मोथा होता हे तो भी मनीपियो ने नागर मोथे को ही उत्तम कहा है।

नागरमोथा–चरपरा, कपैला, शीतल, कफ नाशक, पित्त ज्वर, अतिसार, अरुचि, तृपा, दाह और श्रम का नाश करता है।

चरक मे लेखनीय, तृप्तिघ्न, कण्डुघ्न, स्तन्यशोधक और तृष्णा निग्रहण दशेमानियो मे मोथे का उल्लेख किया हुआ है। सुश्रुत जी ने–वचादि और मुस्तादि गुणो मे मोथा का व्यवहार किया है। मोथा-वराह की प्रिय खुराक है।

नवीनमतानुसार—स्वेदल और सग्राही तरीके मोथा काम मे लाया जाता है। इसके उष्ण और मूत्रल गुण भी स्वीकृत है। मोथा कृमिघ्न हे।

नागर मोथा–तेज ज्वर, सतत ज्वर तथा सब प्रकार के ज्वरो मे योग्य दवाइयो के साथ क्वाथो मे दिया जाता है जिससे पसीना आता है। तृपा शान्त होकर उल्टी दब जाती है।

विशिष्ट योग–

पडग पानीय–नागरमोथा, लाल चदन, वाला, पित्तपापडा, सोठ और नेत्र वाला इनको समान भाग लेकर यवकुट करके रखें। आवश्यकता पर एक पोटली बाधके पानी मे रखकर छोडदे। जरूरत के अनुसार इसमे से पानी लेकर पीवें। गुण-उष्ण, स्वेदल और मूत्रल हे।

मुस्तादि क्वाथ (१)–नागर मोथा, जवासा, सुगध वाला, कुटकी और सोठ इनका क्वाथ पीने से ज्वर नष्ट होता और अग्नि दीप्त होती है।

मुस्तादि क्वाथ (२)–नागर मोथा, हर्र, बहेडा, आमला, हल्दी, देवदारु, मूर्वा, इन्द्रायण की जड और लोध। इनका क्वाथ पीने मे सब प्रकार के प्रमेह और मूत्राघात नष्ट होते है।

मुस्तादि क्वाथ (३)–नागर मोथा, अमलतास, खस, हल्दी, देवदारु, पटोल, नीम की छाल और मुलैठी। इनका क्वाथ वात पित्त ज्वर को नष्ट करता हे।

मुस्तादि क्वाथ (४)–नागरमोथा, वासा, देवदारु, कूठ, कटेली, सोठ, काक जघा, मुनक्का, गिलोय और पीपल समान भाग लेकर क्वाथ बनावे। यह क्वाथ वातपित्त ज्वर को नष्ट करता है।

मुस्तादि क्वाथ (५)–नागरमोथा, गिलोय, सोठ, वासा, पित्त पापडा, हर्र, कटेली और धमासा। इनका क्वाथ–वात कफ ज्वर को नष्ट करता है।

मुस्तादि क्वाथ (६)–नागरमोथा, अरण्डमूल, हर्र, पियावासा, देवदारु, गिलोय, रास्ना, शतावर, कचूर, कुटकी, वासा, सोठ, पचमूल और असगध समान भाग लेकर क्वाथ बनावे। यह क्वाथ सन्निपात ज्वर, मन्या-स्तम्भ और सधि निग्रह को नष्ट करता है।

मुस्तादि क्वाथ (७)–नागरमोथा, अतीस, सोठ, सुगधवाला और इन्द्र जौ समान भाग लेकर क्वाथ बनावें। यह क्वाथ प्रात काल पिलाने से बच्चो का अतिसार नष्ट होता है।

मुस्तादिक्वाथ (८)–नागरमोथा, पित्तपापडा, नीलोत्पल, चिरायता, खस और लाल चन्दन १।-१। तोला लेकर क्वाथ बनावे। इसमे खाड मिला कर पिलाने से वातपित्त ज्वर नष्ट होता हे। यह अनेको बार का अनुभूत प्रयोग है।

मुस्तादि क्वाथ (९)–नागरमोथा, इन्द्र जौ, हर्र

आमला, कुटकी और फालसे के फल समान भाग लेकर क्वाथ बनावें। यह क्वाथ कफ ज्वर को नष्ट करता है।

मुस्तादि क्वाथ (१०)—नागरमोथा, पित्तपापडा, मुलैठी और मुनक्का समान भाग लेकर सबको अधकुटा करके आठगुने पानी मे पकावें और जब आठवा भाग पानी शेष रह जाय उतार कर छान लें। इसमे शहद मिलाकर पीने से चित्तभ्रम, ज्वर, दाह, छर्दि और मन्थर ज्वर को नष्ट करता है।

मुस्तादि क्वाथ (११)—नागरमोथा, पद्माक, पित्त-पापडा, चन्दन, चमेली, शतावर और मुलैठी का अथवा मीठानीम, सुगधवाला, चीता और चन्दन का क्वाथ पीने से मुंह से आता हुआ रक्त और सन्निपात (न्यूमोनिया) नष्ट होता है।

मुस्तादि क्वाथ (१२)—नागरमोथा, लालचदन, सोठ, सुगंधवाला, खस और पित्तपापडा समान भाग लेकर क्वाथ बनावे इसे ठण्डा करके पीने से रुग्दाह सन्निपात नष्ट होता है।

मुस्तादि क्वाथ (१३)—नागरमोथा, लालचदन, वासा, सुगन्धवाला, मुलैठी और गिलोय समान भाग लेकर क्वाथ बनावें। यह क्वाथ पित्त, तृषा, दाह और ज्वर को नष्ट करता है।

मुस्तादि क्वाथ (१४)—नागरमोथा, अतीस, मूर्वा, बच और इन्द्र जौ समान भाग लेकर क्वाथ बनावें। इस क्वाथ मे शहद मिलाकर पीने से पित्त कफज अतिसार नष्ट होता है।

मुस्तादि क्वाथ (१५)—नागरमोथा, पित्तपापडा, धमासा, गिलोय और सोठ समान भाग लेकर क्वाथ बनावें। यह क्वाथ कफ, वायु, अरुचि, छर्दि, दाह, शोष और ज्वर का नाश करता है।

मुस्तादि क्वाथ (१६)—नागरमोथा, अतीस, सोठ, इन्द्र जौ, खस और पटोल पत्र समान भाग लेकर क्वाथ बनावें। यह क्वाथ समस्त प्रकार के अतिसार, हृल्लास (जीमचलाना), समस्त प्रकार के शोथ और ज्वर को नष्ट करता हैं।

मुस्तादि क्वाथ. (१७)—नागरमोथा, आमला और हल्दी का क्वाथ बनाकर ठण्डा करके उसमे शहद मिलाकर कुछ दिनो तक निरन्तर सेवन करने से कफ युक्त वातरक्त नष्ट होता है।

मुस्तादि क्वाथ (१८)—नागरमोथा, धनिया, चिरा-यता, गिलोय, नीम की छाल, कुटकी और पटोल समान लेकर क्वाथ बनावे। यह क्वाथ प्रबल वात पित्त ज्वर को नष्ट करता है।

मुस्तादिक्वाथ (१९)—नागर मोथा, नीम की छाल और पटोल का क्वाथ पीने से अथवा आमला, पटोल और मूग के क्वाथ मे घी डालकर पीने से हर प्रकार का विसर्प नष्ट होता है।

मुस्तादिक्वाथ (२०)—नागरमोथा, मूषापर्णी (चूहा-कन्नी) हर्र, बहेडा, आमला, सहजने की छाल और देव-दारु समान भाग लेकर क्वाथ बनावें।

इसमे पीपल और वायविडग का चूर्ण मिलाकर पीने से दोनो मार्गो (मुख और गुदा) की ओर जाने वाले कृमि और उनसे उत्पन्न होने वाले रोग नष्ट हो जाते है।

मुस्तादिक्वाथ. (२१)—(१) नागरमोथा, इन्दजौ, चिरायता ओर रसौत।

(२) दारुहल्दी, धमासा, बेलगिरी, सुगधवाला और लाल चन्दन।

(३) सुगधवाला, लालचन्दन, नागरमोथा, चिरायता और धमासा।

(४) खस, लाल चदन, लोध, सोठ और नीलोत्पल।

(५) पाठा, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, इन्द्र जौ।

(६) इन्द्रजौ, कुडे की छाल, सोठ, नागरमोथा, बच।

उपरोक्त ६ प्रयोगो मे से किसी का भी क्वाथ बना कर पिलाने से पित्तातिसार नष्ट होता है।

मुस्तादिक्वाथ (२२)—नागरमोथा, धमासा और सोठ समान भाग लेकर क्वाथ बनावे। इसे पीने व पथ्य पालन करने से तीव्र कफज ज्वर नष्ट होता है।

मुस्तादिक्वाथः (२३)—नागरमोथा, मुनक्का और हल्दी का क्वाथ पीने से अथवा त्रिफला या गिलोय के

क्वाथ मे शहद मिलाकर पीने मे कफ प्रधान वातरक्त का नाश होता है।

मुस्तादिक्वाथ (२४)—नागरमोथा, इन्द्रजी, मुलैठी और मैनफल के बीज समान भाग लेकर क्वाथ बनावे ।

इसे शीतल करके तथा शहद और दूध मिलाकर पीने से वमन होकर रक्तपित्त नष्ट हो जाता है यह प्रयोग अधोगत रक्तपित्त मे उपयोगी है।

मुस्तादिक्वाथ (२५)—नागरमोथा, अतीस,—दारु-हल्दी, वच और सोंठ समान भाग लेकर क्वाथ बनावे।

इसमे शहद मिलाकर पीने से पित्त वातज अतिसार नष्ट होता है।

मुस्तादि क्वाथ (२६)—नागर मोथा, आमला, गिलोय, सोंठ और कटेरी समान भाग लेकर क्वाथ बनावे इसमे पीपल का चूर्ण और शहद मिलाकर पीने से विषम ज्वर नष्ट होता है।

मुस्तादि क्वाथ (२७)—नागर मोथा, पाठा और हर्र का क्वाथ पीने से अथवा दूध के साथ त्रिफला का चूर्ण सेवन करने से चातुर्थिक ज्वर नष्ट होता है।

मुस्तादि गण—नागर मोथा, हल्दी, दारु हलदी, हर्र, आमला, बहेडा, कूठ, चोक, सफेद वच, पाठा, कुटकी, मकोय, अतीस, छोटी इलायची, भिलावा, और चित्रक इन औषधियो के समूह को मुस्तादि गण कहते है। यह मुस्तादिगण कफ नाशक, योनि और दुग्ध शोधक तथा पाचक है।

मुस्तादि पाचनकषाय—नागरमोथा और पित्त पापडे का काढा अथवा शीत कषाय पीने से आम ज्वर नष्ट होता है। यह क्वाथ दोषो को पकाता है।

मुस्तादि प्रमथ्या—नागर मोथा और इन्द्र जौ,२।।-२।। तोला लेकर दोनो को पानी मे भिगोकर पीस ले और फिर ४० तोले पानी मे पकावे। जब दस तोले पानी शेष रहे तो छान लें।इसे ठण्डा करके शहद मिलाकर पीने से रक्तातिसार नष्ट होता है।

मुस्तादि षडग पानीयम (१)—नागर मोथा, पित्त-पापडा, सुगन्ध वाला, सौंफ, खस और लाल चदन समान भाग मिश्रित १। तोला लेकर दो सेर पानी मे पकावे और १ सेर पानी रहने पर छान लें।

इस पानी को ठण्डा करके रक्खें और आवश्यकतानुसार थोडा थोडा रोगी को पिलाते रहे।

इसके पीने से तृष्णा, दाह और ज्वर का नाश होता है।

मुस्तादि षडग पानीयम् (२)—नागर मोथा, पित्त पापडा, खश, लाल चन्दन, नेत्र वाला और सोंठ बराबर बराबर लेकर सबको अधकुटा कर लें और इसमे से १ तोले चूर्ण को २ सेर पानी मे पकावें जब १ सेर पानी शेष रह जाय तो छान ले।

इसे ठडा करके रखें और आवश्यकतानुसार थोडा-थोडा रोगी को पिलाते रहे। यह पानी पिपासा और ज्वर को नष्ट करता है।

मुस्तादि हिम—नागर मोथा, पित्त पापडा, खश, सुगन्ध वाला और पद्माक समान भाग मिश्रित २ तोले लेकर सबको अधकुटा करके रात को ११ तोले पानी मे मिट्टी के बरतन मे भिगो दें और प्रात काल मलकर छान ले। इसे पिलाने से बालको की दाह, वमन और ज्वर का नाश होता है।

मुस्ताद्यष्टादशाग क्वाथ—नागर मोथा, पित्तपापडा खस, देवदारु, सोंठ, हर्र, बहेडा, आमला, धमासा, नील का पचाग, कमीला, निसोत, चिरायता, पाठा, सुगन्ध-वाला, कुटकी, मुलैठी और पीपला मूल। सब चीजें समान भाग लेकर क्वाथ बनावें।

इसे "मुस्तादि गण" अथवा मुस्तादि "अष्टादशाङ्ग क्वाथ" भी कहते है।

यह पित्त प्रधान सन्निपात, मन्यास्तम्भक, उर क्षत, उरोग्रह, पार्श्वग्रह और शिरोग्रह मे हितकर है।

मुस्तकादि चूर्णम्—नागर मोथा, अतीस, धमासा, पीपल और काकडसिगी समान भाग लेकर चूर्ण बनावें।

इसे शहद मे मिलाकर चटाने से बालको की पाच प्रकार की खासी नष्ट होती है।

मुस्तादि चूर्णम—नागर मोथा, वासा, हर्र, बहेडा, आमला- देवदारु, भारगी, कटेरी का पचाग, रास्ना, अतीस, मूर्वा (अथवा मुलैठी) और तुलसी, के पत्ते

समान भाग लेकर चूर्ण बनावें ।

इसे उष्ण जल के साथ सेवन करने से खासी नष्ट होती है । मात्रा २–३ माशे ।

मुस्तादि चूर्णम् (२)—नागर मोथा, अतीस, बेलगिरी और इन्द्र जौ समान भाग लेकर बारीक चूर्ण बनावें इसे शहद के साथ सेवन करने से सर्व दोषज ग्रहणी नष्ट होती है । मात्रा–३–४ माशे ।

मुस्तादि चूर्ण (३)—नागर मोथा, वच, कुटकी, हर्र और भिलावा समान भाग लेकर चूर्ण बनावें ।

इसे गो मूत्र के साथ सेवन करने से कफज शूल नष्ट होता है । यह चूर्ण आम को भी पचाता है ।

मुस्ताद्यं चूर्णम्—नागर मोथा, बासे की जडकी छाल देवदारु, सिरस की छाल, काकजघा, वाय विडग, सोठ, मिर्च, पीपल, पद्माक, भारगी, हर्र, बहेडा, आमला समान भाग लेकर चूर्ण बनावें ।

इसे शहद के साथ चाटने से पाच प्रकार की खासी नष्ट होती है । मात्रा–३–४ माशे ।

मुस्ता योग—नागर मोथे की जड को पीसकर थोडे से घी मे मिलाकर चावलो के पानी के साथ पीने से अति दारुण कृत्रिम विष नष्ट हो जाता है ।

मुस्तकाद्य मोदक—त्रिकटु, त्रिफला, चित्रक, लौंग, श्वेत जीरा, अजवाइन, अजमोद, सौंफ, पान, सोया, शतावरी, धनिया, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेसर, वसलोचन, मेथी, जायफल, प्रत्येक १। तोला और मोथा ६० तोले तथा खाड १२० तोले लेकर कूटने योग्य चीजो का चूर्ण बनाकर उसे खाडकी चाशनी मे मिलाकर मोदक बनावें ।

ये मोदक ग्रहणी, अतिसार, मदाग्नि, अरुचि, अजीर्ण, आमदोष, विसूचिका, वली पलित, दुर्बलता तथा कृशता को दूर करते हैं । तथा देह को पुष्ट और बल वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि करते हैं ।

मुस्तादि वटी—नागर मोथा, एलवालुक, मुलैठी, कूठ धनिया और छोटी इलायची समान भाग लेकर कूट छान कर पानी के साथ गोलिया बना लें । इन्हे मुख मे रखने से मुख की स्वाभाविक दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है फिर मद्य और लहसन आदि की गन्ध की तो बात ही क्या है?

मुस्ताद्यो लेह—नागर मोथा, सिंघाडा, मुनक्का, धान की खील, खजूर और गेरु माटी समान भाग लेकर कूटने योग्य चीजो को कूट छान कर चूर्ण बनावें और बाकी को पत्थर पर पीस लें फिर सबको एकत्र मिलाकर शहद के साथ सेवन करें ।

यह लेह एक दोषज, द्विदोषज और सन्निपातज रक्त पित्त को नष्ट करता है ।

मुस्तकादि तैलम्—नागर मोथा, माल कगनी, पाठा, कायफल, कुटकी, वच, सरसो, पीपला मूल, पीपल, सैंधानमक, चित्रक, नीलाथोथा, करज बीज, सैंधा नमक और देवदारु समान भाग लेकर सबको अधकुटा करके ८ गुने पानी मे पकावें । जब चौथा भाग शेष रह जाय तो छान लें ।

इस क्वाथ का कवल धारण करने से अथवा इन्ही औषधियो से सिद्ध तेल की मालिश करने से शिरो रोग (प्रतिश्याय) नष्ट होता है ।

क्वाथार्थ—प्रत्येक औषधि १२ तोले, जल ४८ सेर, शेष १२ सेर ।

कल्कार्थ—प्रत्येक औषधि दो तोले । तेल तीन सेर ।

मुस्तकारिष्ट—१२½ सेर नागरमोथे को १२८ सेर पानी मे पकावें और जब ३२ सेर पानी शेष रह जाय तो उसे छानकर उसमे १८॥। सेर गुड, १ सेर धाय के फूलो का चूर्ण तथा १०–१० तोले अजवायन, सोठ, कालीमिर्च लौंग, मेथी, चीतामूल और जीरे का चूर्ण मिलाकर सब को चिकने मटके मे भरकर उसका मुख बन्द कर दें और फिर एक मास पश्चात निकाल कर छान लें ।

इसे सेवन करने से अजीर्ण, अग्निमाद्य, भयकर विसूचिका और अनेक प्रकार के ग्रहणी रोग अवश्य नष्ट हो जाते है ।

मुस्तादि गुटी—नागरमोथा, मोचरस, लोध, धाय के फूल, बेलगिरी, इन्द्र जौ, अफीम, शुद्ध पारा और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर प्रथम पारे गधक की कज्जली बनावें और फिर उसमे अफीम तथा अन्य औषधियो का चूर्ण मिलाकर अच्छी तरह घोटकर रक्खें ।

इसे ३ रत्ती मात्रानुसार गुड युक्त तक्र के साथ सेवन करने से अतिसार, प्रवाहिका और सग्रहणी का नाश होता है।

मुस्तादि चूर्णम् (१)—नागरमोथा, कुडे की छाल, पाठा, चीतामूल, सोठ, कालीमिर्च, पीपल, अतीस, शुद्ध बच्छनाग (मीठाविष) धाय के फूल, मोचरस और आम की गुठली की गिरी समान भाग लेकर कूट छानकर चूर्ण बनावें।

इसके सेवन से सग्रहणी रोग नष्ट होता है। मात्रा—१॥ माशा।

मुस्तादि चूर्णम् (२)—नागरमोथा १ भाग, गिलोय दो भाग, चीतामूल तीन भाग- मुलैठी चार, पीपल पाच भाग, वायविडग छ भाग, सोठ सात भाग, हर्र आठ भाग, बहेडा नौ भाग, आमला दस भाग और लोह भस्म पचपन भाग लेकर सबको एकत्र खरल करें।

इसे शहद मे मिलाकर सेवन करने से पाण्डु रोग नष्ट होता है। मात्रा—२ रत्ती।

मुस्ताद्य चूर्णम्—नागर मोथा, मूषाकन्नी, देवदारु, इद्रायण की जड, सभालुपत्र, आक की जट, हल्दी, सहंजने की छाल, ढाक के बीज, शुद्ध गधक, वायविडग, वच अरणी मूल की छाल, काला नमक और हींग समान भाग लेकर चूर्ण बनावें।

इसके सेवन से कृमिरोग नष्ट होता है।

—भा भै. र

मोथा [भद्र] (Cyperus Rotundus)

यह कर्पूरादि वर्ग और मुस्तादि कुल [Cypraceae] की क्षुद्र वनस्पति होती है। नागरमोथा जहा सूखी जमीनो मे पैदा होता है वहा यह भद्र मोथा सजल जमीन मे या जल के किनारे पैदा होता है। क्षुप तृणाकार काण्ड तनु, सरल, काण्ड के शिखर पर लम्बे तनु, चक्र के आराओ की तरह जुडे हुवे पत्र। इसकी डडी तिकोनी होती है और यह १ से २ फुट तक ऊची होती है। डडी के सिरे पर फूल का गुच्छा आता है, उसके ऊपर हरे रग के छोटे छोटे फूल आते है। इन फूलो के इधर उधर लबे लबे पत्ते भी होते हैं। इसकी जड़ें गोल बाहर से काली कठोर और भीतर से सफेद सुगन्धित होती हैं। अथवा सहज लाल होती हैं। यह कन्द भूमि मे फैलता हुआ तृण रूप काण्ड देता जाता है। यही जडे औषधि प्रयोग के काम मे आती है और इनको ही भद्र मोथा या यही भद्रभोथे के नाम से बाजार मे मिलती हैं। स्वाद मे तिक्त। सग्रह काल आश्विन-कार्तिक-प्रयोज्य अग-मूल।

उत्पत्ति स्थान—भारत मे सर्वत्र, यह ६००० फीट की ऊचाई पर जमीन, बगीचा और सडक के किनारे खुली जगहो मे, पानी के स्थानो मे, नदियो, तालाबो के जल भरे हुए गड्ढो मे पाया जाता है।

नाम—

स०—मुस्ता, मेघ, वारिद, भद्रमुस्त, मुस्तक, गागेयम, कुरुबिल्व, सुगधि ग्रन्थिला आदि। हि०—मुथा, मोथा, भद्रमोथा। म०—मोथा, बिम्बल। ब०—मोथा, । मूथ। बवई—वडी कमोठ, मुस्ता। प०—डीला। गु०—मोथ, मोथ। ता—कारा, कोरइ,। ते—भद्रमुस्त, तुङ्ग मुस्ते। लै०—सायपरस रोटुण्डस् (Cyperus rotundus Linn)।

रासायनिक संगठन——

एक सुगन्धित तेल, वसा, शर्करा, निर्यास, कार्बोहाइड्रेटस, मासवर्धक पदार्थ (Albuminous matter) पिष्ट, ततु और भस्म आदि तथा अगत. एक क्षारोद प्रभृतिद्रव्य होते हैं।

गुण धर्म और प्रयोग——

भद्रमोथा—चरपरा, शीतल, ग्राही, कडवा, दीपन, पाचन, कसैला और कफ-पित्त, रुधिर विकार, तृषा, ज्वरातिसार, अरुचि तथा कृमि नाशक है। जो मोथा अनूप देश मे उत्पन्न होता है वह उत्तम है। —भा० प्र०

मोथा—तिक्त, कषाय, दीपन, शीतल, कफ रक्त, के

विकारों का नाशक, पित्त, ज्वरातिसार नाशक, तृषा और कृमिघ्न है।

जलज—तिक्त, कटु, कषाय, कान्तिप्रद और शीतल है मेध्य वातान्व्य, विष, कण्डू, कुष्ठ तथा विष नाशक है।

—ध० नि०

भद्रमोथा—कषाय, तिक्त, शीत, पाचक, पित्तज्वर, कफ नाशक, मलरोधक है। —रा० नि०

मोथा—तिक्त, कटु, वातघ्न, ग्राही और दीपन है।

—राजवल्लभ

मोथा—सग्राहक, दीपन और पाचन है। —चरक

भद्रमोथा—वमन, गुदाद्वार की वेदना, मृगी और विषर्प रोग मे लाभदायक होता है।

इस वनस्पति मे मूत्रल, स्वेदल, सकोचक, व्रण रोपक रुचिवर्धक और गर्भाशय को उत्तेजित करने के धर्म विद्यमान रहते हैं। ज्वर मे इसको देने मे यह तीन प्रकार के असर पैदा करता है पसीना लाती है, मूत्र अधिक पैदा करती है और शरीर को उत्तेजना देती है। पित्त ज्वर और अतिसार युक्त ज्वर मे यह विशेष उपयोगी है।

अजीर्ण, वमन, दस्त इत्यादि आमशय आतों से सम्बन्धित रोगो मे अपने सकोचक और रुचिवर्द्धक गुणो की वजह से यह औषधि उपयोग मे ली जाती है। दाद, खुजली और बवासीर के ऊपर इसका लेप लाभदायक होता है।

यूनानी मत से—प्रकृति दूसरे दर्जे मे गरम और खुश्क। यह वनस्पति हृद्य, मेध्य, नाड़ी बलदायक, दीपन, वातानुलोमन, मुखदौर्गन्ध्यहर, मूत्रल, ऋतुस्राव नियामक, स्वेदल, कृमिनाशक और घाव को भरने वाली होती है। फोडे, फुसी, जख्म, ज्वर, अजीर्ण और पेशाब सबधी शिकायतो मे भी यह उपयोगी होता है।

इसकी जड एक संकोचक और पसीना लाने वाले द्रव्य की तरह आमतौर मे उपयोग मे ली जाती है। अपने मूत्रल और उत्तेजक तत्वो की वजह मे भी यह वनस्पति प्रसिद्ध है। पेट की अव्यवस्था और आतो के प्रदाह मे भी यह बहुत उत्तम लाभ पहुचाती है। इसकी जड का कन्द अदरक के साथ कुचलकर शहद मे मिलाकर दस रत्ती की मात्रा मे अतिसार के रोगियो को दिया जाता है। एक कृमिनाशक द्रव्य की तरह भी इसका उपयोग होता है।

इसकी गठानदार जड को पीसकर दूध बढाने के लिए स्तनो पर लेप करते है। इसको अधिकतया मस्तिष्क दौर्बल्य, नाडी दौर्बल्य, स्मृति दौर्बल्य तथा अन्यान्य मस्तिष्क (शिर) और वातरोगो मे उपयोग करते हैं। इसे मदाग्नि मे खिलाते है तथा मुख और नासिका की दुर्गन्ध दूर करके मुख को सुगन्धित बनाने के लिए भी इसका उपयोग करते हैं। अहितकर—कठ और फेफडो के लिए। निवारण—शर्करा, सौफ और अनीसून। प्रतिनिधि—मुरमक्की। मात्रा—१ माशा से ३ माशा तक। चीनी लोगो के मतानुसार इसकी छोटी गठान फेफडे और यकृत के उपद्रव पर विशेष रूप से क्रिया करती है। यह पौष्टिक उत्तेजक और अग्निवर्धक होती है। इस वनस्पति की गठानो मे एक उड़नशील तेल पाया जाता है।

—व० च०

नव्यमतानुसार—स्वेदल और सग्राही रूप मे मोथा काम मे आता है। इसके उष्ण और मूत्रल गुण भी स्वीकार किये गये है। मोथा कृमिघ्न है। आमाशय और आन्त्र विकृति मे इसका अच्छा उपयोग होता है।

—टेइलर्स मेडिकल टोपीग्राफी आफ ढाका

भद्रमोथा का प्रयोग—ज्वर, अतिसार, प्रवाहिका, तृष्णा, कृमि, रक्तपित्त, विसर्प, अजीर्ण, मदात्यय, छर्दि आदि मे होता है। यह ग्राही, आमपाचक, अग्निदीपक और तृष्णाघ्न है। इसे प्रात तद्रोग नाशक अन्य द्रव्यो, यथा गुडूची [ज्वरे], अतिविषा-ह्रीवेर [अतिसारे] आदि से मिलाकर चूर्ण, क्वाथ, फाण्टादि मे व्यवहार किया जाता है। —के नि.

प्रयोग—

अतिसारे—भद्रमोथा, वाला आदि की विलेपी उत्तम है। —च चि

मदात्यय की तृषा मे—मोथे का क्वाथ देना अथवा मोथा डालकर उबालकर ठण्डा किया हुआ जल पिलावें। —च चि १२

पित्तकफज कास मे—मोथा और कालीमिर्च का क्वाथ खासी मे पिलावे ।

आमातिसार मे—तीन गुने जल मे और उतने ही दूध मे २० मोथा के टुकडो का चूर्ण उबालना, उबलते हुये जब केवल दूध मात्र रह जाय तब छान ठण्डा होने पर पिलावे । इससे आमातिसार मिटता है ।

पक्वातिसार—अकेला मोथे का काढा शहद मिलाकर पिलावे । यह प्रत्येक प्रकार के अतिसार मे भी लाभदायक है ।

रक्त अतिसार मे—मोथा का चूर्ण ३ माशे की मात्रा मे मधु के साथ दिन मे ३ बार चटाने से रक्तातिसार मिटता है ।

मूत्रकृच्छ्र मे—दूध की लस्सी के साथ मोथे के चूर्ण की फकी देने से मूत्र वृद्धि होती है ।

मासिक धर्म की शुद्धि—मोथा और गुड मिलाकर गोली बना तिल के क्वाथ के साथ देने से स्त्रियो का मासिक धर्म शुद्ध होने लगता है ।

ज्वर—मोथा और गिलोय का क्वाथ बनाकर पिलाने से वात पित्त ज्वर छूटता है । मोथा और पित्तपापडे का क्वाथ या फाट बनाकर पिलाने से शीत ज्वर छूठता है और पाचन शक्ति बढती है ।

विशिष्ट योग—

मुस्तादि क्वाथ—मोथा, नीम की अन्तर छाल और पटोल इन तीनो औषधियो को समान भाग लेकर जौकुट कर लेना चाहिए । इसमे से १ तोला चूर्ण लेकर उसको पाव भर पानी मे औटाना चाहिए । जब छटाक भर पानी शेष रह जाय तब छानकर कुछ शहद मिलाकर पिलाना चाहिए । इस क्वाथ को कुछ दिन तक पिलाने से खाज, खुजली, रतवा इत्यादि सब प्रकार के रक्त रोग मिटते है ।

घनादि चूर्ण—मोथा, पीपल, अतीस और काकड़ासिंगी का समान भाग चूर्ण घनादि चूर्ण कहलाता है । इस चूर्ण को ४ रत्ती की मात्रा मे देने से बालको के ज्वर अतिसार, खासी, श्वास,वमन तथा दूसरे अनेक रोगो मे लाभ होता है । —व च

मोदिर कान्नी (Hugonia Mystax)

यह अतस्यादि कुल (Linaceae) की एक फैलने वाली और घने पत्तो वाली रुयेदार झाडी होती है । इसके फूल पीले रग के होते है । और औषधि प्रयोग मे इसकी जड काम मे आती है ।

उत्पत्ति स्थान—यह वनस्पति कोकण, ट्रावनकोर और लका मे बहुत पैदा होती है ।

नाम—

ता०—मोदिर कान्नी, अगोरी, कोदी विसई । कन्नड—मोदिरकान्नी । ते०—गटरिता, पिसागी । अ०—Climbing Felex (क्लाइम्बिग फलेक्स) ले०—ह्यूगोनिया मिसटैक्स (Hugonia mystox Linn) ।

गुण धर्म व प्रयोग—

इसकी जड को कुचलकर लेप की तरह सूजन पर लगाने से सूजन बिखर जाती है । इसकी जड का चूर्ण कृमि नाशक और ज्वर को दूर करने वाला माना जाता है ।

मोरंग इलायची (Amomum Aromaticum)

यह शुण्ठिकुल (Zingiberaceae) की एक वनस्पति होती है । इनके फलो को मोरग इलायची कहते है इसके बीजो का स्वाद बडी इलायजी के बीजो से मिलता हुआ रहता है ।

उत्पत्तिस्थान—इसके वृक्ष नेपाल, पूर्वी हिमालय, सिलहट, खासिया पहाड, उत्तरी बगाल आदि स्थानो मे पैदा होते है ।

नाम–

हि०–मोरग इलायची। ब०–मोरग इलायची। म०–वेलडोडी। ले०–एमोमम एरोमेटिकम (Amomum aromaticum Roxb)।

गुण धर्म व प्रयोग–

इसके बीज सकोचक और बलकारक होते है। इनके चूर्ण का मजन करने से दात दृढ और चमकीले रहते है। इसके रासायनिक तत्व बडी इलायची के रासायनिक तत्वो से मिलते हुए होते हैं। चीनी लोग इसके बीजो का मसाले की तरह उपयोग करते है। अपचन तथा जुकाम की बीमारी मे भी वे उपयोग करते है।

मोरपंखी (Actinopteris Dichotoma)

यह गुडूच्यादि वर्ग और हसराजादि कुल (Polipodiaceae) की एक तृण जाति की छोटी वनस्पति होती है। इसका पौधा ६ इच ऊचा होता हे। इसकी जड मे से अनेक शाखाये निकलती है और इन शाखाओ के सिरे पर मोर के पख के समान तुर्रा निकलता हे। इसी से इसको मोरपखी कहते है। इसकी शाखाओ का रग हरा होता है और इसके सिर पर निकलने वाले मोरपख का रग भी हरा होता हे। मगर पुराना पडने पर इसका रग नीला होजाता हे। अनुभवी वैद्य इसी (Actinopteris dichotoma) नामक वनस्पति को असली मोरपखी मानते हे।

पा दड गग सन्निविष्ट एव गुच्छबद्ध। पत्र लम्बा और दड सलग्न। पत्राश चौडा और बहुत भागो मे विभक्त होता है। कई एक पत्रो के समान विस्तृत। बीजवाही पत्राश बीजहीन पत्रो की अपेक्षा किंचित बडे होते है।

—भा० व० तृ० बगला

उत्पत्ति स्थान—

भारत मे सर्वत्र, ३००० फीट से नीचे शुष्क और पर्वतमय स्थान मे, पुराने घरो, किलो के खंडहरो पर पारस्य एव काबुल, खन्दाला, महाबालेश्वर रोड के कातराज घाट एव बम्बई के विक्टोरिया उद्यान, लका द्वीप मे पाई जाती है।

नाम—

म०–मयूरशिखा। हि०—मोरशिखा, मोरपखी।

मयूर पंखी (मयूरशिखा नं-२)
ACTINIOPTERIS DICHOTOMA, BEDD.
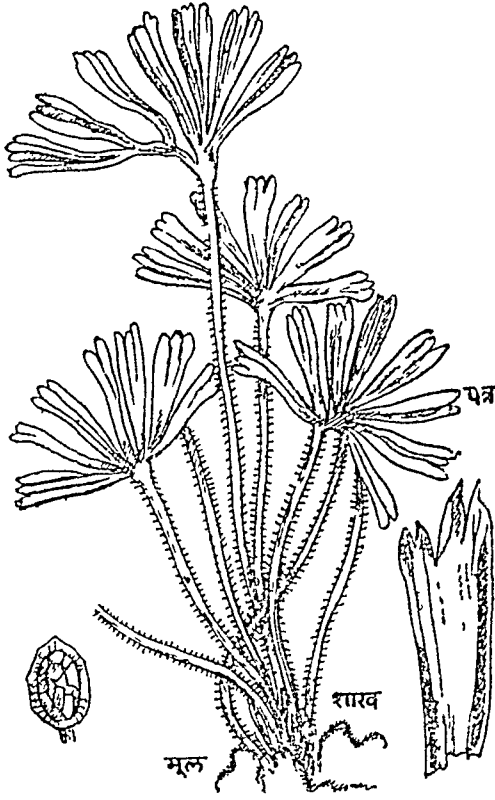
म०—मयूर शिखा। गु०—भुईतार, मोरशिखा। ब०—मोरपखी, मयूर पखी। राज०—मोरपगी, मोरपखी। अ०—Peacock's Tail (पीकाक्स टेल) ले०—एक्टिनोपेटेरिस डिचोटोमा।

व्यवहार्य अङ्ग—पचाग।

मात्रा—¼ तोला से ½ तोला तक।

गुण, धर्म और प्रभाव—

जगलनी जडी बूटी के लेखक वैद्य शास्त्री शामलदास गौर का कथन है कि मोरपखी एक दिव्य महौषधि है। अनुपान भेद से इसका उचित उपयोग करने पर यह अनेक रोगो को दूर करती है। बालको के सूखा रोग पर जिसको रिकेट कहते है, यह औषधि बहुत अच्छा काम करती है। इसके पचाङ्ग के चूर्ण को २ रत्ती से लेकर ४ रत्ती की मात्रा मे शहद अथवा दूध के साथ प्रतिदिन देने से थोडे ही दिनो मे आश्चर्यजनक लाभ दिखलाई देने लगता है। कुछ लोग इसके चूर्ण के बदले इसके पचाग की राख करके उस राख को इसी मात्रा मे शहद के साथ देते हैं और उससे भी ऐसा ही लाभ होता हुआ दिखलाई देता है।

जिन स्त्रियो की सन्तान न होती हो उनका वन्ध्यत्व दूर करने मे भी यह औषधि सफल समझी जाती है। इसके बारे मे लक्ष्मणा नामक प्रसिद्ध वनस्पति की यह प्रतिनिधि मानी जाती है। लेकिन लक्ष्मणा का हर स्थान पर उपलब्ध होना कठिन है और यह वनस्पति हर स्थान पर मिल सकती है। वन्ध्यत्व दूर करने के लिये इस वनस्पति का प्रयोग इस प्रकार किया जाता है—मासिकधर्म के चतुर्थ दिन मे जब स्त्री स्नान करके शुद्ध हो जाय तब मोरपखी का चूर्ण ६ माशे लेकर गाय के घी मे मिलाकर सूर्य के सन्मुख खडी रहकर चाटले। अथवा मोरपखी, शिवलिंगी और नागकेशर इन तीन चीजो को समान भाग लेकर चूर्ण बनाकर गाय के घी मे उस चूर्ण को घोटकर ६-६ माशे वजन की गोलिया बनाले और मासिक धर्म से शुद्ध होने पर प्रतिदिन १ गोली दूध मे मिलाकर सूर्य के सामने खडी होकर पीजावे। इन दोनो योगो मे से कोई भी योग ७ दिन तक लगातार प्रतिदिन सवेरे सेवन करना चाहिये और पथ्य मे सिर्फ दूध और भात लेना चाहिये। जब तक यह औषधि चलती रहे तब तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये और ७ दिन के पश्चात् औषधि खतम होने पर पुरुष के साथ सहवास करना चाहिये। इस प्रकार जब तक गर्भ न रहे तब तक हर महीने ७ दिन तक यह प्रयोग करना चाहिये। कुछ ही महिनो मे इस प्रयोग से गर्भाशय की शुद्धि होकर स्त्री गर्भ धारण कर लेती है।

बालको की खासी और हूपिंग कफ पर भी यह वनस्पति लाभ पहुचाती है। इसको छाया मे सुखाकर पीस कर १ से २ रत्ती की मात्रा मे शहद के साथ बालको को चटाने से हर प्रकार की खासी मे लाभ होता है।

प्रयोग—

अतिसार पर—अतिसार के ऊपर भी मोरपखी का चूर्ण १ से २ माशा की मात्रा मे लेने से बहुत लाभ होता है।

रक्त प्रदर पर—अत्यार्त्तव मे भी मोरपखी को घोट

छान कर पीने से रक्त रुक जाता है। मात्रा ½ से १ तो०

पारद भस्म—आयुर्वेद मे पारद को बाधने वाली जिन ६२ दिव्य औषधियो का उल्लेख किया गया है उनमे मोरपंखी भी एक है। इसके योगोंने पारद को किस प्रकार बाधा जाता है और किस प्रकार उसकी भस्म बनायी जाती है। इस सब का एक योग जगलनी जडी बूटी के आधार से नीचे दिया जाता है—

देशी नौसादर पाच तोला और शुद्ध नीला थोथा ५ तोला लेकर दोनो को अलग अलग पीस लेना चाहिये। फिर लोहे की कडाही मे २॥ तोला नौसादर बिछाकर, उसी के ऊपर २॥ तोला पिसा हुआ नीला थोथा बिछा देना चाहिए। उस नीले थोथे के ऊपर तीन तोला पारा रखकर उस पारे पर शेष बचा हुआ ढाई तोला नीला थोया बिछा देना चाहिये और उस नीले थोथे पर बाकी का ढाई तोला नौसादर दबाकर धीरे से उस कडाही मे एक सेर पानी भरना चाहिये। यह ख्याल रखना चाहिये कि पानी भरते समय व्यवस्थापूर्वक रखी हुई ये औष-धिया बिखर न जाये। उसके पश्चात् उस कडाही को हल्की आंच पर चढा देना चाहिये। जब वह पानी जल जाय तब उस कडाही मे फिर एक सेर पानी धीरे से भर देना चाहिये। जब वह पानी भी जल जाय तब उस कड़ाही को उतार कर ठण्डी कर लेना चाहिए। उसके पश्चात् उस कडाही मे साफ पानी डालकर हाथ से खूब मसलना चाहिये।

मसलते मसलते जब पानी मैला होकर काला पड जाय तब उस पानी को नितार कर अलग कर देना चाहिये और उसकी जगह फिर नया पानी उस कडाही मे डाल कर फिर मसलना चाहिये। जब वह भी काला पड जाय तब उसको भी फेंक देना चाहिये। फिर नया पानी लेकर धोना चाहिये। इस प्रकार जब धोते धोते पानी का मैला होना बन्द होजाय और वह पहले जैसा स्वच्छ रहे तब उसमे से पारे को निकालकर खरल मे डालकर सत्यानाशी के रस मे १ घटे तक घोटकर शुद्ध पानी से धो डालना चाहिये। सत्यानाशी के रस की यह क्रिया ७ बार करनी चाहिये। इतना करने के पश्चात् वह पारा टिकडी बनने की स्थिति मे आ जाता है उसकी टिकडी बनाकर एक सप्ताह तक छाया मे सुखाना चाहिये। फिर ५ तोला हरी मोरपखी की लुगदी मे इस टिकडी को रखकर उसके ऊपर ७ बार कपड़ मिट्टी कर लेना चाहिये जब यह कपड मिट्टी सूख जाय। तब ६ सेर बकरियो की मेगनिया लेकर उनको सुलगाना चाहिए। जब उन सबके अगारे पडजाय और उनमे धुआ निकलना बन्द हो जाय तब उस कपड मिट्टी किये हुये गोले को उन मेगनियो की आग मे इस प्रकार डाल देना चाहिये कि वह गोला बराबर आग के बीच में रहे। तीसरे दिन जब अग्नि बिल्कुल ठण्डी हो जाय तब उस गोले को धीरे से निकालकर सावधानी के साथ उस कपडमिट्टी को निकालना चाहिये और उसके अन्दर से बताशे के समान फूली हुई निर्धूम पारद भस्म को निकालकर खरल करके साफ और सुन्दर शीशी मे भर लेना चाहिये। पारे का जितना वजन होता है ठीक उतने ही वजन मे यह भस्म प्राप्त होती है। इसको एक चावल भर की मात्रा मे मक्खन के साथ प्रतिदिन चाट लेना चाहिए। यह भस्म तत्काल फलदायक, रसायन और बाजीकर होती है। वृद्ध लोग इसका सेवन करके जवानी का आनन्द उठा सकते है। धातुक्षीणता स्वप्नदोष इत्यादि रोगो को नष्ट करके यह मनुष्य को दीर्घजीवी बनाती है। इस भस्म को सेवन करते समय तेल, खटाई, हीग इत्यादि गरम वस्तुओ का त्याग करना चाहिये।

—ब० च०

मौलसिरी (Mimusops Elengi Linn)

यह पुष्पादिवर्ग मधुकादिकुल (Sopotaceae) का एक बडा सदा हरित पल्लव युक्त, छायादार सुन्दर वृक्ष होता है। वृक्ष ४०–५० फीट ऊचा होता है। इसके तने की छाल बाहर से चिकनी, भूरी और कालास लिये हुये रग की होती है। शाखाए चौतरफा फैली हुई बहुतसी होती है। इसका सिरा ऊचा चढता हुआ होता गोलाई
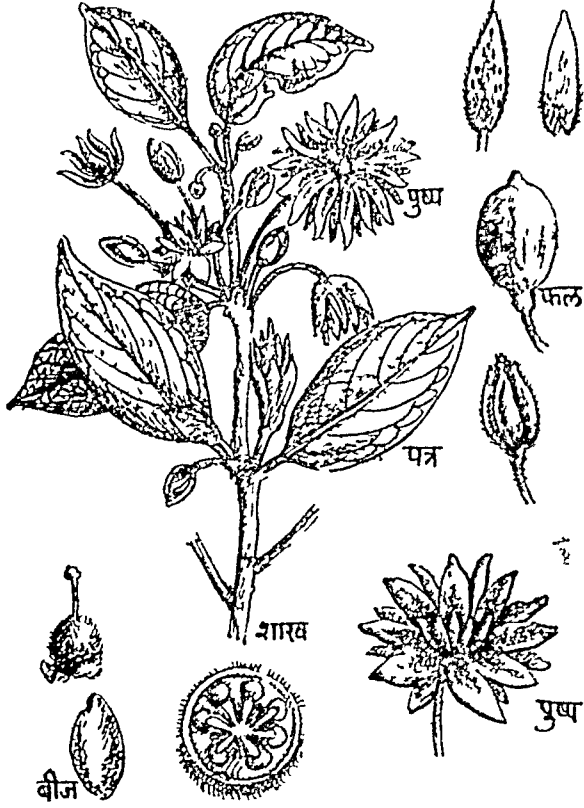
ता है। इससे इसवृक्षका मस्तक का मुकुट एक प्रकार की गोलाई लिये हुए होता है।

पान– आतरे आये हुए होते है। पत्र दण्ड छोटे लम्ब गोल, आगे से तीखे, दोनो ओर से चिकने, चमकते हुए। पान ३ से ४ इञ्च लम्वा, १से १½ इच चौडा, जामुन पत्र के तुल्य लम्बा नोकदार परन्तु किनारा लहरदार होता है। उपपान छोटे। फूल—पुष्पदण्ड पत्रकोण से १सेद निकली हुई सलाका पर गदाकार होते है। फूल—मध्यम कद के, नीचे नमे हुये धोले रङ्ग के छोटे गोल सदली रग के और अत्यन्त रुचिकर सुवास वाले होते है। फूल प्राय गरमी से शरद ऋतु तक फूलते रहते हैं।

मौलसिरी का वृक्ष फल के आधार पर दो प्रकार का माना जाना है। जिस वृक्ष मे फल नही लगते उसे पुरुप मौलसिरी का वृक्ष कहा जाता है और जिस वृक्ष मे फून फल दोनो आते है उसे स्त्री जाति का माना जाता है। पुरुप जाति के वृक्ष मे पुष्प कुछ वडे और नितान्त सफेद रग के होते है। स्त्री जाति के वृक्ष मे पुप कुछ ललाई लिये हुये छोटे होते है। पुष्प से मन्द-मन्द मीठी सुगध आती रहती है। ये सूखने पर भी अविकृत एव सुगवित रहते है। फल—उन्नाव के बरावर, कुछ-कुछ लबोतरा, कच्चा हरा, कपाय और दुग्धवत और वटुल, पक्व सिंदूर वर्ण और कपाय मधुर होता है। इसके अन्दर एक बड़ा बीज होता है जिमका मगज दुर्गंधित और तिक्त होता है।

उपयोगी अग—औपधि प्रयोग मे मौलसिरी वृक्ष की छाल, फल तथा मीगी काम मे आती हैं।

मात्रा—त्वक क्वाथ २ से ५ माशे। बीज चूर्ण १ से २ माशे।

उत्पत्ति स्थान—यह समग्र भारतवर्ष मे विशेपत उत्तर प्रदेश के बगीचो मे विशेप चाव के साथ लगाये जाते है। मलाया द्वीप इसका खास स्थान है। सीलोन और ब्रह्मा अधिवासी भी इसे अपने उद्यानो मे लगाते है।

नाम–

स–वकुल, केशव, भ्रमरानन्द, स्त्री मुखमधु, अनका कठ, मधु पजर। हिन्दी–मौलसरी, वकुल। वं०–वकुल, गाछ। वम्वई–वोरसली, गु०–बोलसरी। म०–वकुल, वरमोली। प०–मोलसरी। ता०–अलागु, केसा रम। ते०–केसारी। उर्दू–मोलसरी। कर्णा०–करक। औतकली–वउडकुडि। द्रा०–धोलसरी। अ–Surinam-medaicar (सुरीनाम मेडलकर)। ले०–Mimusops elengi Linn (माईमुसोप्स उलेंजाइ)।

रासायनिक संगठन–

छाल मे कपाय द्रव्य, कुछ रवड, मोम, रजक द्रव्य, पिष्ट और भस्म, फूल मे एक उत्पत्त तेल; वीज मे एक अनुत्पत् तेल और फल के गूदे मे अधिक प्रमाण मे शर्करा होती हे।

गुणधर्म और प्रयोग–

मोलसिरी –शीतल, हृदय को हितकारी, त्रिदोप-नाशक, मधुर, कषैली, मदाद्य और हर्षदायक है।

—रा० नि०

मौलसिरी—कपैली, अनुष्ण, पाक और रस मे चरपरी भारी तथा कफ, पित्त, विष, श्वित्रकुष्ठ, कृमि और दन्त रोगों को दूर करने वाली है। —भा० प्र०

मौलसिरी के फूल—रुचिकारक, क्षीराद्य, सुगधित, शीतल, मधुर, स्निग्ध, कपैले और मल को सग्रह करने वाले है। —रा० नि०

मौलसिरी के फूल—कपैले, मधुर, शीतल, कफ और रुधिर विकारो को दूर करने वाले है।

—राजवल्लभ

मौलसिरी के फल के गुण —

मौलसिरी के फल—मधुर, कपैले, स्निग्ध, मल को सचितकरने वाले, दातो को स्थिर करने वाले और विशद है। —सु० म०

मौलसिरी के फल—मधुर, कपैले, विशद, शीतल, कफ पित्तनाशक, दातो को स्थिर करने वाले तथा विवध, आध्मान और वात कारक है। —व० नि०

मौलश्री के फल—रूखे, विशद, भारी, कपैले, मधुर, शीतल, लेखन, कफपित्तनाशक, दातों को दृढ करने वाले, मलरोधक तथा विवध, आध्मान और वातकारक है।

—शो० नि०

मौलसिरी के बीज—दातो के हिलने को दूर करते अर्थात् दातो को स्थिरता दायक है। मौलसिरी के बीजो का नास लेने से शिरा रोग का नाश होता है। (शो० नि०)

यूनानी मतानुसार—

प्रकृति—पुष्प गरम और खुश्क तथा फल एव छाल शीत और रूक्ष है। फूल—अपनी मनोरम सुगध के कारण मन प्रमादकर, हृद्य और मेध्य; फूल और त्वक सग्राही, वेदना स्थापन और उपशोषण, विशेपकर योनिस्राव-नाशक एव शुक्रमेहघ्न है।

उपयोग—हृदय और मस्तिष्क के ख्लाम एव बल-वर्धन तथा दिल की धडकन दूर करने के लिए इसके फूलो का अर्क सेवन कराते है। सफेद चन्दन के बुरादे की भूमि देकर खीचा हुआ इसके फूलो का इत्र परम सुग-धित, मन प्रसादकर और बल्य होता है। सूखे या ताजे फूलो का कतिपय मानसिक [दिमागी] शीतल व्याधियो और शीतल शिर शूल मे नस्य देते है। शुक्रप्रमेह और अतिसार बन्द करने के लिए इसके फल अकेले या औष-धियो के साथ खिलाये जाते है। इनके चबाने मे दंतशूल मिट जाता और हिलते हुए दात दृढ होते है।

स्राव योनि स्राव को नष्ट करने के लिये इसकी छाल का चूर्ण बनाकर खिलाते है। मुखपाक, चलदत एव दन्तशूल मे इसके काढे से कुल्ले कराते हैं और फाण्ट सुजाक मे पिलाते है। मौलसिरी के मूल की छाल का चूर्ण, शुक्रमेह, शुक्र तारल्य और योनि स्राव को दूर करने और कटि को शक्ति देने के लिए खिलाते है।

प्रधान कर्म—स्राव और शुक्रस्रावहर है।

अहितकर—आनाहकारक और संग्राही। निवारण—स्नेह और मधु। प्रतिनिधि—बबूल की छाल।

मात्रा—५ माशा से ७ माशे तक। —यू. द्र. वि

प्रयोग—

दात दृढ़ीकरण—मौलसिरी की छाल के काढे से कुल्ला करने से हिलते दात मजबूत होकर दृढ़ हो जाते है। —चक्रदत्त

मौलसिरी की छाल के काढे मे पीपल, शहद और घी मिलाकर कुछ देर तक मुख मे बार बार रखने से दातो का दर्द दूर होता है। —चक्रदत्त

मौलसिरी की दतौन करने से अथवा दातो के नीचे रखकर चबाने मे हिलते हुये दात मजबूत होते हैं।

—शोढल

मौलसिरी की डाडियो (शाखा का अग्रिम भाग जो कि कलिका रूप मे कोमल रहता है) का काढा दूध या जल के साथ मिलाकर प्रतिदिन पीने से बुढापे के भी दात दृढ हो जाते है। नौ जवान और बच्चो के दातो के विषय मे तो कहना ही क्या है? —वैद्य मनोरमा

मौलसिरी की छाल को कुछ दिन लगातार चबाते रहने से हिलते दात वज्र तुल्य मजबूत हो जाते हैं।

अर्क मौलसिरी—मौलसिरी के फूलो का भभके (वैद्य जीवन) द्वारा अर्क निकाला जाता है। अर्क बहुत ही सुगन्धित होता है। यह अर्क शिर.शूल आदि रोगो पर बहुत ही मुफीद होता है। सूखे फलो का चूर्ण बनाकर

नाक से नस्य लेने पर शिर.शूल उसी समय अच्छा हो जाता है।
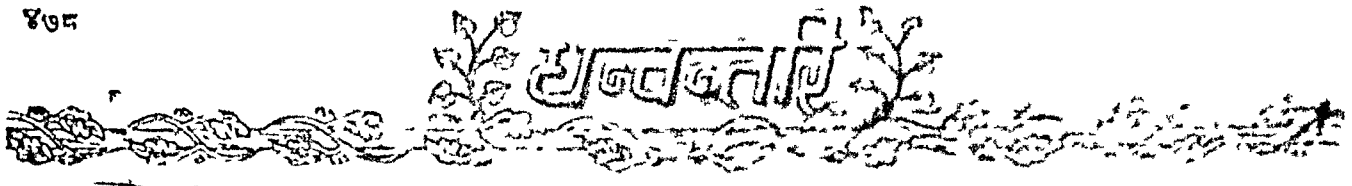
फूल, फल, छाल को सुखाकर उसका सूक्ष्म बारीक चूर्ण बनाकर वैसलीन या पुराने घी मे मिलाकर मरहम बनालें। यह मरहम फोडे, फुसी पर कमाल का काम करता है। दक्षिण भारत के कोंकण प्रात के लोग इस मलहम का अधिक उपयोग करते है।

फलो की मीगी का तेल २० से ४० बूद की मात्रा मे दो या तीन दिन तक स्तेमाल करने से आव के दस्त बन्द हो जाते है। —वृक्ष विज्ञान

बकुल त्वक का काढा कण्ठ रोगो मे गण्डूषार्थ और उसका चूर्ण अन्य दन्त्य द्रव्यो से मिलाकर मञ्जनो मे पडता है। बकुल त्वक उत्तम ग्राही और दन्त हित द्रव्य है। पूय दन्त, चल दन्त आदि मे यह बहुत लाभ करता है। —फे०नि०

मौलसिरी-दातो और मसूढो के लिये एक बहुमूल्य औषधि है। इसकी छाल के चूर्ण से मञ्जन करने से अथवा इसकी छाल के काढे से कुरले करने मे या इसके फल को मुह मे चवाते रहने से दात और मसूढे मजबूत होते हैं और उनके रोग मिट जाते है। —व च

प्रदर और धातु रोग—मौलसिरी के ताजा फल १ तोला, बादाम का मगज तीन दाने और ३ माशे मिश्री इन चीजो को मिलाकर सवेरे-शाम दोनो समय लेने से और ऊपर एक तोला ठण्डा पानी पीने से धातु विकार मे लाभ होता है। अगर स्त्रियों के दांत असमय में हिलने लग गये हों तो कुछ दिनों तक इस औषधि का लगातार सेवन करने से मजबूत हो जाते हैं।

बालकों की खांसी—मौलसिरी के ताजा फल २ तोला पानी मे भिगोकर रातभर रखना चाहिये। सवेरे इस पानी को छानकर बच्चे को पिला देना चाहिये। इस प्रकार ३ से ७ दिन तक करने से बच्चों की खांसी मिट जाती है।

मुख रोग—मौलसिरी, जामुन और खैर इन तीनों वृक्षों की छाल का काढ़ा बनाकर दिन मे दस-बीस बार इस काढे से कुल्ले करने से मुंह के छाले, मसूढों की सूजन और इस प्रकार के मुख रोग तत्काल आराम होते हैं। दांत बहुत मजबूत होजाते हैं। —व० च०

दातो के लिये—जब दांत ढीले पडगये हों या हिलते हो तब मौलसिरी के फल चबावे और मौलसिरी की छाल के क्वाथ से कुल्ले करें। इससे दंतवेष्ठ रोग और मसूढो की सूजन और वहा के रक्त का जमाव अवश्य दूर होकर रोगी स्वस्थ हो जाता है। क्वाथ-दूषित व्रण और गहरे घावों को धोने के काम आता है। क्वाथ पीने से पेशाब मे जाता हुआ रक्त बन्द हो जाता है।

—वनस्पति वर्णन गुजराती से

बड़ी मौलसिरी (Bari Maulsiri)

नाम—

स०—शिवमल्ली, पाशुपत, एकाष्ठील, वुक, वसु, बृहद्वकुल। हिं०—वनहुला, वृहन्मौलसिरी। म०—थोरव कुच। गु०—वरसोली, मोटी वालसिरी। कर्णा०—वगेटाहु

गुण—

बडी मौलसिरी-अनुष्ण, चरपरी, कडवी तथा कफ, पित्त, विष, योनिशूल, तृषा, दाह, कुष्ठ, सूजन और रुधिर विकार को दूर करती है। —शा नि.

वृहन्मौलसिरी [वनहुला] शीतल, विष, कफ, पित्त मूत्रकृच्छ, पथरी और दाह को नाश करने वाली है। बडी मौलसिरी-अग्निदीपक, मधुर, चरपरी, पित्त, दाह, श्वास, मूत्र कृच्छ, विष, श्रम और पथरी रोग का नाश करती है —नि० र०

मंगुस्तान (Garcinia maugostana)

यह फल वर्ग और साराम्लादि (कोकम) कुल [Guttiferae] का वृक्ष २० से ३० फीट ऊंचा होता है।

यह वृक्ष बारहो मास हरा रहने वाला है। यह वृक्ष शकु आकार का होता है। शाखाये बहुत होती है। यदि इस को हवा और जमीन अनुकूल मिल जाय तो यह वृक्ष ६० फीट तक भी ऊचा बढ़ जाता है। इसका ऊपरी त्वक कोयल के समान कृष्ण वर्ण, अन्तर छाल पीताभ, काष्ठ लाल वर्ण का होता है। पान ६ से १० इच लम्बे, ढाई से साढे चार इच चौडे आमने सामने की नसो वाले होते है। फूल शाखाओ के किनारे आये हुये होते हैं। नर और मादा फूल अलग अलग आते हैं। फूल पीलाश लिये हुये गुलावी रग के होते हे। फल-सन्तरे के समान वडे कालाश लिये हुये आसमानी रग के अन्दर से पीले चिकने रस वाले होते है। वीज सफेद बरफ के रग का अथवा सहज गुलावी रग स्वादिष्ट गूदे मे छिपे हुये होते है। वीज चपटे और मोटे होते है। ये फल खाने मे अत्यन्त स्वादिष्ट होते है। नवम्बर से फरवरी तक फूल आते। मई और जून मे फल तैयार हो जाते है

प्रयोज्य अङ्ग–इसके पान, छाल, फूल और फल त्वक औषधोपयोग मे आते हैं। विशेपकर सखे फल ही बाजार मे विकते है।

उत्पत्ति स्थान–

मलाया, टेरेसरिम, चीन, जावा, सिंगापुर, ब्रह्मदेश नीलगिरी, गोआ, मद्रास प्रदेशादि मे गर्म जलवायु और शुष्क देशो मे होता है। यह फल सिगापुर मे बहुत होता है वहा से भारत मे आता है।

नाम–

हिं०–मगुस्तान। ब०–मगुस्तन। बम्बई–मगुस्तीन। वरमा–मेगकोप। ता०–सुलाबुली। ले०–गार्सीनिया मगुस्तन (Garcinia mangostana Linn)

गुण धर्म और प्रयोग–

रस–मधुर, कषाय, वीर्य–शीत; विपाक–मधुर, दोपघ्नता–पित्तहर है।

फल के ऊपर की छाल ग्राही, रक्त स्तम्भक, शीत रोपणकर, सग्रहणी अतिसार, पेचिस, आदि आतों की बीमारियो मे उपयोगी है। पेचिस मे मगुस्तान के फल की त्वचा का चूर्ण मिलाकर तक्र के साथ देने से पेचिस मिट जाती है। फल–खाने मे भी बल्य, शीत और ग्राही है। जगत के अति स्वादिष्ट फलो मे से एक है। फल के ऊपर के छिलको का चूर्ण सग्रहणी, आमातिसार मे ग्राही दवाई के रूप मे कार्य मे लिया जाता है। बच्चो को पुराने अतिसार मे दिये जाते है और बहुत उपयोगी हैं।

—आ० मि०

कवोडिया मे इसके पौधे की छाल और फलो का छिलका प्रवाहिका और अतिसार रोग मे बहुत उपयोगी है। मात्रा–चूर्ण १ माशे से ३ माशे तक। क्वाथ ५ से १० तोला।

—व० च०
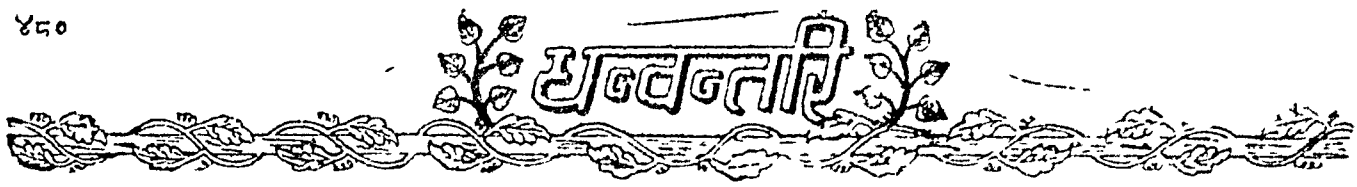
मण्डूकपर्णी (Hydrocotyle Rotundifolia)

यह गुडूच्यादि वर्ग और गृञ्जनादि कुल (Umbelliferee) की मण्डूक पर्णी की एक सामान्य लता होती है जो जमीन पर फैलती है और बढती है। मण्डूकपर्णी का पत्र असली ब्राह्मी से थोडा बडा होता है। कोई-कोई तो रुपया के बराबर दिखायी देता है। इसकी लता प्राय लाल, लता के अग्रभाग के पत्र क्रमश छोटे, पतले और लाल आभा वाले मूषाकानी के पान से मिलते जुलते, किंतु पान उनसे कुछ बडे और चिकने, गोल, वृक्काकार लबाई से चौडाई मे अधिक होते है। पत्र पर सात शिराये होती है। पान मलने से सुगन्ध आती है। शाखाये रक्ताभ और पर्व युक्त, इसकी प्रत्येक सधि पर पान, मूल और पुष्प आते हैं।

फूल—पीले।

यह राजस्थान मे काली, चिकनी मिट्टी के खेतो मे, जहा पानी की आर्द्रता रहती है तथा तालावो के किनारे कीचड मे बहुत ही मिलती है, परन्तु ब्राह्मी इस प्रकार आम जगहो मे नही मिलती।

मण्डूकपर्णी सबधी स्पष्टीकरण—

ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी दोनो पृथक पृथक वनस्पतिया है। एक नही है और नही दोनो के गुण ही समान है। ब्राह्मी मण्डूकपर्णी हीन गुणी होकर रक्त और चर्म पर विशेप प्रभावकारी है जबकि ब्राह्मी मस्तिष्क पर। ब्राह्मी की आकृति और मण्डूकपर्णी की आकृति मे भी काफी भिन्नता है। ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी दोनो हमारे समक्ष प्राप्य और सुलभ है। फिर दोनो को एक मानना कितनी बडी भूल है ?

परम श्रद्धेय स्वर्गीय पूज्य यादव त्रिकम जी आचार्य लिखते है कि मण्डूकपर्णी की लता ब्राह्मी जैसी दीखती है परन्तु दोनो सर्वथा भिन्न है। अर्थात एक के बदले (प्रतिनिधि तरीके मे) दूसरी का प्रयोग नही करना चाहिये। दोनो का स्वरूप, गुण, कर्म, भिन्न है। ब्राह्मी का पान चिकने और सधि पर से एक से अधिक ५–७ पत्ते निकले हुए होते है। ब्राह्मी की क्रिया नाडी चक्र पर होती है जब कि मण्डूकपर्णी की क्रिया त्वचा पर होती है।

भारत मे कई स्थानो पर अनुसधान चल रहे है, ऐसी स्थिति मे इस आयुर्वेद की प्रधान औषधि पर वैद्यो मे भ्रान्ति चली आना खेदजनक है। जहा दो अनुसधान चल रहे है क्यो नही वहा ४००–५०० रुग्णो पर ब्राह्मी, मण्डूकपर्णी पर शास्त्र मे लिखे गुणो के अनुसार परीक्षण किया जाकर वैद्यो और जनता के समक्ष वास्तविक रिपोर्ट देने का प्रयत्न किया जाता है। जिससे अब तक चली आ रही भ्रान्ति दूर हो। वैद्यक की प्रधान औषधियो का यह हाल है, तो फिर उनसे निर्मित औषधियो मे भ्रम क्यो न हो। वैद्यनाथ, डाबर, झण्डू, ऊझा, धूत पापेश्वर, कृष्णगोपाल, धन्वन्तरि औषधि निर्माताओ को इस ओर बराबर शीघ्र ध्यान दिलाना चाहिये।

वास्तव मे तो ब्राह्मी और मण्डूकपर्णी दोनो वनस्पतियो की आकृति के अलग–अलग होने, उनके नाम अलग अलग होने और गुण भी अलग अलग होने पर फिर एक होने का प्रश्न ही नही है। विद्वान बधुओ के सामने ब्राह्मी का लेटिन नाम Hydrocotyle Asiatica Linn और मण्डूकपर्णी का नाम Hydiacotyle Rotundifolia, Roxb है।

मेरे विचार से सुश्रुत ही इस भ्रान्ति के निवारण के वास्ते आधारित और प्रमाणिक ग्रन्थ है, जिसके बल पर दृढतापूर्वक कहा जा सकता है कि ब्राम्ही और मण्डूक पर्णी दो भिन्न द्रव्य है, एक नही। दोनो को एक मानना भ्रान्ति है। अत अब वैद्य बन्धुओ से प्रार्थना है कि परिश्रम और परीक्षा की कसौटी से भ्रान्ति का निराकरण करे।

पूज्य सुश्रुताचार्य ने सुश्रुत चिकित्सा स्थान अ २८ मे मण्डूक पर्णी के प्रयोग और ब्रम्ही के प्रयोग भिन्न २ लिखे है। उस समय दोनो वनस्पतिये स्पष्ट थी।

उत्पत्तिस्थान—यह उत्तरी पश्चिमी हिमालय की ४००० से ७००० फीट ऊची पर्वत श्रेणियो, तलेटियों, बगाल के तर मैदानो मे, सिक्किम पहाडियो और पर्वतो मे जो ४००० फीट की ऊचाई तक, मलाबार तथा राज-

स्थान मे तालावो के किनारे यह सर्वत्र लगायी जा सकती है। जगली अवस्था मे भी जहा नहरे, तालावादि हो वहा गगा के किनारे पर हरिद्वार मे और नेपाल से सिलोन तक २००० फीट की ऊचाई पर उगी हुई पायी जाती है।

नाम–

स०–मण्डूक पर्णी, मण्डूकी, भेकी, मण्डूक पणिका, माण्डूकी । हिं०–मण्डूक पानी, मण्डूकी, माडूकी, मण्डूक पर्णी, ब्रम्ह माडूकी । म०—खड ब्राम्ही, वो०—करिवाना । व०—थूलकूडी । गु०—खडमरामी । ते०—मण्डूक ब्रम्ही । उ–थाल कुडी । प–मीडकी । मला–कटकन, कोडागाम । ता०—वल्लरी केरी । राज–मडूक पर्णी, मण्डूकी । आसामी—मनीमुनि । क०–बोन्देलग । ले०–हाइड्रो कोटाइल रोटुण्डीफोलिया (Hydrocotyle Rotundifolia Roxb) ।

रासायनिक संगठन–

मण्डूकपर्णी के मूल और ताजे पानो मे से उडनशील तैल और एमीलिन (Amylene) नामक भयकर बेहोशी लाने वाला, दाहक (हाइड्रोजन और कार्बन प्रधान) द्रव्य मिलता है। इनके अनुरुप ताजी मण्डूकपर्णी का गुण माना जाता है। —गा० औ० र०

प्रयोज्याङ्ग—पचाग, हरी पत्तियो का शाक, स्वरस, सूखे पत्तो का चूर्ण।

सग्रह काल—भाद्रपद, आश्विन मास ।

गुण–धर्म और प्रयोग —

मण्डूक पर्णी—हलकी, पचने मे स्वादिष्ट, दस्तावर और शीतल है। (रा० व०)

मण्डूकी का अर्क पाण्डु रोग, विष दोप, सूजन और ज्वर को दूर करने वाला है। –शा० नि०

मण्डूकपर्णी–शाक—कफ पित्त नाशक, तिक्त, शीत पचने मे कटु है। –च० सू० २७

मण्डूक पर्णी–रक्तपित्त नाशक, हृद्य, पचने मे हलकी कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, श्वास, कास, अरुचि को हरने वाली है। कषाय है, पित्त मे हितकारी, स्वादु पाक, रस मे हिम व हलकी है। —सुश्रुत सू० ४६

मण्डूक पर्णी–का स्वरस आयु देने वाला, रोगो का नाश करने वाला, बल, अग्नि, स्वर, वर्ण को उत्तम करने वाल, मेध्य, चैतन्य करने वाला और रसायन है।

—च० चि० १

मण्डूक पर्णी—रस मे तिक्त, कषाय, मधुर। वीर्यमे शीत। विपाक मधुर, कटु। दोषघ्नता-वात पित्त, त्रिदोष।

मण्डूकपर्णी का उपयोग आयुर्वेद मे अति प्राचीन काल से हो रहा है। चरक सहिता मे वय स्थापना दशेमानि मे तथा विमान स्थान के भीतर तिक्त स्कन्ध मे माण्डूकपर्णी का उल्लेख मिलता है, विष पीडित रोगी को मण्डूकपर्णी का शाक (चि० स्था० २४–२२२) हितकर दर्शाया है तथा रसायन प्रयोगो मे मण्डूकपर्णी की योजना की है। सुश्रुत सहिता मे भी मण्डूकपर्णी के शाक का गुण दर्शाया हे तथा तिक्त स्कन्ध मे उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त माण्डूकपर्णी के रसायन प्रयोग लिखे हैं।

डाक्टर देसाई मण्डूकपर्णी को त्वचारोग मे उत्तम गुणकारी दर्शाते है। गलित्कुष्ठ मे यह अति हितावह है। यद्यपि यह कुष्ठ की मुख्य औषधि नही हे, तथापि बहुत लाभ पहुचाती है। फिरग की द्वितीयावस्था मे जब रोग का बल त्वचा और उप त्वचा पर होता है, तब यह व्यवहृत होती हे। यह गण्डमाला मे भी लाभदायक है। सब प्रकार के त्वचा रोग, सामान्य फोडे, क्षय कीटाणु जन्य सडा हुआ व्रण और श्लीपद पर यह मूल्यवान औषधि है। व्रणो पर लेप करने या चूर्ण छिडकने पर जल्दी भर जाता है, त्वचा रोग पर इसका चूर्ण खाने को दिया जाता है। जब त्वचा लाल हो जाय और खुजली आने लगे, तब मात्रा कम कर देवें तथा विरेचन देवे तथा विरेचन देवें या कुछ दिन तक औषधि बन्द रखे। मण्डूक पर्णी के सेवन से पेशाब बढता है फिर भी इसका उपयोग मूत्रल गुण की प्राप्ति के लिये नही कराया जाता कारण यह वृक्को की श्लैष्मिक कला मे उग्रता उत्पन्न करती है।

गुजराती वनस्पति गुणादर्श के भीतर डा० बोडल का अनुभव जिनको कुष्ठ रोग होने पर मण्डूकपर्णी का प्रयोग करके लाभ उठाया था, वह महत्व का होने से आगे देते हैं।

"मण्डूकपर्णी देने से प्रारम्भ मे कुष्ठ वाले रोगी के हाथ पैर की त्वचा मे उष्णता लगती है और खुजली चलती है। फिर थोड़े दिन के पश्चात् सारे देह मे गर्मी बढ जाती है, वह इतनी कि सारे शरीर मे अति खुजली चलती है। त्वचा लाल हो जाती है, रक्ताभिसरण क्रिया अति बलपूर्वक होती है। नाडी अति तेज और पूर्ण वहती है। सप्ताह के बाद रोगी की क्षुधा बढ जाती है और पचन क्रिया बहुत अच्छी होने लगती है। कुछ दिनो के बाद त्वचा मुलायम और एक समान हो जाती है। उपत्वचा के छिलके निकल जाते है। स्वेद आने लगता है। त्वचा अपना कार्य फिर प्रारभ करती है। जठराग्नि दिन प्रतिदिन सुधरती जाती है और क्षुधा अच्छी लगती है।

यदि यह मण्डूकपर्णी स्वस्थ मनुष्य को अल्प मात्रा मे दी जाय, तो थोडे समय मे मूत्रल गुण दर्शाती है। यह रक्ताभिसरण क्रिया बढा देती है, और फिर खुजली प्रारम्भ हो जाती है। यदि इसके चूर्ण की मात्रा १ से २ माशे की दी जाय, तो तन्द्रा आने लगती है तथा मस्तिष्क मे वेदना (Cephalgia) होने लगती है। फिर यह औषधि बन्द कर देवे, तो भी यह असर १ मास तक रह जाता है एव इससे भयकर प्रवाहिका भी हो जाती है।

डाक्टर बोइल ने इस औषधि का अपने पर प्रयोग करता गया और मात्रा बढाता गया। फिर उसे अनुभव हुआ कि इस औषधि का सत्व भीतर सगृहीत होता है, जो विष प्रकोप दर्शाता है। इसके विष प्रभाव से मुझे इतनी ठडक लगने लगी कि, अनेक रजाई ओढने पर एक घण्टे के पश्चात देह मे उष्णता आयी। इसके बाद स्वर यत्र मे खिचाव होने लगा। ऐसा प्रतीत होने लगा कि, इसी समय हृदय की गति बन्द हो जायगी। फिर आक्षेप के चिन्ह प्रारम्भ हुये और शाम को वमन और रक्तातिसार हो गया, वे तो तुरन्त ही मिट गये। फिर दूसरे दिन सुबह जब मे उठा, तब विष के प्रभाव से मुक्त हो गया, किन्तु निर्बलता और गले मे वेदना का अनुभव होता था इस पर से अनुमान कर सकते है कि मडूकपर्णी योग्य मात्रा मे दी जाय तो रुधिराभिसरण क्रिया के लिये उत्तम उत्तेजक है और इसका असर विशेषत त्वचा पर होता है। मात्रा अधिक देने पर तन्द्रा आ देती है और कभी मूर्छा भी हो जाती है।

आगे वनस्पति गुणादर्शसार ने लिखा है कि "त्वचा के सब प्रकार के रोगों मे रुधिराभिसरण क्रिया को सबल बनाने की उसमे अधिक शक्ति रही है। यद्यपि यह वातरक्त और फिरग रोग पर पूरा लाभ नहीं पहुंचा सकती, तो भी उक्त शक्ति के हेतु से लाभ पहुचाती है।" यद्यपि वात रक्त के बढ़ते हुए रोगों पर उससे लाभ नहीं पहुंचता तथा प्राथमिक अवस्था मे यह हितावह है यह पुराने दृढ व्युरी पर अति प्रशसनीय लाभ पहुचाती है। सामान्यत त्वचा पर तो थोड़े ही दिनो मे उससे लाभ पहुच जाता है। क्षत, सुजाक के साथ उत्पन्न फिरग की द्वितीया और तृतीयावस्था मे मण्डूकपर्णी से अच्छा लाभ पहुचता है। एव पुराने और सडे हुये व्रण, बालकों के अतिसार और पीनस आदि रोग मे निकलने वाले पूय, आम-कफादि को सुधारकर शक्ति देने मे यह औषधि चमत्कारिक लाभ पहुचाती है। जब–जब शरीर के किसी भाग मे क्षत हो, तब–तब इस औषधि का सेवन कराना चाहिये तथा इसके चूर्ण का लेप या पुल्टिस रूप से भी उपयोग करना चाहिये।"

—गावो मे औ० रत्न

प्रयोग—

रसायनार्थ—मण्डूकपर्णी का स्वरस दूध के साथ लेना चाहिये। —च चि० १

रसायनार्थ—शक्ति, आयुष्य बल और आरोग्यता के लिए मण्डूकपर्णी का कल्प विधि युक्त लेना चाहिये।

—च चि. १६

उदर रोग मे-निशोथ और मडूकपर्णी का शाक इन दोनो के ही स्वरस मे पकाकर सेवन करे। खटाई, नमक, स्नेह रहित हो, किसी भी जाति का अन्न सेवन मे नही हो। प्यास लगे तो इनका ही स्वरस पीवें। ऐसा १ मास करे। —च० चि० १८

मडूकपर्णी का प्रयोग—मेधा और आयुष्य की कामना रखने वाले व्यक्ति हत दोष होकर केवल दूध पर रहकर कुटी प्रवेश करके सहस्र सपाताभिहूत मडूकपर्णी स्वरस लेकर दूध मे मिलाकर बलानुसार पीना चाहिए। अथवा

स्वरस का पान करने के वाद दूध का अनुपान रक्खे। औपधि पच जाने के वाद जव का अन्न दूध के साथ भोजन करें अथवा यव भोजन तिलो के साथ खावें। ऐसे तीन मास करें। यह जवान्न पच गये वाद दूध, घी, कमोद का भात आहार मे लेवें।

इस प्रकार प्रयोग की आजमाइश करने से ब्रह्मचारी, मेधावी और स्मृति धारण करने वाला व्यक्ति हो जाता है।

मण्डूक पर्णी का कल्क १ तोला जितना दूध मिला कर दश दिन पीने से मेधावी और शतायु हो जाता है।

फुसियो मे—मडूकपर्णी का रस फुसियो पर लगावे।

मडूकपर्णी को घृत मे भूनकर दूध के साथ १ मास तक सेवन करें और अन्न का परित्याग कर दें। फल और दुग्ध का प्रयोग करें, तो वह मनुष्य चिरकाल तक जीता, शास्त्र विजयी होता, यौवन और सुन्दरता प्राप्त करता है।

—वागभट्ट

मात्रा—स्वरस आधा से १ तोला। हरी मडूकी के पत्तो की मात्रा ४ से ८ माशे तक। सूखी मण्डूकी के चूर्ण की मात्रा ३ से ५ माशा तक। पचाग की मात्रा इससे द्विगुण ली जा सकती है।

मण्डूक पर्णी मलहम—एक भाग पानो का चूर्ण और ७१ भाग वैसलीन मिलाकर मलहम बना लेवे। सब प्रकार के त्वचा रोगो पर लगाने मे उपयोग करे।

मण्डूकपर्णी शरबत—मण्डूक पर्णी स्वरस के साथ २।। गुनी शक्कर मिलाकर शर्बत जैसी चाशनी बना लेवें। शीतल होने पर वोतल मे भर लेवे। मात्रा—१ ड्राम। जल मिलाकर दिन मे दो वार।

दिव्यारिष्ट—सारस्वतारिष्ट मे ब्राम्ही मिलायी जाती जाती है, उस जगह मण्डूकपर्णी लेवे। शेप प्रयोग समान यह अरिष्ट वर्त्तमान मे अनेक फार्मेसी वाले और चिकित्सक बनाते है। नाम सारस्वतारिष्ट दे रहे है। यह नाम सदोष है। सुवर्ण मिश्रित की मात्रा १ से २ ड्राम। जल के साथ दिन मे दो वार। सुवर्ण रहित की मात्रा २ से ४ ड्राम।

यह उत्तम रसायन रक्त प्रसादक, बुद्धि प्रद, बल्य, वात नाडी पोषक और हृद्य है। कुष्ठ, उपदंश, त्वचा रोग, अस्थि क्षय, राजयक्ष्मा, जीर्ण ज्वर आदि पर हितावह है।

बनोषधि--विशेषांक (पंचम भाग) की

सन्दर्भ-सूची

(अकारादि क्रमानुसार)

त, थ, द, ध, न

प, फ, ब

धन्व बनो ६२

य, र, ल, व

स, श, ष

सभी प्रकार की बनस्पतियां खनिज द्रव्य, शुद्ध और अशुद्ध धातु एवं आयुर्वेदिक औषधि निर्माण में प्रयुक्त होने वाली सभी वस्तुओं की प्राप्ति का विश्वस्त स्थान

गर्ग वनौषधि भंडार विजयगढ़ [अलीगढ़]

का

सूचीपत्र

	१ किलो	५० ग्राम
अष्टवर्ग असली	१० ००	०.६०
अकरकरा असली	३६० ००	१८ ५०
अकरकरा बाजारू	३० ००	१.६०
अगर टुकडे असली	२ ५०	० १५
अगर बुरादा असली	४ ००	० २५
अजमोद	२ ००	० १२
अजमाइन देशी	४ ५०	०२५
अजमाइन खुरासानी	६ ००	० ७५
अजीर	१३ ००	० ८०
अतीसकडवीश्वेतन१	८० ००	४ ७५
अतीसकडवीश्वेतन२	६० ००	३ ५०
अतीस मीठी	१२ ००	० ७०
अनन्तमूल कृष्ण (बगाल)	१ ५०	० १०
अनारदाना	८ ५०	० ५०
अपामार्ग पचाग	१ ००	० ०८
अपामार्ग बीज	५ ००	० ३०
अम्लवेती	६ ००	० ३५
अमलतास गूदा	१ ५०	० १०
अर्जुन छाल	१ ००	० ०८
अरणी (पचाग)	० ७५	० ०५
अशोक छाल [बगाल]	१ ५०	० १०
असगध नागौरी	६ ००	० ३५
आवलेमूर्त [बिना गुठली]	० ७५	० ०५
आम की गुठली	१ ००	० ०८

	१ किलो	५० ग्राम
आवाहल्दी	३ ८०	० २०
इन्द्र जौ असली	१० ००	० ५५
इरमेद छाल	२ ००	० १४
इन्द्रायण मूल	१ २५	० १०
इन्द्रायण फल	१.२५	० १०
इलायची छोटी	७५ ००	४ ००
इलायची बडी	१२ ००	० ७५
उटगन बीज	८ ००	० ५०
उन्नाव असली	७ ५०	० ४०
उलट कम्बल मूल	४ ००	० १५
ऋषभक	८ ५०	० ४५
ऋद्धि	१४ ००	० ८०
एलुआ	१० ००	० ६०
कचूर	२ ५०	० १५
ककोल दाना	१ २५	० १०
कमल गट्टा	६,००	०,३५
कमल फूल	४ ००	० २५
कमल केशर	२० ००	१ १०
कचनार छाल	१ २५	० १०
करज फल	२ ५०	० १५
कन्नेर मूल श्वेत	४ ००	० २५
काकोली असली	१० ००	० ५०
काक जघा	२ ००	० १२
काकडा सिगी	५ ००	० ३०
कायफल	१ ५०	० १२
कालीजीरी	३ ००	० १८

	१ किलो	५० ग्राम
कालमध	२ ५०	० १५
कूठ मीठी	१ २५	० ०८
कूठ कडवी	५ ००	० ३०
कुडा की छाल	१ ००	० ०८
कुलजन	२ ५०	० १५
कौच की जड	१ ५०	० ०८
कोच बीज	३ ००	० २०
कटेरी बडी	१ ००	० ०८
कटेरी छोटी	० ८०	० ०५
कटेरी जड	२ ५०	० १५
कुटकी	९ ००	० ५५
कलौंजी	४ २५	० २५
काला दाना	२ ५०	० १५
खस	२ ५०	० १५
खैर की छाल	० ६०	० ०४
खरटी	२ ००	० १२
गगेरन की छाल	१ २५	० ०८
गजपीपर	१ २५	० ०८
गम्भारी	० ८०	० ०५
गाजुवा	५ ००	० २५
गिलोय सूखी	० ७०	० ०५
गुज्जारक्त	२ ००	० १२
गुडमार बूटी	३ ००	० १८
गुलगाजवा	४१ ००	२ ५०
गुलबनफसा	३० ००	१ ६०
गुलाबफूल	१२ ००	०.६५

	१ किलो	५० ग्राम
गोदबबूल	८ ००	० ५०
गोरखमुण्डी	१ ७५	० १०
गोखरुपचांग	० ७०	० ०४
गोखरुफल छोटे	२ २०	० १५
,, बडे	३ ५०	० २०
गूगल	९ ००	० ५०
गुडहल के फूल	३ ८०	० २२
गिलोय सत्व	२० ००	१ १०
चन्दन लकडी श्वेत	१६ ००	० ८०
,, श्वेत बुरादा	७ ५०	० ४०
चव्य असली	६ ००	० ३५
चित्रक मूल	३ ५०	०.२०
चित्रक छाल	७ ५०	० ४०
चिरायता कडवा	६ ००	० ३५
चोबचीनी	१९ ००	१ ००
जुलाफा हरड	२८ ००	१ ५०
जवासा पचाङ्ग	१ ५०	० ५०
जामुन की गुठली	२ २५	० १२
जायफल	५० ००	२ ६०
जावित्री	७८ ००	४ ००
जियापोता (पुत्रजीवक)	३ ५०	० २०
जीवक	६ ५०	० ३५
जीरा सफेद	७ ५०	० ४०
जीरा स्याह	४२ ००	२ २५
जीवन्ती (बगाल)	७ ००	० ३८
टाटरी	३० ००	१ ६०
तुलसीपत्र	१ ५०	० १०
तज	८ ००	० ४५
तगर	६ ५०	० ३५
तालमखाना	७ ००	०.३५
असली तालीसपत्र	८ ००	० ४५
तजपत्र	२ ५०	० १५
तिलकाले	३ २५	० १८
देवदार	० ८०	० ०५
दन्तीमूल	२ २०	०.१२

	१ किलो	५० ग्राम
दशमूल	१.५०	० १०
दालचीनी	६५ ००	३ ५०
दारुहल्दी	१ ४०	० १०
द्रोण पुष्पी		
दुधवच	१० ००	० ५०
धतूरा बीज काला	५ ००	० ३०
,, पीला	६ ००	० ३०
धाय के फूल	१ २०	० ०८
धतूरा पचाङ्ग	० ७५	० ०४
नीम छाल	१ ००	० ०५
नीमपत्र	० ६०	० ०४
नीमपत्र चूर्ण	१ ५०	० १०
नागरमोथा	१ ८०	० १२
नागकेशर असली	१० ००	० ५५
,, घुन्डी	६ २५	० ३५
नसपाल	१ ५०	० १०
निमोली	० ८०	० ०५
निर्मली बीज	३ २५	० २०
निगोथ	२ ००	० १२
नीलकंठी	१ २५	० ०८
नीलोफर फूल	२ ५०	० १५
नेत्रवाला	१ ५०	० १०
नौसादर देशी	३ ८०	० २०
पलास पत्र	५ ००	० ३०
पलास पत्र चूर्ण	७ ००	० ४०
पाटला छाल	० ८०	० ०५
पाषाण भेद	२ ००	० १२
पिप्पली छोटी	१५.००	० ८०
पिप्पली बडी	१० ००	० ५५
पीपरामूल	१८ ५०	१ ००
पित्तपापडा	१.६०	० १०
पीपलजटा	८ ००	० ४५
पीपल छोटी	१५ ००	० ८०
,, बडी	९ ५०	० ५०
पियावासा	० ६०	०.०४
पुनर्नवामूल	१ ८०	० १२
पोदीना सूखा	३ ००	० १८
पतग	४ ००	० २२

	१ किलो	५० ग्राम
पृष्ठपर्णी (गोलपत्र)	० ८०	० ०५
,, (लम्बेपत्र)	१ २५	० ०८
पदमाख	१ ५०	० ०८
पटोलपत्र	१ ८०	० ०८
पोहकर मूल	५ ००	० ३०
प्रवाल मूल	३ ५०	० २०
फूलप्रियगु	३ ८०	० २०
फिटकरी	१ ००	० ०६
विधारा लकडी	१ ४०	० ०८
वसलोचन असली	६० ००	५ ००
,, नं १	६५ ००	३ २५
वट जटा	३ ५०	० २०
वकायनफल	१ ५०	० १०
बलापचाग (खरेंटा)	२.००	० १०
बबूल छाल	० ७५	० ०५
बहुफली	२ ००	० १२
बहेडा फल	० ४०	० ०३
,, छाल	० ५०	० ०४
वालछड	६ ००	० ५०
वावची	१ २०	० ०८
वासामूल	१ २५	० ०८
विदारी कन्द	२ ५०	० १५
वाराहीकन्द	२ ५०	० १५
वायविडङ्ग	१ ८०	० १०
विजयसार छाल	१ ००	० ०६
बीजबन्द	२ ५०	० १५
ब्राह्मी बूटी (छाया सूखी)	३ ००	० १५
ब्रह्मदण्डी	२ २०	० १२
बिल्वछाल	० ५५	० ०४
वेलगिरी	१ ८०	० १०
बावली घास	६ ००	० ३२
,, चूर्ण	८ ००	० ४५
बहेडा छाल	०.८०	० ०५
मजीठ	८ ००	० ४५
महुआ फूल	१ ५०	० १०
माजूफल	१० ५०	० ५५
मालकागुनी	४ ५०	० २५
माषपर्णी	१ ५०	० १०

	१ किलो	५० ग्राम
मिर्चसफेद	१२ ५०	० ६५
,, काली	५ ५०	० ३०
मुनक्का काला	१० ००	० ५५
,, आवजोश	१५ ००	० ८०
मुग्दपर्णी	१ २५	० ०८
मुलहठी	४ ००	० २५
मूसली श्वेत	१२ ००	० ६५
,, श्याम	२ ००	० १२
मेदा	९ ५०	० ५०
महामेदा	९ ५०	० ५०
मोचरस	५ ००	० ३०
मोम	१४ ००	० ७५
भारगी	१ २५	० ८०
भागरा(भृङ्गराज)	१ ५०	० १०
भूमिआवला	३ ५०	० २०
भोजपत्र	३ २५	० २०
मकोयदाना	८ ५०	० ४०
मखाना	१२ ५०	० ६५
मस्तगी चालू	५ ००	० ३०
मस्तगीरूमी असली	११० ००	५ ७०
मरोडफली	१ ८०	० १०
रास्नामूल	२ ००	० १२
रासनापत्र	२ ००	० १०
रास्ना चूर्ण	७ ००	० ४०
राल	८.००	० ४५

	१ किलो	५० ग्राम
रेणुका असली	१ ५०	० १०
रेवन्द चीनी	३ ५०	० २०
रोहतक छाल	१ ००	० १२
रुदन्ती फल	२८ ००	१ ५०
रतनजोत	४ ५०	० २५
रसोत	८ ००	० ४५
लता फस्तूरी	१२ ५०	० ६५
लाजवन्ती वीज	१० ००	० ५५
लोग	९० ००	४ ६०
लौंग चूरा	३५ ००	४ २०
लोध	१ ५०	० १०
लाख (पीपल)	१ ९०	० १२
सनाय अमली	५ ५०	० ३०
शखपुष्पी	२ २५	० १२
शालपर्णी	० ८०	० ०५
शिवलिंगी वीज	३० २५	१ ५५
श्योनाक छाल	१ २५	०० ८
सतावर	५ ००	० ३०
समुद्र सोख	२ २५	०.१५
सत्यानाशी वीज	१० ००	०.५५
,, पचाग	६ ००	० ३५
समुद्रफल	४.००	० २२
सालम मिश्री	१००.००	५ २०
सप्तपर्णी छाल	१ ००	० १०
सर्पगन्धा	२८ ००	१ ४५

	१ किलो	५० ग्राम
सिघाडा सूखाफल	३ ००	०.१८
सिरस वीज काला	१२ ००	० ६५
शीतल चीनी	८ ००	० ४५
सुपारी न० १	२२ ००	१ २०
,, न० २	१५ ००	० ८०
,, न० ३	१० ००	०.६०
सोंठ	८ ००	० ४५
सोमकल्प	१० ००	० ५५
सोयावीज	३ ००	० १८
सोयावीन	१० ००	० ५०
सौंफ	४ २५	० २५
सम्भालू (रेणुका)	२.००	० १३
शु हवनसामग्री न १	२ ००	० १२
,, न २	१ ००	० ०६
सुहागा	५ ८०	० ३०
सहिजना वीज	५ ५०	० ३०
सुरमा काला	२२ ००	१ २०
सुरमा सफेद	१ ८०	० १०
हाथीदात बुरादा	४ ००	० २५
हाऊबेर	७ ५०	० ४०
हरड छिलका	० ९०	० ०५
काकोली	९ ५०	० ५०
क्षीरकाकोली	९ ५०	० ५०
त्रायमाण असली	९ ५०	० ५५

संग्रहीत खनिज द्रव्य एवं यूनानी दवायें

	१ किलो	५० ग्राम
गधक लोनिया	३ ००	० २०
कान्त लोह	६ ००	० ३५
ज्राभ्रक	३ ५०	० २०
वेरपत्थर	६८ ००	३ ६०
जहरमोहरा डला	२५ ००	१ ३०
,, असली	६५ ००	३.३५
कहरवा	१०० ००	५ २०
,,दाना	३०० ००	१५ ५०
पत्थर का दिल	१८० ००	८ ००

	१ किलो	५० ग्राम
मूङ्गा की साख	१८०.००	९ २५
मूङ्गा की जड	६ ००	० ३५
मोर के पख	२०) के	१०००
रौप्य माक्षिक	१२ ००	० ६०
शख टुकडा	२.५०	० १५
वारहसिंगा सीग	१ ५०	० ०८
मोतीसीप असली	३५ ००	१ ७५
मोतीसीप	५ ००	० ३०
सगेयशव असली	८० ००	४ ००

	१ किलो	५० ग्राम
सत उन्नाव	२० ००	१ १०
जन्दवेदस्तर	३०० ००	१५ ००
वीरवहूटी	६० ००	३ २०
लोभान कोडिया	२० ००	१ १०
शखकीट	१०० ००	५ ००
सत्वअजवायन	१६० ००	८ १०
गिलेअरमनी	२.५०	० १५
माजूर (विना शुद्ध)	१ ००	० ०८
सगरासव	३० ००	१ ६०

	१ किलो	५० ग्राम
अञ्जवार	२००	० १२
आलूबुखारा	१५ ००	० ७५
कासनी बीज	३.००	० १८
काहू	१० ००	० ५०
कुलफा	६ ००	०.३५
खनिमो	५ ००	० २५
खत्राजी	२ ५०	० १५
गवकन्ना	१० ००	० ५०
गुलखेरा	४ ००	० २५
गुलगाफिस	३० ००	१ ६०
गुलअनार	६ ५०	० ३५
चालमोगरा के बीज	८ ००	० ४५
चोकमूल	२ ८०	० १५
जूजफा	१० ००	० ५०
तुख्मवालगा	१०.००	० ५०
तुख्मरेहा	४ ००	० २०
तोदरीलाल	१५ ००	० ८०
,, सफेद	५० ००	२ ६०
,, पीली	१५.००	० ८०
दरियायी नारियल	१०० ००	५ २०
वदाल के फल	७ ५०	० ४०
निगधवावरी	५ ००	० २५
जदवार असली	८० ००	४ १०
हन्सराज	४-००	० २०
पिलास पापडा	१ ५०	० ०८

	१ किलो	५० ग्राम
वादयानखताई	२५ ००	१.३०
विहीदाना	२२ ००	१ २०
मयूर शिखा	४ ००	० २०
ममीरीमूल	६ ५०	० ३५
सहदेवी	१ ८०	० १०
रेसा खतमी	१२ ००	० ६५
हारसिंगार फूल	८० ००	४ १०
पीली कौडी	१० ००	० ५०

बहुमूल्य खड

	५० ग्राम	१० ग्राम
गोमेदखड	३ ००	० ६०
नीलमखड़	३० ००	६ ००
पन्नोखड	१८ ००	२ ००
पुखराजखड	२ ५०	० ५०
मानिक्ल खड	१० ००	२ ००
अकीक खड	२० ००	४ ००
फिरोजखड	१०.००	२.००
वेकात खड	१५ ००	३.००
पुखराजखड	१५ ००	३.००

भस्मार्थ द्रव्य

	१०० ग्राम	१ ग्राम
शु धतूराबीज	३.७५	० ५०
शु गूगल	५०० ग्राम	७.५०
शु माडूर	,, ,,	१.६०
शु फौलाद चूर्ण	,, ,,	३ ६०
शु. ताम्र चूर्ण	,, ,,	१८ ५०
शु धान्याभ्रक	,, ,,	३ ४०
शु पारद हिंगुलोत्थ	१० ग्रा	७ ६०
शु विपवीज—(वस्त्रपूत)	१०० ग्राम	८ ५०
शु हिंगुल	१०० ग्राम	५० ००
ताम्र चूर्ण (अशोधित)	१ किलो	२५ ००
फौलाद चूर्ण (अशोधित)	१ किलो	४ ००
शू. जस्ता (अशोधित)	१ किलो	१५ ००

बहुमूल्य पदार्थ

	१० ग्रा	१ ग्रा
असली कस्तूरी न १—	१२५ ००	१२ ६०
कस्तूरी काश्मीरी	६० ००	६ १०
अम्बर	३६ ००	३ ७०
गोरोचन	८० ००	८ १०

	१० ग्राम	१ ग्राम
केशर न १	४०.००	४ १०
केशर चूरा	१६ ००	१ ६५
चादी के वर्क	१० ००	१ १०
मोती वसईगोल	१०० ००	१० ००
मोती वेडौल	४० ००	४ १०

आजकल रजिस्टर्ड वी० पी० पार्सल का डाक व्यय निम्न प्रकार है--

४०० ग्राम तक १.६०

८०० ग्राम तक २.४०

इसी प्रकार प्रत्येक अगले ४०० ग्राम या उसके अंश के लिये ८० पैसे अतिरिक्त लगते हैं।

छाजन हर मलहम

अव तक जो यह समझा जाता था कि छाजन की कोई औषधि ही नही है और यह असाध्य रोग है गलत सिद्ध हो गया है। हमारे इस मलहम से छाजन के सैकडो रोगी ठीक हो गये हे। हमारे विज्ञापन पर अनेक भाईयो ने सत्यानाशी के बीज का मलहम तैयार करके व्यवहार किया और लाभ उठाया, किन्तु मलहम वनाने की परेशानी से वहुत से व्यक्ति लाभ नही उठा सके अत हमने यह मलहम तैयार किया है। मूल्य १ शीशी २ ००

सेवन विधि—सत्यानाशी पचाग चूर्ण २५ ग्राम लेकर आधा सेर जल मे डालकर खूब खौलाना चाहिए ठडा होने पर छानकर छाजन को इस पानी से खूब धोना चाहिये। तथा इसके पश्चात् मलहम लगाना चाहिये। मूल्य २५० ग्राम २ ००।

शुद्ध बादाम रोगन

शुद्ध वादाम रोगन का मिलना बहुत ही कठिन है बाजार मे मिलने वाला वादाम रोगन प्राय कडवे बादामों का होता है और इसमे कई वस्तुओ की मिलावट होती है। हमने यह वादाम रोगन कागजी वादामो से निकाल कर सग्रह किया है मलावरोध को दूर करके हृदय और मस्तिप्क की निर्बलता मे इसका विशेप उपयोग होता है। एक बार हमारे वादाम रोगन की परीक्षा कीजिये।

मूल्य—६ माशा	२ ५०
१ तोला	४ ७५
५ तोला	२२ ५०

नेत्र ज्योति वर्धक सुरमा

अन्य सुरमो की तरह यह आखो की सुन्दरता वढाने के लिए नित्य प्रति व्यवहार करने वाला सुरमा नही है। यह तो नेत्रो की ज्योति वढाने वाली अत्युत्तम औषधि है। वृद्धावस्था मे धुन्ध और जालो से नेत्रो की रोशनी कम हो जाती है उनके लिए यह वरदान है। नियमित व्यवहार करने से नेत्रों की रोशनी वढजाती है। मोतियाविन्दु की प्रारभिक अवस्था मे यह वहुत लाभ करता है। इससे मोतिया-विंदु वढता नही है और प्रारम्भिक मोतियाविदु निश्चय ही ठीक हो जाता हे। मूल्य ५ ग्राम की शीशी २ ००

असली अष्टवर्ग

च्यवनप्राश अवलेह की अष्टवर्ग एक मुख्य औषधि है। किंतु असली अष्टवर्ग का मिलना आज कल बहुत ही कठिन हो गया है। अष्टवर्ग के नाम पर भिन्न-भिन्न वस्तुयें आज कल बाजार में मिलती हैं। इसलिये च्यवनप्राश उचित लाभ नही करता। हमारा यह अष्टवर्ग सर्वथा विशुद्ध और प्रामाणिक है। मूल्य १ किलो १० रुपया

भस्म बनाने के लिये कुछ

प्रामाणिक द्रव्य

गोदन्ती—यह गोदन्ती अत्युत्तम और पारदर्शक है, ऐसी गोदन्ती बाजार मे नही मिल सकती। मूल्य १ किलो १ ५०

मोती सीप—(विशेप उत्तम) बहुत बडी और असली। मूल्य १ किलो ३५ ००

मोती सीप—बाजार मे मिलने वाली। मूल्य १ किलो ५ ००

शखनाभि—१ किलो २ ५०

शख टुकड़ा—१ किलो २ ५०

प्रबाल मूल—१ किलो २ ५०

लोह चूर्ण—१ किलो २ ००

माडूर—१ किलो १ ००

बिना एडवांस प्राप्त हुए कोई आर्डर सप्लाई नही किया जायगा।

मिलने का पता—गर्ग बनौषधि भंडार विजयगढ़ [अलीगढ़]

नियम

कमीशन—

अ. १५.०० से कम मूल्य की दवा मगाने पर कोई कमीशन नही दिया जायगा।

आ. ३५.०० तक की दवा मगाने पर १२॥ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा।

इ. ३५.०० से अधिक मूल्यकी दवा मगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायेगा।

ई. १००.०० से अधिक मूल्य की दवा मगाने पर २५ प्रतिशत कमीशन दिया जायगा तथा मालगाड़ी का किराया कार्यालय देगा।

उ. ५०.०० से अधिक नेट मूल्य (कमीशन कम करके) की केवल रस रसायन मूल्यवान् औषधिया मगाने पर पोस्ट-व्यय कार्यालय देगा।

२. आर्डर देते समय—

अ. आदेश पत्र मे औषधियो का नाम, उसका नम्बर, तौल, पैकिग की तौल तथा मूल्य सभी बातें स्पष्ट लिखें। नीचे मूल्य का जोड लगावें तथा उपर्युक्त नियमानुसार जो कमीशन बनता हो उसको भी लिखे। यदि आप एजेट है तो एजेंसी नम्बर भी लिखे।

आ. हर पत्र मे अपना पूरा पता तथा पास के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखें।

इ. पार्सल-पोस्ट से भेजी जाय या रेल से, सवारी गाडी से भेजी जाय या मालगाडी से। यह विवरण अवश्य लिखना चाहिये।

ई. आर्डर देते समय चौथाई मूल्य अथवा कम से कम ५.०० एडवास मनियार्डर से अवश्य भेजें तथा आदेश पत्र मे मनियार्डर का नम्बर व तारीख लिख दें।

३ दवा भेजते समय पैकिग करने मे पूर्ण सावधानी रखी जाती है और प्राय टूट फूट नही होती। किंतु अगर किसी कारण कोई टूट फूट हो जाती है तो उसका जिम्मेदार कार्यालय नही है।

४—पार्सल मगाकर वी० पी० लौटाना अनुचित है। एक बार वी० पी० वापिस आने पर कार्यालय पुनः उस ग्राहक को वी० पी० न भेजेगा तथा खर्चा लेने का हकदार होगा। यदि बिल मे कोई भूल है तो वी० पी० छुडाकर पत्र डालकर उसका सुधार करालें।

५—हमारे यहा उधार का लेना देना नही है। बीजक का रुपया बैंक या वी० पी० से लिया जाता है।

६ सभी ग्राहको को २ प्रतिशत सेलटैक्स अवश्य देना होगा।

७—ग्राहको को पार्सल का बारदाना, पैकिग व्यय, पोस्ट-व्यय स्टेशन पहुचाई आदि सभी खर्च पृथक देने होते है।

८—धन्वन्तरि कार्यालय के किसी भी विभाग का कोई भी झगडा अलीगढ की अदालत मे तय होगा।

९—नियमो मे अथवा औषधियो के भावो मे किसी भी समय सूचना दिये बिना परिवर्तन करने का कार्यालय को पूरा अधिकार है।

केवल दो प्रतिशत सेलटैक्स
सभी ग्राहकों से

केन्द्रीय सरकार के नये नियम के अनुसार हम अपने सभी ग्राहकों-एजेटों से चाहे वे उत्तर प्रदेश से बाहर के हों वही दो प्रतिशत बिक्रीकर लेगे। हमको सी-फार्म लेने की भी अब आवश्यकता नहीं है।

उत्तर प्रदेश से बाहर के हमारे बहुत से ग्राहकों तथा एजेंटों ने बिक्रीकर अधिक लग जाने के कारण हमारे यहां से औषधियां मंगाना बन्द कर दिया था। अब उन ग्राहकों से निवेदन है कि आवश्यकतानुसार औषधियों का आर्डर देकर पूर्ववत् हमको सेवा का अवसर प्रदान करे। हम सभी से केवल दो प्रतिशत बिक्रीकर लेंगे।

व्यवस्थापक—धन्वन्तरि कार्यालय, विजयगढ़ जिला अलीगढ़

शास्त्रोक्त औषधियां

कूपीपक्व रसायन

	१ ग्राम	१० ग्राम
सि मकरध्वज न१	५ ६०	५५ ००
सि मकरध्वज न २	४ १०	४० ००
मि. मकरध्वज न ३	३ १०	३० ००
सि मकरध्वज नं ४	३.६०	३५ ००
सि. मकरध्वज नं ५	२ ६०	२५ ००
सि. मकरध्वज न ६	२ १०	२० ००
सि चन्द्रोदय नं० १	६ १०	६० ००
अनुपान मकरध्वज	१ ००	६ ००
रस सिंदूर न०१	१ ९०	१८ ००
रस सिंदूर न०२	१ ७०	१६ ००
रस सिंदूर न०३	१ ४०	१३ ००
मल्ल चन्द्रोदय	५ ६०	५५ ००
मल्ल सिंदूर	१ ४०	१३ ००
ताल सिंदूर	१ ४०	१३ ००
ताम्र सिंदूर	१ ४०	१३ ००
शिला सिंदूर	१ ४०	१३ ००
स्वर्णवङ्ग भस्म	० ६०	५ ००
मृतसंजीवनी रस	० ६०	४ ५०
रस कर्पूर	१ ७०	१६ ००
रस माणिक्य	० ६५	३ ५०
समीरपन्नगरस न.१	३ ३०	३२.००
समीरपन्नगरस नं २	१ ४०	१३ ००
पञ्चमृत रस	१ ४०	१३ ००
स्वर्णभूपति रस	३ ३०	३२ ००
व्याधिहरण रस	१ ८०	१७ ००

भस्में

	३ ग्राम	१० ग्राम
अभ्रक भस्म न १	१३ ६०	४५ ००
अभ्रक भस्म न २	१ ४५	४ २५
अभ्रक भस्म न. ३	०.८०	२ २५
अकीक भस्म	१.१०	३.५०
कपर्द (कौडी) भस्म	०.४०	० ९०
कांत लौह भस्म	०.८०	२ २५
कुक्कुटाण्डत्वक भस्म	० ४०	१ ००
गोदंती हरतालभस्म	०.३५	० ७०
जहरमोगरा भस्म	० ९०	२ ७५
तवकीहरताल भस्म	२.७५	९ ००
ताम्र भस्म न० १	२ १५	७.००
ताम्र भस्म नं० २	१ ३०	४.०५
ताम्र भस्म नं०३	० ६०	२ ७५
नाग भस्म न०१	१ २०	३ ५०
नाग भस्म न०२	० ७०	२.१०
प्रवाल भस्म न.१	२ ००	६.५०
प्रवाल भस्म न २	०.८५	२ ५०
प्रवाल भस्म म ३	० ८५	२ ५०
प्रवाल भस्म न० ५	० ८०	२ २५
प्रवालभस्म चंद्रपुटी	० ८०	२ २५
वङ्गभस्म न १	१ ००	३ १०
वङ्गभस्म नं २	०.८०	२ २५
वैक्रांत भस्म	२.२५	७ २५
मल्ल (संखिया) भस्म	२ २५	७.२५
मृगशृङ्गभस्म श्वेत	०.३०	० ६०
माणिक्य भस्म	२.८५	९ ००
माडूर [कीट] भस्म न० १	०.३५	० ८०
माडूर भस्म न० २	०.३०	० ६०
मुक्ताभस्म न० १	३६ ००	१२० ००
मुक्ताभस्म न० २	२७ ००	९० ००
यशद भस्म	०.६०	१ ७५
रौप्य भस्म न० १	४ ३०	१४ ००
रौप्य भस्म न० २	३ ८५	१२ ५०
लौह भस्म न०१	२ ५०	८ ००
लौह भस्म न०२	०.६५	१ ८५
लौह भस्म न०३	० ५०	१.१५
स्वर्णभस्म	९३ ००	×
स्वर्ण माक्षिक भस्म	०.७५	२.३०
शंख भस्म	०.३०	०.५५
शंकर लौह भस्म	१ ४०	४ ५०
शुक्ति भस्म (मोतीसीप) भस्म	०.३०	० ७०
संगजराहत भस्म	०.३५	०.८०
त्रिवंग भस्म न० १	१.४०	४ ५०
त्रिवंग भस्म न० २	० ६०	१ १५

पिष्टी

	३ ग्राम	१० ग्राम
प्रवाल पिष्टी	० ८०	२ २५
मुक्ता पिष्टी न० १	३३ ००	११० ००
मुक्ता पिष्टी नं०	२४ ००	८० ००
अकीक पिष्टी	० ८०	२ २५
जहरमोगरा पिष्टी	० ८०	२ २५
कहरवा पिष्टी	३ ०५	१० ००
मुक्ताशुक्ति पिष्टी	० ३०	० ५५
माणिक्य पिष्टी	१ ८५	६ ००
वैक्रांत पिष्टी	१ ८५	६ ००

शोधित द्रव्य

	१०० ग्राम	१० ग्राम
शुद्ध गंधक आमलासार	४ ००	० ५०
शुद्ध वच्छनाग	६ ००	० ७०
शुद्ध विषबीज [वस्त्रपूत]	८ ५०	०.९५
शुद्ध जयपाल	५ ००	० ६०
शुद्धताल [हरताल]	१२ ००	१ ३०
शुद्ध भल्लातक	५ ००	० ६०
शुद्धशिला (मशिल)	१२ ००	१ ३०
शुद्धताम्रचूर्ण १ किलोग्राम		३६ ००
शुद्धलौह [फौलाद] ,,		७ ००
शुद्ध धान्याभ्रक ,, (शुद्धवज्राभ्रक)		६ ५०
शुद्ध माडूर ,,		३.००

पर्पटी

	१ ग्राम	१० ग्राम
ताम्र पर्पटी न १	१ ००	९ ००
ताम्रपर्पटी न २	० ५०	४ ५०
पचामृत पर्पटी न १	१ ००	९ ००
पचामृत पर्पटी न २	० ५०	४ ५०
विजय पर्पटी [स्वर्णमुक्ता घटित]	३ ८०	३७ ००
बोल पर्पटी न १	० ८०	७ ००
बोल पर्पटी न २	० ५०	३ ५०
रस पर्पटी न०१	१ ००	९ ००
रस पर्पटी न २	० ६०	५ ००
लोह पर्पटी न १	१ ००	९ ००
लोह पर्पटी न २	० ६०	५ ००
श्वेत पर्पटी	X'	० ५०
स्वर्ण पर्पटी न १	३ ८०	३७ ००
स्वर्ण पर्पटी न २	२ ५०	२४ ००

नोट—न १ की प र्टी विशेष शुद्ध-पारद से निर्मित है तथा न० २ हिंगुलोत्थ पारद द्वारा निर्मित है। न १ की पर्पटी की मात्रा कम और गुण अधिक होने से इसे व्यवहार मे अधिक लेते हे।

वहुमूल्य

रस रसायन गुटिका

	१ ग्राम	१० ग्राम
आमवातेश्वर रस	१.८०	१७ ००
वृ० कस्तूरी भैरवरस	२.९०	२८ ००
कस्तूरी भैरव रस	२ ५०	२४ ००
कस्तूरी भूपण रस	२ ६०	२५ ००
वृ. कामचूडामणिरस	१ ८५	१७ ५०
कामदुघा रस	१ ३०	१२.००
कामिनीविद्रावण रस	१ ८५	१७ ५०
कुमारकल्याण रस	५ ७०	५६ ००
कृष्णचतुर्मुख रस	२.१०	२० ००
चतुर्मुख चितामणि रस	२.९०	२८ ००
जयमगल रस [स्वर्णयुक्त]	४ ३०	४२ ००
प्रवालपञ्चामृत रस	१ ५०	१४ ००
पुटपक्वविषमज्वरातक लोह	२ २०	२१ ००
वृ पूर्णचन्द्र रस	२ ५०	२४ ००
बसतकुसुमाकर रस	४ ३०	४२ ००
वृ चितामणि रस	४ ३०	४२ ००
ब्राह्मीवटी न १ (स्वर्णमुक्तायुक्त)	४ ३०	४२ ००
मृगाकपोटलीरस	१० ९०	१०८ ००
मधुमेहातक रस १० गोली		३ १०
मधुरातक वटी (मौक्तिकवटी)	१ ८५	१७ ५०
महाराजनृपतिवल्लभ रस	१ २०	११ ००
महालक्ष्मीविलास [नारदीय]	१ ५०	१४ ००
महाराजवङ्ग भस्म	१ ३०	१२ ००
योगेन्द्र रस	४ ९०	४८ ००
रसराज रस	३ ५०	३४ ००
राजमृगाक रस	३ ६०	३५ ००
वृ लोकनाथ रस	० ७०	५ ७५
श्वासचितामणिरस	२ १०	२० ००
श्वासकासचिता रस	३ ६०	३५ ००
स्वर्णबसन्तमालती न. १	४ ३०	४२ ००
स्वर्ण बसतमालती न २ [शास्त्रीय]	२ ९०	२८ ००
सर्वाङ्गसुन्दर रस	३ ८०	३७ ००
सग्रहणी कपाट रस न १	४ १०	४० ००
सूतशेखर रस न १ [स्वर्णयुक्त]	२ २०	२१ ००
हिरण्यगर्भ पोटली रस	३ ९०	३८ ००
हेमगर्भ रस	४ १०	४० ००

रसायन गुटिका

	१० ग्राम	५० ग्राम
अग्निकुमार रस	०.८०	३.५०
अजीर्ण कण्टक रस	०.९५	४ २५
अग्नितुण्डी वटी	० ८५	३ ७५
आनन्दभैरवरस [लाल]	१ ५०	७ ००
आनन्दोदय रस	१ ९०	९ ००
आदित्य रस	१ ५०	७ ००
आमलकी रसायन	१ २०	५ ५०
आरोग्यवर्धिनी वटी	१ २०	५ ५०
इच्छाभेदी रस	१ ४०	६ ५०
इच्छाभेदीवटी [गोली]	१ ५०	७ ००
उपदशकुठार रस	० ९५	४ २५
एकागवीर रस	५ ००	२४ ५०
एलादिवटी	० ७०	३ ००
एलुआदि वटी	० ७०	३ ००
कनकसुन्दर रस	१ २०	५ ५०
कफकुठार रस	१ ७०	८ ५०
कफकेतु रस	० ९५	४ २५
कामदुघा रस न. २	२ ५०	१२ ००
काकायन गुटिका	० ८०	३ ५०
कीटमर्द रस	० ८०	३ ५०
क्रव्यादि रस	४,५०	२२ ००
कृमिकुठार रस	१ ६०	७ ५०
खैरसार वटी	० ७५	३ २५
गगाधर रस	२ १०	१० ००
गन्धकवटी	० ९५	४ २५
गन्धक रसायन	१ ९०	९ ००
गर्भविनोद रस	१ २०	५ ५०
गर्भपाल रस	२ ५०	१२ ००
गर्भचितामणि रस	३ ५०	१७ ००
गुल्मकुठार रस	१ ४०	६ ५०
गुल्मकालानल रस	१ ६०	७ ५०
गुड पिप्पली	० ८०	३ ५०
गुडमारवटी	० ७०	३.००
ग्रहणी गजेन्द्र रस	३ ७०	१८ ००
ग्रहणीकपाट रस न २	२ ९०	१४ ००
घोड़ाचोली रस [अश्वकचुकी रस]	१.२०	५.५०

	१० ग्राम	५० ग्राम
चन्द्रप्रभा वटी	१ २०	५ ५०
चन्द्रोदयवर्ती	१ ००	४ ५०
चन्द्रकला रम	१ ६०	७ ५०
चन्द्रांशु रस	१ ९०	९ ००
चन्द्रामृत रम	१ २०	५ ५०
चित्रकादि वटी	० ८०	३ ५०
ज्वरांकुश रस	१ १०	५ ००
जयवटी	१ ९०	९ ००
जलोदरारि वटी	१ ३०	६ ००
जातीफल रम	२ ९०	१४ ००
तक्र वटी	१ ५५	७ २५
दुर्जलजेता रस	१ १५	५ २५
दुग्ध वटी न २	१ ५५	७ २५
नवज्वरहर वटी	१ ५५	७ २५
नष्ट पुष्पान्तक रस	४ ३०	२१ ००
नृपतिवल्लभ रस	१ ९०	९ ००
नाराच रस	१ ३०	६ ००
नित्यानन्द रस	१ ४०	६ ५०
प्रतापलंकेश्वर रस	१ ३०	६ ००
प्रदरारि रस	१.५०	७ ००
प्रदरातक रस	२ ४०	११ ५०
प्लीहारि रस	१ ३०	६ ००
प्राणेश्वर रस	३ ५०	१७ ००
प्राणदा गुटिका	० ७५	३ २५
पञ्चामृत रस न १	१ ८०	८ ५०
„ न २	२ १०	१०.००
पाशुपत रस	१ ३०	६ ००
पीपल ६४ प्रहरी	४ ३०	२१ ००
वृ० शङ्ख वटी	१ १०	५ ००
वृ० नायकादि रस	० ९५	४ २५
बहुमूत्रान्तक रस	५.००	२४ ५०
बहुशाल गुड	० ८०	३ ५०
बालामृत रम(वटी)	५ ७०	२८ ००
ब्राम्ही वटी न० २	२ २०	१० ५०
वातगजाकुश रम	२ २०	१० ५०
विषमुष्टिका वटी	० ९५	४ २५

	१० ग्राम	५० ग्राम
वैताल रस	२ ९०	१४ ००
व्योषादि वटी	० ७०	३ ००
महामृत्युञ्जय रस (रक्त)	२.१०	१० ००
„ (कृष्ण)	२ १०	१० ००
मकरध्वज वटी ५०० गोली		४० ००
महागन्धक रस	३ १०	१५ ००
मरिच्यादि वटी	० ७०	३ ००
महाशूलहर रस	१ ८०	८ ५०
महावातविध्वंस रस	३ ७०	१८ ००
मार्कण्डेय रस	१ ३०	६ ००
मूत्रकृच्छ्रान्तक रस	४ ३०	२१ ००
मेहमुद्गर रस	१,५०	७ ००
रक्तपित्तान्तक रस	१ ८०	८ ५०
रस पीपरी	३ १०	१५ ००
रामबाण रस	१ ३०	६ ००
लवंगादि वटी	१.००	४.५०
लशुनादि वटी	० ७०	३.००
लघुमालती वसंत	३ १०	१५ ००
लक्ष्मीविलास रस	२ ५०	१२ ००
लक्ष्मीनारायण रस	३ ७०	१८ ००
लाई [रस] चूर्ण	१ ३०	६ ००
लीलावती गुटिका	१ ३०	६ ००
लीलाविलास रस	२ १०	१० ००
लोकनाथ रस	२ ३०	११ ००
श्वासकुठार रस	१ ३०	६ ००
शंखवटी	० ७०	३ ००
संशमनी वटी	१ ३०	६ ००
शिरोवज्र रस	१ ५०	७ ००
शिलाजीत वटी	२ १०	१० ००
शीतभंजी रस[वटी]	२ ४०	११-५०
शूलवज्रिणी वटी	१.५०	७ ००
शूलगजकेशरी रस	२ ९०	१४ ००
शृंगाराभ्रक रस	२ ३०	११ ००
समीरगज केशरी	५ ७०	२८ ००
स्मृतिसागर रस	४ ३०	२१ ००
सन्निपात भैरव रस	१ ९०	९ ००

	१० ग्राम	५० ग्राम
संजीवनी वटी	० ७०	३ ००
सर्पगंधा वटी	२ ३०	११ ००
सिद्धप्राणेश्वर रस	१ ३०	६ ००
सूत शेखर रस	३ ५०	१७ ००
सूरण मोदक वृ०	० ७०	३ ००
सौभाग्य वटी	१ ३०	६ ००
हिंग्वादि वटी	० ७०	३ ००
हृदयार्णव रस	३ १०	१५ ००
त्रिपुर भैरव रस	१ ५०	७.००
त्रिभुवनकीर्ति रस	१ २०	५ ५०
त्रिविक्रम रस	३ ५०	१७ ००

लोह-मांडूर

	१० ग्राम	५० ग्राम
अम्लपित्तातक लोह	२ ३०	११ ००
चन्दनादि लोह(ज्वर)	१ ५०	७ ००
चन्दनादिलोह(प्रमेह)	१ ८५	८ ७५
ताप्यादिलोह	३ ६०	१७ ५०
धात्री लोह	१ ३०	६ ००
नवायस लोह (लोह-भस्म से निर्मित)	१ ००	४ ५०
प्रदरारि लोह	१ ६०	७ ५०
प्रदरान्तक लोह	१ ९०	९ ००
पुनर्नवादि माडूर	१ ००	४ ५०
विडङ्गादि लोह	१ १०	५ ००
विषम ज्वरातक लोह	१ ८०	८ ५०
यकृत हर लोह	१ ६०	७ ५०
शोथोदरारि लोह	२ १०	१० ००
सर्वज्वरहर लोह	१.८०	८ ५०
सप्तामृत लोह	१ ५०	७ ००
त्र्यूषणादि लोह	१ ५०	७ ००

गुग्गुल

	१० ग्राम	५० ग्राम
अमृतादिगुग्गुल	० ७०	३ ००
काचनार गुग्गुल	० ९०	२.५०
किशोर गुग्गुल	० ६०	२ ५०
गोक्षुरादि गुग्गुल	० ६०	२ ५०
पुनर्नवादि गुग्गुल	० ६०	२ ५०
बृ० योगराज गुग्गुल	१.४५	६ ७५

	१० ग्राम	५० ग्राम
योगराज गुग्गुल	० ५०	२ ००
रसाभ्र गुग्गुल	१ ३०	६ ००
रास्नादि गुग्गुल	०.६०	२.५०
सिंहनाद गुग्गुल	०.६०	२ ५०
त्रयोदशांग गुग्गुल	०.६०	२ ५०
त्रिफलादि गुग्गुल	०.६०	२ ५०

अरिष्ट—आसव

	६२६ मि.लि. (१ बोतल)	४५५ मि लि. (१ पौंड)	२२७ मि लि. (८ औंस)
अमृतारिष्ट	३ ६०	३ ०५	१ ७०
अर्जुनारिष्ट	३ ७०	३ १०	१ ७५
अरविंदासव न० १	६ ३५	७ ८५	४ २०
केशरयुक्त	११४ मि लि. (४औंस)		२ ३५
अरविंदासव न० २	४ १०	३.३५	२ १०
अशोकारिष्ट	३ ७०	३ १०	१ ७५
अभयारिष्ट	३ ७०	३ १०	१ ७५
अश्वगंधारिष्ट	४ १०	३ ३५	२ १०
उशीरासव	३ ६०	३.०५	१ ७०
कनकासव	३ ६०	३ ०५	१.७०
कुमारी आसव	३ ७०	३ १०	१ ८०
कुटजारिष्ट	३ ७५	३ १५	१ ८५
खदिरारिष्ट	३ ५०	३ ०५	१ ७०
चन्दनासव	३ ५०	३ ०५	१ ७०
दशमूलारिष्ट न० १ [कस्तूरी सहित]	६ ५०	५.३५	२ ९०
दशमूलारिष्ट नं० २ [कस्तूरी रहित]	४.००	३ ३०	१ ९५
द्राक्षासव	४ ००	३ ३०	१ ९५
द्राक्षारिष्ट	४ ००	३.३०	१.९५
देवदार्व्यारिष्ट	३ ७०	३ १०	१ ८०
पत्रांगासव	३ ७०	३ १०	१ ८०
पिपल्यासव	३.७०	३ १०	१.८०

	६२६ मि.लि (१ बोतल)	४५५ मि. लि (१ पौंड)	२२७ मि लि (८ औंस)
पुनर्नवासव	३.५५	३ ०५	१ ७०
वल्लभारिष्ट	६ १०	५ ००	२.६५
बबूलारिष्ट	३.५०	३ ०५	१.७०
वासारिष्ट	४ ००	३ ३०	१ ९५
बालरोगांतकारिष्ट	४.५०	३.७५	२.०५
विडङ्गासव	३ ६०	३ ०५	१ ७०
रक्तशोधिकारिष्ट	४.१०	३.३५	१ ९५
रोहितकारिष्ट	३.५०	३ ०५	१ ७०
लोहासव	३ ३०	२ ८५	१ ६५
सारस्वतारिष्ट न० १ (स्वर्णयुक्त)	×	×	७.६०
सारस्वतारिष्ट नं० २	४.५०	३.७०	२ ००
सारिवाद्यासव	४.००	३.३०	१.९०

अर्क

अर्क उसवा	४.१०	३ ४०	१ ८०
दशमूल अर्क	२.५०	२.२५	१.२५
द्राक्षादि अर्क	३.१०	२ ८०	१.५०
महामंजिष्ठादि अर्क	२ ५०	२ २५	१.२५
रास्नादि अर्क	२ ५०	२ २५	१.२५
सुदर्शन अर्क	२.८०	२ ५०	१ ३५
अर्क सौंफ	२.७५	२.४५	१ ३५
अर्क अजवायन	२ ७५	२.४५	१.३५
अर्क पोदीना	२ ८०	२ ५०	१ ३५

क्वाथ

दशमूल क्वाथ १ किलोग्राम १ ७५
१०० ग्राम ०.२५
२० ग्राम की १०० पुड़िया ७ ००

दार्व्यादि क्वाथ १ किलो० ५.००
१२५ ग्राम की ८ पुड़िया ५.२५

देवदार्व्यादि क्वाथ १ किलो० ४ २५
१२५ ग्राम की ८ पुड़िया ४ ५०

बलादि क्वाथ १ किलोग्राम ३.००
१२५ ग्राम की ८ पुड़िया ३ २५

महामंजिष्ठादि क्वाथ ५.००
१२५ ग्राम की पुड़िया ५.२५

महारास्नादि क्वाथ १ किलो० ५ ००
१२५ ग्राम की ८ पुड़ियां ५ २५

त्रिफलादि क्वाथ १ किलो ४.२५
१२५ ग्राम की ८ पुड़ियां ४.५०

चूर्ण

	१ किलोग्राम	५० ग्राम
अग्निमुख चूर्ण	१४.००	०.९५
अविपत्तिकर चूर्ण	१२.५०	०.८०
अजीर्णपानक चूर्ण	१७.००	१ १०
उदरभास्कर चूर्ण	१६ ००	१.०५
एलादि चूर्ण	२१ ००	१ ३०
कपित्थाष्टक चूर्ण	१२ ५०	० ८०
कामदेव चूर्ण	१६.००	१ ०५
गगाधर चूर्ण	१४ ००	० ९५
चन्दनादि चूर्ण	१४ ००	० ९५
ज्वर भैरव चूर्ण	१४.००	० ९५
जातीफलादि चूर्ण	२८ ००	१ ६५
तालीसादि चूर्ण	२१ ००	१ ३०
दशनसस्कार चूर्ण	१७ ००	१ १०
नारायण चूर्ण	१४ ००	० ९५
निम्वादि चूर्ण	१४.००	० ९५
प्रदरातक चूर्ण	१४ ००	० ९५
पञ्चसकार चूर्ण	११ ००	० ८०
प्रदरादि चूर्ण	१४ ००	० ९५
पुष्यानुग चूर्ण	१४.००	० ९५
यवानीखांडव चूर्ण	१४ ००	० ९५
लवगादि चूर्ण	२४.००	१ ५०
लवणभास्कर चूर्ण	१२ ००	० ८०
सारस्वत चूर्ण	१४ ००	०.९५
सामुद्रादि चूर्ण	१६ ००	१.०५
शृ ग्यादि चूर्ण	१७ ००	१ १०
सितोपलादि चूर्ण [असली बंशलोचन से बना]	३५ ००	२.००
महासुदर्शन चूर्ण	११ ००	० ८०
हिग्वाष्टक चूर्ण	२० ००	१.२५
त्रिफलादि चूर्ण	९ ००	०.७०

तैल घृत

	४५५ मि लि [१ पोड]	११४ मि लि [४ औंस]	५७ मि लि [२ औंस]
आंवला तैल	८ ५०	२ ३०	१ २५
इरिमेदादि तैल	९ ००	२ ४०	१.३०
कटफलादि तैल	१० ५०	२ ७५	१.४५
कन्दर्प सुन्दर तैल	११ ५०	३ ००	१.६०
काशीसादितैल	१० ००	२.६०	१ ३५
किरातादि तैल	८ ५०	२ ३०	१.२५
कुमारी तैल	९ ००	२ ४०	१ ३०
ग्रहणीमिहिर तैल	१०.००	२ ६०	१ ३५
गुडुच्यादि तैल	९ ००	२ ४०	१.३०
महाचदनादि तैल	११ ००	२ ९०	१ ५०
चदनवलालाक्षादितैल	११ ००	२ ९०	१.५०
जात्यादि तैल	११.००	२.९०	१ ५०
दशमूल तैल	१० ००	२ ६०	१ ३५
दार्व्यादि तैल	११ ००	२ ९०	१ ५०
महानारायण तैल	१० ००	२ ६०	१ ३५
पिप्पल्यादि तैल	१० ००	२ ६०	१ ३५
पिंड तैल	११ ५०	३ ००	१ ६०
पुनर्नवादि तैल	९ ००	२ ४०	१ ३०
ब्राह्मी तैल	११ ००	२ ९०	१.५०
विल्व तैल	११.००	२ ९०	१ ५०
विषगर्भ तैल	९ ५०	२ ५०	१ ३०
भृङ्गराज तैल	१० ५०	२ ७५	१ ४५

	४५५ मि. लि [१ पौड]	११४ मि.लि [४ औंस]	५७ मि लि. [२ औंस]
महाविषगर्भ तैल	१०.५०	२.७५	१.४५
वैरोजा का तैल	१४.००	३ ६५	१.९५
महामरिच्यादि तैल	९ ००	२ ४०	१ ३०
महामास तैल	११.००	२ ९०	१.५०
मोम का तैल	१७ ००	४ ३५	२ २५
राल का तैल	१६ ००	४.१०	२.१०
लाक्षादि तैल	१० ००	२ ६०	१ ३५
शुष्कमूलादि तैल	९.००	२ ४०	१.३०
षट्विन्दु तैल	१० ५०	२ ७५	१.४५
हिमसागर तैल	११ ००	२ ९०	१.५०
क्षार तैल	१६.००	४ १०	२ १०
अर्जुन घृत	१७.००	४ ४०	२.२५
अशोक घृत	१७ ००	४.४०	२.२५
अग्नि घृत	१७ ००	४.४०	२ २५
कदली घृत	१८ ००	४.७५	२ ४०
कामदेव घृत	२०.००	५ १५	२.६५
दूर्वादि घृत	१७ ००	४ ४०	२ २५
धात्री घृत	१७ ००	४ ४०	२ २५
पञ्चतिक्त घृत	१४ ००	३ ६५	१ ८५
फल घृत	१७ ००	४.४०	२.२५
ब्राह्मी घृत	१७ ००	४ ४०	२ २५

	४५५ मि लि. [१ पौंड]	११४ मि लि. [४ औंस]	५७ मि लि. [२ औंस]
महाविन्दुघृत	१७ ००	४ ४०	२ २५
महात्रिफलादिघृत	१८ ००	४ ७५	२ ४०
श्रृङ्गीगुड घृत	१७ ००	४ ४०	२ २५
सारस्वत घृत	१७ ००	४ ४०	२ २५

नोट—सभी शीशिया पिल्फर कैंप से सून्दर पैक की जाती है।

क्षार-सत्व-द्राव

	१०० ग्राम	१० ग्राम
वज्रक्षार	३ ५०	० ४५
अपामार्ग क्षार	३ ५०	० ४५
इमली क्षार	३ ५०	० ४५
वासा क्षार	४ २५	० ५५
कटेरी क्षार	४ २५	० ५५
कदली क्षार	३ ५०	० ४५
तिल क्षार	४ २५	० ५५
मूली क्षार	५ ००	० ६०
ढाक क्षार	३ ५०	० ४५
आक क्षार	५ ००	० ६०
केतकी क्षार	३ ५०	० ४५
चना (चणक) क्षार	४.२५	० ५५
यवक्षार	२ ५०	० ३५
गिलोय सत्व	४ ००	० ५०
नाडी क्षार	५ ००	० ६०

शखद्राव ११४मिलि लिटर (४औंस) ११ ५०

,,२८ मिलिलिटर (१ औंस) ३ ००

अवलेह

च्यवनप्राश्यावलेह १ किलो १० ००

४५० ग्राम शीशी मे	५ ००
२५० ग्राम शीशी में	२ ८०
२५० ग्राम कार्डवक्स मे	३ ००
१२५ ग्राम शीशी मे	१.५०

	१ किलोग्राम	२५० ग्राम
कुटजावलेह	१३ ००	३ ४५
कण्टकारीअवलेह	१२ ५०	३ ४०
कुशावलेह	१३ ००	३ ४५
डासावलेह	१२ ५०	३ ४०
ब्राह्मी रसायन	१४ ००	३ ७०
आर्द्रक खण्ड	१४ ००	३ ७०

	१ किलोग्राम	१२५ ग्राम
सुपारी पाक	१४ ००	२ ००

विपमुष्टिकावलेह ५० ग्राम ६ ७५

मधुकाद्यलेह १७५ ग्राम (१५ तो) ४ ००

मलहम लेप

	८ औंस	२ औंस
जात्यादि मलहम	५ ००	१ ४०
पारदादि मलहम	७ ००	१ ९०
अग्निदग्धव्रणहर मलहम	४ ५०	१ २५
दशागलेप	५.००	१.४०
निम्बादि मलहम	८ ५०	०.६०

बहुमूल्य द्रव्य

	१० ग्राम
असली कस्तूरी न १	१२५ ००
कस्तूरी काश्मीरउत्तम	६० ००
अम्बर	३६ ००
गोलोचन	८० ००
केशर काशमीरी मोगरा	४० ००
चादी के वर्क	१० ००
केशर चूरा (औषधि निर्माण के लिये उत्तम)	१६ ००

भस्म निर्माणार्थ द्रव्य

अकीक दाना	५० ग्राम	२ ००
वैक्रात खड	१० ग्राम	२ ००
अकीक खड	,,	१ ००
माणिक्य [याकूत]	,,	२ ००
जहर मोहरा खताई	१० ग्राम	१ ००
नीलम खड	,,	२ ००
खर्पर (खपरिया)	,,	२ ००
पिरोजा खड	१० ग्राम	२ ००
कहरवा		३ ५०
पुखराज खड		३ ००

नोट—बहुमूल्य द्रव्य एव भस्म निर्माणार्थ द्रव्यो के भाव नैट है। इन भावो पर किसी को कमीशनादि न दिया जायगा। इन भावो मे घट बढ होना भी सभव है। आर्डर सप्लाई के समय जो भाव होगा वह लगाया जायगा।

केवल रजिस्टर्ड चिकित्सकों के लिये—

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा निर्मित

अनुभूत एवं सफल पेटेंट दवायें

हमारी ये पेटेण्ट औषधियां ७० वर्षों से भारत के प्रसिद्ध वैद्यराजों और धर्मार्थ औषधालयों द्वारा व्यवहार की जा रही हैं। अतः इनकी उत्तमता के विषय में किसी प्रकार का संदेह नहीं करना चाहिये।

मकरध्वज वटी

(अर्थात् निरोगबन्धु)

आयुर्वेद चिकित्सा-पद्धति में सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं आशुफलप्रद महौषधि सिद्ध मकरध्वज नम्बर १ अर्थात् चन्द्रोदय है। इसी अनुपम रसायन द्वारा इन गोलियों का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त अन्य मूल्यवान एवं प्रभावशाली द्रव्यों को भी इसमें डाला जाता है। ये गोलियां भोजन को पचाकर रस, रक्त आदि सप्त धातुओं को क्रमशः सुधारती हुई शुद्ध वीर्य का निर्माण करती और शरीर में नव-जीवन व नवस्फूर्ति भर देती है। जो व्यक्ति चन्द्रोदय के गुणों को जानते हैं वे इसके प्रभाव में सन्देह नहीं कर सकते। वीर्य विकार के साथ होने वाली खांसी, जुकाम, सर्दी, कमर का दर्द, मन्दाग्नि, स्मरण शक्ति का नाश आदि व्याधियां भी दूर होती हैं। क्षुधा बढ़ती व शरीर हृष्ट-पुष्ट और निरोग बनता है। जो व्यक्ति अनेकों औषधियां सेवन कर निराश हो गये हैं उन निराश पुरुषों को यह औषधि बन्धु तुल्य सुख देती है। इसीलिये इसका दूसरा नाम निरोगबन्धु है।

चालीस वर्ष की आयु के बाद मनुष्य को अपने में एक प्रकार की कमी और शिथिलता का अनुभव होता है। ऐसा रोग प्रतिरोधक शक्ति में कमी आ जाने के फलस्वरूप होता है। मकरध्वज वटी इस शक्ति को पुनः उत्तेजित करती और मनुष्य को सबल व स्वस्थ बनाये रखती है। मूल्य—१ शीशी (४१ गोलियों की) ३.५० छोटी शीशी (२१ गोलियों की) १.८५

कुमारकल्याण घुटी

(बालकों के लिये सर्वोत्तम घुटी)

इसके सेवन करने वाले बालक कभी बीमार नहीं होते किंतु पुष्ट हो जाते हैं। यह बालकों को बलवान बनाने की बड़ी उत्तम औषधि है। रोगी बालक के लिये तो संजीवनी है। इसके सेवन से बालकों के समस्त रोग जैसे ज्वर, हरे पीले दस्त, अजीर्ण, पेट का दर्द, अफरा, दस्त में कीड़े पड़ जाना, दस्त साफ न होना, सर्दी, कफ, खांसी, पसली चलना, सोते में चौंक पड़ना, दांत निकलने के रोग आदि सब दूर हो जाते हैं। शरीर मोटा-ताजा और बलवान हो जाता है। पीने में मीठी होने से बच्चे आसानी से पी लेते हैं। मूल्य—१ शीशी आध औंस (१४ मिलि लिटर) ०.३५, ४ औंस (११४ मि लि) की शीशी सुन्दर कार्डबक्स में २.३० २ औंस (५७ मि मि) की शीशी सुन्दर कार्डबक्स में १.२०, १ पौंड (४५५ मि लि) ८.५०

कुमार रक्षक तैल—इसको बच्चे के सम्पूर्ण शरीर पर धीरे-धीरे रोजाना मालिश करें। आधा घण्टे बाद स्नान करायें। बच्चे में स्फूर्ति बढ़ेगी, मांसपेशियां सुदृढ़ हो जायेगी हड्डियों में ताकत पहुंचेगी। मूल्य १ शीशी ४ औंस (११४ मि लि) २.५०, छोटी शीशी २ औंस (५७ मि लि) १.३५

ज्वरारि—कुनीन रहित विशुद्ध आयुर्वेदिक ज्वर जूड़ी को शीघ्र नष्ट करने वाली सस्ती एवं सर्वोत्तम महौषधि है। जूड़ी और उसके उपद्रवों को नष्ट करती है मूल्य—दश मात्रा की शीशी १.५०, २० मात्रा की बड़ी शीशी २.८०, ५० मात्रा की पूरी बोतल ५.००

कासारि—हर प्रकार की खांसी को दूर करने वाली सर्वत्र प्रशंसित अद्वितीय औषधि है। यह बासा पत्र क्वाथ एवं पिप्पली आदि कासनाशक आयुर्वेदिक द्रव्यों से निर्मित शर्बत है। अन्य औषधियों के साथ इसको अनुपान रूप में देना भी उपयोगी है। सूखी व तर दोनों प्रकार की खांसी को नष्ट करने वाली सस्ती दवा है। मूल्य—बीस मात्रा की शीशी १.६०, ५ मात्रा की शीशी ७० पैसे, १ पौंड (४५५ मि. लि) ५.२५

कामिनी रक्षक—बार-बार गर्भस्राव हो जाना बच्चो का छोटी आयु मे ही मर जाना, इन भयकर व्याधियो से अनेक सुकुमार स्त्रिया आजकल पीडित है। यदि कामिनी रक्षक को गर्भ के प्रथम माह से नवम माह तक सेवन कनावे तो न गर्भस्राव होगा और न गर्भपात। बच्चा स्वस्थ, सुन्दर और सुडोल उत्पन्न होगा । मूल्य-२ औस (५७ मि लि.) की १ शीशी २ ५० रु०

शिरोविरेचनीय सुरमा— जिनका जुकाम रुकने के कारण सिर मे दर्द हो वोइस,सुरमा को सलाई से हल्का–हल्का नेत्रो मे आजे थोडा देर ही मे आख व नाक से वलगम निकलना प्रारम्भ होजायगा और सभी कष्ट दूर होगे । पुराने सिर दर्द मे पथ्यादि क्वाथ व शिरोवज्र रस भी साथ . मे सेवन कराने से शीघ्र लाभ होगा। मूल्य–१ ग्राम की शीशी ७५ नये पैसे।

वातारि वटी—वातरोग नाशक सफल और सस्ती दवा है। १–२ गोली प्रात साय गरम जल या रास्नादि क्वाथ के साथ लेने से सभी प्रकार की वात व्याधिया नष्ट होती है। मू–१ शीशी (५० गोली) २ ५०

करञ्जादि वटी—ये गोलिया मलेरिया के लिये उत्तम प्रमाणित हुई हैं। १ शीशी (५०गोली) १ ०० रु

कासहर वटी—हर प्रकार की खासी के लिये सस्ती व उत्तम गोलिया है। दिन मे ५-७ वार अथवा जिस समय खासी अधिक आ रही हो १-१ गोली मुह मे डाल रस चूसे, गला व श्वास नली साफ होती है । कफ वन्द होता हे । मूल्य–१ शीशी (१० ग्राम) ६० न० पै०

निम्बादि मलहम—यह मलहम फोडा फुसी व घावो के लिए अत्युत्तम है। निम्ब क्वाथ से घाव या फोडो को साफ कर इस मरहम को लगाने से वे शीघ्र ही भरते है। नासूर तक को भरने की इसमे शक्ति है। मू०–१ शीशी आध औंस ६० नये पैसे, २०० ग्राम का १ पैक ८ ५० रु०

वल्लभ रसायन—किसी भी रोग से किसी भी प्रकार का रक्तस्राव होता हो तो यह विशेष लाभ करता है। रक्त को वन्द करने के लिये अव्यर्थ औषधि है। मू० २ औस की १ शीशी २ ०० रु०

रक्तवल्लभ रसायन—इससे ज्वर के साथ होने वाला रक्तस्राव वन्द होता है। ज्वर को दूर करने और रक्त को वन्द करने के लिये अव्यर्थ है। १ शीशी आध औस (१४ मि० लि०) २ ०० रु०

सरलभेदी वटी—जिनको नित्य ही कब्ज की शिकायत रहती हो और कई-कई बार दस्त जाना पडता हो उन्हे १-२ गोली रात्रि मे सेवन करने से नित्य प्रात दस्त साफ होता है तथा कार्य करने मे उत्साह वढता है। मू० १ शीशी (३१ गोली) १ ५० रु०

गोपाल चूर्ण—जिनकी प्रकृति पित्त की हो उन्हे इसके सेवन से दस्त साफ होता है। जिनको मलावरोध हो उन्हे इसमे से ३ माशे रात को सोते समय गुनगुने जल के साथ या गरम दूध के साथ फाक लेने से सुवह दस्त साफ हो जाता है। १ शीशी (२ औंस) १ ००

मृदुविरेचक चूर्ण—यह मृदु विरेचक है। जिन्हे मलावरोध रहता हो और अनेक औषधियो से न गया हो भोजनोपरात ३-३ माशे गुनगुने पानी से फकाये यदि पेट मे खुरचन सी मालूम पडे तो थोडी सौंफ चबा ले। इसके १५ दिन के सेवन से मलावरोध नष्ट हो जाता है। मू० १ शीशी १ ००

आंवनिस्सारक वटी—प्रात काल गुनगुने जल के साथ तीन गोली तक सेवन कराने से गुदा के द्वारा आव निकलने लगती है। आव निकालने के लिये यह एक ही वस्तु हे। यदि पेट मे दर्द ऐंठन हो तव चिन्ता नही करें क्योकि आव निकलते समय प्राय ऐसा होता है। मू० १ शीशी १ तोला (१० ग्राम) १ २५ रु०

मुंह के छालों की दवा—इसको छालो पर बुरककर मुह नीचे करदे, लार गिरने लगेगी, दिन रात मे छाले नष्ट हो जायेगे मू० १ शीशी (आध औस) ०.८०

कर्णामृत तेल—कान मे साय-साय शब्द होना, दर्द होना कान से मवाद वहना आदि सभी कर्ण-रोगो के लिये उत्तम तैल है। आधा औस (१४ मि लि)० ८०

बालोपकारक वटी—बालक वेहोश हो जाता हे, हाथ् पैर ऐंठ जाते है, मुख से लार (झाग) देने लगता है, दाती वन्द हो जाती हे। वालक की ऐसी हालत मे यह अक्सीर प्रमाणित होती है। १ शीशी (३१ गोली) २ ५०

मधुरौल—मधुमेह,वहुमूत्र व सोमरोग मे भी यह लाभप्रद है। मू० १० गोली ३ ०० रु०

पायरिया मंजन—इस मजन के नित्य व्यवहार

से दांतो से खून जाना, मवाद जाना, टीस मारना, पानी लगना आदि दूर होते है। मूल्य १ शीशी १ ००

नयनामृत सुरमा—नेत्र रोगो के लिये उपयोगी सुरमा है। चादी या काच की सलाई से दिन मे एक बार लगाने से धुधला दीखना, पानी निकलना, व खुजली नष्ट होती है। मू ३ माशे [२ ९२ ग्राम] की शीशी ०.७५ पैसे

अग्निसंदीपन चूर्ण—अग्नि को उत्तेजित करने वाला मीठा व स्वादिष्ट चूर्ण है। भोजन के बाद ३-३ माशे लेने से कब्ज दूर हो रुचि बढेगी। १ शीशी (२ औंस) मू० ० ७५

मनोरम चूर्ण—स्वादिष्ट, शीतल व पाचक चूर्ण है एक बार चख लेने पर शीशी समाप्त होने तक आप खाते ही रहेगे। गुण और स्वाद दोनो मे लाजवाब है। १ शीशी (२औंस) ० ७५, छोटी शीशी [१ औंस] ० ४५ पै०

अग्नि बल्लभक्षार—इसके सेवन से अग्निप्रज्वलित होती व खाना हजम होता है भूख न लगना, दस्त साफ न होना, खट्टी डकारो का आना, पेट मे दर्द तथा भारीपन होना, तबियत मचलाना, अपान वायु का बिगडना इत्यादि शिकायतें दूर होती है। जल दोष नहीं सताता सग्रह करने योग्य महौषधि है। क्योंकि जब किसी तरह की शिकायत हुई चट अग्नि बल्लभक्षार सेवन करने से उसी समय तबियत साफ हो जाती है। १ शीशी [२औंस] का मूल्य १ २५

ग्रहणी रिपु—यह ग्रहणी रोग के लिये अक्सीर १ शीशी आध औंस ३ ५० रु०

खाजरिपु—गीली तथा सूखी खाज के लिये अक्सीर है। मू एक शीशी [२औंस] १ २५, छोटी शीशी ० ७० पै०

दाद की दवा—यह दाद की अक्सीर दवा है। दाद को साफ करके किसी मोटे वस्त्र से खुजलाकर दवा की मालिश करे। स्नान करने के बाद रोजाना वस्त्र से अच्छी प्रकार पोंछ लिया करे। १ शीशी मू० ७५ पै०

नेत्र बिन्दु—दुखती आखो के लिये अत्युपयोगी मू० आधा औंस [१४ मि लि] ० ८८, ¼ औंस ० ५० रु०

आनन्द वटी—३२ गोली की १ शीशी २ ५०
स्वप्नोजित वटी—३० गोली की १ शीशी २ ५०
स्वप्नोजित चूर्ण—२ औंस की शीशी २ ५०
नारी सुखदा वटी—३० गोली की १ शीशी २ ००

हमारे सफल सैट

स्त्री रोगहर सैट—स्त्री सुधा-स्त्रियो के लिये सर्वश्रेष्ठ प्रसिद्ध लाभकारी औषधि, मूल्य १ बोतल ५ ५० १ शीशी २ ५०। मधुकाद्यवलेह—स्त्री सुधा के साथ इसे सेवन करने से शीघ्र लाभ होता है। १ शीशी ४ ००, पूरा सैट १५ दिन सेवन योग्य औषधियो का मूल्य ८ ००

हिस्टीरिया हर सैट—१५ दिन की तीन दवाओ का मूल्य १० ००

निर्बलता हर सैट—मकरध्वजवटी, तैल व पोटली तीन दवाये २० दिन व्यवहार करने योग्य मू ९ ००

धन्वन्तरि तेल—मुरदार नसो पर मालिश के लिये १ शीशी ३.५० रुपया

धन्वन्तरि पोटली—सिकाई करने के लिये १ डिब्बा मूल्य ३ ५०

श्वेत कुष्ठहर सैट—इसमे श्वेतकुष्ठहर अवलेह, वटी व घृत तीन औषधिया हैं। इन तीनो औषधियो के विधिवत् अधिक दिन सेवन करने से श्वेतकुष्ठ अवश्य नष्ट होता है। मूल्य १५ दिन की तीनो दवाओ का ८ ००

रक्तदोष सर सैट—इसमे धन्वन्तरि आयुर्वेदीय सालसापरेला, तालकेश्वर रस, इन्द्रवारुणादि क्वाथ—ये तीन औषधिया है इनके सेवन से से सभीप्रकार के रक्त विकार तथा चर्म रोग नष्टहोकर शरीर सुडौल बनता है मूल्य १५ दिन की तीनो दवायो का ९.००, पोस्ट व्यय ४ ५०

अर्शान्तक सैट—इसमे वटी, मलहम तथा चूर्ण तीन औषधिया है। इनके प्रयोग से दोनो प्रकार के अर्श नष्ट होते है। अर्श से आने वाला रक्त १-२ दिन में ही बद हो जाता है। मूल्य १५ दिन की तीनो दवाओ का ६ ००

वात रोगहर सैट—इसमे वातरोगहर तैल, रस, अवलेह ये तीन औषधिया हैं। इन तीनो औषधियो के व्यवहार से जोडो का दर्द, सूजन, अङ्ग विशेष की पीडा पक्षाघात आदि समस्त वात व्याधियो मे लाभ होता है। १५ दिन सेवन योग्य तीनों औषधियो का मूल्य १०.००

पता—धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)

नवीन सुपरीक्षित औषधियां

नीचे कतिपय सुपरीक्षित औषधियो का सक्षिप्त विवरण देरहे है। ये औषधिया सैकडो हजारो रोगियो पर सफलतापूर्वक व्यवहार करने के बाद ही हम अपने ग्राहको के समक्ष प्रस्तुत कर रहे है। आपसे निवेदन है कि इन औषधियो को अपने रोगियो पर निःसकोच व्यवहार करें।

धन्वन्तरि काला दन्तमंजन—

विशुद्ध आयुर्वेदीय द्रव्यो से निर्मित यह काला दन्तमजन नित्य व्यवहार करने के लिये बड़ा उपयोगी है। दातो को चमकीला बनाता है, मुखकी दुर्गन्ध दूर करता है, मसूडो को सुपुष्ट बनाता है। एक बार व्यवहार करने पर आप इसे सदैव व्यवहार करना पसद करेगे। मूल्य १ शीशी १ २५

निद्राकारक तैल—

किसी रोग के कारण या मानसिक चिन्ताओ के कारण निद्रा न आने पर इसकी मालिश सिर तथा बालो मे धीमे-धीमे कीजिये, मिनटो मे निद्रा आजायगी तथा रोगो व चिन्ताओ से छुटकारा मिलेगा। मूल्य २ औस की १ शीशी २ ८०, १ पौड २० ००

शोथ शार्दूल तैल—

इस तैल की मालिश करने से शोथ किसी भी प्रकार का हो तत्काल लाभ होगा। एक बार अवश्य परीक्षा करें मूल्य दो औस की १ शीशी २ ५०

शूलहर टिकिया—

दर्द गुर्दा के लिये अक्सीर। जलते हुये अगारो पर १ वा २ टिकिया रखकर उसका धुआ जहा दर्द हो वहा लगावें। दर्द तुरन्त बन्द होगा। मू० १० टिकियो की शीशी १ ८०

डब्बानाशक वटी—

बालको के पसली चलने [बाल न्यूमोनिया] के लिये अक्सीर औषधि। मूल्य ३० गोली की १ शीशी १ ५०

सौन्दर्यवर्धक चूर्ण (उबटन)—

चेहरे की कील, मुहासे आदि से रक्षा करने वाला तथा सुन्दर सुवर्ण बनाने वाला अनुपम उबटन है कन्याओ तथा सौदर्य प्रेमी महिलाओ के लिये अत्युपयोगी चूर्ण है। मूल्य एक शीशी १ ५०

चन्द्रप्रभावर्ति—

आख की फूली के लिये उत्तम इसके लगानेसे आख का जाला, धुन्ध, पानी ढलना, खुजली होना आदि नेत्र विकार नष्ट होते है। नियमित अधिक समय तक व्यवहार करने से फुली भी नष्ट होती है। सुपरीक्षित दवा है। मूल्य ५० ग्राम ८ ००, १० ग्राम १ ८०

जुसांदा [जुकाम नाशक क्वाथ]—

बिगडे जुकाम के लिये अति उत्तम क्वाथ है। जुकाम भयानक रोग है। इसकी उपेक्षा करने से अनेक भीषण रोग उत्पन्न हो जाते है। इस क्वाथ की ४-५ मात्रा ही सपूर्ण विकार नष्ट कर देती है। २०-२० ग्राम की १० पुडिया १ ६०

द्राक्षावलेह—

सूखी कास को दूर करने के लिये थोडा-थोडा चटावें तुरन्त ही लाभ होगा। १२५ ग्राम की शीशी ३.२५

सोमकल्पासव—

यह श्वास तथा स्वर-यत्र के सभी रोगो के लिये अत्युपयोगी एव सुपरीक्षित है। मूल्य १ बोतल ५ ५०, १ पौड ४ २५, १ पाव २ ५०

असली एवं पूर्ण विश्वस्त

निम्न वस्तुये बाजारो मे अधिकांशत. नकली तथा निम्न कोटि की मिलती है। ये वस्तुयें ऐसी हैं जिनकी आवश्यकता प्रत्येक वैद्य एवं औषधि निर्माता को होती हे। नकली उपादानो से निर्मित औषधि लाभ क्या कर सकेगी यह आप भी भलीभांति जानते हैं ? अतएव हम अपने ग्राहको से आग्रह करते है कि इन वस्तुओ को आप पूर्ण विश्वास रखते हुए हमसे मंगाइयेगा और रोगियो को लाभ पहुँचाइयेगा।

रुदन्ती फल

राजयक्ष्मा मे उपयोगी इन फलो को हमने संग्रह करा कर रखा है। आप भी मगाकर अपने रोगियो को दे तथा लाभ उठावे। मूल्य—१ किलोग्राम ३० ०० नैट, रुदन्ती-फल चूर्ण १ किलो ४० ०० नैट। टेवलेट ४५ ०० नैट

पूर्ण विश्वस्त

सर्वोत्तम शिलाजीत नं० १

सूर्यतापी

शिलाजीत पत्थर मगाकर हम अपनी देखरेख मे उत्तम शिलाजीत निर्माण करते हैं। किसी भी प्रकार की शका न करते हुए आवश्यकतानुसार शिलाजीत हमारे यहा से मगाइयेगा। मूल्य—१ किलोग्राम १४० ००, ५० ग्राम ७ २५, १० ग्राम १ ७०

शहद

अत्युत्तम एवं विशुद्ध शहद जगलो से संग्रह कराया जाता है। किसी भी प्रकार की मिलावट नही होगी। पैकिङ्ग भी पिल्फरप्रूफ कार्क द्वारा सुन्दर आकर्षक किया जाता है। मू—१ पौंड [४६७ ग्राम] ५ ५०

१० तोला (११७ ग्राम) १ ६५

गिलोय सत्व

जङ्गलो मे आदमी भेजकर हम बहुत बडी तादाद मे गिलोय सत्व तैयार कराते हे। पूर्ण विश्वस्त गिलोय सत्व हमसे मगाइये। मू०—१ किलोग्राम २२ ००

१० ग्राम ० ३०

कस्तूरी केशर आदि

पूर्ण विश्वस्त एव उचित मूल्य पर निम्न द्रव्य हमसे मगाकर व्यवहार करें—

कस्तूरी न १ सर्वोत्तम	१० ग्राम	१२५.००
कस्तूरी काश्मीरी उत्तम	,,	६० ००
केशर काश्मीरी	,,	४० ००
केशर चूरा (औषधि निर्माण हेतु उत्तम)	,,	१६ ००
अम्बर अत्युत्तम	,,	३६.००
गोलोचन असली	,,	८० ००
कहरवा	,,	३ ५०
खर्पर (खपरिया)	,,	२ ००
नीलमखड	,,	१ ००
जहरमोहरा खताई	,,	२ ००
वैक्रात खड	,,	२ ००
पुखराज खड	,,	३ ००
अकीक दाना	५० ग्राम	२ ००
अकीक खड	,,	१.००

सर्पगंधा

उन्माद एव अन्य मस्तिष्क विकृतियों के लिये यह जडी सर्वत्र प्रसिद्ध हो चुकी है एव इसकी प्रसिद्धि के कारण ही इसकी माग अधिक होने के कारण नकली जडी भी बाजार मे चल रही हे। सर्वोत्तम असली सर्पगधा हमने सग्रह की है।

मूल्य —१ किलोग्राम ३० ००

इन द्रव्यो के भाव कमीशनादि कम करके लिखे गये हैं अतएव इन भावो पर किसी प्रकार का कमीशन नहीं दिया जायगा।

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ [अलीगढ़]

धन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ द्वारा प्रकाशित

※ आयुर्वेदिक पुस्तकें ※

ड्रग एक्ट (हिन्दी मे)—यह पुस्तक सभी औपधि निर्माताओ, औपधि विक्रेताओ तथा चिकित्सको के लिये अवश्य पठनीय एवं सग्रहणीय है। आजकल के उलझन पूर्ण समय में अत्यन्त उपयोगी पुस्तक हे। शीघ्र ही मगा लीजियेगा। मू ६ ००, सजिल्द ७.००

आयुर्वेद पर ड्रग एक्ट—लेखक—डा दाऊदयाल गर्ग ए एम. बी. एस –मूल्य ७५ पैसा

यत्र शस्त्र परिचय—लेखक डा० दाऊदयाल गर्ग ए० एम० बी० एस०। प्रत्येक चिकित्सक का यह परम कर्तव्य है कि वह उस प्रत्येक उपकरण के बारे मे पूरी जानकारी रखे जिसका कि वह प्रयोग कर रहा हे तथा उसकी सही व्यवहार विधि जानना अति आवश्यक है तभी वह चिकित्सा क्षेत्र मे सफलता प्राप्त कर सकता है। इस पुस्तक से चिकित्सक सभी यत्रशस्त्रो के बारे में पूरी सही जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इस पुस्तक को चार खण्डो मे विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड मे उन यत्रशस्त्रो का वर्णन किया गया है जिनका प्रयोग केवल निदान (Diagnosis) मे किया जाता है यथा रक्तचापमापक यत्र, थर्मामीटर, स्टेथिस्कोप, नाक व गले आदि की परीक्षार्थ डाइग्नो स्टिक सैट, गुदा परीक्षण यत्र आदि। द्वितीय खण्ड मे चिकित्सा कार्य मे प्रयुक्त होने वाले उपकरणो की प्रयोग विधि दी गई है यथा इञ्जेक्शन लगाना, ट्रोकार एण्ड कैनूला, कर्ण प्रक्षालन, दात उखाडना, आमाशय प्रक्षालन, योनि प्रक्षालन, एनिमा, कैथीटर आदि। तृतीय खण्ड मे शल्यकर्म (चीर फाड़) मे काम आने वाले उपकरणो का वर्णन दिया गया है। इसी खण्ड मे टाके किस प्रकार लगाये जाते है तथा शल्य के विपय मे सभी बातें दी हे। चतुर्थ खण्ड मे सन्तति निरोध [Birth Control] मे प्रयुक्त होने वाले उपकरणो के विपय मे आवश्यक जानकारी दी गई है। इस पुस्तक की सबसे बडी विशेषता चित्रो की भरमार है। १२० पृष्ठो की पुस्तक मे २३० चित्र हैं। चित्रो की अधिकता के कारण ही प्रत्येक विपय स्पष्ट, सरल एव सहज बुद्धिगम्य बन पडा है भापा अत्यन्त सरल है। उत्तम ग्लेज कागज पर छपी, २०×३० सोलह पेजी साईज मे ३२० पृष्ठ, उत्तम छपाई, सुपुष्ट जिल्द, आकर्षक दो रङ्गा टाईटिल वाली पुस्तक। मूल्य लागत मात्र ६ ००

चिकित्सा रहस्य—लेखक श्री प० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए० आयर्वेदाचार्य, इस पुस्तक मे विपय प्रवेश के पश्चात आयुर्वेद के मूल सिद्धान्त 'दोप धातु मल मूल हि शरीर' के अनुसार चिकित्सा के उपयुक्त शरीर, मन और आत्मा की स्वस्थ दशा की सुस्थिति एव रोग प्रतिकार की दृष्टि से आवश्यक स्वस्थवृत सम्बन्धी कुछ बातें प्रथम अध्याय से दशम अध्याय तक सक्षेप मे वर्णित हे। तत्पश्चात रोग प्रतिकार एव चिकित्सा सारल्य की दृष्टि से आयुर्वेदीय प्रमुख सूत्रो का विवेचन ११ वें अध्याय मे किया गया है। तदुपरान्त चार अध्यायो मे तीनो दोषों का विशद विवेचन एव तत्सम्बन्धी चिकित्सा दर्शाई गई है। इस पुस्तक मे उन्ही बातो का उल्लेख किया गया है जिनकी जानकारी चिकित्सा कर्म के पूर्व ही उसकी सफलता के लिये आवश्यक है। आयुर्वेद चिकित्सा प्रकृति वा अन्य चिकित्सा पद्धतियो के साथ तुलनात्मक विचार भी किया गया है। बीच बीच मे आधुनिक विज्ञान द्वारा समन्वय करने का प्रयत्न किया गया है। लेखन शैली इतनी सरल और रोचक है कि बहुत शीघ्र ही गूढ विपय भी समझ मे आजाता है। आयुर्वेद के छात्रो तथा आयुर्वेदानुरागियो के लिये यह ग्रन्थ बडा ही उपयोगी सिद्ध होगा। उत्तम ग्लेज कागज पर २०×३० सोलह पेजी साइज मे छपी ३७५ पृष्ठ, सुपुष्ट जिल्द मू० ४ ५०

वृ. पाक सग्रह—लेखक श्री प० कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य। इस पुस्तक मे ४०० से अधिक पाको का सग्रह प्रकाशित है। हर पाक की निर्माण विधि, मात्रा, सेवन विधि आदि दी गई है। प्राय. सभी रोगो पर २-४ प्रयोग इस पुस्तक मे आपको मिलेगे। हर प्रकार से उपयोगी है। मू सजिल्द ३ ५०, अजिल्द ३ ००

सूर्य रश्मि चिकित्सा (नवीन सस्करण)—सूर्यरश्मि चिकित्सा को अग्रेजी मे क्रोमोपैथी कहते है। इस पुस्तक मे सूर्य की किरणो से ही समस्त रोग दूर करने का विधान है। इसको पढकर पाठक देखेगे कि सूर्य कितना शक्तिशाली है। उस की किरणे शरीर को कितनी लाभदायक है और उनके द्वारा रोग किस प्रकार बात की-बात मे दूर किये जा सकते हे। अनेक रगीन चित्र है। मू ० ७५

उपदंश विज्ञान (द्वितीय संस्करण)—लेखक श्री कविराज प० बालकराम जी शुक्ल आयुर्वेदाचार्य । इस पुस्तक मे गरमी (चादी) रोग के वैज्ञानिक कारण, निदान, लक्षण तथा चिकित्सा का वर्णन किया गया है। पुस्तक के कुछ शीर्षक ये है—उपदश परिचय, प्राच्य-पाश्चात्य का साम्यवाद सक्रमण, निदान, सिफलिस के भेद, उपदश, प्राथमिक कील, लिगार्श, औपसर्गिक सकल रोग, उपदश विकृतिया, मस्तिष्क विकार, फिरग-चिकित्सा मे पारद-प्रयोग, पथ्यापथ्य आदि उपदश सम्बन्धी सभी विषय वर्णित है। मू १ ००

प्रयोग-पुष्पावली—ये प्रयोग वहुत समय मे परीक्षित हैं और सफल प्रमाणित हो चुके हैं । अनेक उद्योग धन्धो का सकेत इसमे मिलेगा जिससे पाठक बहुत लाभ उठा सकते हे। समिष्ट रूप मे पुस्तक बेकार मनुष्यो को व्यवसाय की ओर झुकाने वाली हे । पहले दो सस्करण शीघ्र समाप्त हो जाना इसकी उत्तमता के प्रमाण हैं। पृष्ठ सख्या ११२ मूल्य १ २५

कुचिमार तत्र (भाषाटीका)—यह श्रीमद् कुचिमारमुनि प्रणीत है। इसमे इन्द्रिय वृद्धि,स्थूलीकरण, कामोद्दीपनलेप, बाजीकरण, द्रावण, स्तम्भन,सकोच व केशपात, गर्भाधान सहज प्रसव आदि पर अनेक योग भलीभाति बताये गये है। इस नवीन सस्करण मे प्रमेह, नपुसकता, मधुमेह आदि रोगो पर स्वानुभूत प्रयोगो का एक छोटा सा सग्रह भी दिया है। मूल्य ० ५०

दशमूल (सचित्र)—ले० लाला रूपलाल जी वैश्य बूटी विशेषज्ञ । इस पुस्तक मे दशमूल की दशो औषधियो का सचित्र वर्णन हैं। साथ ही उनके पर्याय नाम, गुण और प्रयोग भी बतलाये गये है तथा दशमूल पचमूल से बनने वाले अनेक योगो की विधिया दी गई हे। मूल्य ० ५०

न्यूमोनिया प्रकाश (द्वितीय सस्करण)—आयुर्वेद मनीषी स्वर्गीय प० देवकरण जी वाजपेयी की यह वह उत्तम रचना है जिस पर धन्वन्तरि पदक मिला था और जो निखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन से सम्मान और पदक प्राप्त कर चुकी है न्यूमोनिया की शास्त्रीय व्युत्पत्ति कारण, निदान, परिणाम, चिकित्सा आदि सभी बातें भलीभाति वर्णित है। मूल्य ० ३७

प्राकृतिक ज्वर—लेखक स्वर्गीय लाला-राधावल्लभ जी वैद्यराज । मलेरिया (फसली बुखार) का पूर्ण विवेचन है। आयुर्वेदीय मत से मलेरिया कैसे होता है ? उसके दूर करने के लिये आयुर्वेदीय प्रयोग, कुनाइन से हानि आदि विषयो पर पूर्ण प्रकाश डाला है मू ०.२५

वेदो मे वैद्यक ज्ञान—लेखक स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी वैद्यराज । वेद के मन्त्र जिनमे आयुर्वेदीय विषयों का वर्णन है तथा जिनसे आयुर्वेद की प्राचीनता प्रमाणित होती है, शब्दार्थ सहित दिये हैं। मू ० २०

कूपीपक्व रसायन—लेखक वैद्य देवीशरण जी गर्ग प्रधान सम्पादक 'धन्वन्तरि' धन्वन्तरि कार्यालय मे निर्माण होने वाले कूपीपक्व रसायनो के गुण, मात्रा, अनुपान, सेवन विधि आदि विस्तृत वर्णित है। मू ००६

चन्द्रोदय मकरध्वज (तृतीय सस्करण)—लेखक स्वर्गीय लाला राधावल्लभ जी वैद्य राज। इस पुस्तक मे पारद-शुद्धि, गन्धक शुद्धि, पारद के सस्कार, मकरध्वज बनाने की विधि, भ्राष्टी बनाने की विधि, मकरध्वज के गुण तथा भिन्न भिन्न रोगो मे अनुभव सभी बाते स्वानुभव के आधार पर वर्णित हैं। मू ० २५

भस्म पर्पटी—लेखक देवीशरण जी गर्ग प्र० सम्पादक-धन्वन्तरि । इसमे धन्वन्तरि कार्यालय मे निर्माण होने वाली भस्मो और पर्पटियो का विस्तृत रूप से वर्णन है। रोग लक्षणानुसार औषधियो को किस प्रकार सफलता के साथ व्यवहार किया सकता है यह आप इस पुस्तक से जान सकेगे। मूल्य ० ०६

रस रसायन गुटिका गूगल—धन्वन्तरि के प्रधान सम्पादक एव अनुभवी चिकित्सक वैद्य देवीशरण जी गर्ग ने इस पुस्तक मे धन्वन्तरि कार्यालय मे निर्मित रस-रसायन गुटिका गूगल के गुण, मात्रा, अनुपान, व्यवहारविधि बडे ही उपयोगी ढग से लिखी है। मू ० ५०

रक्त (Blood)—श्री वैद्यराज राधावल्लभ जी ने रक्त की बनावट, उपयोगिता एव रक्त सम्बन्धी सभी मोटी मोटी बाते आयुर्वेद एव एलोपैथी उभय पद्धतियो से समझाकर सरल हिन्दी भाषा मे लिखी है। नवीन सस्करण मूल्य ० २५

इन्फ्लुएञ्जा (फ्लु)—लेखक श्री प० कृष्णप्रसाद त्रिवेदी बी० ए० आयुर्वेदाचार्य । इसमे इन्फ्लुएञ्जा रोग का विस्तृत विवेचन तथा सफल चिकित्सा विधि वर्णित है। फ्लु और इसके सभी उपद्रवो की आयुर्वेदीय चिकित्सा दी है। मूल्य ० ५०

अन्य प्रकाशकों की पुस्तकें

आयुर्वेदीय ग्रन्थरत्न

अष्टागहृदय (सम्पूर्ण)—विद्योतनी भापा टीका, वक्तव्य, परिशिष्ट एव विस्तृत भूमिका सहित। टीकाकार श्री अत्रिदेव मूल्य १५ ००, कृष्णलाल भारतीय २० ०० श्री प. लालचन्द्रकृत १५ ००

अष्टांग सग्रह (सूत्र स्थान)—हिन्दी टीका, व्याख्याकार गोवर्धन शर्मा छागाणी। मूल्य ८ ००

काश्यप संहिता—टीकाकार श्री सत्यपाल भिपगाचार्य, विद्योतनी भापा टीका विस्तृत सस्कृत हिन्दी उपोद्घात सहित। ग्रन्थका मुख्य विपय'कौमारभृत्य'अष्टागायुर्वेद का अपरिहार्य अङ्ग है। यह विपय पूर्ण विस्तृत और प्रामाणिक रूप से वर्णित है। मूल्य १५ ००

कौमारभृत्य (नव्य वालरोग सहित)—वाल रोगो पर प्राच्य एव पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान के आधार पर श्री प रघुवीरप्रसाद त्रिवेदी A M S द्वारा लिखित विशाल ग्र थ। मूल्य ८ ००

गगयति निदान—लेखक जैनयति गग।राम जी, अनुवादक आयुर्वेदाचार्य श्री नरेन्द्रनाथ शास्त्री मू ५ ५०

चरक सहिता (सपूर्ण)—श्री जयदेव विद्यालकारद्वारा सरल सुविस्तृत भापा टीका युक्त दो जिल्दो मे (छठा सस्करण) मूल्य ३० ००

चरक सहिता—श्री अम्बिकादत्त, हिन्दी व्याख्या विमर्श, परिशिष्ट सहित दो भागो मे। अत्युपयोगी नवीन विस्तृत टीका। मू० ३६ ००

चक्रदत्त—भावार्थ सदीपनी विस्तृत भापा टीका तथा विशद टिप्पणी सहित। परिशिष्ट मे पचलक्ष्मी निदान डाक्टरी मूत्र परीक्षा, पथ्यापथ्य सहित। मू० १० ००

द्रव्यगुण विज्ञान (पूर्वार्ध)—छात्रोपयोगी सस्करण लेखक आयुर्वेद मार्तण्ड वैद्य यादव जी त्रिकम जी आचार्य। द्रव्य गुण, रसवीर्य विपाक, प्रभाव, कर्म विज्ञानात्मक विवेचन। मू० ५ ००

भावप्रकाश (सम्पूर्ण)—भापा टीका सहित। दो जिल्दो में शारीरिक भाग पर प्राच्य पाश्चात्य मतो का समन्वयात्मक वर्णन निघण्टु भाग पर विशिष्ट विवरण तथा चिकित्सा-प्रकरण मे प्रत्येक रोग पर प्राच्य पाश्चात्य मतो का समन्वयात्मक वर्णन विशेप टिप्पणी से सुशोभित है मू. २७ ०० श्री लालचन्द्रकृत २० ००

माधव निदान (भाषाटीकायुक्त)—पूर्वार्द्ध मधुकोष संस्कृत टीका विद्यातनी भापा तथा वैज्ञानिक विमर्श टिप्पणीयुक्त। यह माधव निदान बडा उपयोगी बन पड़ा है। दो भाग मू. १४ ००

माधव निदान—मूलपाठ, मूलपाठ की सरल हिन्दी व्याख्या, मधुकोप सस्कृत व्याख्या और उसका सरल अनुवाद, वक्तव्य एव टिप्पणी युक्त। यह ग्रथ विद्यार्थियो तथा चिकित्सकों के लिये अवश्य है। प पूर्णानन्द शास्त्री कृत टीका पृष्ठ १०१८ दो भागो मे मू. १२ ००

माधव निदान—सर्वाङ्ग सुन्दरी भापा टीका ४ ५०

माधव निदान—टीकाकार ब्रह्मशकर शास्त्री, मधुकोप, सस्कृत व्याख्या तथा मनोरमा हिन्दी टीका सहित। पृष्ठ संख्या ४१२ मू. ६ ००

रसायनसार—श्री प श्यामसुन्दराचार्य के बीसियों वर्षो के परिश्रम से प्राप्त प्रत्युक्षानुभव के आधार पर लिखित अपूर्व रसग्रथ मू. ८ ००

रसेन्द्रसार सग्रह—वैज्ञानिक रस चन्द्रिका भापा टीका परिशिष्ट मे नवीन रोगो पर रसो का प्रभाव, मान, परिभापा, मूपा, पुटप्रकरण, अनुपान विधि तथा औपधि वनाने के नियमादि मू. ६ ००

रसेन्द्रसार सग्रह (तीन भागो में)—आयुर्वेद वृहस्पति प. घनानन्द जी पन्त द्वारा सस्कृत टीका और हिन्दी भापा सहित वैद्यो, विद्यार्थियो के लिये उपयोगी है मू. ११ ००

रसरत्न समुच्चय—नवीन सुरत्नोज्वला विस्तृत भापा टीका एव परिशिष्ट सहित मू. १० ००, श्री पं धर्मानन्द कृत तत्व बोधिनी हिंदी टीका १० ००

रसतरगिणी चतुर्थ सस्करण—भापाटीका सहित रस निर्माण, धातु उपधातुओ के शोधन मारण युक्त यह अनुपम ग्रंथ है। मू. १० ००

रसराज महोदधि (पाच भाग)—वस्तुत यह आयुर्वेदीय रसो का सागर ही है। पठनीय सरल भाषा मे लिखा उपयोगी रस ग्रन्थ है नवीन सस्करण सजिल्द मू. १० ००

योगरत्नाकर—कायचिकित्साविषयक उपलब्ध ग्रन्थो मे यह सर्वोत्कृष्ट रचना है। चिकित्सको के लिये ज्ञातव्य सभी आवश्यक विषयो का सग्रह किया गया है। माधवोक्त क्रम से सभी रोगो के निदान व चिकित्सा का वर्णन है। मू. १८ ००

सौश्रुती—लेखक रमानाथ द्विवेदी। अष्टाग आयुर्वेद के शल्यतन्त्र पर लिखित प्राच्य पाश्चात्य समन्वय मू. ८ ५०

शारङ्गधर सहिता—वैज्ञानिक विमर्शोपेत सुबोधिनी हिन्दी टीका, लक्ष्मी नामक टिप्पणी, पथ्यापथ्य एव विविध परिशिष्टसहित मू. ६ ००, राधाकृष्ण पाराशर टीका ५ ७५

सुश्रुत सहिता सम्पूर्ण—सरल हिन्दी टीका सहित टीकाकार श्री अत्रिदेव गुप्त। विद्यार्थियो के लिये पठनीय है। पक्के कपडे की जिल्द मू. १५ ००, कविराज अम्बिकादत्त कृत सम्पूर्ण २४.००

हारीत सहिता—ऋषि प्रणीत प्राचीन सहिता। भाषा टीका सहित, टीकाकार शिवसहाय जी सूद मूल्य ८ ५०

हरिहर सहिता—वैद्यराज हरिनाथ साख्याचार्य नवीन औषधियो का समावेश है सरल भाषा टीका मू. ८ ००

चिकित्सा रत्न—ले० रामरतन गगेले। एक चिकित्सक के लिये सब प्रकार की सक्षिप्त उपयोगी सामग्री से युक्त सजिल्द मू. ६.००

चिकित्सा तत्व प्रदीप—एक चिकित्सक के लिये अत्यत उपयोगी ग्रन्थ प्रथम ९ ००, सजि० ११ ०० द्वितीय भाग १०.०० सजि १२ ००

वनौषधि चन्द्रोदय (१० भाग)—प्रत्येक वनस्पति के पर्याय, परिचय, गुणकर्मादि विवेचन युक्त श्री चन्द्रराज भडारी कृत ४०.०० प्रत्येक भाग ५ ००

चिकित्सा चन्द्रोदय (सात भाग)

हिन्दी ससार मे अपूर्व और पहला ग्रन्थ बिना गुरु के वैद्यक सिखाने वाला, जो सस्कृत जरा भी नही जानते वे भी इस ग्रन्थ को बिना गुरु के पढकर वैद्य बन सकते है

चिकित्सा चन्द्रोदय	१ ला भाग	५ ००
" "	२ रा भाग	९ ००
" "	३ रा भाग	६ ००
" "	४ था भाग	९ ००
चिकित्सा चन्द्रोदय	५ वा भाग	९ ००
" "	६ वा भाग	६ ००
" "	७ वा भाग	१५ ००
		५८ ००

नोट—एक साथ ७भा. खरीदने वाले को किताबे रेल पार्सल से मगानी चाहिये। एक पूरा सैट लेने वालो को कमीशन कम करके ५०-७५ रु० देने पडते हैं। खर्चा पृथक्

स्वास्थ्य रक्षा—गृहस्थो के घर की यह रामायण है। हर घर मे इसका रहना जरूरी है। इसका नाम ही स्वास्थ्य रक्षा उर्फ तन्दुरुस्ती का बीमा है। तन्दुरुस्ती नही तो दुनिया मे रहा ही क्या है। मू. ६.००

काय चिकित्सा (दो भाग)—श्री रामरक्षक पाठक जी की किसी भी पुस्तक को जिसने पढा है वह भली प्रकार इस पुस्तक की उपयोगिता जान सकता है। इस पुस्तक मे आयुर्वेद सिद्धातो का विशद रूप मे विवेचन किया गया है। अत्युपयोगी है लगभग ५५० पृष्ठ, क्राउन साइज छपाई सुन्दर कपड़े की जिल्द मूल्य २५.००

भैषज्य सार संग्रह—लेखक कविराज हरस्वरूप शर्मा इसमे सभी प्रचलित आयुर्वेद औषधियो की निर्माण विधि मात्रा, अनुपान, गुण एव विशेष विवेचन दिया गया है। उत्तम कागज पर सुन्दर सजिल्द ८८६ पृष्ठ की पुस्तक चिकित्सको औषधि निर्माताओ को अत्युपयोगी है। मू० १५ ००

शारङ्गधर सहिता—भाषाटीका सहित टीकाकार प प्रयागदत्त शर्मा सजिल्द ६.००

श्री० प० केशवदेव शास्त्री कृत टीका ८ ००

निदान चिकित्सा हस्तामलक—लेखक वैद्य रणजीतराय देशाई, विद्वान चिकित्सको के लिए पठनीय उत्तम पुस्तक सजिल्द लगभग ७०० पृष्ठ ९ ००

अष्टांग हृदयम्—सर्वाङ्ग सुन्दरी व्याख्या विभूषित। टीकाकार श्री प० लालचन्द वैद्य। व्याख्या बहुत सुन्दर एव सरल भाषा मे की गई है। लगभग ८५० पृष्ठ, बडा साइज कपडे की सुपुष्ट जिल्द। मू० केवल १५ रु०

भिषक्कर्म सिद्धि—आयुर्वेद के प्रकाड विद्वान श्री रमानाथ द्विवेदी द्वारा लिखित यह अनुपम ग्रथ है। इसमे चिकित्सक के लिये जानने योग्य सभी विषयो का

संग्रह किया गया है। ग्रन्थ के ५ खण्ड किये गये हैं—प्रथम खण्ड मे निदान पञ्चक, द्वितीय खण्ड मे पञ्चकर्म, तृतीय मे चिकित्सा के आधारभूत सिद्धात, चतुर्थ खण्ड के ३३ अध्यायो मे रोगानुसार आयुर्वेदीय सफल-चिकित्सा तथा अन्त के पञ्चम खण्ड के परिशिष्टाध्याय मेआवश्यक जानकारी दी गई है। पुस्तक चिकित्सकों,अध्यापकों एव विद्यार्थियो के लिये अद्वितीय है। सुन्दर छपाई पक्के कपड़े की जिल्द ७१५ पृष्ठ मू २० रुपये।

काय चिकित्सा—गगासहाय पाडेय–इस पुस्तक मे चिकित्सा के सैद्धातिक पक्ष का स्पष्टीकरण एव चिकित्सा के विभिन्न उपक्रमो का व्यवहारिक स्वरूप देने के अतिरिक्त व्याधि की विभिन्न अवस्थाओ के उपचारक्रम का विशद विवेचन किया गया है। प्राच्य एव पाश्चात्य चिकित्सा का समन्वयात्मक निर्देश भी किया गया हे। अन्त मे विशिष्टसक्रामक व्याधियो का विस्तृत परिचर्यादि एवं चिकित्साक्रम है। लगभग १००० पृष्ठ, मुन्दर छपाई सजिल्द मू० ७५ रुपया।

इन्द्र निदान—इसमे सस्कृत माधव-निदान की अनेक प्रकार के पद्यो मे बडी सरल और सुबोध हिन्दी भाषा मे टीका की गई है तथा आधुनिक रोगो का परिशिष्ट मे कथन कर दिया है। इसके टीकाकार श्री इन्द्रमणि जैन अलीगढ हैं। मू केवल ६ रुपया।

कामविज्ञान विश्वकोष (आधुनिक काम विज्ञान)—इसमे काम विज्ञान की प्रत्येक शाखा का एशिया, अफ्रीका और यूरोप मे हुई अगस्त १९६७ तक की हजारो नई नई खोजो का पूरा-पूरा हाल दिया है। "पुरुषो तथा स्त्रियो" के समस्त गुप्त रोगो का नए ढंग से वर्णन है। कई सौ चित्रो, चार्टो तथा तालिकाओ से सजी पुस्तक का मूल्य केवल ८ रुपया।

चिकित्सादर्श—आयुर्वेद के प्रकाड विद्वान श्री रामेश्वरदत्त जी शास्त्री द्वारा लिखित यह अपूर्व ग्रंथ चिकित्सा-सूत्रो का एकत्र सग्रह है। नुस्खा नवीसी की तो यह अपूर्व पुस्तक हे। द्वितीय या तृतीय भाग मे रोगो का विशिष्ट वर्णन दिया है। मू प्रथम भाग ३.५०, द्वितीय भाग ७ रुपया, तृतीय भाग ७ रुपया।

पदार्थ विज्ञानम्—लेखक श्री पं वागीश्वर शुक्ल वैद्य। इस ग्रन्थ मे आयुर्वेद के आधारभूत सिद्धानो का प्रतिपादन सरल भाषा मे किया गया है। मू ८ रु

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की १९६५ की उपवैद्य, वैद्य-विशारद, आयुर्वेदरत्न तथा समस्तरीय परीक्षाओ के लिये विशेष उपयोगी गाइडें—

अशोक उपवैद्य गाइड—(शिवकुमार व्यास) सम्पूर्ण छ पत्रो की परीक्षोपयोगी सामग्री प्रश्नोत्तर रूप मे गत परीक्षाओ के प्रश्नपत्र के आधार पर दी है। ५ रुपया

अशोक वैद्य विशारद गाइड—लेखक आचार्य ज्ञानेंद्र पाडेय प्रथम खण्ड ६ रुपया, द्वितीय खण्ड ८ रुपया

अशोक आयुर्वेदरत्न गाइड—[प्रथम खण्ड] लेखक शिवकुमार व्यास आयुर्वेदाचार्य [B. I M S] १५ रु०

अशोक आयुर्वेद रत्न गाइड—[द्वितीय खण्ड] लेखक शिवकुमार व्यास आयुर्वेदाचार्य [B I MS] १५ रु०

शुद्ध आयुर्वेदिक चिकित्सा मार्ग दर्शिका [आयुर्वेदिक गाइड]—इसके लेखक हैं आयुर्वेद के प्रकाड विद्वान श्री अत्रिदेव विद्यालकार–इस पुस्तक के ३ भाग है–प्रथम भाग मे रोगानुसार चिकित्सा, द्वितीय भाग मे विशिष्ट ज्ञातव्य तथा तृतीय भाग मे रोगानुसार सिद्ध योगो का सग्रह है। सजिल्द मू. ५ रु

आयुर्वेद प्रकाश—टीकाकार श्री गुलराज शर्मा मिश्र आयुर्वेदाचार्य। लगभग ५०० पृष्ठीय रसशास्त्र के इस उत्कृष्ट ग्रथ मे लेखक के वचनानुसार केवल उन्ही विषयो का समावेश किया गया है जिनकी कि उन्होने स्वय परीक्षा करली है। मू १२ ५०

भेल सहिता—सस्कर्त्ता आचार्य गिरजादयालु शुक्ल सस्कृत भाषा मे श्लोको का अभूतपूर्व सग्रह, मू १० रु

आयुर्वेद द्रव्य गुण विज्ञान—लेखक श्री शिवकुमार व्यास। प्रारम्भ मे द्रव्य गुण कर्म वीर्य विपाक व प्रभाव का विवेचन देकर बाद मे लगभग ३५० द्रव्यो का विवरण उनके गुण आदि दिये गये है। सजिल्द मू० १० रु

स्वास्थ्य शिक्षा पाठावलि—श्री भास्करगोविन्द घाणेकर एव वासुदेव भास्कर घाणेकर। आयुर्वेदीय स्वास्थ्य-ज्ञान सम्बन्धी उत्कृष्ट सग्रह। साथ ही सरल हिन्दी भाषा मे टीका दी है। मू ३ ५०

टिक व सिल गाइड (रुदन्ती चिकित्सा)—लेखक अमरदास भाटिया—इसमे क्षय रोग का नवीन उपचार रुदन्ती द्वारा अनेक एक्सरे फोटो देकर समझाया गया है। मूल्य ३ रु.

सुश्रुत सहिता [सूत्र स्थान]—डा गोविन्द भास्कर कृत आयुर्वेद रहस्य दीपिका व्याख्या अत्यन्त उपयोगी एव विस्तृत टीका मू ९ रु.

सुश्रुत सहिता [शारीर स्थान] —डा गोविन्दभास्कर कृत टीका मू १२रु

प्रत्यक्ष शारीर—लेखक गणनाथसेन सरस्वती-यह आयुर्वेद का एक अत्यत प्रसिद्ध ग्रन्थ हे। अनेको चित्र दिये हैं। मू. प्रथम भाग १० रु, द्वितीय भाग १५ रु

स्वास्थ्य विवेचन—इस पुस्तक मे क्षय रोग की सफल एव सरल चिकित्सा बहुत रोचक ढग से दी गई है। लेखक श्री शिवकुमार वैद्य शास्त्री, डी एस सी ए आयुर्वेद वृहस्पति। अनेको चित्र है। सजिल्द मू ५ रु

वैद्यावतंस—यह आयुर्वेद का लघु निघण्टु है। व्याख्याकार श्री ब्रह्मानन्द जी त्रिपाठी है। मू १ ५०

त्रिदोष विज्ञानम्—कविराज श्री उपेन्द्रनाथ दास-आयुर्वेद का आधार त्रिदोष विज्ञान है तथा उसकी हीजान कारी यह पुस्तक कराती है उपयोगी पुस्तक है। मू. ८ रु

राजयक्ष्मा—प्रो मी द्वारकानाथ। मू. १ रु

सरल पशु चिकित्सा—उस पुस्तक मे गाय, बैल, घोडा, कुत्ता आदि के रोगो के लक्षण, चिकित्सा वर्णन दिया है। मू सजिल्द ४ रु

एलोपैथिक पुस्तकें हिंदी में

आधुनिक चिकित्साशास्त्र—श्री धर्मदत्त जी-एलोपैथिक पद्धति से चिकित्सा का ज्ञान कराने के लिये आये दिन ग्रन्थ लिखे जा रहे हे किंतु वे ग्रन्थ सभी प्राय एकागी ही होते हे। क्योकि इस चिकित्सा का क्षेत्र इतना विशाल होगया है कि किसी एक ग्रन्थ मे सभी विषयो का समावेश कठिन हे। साथ ही इस प्रणाली मे प्रतिदिन नये तरीको का आविष्कार होता रहता है। अनुभवी लेखक ने आज तक के सारे आविष्कारो को इस पुस्तक मे गागर मे सागर की भाति भरदिया है। हर तरीके से इलाज इसमे दिया गया है। सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय भी छूटने नही पाया है। आधुनिक से आधुनिक तरीके भी इसमे आगये है। मू. ३६ रु

अभिनव शवच्छेद विज्ञान—लेखक हरिस्वरूप कुलश्रेष्ठ—नवीन मतानुसार शवच्छेद (Dissection) विषयक विशालग्रन्थहै। विषय का स्पष्ट ज्ञान करने के लिये अनेक चित्र साथ मे दिए गए है। दो भाग मू १८ रु

अभिनव विकृति विज्ञान—रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी ए. एम. एस.—विकृति विज्ञान [Pathology] विषयक हिन्दी भाषा मे विशाल ग्रन्थ। अनेक चित्र साथ मे दिए गए है। प्रत्येक रोग का विकाश किस प्रकार होता है? एव उससमय शरीर के किसअङ्ग मे क्या क्या परिवर्तन होते है स्पष्ट रूप से समझाया गया है। मू २२ रु

एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा—लेखक डा० अयोध्यानाथ पाडेय। अकारादि क्रमानुसार प्रत्येक रोग पर प्रयोग की जाने वाली पेटेण्ट औषधिया दी है तथा वे पेटेण्ट औषधिया किन किन रोगो पर प्रयुक्त हो सकती है यह भी दिया गया है। मू. २.५०

अभिनव नेत्रचिकित्सा विज्ञान—लेखक प० विश्वनाथ द्विवेदी शास्त्री B A आयुर्वेदाचार्य। प्राच्य एव पाश्चात्य दोनो का समन्वय करते हुये नेत्र चिकित्सा पर हिन्दी मे विशाल ग्रन्थ मूल्य १०.००

शल्य प्रदीपका—लेखक डा मुकुन्दस्वरूप वर्मा। शल्य (सर्जरी) विषयक हिन्दी मे लिखी हुई उत्कृष्ट पुस्तक है प्रत्येक प्रकार के शल्य कर्म को विस्तार से लिखा है। अनेक चित्र दिए हैं। मू १२ ५०

बाल रोग चिकित्सा—लेखक डा रमानाथ द्विवेदी एम ए, एम एम. प्राच्य एव पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान का विस्तार से समन्वय करते हुए विशुद्ध वर्णन युक्त। मूल्य ६ ००

अभिनव शरीर क्रिया विज्ञान—लेखक प्रियव्रत शर्मा यह पुस्तक हिंदी मे अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। मू १० ००

धात्री विज्ञान—डा शिवदयाल गुप्ता A. M S. प्रारम्भ मे नारी जननेन्द्रिय रचना एव शरीर गर्भिणी परिचर्या, नवजात शिशु-परिचर्या एव प्रसवकालीन रोगों का सक्षेप मे वर्णन किया है। अनेक सम्बन्धित चित्र भी दिये है। मूल्य २ ५०

गर्भस्थ शिशु की कहानी—लेखक डा लक्ष्मीशंकर गुरू। प्रसूति विषयक हिंदी मे उत्तम एव सक्षिप्त पुस्तक सम्बन्धित चित्र भी हैं। मूल्य २ ००

जन्म निरोध—लेखक ए० ए० खा M Sc। पुस्तक मे जन्मनिरोधक के लिये अनेक प्रकार की भौतिक, रासायनिक, यान्त्रिक एव शस्त्रकर्मीय विधिया दी गई हैं। पुस्तक अत्यन्त उपादेय है। मू. ६.००

सामान्य शल्य विज्ञान (सचित्र)—लेखक डाक्टर शिवदयालगुप्त A M S शल्य (सर्जरी) विषयक हिंदी भाषा मे विशाल ग्रन्थ। प्रत्येक विषय को आवश्यकीय चित्रो द्वारा समझाया गया है। पुस्तक अध्यापको, विद्यार्थियो एव चिकित्सको सभी के लिए उपादेय हैं। मू० १२ ००

आर्दश एलौपैथिक मेटेरिया मैडिका—विज्ञान के अनुसार प्रत्येक औषधि की प्रकृति गुण, धर्म उपयोग, मात्रा रोग, निदान के अनुसार वर्णित है। मू० ११ ००

हिन्दी माडर्न मैडीकल ट्रीटमेंट—(आधुनिकचिकित्सा) लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रोफेसर श्री एम० एल० गुजराल-M B M R C P (लन्दन) द्वारा लिखित एलोपैथिक चिकित्सा का सर्वोत्तम प्रामाणिक ग्रन्थ है। चिकित्सको के लिये अत्युपयोगी है। मू० २० ००

पेटेण्ट प्रैस्क्राइवर या पेटेण्ट चिकित्सा—प्रत्येक रोग पर व्यवहार होने वाली एलोपैथिक पेटेण्ट औषधियो का तथा इन्जेक्शनो का विवरण सुन्दर ढग से दिया है। मू. द्वितीय सस्करण ८.००

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान (दो भाग)—श्री डा० आशानन्द पचरत्न M B B S आयुर्वेदाचार्य। यह चिकित्सा विज्ञान की सुन्दर रचना है। इसमे १६ अध्यायो मे रोग का वर्णन तथा उनकी सफल एलोपैथिक एव आयुर्वेदिक चिकित्सा वडीखूवी के साथ दी है। इनकी वर्णन शैली तुलनात्मक दृष्टि से ही महत्व की ही नही वरन् सफल चिकित्सा की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ चिकित्सको को उपादेय है। कपडे की जिल्द मू० प्रथम भाग १० ००

आयुर्वेद एण्ड एलोपैथिक गाइड—ले० आयुर्वेदाचार्य प० रामकुमार द्विवेदी। हिंदी मे प्राच्य पाश्चात्य विज्ञान का विस्तृत ज्ञान देने वाली वेजोड पुस्तक है। मू. १२ ००

वर्मा एलोपैथिक निघण्टु—डा० वर्मा जी कृत। इसमे १००० से अधिक पेटेण्ट तथा साधारण औषधियो के वर्णन के अतिरिक्त सैकडो नुस्खे तथा अन्य उपयोगी बातें दी हैं। मू० १२.००

एलौपैथिक गाइड—लेखक डा रामनाथ वर्मा, एलोपैथी की ज्ञातव्य बाते सरल हिन्दी मे बतलाने वाली सुप्रसिद्ध पुस्तक, छठा सस्करण। मू. १३ ००

एलोपैथिक योगरत्नाकर—श्री वर्मा जी की उपयोगी पुस्तक। एलोपैथिक मिक्चर तथा प्रयोगो का विशाल सग्रह। पृष्ठ ७४१ मू० १३ ००

एलोपैथिक चिकित्सा (चौथा संस्करण)—लेखक डा सुरेशप्रसाद शर्मा। इसमें प्राय सभी रोगों के लक्षण निदान आदि सक्षेप मे वर्णन करके उन रोगो की चिकित्सा विस्तृत रूप से दी है। योग आधुनिकतम अनुसन्धानो को मथकर अनुभवसिद्ध लिखे गये हैं। ८२५ पृष्ठ के विशाल सजिल्द ग्रन्थ का मू. १२ ७५

एलोपैथिक पाकेट गाइड—एलोपैथिक चिकित्सा का सूक्ष्म रूप यह पाकेट गाइड है। इसे आप जेब मे रखकर चिकित्सार्थ जा सकते है जो आपका हर समय साथी का काम देगी मू. ३.००

एलोपैथिक पेटेण्ट मैडीसन—लेखक डा. अयोध्यानाथ पाडेय। कौन पेटेन्ट औषधि किस कम्पनी की किन किन द्रव्यो से निर्मित हुई है किस रोग मे प्रयुक्त होती है लिखा गया है। दूसरे अध्याय मे रोगानुसार औषधियो का चुनाव किया है। मू. ६ ००

एलोपैथिक मेटेरिया मैडिका—(पाश्चात्य द्रव्य गुण विज्ञान)—लेखक कविराज रामसुशीलसिंह शास्त्री A M S यह पुस्तक अपने विषय की सर्व श्रेष्ठ पुस्तक है। लेखक ने विषय को आयुर्वेद चिकित्सको तथा विद्यालयो के लिए विशेष उपयोगी ढङ्ग से प्रस्तुत किया है। मूल्य प्रथम भाग समाप्त, द्वितीय भाग ३० ००

एलोपैथिक मेटिरिया मैडिका—लेखक डाक्टर शिवदयाल जी गुप्त ए एम एस। इस पुस्तक मे अब तक की सम्पूर्ण औषधिया जो एलोपैथी मे समाविष्ट हो चुकी है दी गई है। सरल सुवोध भाषा, वैज्ञानिक-क्रम से विषय का स्पष्टीकरण, औषधियो के सम्बन्ध मे आधुनिक सूचना, भिन्न-भिन्न औषधियो से सम्वधित तथा चिकित्सा मे प्रयुक्त योगो का निर्देश पुस्तक की विशेषता है। हिन्दी मे सवसे महान और विशाल अद्वितीय पुस्तक जिसमें १३०० पृष्ठ हैं। मू० १२ ७५

एलोपैथिक सफल औषधिया—एलोपैथी की नवीनतम प्रसिद्ध खास खास औषधियो का गुणधर्म विवेचन जो आजकल वाजार मे वरदान सिद्ध हो रही है। सभी सल्फाग्रुप आदि औषधियो के वर्णन सहित म० ३ ५०

सचित्र नेत्र विज्ञान—लेखक डाक्टर शिवदयाल गुप्त, पृष्ठ सख्या ५१४, चित्र सख्या १३, मू० ८ ००

मल-मूत्र-रक्तादि परीक्षा—ले०डा०शिवदयाल गुप्ता अपने विषय की सर्वांगपूर्ण, सचित्र और वैद्यो के वड़े काम की पुस्तक है। मूल्य ३ ००

मिक्श्चर (छठा संस्करण)—प्रथम २६ पृष्ठो मे मिक्चर

बनाने के नियम, औषधियो की तौल नाप, व्यवस्थापत्रो मे लिखे जाने वाले सकेतो की व्याख्या आदि ज्ञातव्य बातें दी है। बाद मे उपयोगी इञ्जेक्शनो का भी सकेत किया है । अन्त मे देशी दवाओ के अ ग्रे जी नाम भी दिये हैं । २१७ पृष्ठ की यह पुस्तक चिकित्सको के लिये उपयोगी है।मू २ ५०

सफल कम्पाउण्डर कैसे बनें ?–डा रामचन्द्र सक्सैना हिन्दी मे अब तक ऐसी पुस्तक की कमी थी जिससे कम्पाउण्डर बनने की प्रारम्भिक आवश्यकताओ का शिक्षण,छोटे मोटे नुस्खे, नर्सिग शिक्षा,फर्स्टएड आदि का ज्ञान हो सके। प्रस्तुत पुस्तक से यह कमी दूर होती है। सजिल्द मू ३ ००

नव्य चिकित्सा विज्ञान—(सक्रामक रोग) भाग १-२ डा० मुकुन्दस्वरूप वर्मा–व्यस्त चिकित्सको के लिये आधुनिक चिकित्सा विषयक अति उत्तम पुस्तक है । मू प्रथम भाग ८ ००, द्वितीय भाग ८ ००

बीसवी शताब्दी की औषधिया—इसमे नवाविष्कृत सभी औषधियो के गुण धर्म आदि नातिसक्षेप विस्तरेण दिये गए है। हिन्दी भाषा मे अपने विषय की उत्तम कृति है। मू० ८ ००

रोग निवारण—प्रस्तुक पुस्तक मे आधुनिक चिकित्सा पद्धति के अनुसार रोगो की चिकित्सा के विस्तारपूर्वक वर्णन के साथ-साथ सक्षेप मे आयुर्वेदिक चिकित्सा का भी वर्णन किया है। इसके लेखक प्रसिद्धि प्राप्त डा० शिवनाथ खन्ना है । मू० १४ ००

गर्भरक्षा तथा शिशु परिपालन—श्री डा मुकन्दस्वरूप वर्मा द्वारा लिखित अपने विषय की सरल हिन्दी मे उत्कृष्ट पुस्तक है । यथास्थान चित्र दिये है । मूल्य ४ ५०

शालाक्य तन्त्र (निमि तन्त्र)–अष्टाग आयुर्वेद के महत्वपूर्ण अङ्ग शालाक्य पर यह एक उत्तम ग्रन्थ है। आधुनिक एव प्राच्य दोनो दृष्टिकोणो से पूर्ण विवेचन किया गया है। इसके रचियता आयुर्वेद-वृहस्पति श्री रमानाथ जी द्विवेदी ए एम एस है। मू० ६ ००

सङ्कटकालीन प्राथमिक चिकित्सा—डा प्रियकुमार चौबे द्वारा लिखी गई हिन्दी मे अपने विषय की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है । विषय को स्पष्टत समझाने के लिये पुस्तक मे ८२ चित्र दिये गये है । मू केवल ४ ७५

नासा, गला एव कर्ण रोग चिकित्सा—डा प्रियकुमार चौबे द्वारा लिखी गई इस पुस्तक मे उक्त रोगो का विषद् रूप से परिचय कराया गया है। आजकल की पेटेण्ट औषधियो का भी उत्तम रूप से परिचय है । ३ ५०

जीवर्तिक्ति विमर्श या विटामिन तत्व—लेखक डा० पद्मदेव नारायणसिंह । विटामिन विषयक अत्युपयोगी सचित्र पुस्तक ५.००

प्रसूति तन्त्र—लेखक डा रामदयाल कपूर । पुस्तक मे श्रोणि रचना, काम विज्ञान, गर्भ-विज्ञान, गर्भावस्था और उसकी चर्या, प्रसव-विधि, प्रसवोत्तर कर्म,गर्भावस्था के विकार, प्रसव के विकार, प्रसूतिकालिक विकार, नवजात शिशु के विकार, प्रसूतिका शल्य-कर्म आदि सभी विषय अच्छी तरह समझाकर लिखे गये हैं । मू ५ ७५

एलोपैथिक सग्रह—प्रथम भाग–मेटीरिया मेडिका एलोपैथिक तथा डिस्पैंसिग गाइड-जिसमे सभी एलोपैथिक औषधियो का व्यौरा विस्तारपूर्वक दिया गया है सभी औषधियो के देशी प्रचलित नाम, मात्रा एव लाभ सभी कई एक फार्माकोपिया की सभी नवीन औषधिया इसमे सम्मिलित हैं । मू १२ रुपया

एलोपैथिक सग्रह—पाचवा भाग–नर्सिंग मिडवाइफरी तथा स्त्री रोग चिकित्सा मू ७ ५०

एलोपैथिक संग्रह—छठा भाग–यह सर्जीकल तथा मकैनीकल दन्दानसाजी पर पहली सम्पूर्ण हिन्दी पुस्तक है जिसमे सर्जीकल दन्त चिकित्सा व दातो के सैट बनाने का पूर्ण कोर्स है । दर्जनो फोटो है । मू १५ रुपया

बाल रोग चिकित्सा—इसमे बालको के समस्त रोगो का व्यौरा दिया गया है । मू २ ५०

दिक सिल तथा रुदन्ती—इस पुस्तक मे दिक रोग का रुदन्ती द्वारा नवीन उपचार, कई एक्सरे फोटो देकर समझाया गया है। मू. ३ रुपया

एक्सपर्ट फार्मासिस्ट तथा कम्पाउण्डरी शिक्षा—अमरनाथ भाटिया–२ ५०

डिस्पैन्सरी गाइड तथा डाक्टरी नुस्खे—इस पुस्तक मे वह समस्त जानकारी दी गई है जो एक डिस्पैन्सर तथा फार्मासिस्ट के लिये आवश्यक है । मू २ ५०

एलोपैथिक पाकेट प्रेस्क्राइबर—श्री डा० शिवनाथ खन्ना–प्रत्येक रोग पर सफल पेटेण्ट औषधियां तथा मिक्शचर आपको इस पुस्तक मे मिलेगे । मू ५ रुपया

सफल आधुनिक औषधिया—श्री डा पद्मदेव नारायणसिंह एम बी बी एस इसमे नवी न आविष्कृत एव चमत्कारिक अचूक औषधियो का वर्णन हैं । विटामिन्स, टानिक्स, सल्फा ग्रुप की तथा एन्टीबायोटिक्स की समस्त औषधियो के साथ साथ टी बी, डाइबिटीज, गठिया, कृमि, कुष्ठ, हाईब्लडप्रेशर आदि का विशेष विवेचन दिया है । पृष्ठ ३६२, सजिल्द ४ ५०

एलोपैथिक पेटेण्ट चिकित्सा नवनीत–डा हरनारायण

कोकचा—यह पुस्तक ५०० के लगभग चार्टो तथा तालिकाओं से सुसज्जित है। इसमे एलोपैथिक की लगभग दस हजार पेटेट औषधिया इन्जक्शनो को चार्टो मे खोलकर खलासा समझाया गया है। सैकडो रोगियो के सफल इलाज का विस्तृत वर्णन चार्टो के रूप मे दिया गया है। पुस्तक अत्युपयोगी है। मूल्य १० रु० मात्र.

कम्पाउण्डरी शिक्षा, रोगी परिचर्या, विष विज्ञान तथा चिकित्सा प्रवेश-डा० आर सी. भट्टाचार्य—इस पुस्तक मे औपधि निर्माण, विप चिकित्सा, रोगी परिचर्या, सामान्य चिकित्सा आदि समाविष्ट हे। मू० ६ ००

एलोपैथिक नुस्खा—डा० एम एम एल शर्मा—इसमे बीमारियो के नाम, सर्वसाधारण के रोज काम मे आने वाले इजैक्शन तथा पेटेण्ट दवाओ का वर्णन है। मू. २.००

मार्डन एलोपैथिक मैडीसन्स—डा० रामकुमार गुप्ता प्रसिद्ध एलोपैथिक दवाओ के निर्माताओ की प्रसिद्ध-प्रसिद्ध दवाओ का वर्णन किया गया है। मू ६ ००

इंजैक्शन विषयक पुस्तकें

इजैक्शन-लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा अपने विपय की हिन्दी मे सचित्र सर्वोत्कृष्ट पुस्तक है। थोडे समय मे ७ सस्करण हो जाना ही इसकी उत्कृष्टता का प्रमाण हैं। इसके आरम्भ मे सिरिंज के प्रकार, इजेक्शन लगाने के प्रकार तथा उसके लगाने की विधि रङ्गीन एव सादे चित्रो सहित पूरी तरह समझाई गई है। बाद मे प्रत्येक इजेक्शन का वर्णन, उसकी मात्रा,उसके गुण, प्रयोग करने मे क्या सावधानी बर्तनी चाहिये आदि सभी बातें विस्तार से लिखी गई है। अन्त मे अकारादि क्रम से समस्त इजेक्शनो की सूची तथा पृष्ठ सख्या दी गई है। चिकित्सको के लिये पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। सजिल्द मू १० ००

सचित्र इंजेक्शन—डा शिवनाथ खन्ना—प्रस्तुत पुस्तक इंजेक्शन अर्थात सूचीवेध नामक विपय पर विस्तार पूर्वक, सरल जनप्रचलित भापा मे समझाकर लिखी गई हे। चार खण्ड हैं जिनमे प्रथम खण्ड मे इजेक्शन की विधिया तथा इजेक्शन के भेद द्वितीय खण्ड मे विभिन्न इंजेक्शनो के गुण, कर्मादि, तृतीय खण्ड मे प्रधान रोगो के लक्षण तथा उनमे दिये जाने वाले इजेक्शन और चतुर्थ खण्ड मे अन्य आवश्यक जानकारी दी है। पुस्तक अपने विषय की सर्वोत्तम है। मू० ११ ००

इजेक्शन तत्व प्रदीप—लेखक डा० गणपतिसिंह वर्मा। सभी इजेक्शनो का वर्णन तथा उसके भेद और उनके लगाने की विधि सरलतया दी है। मू० ५ रु०

सूचीवेध विज्ञान—लेखक डा० रमेशचन्द्र वर्मा डी० आई एम एस। यह पुस्तक भी एलोपैथी इजेक्शनो की उपयोगी विस्तृत सामग्री से पूर्ण है। पैनिसिलीन,विटामिन आदि का भी विस्तृत वर्णन है। पक्की जिल्द मू ७ ५०

सूचीवेध विज्ञान—लेखक श्री राजकुमार द्विवेदी। इस छोटी पुस्तिका मे आपको बहुत कुछ सामग्री मिलेगी गागर मे सागर भर दिया है। मू २ ५०

होमियो इंजेक्शन चिकित्सा—आरभ मे इजेक्शनो के भेद तथा उनके लगाने की विधि का सचित्र वर्णन दिया है। तत्पश्चात होमियोपैथिक औपधियो के गुणादि का वर्णन दिया है। मू १ ७५

आयुर्वेदिक सफल सूचीवेध (इजेक्शन)—लेखक वैद्य प्रकाशचन्द्र जैन। इस पुस्तक मे आयुर्वेदिक द्रव्यो एवं जडी बूटियो के इंजेक्शनो का विस्तृत वर्णन किया गया है। स्वानुभव के आधार पर लिखी अत्यन्त उपयोगी पुस्तक का मू ५ ००

इजेक्शन गाइड—श्री महेन्द्रप्रताप शर्मा एव प्रमोद विहारी सक्सेना—इस पुस्तक मे एलोपैथिक प्रणाली की विशद विवेचना के साथ साथ होमियोपैथिक एव आयुर्वेदिक प्रणाली द्वारा इजेक्शन क्रिया का यथेष्ट वर्णन किया गया है। सजिल्द मू ६ ००

होमियोपैथिक इजेक्शन गाइड—डा० जगदीश्वर सहाय भार्गव—होमियो इजेक्शनो का सारगर्भित वर्णन किया है। मू. १ ५०

यूनानी पुस्तकें

जर्राही प्रकाश (चारो भाग)—इसमे घाव और व्रण से सम्बन्धित जर्राही के लिये उर्दू, संस्कृत व डाक्टरी आदि अनेक ग्रन्थो का सार सग्रह किया गया हे। पृष्ठ सख्या २९८ मू ३ ५०

यूनानी चिकित्सा विधि—इसके लेखक श्री मसाराम जी शुक्ल हकीम वाइस प्रिंसीपल यूनानी तिब्बया कालेज दिल्ली है। इसमे दिल्ली के प्रसिद्ध यूनानी खानदानी हकीमो के अनुभूत प्रयोगो का निचोड है जिसके कारण, यूनानी हकीमो की चिकित्सा दिल्ली मे खूब चमकी और आज तक नाम है। कपडे की पक्की जिल्द मू ५ ००

यूनानी चिकित्सा सागर—श्री मसाराम जी शुक्ल द्वारा लिखा हुआ हिन्दी भाषा मे यूनानी का विशाल ग्रन्थ है जो 'रसतन्त्रसार' के ढग पर लिखा गया है। इसमे पुराने व आधुनिक सभी हकीमो के एक हजार अनुभूत प्रयोग है। औषधियो के नाम हिन्दी मे अनुवाद कर दिये गये है। जिनके नाम नही मिले हे ऐसी १५० औषधियो का वर्णन परिशिष्ट मे दिया है। ५१६ पृष्ठ मू १० ००

यूनानी चिकित्सा विज्ञान—यूनानी चिकित्सा-विज्ञान का हिन्दी मे अनुवाद ग्रथ। इस पुस्तक के दो भाग किये गये हैं। प्रस्तुत भाग मे यूनानी चिकित्सा और निदान के मूलभूत सिद्धान्तो का विशद विवेचन है। इसमे रोग के लक्षण, निदान, भेद तथा परीक्षा की सामान्य विधिया है ६९६ पृष्ठो के इस ग्रन्थ का मू ८,५०

यूनानी सिद्ध योग सग्रह—यह यूनानी सिद्ध योगो का सग्रह है। सभी योग सरल परीक्षित और सहज मे बनने वाले हैं हर एक वैद्य के काम की चीज है। इसके सग्रहकार है वैद्यराज दलजीतसिंह जी आयु० बृहस्पति। मूल्य २.५०

यूनानी वैद्यक के आधारभूत सिद्धान्त (कुल्लियात)—श्री बाबू दलजीतसिह जी व उनके भाई रामसुशीलसिंह जी ने इस छोटे से ग्रन्थ मे इस बात को दिखाने का प्रयत्न किया है कि आयुर्वेद और यूनानी चिकित्सा पद्धतियो मे कितना सादृश्य तथा कितना असादृश्य है। उसका निर्माण दोनो का समन्वय हो सकता है। इस आधार पर किया गया है। मूल्य १.२५

मखजनउल मुफरदात (निघण्टु विज्ञान)—लेखक प० जगन्नाथ शर्मा। मू २ ००

करावदीन सिफाई—यूनानी प्रयोग सग्रह लेखक प० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा मू. २ ००

करावादीन कादरी—लेखक जगन्नाथप्रसाद-हैड मुदर्रिस। चार भाग मू ८.००

यूनानी द्रव्य गुण विज्ञान—हकीम डा० दलजीतसिह ने पूर्वार्ध मे द्रव्य गुण कर्म आदि का विवेचन किया है। उत्तरार्ध मे ५३० यूनानी द्रव्यो के पर्याय उत्पत्तिस्थान, वर्णन, रासायनिक सगठन, प्रकृति और गुणो का पूर्ण विवेचन दिया है। मू० २२००

सरल सिद्ध प्रयोगों की पुस्तकें

अनुभूत योग प्रकाश—ले० डा० गणपतिसिह वर्मा। प्राय सभी रोगो पर आपकी सरल सफल प्रयोग इस पुस्तक मे मिलेगे। मू ६ २५

अनुभूति—ले डाक्टर नरेन्द्रसिह नेगी—इसमे भिन्न भिन्न रोगों पर अनुभूत रोगो का वर्णन है। मू २ २५।

पैसे पैसे के चुटकुले—सस्ते तथा सफल प्रयोगो का सग्रह मू० ३ ००

महात्मा जी के १२५१ नुस्खे—इस पुस्तक मे जनता के लाभार्थ महात्मा जी ने अपने स्वानुभूत प्रयोगो द्वारा गागर मे सागर भरदिया है। सजिल्द ३ ००

सिद्ध योग (दो भाग)—प विशेश्वरदयाल वैद्य राज—इस पुस्तक मे अनेक सिद्ध योगो का रोगानुसार वर्गीकरण करते हुए सग्रह किया है। मूल्य प्रथम भाग १ ००, द्वितीय भाग ० ५०

वैद्य जीवनम्—श्री लोलम्बराज कृत सस्कृत मे प्रयोगो का सग्रह है। सरल हिंदी टीका की गई है। टीकाकार प० किशोरीदत्त शास्त्री मू ०.७५, प० काली चरण पाडेय एम०ए०कृत १ २५, केशवदास जी १ ००

वैद्य बाबा का बस्ता—जैसा कि नाम से प्रगट है, श्री बसीलाल जी साहनी द्वारा रोगानुसार वर्गीकरण करते हुए लगभग ६५० प्रयोगो का सग्रह है। पुस्तक का आकार डायरी के समान हे। सजिल्द १ २५

नित्योपयोगी चूर्णसंग्रह—नित्य उपयोग मे आने वाले १३१ चूर्णो का सग्रह विभिन्न ग्रन्थो से किया गया है। उनके बनाने की विधि, मात्रा, अनुपान एव गुणो का वर्णन किया है। मू० १ २५

नित्योपयोगी क्वाथ सग्रह—क्वाथ चिकित्सा, आयुर्वेद की प्राचीन, अल्प व्यय साध्य एव आशुफलप्रद चिकित्सा है। इस पुस्तक मे १९ क्वाथो का सग्रह प्रकाशित किया गया हे। मू०१ २५

नित्योपयोगी गुटिका सग्रह—३२३ वटियो (गुटिकाओ) का उपयोगी सग्रह मू० २ ००

अनुभूत योग चिंतामणि—डा० गणपतिसिह वर्मा राजवैद्य। वर्गानुसार रोगो का वर्णन कर तत्पश्चात् उप

योगी नुस्खे दिए गए है जो कि सस्ते, सरल और आशु-फलप्रद है। अल्पकाल मे ५ सस्करण हो जाना ही इसकी उत्तमता का प्रमाण है। मू० प्रथम भाग ४.२५, द्वितीय भाग ४.००

सिद्ध भैषज्य संग्रह—चूर्ण, वटी, तैल, अवलेह आदि वर्गानुसार अनेक सिद्ध औषधियो का विवेचन किया गया है अन्त मे ज्वर, अतिसार आदि रोगो पर प्रयुक्त की जाने वाली औषधियो की सूची विस्तृत रूप से दी गई है। सजिल्द मू० ८ ००

देहाती अनुभूत योग संग्रह—(दो भाग) अनुवादक अमोलकचन्द शुक्ल देहाती वस्तुओ से उत्तमोत्तम प्रयोगो को बनाने की विधिया वर्णन की गई है। दोनो भागो को मिलाकर लगभग ९५० प्रयोग दिए है। सजिल्द प्रथम भाग ६ ००, द्वितीय भाग ७ ००

डाक्टरी नुस्खे—डाक्टर राधावल्लभ पाठक अनेक डाक्टरी नुस्खो का सग्रह सजिल्द मू० ५ ००

अनुभूत योग चर्चा—लेखक बसरीलाल साहनी प्रथम भाग मे २०७ प्रयोगो तथा द्वितीय भाग मे ४३३ प्रयोगो का सग्रह है। इस पुस्तक मे अति सरल प्रयोग वर्णित हैं। मू० प्रथम भाग २ ५०, द्वितीय भाग ३ ५०

अनुभूत योग—दो भागो मे लगभग १५० प्रयोगो की निर्माणविधि, मात्रा अनुपान एव उनके गुणो का विस्तृत विवेचन किया है। मू० प्रत्येक भाग का १ ००

सिद्धयोग संग्रह—आयुर्वेद मार्तण्ड श्री यादव जी त्रिक्रम जी आचार्य के द्वारा अनुभूत सफल प्रयोगो का सग्रह। हर चिकित्सक के लिए उपयोगी पुस्तक है। इस के प्रयोग पूर्ण परीक्षित और सद्य लाभदायक है। मू० २.७५

रसतंत्रसार व सिद्ध प्रयोग संग्रह—सशोधित अष्टम सस्करण। इस ग्रन्थ मे रस-रसायन, गुटिका, आसव अरिष्ट पाक, अवलेह, लेप, सेक, मलहम, अजनादि सभी प्रकार की आयुर्वेदिक औषधियो के सहस्रश. अनुभूत एव शास्त्रीय प्रयोग तथा विस्तृत गुणधर्म विवेचन है। प्रथम भाग १० ०० सजिल्द १२ ००, द्वितीय भाग ६ ००, सजिल्द ७.५०

होमियो बायोकैमिक पुस्तकें

आर्गेनन—यह होमियोपैथी की मूल पुस्तक है जिसमे इस पैथी के मूल प्रवर्तक महात्मा सैमुएल हैनिमैन के २९१ सूत्र है। इस पुस्तक मे इन्ही पर डा० सुरेशप्रसाद शर्मा ने व्याख्या इतनी सुन्दर और सरल की है कि हिंदी जानने वाले इन सूत्रो का मन्तव्य भलीभांति समझ सकते है। बिना इस पुस्तक के होम्योपैथी जानना दुराशा मात्र है ३७८ पृष्ठ सजिल्द मू० ४ ००

ज्वर चिकित्सा—उत्तर प्रदेशीय सरकार से पुरस्कार प्राप्त इसमे सभी प्रकार के ज्वरों की एलोपैथिक, आयुर्वेदिक एव यूनानी मत से चिकित्सा वर्णित है। मू० २ ००

पशु चिकित्सा होमियो—यह आयुर्वेदिक तथा होमियोपैथिक दोनो मे सम्बन्धित पशु चिकित्सा पर बहुत उपयोगी साहित्य है। मू० २ १२

प्रिंस मैटेरिया मैडिका—(कपरेटिव)—डा सुरेशप्रसाद शर्मा प्रिंस होमियोपैथिक कालेज के प्रिंसिपल द्वारा प्रणीत यह होमियोपैथिक मेटेरिया मैडिका है। औरो से इसमें बहुत कुछ विशेषता है। थेराप्युटिक ही नहीं इसमे फार्मोकोपिया भी सम्मिलित की गई हैं। प्रत्येक औषधि के मूलद्रव्य, प्रस्तुत विधि, वृद्धि, उपशम, प्रमुख एव साधारण लक्षणो आदि सभी विषयो का वर्णन किया गया है १३७२ पृष्ठो की पुस्तक का मू० केवल ६.००

किंग होमियो मक्चिर्स—श्री शकरलाल गुप्ता। यह पुस्तक होमियोपैथिक डाक्टरो के दैनिक व्यवहार के लिये अत्युपयोगी है। मू० २ ५०

किंगहोमियोमिक्श्चर्स एवं पेटेण्ट मेडीसन गाइड—श्री डा० शकरलाल गुप्ता। इसमे होमियोपैथिक दृष्टि से रोग का परिचय, कारण, लक्षण, रोग की चिकित्सा आदि पर उत्तम प्रकाश डाला गया है। मू० ७ ५०

होमियो मेटेरिया मैडिका (रेपर्टरी सहित)—डा० विलियम बोरिक। अब तक यह पुस्तक अंग्रेजी भाषा मे थी जिसका यह सरल हिंदी भाषा मे अनुवाद है। मेटेरिया मेडिका अध्याय के बाद रेपर्टरी अध्याय लिखा गया है। लगभग १८०० पृष्ठ मू० १५.००

होमियोपैथिक लेडी डाक्टर (छठा सस्करण)—इस पुस्तक मे स्त्री रोगो की सरल होमियोपैथिक चिकित्सा दी गई है। पाच सस्करण शीघ्र ही समाप्त हो जाना इस पुस्तक की उपादेयता का द्योतक है। मू० १ ६२

होमियोपैथिक नुस्खा—डा० श्यामसुन्दर शर्मा इस पुस्तक मे अनेक उपयोगी होमियोपैथी नुस्खे दिए हैं। मू० १ २५

भैषज्यसार—होमियोपैथी की पाकेट गुटिका। सभी रोगो की दवाओं के प्रयोग व मात्राये दी हैं। मू० २ ००

भारतीय औषधावली तथा होमियो पेटेन्ट मेडीसिन डा० सुरेशप्रसाद ने इस पुस्तक मे उन औषधियों को लिया है जो भारतीय औषधियो से तैयार होती हैं। साथ ही बाद मे कुछ होमियोपैथिक पेटेन्ट औषधियों को वह किस रोग मे दी जाती है,दिया है। मू०१ ५०

रिलेशन शिप–नित्य व्यावहारिक औषधियो का सहायक अनुसरणीय प्रतिषेधक तथा विपरीत औषधियों का सग्रह किया गया है। मू. २ ००

सरल होमियो चिकित्सा–इसमे सभी स्त्री पुरुषो के स्वस्थ्य नियमों को अलग बताया है तथ उनसे विपरीत होने वाले होमियोपैथी सभी रोगो की होमियोपैथी चिकित्सा दी गई है। रोग वर्णन तथा चिकित्सा दोनो ही अत्यन्त सरल और समझाकर लिखे गए हे। मू. ४ ५०

रोगनिदान चिकित्सा—इस छोटी पुस्तक मे १०० पृष्ठो मे रोगी की परीक्षा विधि व ५० पृष्ठो मे होमियोपैथी एव आयुर्वेदिक चिकित्सा है। मू. २ ००

स्त्री रोग चिकित्सा—डा० सुरेशप्रसाद शर्मा लिखित स्त्री जननेन्द्रिय के समस्त रोग, गर्भाधान, प्रसव के रोग तथा स्त्रियो को होने वाले अन्य सभी रोगो का निदान व चिकित्सा दी हे। मू० ४ ५०

होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका–जिन्हे मोटे मोटे ग्रथ पढने का समय नही है उनके लिए यह मेटेरिया मैडिका वहुत उपयुक्त है। सजिल्द ४ ०० पृष्ठ मूल्य ३ ७५

होमियो चिकित्सा विज्ञान—(practice of medicines)–ले० डा० श्यामसुन्दर शर्मा प्रत्येक रोग का खण्ड खण्ड रूप मे परिचय, कारण, शारीरिक विकृति, उपद्रव, परिणाम और आनुषङ्गिक चिकित्सा के साथ आरोग्य चिकित्सा का वर्णन है। सजिल्द मूल्य ३ ५०

बारह तन्तु औषधिया—इसमे प्रारम्भ मे १२ मूल औषधियो के विषय मे लगभग १८० पृष्ठो मे पर्याप्त जानकारी प्रदान करने के वाद रोगानुसार बायोकैमिक चिकित्सा विस्तार से दी हे। छठा सस्करण मू ७ ००

होमियोपैथिक सग्रह—प्रथम भाग इसमे पूर्ण होमियोपैथिक विधान (Organon) मेटेरिया मैडिका, रेपर्टरी तथा नुस्खे दिये गये हे। मू० १० ००

होमियोपैथिक सग्रह दूसरा भाग—इसमे मेटेरिया मैडिका का होम्यो विस्तारपूर्वक दिया गया हे। औषधियो के प्रचलित नाम, मदर टिक्चर तथा डाइलूशन बनाने की विधि, औषधि चिन्ह,कच्चे रूप मे इसका प्रयोग, होमियोपैथिक प्रूविङ्ग तथा औषधियो के सम्बन्ध दिये हैं। मू १५ ००

कालरा या हेजा—इस महाव्याधि पर सुन्दर सामग्री प्रस्तुत है। प्रत्येक अवस्था पर औषधियों का सग्रह मू ३ ००

बायोकैमिक चिकित्सा—बायोकैमिक चिकित्सासिद्धान्त के सम्बन्ध मे आवश्यक बातें तथा बारहों औषधियों के वृहद मुख्य लक्षण और किन किन रोगो मे उनका व्यवहार होता है? सरल ढग मे समझाया है। पृष्ठ ४२६ मू. ४ ००

बायोकैमिक चिकित्सा (नवम् सस्करण)—बारहों दवाओ का भिन्न–भिन्न रोगो पर सफल वर्णन किया गया है। सजिल्द मू. ३ ०० कैलाशभूषण लिखित १ ५०

बायोकैमिक मिक्चर—बारहो क्षारो का विभिन्न रोगों मे मिक्श्चर रूप मे व्यवहार करना यह पुस्तक बताती है। मू. ० ७५

होमियो पारिवारिक चिकित्सा–लेखक डा० सुरेशप्रसाद शर्मा प्रत्येक रोग के लक्षण एव उनकी होमियोपैथिक चिकित्सा विस्तृत रूप से दी गई हे। आधुनिक वैज्ञानिक विवेचन भी साथ मे दिया गया हे। मू. ६ ००

होमियो मदर टिंचर्स (मेटेरिया मेडिका)–डा भगवती प्रसाद श्रीवास्तव–इसमे होमियोपैथिक दवाओ के सक्षिप्त लक्षण, उनके प्रभाव आदि दिये हैं। मू. ३.५०

होमियो पशु चिकित्सा–इसमे घरेलू जानवरो के रोगो की चिकित्सा होमियोपैथिक पद्धति से दी हे मू. २ १२

जीवन रसायन शास्त्र–लेखक डा एच. पी. सिंह—इसमे होमियोपैथिक चिकित्सा पद्धति के बारे मे सक्षिप्त जानकारी,औषधियो की सक्षिप्त जानकारी, रिपर्टरी तथा अन्त मे कुछ अनुभूत योग दिये गये है। सजिल्द मू. ३ ५०

होमियोपैथिक नुस्खा	डा श्याम सुन्दर शर्मा	१ २५
घाव की चिकित्सा	श्यामसुन्दर शर्मा	१ ००
निमोनिया चिकित्सा	डा, बी. एन टडन	० ७५
,, ,,	डा. सुरेशप्रसाद	०.७५
होमियो थाईसिस चिकित्सा	,, ,,	० ७५
होमियो टाइफाइड चिकित्सा	,, ,,	० ७५
होमियो पाकेट गाइड	,, ,,	१ ००
गृह चिकित्सा	,, ,,	२ २५
,,	डा० बी० एन टडन	१ ५०
सरल होमियोपारिवारिक चिकित्सा	डा. शिवसहाय भार्गव	५ ००
होमियो फार्माकोप्यिा	डा बी एन टडन	२.००

प्राकृतिक चिकित्सा की पुस्तकें

रोगोकी सरल चिकित्सा(तीसरा परिवर्तित संस्करण) लेखक श्री विट्ठलदास मोदी । १०,००० से अधिक रोगियो पर किये गये अनुभव के आधार पर लिखी गई हिन्दी की यह प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी श्रेष्ठ पुस्तक है, अब तक इसकी पन्द्रह हजार प्रतिया बिक चुकी है। पृष्ठ सख्या ३५०, बढिया पक्की जिल्द मू ४ ००

बच्चों का स्वास्थ्य और उनके रोग—बच्चो के पालन पोषण की विधि के साथ-साथ उनके रोगी होने पर उन्हे रोगमुक्त करने की विधि इस पुस्तक मे विस्तार से दी गई है। मू केवल ३ ००

रोगो की नई चिकित्सा—लेखक लूईकूने । यद्यपि प्राकृतिक चिकित्सा का बहुत पहले आविर्भाव हो चुका था पर हिन्दुस्थान मे प्राकृतिक चिकित्सा कूने की पुस्तक न्यू साइन्स आफ हीलिंग के साथ ही आई। कूने की इसपुस्तक का ही 'रोगो की नई चिकित्सा' अनुवाद है। मू २ ००

प्राकृतिक जीवन की ओर—मिट्टी, पानी, धूप, हवा और भोजन की सहायता से नये पुराने सब रोगो को दूर करने वाली तथा स्वास्थ्य बढिया बनाने की विधि सिखाने वाली जर्मन पुस्तिका का अनुवाद मू० २ ५०

जीने की कला—यह पुस्तक आपका मानसिक बल बढायेगी, चिन्ताओ से मुक्त करेगी तथा आपके सामने वे सारे रहस्य खोल देगी जिनसे मनुष्य स्वस्थ बनता है। मू० १ २५

स्वास्थ्य कैसे पाया ?—इस पुस्तक मे स्वास्थ्य को उन्नत बनाने और लोगो की रोगो से मुक्ति पाने की आत्म कथायें पढ स्वस्थ रहने का सही तरीका जाने मू० १ ५०

उपवास के लाभ—उपवास की महिमा,उपवास करने की विधि और रोगो के निवारण मे उपवास का स्थान बताने वाली पुस्तक मू० १ ५०

उठो ?—इस पुस्तक को पढे और दुख, परेशानी और मुसीबतो से छुटकारा पा जीवन सफल बनाये। मू०१ ००

आदर्श आहार—भोजन से स्वास्थ्य का क्या सम्बन्ध है और भोजन द्वारा रोग का निवारण कैसे किया जा सकता है ? बताने वाला एक ज्ञानकोष मू० १ ००

आहार चिकित्सा—आहार द्वारा रोग निवारण की शास्त्रीय विधि इस पुस्तक मे सरल भाषा मे समझाई है। इसके लेखक श्री विट्ठलदास मोदी है। मू १ ५०

सर्दी जुकाम खासी—इन रोगो के कारण, उनको दूर करने की सरल घरेलू विधि, उनसे बचने का रास्ता बताने वाली एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक। मू ० ७५

योगासन—लेखक आत्मानन्द । योगासन की विधिया और योगासनो द्वारा रोग निवारण की कला की जानकारी प्राप्त कीजिये। मू केवल २ ००

दुग्धकल्प—दूध मे क्या गुण है। इससे इलाज किस प्रकार किया जाता है। दूध से बनी विभिन्न वस्तुओ का हमारे स्वास्थ्य पर कैसा प्रभाव पड़ता है आदि वर्णन इस पुस्तक मे पढिये। मू० १.००

स्वास्थ्य के लिये शाक तरकारिया [चतुर्थ सस्करण] शाक तरकारियां जो हम रोजाना खाते हे इनका मनुष्य के स्वास्थ्य और सौन्दर्य से क्या सम्बन्ध है, कौन कौन सी शाक तरकारिया कब और कैसे खानी चाहिये आदि सभी बाते इस छोटी सी पुस्तक मे है। मू० २.००

स्वास्थ्य और जल चिकित्सा (छठा सस्करण)—लेखक केदारनाथ गुप्ता एम ए. । इसमे जल चिकित्सा के सारे सिद्धातो का बड़ी सरल भाषा मे प्रतिपादन किया गया है। पानी के द्वारा समस्त रोगो की चिकित्सा कैसे करे। यह इस पुस्तक मे पढिये। मू २.००

दैनन्दिनी रोगो की प्राकृतिक चिकित्सा—लेखक कुलरजन मुखर्जी इस पुस्तक मे ज्वर, प्रतिश्याय,अतिसार, प्रवाहिका, फोडा, फुसी, घाव, सिर दर्द, हेजा, चेचक आदि की प्राकृतिक चिकित्सा दी है। मू ४ ००

पुराने रोगो की गृह चिकित्सा—लेखक डा० कुल रजन मुखर्जी। इस पुस्तक मे अजीर्ण, सग्रहणी, श्वास, यक्ष्मा, कैंसर, मधुमेह, दाद, उन्माद, रक्तचाप, अश्मरी, नपुसकता अण्डवृद्धि आदि सभी जीर्ण रोगो की प्राकृतिक चिकित्सा दी गई है। मू० ४ ००

प्राकृतिक शिशु चिकित्सा—लेखक डा सुरेशप्रसाद शर्मा। शिशुओ के विभिन्न रोग किस कारण से होते है ? तथा उनका नाम मात्र व्यय मे किस प्रकार उपचार किया जाय ? बच्चो को निरोग रखने के उपाय एव विविध प्रकार के स्नान इन पुस्तक मे है मू० २ ००

देहाती प्राकृतिक चिकित्सा—इस पुस्तक मे नेत्र, कर्ण, नासिका, दन्तरोग, मुख तथा कण्ठरोग, श्वास, कास अजीर्ण, विशूचिका, प्रवाहिका, अतिसार, सग्रहणी, वृक्क शूल, मूत्रावरोध, दाद, श्वित्र, नपुंसकता आदि रोगो के उपयोगी प्रयोग दिये गये है। मू सजिल्द ५ ००

स्वास्थ्य-साधन—श्री रामदास गौड सजिल्द ४ ००

दमा-श्वास खासी का इलाज डा. युगलकिशोर चौधरी ०.५०

चिकित्सोपयोगी नवीन उपकरण

एक सफल चिकित्सक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह रोगी का सही निदान करे तथा उसकी चिकित्सा में औषधि प्रयोग के साथ-साथ आधनिकतम यन्त्र शस्त्रो का प्रयोग आवश्यकतानुसार करे । इन आधुनिक यन्त्र शस्त्रो के प्रयोगसे आपको अपनी चिकित्सा मे तो सफलता मिलती ही हे साथ ही रोगी पर भी आपके प्रति बहुत अनुकूल प्रभाव पड़ता है। हमने अपने स्टोर्स मे नवीन नवीन यन्त्रशस्त्रो का विक्रियार्थ विशाल संग्रह किया है । चिकित्सको को चाहिए कि वे आवश्यकतानुसार इन वस्तुओ को मगाकर रखें तथा अपने चिकित्सा कार्य में सफलता एव यश प्राप्त करें ।

डाइग्नौस्टिक सैट—इस सैट द्वारा नाक कान तथा गले को अन्दर से देखते हैं । इसमे एक टार्च होती है जिसमे २ सैल डाले जाते हैं । उस टार्च के ऊपर कान देखने का आला, नासिका प्रेक्षण यन्त्र तथा गले व जबान देखने की जीभी तीनो मे से कोई सा एक फिट हो जाता है । इसमे प्रकाश की व्यवस्था होने से वहुत सुविधा रहती है साथ ही रोगी पर प्रभाव भी पडताहै । इसका प्रत्येक चिकित्सक के पास होना अत्यन्त आवश्यक है । सैल सहित पूरे सैट का मूल्य केवल ४५ ००

चिपकने वाली पट्टी (Adhesive plaster)—पीठ, पेट, छाती या किसी अन्य ऐसे स्थान पर घाव हो जहा पर पट्टी वाधने मे असुविधा हो तो आप इसका प्रयोग करें । यह उसी स्थान पर काटकर चिपका दी जाती है। मूल्य १ इन्च × ५गज २ २५ । २ इच × ५ गज ४ ००

आमाशय प्रक्षालिनी नलिका (Stomach wash tube) यह प्रत्येक चिकित्सक के लिये अत्यन्त आवश्यक वस्तु है । किसी विष के खा लेने पर तुरन्त ही आमाशय प्रक्षालन की आवश्यकता होती है जो कि इसी नलिका की सहायता से किया जा सकता है । मूल्य ७ ००

नमक का पानी चढ़ाने का यन्त्र (Saline Apparatus)—हैजा मे नमक का पानी चढ़ाना चिकित्सक के लिये अत्यन्त आवश्यक है जो कि इसी यन्त्र की सहायता मे चढाया जाता हे । मूल्य १२ ५०

आंख धोने का ग्लास—किसी वस्तु का कण या उडता हुआ कोई छोटा सा कीडा आख मे पड जाने पर निकलना कठिन होजाता है और वह वडा कष्ट देता है । इस ग्लास मे जल भरकर आख मे लगा कर धोने से वह आसानी से निकल जाता है । १ ००

शर्करामापक यन्त्र—मधुमेह रोग मे चिकित्सक के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है । इससे मूत्र मे जाने वाली शर्करा की प्रतिशत मात्रा ज्ञात होगी। विना प्रतिशत मात्रा ज्ञात हुये अनुमान द्वारा Insuline का प्रयोग कभी-कभी रोगी को घातक सिद्ध होता है। रोगी स्वास्थ्य लाभ कर रहा है या नही? यह भी आप इसी यन्त्र द्वारा निश्चय पूर्वक कह सकते है । मूल्य केवल ५ ००

रक्तचापमापक यन्त्र—अनेक रोगो मे रोगी का रक्तचाप (Blood pressure) जानना आवश्यक है । शल्यकर्म के पश्चात् तो इसका प्रयोग रोगी की स्थिति ज्ञात रखने के लिये अत्यन्त आवश्यक है । इस प्रकार के आधुनिक यन्त्रो का प्रभाव भी रोगी पर बहुत अच्छा होता है ।

तथा इससे चिकित्सकों को अपनी चिकित्सा मे सुविधा भी रहती है। प्रत्येक वैद्य को यह यन्त्र अवश्य मगाकर रखना चाहिये। मूल्य जापानी डायल टाइप १२५ ०० भारतीय पारद सहित १९० ००, इगलैण्ड या जर्मनी का पारद सहित २६० ००

आई शेड–(Eye Shade)—आख दुखने आने पर यह बाधे जाते है जिससे कि आख पर रोशनी सीधी न पड़े। एक आख पर बाधने वाले का मूल्य ० ३७, दोनो पर बाधने वाले का मूल्य ० ५०

मोतीझला देखने का शीशा–मोतीझला (Tyhoid) के दाने बहुत सूक्ष्म हो ने के कारण देखने मे नही आते, इसलिये कभी-कभी निदान करने मे वडी भूल हो जाती है। इस शीशा के द्वारा वे दाने वडे वडे दीख पड़ते हैं तथा आसानी से पहचान सकते हैं। हर चिकित्सक को अपने पास एक शीशा अवश्य रखना चाहिये। मू० प्लास्टिक का हैंडिल छोटा शीशा २.५० वढिया वडा ३ ००, धातु का हैंडिल सर्वोत्तम ४ २५, वड़ा साइज ५ ५०

स्टेथिस्कोप (वक्षपरीक्षा यन्त्र)–चिकित्सक ठपन [अगुलि ताडन] से वक्ष परीक्षा करते है किन्तु वह अधिक अभ्यास से समझ मे आसकती है। इस यन्त्र से सुविधा रहती है। साथ ही आजकल के जमाने मे चिकित्सक का सम्मान भी इसी मे है कि वे इस प्रकार के यन्त्रो को व्यवहार मे लाते हुये रोगियो पर अपनी धाक जमायें। मूल्य भारतीय उत्तम १२ ५०, साधारण १० ००, एक चैस्ट पीस वाला जापानी वढिया ४५ ००, केवल चैस्ट पीस (भारतीय) ४ ००

स्टेथिस्कोप रखने का थैला—स्टेथिस्कोप की रवड (नली) नमी आदि से गल जाती हैं। हमने वढिया चमडे के स्टेथिस्कोप रखने के बहुत सुन्दर बैग वनवाये है। इसमे एक ओर आप स्टेथिस्कोप रख सकते है तथा बाहर नाम का कार्ड लगाने का स्थान है, हाथ मे लटकाया जा सकता है। मू० ७ ५०

जिप (जजीर) लगा एक जेव का चमड़े का साधारण—इसमे नाम का कार्ड नही लगाया जा सकता है, एक जेब है। मू० ६ ००

मलहम मिलाने की छुरी–स्पेचुला (Spetula) लकड़ी का हैडिल मूल्य १ ५०, धातु का हैंडिल २.२५

मलहम मिलाने की प्लेट (चीनी की)–साइज ४×४ इची मूल्य १ ५०, ६×६ इची २ ५०, ८×८ इची ६ ५०

सन्तति निरोध (Birth control) के लिए–पुरुषो को फ्रैंच लेदर साधारण ० ५० (१ दर्जन ५ ००), वढ़िया ० ७५ (१ दर्जन ७ ५०), क्रोकोडायल फ्रैंच लैंदर सर्वोत्तम–एक ओर साफ चिकना तथा दूसरी ओर खुरदरा १ ०० (१ दर्जन १० ००)

स्त्रियो की चक पैसरी–० ८७ [१ दर्जन ८ ५०], डायफ्राम (डच) पैसरी वढिया २ ५० [१ दर्जन २५.००[

किडनी ट्रे (Kidney tray)—कान धोने के समय कान के नीचे लगाने के लिये ६ इची २ २५, ८ इची २ ७५, १० इची ३.२५, ८ इची नाइलोन की [न टूटने वाली सुन्दर] ३.२५

सस्पेन्सरी वेन्डेज–यह वढे हुए अण्डकोपो को सभालने के काम आती है। यह पेटी [Belt] की भाति कमर मे कस जाती है तथा एक जाली का वना थैला इस प्रकार लगा रहता है कि अडकोष उसमे रख जाते है। लगोट वाधने से अण्डकोप लटके तो नही रहते लेकिन उन पर कसाव पडता है जो कि अवाछनीय है। लेकिन इस वेन्डेज मे ऐसा नही होता है। इलास्टिक लगी हुई है। मूल्य केवल २ ००

हीमोग्लोविन स्केल बुक (Haemoglobin scale-book)–विना किसी यत्र की सहायता के हीमोग्लोविन की प्रतिशत मात्रा ज्ञात करे। मू० २ २५

पैन टार्च—यह जेब मे पैन की तरह लगाई जाती है। इसमे बहुत पतले दो सैल पडते हैं। चिकित्सको के लिये गले नाक आदि की परीक्षा करने के लिये अत्यन्त उपयोगी है। यह टार्च मौटे पैन के बराबर बडी होती है मूल्य दो सैल सहित केवल १० ५०

इसी टार्च पर गले व जवान देखने, कान तथा नाक देखने की काच की ठोस नली फिट होजाती है जिनसे इन अगो को आसानी से देखा जा सकता है। कपड़ा मढे एक बक्स मे रखे सैट का मूल्य केवल २५ ५०

थर्मामीटर (तापमापक यन्त्र) जापानी—३ ००, भारतीय २.२५

थर्मामीटर केस—धातु के निकिल किये क्लिप सहित २ २५

आटोमाइजर [Automizer]—गले मे या नाक कान मे अन्दर तक कोई दवा पहुचानी है तो वह दवा इस यन्त्र मे भरकर ही पहुचाई जाती है। बहुत से चिकित्सक कागज की वत्ती बनाकर उसमे औपधि को रखकर

फूक मारकर यह कार्य करते है लेकिन इस प्रकार से ठीक प्रकार औषधि नही पहुचती। मूल्य ८ ५०

धमनी संदश [Artery Forceps]–शल्य कर्म करते समय रक्तस्राव करती हुई धमनी को इससे पकडकर रक्तस्राव रोका जाता है। मूल्य ५ इची ४ ००, ६ इची ५ ००, स्टेनलैस्टील की ५ इची ६ २५, ६ इची ७ ००,

सूचिका सदश [Needle Holder]–शल्य कर्म मे मासतन्तु आदि एव त्वचा को सीते समय सुई को इसीसे पकड़ा जाता है। मू० ८ ००, कैंची की तरह का ५ ५०, स्टेनलैस स्टील का कैंची की तरह का मू० १० ५०

धागा सीवन कर्म को—१ पैंकिट २ ००

सूचिका [Needles]—सीवन कर्म के लिये ६ सुई का पैकिट (इग्लैण्ड की) ५ ००

शीशे पर लिखने की पैन्सिल—इस पैंसिल से आप शीशा, प्लास्टिक तथा धातु के बर्तन आदि पर लिख सकते है। साधारण पेंसिल पैन आदि से आप शीशा पर नही लिख सकते। मू० ० ७५

मसूढ़े चीरने का चाकू–सीघा १.३७, फोल्डिग २ २५, स्टेनलैस स्टोल का सीधा ३ ५०

इंजेक्शन सिरिंज (कम्पलीट)–सम्पूर्ण काच की २ CC की २ ७५, ५ c c की ४ ००, १० c c की ६ ००, २० c c की १० ००, ३० c c की १४ ५०, ५० c c की २८ ००

रेकार्ड सिरिंज–२ CC की ११ ००, ५ CC की १५ ००

ल्यूर लाक भारतीय—२ CC ६ ००, ५ CC ९ ००, १० CC १२ ००

ल्यूर लाक जापानी—२ c c १० ००, ५ c c १२ ००, १० c c १५ ००, २० c c २० ००, ३० cc २८ ००, ५० c c ३५ ००

नइलौन की सिरिज—२ cc २ ७५, ५ cc ६ ००, १० cc ४ ५०

इञ्जेक्शन की सुई (नीडिल)—१ नग ० ७५, १ दर्जन ८ २५

सिरिंज केश निकिल के—सिरिज सुरक्षित रखने के लिए—१ केस २ c. c की सिरिंज के लिए ३ ००, ५ c c की सिरिंज के लिए ४ ००, १० c c की सिरिज के लिए ६ ००, २० c c की सिरिंज के लिए ११ ००, ३० या ५० c c की सिरिंज के लिए १६ ५०।

परवाल उखाडने की चीमटी [Cilia Forceps]—साधारण चीमटी की पकड मे यह बाल (Cilia) नही आते। उपरोक्त चीमटी विशेषत परवाल के वाल उखाड़ने को ही वनाई गई है। मू० २ ५०

एनीमा सिरिंज (वस्ति यन्त्र)—इस यत्र से जल या औपधि द्रव्य गुदा मे आसानी से चढाया जा सकता है। मूल्य रवड का भारतीय उत्तम ५ ००

दवा नापने का ग्लास (Measuring Glass)—मूल्य २ ड्राम का ० ७०, १ औंस का ० ९०, २ औंस का १ ०० ४ औंस का १ २५

घाव मे डालने की सलाई [Probe]—मूल्य ० ३५

गला व जवान देखने की जीभी (Tongue Depressure)—इस यन्त्र से जीभ दवा कर गला तथा अन्दर की जीभ स्पष्ट दीखती है। मूल्य साधारण सीधी १ २५, फोल्डिग २ ५०।

गरम पानी की थैली–ज्वर, पीडा, शोथ या अन्य आवश्यक स्थानो पर इस थैला मे गरम जल भरकर सुगमता से सिकाई की जा सकती है। मूल्य ६.००

बरफ की थैली—इस थैली मे वरफ भरकर रखने से सुविधा रहती है, रोगी को इससे ठडक पहुचती है किन्तु उससे वह भीगता नही है। मूल्य ४ ५०

कान धोने की पिचकारी—धातु की १ औंस की ६ ५०, २ औंस की ७ ५०, ४ औंस की १० ००

आपरेशन करने का चाकू—इसमे हैंडिल पृथक होता है तथा काटने वाला ब्लेड पृथक होता है जो कि खराव होने पर वदला जासकता है। मूल्य १ ब्लेड सहित ४ ००, ६ ब्लेडो सहित ६ ५०। स्टेनलैस स्टील का ६ ब्लेड सहित ८ ५०

विश्चूरी—इसका फलक पतला तथा तिरछा होता है। इसके द्वारा भेदन किया जाता है। सीधी का मूल्य १ २५, फोल्डिग २ २५। स्टेनलैस स्टील की सीधी ३ ५०

चीमटी—४ इची ० ९०, ५ इची १ ००, स्टेनलैस स्टील की वढिया ४ इंची ३ ७५, ५ इची ४ ००

दाती मे दवा लगाने की चीमटी–२ ५०

चाकू—चाकू सीधा ५ इची १ २५, फोल्डिग २ २५, स्टेनलैस स्टील का सीधा ३ ००

दात निकालने का जमूडा—इससे दांत मजवूती से पकड कर उखाडा जा सकता है। मूल्य ६ ५०, स्टेनलैस स्टील का २० ००

आंख में दवा डालने की पिचकारी—१ दर्जन ० ४०

कान में से दाना निकालने का यन्त्र—कान मे यदि कोई अनाज का दाना आदि पड गया है तो उसे किसी

साधारण चीमटी से निकालने का प्रयत्न कदापि न करें नही तो वह आगे सरक जायेगा । यह यन्त्र दाने आदि को सुगमता से खीचकर लाता है । मूल्य २ २५

ग्लेसरीन की पिचकारी (प्लास्टिक की)—गुदा मे ग्लेसरीन चढाने लिये प्लास्टिक की उत्तम क्वालिटी की पिचकारी । मूल्य १ औस २ ५०, २ औंस ४ ००

तीन मार्ग वाला यन्त्र (Three way Canula)—किसी रोगी के द्रव पदार्थ अधिक मात्रा मे चढाना है तथा आपके पास सिरिंज उससे छोटी हे तो आप इसका प्रयोग करें । मूल्य ८ ५०

आमाशय में दूध चढाने की नली—जब रोगी की अवस्था इस प्रकार की हो कि वह मुह द्वारा अपना आहार ग्रहण न कर सके यथा बेहोशी मे, पक्षाघात मे, किसी दौरे आदि मे तो आप इस नली द्वारा दूध या अन्य कोई पौष्य द्रव पदार्थ आमाशय मे पहु चा सकते है। मू ३ ००

कान देखने का आला—कपडे से मढे एक सुन्दर मजबूत लकडी के डिब्बे मे रखा दो अतिरिक्त ईअर पीस सहित का मू० १४ ००

गुदा परीक्षण यन्त्र (Proctoscope)—गुदा की अन्दर से परीक्षा करने के लिए यह एक आवश्यक यन्त्र है । गुदा के अन्दर की स्थिति देखी जाती है । मू १२ ५० ।

स्तनों से दूध निकालने का यन्त्र—स्त्री के स्तन में पकाव या फोड़ा हो जाने पर अथवा नवजात शिशु की मृत्यु हो जाने पर स्तनो मे भरा हुआ दूध बडा परेशान करता है । इस यन्त्र द्वारा दूध आसानी से निकाला जाता है। मूल्य २ २५

मूत्र कराने की नली (कैथीटर)—मू० रबड़ का ० ७५, स्त्रियो के लिये धातु का १ ५०, पुरुषो के लिये धातु का २ ७५ ।

जलोदर में उदर मे पानी निकालने का यन्त्र—जलोदर रोग मे उदर गह्वर मे पानी निकाल देने से रोगी जल्दी स्वास्थ्य लाभ करता हे मू० ३ ७५, स्टेनलैसस्टील की नोक वाला ६ ५० ।

आख टैस्ट करने का चार्ट—साधारण तौर से आप इन चार्टों को रोगी से पढवाकर दृष्टि परीक्षा कर सकते हैं । मूल्य १ ३५ प्रति चार्ट ।

मलहम लगाने का यन्त्र (Ointment introducer) अर्श रोगी की गुदा मे मलहम लगाने के लिए उपयोगी मूल्य २ ५०

खरल चीनी का गोल—मूल्य २॥ इची २ ००, ३ इंची २ ५०, ४ इंची ३ ०० तथा ५ इंची ४ ००

आपेक्षिक घनत्वमापक यन्त्र (Urinometer)—मूत्र अथवा अन्य द्रव का आपेक्षिक घनत्व इस यन्त्र द्वारा मालूम किया जाता है। मूल्य १ ५०, बडा (१००० से २००० तक चिह्न वाला) २ ००

मवाद साफ करने की पिचकारी—मूत्रनली मे मवाद अन्दर चिपक कर व्रण पैदा कर देता है जब तक वह अन्दर से साफ नही होता रोग का नष्ट होना कठिन हो जाता है । इस पिचकारी से दवा पहु चा कर सफाई कर सकते हैं । मूल्य मनुष्य के लिये ० ७५, जनानी १ ००

कैंची—४ इंची बढिया २ ००, ५ इची साधारण २ ००; कैंची मुडी हुई ४ इची २ १२, ५ इची २ २५, कैंची एक ओर को मुडी हुई ४ इची २ ५०, ५ इची ३ ००, कैंची सीधी स्टेनलैस स्टील की ४ इची ४ ५०, ५ इची ५ ५०

रबड़ के दस्ताने—चीडफाड करने समय सक्रमण मे रोगी को और अपने को बचाने के लिये चिकित्सक इन दस्तानो को हाथ मे पहनते है। मूल्य १ जोडी ३ ५० ।

थूकने का पात्र—तामचीनी (इनामिल) का पात्र ४ ००, प्लास्टिक का सुन्दर ५ ५०

काटा (Scales)—अग्रेजी बैलैस की तरह के कीमती दवाओ को सही व आसानी से तौलने के लिए व्यवहार मे लाने चाहिये । निकिल पालिस, लकडी के बक्स के अन्दर रखे है। मूल्य बाटो सहित निकिल किया हुआ १५ ००

डूस—इससे फोडा आदि धोने मे बडी सुविधा रहती है । इससे एनीमा लगाया जाता है। मूल्य रबड़ की टोटनी आदि मे पूर्ण २ पिंट का ५ ००, ४ पिंट का ७ ५०, १ पिंट का नाइलोन का सुन्दर पात्र रबड टोटनी सहित ७ ५०

स्प्रिट लैंप—थोडी दवा गरम करनी हो अथवा सूखी दवा मे इजेक्शन के लिए दवा तैयार करनी हो तब इस लैंप की सहायता लेनी पडती है। मूल्य धातु की दो औस की ४ ५०, ४ औंस की ५ ५०

डाक्टर्स इमर्जेंसी बैग—इसमें आवश्यकता के समय चिकित्सक अपना आवश्यक सामान रखकर रोगी के परीक्षार्थ जा सकता हे। मू० १० इन्ची सम्पूर्ण चमडे का जिप (जजीर) लगासुन्दर १८ ००, १२ इन्ची २२ ००

मुखविस्फारक यन्त्र (Mouth gag)—मुख के अन्दर परीक्षा करते समय या कोई दवा लगाते समय, या शल्य कर्म करते समय, या किसी विष के खा लेने पर आमाशय प्रक्षालिनी नलिका के प्रयोग मे रोगी का मुख इससे खुला रखा जाता है। मूल्य १० ००

दंत उन्नामक [Dental Elevetor]–दांत यदि कम हिलता है तथा किसी रोग के कारण उखाडा जाना आवश्यक है तो इस यन्त्र की सहायता से दात को उकसाया जाता है। वैसे तो बाजार मे अलग-अलग दातो के लिये प्रथक-प्रथक उन्नामक आते है लेकिन हमने इस प्रकार का उन्नामक तैयार करवाया है जो कि प्रत्येक दात के लिये एक ही काम करेगा। मू० ९ ००

नासिका प्रेक्षण यन्त्र–नाक मे सूजन है, फुन्सी है या किसी और कारण से कष्ट है तो उसे ठीक प्रकार से देखा नही जा सकता। यह यन्त्र नाक मे डालकर चौडा दिया जाता है जिससे नाक चौड जाती हे और फिर आप नाक के अन्दर के सभी अवयव स्पष्ट देख सकते है। मू० ५ ००

अंगुली के रवड़ के दस्ताने [Finger stalls]–यह अगुली पर चढा लिया जाता है तथा फिर योनि, गुदा आदि अंगो की परीक्षा की जाती है। यह सस्ते रहते है। मू० ३० नये पैसे, १ दर्जन ३ ००

मूत्र पात्र (Urinal pot)–जब रोगी की स्थिति इस प्रकार की होती है कि वह बिस्तर से न उठ सके तो उसे पेशाब बिस्तर पर इसी यन्त्र मे करना पडता है। तामचीनी का मू० ६ २५, नाइलोन का बढिया ७ ५०

कपिंग ग्लास—उदर शूल तथा अन्य अनेक रोगो में इन ग्लासो का प्रयोग किया जाता है। तीन ग्लासो के १ सैट का मू० ४००

सुरमा लगाने की सलाई–(काच की) १ दर्जन ३० पै० १ ग्रोस २ ५०

नपुंसकता निवारण यन्त्र–बडी पम्प सहित २०.००, छोटी पम्प सहित १६ ५०

योनि प्रक्षालन यन्त्र—मूल्य १५ ००

योनि परीक्षण यन्त्र—मूल्य ९.००

खाली कैपशूल—यदि दवा कडवी है तो इसमे भर कर रोगी को दे। मूल्य–११.०० प्रति सैकडा बडा साइज

असली मोतीचूरा

मोती बीधते समय जो चूरा निकलता है उसे हमने सग्रह कर मगाया है। मोती की पिष्टी व भस्म बनाने मे इसे व्यवहार मे लें। आपको किफायत रहेगी। मूल्य १० ग्राम १२ ५०

मोती छिलका

सीप के अन्दर मोती के ऊपर एक आवरण रहता है जिसको हटाकर मोती निकाला जाता है। इस आवरण की भस्म तथा पिष्टी बनाकर हमने प्रयोग की और पाया कि यह मुक्ता भस्म तथा मुक्ता पिष्टी से गुणोमे किसी प्रकार भी कम नही है। साथ ही कतिपय ग्राहको ने भी इन मोती छिलको का प्रयोग किया है। उनकी भी यही राय है। मूल्य–१० ग्राम—१२ ००

असली मोती

इसके साथ ही हमने विक्रियार्थ मोती भी सग्रह किये है। मूल्य १० ग्राम १०० ००, बेडौल १० ग्राम ४५.००

टूटे मोती

गहनो के लिये मोतियो मे छेद करते समय जो मोती टूट जाते है उनका सग्रह किया है। मू० १० ग्राम ४० ००

पता–दाऊ मैडीकल स्टोर्स विजयगढ [अलीगढ]

पत्थर के खरल

आयुर्वेद की किसी भी औषधि के निर्माण के लिये खरलो की आवश्यकता पडती है। यह देखा गया है कि यदि मुलायम पत्थर वाले खरल मे कोई दवा बनाई जाय तो पत्थर घिसकर औषधि मे मिल जाता है जिसका कि बुरा प्रभाव होना अवश्यम्भावी है। इस सम्बन्ध मे हमारे चिकित्सक बन्धुओ को बडी कठिनाई थी। अब हमने यह कठिनाई देखते हुये खरल स्वय बनवाकर विक्रियार्थ रखने का प्रबन्ध किया है। खरल मुलायम तथा कठिन पत्थर के दोनो प्रकार के रखे गये है। साधारण मुलायम औषधिया घोटने के लिये कसौटी पत्थर के खरल उत्तम तथा सस्ते रहते है। मोतिया पत्थर के खरल कडे तथा साधारण दवा घोटने के लिये उपयोगी है। मोतिया से अधिक कडा तथा कम घिसने वाला पत्थर तामडा होता है। विविध पिष्टी घोटने के लिये इसका उपयोग करें। तामड़ा पत्थर से भी उत्तम व न घिसने वाला हंसराज पत्थर सर्वोत्तम है।

—मूल्य तथा साइज का विवरण—

	हसराज	तामडा	मोतिया	कसौटी
३ इञ्ची	×	×	×	१ ३०
४ इञ्ची	१३ २५	८ ७५	×	२ ००
५ इञ्ची	१५ ६२	९ ७५	४ ००	२ ७५
६ इञ्ची	२० ७५	१२ ७५	५ ००	४ २५
७ इञ्ची	२५ २५	१५ ३७	६ २५	६ ५०
८ इञ्ची	३१ ८७	१८ ६२	८ ३७	८ ००
९ इञ्ची	३६ २५	२१ ८७	११ ००	१० २५
१० इञ्ची	४१ ७५	२६ २५	१३ २५	१२ ५०
११ इची	४८ २५	३० ७५	१७ ७५	१६ ७५
१२ इची	५४ ७५	३५ ००	२१ ५०	२१.००
१३ इंची	६१ ७५	३९ ५०	२७ ७५	×
१४ इची	७० ००	४६ ००	३२ ००	×
१५ इची	८३ ५०	५४ २५	३८ ५०	×
१६ इची	९५ ७५	६३ ७५	४५ ००	×
१७ इची	१२० ५०	७४ ५०	५६ ००	×
१८ इची	१४२ ३७	८७.५०	६७ ००	×
१९ इची	१६७ ००	१०१ ००	८० ००	×
२० इची	१९३ ७५	१२२ २५	९६ ००	×

स्टेनलेस स्टील के खरल—गोल २॥ इञ्ची १२ ००

किस्तीनुमा ७।," लम्बाई ४॥" चौडाई तथा ३।॥" ऊचाई मू ८५ ५०

खरलो का आर्डर देते समय अपने पास के रेलवे स्टेशन का नाम अवश्य लिखे तथा चौथाई रकम मनियार्डर से पेशगी भेजें। इन भावो पर सेल टैक्स एव अन्य खर्चा प्रथक लगेगा।

दाऊ मैडीकल स्टोर्स, विजयगढ़ (अलीगढ़)